वैदिक धर्म

वर्ष ४३ अंक १

क्रमांक १५७ : जनवरी १९६२

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

" वैदिक धर्म "
वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	३)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	१)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अपेक्षा ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	११)	१)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	११)	१)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें) १६) २)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

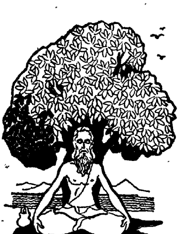
मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत

वैदिकधर्म

उत्तम प्रशंसनीय वीर

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो
घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः
शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥

(सामवेद उ. २१।१)



(आशुः) शीघ्रतासे हरएक कार्य उत्तम करनेवाला, (शिशानः) तीक्ष्ण, शत्रुओंको भयभीत करनेवाला (वृषभ न) बैलके समान (भीमः) भयंकर, (घनाघनः) शत्रुओंका पूर्ण विनाश करनेवाला (चर्षणीनां क्षोभणः) शत्रुके वीरोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला, (संक्रन्दनः) शत्रुको रुलानेवाला (अ-निमिषः) आलस न करनेवाला ऐसा (एक वीरः) अद्वितीय वीर इन्द्र (शतं सेनाः साकं अजयत्) सैंकडों शत्रुओंकी सेनाको एक साथ जीतता है ॥

इन्द्र इन गुणोंसे युक्त है । उपासक लोग ये गुण अपनेमें लाने और उनको बढानेका प्रयत्न करें और श्रेष्ठ वीर बन जायें ।



स्वाध्याय मंडल वृत्त

वेदमुद्रण— इस समय ' हिंदी ' भाषामें ' ब्रह्मविद्या ' पुस्तक छप रही है । इसमें ब्रह्म, परब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर आदि विषयोंके सब सूक्त अर्थ और विस्तृत स्पष्टीकरणके साथ दिये हैं ।

१ ' गुजराती ' भाषामें ' आरोग्य और दीर्घायुष्य ' यह ग्रंथ छप रहा हैं । इसमें इस विषयके सब सूक्त प्रकरणानुसार अर्थ और स्पष्टीकरणके साथ समाहित किये हैं ।

२ ' मराठी ' भाषामें ' गृहस्थाश्रम ' यह पुस्तक छप रही है । इसमें इस विषयके सब सूक्त प्रकरणानुसार अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ एकत्रित किये हैं ।

इस प्रकार छपाई चल रही है ।

इस मासमें वेदमुद्रणके कार्यके लिये जो आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है वह यह है—

श्री विष्णु स. माचिले, उस्मानाबाद	१००
,, एन. वी. खांडके, दादर-मुंबई २८	१००
,, रामचन्द्र तु मसुरकर, मुंबई ११	५१
,, एल आर. पटवर्धन, दादर-मुंबई २८	२५
,, एक सद्‌गृहस्थ, पारडी	३
,, हरि नारायण साधले, अतुल	२·५०
,, वसनजी हसराज, दबवी	२
,, त्र्यं मा कुलकर्णी, पेठवडूज	१

आशीर्वाद टीकीट

श्री. अमृत जगू पाटील, तारापूर	५
,, बाबूराव माधव पाटील, देदाळे	५
,, हरिचंद्र लालाजी बारी, चिंचणी	५
,, डॉ. नरहर रामचंद्र घाटे, तारापूर	५
,, डॉ. वासुदेव नारायण दातार ,,	५
,, माधव कृष्णाजी बर्वे ,,	५
,, माधव कृष्णाजी बर्वे ,,	५
,, वासुदेव गोविंद सावे ,,	५
ौ. सुंदराबाई शंकरराव पाटील, सायन-मुंबई	५
ी. जगन्नाथ भास्कर मळेकर, तारापूर	५
,, हरिचंद्र विनायक धर्माधिकारी, उनभाट	३
, तुकाराम शंकर साने व दत्तात्रय हरिचंद्र साने, अक्करपट्टी	३
,, विनायक सिताराम पाटील, तारापूर	३
,, अनंत काशिनाथ बर्वे ,,	३
,, केशव दामोदर बर्वे ,,	३
,, मोरेश्वर हरिचंद्र मळेकर ,,	३
,, जगनाथ रघुनाथ किणी ,,	३
,, दत्तात्रय धोंडदेव पेठे ,,	३
,, रामचंद्र विश्वनाथ वेलणकर ,,	३
,, वासुदेव काशिनाथ सावे ,,	३
,, बा. ब. पंडित, पामटेंभी	१
,, का. ज. पंडित, पामटेंभी	१
,, ना. प पंडित, पामटेंभी	१
,, ए ना. पागधरे, नवापूर	१
,, मा. श्री. पंखे, कुरगांव	१
,, छ. जु शाह, तारापूर	१
,, कृ. पां. बोरे, वेंगणी	१
,, दा गो साने, कुरगाव	१
,, ग. गो. सखे, परनाळी	१
,, मो. सि. पाटील, कुडण	१
,, वा. श्रा मोरे, उनभाट	१
,, बा. कें. मोरे, उनभाट	१
,, बा. गो. म्हात्रे, फोफरण	१
,, द. पां. धर्माधिकारी, उनभाट	१
,, श्री शा. पाटील, उनभाट	१
,, दा. ग. चरत, दहीसर	१
,, बा. का. प्रभू, घेवडी	१
,, कृ. ल. साठे, तारापूर	१
,, ल. प सावे ,,	१
,, वि. वि. चपानेरकर ,,	१
कुल रु.	३८४·५०
पूर्व प्रकाशित रु.	१,१७,६२०·३८
कुल जमा रु.	१,१८,००४·८८

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पारडी

पाठकोंको सादर समर्पण

२३ अक्टूबर ६१ को उत्तर प्रदेशके महान् सन्त योगिराज श्री देवरहवा बाबाजीने स्वाध्याय-मण्डल वैदिकानुसंधान संस्था, पारडीके संस्थापक व संचालक वेदोंके प्रकाण्ड विद्वान् श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीको ब्रह्मर्षिकी सर्वोच्च उपाधिसे विभूषित किया था। और उन्हींके करकमलोंसे महामना मदनमोहन मालवीयजीकी शती जयन्ती समारोहका उद्घाटन हुआ था। उस समारोहमें विभिन्न अधिवेशन हुए, तथा ब्रह्मर्षि उपाधि प्रदानका एक महान् समारोह भी सम्पन्न हुआ था। उस सबका विस्तृत विवरण अपने सहृदय पाठकोंके हाथोंमें देते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। लीजिए, प्रस्तुत है।

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय	१ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१.५०	.१२
अध्याय	३० मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	१)	.१९
अध्याय	३२ एक ईश्वरकी उपासना	१.५०	.१२
अध्याय	३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१.५०	.१२
अध्याय	४० आत्मज्ञान-ईशोपनिषद्	१)	.३७

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

(१ से २० काण्ड पांच जिल्दोंमें)

इनमें मंत्र, अर्थ, स्पष्टीकरण और विषयवार वैदिक सूक्तियोंका संग्रह है। हरएक पाठक इनसे लाभ उठा सकता है।

प्रथम विभाग	१ से ३ काण्ड	१०)	१)
द्वितीय विभाग	४ से ६ काण्ड	१०)	१)
तृतीय विभाग	७ से १० काण्ड	१०)	२)
चतुर्थ विभाग	११ से १८ काण्ड	१०)	१)
पञ्चम विभाग	१९ और २० काण्ड (छप रहा है)	१०)	२)

एकदम सब भाग लेनेवालोंको पांचों भागोंका मूल्य ४०) रु. होगा। डा. व्य. पृथक्.

सामवेद (कौथुम शाखीयः)

सामवेदके गायनके ये ग्रंथ हैं। इनके गायन करनेसे अद्भुत मानस शान्ति प्राप्त होती है।

१ ग्रामेगेय (वेय, प्रकृति)
गानात्मकः-आरण्यक गानात्मकः
प्रथमः तथा द्वितीयो भागः ५) १)

२ ऊहगानं— (दशरात्र पर्व) १) .३५
(ऋग्वेदके तथा सामवेदके मंत्रपाठोंके साथ ६७२ से ११५२ गानपर्यंत)

३ ऊहगान— (दशरात्र पर्व) .५० .१२
(केवल गानमात्र ६७२ से १०१६)

उपनिषद् भाष्य ग्रंथमाला

इन उपनिषदोंके भाष्योंमें यह बताया है कि यहां ब्रह्मज्ञानके साथ साथ उत्तम अध्यात्मविष्ठित मानवी व्यवहार अर्थात् वैयक्तिक, सामाजिक, राजकीय तथा जागतिक व्यवहार निर्दोष रीतिसे किस तरह सिद्ध हो सकता है। यह सब तत्त्वज्ञान इन भाष्योंमें है। यह किसी अन्य ग्रंथोंमें नहीं मिलेगा। इसलिये सबको ये ग्रंथ पढने आवश्यक हैं।

१ ईश उपनिषद्	२)	.३७
२ केन उपनिषद्	१.७५	.३१
३ कठ उपनिषद्	१.५०	.२५
४ प्रश्न उपनिषद्	१.५०	.२५
५ मुण्डक उपनिषद्	१.५०	.२५
६ माण्डूक्य उपनिषद्	.५०	.१२
७ ऐतरेय उपनिषद्	.७५	.१९
८ तैत्तिरीय उपनिषद्	१.५०	.२५
९ श्वेताश्वतर उपनिषद् (छप रहा है)		

श्रीमद्भगवद्गीता

इस गीता भाष्यमें अनेक गूढ विषयोंका स्पष्टीकरण है। राज्यव्यवहारके आध्यात्मिक संकेत यहां स्पष्ट रीतिसे बतायें हैं।
(हिंदी-गुजराती-मराठी-अंग्रेजी भाषाओंमें मिलेगी।)

१ पुरुषार्थबोधिनी टीका (एक जिल्दमें)— ११.५० २.५०
„ (तीन जिल्दोंमें) अध्याय १ से ५ ५) १.३५
„ अध्याय ६ से १० ५) १.३५
„ अध्याय ११ से १८ ५) १.३५

२ श्रीमद्भगवद्गीता लेखमाला भाग १-२ और ७ ३.७५ १.३५

३ भगवद्गीता श्लोकार्धसूची .७५ .१९

४ गीताका राजकीय तत्त्वलोचन १) .३७

५ श्रीमद्भगवद्गीता (केवल श्लोक और अर्थ) .५०) .१९

६ श्रीमद्भगवद्गीता (प्रथम भाग) लेखक श्री गणेशानंदजी १) .२५

गो-ज्ञान-कोश

गो-ज्ञान-कोश (प्रथम भाग)	६)	१.५०
गो-ज्ञान-कोश (द्वितीय भाग)	६)	१.५०

गौके विषयमें वेदमंत्रोंमें जो उत्तम उपदेश है वहसब इन दो विभागोंमें संग्रहित किया है। जो गौके विषयमें वेदका अमूल्य उपदेश जानना चाहते हैं वे इन भागोंको अवश्य पढें।

२५ दिसम्बरको भारतभरमें जिनकी जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है—

महान् शिक्षाशास्त्री

पं. मदनमोहन मालवीय

लेखक— श्री श्रुतिशील शर्मा, तर्कशिरोमणि



पं. मदनमोहन मालवीय

✶

महामनाका जीवन शिक्षाशास्त्री, समाज-सुधारक राजनीतिज्ञका समन्वयात्मक जीवन था। यही कारण है, कि जिस क्षेत्रमें भी वे उतरे उस पर वे करीब करीब छाते गए। उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। एक बार जो उनके सम्पर्कमें आया, वह उनका ही होकर रह गया।

ऐसे हमारे चरित्र-नायकका जन्म २५ दिसम्बर सन् १९६१ को इलाहाबादमें हुआ था। इसी नगरको पं. मोतीलालनेहरु, पं. जवाहरलालनेहरु, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि राजनीतिज्ञ तथा महाकवि 'निराला' आदि साहित्यकोंको जन्म देनेका श्रेयप्राप्त है। हमारे चरित्र नायक के जन्मसे इस नगरीके इतिहासमें एक और अध्याय खुल गया। मेरे विचारमें महामनाका जीवन इसी नगरीमें जन्म लेनेवाले अन्य महापुरुषोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट है। क्योंकि महामनाका जीवन अन्योंकी तरह एकांगी न होकर सर्वांगीण था। इनका जन्म एक पुराने कर्मठ आचार विचारवाले ब्राह्मणके घरमें हुआ। इन्होंने इलाहाबादमें ही बी. ए. तक अपनी शिक्षा समाप्तकी और वहां गवर्नमेण्ट हाईस्कूलमें अध्यापक होगए। पर बादमें ये भी महापुरुषोंके कदमों पर चले, और 'हिन्दुस्तान' पत्रका सम्पादन शुरू किया। इसीके साथ-साथ इण्डियन यूनियन, अभ्युदय (हिन्दी), लीडर, हिन्दुस्तान टाइम्स आदि पत्रोंके सम्पादनका काम किया।

राजनीतिमें प्रवेश

इनके जीवनमें मि. ह्यूम इनके बड़े सहायक हुए और उन्हींकी प्रेरणासे इन्होंने वकालतकी परीक्षा पासकी। सन् १८८६ के कलकता कांग्रेसमें इनका सबसे पहला राजनैतिक भाषण हुआ। बादमें मि. ह्यूमकी प्रेरणासे कांग्रेस प्रचारके लिए इन्होंने सरहदी प्रान्तोंका भी दौरा किया। इसके बाद तो ये हमारे सामने एक कर्मठ राजनैतिक नेताके रूपमें ही आते हैं। कांग्रेसके इलाहाबादके अधिवेशनमें (१८८७) मंत्री, लाहौर (१९०९) दिल्ली (१९१८, ३२) कलकत्ता (१९३३) अधिवेशनोंमें अध्यक्ष पदको इन्होंने अलंकृत किया।

१९०२ में प्रान्तीय असेम्बलीके तथा १९१० में केन्द्रीय पार्लियामेण्टके ये सदस्य बने। उन्हीं दिनों जनरल डायरके नेतृत्वमें जलियांवाला बागके निर्ममकाण्डकी घटनाने सब भारतमें ब्रिटिश शासनके विरुद्ध भयंकर आग भड़का दी

थी। महामना स्वयं घटनास्थल पर गए और सब तथ्योंको इकट्ठा कर पार्लियामेण्टमें एक भाषण दिया। उनके 'पंजाब में उपद्रव' (Punjab Disturbances) नामक भाषणने भारतीयोंमें खलबली मचा दी। सन् १९१९ में रोलट एक्टके विरोधमें इन्होंने पार्लियामेण्टकी सदस्यतासे त्याग पत्र दे दिया। १९२४ में फिर ये सदस्य चुन लिए गए, पर १९३० में इन्होंने फिर इंपिरीयल प्रेफरेन्स नीति (Imperial Preference Policy) के विरोधमें फिर त्याग पत्र दे दिया।

ये कांग्रेसके स्तम्भ थे, पर इन्होंने कभी भी अपनी अन्तः प्रेरणाकी कभी भी अवहेलना नहीं की। एक बार जाति निर्णय विषयको लेकर कांग्रेसके अन्य सदस्योंसे इनका मत भेद हो गया, अतः इन्होंने कांग्रेसके अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र देकर सन् १९३४ में 'नेशनलिस्ट' पार्टीकी नींव डाली। हिन्दुमहासभाके संस्थापकोंमेंसे एक ये भी थे, और वे इस संस्थाके प्रयाग और पूनामें होनेवाले अधिवेशनोंके अध्यक्ष भी रहे।

समाज सुधार

माथे पर चन्दनका लम्बा चौडा तिलक, सफेद पोशाक, धर्ममें तत्परता, महामनाका यह व्यक्तित्व किसी पर भी प्रभाव डालनेमें पर्याप्त था। संध्या, गीता भागवतादिका पाठ महामनाका नित्यका क्रम था। उनमें पापभीरुता थी। स्वयं एक कट्टर ब्राह्मण परिवारमें जन्म लेते हुए भी उन्होंने अन्य वर्णोंकी तरफ कभी भी संकुचित मनोवृत्ति नहीं अपनाई। उन्होंने अस्पृश्यता निवारणको भी अपना कार्य बनाया। अस्पृश्यता निवारण आचार परिवर्तन, आदि समाज सुधारके कार्योंके स्मृति शास्त्रोंमें आधार परिवर्तन, आदि समाज सुधारके कार्योंके स्मृति शास्त्रोंमें आधार ढूंढने के लिए इन्होंने पण्डितोंकी सभा भी बुलाई। पर जब पण्डित मण्डली इनके इस कार्यसे सहमत नहीं हुई, तो ये स्वयं इस कार्यमें प्रवृत्त हुए, और अस्पृश्योंको 'ओम् नमः शिवाय' का मंत्र देकर उन्हें शुद्ध कर देते थे। उन दिनों ब्राह्मण समाजमें एक और कट्टरता थी कि जो भी ब्राह्मण समुद्र पार जाता था, उसे जाति बहिष्कृत कर दिया जाता था। पर महामनाने इस नियमको भी तोडा, और गोलमेज कान्फ्रेंसमें भाग लेनेके लिए महात्माजीके साथ इंग्लैण्ड गए।

महामना दूरदर्शी थे। उनकी दृष्टि भूतकालके साथ-साथ भविष्यकाल पर भी थी। इन दोनोंको ध्यानमें रखकर शिक्षा क्षेत्रमें भी एक महान् कार्य किया, वह था—

हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना

इस संस्थाकी स्थापना करके महामनाने शिक्षाक्षेत्रमें एक बडा भारी आन्दोलन खडा किया। महामनाका यह कार्य मेकालेकी शिक्षापद्धति पर एक करारी चपत साबित हुआ। इसमें मालवीयजीने पुराने और नये दोनों विचारोंका सम्मिश्रण किया। प्राचीन हिन्दुशास्त्रोंके साथ-साथ आधुनिक उद्योग धन्धोंके शिक्षणकी व्यवस्था भी इसमें की गई। हिन्दुओंको अपनी जाति, अपने धर्मका अभिमान रहे, इस लिए इसका नाम हिन्दु विश्वविद्यालय रखा, पर धर्म निरपेक्षताका ढिंढोरा पीटनेवाले ये नेता उसमेंसे हिन्दु शब्दको हटाकर महामनाकी आत्माको खत्म करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए मालवीयजीने अपने जीवनका उत्सर्ग कर दिया। इसके लिए चन्देके द्वारा उन्होंने धन इकट्ठा किया। महामनाका व्यक्तित्व स्वयंमें प्रभावशाली, दूसरी वाक्पटुता। दोनोंने ही धन एकत्रित करनेमें पर्याप्त सहायता दी। जिस सेठके यहां भी ये जा पहुंचते, वहांसे कुछ न कुछ लेकर लौटते। इस प्रकार ४–५ वर्षोंमें ही उन्होंने एक करोड रुपया एकत्रित कर लिया था। आज उनकी संस्था फल फूल रही है। डॉ. राधाकृष्णन्, वर्तमान बम्बईराज्यके राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशके योग्य पिता डॉ. भगवान्दास आदि गणमान्य विद्वान् इस संस्थाके उप कुलपति पदपर कार्य कर चुके हैं।

हम महामनाकी शती जयन्ती पर यही शुभ कामना प्रकट करते हैं, कि उनकी संस्था फलती फूलती रहे, और भारतको उन्नत करनेमें सर्वात्मना सहयोग प्रदान करे।

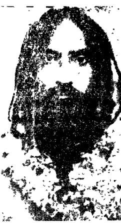
योगिराज श्री देवरहवा बाबा—

जीवन चरित्र

लेखक

श्री रामायण उपाध्याय एम्. ए.

★



योगिराज श्री देवरहवा बाबा

दुःखोंमें अनुद्विग्न, सुखोंमें विगतस्पृह, वीतराग, द्वन्द्वातीत, निर्मम, निरंहकार, अशेष कामनाओंसे शून्य, पूर्णकाम, ब्रह्मानन्दमें मग्न और सच्चिदानन्द स्वरूप बाबाके जीवन चारित्रका वर्णन अनिर्वाच्यका वाचन करनेका एक असंभव प्रयास ही है। इसको गीताकी भाषामें अगर कुछ कहना हो तो कुछ इस तरहसे कहा जा सकता है—

न जायते म्रियते वा कदाचित्, नायं भूत्वा
भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं
पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

अज, नित्य और शाश्वतके जीवनका इतिवृत्त कहना असंभव ही नहीं, उपहासास्पद भी है। 'बाबा' के संबंधमें जब कोई विचार करने बैठता है और उनके व्यक्तित्व पर चिन्तन करना चाहता है तो उसकी अन्तरात्मा यही कहती है और यही स्फुटतया उद्घोषित भी करती है।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम्, आश्चर्यवद्
वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवत चैनमन्यः
शृणोति, श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

कोई उनकी ओर विस्मय विस्फारित नेत्रोंसे आश्चर्यचकित होकर निहारता है, कोई उनको आश्चर्यके रूपमें कहता है, कोई आश्चर्यपूर्वक श्रवण करता है और उनका ज्ञान किसीको नहीं हो पाता। बाबाके वचनोंमें वेद, चलनेमें तीर्थ और निहारनेमें कैवल्यका दर्शन होता है। पूर्ण विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि—

अनिर्वाच्य-पदं वक्तुं न शक्यते सुरैरपि।
स्वात्म-प्रकाश-रूपं तत् किं शास्त्रे प्रकाश्यते ॥

भगवान् बराबर लोकमंगलका सुन्दरतम आदर्श उपस्थित करते हैं और एतदर्थं स्वयं निदर्शन भी प्रस्तुत करते रहते हैं। देखो, समझो और चलो और फिर मुक्त हो जावो। क्रान्तदर्शी और अतिक्रान्ता देवता नहीं होते, पितर भी नहीं होते और दानव भी नहीं। केवल मनुष्य ही ऐसा हो सकता है। भगवान् मनुष्यके रूपमें आते हैं, उसके सामर्थ्यंका उद्घाटन करके उसे चेत कराते हैं। उठो तुम सामर्थ्यशाली हो, तुम धर्म अर्थ और कामसे ऊपर उठो। अवसर आया है, मोक्ष प्राप्त करके मुक्त हो जावो।

विवेकशील! विवेकको जाग्रत करो। अखिल सृष्टिकर्ता, करण, कर्म, संप्रदान, अपादान, संबंध और अधिकरण, भोक्ता, भोग्य शुभ-अशुभ तथा शुक्ल-कृष्ण सब प्रकृतिके व्यापार हैं। तुम साक्षी हो, तटस्थ हो, द्रष्टा हो याद करो। तुम, अव्यक्त नहीं, त्रिगुण नहीं, मन, बुद्धि और अहंकार नहीं। तुम आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी नहीं, तुम शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, नहीं, तुम स्त्री-पुरुष नहीं। तुम सृष्टि हो, न तो स्रष्टा। परत्वमें ममत्व कैसा? अहंकार-प्रकृतिमें अहं बुद्धिमें ही शरीर हूं, इस तरहके

विचित्र भ्रमोंका त्याग करो और बढो आगे, जाग्रतसे स्वप्न, स्वप्नसे सुषुप्ति और सुषुप्तिसे तुरीया और तुरीयासे तुरीयातीतकी ओर। अनन्त ज्ञानानन्दमय सत्ता हो तुम, अपना रूप पहचानो। आत्म साक्षात्कार करो। तुम प्रकृतिमें अनुस्यूत ' प्रकृति ' नहीं, तुम जरा, मृत्यु और जन्मके शिकार नहीं। पहचानो, देखो, तुम मानवजीवनको खोवो मत। यह अवसर आ गया है और अपनेको पहचान लो। करुणा सिन्धु भगवान्-गुरु और बाबाके रूपमें बार-बार अवतरित होनेवाले अपने आचरणके निदर्शनके स्वरमें कृष्णका उद्बोधन सर्वत्र अंतःगोचर होता है।

प्रमाण (यथार्थ ज्ञान) विपर्यय (विपरीत समझ) विकल्प (वितर्क विकल्पनाएं) निद्रा और स्मृति, इन पंच वृत्तियोंसे समन्वित ' चित्त ' प्रकृतिका प्राथमिक परिणाम है, जिसमें स्वतंत्र, चेतन, साक्षीमात्र, निर्गुण और निर्विकल्प पुरुष मैं ही हूं इस प्रकारकी ' अहं ' भावनासे तदाकार होकर और उसके प्रत्येक परिणामोंका कर्ता और भोक्ता अपनेको समझ कर, प्रकृतिकी नाट्यशालाका आत्मविस्मृत पात्र सा प्रतीत होने लगता है। वह अपनेको अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पंच क्लेशोंका आश्रय और आधार मानने लगता है। इस महाभ्रान्तिके अखिल प्रपंचोंके मूल बंधनसे मुक्त करनेके लिए, करुणाके अनुकूल अगाध अर्णव बाबा विवेक द्वारा चित्तवृत्तियोंके निरोधका अमोघ उपदेश देते हैं। उनको किसी साधनाकी आवश्यकता नहीं, किन्तु साधना करते हैं और अपने आचरणोंसे आर्त्तप्राणियोंको मुक्तिकी ओर उन्मीत करते हैं। बाबाके पुण्याश्रमकी दिव्य वायुमें मनकी क्षिप्त, मूढ और विक्षिप्त अवस्थाओंका अंत और एकाग्र तथा निरुद्ध अवस्थाओंका उदय होने लगता है। वहां मन संप्रज्ञात समाधिकी सवितर्क, सविचार, सानन्द और सास्मिता सोपानोंको सहसा पार करके ' असंप्रज्ञात ' के शिखर पर पहुंच जाता है। इडा, पिंगलाके मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, सुषुम्नाका पथ उन्मुक्त हो जाता है। प्रसुप्त और अधोमुखी, शिवास्वरूपा कुण्डलिनी उद्बुद्ध और ऊर्ध्वमुखी होकर षट् चक्रभेदन करती सहस्रार तक जा पहुंचती है। शिव-शिवा का मिलन हो जाता है और ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानकी त्रिपुटी समाप्त हो जाती है।

जिस आश्रमके परिवेशका यह प्रभाव है, उसमें प्रकाशमान सच्चिदानन्द ' बाबा ' मनुष्योंके शिक्षण और उन्नयनके लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिकी साधनामें अहोरात्रि आमग्न रहते हैं। दशमद्वार-बंकनाल-से निःसृत अमृत स्रोतका सतत पान करते हुए दूसरोंको भी इस ' खेचरी ' की ओर सतत आकर्षित करते हैं। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व और ईशित्वकी अष्टसिद्धियोंसे ऊपर, अपने नित्य, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, और पूर्ण स्वरूपमें निरंतर विराजमान बाबा, संसारके सांसारिकोंसे बातें भी करते हैं। यह ' आत्माराम ' की विदेह मुक्तिका निदर्शन है।

महाप्रभुने विश्वकल्याणके निमित्त महान् भारतवर्षके महान् उत्तरांचलमें बस्ती जिलेकी ' हरैया ' तहसीलमें एक सरजूपारीण भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण परिवारमें शताधिक वर्षों पूर्व, शरीर ग्रहण किया। इस तरहका परिचय उस ब्राह्मी स्थिति सम्प्राप्त महात्माके लिए अत्यंत हलका पड जाता है, जिसके समक्ष सपूर्ण सृष्टि उसकी ' अपरा प्रकृति ' का परिणाम है और जिसकी ' परा ' के सामने-एकमेवाद्वितीय वही है- तथापि आपने शरीर ग्रहण किया और केवल इसलिए ही किया कि वह आर्त्तमानवोंके सामने उनके कल्याणके लिए आचरणीय निदर्शन उपस्थित करें।

बाल्यकालसे ही जीवन, जगत् और परमात्माके संबंधमें उदग्र जिज्ञासाने महात्माके अंतरमें उन्मंथन आरंभ किया। परिवार, घर और संसारके आकर्षणने सहज मुक्तात्माको स्वर्ण रज्जुओंमें बांधना चाहा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। अध्यात्ममूला देवभारती संस्कृत विद्याका अध्ययन करनेके लिए बाबाने सहसा गृह त्याग कर दिया और सनातन धर्मानुकूल पद्धतिसे वेद-वेदांग और दर्शनशास्त्रोंका गंभीरतम अध्ययन किया। ' अल्पकाल विद्या सब पायी ' के अनुसार बाबाने अपनी पराविद्याकी जानकारी अविलंब प्राप्त कर ली। अध्ययनको सिद्धांतके बाद व्यवहारमें उतारनेके लिए बाबा अग्रसर हुए। बाबाका प्रारंभिक विद्यापीठ हरद्वार रहा। वहांके तपःपूत वातावरणने इनको ऊर्ध्वोन्मुखी बनाया।

हरद्वारके पश्चात् आपने काशीमें पदार्पण किया और

यहीं विशिष्टाद्वैत तत्ववादके महान् आचार्य और प्रपत्ति-वादी संप्रदायके प्रवर्तक रामानुजाचार्यकी शिष्य परंपराके महान् आचार्य श्री १००८ कृष्णाचार्यसे दीक्षा ली। इस अखिल शास्त्रवेत्ता योगोन्मुखी तपस्वीमें, प्रपत्ति भक्तिधाराका संगम होते ही एक अपूर्व भास्वरता आ गई और ये अलौकिक प्रपन्नाचार्य सच्चिदानन्दके रूपमें आलोक विकीर्ण करने लगे।

चैन नहीं मिली। महात्मा आगे बढ़े और लक्ष्मण झूला, ऋषीकेश, बदरिकाश्रम, गंगोत्री-यमुनोत्री, लद्दाख, एवं इसके पार्श्ववर्ती क्षेत्र, तिब्बत, कैलास-मानसरोवर, उत्तराखंड, मुक्तिनाथ (भूटान), नेपाल और अमरकण्टककी पर्वतश्रेणियोंमें विचरते रहे। इस भ्रमणकालमें आपको अति पुरातन योगियोंसे, महाभारतकालीन योगियोंसे भी सत्संग करनेके अवसर प्राप्त हुए। रीवाँराज्यमें सहडोलके पार्श्ववर्ती वनप्रदेशमें भी आपने बहुत दिनोंतक निवास किया था। इनसे तत्कालीन रीवाँनरेश स्वर्गीय श्री विश्वनाथ सिंहजीका भी सम्पर्क था। उनके पुत्र रघुराज सिंहने इनसे ज्ञान लाभ किया था और बेंकटरमन इनके परम भक्त थे। विन्ध्यप्रदेश इनकी प्रिय तपोभूमि रही है। आत्मानुकूल स्थानमें बाबाने महान् तपस्या आरंभ की। वर्षोंतक तपनेके बाद सच्चिदानन्दने सच्चिदानन्दत्वको प्राप्त कर लिया। ऐसा कुछ नहीं रह गया जिसे अब पाना हो। दिक्कालके रहस्य खुल गये। प्रकृतिकी आविलतासे मुक्त अनाविल आत्मा पूर्णकाम हो उठी। किन्तु उसने देखा विश्व पीड़ित है आर्त्त है और विपन्न है। आत्मोद्धार, स्वार्थ और व्यष्टिकी सीमासे अतिक्रान्त समष्टि रूपात्मक होता है। आत्मोद्धारके अधिकारी प्राणीमात्र हैं। सबका उद्धार अनिवार्य है। महात्मा करुणाविह्वल हो उठे। चल पड़े आर्त्त विश्वके बीच, ज्ञानकी आत्मा बिखेरने, आनन्दकी राशि लुटाने और अमरत्वकी घूंटियां पिलाने।

पर्यटन करने लगे। सिद्धने देश-विदेश सबका भ्रमण किया। प्रकृतिके विराट् विस्तारको, असुन्दर और सुन्दर, अमांगलिक और मांगलिक, ध्वंसात्मक और निर्माणात्मक सभी रूपोंको परिलक्षित किया। बाबाने भ्रमणमें जागतिक वाहनोंका सहारा कभी नहीं लिया। आवश्यकता भी क्या थी ? भारतमें चारों धाम करनेके बाद, लखनऊके पश्चिम गोमती तटपर भी वर्षोंतक ज्ञान बिखेरते रहे। सुल्तानपुर भी बाबा आये थे। अयोध्यासे भ्रमण करते हुए आजसे प्रायः ४० वर्ष पूर्व बाबा प्राची दिशाकी ओर जा रहे थे कि मार्गमें जब वह सरयूको पार कर रहे थे, कि ' महुक ' ग्राममें जनताने उन्हें रोक दिया। दिव्य विग्रहसे आलोक और अमृतकी वर्षा हो रही थी, लोग उनका अनवरत पान करना चाहते थे। करुणा-सिन्धु आर्द्र हो उठे और श्रद्धालु भक्तोंके अनुरोधको टाल नहीं सके।

योगिराज हठयोग, मंत्रयोग, लययोग और राजयोग, प्रभृति सभी प्रकारके योगोंमें पारंगत और निष्णात हैं और कुछ इससे भी अधिक हैं जो कथमपि वचनीय नहीं है, पीयूष वाहिनी सरयूके पावन तटपर भूमि खोद कर ' भूगुफा ' (मुइघरा) में रहने लगे। आज वह स्थान गुफाके नामसे विख्यात है। वहां हनुमान्जीका एक मंदिर है, उसके पूरब राधेश्यामजीकी मनोहर मूर्ति है, ।

सत्य अघोषित और आवृत नहीं रह सकता, वह घोषित और अनावृत होता है। वह आलोक स्रोत होता है। बाबाका प्रचार होने लगा और प्रचारकी सीमा इतनी बढ़ गयी कि अब देश-विदेशमें सर्वत्र उनके शिष्योंकी बहुलता हो गयी, होती जा रही है। शिष्योंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अमरीकी, अंग्रेज, चीनी आदि सभी धनी तथा गरीब एवं जज, वकील, राष्ट्रनायक, राजपुरुषसे लेकर चपरासी हर एक वर्गके लोग हैं, जो बाबाके अमोघ दर्शनों, पुण्योपदेशों एवं शान्तिप्रद सन्निधिसे कृतार्थ होते हैं।

पहले बाबा जब, उनका व्यापक प्रचार हो गया, तो करुणार्द्र होकर प्रतिदिन अपराह्नमें ४ बजेसे ६ बजे तक अपने श्रद्धालु भक्तोंको अपना अमोघ दर्शन प्रदान करते थे और उन्हें कृत कृत्य बनाते थे।

एक घटना याद आ रही है, यह उन्हीं दिनोंकी बात है, परमहंस बाबा राघवदासने सोहनागमें रुद्रयज्ञका अनुष्ठान किया। बाबा भी उनके आग्रह पर यज्ञको पूर्णत्व प्रदान करनेके लिए वहां पधारे थे। उनको देखते ही अपार जनसमूह उनके चरण स्पर्शके लिए उमड़ पड़ा। बाबा कुएंमें कूद पड़े और दिन भर उसमें रहनेके बाद सायंकाल ' देवार ' में चले गये। (नदीकी छोड़ी हुई भूमिको भोजपुरी भाषामें ' देवार ' कहते हैं) वह सरयू

तटका देवार क्षेत्र कहलाता है। अब अहोबिल प्रपन्नाचार्य श्री १००८ सच्चिदानन्दजी महाराज देवरहवा बाबाके नामसे प्रख्यात हो गये।

बाबाके आश्रम पर देशी-विदेशी, शिक्षित-अशिक्षित, बडे-छोटे और धनी-गरीब हर तरहके श्रद्धालु भक्तोंकी निरंतर जमघट लगी रहती है। बाबा प्राकृतिक शरीर और प्राकृतिक धर्मसे आच्छन्न नहीं है, प्रत्युत उनका संपूर्ण बाह्य अंतर चिन्मय हो गया है और वह चिन्मय एवं दिव्य विग्रह भी करुणाका दिव्य निर्झर है। वहां जानेपर प्रकृति तिरोहित होने लगती है। विवेक जाग्रत होने लगता है। 'मैं' और 'मेरा' का भवजाल छुकने लगता है। अनिवर्चनीय आकर्षण, अनिवर्चनीय जादू-स्यात् वह आत्माका आकर्षण आत्माका जादू होता है।

योगेश्वर अपनेको गोपनीय रखना चाहते हैं। किन्तु आलोक पुंज सूर्यको मेघ चाहकर भी आवृत नहीं कर सकते तो आलोक स्रोत कैसे छिपा रह सकता है!

बादमें देवार निवासके कुछ दिनों बाद लारमें हिन्दू मुस्लिम दंगा हो गया, जिसमें २०-२५ व्यक्तियोंको आजीवन कारावासका दंड मिला। दंडित व्यक्ति बाबाके पास पहुंचे और आत्म समर्पण कर दिया। बाबाने कहा– निर्दोषोंको दंड नहीं मिलेगा, एक व्यक्ति दंडित होगा और सचमुच यही हुआ। इस घटनासे बाबाकी ओर लोग उन्मुख हुए और उनकी ख्याति अत्यधिक बढ गयी।

भक्तोंने बाबाके लिए 'मचान' का निर्माण किया। आप सरयूके अति निकट बबूलवनमें निवास करते हैं। बाढ आते ही चारों ओर जल प्लावनका दृश्य उपस्थित हो जाता है, किन्तु बाबा उस जलराशिके बीचमें ही रहते हैं। बाबाकी मचान अनेक बार जलमें उनको लिए बह गयी है। एक बार ३०-४० मील बहकर बाबाकी मचान 'सिसवन गयासपुर' तक चली गयी थी और दूसरी बार १०० मीलसे अधिक पटना तक चली गयी थी। बाबा विगत द्वन्द्व बहते रहे, बहते गये। बाढके दिनोंमें महीनों तक लोग जलप्लावनके कारण बाबाके मचान तक जा ही नहीं पाते, फिर भी महात्मा सानन्द निवास करते हैं। जनतामें कुछ ऐसी घटनाओंकी चर्चा बद्धमूल होती जा रही है, जो सच्ची और आजके बुद्धिवादी युगको चुनौती भी देती है।

एक बारकी घटना एक खूनी भैंसेसे संबंधित है। भैंसा बडा उग्र और हिंस्र था। उसने अनेक खून कर दिये थे। उन दिनों गोरखपुर जिला था। जिलाधीशकी आज्ञा हुई कि भैंसेको गोली मार दी जाय। लारके थानेदार सदल बल भैंसेके पीछे पडे। वह भागने लगा और भागते भागते बाबाके मचानके नीचे पहुंच गया। मानों उनका शरणागत हो गया। बाबा प्राणिमात्र पर सहज करुणार्द्र हो जानेवाले हैं, उन्होंने कहा– जिलाधीशको कह दो भैंसेको न मारे। वह अब अहिंसक हो गया है। सचमुच वह भैंसा अत्यंत सीधा और महाराजका भक्त हो गया। रोज घूम घाम कर स्वतः मचानके समीप आ जाता और शान्ति पूर्वक रहता था।

इसी तरह एक बार बाढके दिनोंमें मल्लाहोंने घडियाल पकड लिया और उसे मारने लगे। बाबाने मल्लाहोंको रोक दिया। घडियाल इतना बडा अहिंसक हो गया कि उसने अपना सहज खाद्य मछली तकका परित्याग कर दिया। उसे दूध पिलाया जाता था और वह दूध पी कर रहता था।

इसी प्रकारकी एक विस्मय जनक घटना और है। बाबा हरषचन्द्रजी सेठ बरहजके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। एक बार वे बाबाके आश्रम पर दर्शनार्थ पहुंचे। जब वे वहां बैठे थे पीछेसे भयंकर विषधर आया और उनके पृष्ठमार्गसे चढकर उनके शिरको अपने फणसे आच्छन्न कर लिया। इस दृश्यको देखकर सबमें घबराहटकी लहर दौड गयी। बाबाने कहा–भक्तो, शान्त हो जावो, यहां घबडानेकी कोई बात नहीं। कुछ बिगाडनेवाला नहीं है। वह कह रहा है कि हर्षचन्द्रजी ६ महीने बाद शरीरका त्याग कर देंगे और ६ महीनेके बाद हर्षचन्द्रका देहावसान हो गया। अभी हालकी एक घटना है जो बाबाकी अहिंसा और प्रेम भावनाकी सिद्धिको अन्यतम रूपसे उद्घाटित करती है। बाबाजी चित्रकूटमें किसी धार्मिक समारोहमें सम्मिलित होनेके लिए आ रहे थे। साथमें भक्तोंकी भीड भी थी। मार्गमें एक निविड जंगल मिला, जिसके भीतर जाने पर एक भयानक व्याघ्र सामने आ गया। साथके लोग जिनमें प्रमुख श्री गदाधर प्रसाद भार्गव एडवोकेट, उच्च न्यायालय प्रयाग भी थे– डरके मारे थर-थर कांपने लगे, किन्तु बाबाने शांत हो, व्याघ्रको अपना पावन उपदेश दिया। व्याघ्र अहिंसक पशुकी तरह खडा सुनता रहा और नमन सा करता हुआ दो

पंडेमें एक ओर चला गया। लौटनेके समय भी वह मार्गमें मिला और उपदेशामृत पान करके गया। इस तरहकी चमत्कार पूर्ण घटनाएं बाबाकी अलौकिक और अतर्क्य आत्मिक क्षमताको ही प्रदर्शित करती हैं।

बाबा जनता जनार्दनकी सेवाको भी पर्याप्त महत्व देते हैं। उनमें न किसीसे द्वेष है और न प्रेम। किन्तु अहिंसा सिद्धिके कारण उनके हृदयमें प्रेमका अगाध सिन्धु निरंतर तरंगित रहता है। आध्यात्मिक, आधि दैविक और आधि-भौतिक किसी तरहके तापसे कोई ग्रस्त क्यों न हो, बाबाके पास आते ही वह रोगमुक्त हो जाता है।

इधर यह ज्ञात करके कि सरकार बंदरोंका विदेशोंमें निर्यात करती है, जहां उनको मार डाला जाता है, बाबाने इनका विरोध ही नहीं किया, प्रत्युत बन्दरोंको पूडी, मिठाई और मालपूवा खिलाना आरंभ किया और इस प्रकार उनका यही संकेत होता है कि जिन बंदरोंने भारतीय संस्कृतिके उद्धारमें महान् योगदान दिया है और आर्य संस्कृति पर हावी होनेवाले रक्ष-संस्कृतिको ध्वस्त करनेमें रामकी बडी सहायता की है उनके उपकारका बदला उनका विदेशोंमें निर्यात करके नहीं चुकाना चाहिए। अपितु उन्हें भोजन दान आदिसे संतुष्ट करके अपनी कृतज्ञता दिखानी चाहिए। इसके अतिरिक्त बाबाने भारतीय संस्कृतिके उद्धारके लिए भारतकी प्राचीन उपाधियोंको योग्य व्यक्तियोंको अर्पित करके, जनताकी बुद्धि एवं मानसको अपनी आध्यात्मिक संस्कृतिके प्रति सचेत रहनेका व्यावहारिक शिक्षण भी देना आरंभ किया। आज कल सरकार द्वारा भी पुरानी अंग्रेजी सरकारकी रायबहादुर, खानबहादुर, आदि उपाधियोंकी भांति पद्मभूषण, पद्मविभूषण, और पद्मश्री आदि उपाधियां दी जाती हैं, किन्तु ये उपाधियां ऋषि-कल्प विद्वान्को भी दी जाती हैं और नर्तकियोंको भी। इस अंधकृत्यके उत्तरमें प्राचीन उपाधियोंका पुनर्वितरण जारी करना सांस्कृतिक उन्नयनकी ही एक चेष्टा है।

श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजीको आपने ' राजर्षि 'की उपाधि तो दी ही थी; अब २३-२४ अक्टूबरको हुए महामना शती जयंतीके प्रथम अखिल भारतीय समारोहके अवसर पर सुप्रसिद्ध वेदवेत्ता और तत्वदर्शी श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीको ' ब्रह्मर्षि ' की उपाधिसे आभूषित किया है।

बाबाका ज्ञान असीम है। उनकी विद्वत्ता अतुलनीय है और तपस्या तो आदर्श ही है। उनकी अवस्थाके संबंधमें नाना प्रकारकी अटकलें लगायी जाती हैं, किन्तु वे डेढ-पौने दो सौ वर्षकी अवस्थासे कमके तो किसी तरह भी नहीं। आश्रमके आस-पासके गांवोंमें-के वृद्ध लोग कहते हैं कि लगभग ४० वर्षसे बाबा यहां पर हैं, लेकिन जिस रूपमें यहां पधारे थे वे अब भी वैसे ही हैं। कुछ भी परिवर्तन नहीं। देखने पर बाबा चालिस-पैंतालिसके जान पडते हैं।

बाबा कैवल्य प्राप्त योगी हैं और उन्हें आत्म साक्षात्कार हो गया है, उनके प्रत्येक कार्य और उनकी प्रत्येक गतिविधि सामान्य बुद्धिमें आनेवाली बात कदापि नहीं है। योगने उन्हें सच्चिदानन्दकी ब्राह्मी स्थितिमें पहुंचा दिया है, किन्तु श्री रामानुजाचार्यके प्रपत्तिवादी श्री वैष्णव संप्रदायकी परंपरासे परिपुष्ट भक्तिने उनके हृदयको करुणाका अजस्र स्रोत बना दिया है जिससे जनता जनार्दनको वे निरंतर नहलाते रहते हैं।

वेद ज्ञानके समुद्धर्त्ता—

श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

लेखक

श्री रामायण उपाध्याय एम्. ए.



श्री. दा. सातवलेकर

शान्ता महान्ता निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोक-हितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनाः
न हेतु नान्यानपि तारयन्तः ॥

सम्पूर्ण भारत दासताके रौरवमें आचूड मग्न था। उसकी ज्ञान, सम्वेदना और क्रिया शक्ति पक्षाघात-ग्रस्त हो रही थी। आत्म विस्मृतिकी सान्द्र-सघन तमिस्रामें संस्कृति मुमूर्ष जान पडती थी। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवनमें उसका स्वत्व संकटापन्न था। प्राचीन और अर्वाचीन, पौरस्त्य और पाश्चात्य आध्यात्म और भूत तथा श्रद्धा और तर्कके बीच घोर असन्तुलन और विद्रूप संग्रामकी परिस्थिति प्रत्यक्ष हो रही थी। अंग्रेजोंके स्वामित्वके निर्मम प्रहारके समक्ष अपने सु-समृद्ध वैदिक जीवन-दर्शन एवं जीवन पद्धतियोंसे अधिकांशतः अपरिचित भारतीय हीनताका अनुभव करते हुए सहज ही पराजित हो रहे थे। बडी विपत्ति और भयंकर बाधा थी,। यह अधर्मके अभ्युत्थान और धर्मके ग्लानिकी शोचनीय परिस्थिति थी। भारतीय जीवनको अक्षुण्ण रखने तथा उसे पुनर्जीवन प्रदान करनेके लिए दैनिक जीवन और संस्कृतिके पुनरुद्धारकी तीव्र और अपरिहार्य आवश्यकता थी। शायद गौ, ब्राह्मण और वसुन्धराने भगवान्के पास जाकर गुहार लगाई और तब सम्भवतः भगवान्की कृपासे श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीने जन्म लिया।

मंत्र-द्रष्टा सातवलेकरजीका व्यक्तित्व बाह्याभ्यन्तर सुरम्य और भास्वर है। ऋषिके दिव्य विग्रहमें अनिर्वचनीय ज्ञान सुतरल संवेदना और विराट् क्रिया-शक्तिका अपूर्व और दिव्य संगम दिखाई पडता है। यह पुनीत, अनाविल और परितः आलोक मण्डित व्यक्तित्व वस्तुतः जंगम तीर्थराज है। एक ओर वैदिक-तत्वज्ञान-ग्राहिणी अपूर्व मेधा और दूसरी ओर व्यवहारमें शिशुकी स्पृहनीय सरलता, एक ओर संस्कृत, मराठी, हिन्दी और अंग्रेजी आदि भाषाओंमें प्रकाण्ड पाण्डित्य और दूसरी ओर रंजनकला एवं चित्रकला आदिमें कमनीय अभिरुचि इस प्रकार श्री सातवलेकरजी कवि मनीषी परिभू स्वयंभूको अपनेमें चरितार्थ कर रहे हैं।

इनके व्यापक और महिमामय चैतन्यमें भारतीय पराभवका प्रत्यक्षी करण था,। इनके तीव्र संवेदनामें भारतीय यातनाकी आह और कराह थी। फलतः इनकी क्रिया-शक्ति भी दासत्व शृंखलाको तोड देनेकी ओर ही उन्मुख थी।

ये अंग्रेजी शासनके कोप भाजन बने और वैदिक-सूक्तोंके उद्गानके ही अपराधमें काराजीवनका अनुभव भी प्राप्त किया। वेदोद्धारके माध्यमसे मानवताकी सेवामें इन्होंने अपना समस्त जीवन खपा दिया। लोक मंगलके लिए इस शिवने जीवन पर्यन्त दु:खों एवं बाधाओंका कालकूट पिया। दुर्दम विपत्तियाँ आईं किन्तु इस सहज निर्भीकने निरायास उनकी उपेक्षा कर दी। ब्रह्म-बलके समक्ष इतर बल व्यर्थ होते गए। यह महिमाशाली व्यक्तित्व ज्योतिसे अन्धकारको, ज्ञानसे अज्ञानको और अमृतसे मृत्युको जीतता गया। और आज इसकी दुर्लभ और अमर कृतियोंके रूपमें वेदोंके भाष्य एवं उनसे सम्बन्धित शताधिक ग्रंथ इस महा विजयके साक्षी हैं।

रत्नागिरी जिलेके सावन्तवाडीके उपासन्न एक छोटेसे ग्राम कोल-गांवमें महर्षि सातवलेकर अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने सावन्तवाडीमें अपनी प्रारंभिक तथा शास्त्रीय-संस्कृत शिक्षा पूरी की। यहीं इन्होंने मराठी और अंग्रेजी तथा चित्र-कला (ड्राइंग) और रंजनकला (पेन्टिंग) का भी अध्ययन किया। यहां इन्होंने २२ वर्ष व्यतीत किए। संस्कृतका अध्ययन इन्होंने बडे ही मनोयोगसे किया। कौमुदी, मनोरमा शेखर और महाभाष्य तथा अन्य व्याकरण ग्रंथोंका इन्होंने सम्यक् और गहन अध्ययन किया। इन ग्रंथोंका अधिकारी विद्वान् होना इनका परम लक्ष्य था; फलतः ये संस्कृत भाषाके उद्‌भट विद्वान् हो गए। संस्कृत भाषाके समृद्ध साहित्यके साथ इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हुआ और इन्होंने वैदिक तथा अन्य संस्कृत वाङ्मयमें उपलब्ध महत्वके ग्रंथोंका मौलिक अध्ययन, अनुशीलन तथा परिशीलन किया। संस्कृत लिखने और उसमें भाषण करनेमें भी इनकी योग्यता अन्यतम प्रमाणित हुई। विशाल संस्कृत साहित्यको इन्होंने सहज ही स्वायत्त कर लिया। इस तपः पूत व्यक्तित्वके समक्ष राशि राशि ज्ञान साकार हो उठे और यह ज्ञान वृद्ध सदाके लिए भारतीय संस्कृतिमें वरेण्य हो गया। वैदिक ज्ञानके पावन प्रकाशसे इनका बाह्यान्तर आपूरित हो उठा। वेदोंमें इन्हें भारतीय संस्कृतिके अलभ्य एवं अनुपम रूपके दर्शन हुए। ऋषि कृतार्थ हो उठे। और इनकी कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा परिस्फुरण एवं प्रकाशके लिए मार्ग ढूंढने लगी।

ऋषिने सन् १८८९में सावन्तवाडीसे बम्बईको प्रस्थान किया। प्रतिभाने परिस्फुरणके लिए वहां एक नवीन आलम्बन प्राप्त किया। इन्होंने रंजनकला और चित्रकलासे सम्बन्धित कलाओंके प्रचारार्थ कल्याण करनेवाली संस्था जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्ससे सम्बन्ध स्थापित किया और शीघ्र ही उपर्युक्त कलाओंमें निष्णात हो गए। वहां इन्होंने अपनी कलात्मक और सृजनात्मक प्रतिभाका अपूर्व परिचय दिया। और विभिन्न प्रदर्शनियोंमें बहु संख्यक पदकों एवं पुरस्कारोंको प्राप्त किया। उपर्युक्त विख्यात स्कूलमें इन्होंने अध्यापकके रूपमें भी अच्छी ख्यातिका अर्जन किया। ऋषि यहां भी ठहर नहीं सके, क्योंकि उनके जीवनका उद्देश्य तो अपने वास्तविक रूप वेदज्ञान, समुद्धर्त्ता त्राताको प्रत्यक्ष चरितार्थ करना था।

सन् १९०० में इन्होंने हैदराबादको धन्य किया। वहां इन्होंने स्टूडियो खोलकर अपने जीवनोद्देश्यको भी स्मरण किया। निजाम तथा अन्य नवाब रंजन एवं चित्रकला सम्बन्धी अच्छे अच्छे कार्य सौंपकर इन्हें निरन्तर प्रोत्साहन प्रदान करते रहे। यहींसे इन्होंने वैदिक सभ्यता और संस्कृतिका प्रचार कार्य आरम्भ किया। वैदिक सभ्यता और संस्कृति पर हैदराबाद एवं हैदराबादके चारों ओर इनके ओजस्वी, सारगर्भ और हृदयग्राही भाषण होने लगे। सहस्र रश्मिकी रश्मियां फूट पडने लगीं। ज्योति निर्झरसे अजस्र ज्योतिधारा झरने लगी। रात भागने लगी। दिग दिगन्त उद्‌भासित होने लगे, जागरणका पांचजन्य बजने लगा। स्वर्गीया श्रीमती सरोजिनी नायडू और उनके पिता डा. अघोरनाथ चट्टोपाध्यायने इनके भाषणोंकी पर्याप्त प्रशंसा और प्रतिष्ठा की। डा. अघोरनाथ चट्टोपाध्यायने तो अनेक अवसरोंपर इनकी सभाओंका सभापतित्व भी किया था। तत्कालीन हैदराबादमें स्थित ब्रिटिश रेजिडेन्टको ऋषिके ये कार्य सापद और विस्फोटक प्रतीत हुए। उसने निजामसे इनके निष्कासनके लिए आग्रह किया। किन्तु निजाम एक सहृदय और सभ्यपुरुष था। उसने इन्हें वैदिक-सभ्यता और संस्कृतिसे सम्बन्धित भाषणोंसे विरत करनेकी असोघ चेष्टा की। किन्तु इन्हें यह बात अपनी अन्तः प्रेरणाके विरुद्ध लगी और इन्होंने अपने भाषण जारी रखे। परिणामतः सन् १९०७ ई. में इन्हें हैदराबाद छोडना पडा।

हैदराबादके निवासकालमें ही इन्होंने 'वैदिक राष्ट्र गीत' शीर्षक पुस्तकका मराठीमें प्रणयन किया। शीघ्र ही बम्बईसे इसका प्रकाशन हुआ। इसका एक हिन्दी संस्करण प्रयागसे भी प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ अथर्ववेदीय सूक्तोंका साधारण अनुवाद और व्याख्या थी। किन्तु ब्रिटिश सरकारने इसे आपत्ति जनक घोषित किया और उसने इसकी सम्पूर्ण प्रतियां नष्ट करा दीं। तत्कालीन अंग्रेजी शासनने ऋषिको विपद्पूर्ण माना। जिनका अपराध था केवल वैदिक सभ्यता और संस्कृतिका प्रचार करना। भारतीयोंके सामने उनके गौरवपूर्ण अतीतका उद्घाटन करना, उनके स्वाभाविक जीवन पद्धतिको उनके सामने पुनः प्रस्तुत करना और उन्हें आत्म विस्मृतिके गर्तसे निकालकर आत्मस्वरूपोपलब्धिकी ज्योति धारामें निमज्जित करना।

हैदराबादसे पृथक् होकर ऋषि हरिद्वार पहुंचे। यहां गुरुकुल कांगडीके तत्कालीन मुख्याधिष्ठाता स्वामी श्रद्धानन्द जीने इनका हृदयसे स्वागत किया। और अनुरोध किया कि ये उक्त संस्थाकी सेवा सदाके लिए स्वीकार करें। ये वहां पर रंजनकला, चित्रकला और वेदोंके सुयोग्य अध्यापकके रूपमें ख्याति प्राप्त करने लगे। वहीं इन्होंने मराठीमें 'वैदिक प्रार्थनाओंकी तेजस्विता' (The spirited massege of vedic prayer) शीर्षक एक गंभीर निबन्धकी रचनाकी जो कोल्हापुरसे प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'विश्ववृत्त' में प्रकाशित हुआ। यह निबन्ध उद्बोधक और विद्वत्ताका परिचायक था।

निबन्ध प्रकाशित होते ही ब्रिटिश सरकार भडक उठी। उसने तत्कालीन महाराजा बडौदा स्वर्गीय सयाजीराव तृतीयसे इन पर अभियोग चलानेके लिए आग्रह किया। किन्तु देशभक्त महाराजाने इसे स्पष्टतया अस्वीकार कर दिया। क्योंकि उनके ख्यालसे ऋषिका वैदिक सभ्यता और संस्कृति सम्बन्धित यह प्रचार कार्य अत्यन्त उपयोगी और वांछनीय था। तब कोल्हापुरके महाराजाको इनके विरुद्ध उकसाया गया। और परिणामस्वरूप मासिक पत्रिकाके सम्पादक प्रकाशक और मुद्रक पर अभियोग चला, और एक अंग्रेज न्यायाधीशने उनको साढेतीन वर्षोंके लिए कठोर कारावास का दण्ड दिया। ऋषि गुरुकुल कांगडीमें गिरफ्तार हुए और हथकडी तथा बेडीके साथ एक महीने बिजनौर जेलमें रखे गए। तत्पश्चात् अभियोगके लिये कोल्हापुर ले जाये गये। केवल वैदिक प्रार्थनाओं पर एक लेख लिखनेके कारण इतनी सी बात पर-ये सशस्त्र पुलिस सेनाके संरक्षणमें शृंखला बद्ध लाये गए। जब इन पर अभियोग चल रहा था और ये कोल्हापुरके कारावासको तपःपूत कर रहे थे, उस समय तत्कालीन थियोसोफिकल सोसाइटीकी अध्यक्षा श्रीमती एनीबिसेन्टने कोल्हापुरके महाराजाके पास एक पत्र लिखा था, जिसमें साग्रह अनुरोध किया गया था कि अनावश्यक कठिनाइयोंसे इन्हें मुक्त रखा जाए, क्योंकि ऋषि भी थियोसोफिकल सोसायटीके एक अन्तर्विभागीय सदस्य थे। इसका भी कुछ अनुकूल प्रभाव पडा। लगभग १॥ वर्षतक ये जेलमें रहे और अभियोग चलता रहा, किन्तु अन्तमें एक भारतीय न्यायाधीशने इनके अभियोगका निर्णय किया और ये अपने विरुद्ध सभी अभियोगोंसे मुक्त हुए। भारतीय न्यायाधीशने इन्हें दोष मुक्त करते हुए अंग्रेज न्यायाधीशकी आलोचना भी की थी जिसके कारण उसे अपने पदसे च्युत होना पडा।

कारासे मुक्त होकर ये सीधे लाहौर पहुंचे और वहां नौ वर्षतक चित्रकला एवं रंजनकला आदि कार्योंमें लगे रहे। पंजाब निवासी इन्हें सुदक्ष कलाकार और प्रकाण्ड वेदवेत्ताके रूपमें प्यार करते थे। यहां इन्होंने महाराजा काश्मीर, पटियाला, जयपुर और ग्वालियर प्रभृति बडे लोगोंके चित्रोंका अंकन किया। अल्पकालमें ही यहां इनको पर्याप्त प्रसिद्धि हो गई।

किन्तु उपर्युक्त कलात्मक कार्योंके अतिरिक्त उनके समानान्तर ही ये अपने अतिप्रिय वेद प्रचारके कार्योंको भी अत्यन्त दृढता और गतिशीलतासे करते रहे। वैदिक सभ्यता और संस्कृतिसे सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर इनके अध्ययन पूर्ण और तात्त्विक भाषण होते रहे। महान् देशभक्त लाला लाजपतराय इनके वैदिक भाषणोंके अनन्यतम प्रशंसक और रसिक थे।' इन्होंने मुलतान, रावलपिण्डी, और पेशावर तथा अन्य नगरोंकी यात्रायें भी कीं। पंजाबियोंने सर्वत्र इनका सोत्साह स्वागत किया।

यह वही काल था, जब पंजाबका तत्कालीन गवर्नर कुख्यात डायर था, जलियाँवाला बागमें निर्दोष, स्त्री पुरुषों, जवानों, बूढों और बच्चोंका, नृशंस हत्याकाण्ड हो

चुका था। उन दिनों पंजाबकी स्थिति अत्यन्त तनाव पूर्ण थी। ब्रिटिश सरकार अत्यन्त भयभीत हो रही थी, कि कहीं उनके भाषणोंसे जनतामें देशभक्तिकी भावनायें न उमड़ें और वे ब्रिटिश शासन उलट देनेकी चेष्टा न करने लगें। वस्तुतः इस क्रान्तदर्शीके भाषण अत्यन्त प्राणवान् और विद्युत्तरंगोंकी भांति स्फूर्त्तिमय होते थे। जन-मानसमें इनकी अप्रतिम प्रतिष्ठा, मंत्रमुग्ध श्रोताओंकी बहु संख्यकता और ज्योतिर्मय सम्मोहकवाणीका अनाविल प्रवाह अंग्रेजी शासनके लिए एक विभीषिका ही थी, इनकी यह गति-मयता। लगभग ६ महीने तक पंजाब सरकारकी पुलिसने इन पर निगाह रखी। सन् १९१८ में इन्होंने पंजाबसे प्रस्थान किया। यह विदावेला अत्यन्त वेदनामय और करुणापूर्ण रही। हजारों व्यक्तियोंने लाहौर स्टेशन पर इन्हें भावभीनी विदाई दी।

इस वेदप्राण ऋषिने औंध रियासतमें पदार्पण किया। इस स्थान परिवर्त्तनका इनके कार्योंपर स्मरणीय प्रभाव पडा। यहां इन्होंने १९१८ से १९४८ तक ३० वर्षतक निवास किया। वैदिक अनुसंधान एवं ग्रंथ प्रणयनके लिए यहां इनको महत्तम सुविधायें और सुखद अनुकूलताएं प्राप्त हुई। तीस वर्षोंतक लगातार इन्होंने यहांके शान्तिपूर्ण और मनोनुकूल वातावरणमें वैदिक साहित्यका गम्भीर अध्ययन और मनन और अनुसंधानके लोक विश्रुत कार्य सम्पादित किए। औंधके राजाने इनका सतत समर्थन किया, और इन्हें निरन्तर प्रोत्साहन भी दिया। ब्रिटिश शासनका कोप भी शान्त हो गया था, क्योंकि राजासाहबने उसे विश्वास दिला दिया था कि इनके कार्य केवल वैदिक साहित्य तक ही सीमित हैं। इनकी सम्पूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्योंमें जुट चुकी थी, । इनकी सृजनात्मक प्रतिमा तुष्टि पूर्वक लक्ष्य सिद्धिकी ओर बढ रही थी। विगत कठिनाइयां यात-नायें और बाधायें अकिंचन करके स्मृतिकी वस्तु रह गई थीं ; इनकी तेजोज्ज्वल प्रतिभा दिक्कालकी सीमायें तोड-कर महामानवकी संस्कृतिका निर्माण कर रही थी। १९४८ में औंध राज्यका विलीनीकरण हो गया, तब ऋषिने सूरत जिलेके पारडीनामक स्थानमें अपने आश्रमका विस्तार किया। वैदिक साहित्य सम्बधी अनुसंधान कार्य और तत्सम्बन्धी ग्रंथोंकेप्रणयन प्रभृति अनेक महत्वपूर्ण कार्य यहांके स्वाध्याय मण्डलके द्वारा अनवरत रूपसे अबतक यहां सम्पादित हो रहे हैं, यद्यपि आज ऋषिकी अवस्था ९५ वर्षकी है, फिर भी उनके उत्साह और कार्यशक्तिमें वही ताजगी और वही स्फूर्ति आज भी विद्यमान् है।

ऋषि-जीवनकी उपर्युक्त संक्षिप्त चर्चासे यह सहज ही ज्ञात होता है, कि वेदाध्ययन और वेद प्रचारके कार्यमें कितनी महती आपत्ति और विपत्तियोंका सामना करना पडा। संघर्षोंने इन्हें थकाया नहीं वरन् पुष्ट किया। परि-स्थितियोंने उन्हें अवरुद्ध नहीं किया। अपने निकष पर उन्हें और चमका दिया। और यह उनके जीवन्त-व्यक्तित्वकी गरिमा ही कही जाएगी। विपत्तियोंके अर्णवोल्लंघनने इस महावीरके अव्यक्त शौर्यको व्यक्त किया, और वह वैदिक संस्कृतिके स्रोतका पता पा सके। यह जीवन एक पुष्ट निद-र्शन है, निराशान्धकारमें भटकते हुए मानवोंके लिए प्रेरक सन्देश है जो बार बार उच्चकंठसे पुकारता है, तुम अनि-रुद्ध हो, तुम महान् हो। तुम महान् भारतके महान् नागरिक हो। वैदिक संस्कृति ही मानव संस्कृति है, जो महती संस्कृति है, और वह तुम्हारी संस्कृति है। तुम शुद्ध, बुद्ध चेतन और सतत महान् हो। तुम सत् चित् और आनन्द हो, और हो तुम सत्यं, शिवं, सुन्दरम्!

ऋषि बहुत दिनों तक लोकमान्य तिलकके अनुयायी रहे। बादमें इन्होंने गांधीजीके सिद्धान्तों और आदर्शोंका भी सतत समादर किया। औंध राज्यमें इन्होंने गांधीजीके आदर्शों और सिद्धान्तोंके अनुरूप विविध विकास कार्योंका संचालन किया। शिमलामें वायसरायको इसकी सूचना मिली। उन्होंने अपने सैनिक मंत्रीको सम्पूर्ण विकास विवरण प्राप्त करनेके लिए औंध राज्यमें भेजा। उक्त मंत्रीने वहां पहुंचकर देखा, कि राज्यके सभी ग्राम आत्म निर्भर, स्वतः पूर्ण और पूर्ण सुरक्षित अवस्थामें विकासोन्मुख हो रहे हैं। गांधीवादी आदर्शों एवं पद्धतियोंके अनुसार संचालित विभिन्न संस्थाओंकी सन्तोषजनक स्थिति भी उन्होंने देखी, किन्तु जब वे शिमला पहुंचे तो उन्होंने वायसरायको उल्टी रिपार्ट दी। तथापि गांधीजीने औंधके विकास कार्योंको अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया।

ऋषिका व्यक्तित्व केवल सैद्धान्तिक ही नहीं अपितु व्यवहारात्मक भी है, इसमें केवल चिन्ता ही नहीं कार्य भी है। इसमें वैविध्य है। किन्तु एक सुन्दरतम सामंजस्य भी है। आज देशका शासनसूत्र राष्ट्रीय सरकारके हाथोंमें है। उससे प्रभूत आशा की जानी चाहिए कि वह ऋषिका उचित सम्मान करते हुए उनके जीवनोद्देश्यको सफल एवं परिपूर्ण बनानेमें निरन्तर योगदान करेगी। १९५९ में भारतीय राष्ट्रपतिने भारतमें संस्कृतके शीर्षस्थ विद्वान्‌के रूपमें इनको सम्मान पत्र अर्पित किया और उनके लिए १५०० रुपयेका वार्षिक मौद्रिक पारितोषक भी स्वीकृत किया। विदेशी और स्वदेशी शासकका यह महदन्तर कितना भावोत्तेजक है।

सम्प्रति सूरत जिलेके पारडी नामक स्थानमें ऋषिने स्वाध्याय-मण्डलकी स्थापना की है। जिसके माध्यमसे वैदिक साहित्यके प्रचुर ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ है और होता भी जा रहा है। उनके प्रकाशनमें व्यय स्वरूप ९ लाख रुपयेकी अनिवार्य आवश्यकता है। भारतीय सरकार और जनताका यह पुनीत कर्तव्य है, कि वह उसकी अविलम्ब व्यवस्था करे। और उक्त ग्रंथोंके प्रचार और प्रसारमें हाथ बंटाये। विश्वके प्राचीनतम और गौरव मण्डित वैदिक साहित्यका पुनरुद्धार भारतीय जनगणके लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्वके जनगणके लिए महत्त्वपूर्ण है। ऋषिने उपर्युक्त कार्य सम्पादनमें अपना अनन्य और महत्तम जीवन अर्पित कर दिया है। मानवताकी दृष्टिसे प्रत्यक्ष मानवका कर्तव्य है कि वह इस महा अभियानमें सोत्साह हाथ बंटावे।

ऋषि और ऋषि संचालित स्वाध्याय मण्डल द्वारा वेद, वेदांग, उपनिषद्, गीता, वाल्मीकीय रामायण और महाभारत आदि ग्रंथोंके भाष्य, टिप्पण टीकायें व्याख्यायें एवं उनके कतिपय लघु-बृहत् और सूक्ष्म स्थूलाक्षर संस्करण प्रकाशित हुए हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके सूक्ष्माक्षर संस्करण तथा सामवेद तथा यजुर्वेद की वाजसनेयी, काण्व, तैत्तिरीय, मैत्रायणी एवं काठक संहिताओंके स्थूलाक्षर संस्करण निकले हैं। इसके अतिरिक्त वैदिकसूची ग्रंथ, वैदिक देवताओंसे सम्बन्धित मंत्रोंके संकलन स्वरूप दैवत-संहिता, गायनके लिए सामवेद, यजु और अथर्ववेदोंके सुबोध भाष्य ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर आदि उपनिषदोंके भाष्य, गौसे सम्बन्धित गौज्ञान कोष, श्रीमद्भगवद्गीताका भाष्य, वाल्मिकीय रामायण और महाभारतके हिन्दी टीकासे समन्वित संस्करण, वेदोंका स्वतः अध्ययन करनेके लिए वेदका स्वयं शिक्षक, पचासों वैदिक व्याख्यान और अन्य योग आगम, धर्म, दर्शन तथा शिक्षासे सम्बन्धित दुर्लभ ग्रंथोंका ऋषिने सम्पादन एवं प्रकाशन किया।

आज जबकि सम्पूर्ण विश्व विनाशके कगार पर आर्त और किंकर्तव्य विमूढ भावसे खडा है, आस्था, अविश्वास और अश्रद्धासे वह केवल मानवाभास प्रतीत हो रहा है, और वह नहीं जानता कि अग्रिम क्षण उसका किस रूपका होगा, परमाणु बमोंके वज्रपातका या चन्द्रलोककी सैरका-वैदिक ज्योतिसे अनुप्राणित नवीन दर्शन और संस्कार ही उसे शान्ति और जीवन प्रदान करनेमें समर्थ लगते हैं। और और यह महत्कार्य जिस लोकोत्तर पुरुषके द्वारा संभव हो रहा है, वे हैं, श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी। उत्तरप्रदेशके महान् सन्त योगिराज देवरहवा बाबाने आपको पिछले मास ही एक विराट् महोत्सवके बीच ब्रह्मर्षिकी सर्वोच्च उपाधिसे विभूषित किया। हम इस महामानवके दीर्घायुष्यके लिए परमात्मासे प्रार्थना करते हैं।

दिनांक २३ अक्टूबर १९६१ ई०

वैदिक प्रदर्शनी

का

उद्घाटन भाषण

(श्री शारंगधर सिनहा, एम. पी. भूतपूर्व उप-कुलपति पटना विश्वविद्यालय)

आदरणीय सभापति, विद्वद्वृन्द, उपस्थित सज्जनों और देवियों ! विद्वानोंकी इस महती सभामें, वैदिक प्रदर्शनीके उद्घाटनका अवसर प्रदान करके, आपलोगोंने मुझे जो प्रतिष्ठा दी है, उसके लायक मैं नहीं हूं। यह आप लोगोंकी महती उदारता है। इसके लिए मैं आभार प्रकट करता हूं। विशाल वैदिक वाङ्मयकी यह विराट् प्रदर्शनी निःसंदेह अत्यंत आकर्षक और लाभप्रद है। भारतीय संस्कृति और जीवन सरणीके अक्षय भंडार वैदिक साहित्यमें ही सुरक्षित हैं। आज हम अपने इस अमूल्य साहित्य-निधिको भूल रहे हैं। इस तरह हम अपनेको भूल रहे हैं। आपके इस महान् आयोजनसे हमें प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है और अपने ऐहिक एवं पारलौकिक जीवनको मार्ग प्रदान करनेवाले वैदिक साहित्यको एकत्र देखकर उनके प्रति जीवन्त जिज्ञासा जागृत होती है।

मैं रूढिवादी नहीं हूं। मैं मानता हूं संसारमें सर्वत्र परिवर्तन अवश्यंभावी है, परिवर्तन होता है। देशकालानुसार परिवर्तनका स्वागत भी करना चाहिए। युगधर्मानुसार अपनेको समायोजित भी करना चाहिए। रूढिवादिता नाशकारी होती है। ज्ञानके लिए दिमागका दरवाजा हमेशा खुला रहना चाहिए। उसे बंद नहीं करना चाहिए। यदि नवीन विचार उचित हों, तो उन्हें ग्रहण करना चाहिए। किन्तु सबके बाद, सभी परिवर्तनों एवं आदान-प्रदानोंके बीच-कहीं आधार-मूल आधार अवश्य होना चाहिए। अपना लंगर ठीक होना चाहिए। लंगर ठीक होगा तो नावकी स्थिति भी बिगडने नहीं पायेगी। वेद, स्मृतियां और पुराण आदिके संस्कृत वाङ्मय आपकी संस्कृति और धर्मके आधार हैं। आपका धर्म और आपकी संस्कृति ही आपके मूलाधार हैं। इनका मौलिक तत्व या आन्तर तत्व सनातन है। अपरिवर्तनीय है। उनके बाह्यमें परिवर्तन हो सकता है, होता है। वैदिक साहित्य मूल चीज है जिससे हमारा संबंध टूट गया है। हम संस्कृत भाषा नहीं जानते। अपने धर्म और अपनी संस्कृतिसे भी अनभिज्ञ रहते हैं। आज अंग्रेजी पढे लिखे विद्वानोंकी भरमार है। उनसे हिन्दू संस्कृतिके बारेमें पूछिए। दर्जनों जवाब मिलेंगे। जिनमें कहीं भी संगति नहीं मिलेगी। संस्कृत भाषासे संबंध टूट जानेसे, हमारा संबंध अपने जीवनसे टूट गया है। हम आत्म विस्मृत हो रहे हैं। यहां बडे बडे विद्वान् आये हैं। वे इसका मर्म जानते हैं और वे बतलायेंगे भी।

यह खुशीकी बात है कि यह आयोजन, जो बडे परिश्रमसे किया गया है, संस्कृतके ग्रंथोंके हिन्दी भाष्यों एवं अनुवादोंकी ओर भी ध्यान आकृष्ट करता है। इससे पढनेकी इच्छा रखनेवालोंकी भी जिज्ञासा बढेगी और विद्वान् भी भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धतिको पुनर्जागृत करनेके लिए विशाल वैदिक वाङ्मयका हिन्दीमें अनुवाद करनेकी ओर प्रेरित होंगे।

यह प्रयास स्तुत्य और साधु है। आपको इस आयोजनमें बडी सफलता मिली है।

अखिल-भारतीय

महामना मालवीय शती जयंती

प्रथम समारोह (संस्कृत-सम्मेलन)

में

स्वागताध्यक्षः— श्री सुरति नारायण मणि त्रिपाठी, आई. ए. एस., सदस्य लोकसेवा आयोग, उत्तर प्रदेश, सीनियर डिप्टी मैनेजिंग डाइरेक्टर, ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन लि०, कानपुर; का

स्वागत भाषण

श्रद्धेय सभापतिजी, प्रतिनिधिगण, देवियो, समादरणीय विद्वत्समाज एवं बन्धुओ !

प्रातःस्मरणीय, पुण्यश्लोक, सत्वमद्विभूति और महाप्राण नेता, भारतीय संस्कृतिके साक्षात् प्रतीक, महामना मालवीयजीकी शती जयंतीके अंतर्गत आयोजित यह प्रथम अखिल भारतीय समारोहका, अभूतपूर्व और महान् अवसर उपस्थित है। सार्वभौम संस्कृतिका मंजुघोष करनेवाले, जगद्गुरु, भारतवर्षके गौरव मंडित, उत्तरांचलके इस रुचिर भूखंडमें, पुण्य सलिला सरयूके पावन तट पर, योगिराज श्री १००८ देवरहवा बाबाकी तपोभूमि में, ज्ञानप्रम विद्वानों एवं भगवन्मूर्ति जनता-जनार्दनके इस महान् विशाल संगमको देखकर हमारा बाह्याभ्यंतर रसस्निग्ध हो उठा है। हम आज परमानन्द रससे आप्लुत अंतरतम और पुलकोद्गत रोम रोमसे सबका स्वागत करते नहीं अघा रहे हैं। इस तरहके सौभाग्य प्रवण और महान् अवसर अन्यतम और दुर्लभ होते हैं और आज हमें इस तरहका अवसर प्राप्त हुआ है, अतः हम सर्वात्मना कृतकृत्य हो रहे हैं।

धन्य है यह उत्तरांचलका जनपद जहां आप जैसे विद्वद्वरेण्य समवेत हो रहे हैं। यह जनपद आज परम सौभाग्यशाली और महान् पुण्यका भाजन हो रहा है। इसका अतीत भी अत्यंत गौरवपूर्ण और महत्तम रहा है। यह जनपद, जिसे आपने अपने पावन-पाद-पद्मोंसे समलंकृत एवं धन्य किया है, भले ही आज पिछड़ा हो, परंतु इसकी एक सुदीर्घ और महती परम्परा रही है। इसका एक उज्ज्वल इतिहास है। प्राच्य सभ्यताकी आलोक रश्मियोंका परिस्फुटन इस अंचलमें ही सर्वप्रथम हुआ और भारतीय संस्कृति का यह अजस्र उद्गम रहा है। वैदिक भूगोलकी दृष्टिसे यह भूभाग काशी, कोशल और विदेहके मध्य स्थित था और प्रकृतिके रमणीय सौंदर्यका गर्भ था। प्राच्य संस्कृति, प्रकृतिके इसी सौंदर्य गर्भसे प्रसूत हुई थी।

महामनाके शताब्दीके सर्वप्रथम समारोह मनानेके लिए इससे बढ़कर उपयुक्त स्थान दूसरा नहीं हो सकता था। अतः साधनविहीन होते हुए भी हमने जो इस पर्वको और इस समारोहको मनानेकी अनधिकार चेष्टा की है उसके लिए उपस्थित महानुभाव और विद्वन्मण्डली हमें क्षमा करेंगे। हम आपका आपके अनुरूप स्वागत और सत्कार न कर सके हैं इसके लिए हम लज्जान्वित हैं। हम नतमस्तक होकर आपसे विनम्र प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी त्रुटियोंको क्षमा करेंगे। हम साधनहीन हैं किन्तु श्रद्धाहीन नहीं हैं; हम अकिंचन हैं किन्तु हृदयहीन नहीं हैं।

हर एक महान् आत्माका अवतरण कुछ विकट परिस्थितियोंमें और उन विकट परिस्थितियोंके समाधान करने के लिए ही होता है। अतः सर्वप्रथम इन महान् आत्माओंके प्रादुर्भूत काल, देश, तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक

तथा राजनैतिक परिस्थितियों पर जिनके समाधानके लिए उनका जन्म होता है, प्रकाश डालना आवश्यक होता है। दूसरी आवश्यकता होती है उनके जीवनकी विशेष घटनाओं पर दृष्टिपात करना। तीसरे उनके प्रतिपादित सिद्धांतों, आस्थाओं और परम्पराओं पर भी प्रकाश डालना अत्यावश्यक होता है। और चौथे उनकी कृतियों पर प्रकाश डालना और उनके प्रदर्शित मार्गोंका अनुसरण करनेकी तथा उनके ध्येय और उद्देश्योंकी पूर्तिकी प्रतिज्ञा करना। आशा है यह विद्वत्समाज मालवीयजीके जीवनके इन पहलुओं पर प्रचुर प्रकाश डालेगा!

उदार एवं श्रद्धालु सज्जनो,

मानव सभ्यता एवं उसके कर्तव्यका इतिहास जब आरम्भ हुआ तबसे महिमण्डलको दिगदिगंत तक आलोकित करता हुआ जो भारत देश विरलप्रकाशस्तम्भकी भांति अगणित वर्षों तक वसुंधराका अनमोल श्रृंगार बना हुआ था, वही उन्नीसवीं सदीमें पराधीन होकर न केवल पार्थिव रूपसे बल्कि अपनी समस्त गरिमा, तेज, शौर्य एवं सांस्कृतिक उपलब्धियोंके साथ आंतरिक रूपसे भी असहाय बन गया था। यहांकी सन्तानोंका न केवल आत्म-विश्वास हिल उठा था, बल्कि वे विदेशी जीवन-क्रम, रीति-नीति, वेशभूषा, खानपान और विचार-प्रणालीके मोहक प्रवाहमें अस्तित्व-विहीन हो बहे चले जा रहे थे। ऋषि-महर्षियों, तपस्वियों तथा विचारकोंका यह देश जैसे अपनी महान् उपलब्धियोंका गुरुत्वाकर्षण बड़ी तीव्रतासे खोता चला जा रहा था और पश्चिमके चंचल चमत्कारोंकी ओर शलभकी भांति टूट रहा था, जहां उसका सर्वस्व स्वाहा हो जाना नितांत निश्चित था।

उस समयकी समस्या केवल हमारी पराधीनता नहीं थी, मुख्य समस्या थी इस जातिकी आत्मरक्षा-उन समस्त उपलब्धियों, मूल्यों एवं मान्यताओंकी रक्षा तथा उन्हें यहांके निवासियोंके जीवनमें अनिवार्य बनाकर रखमान करनेकी सबल आस्था उत्पन्न करना, जो हमारे सुदीर्घ इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित है और जिसके अभावमें भारतवर्षकी मौलिकता ही विनष्ट हो जाती। प्रतिक्षण नैराश्य के तिमिरकी ओर लुढकते देशको कौन बचावे, कौन उसकी संतानोंको ठहराकर अपने घरके सुखद जीवनका स्मरण दिलावे, तथा कौन वर्तमानमें भी कार्यान्वित कर उनकी अपेक्षित महत् उपयोगिताको प्रमाणित कर उनके आसन्न भ्रमका निवारण करे। यह नरपुंगव कौन होगा, जो साहस कर हमारी दुर्बलताओं एवं रूढियोंकी भी प्रतिक्रिया बचाले हुए, इस भ्रमको नष्ट कर दे, तथा युगकी मंगलकारी सिद्धियोंको भी उदारतासे अपनाकर एक ऐसी सामयिक संजीवनी परिचय तैयार करे जो यहांके निवासियोंमें प्राण फूंक दे।

इन समस्त प्रश्नोंके उत्तरमें परमेश्वरने पुण्यश्लोक प्रातःस्मरणीय महामना महर्षि पं० मदनमोहन मालवीयको उपस्थित किया, जो अपने विराट् व्यक्तित्वमें सबका समाधान प्रस्तुत कर महामना बने, जो रामकृष्णका अनुरागी, गौतम, कपिल, कणाद और शंकरका महान् उत्तराधिकारी, राणा, शिवाजी, गुरु गोविन्दके बलिदानोंका अद्वितीय प्रतिपालक, तथा तिलक और गांधीका श्रद्धालु अग्रज रहते हुए भी पृथ्वीके समस्त महान् विचारों और विचारकोंका अविरोधी बना रहा जिसने व्यक्तिगत जीवनमें 'आत्मवद् सर्वभूतेषु' तथा राष्ट्रीय जीवनमें 'सर्वहितेरतः' अखण्ड राष्ट्रीयताको अपने कार्यका उज्ज्वल प्रतिमान बनाकर देशके लगभग ६ दशकों के इतिहासका सभी विधि मूर्धन्य बना रहा। उसने मदनमोहनकी भांति वीणा फूंककर देशका उद्बोधन किया और स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्णकी भांति सारथी बनकर स्वाधीनता संग्राममें नेतृत्व किया।

उनकी स्वाधीनताका अर्थ राजनीतिक दासतासे देशकी मुक्ति मात्र नहीं था। देशकी परंपरामें जो भी उपलब्धियां थीं-विचार, जीवन-प्रणाली, अभ्यास, अर्थोपासना, शिल्प, लोक-व्यवस्था, धर्म और साहित्यके जो शिवतत्व थे, उन्हें ही वे देशका स्वरूप मानते थे। इस स्वरूपको अक्षत रखते हुए भी स्वाधीनतामें वे स्वाधीनता मानते थे। केवल अपना राजाके विकल्पको वे अनैतिहासिक विमोह मानते थे, जो अकेलेमें इतनी दुर्बल है कि कभी भी पदाक्रांत हो लुप्त हो जायगी। यही कारण था कि उनके संग्रामका क्षेत्र अत्यंत व्यापक था, जिससे जातीय जीवनका कोई अंचल छूट ही नहीं सका।

स्वयं भी उन्होंने एक ऐसा जीवन उपस्थित किया कि वे केवल एक आचारनिष्ठ नहीं थे, आस्तिक हिन्दू थे, अहिं-

तीय राष्ट्रवादी थे, सार्वभौम भूतवादी थे, फिर भी युगकी धाराके अनमोल प्रवाह उनकी पकडसे बाहर नहीं जा सके। फलतः देशने उनके नेतृत्वमें चलनेमें परम सौभाग्य माना, सिक्खके नेतृवर्गने उनको अपना अग्रज जानकर श्रद्धानत होनेमें अपना अभिमान समझा, धर्मप्राण हिन्दू ने उनमें हिन्दुत्वका विकाररहित समस्त सार प्राप्त किया, हिन्दु-इतरोंने उनको अपना ऐसा निश्छल पडोसी माना, जिससे कभी आशंका नहीं हो सकती थी। पंचम जातियोंने उन्हें अपना उद्धार उद्धारक और अग्रज माना, छत्रधारियोंने वशिष्ठ जैसे उनके चरणोंमें अपना समस्त निछावर किया, और विदेशी शासकोंने उनको अपना ऐसा मित्र माना कि जिसके विवेक पर उन्हें पूरा भरोसा और विश्वास था। नूतन और पुरातन, ज्ञान विज्ञान, तथा शिक्षा व्यवस्थाके ऊहापोहमें पडे शिक्षाविदोंने उनमें समन्वय-पूर्ण प्रणालीका अभ्युदय प्राप्त किया। तात्पर्य यह कि राष्ट्रीय जन-जीवनको अत्यंत व्यापक रूपसे उठानेवाले इस महापुरुषके संतुलित व्यक्तित्व और लोकप्रिय नेतृत्वमें आज यह देश नितांत ही सौभाग्य-सम्पन्न बन गया है।

महामना मालवीयजीका जीवन-यापन उन महर्षियोंकी भांति था जिनके बारेमें कालिदासने कहा है—

‘प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता, सत्कल्पवृक्षे वने,
तोये काञ्चन-पद्मरेणु-कपिशा धर्माभिषेकक्रिया।
ध्यानं रत्नशिला तटेषु, विबुधस्त्रीसंन्निधौ संयमः;
यद्वाञ्छन्ति तपोभिरन्यमुनयः तस्मिन् तपस्यन्त्यमी’

मालवीयजीका नाम ‘यथा नाम तथा गुणः’ को चरितार्थ करता था- साक्षात् ‘मदन’ के अवतार तो थे ही जिनको देखनेसे सुखानुभूति होती थी, ‘मोहन’ भी थे। किन्तु वास्तविक रूप इन शब्दोंका था ‘मद न मोह न’ और यह पूर्ण रूपेण उनके जीवनमें चरितार्थ होता था, किन्तु इस नामका एक रूपान्तर भी था- वह था ‘मद’ ‘नमो’ ‘हन्’। हे मद मैं आपको नमस्कार करता हूँ, कृपया आप दूर हो जायँ नहीं तो आपका हनन करूँगा। मालवीयजी थे ‘वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि’। वे बडे ही कोमल स्वभावके थे। पहले नमस्कार करके ही अपने विरोधियोंको वशीभूत करते थे, किन्तु आवश्यकता पडने पर कठोरतासे यानी हनन करनेके लिए भी उद्यत हो जाते थे।

आज महामना महर्षि मालवीयजीकी आत्मा सतृष्ण तथा आशा भरी दृष्टिसे आपकी ओर देख रही है और इस बातकी प्रतीक्षा कर रही है कि इस भारत भूमिके सपूत कब और किस प्रकार उनके उद्देश्योंकी तथा उनके अपूर्ण कार्योंकी पूर्ति करेंगे। यह हमारा परम पावन कर्तव्य है और यही हमारी उनके प्रति श्रद्धांजलि है कि हम उनके प्रवर्तित मार्गोंका अवलम्बन करके उनके उद्देश्योंकी पूर्ति करें।

अक्षयप्रेरणा-स्रोत महर्षि मालवीयजीकी स्मृति ही आज हमारे लिए सहारा बनेगी, जो हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती हुई लोकके समक्ष उन समस्त गुणों तथा आदर्शोंको उपस्थित करेगी, जिससे हम बलशाली बने रहेंगे। इसके अतिरिक्त जिन मार्गोंपर चलकर उन्होंने देश-सेवा की उनके अवशेषको पूरा करनेका भी अनिवार्य दायित्व इन्हीं पीढियोंपर है।

आजके युगमें, जहां सर्वत्र अव्यवस्था और अविश्वासकी निबिड तमिस्राका घोर राज्य फैला हुआ है, आप महानुभावोंको मानवजीवनकी दशा पर, अपनी प्राणदायिनी एवं करुणामयी दृष्टि डालनी ही चाहिए। आप महापुरुषोंकी एक सुदीर्घ परंपरा है। ज्ञात वैदिक कालसे आज तक आप लोगोंके ज्ञानात्मक, संवेदनात्मक और क्रियात्मक व्यक्तित्व-का उद्घाटन ही तो हमारा इतिहास और हमारी संस्कृति है। आपके गौरवपूर्ण व्यक्तित्वसे निरंतर अजस्र एवं अना-विल आभा विकीर्ण हो रही है। आजके इस विद्वत्समाजमें संस्कृति एवं संस्कृत संबंधी कुछ बातोंकी चर्चा करके हम आश्वस्त होना चाहते हैं। आज पाश्चात्य संसारने वैज्ञानिक क्षेत्रमें पर्याप्त उन्नतिकी है। प्रकृतिके गोपनीय और गूढतम रहस्योंको उद्घाटित करके विश्वके समक्ष पश्चात्य वैज्ञानिकों ने असाधारण उदाहरण उपस्थित किये हैं। ज्ञानार्जन तपस्या के द्वारा ही होता है, इसमें संदेह नहीं कि पाश्चात्य वैज्ञा-निकोंने प्रकृतिके रहस्योंका भेदन करनेमें पर्याप्त कष्ट सहन किया है। किन्तु यह अत्यंत दुःखद सत्य है कि इस अभूतपूर्व वैज्ञानिक उन्नतिका उपयोग मानव हितार्थ न होकर मानव विनाशार्थ होने लगा है। आज मानव जाति विनाशके कगार पर खडी दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि यह महान् वैज्ञानिक विकास अपात्रके हाथों पड गया है। इसका मौलिक कारण है सांस्कृतिक त्रुटि। पश्चिम

के मानवोंका अवतरण, पोषण एवं संवर्द्धन कुछ इस प्रकारके भौगोलिक एवं प्राकृतिक वातावरणमें हुआ है, जहां उन्हें जीवन-यापनके लिए निरंतर प्रकृतिसे संघर्षरत रहना पड़ा है। परिणामस्वरूप वे जीवनको 'युद्ध' के रूपमें देखते हैं। दूसरेका पराजय और विद्‌लन और अपनी विजय एवं समुन्नति ही उनका संस्कार बन गया है। ऐसे लोगोंके हाथमें पड़ी वैज्ञानिक उन्नति निश्चय ही हितकारी परिणाम उपस्थित करनेवाली नहीं होगी। यही कारण है कि आजका पीड़ित विश्व भारतकी ओर सतृष्ण नेत्रोंसे निहार रहा है। उसे विश्वास है कि भारत ही शायद कोई ऐसा मार्ग निकाल सकता है। जिससे मानव जाति नैराश्य और भय की विभीषिकासे मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ होगी। यह भारतवर्ष कभी जगद्‌गुरुके सर्वोच्च पद पर आसीन था, उसे पुनः वही भूमिका अदा करनी है।

यदि भूखेको भोजन देना और प्यासेको जल प्रदान करना धर्म है, तो मोह और अज्ञानसे दग्ध हृदयोंको शान्ति प्रदान करना भी कम धर्म नहीं है। यदि आजका भारत अपने कर्तव्यसे पराङ्मुख होता है, तो वह अपने पूर्वजोंके साथ उसका विश्वासघात होगा। भारतकी संस्कृति धर्म मूलक और आध्यात्मिक है। यहांके मानवोंका पालन-पोषण प्रकृतिकी वरद् छायामें संपन्न हुआ है। यहांके मानवोंने प्रकृति एवं प्राकृतिक पदार्थोंमें दिव्य सत्ताका दर्शन किया है। और उसकी कृतज्ञतापूर्ण स्तुतियां भी की हैं। वेद इसके साक्षी हैं। हमारी संस्कृति जीवन और जगत्‌को संग्राम रूपमें नहीं देखती और न दूसरेके दलन एवं विनाश में अपनी विजय एवं अपना अभ्युदय ही मानती है।

आज इस प्रकारकी भारतीय संस्कृतिका निरंतर एवं सार्वभौम प्रचार होना चाहिए। जिस संस्कृतिके मूलमें धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या (अध्यात्म विद्या) सत्य और अक्रोध जैसे सार्वभौम सर्व-मान्य एवं सनातनधर्म तत्व विद्यमान् हैं और जिस संस्कृति का लक्ष्य है-'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्ति' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'- इत्यादि उसकी उपादेयता एवं उदात्तता स्पष्ट है। पश्चिमकी संस्कृतिमें आज-कल मार्क्स-वादकी बड़ी धूम है, किन्तु वह भी 'जीवन संग्राम है' एवं प्रतिशोध तथा परदलनकी संस्कृतिसे ही उद्‌भूत हुआ है तभी तो वह रक्तपात एवं संघर्षके द्वारा अधिकार लेनेकी बात करता है। भारतीय संस्कृति त्यागमूलक है, वह अना-वश्यक संचयन एवं संग्रहणको ही तिरस्कृत एवं असभ्यता-मूलक घोषित करती है। 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' आदिकी उद्‌घोषणा द्वारा वह अनावश्यक संचयन एवं अपहरणको घोर निषिद्ध ठहराती है। इस तरहकी संस्कृति से उद्‌भूत एवं प्रसूत व्यवस्था ही विश्वका कल्याण कर सकती है, यह असंदिग्ध सत्य है। इस प्रकारकी संस्कृतिके प्रचार और प्रसारके लिए संस्कृत वाङ्मयका प्रचार और प्रसार भी नितांत आवश्यक और सतत वांछनीय है। संस्कृतिका प्रतीक है संस्कृत। संपूर्ण भारतीय ज्ञान-विज्ञान इसी भाषामें संरक्षित है। सिन्धु-सरस्वती, प्रभृति पुण्य-सलिला नदियोंके परम पावन तटों पर वेदमंत्रोंसे वायुमंडल को पावन एवं स्पंदित करनेवाले महर्षियोंने इस भाषाका ही प्रयोग किया है। इसी भाषामें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने गीताका उपदेश किया है। याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि एवं व्यास आदि महर्षियोंने अपने अद्वैतज्ञानका उपदेश इसी भाषामें दिया है। विश्वकी गूढतम ग्रंथियोंको खोलनेवाले भगवान् शंकराचार्यके ब्रह्म और मायावादकी विचारणा इसी भाषामें हुई है। आज भी आसेतु हिमालय पर्यन्त हर गांव, हर नगर एवं हर मंदिरमें इस भाषाका प्रतिध्वनन श्रुतिगोचर होता है। जहां कहीं भी हिन्दू धर्मावलम्बी लोग रहते हैं और उनके यहां वैदिक संस्कारोंका संपादन होता है वहां यही भाषा सुनी जाती है। हमें इस संस्कृतका प्रचार और प्रसार भी करना चाहिए। यदि संस्कृत नहीं रही तो संस्कृति भी नहीं रहेगी, यह अकाट्य सत्य है।

सर्वाधिक उत्तेजक समस्या यह लगती है कि आजकल विश्व ज्योतिसे तमकी ओर, अमृतसे मृतकी ओर, ज्ञानसे अज्ञानकी ओर, चेतनसे जडकी ओर बड़ी तेजीसे बढ़ रहा है। ज्योतिका गंतव्य तिमिर, अमृतका प्राप्य मृत्यु, ज्ञानका लक्ष्य अज्ञान और चेतनका साध्य जड होना तो अत्यंत सांस्कृतिक संकट है। आज पार्थिवकी बलिवेदी पर अध्यात्म के बलिदान देनेकी प्रवृत्ति तीव्रतासे बढ़ रही है। भारतीय संस्कृतिके भीतर ही वह महान् क्षमता है, जो इस वैपरीत्य और महान् संकटको दूर कर सकती है और वह आप महान्

विद्वद्वरेण्योंके द्वारा ही अपनी उज्ज्वल किरणोंका विस्तार कर सकती है।

परन्तु यह महान् दुर्भाग्यका विषय है कि उनकी स्मृति को पार्थिव रूपसे स्थापित करनेका कोई भी प्रयास राजकीय या लोकपक्षकी ओरसे आजतक नहीं हुआ, जब कि यह कार्य उनके निधनके साथ ही अपेक्षाकृत श्रेष्ठकर रूपसे हो जाना चाहिए था। आज जब उनकी शती जयंती आगामी दिसंबर-जनवरी मासमें पडने जा रही है, तब देशके प्रत्येक कोनेमें विचारशील पुरुषोंने इस बातकी उत्कट कामना प्रकटकी है तथा उद्गार अभिव्यक्त किया है कि भारी पूंजी के साथ एक स्मारक निधिकी स्थापना कर विविध संस्थाओं और स्मारकोंके माध्यमसे उनके आदर्शोंका प्रचार और प्रसार किया जाय। साथ ही शती जयंतीको राष्ट्रीय स्तर पर इस रचनात्मक ढग तथा उल्लाससे मनाया जाय कि वह एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक महोत्सव बनकर हमारे जीवनकी तंद्रा और विमोहको भंग कर स्फूर्ति, चेतना, और अपने विचारोंसे भर दे। देशमें नव आलोक हो जाय तथा हमें उसके प्रकाशमें अपनी मानसिक गुत्थियोंको निवारण कर सत्पथकी पहचान एक बार फिर हो जाय।

स्मारक समितिका यह लक्ष्य है कि महामना मालवीयजीके आदर्श एवं मान्यताओंकी सिद्धिके लिए विविध प्रकारके कार्यक्रमोंका उनकी स्मृतिमें जगह जगह संचालन किया जाय, जैसे—

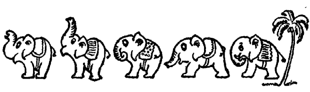
१— शिक्षा संस्थाओंकी स्थापना एवं स्थापित संस्थाओं का संचालन।

२— भारतीय संस्कृति एवं जीवन दर्शनकी रक्षा एवं प्रचारार्थ उचित संस्थाओं एवं संस्थानोंका संचालन।

३— इन समस्त कार्योंका आयोजन एवं संचालन, जिनके द्वारा उन अभीष्टों तथा आदर्शोंकी पूर्ति हो, जिसके लिए महामना जीवित थे।

इस समितिने अपने तात्कालिक कार्यके रूपमें यह भी निश्चित किया है कि महामनाकी आगामी शती जयंतीको एक राष्ट्रीय पर्वके रूपमें मनाया जाय तथा देश और प्रदेश के कोने कोनेमें मनाये जानेकी समुचित प्रेरणा प्रदानकी जाय तथा यथासाध्य सभी जगहके कार्यक्रमोंको समन्वय एवं सहयोग द्वारा उत्तमोत्तम एवं प्रभावकारी बनानेके लिए समिति माध्यम बने।

समितिकी उपर्युक्त स्थायी महत्वपूर्ण तथा देशकी वर्तमान अवस्थामें नितांत आवश्यक योजनाओंकी सिद्धिके लिए देशके उन सभी जनोंसे जिन्हें राष्ट्रका अभ्युत्थान तथा एकता, सांस्कृतिक परिपुष्टता, विशुद्ध शिक्षण परम्परा नैतिक एवं सदाचारपूर्ण जीवन, संस्कृत भाषा और साहित्यका संरक्षण एवं प्रचार, राष्ट्रभाषा हिन्दीके सामयिक विकास तथा इस गौरवमयी मातृभूमिकी दीर्घ और देदीप्यमान उपलब्धियोंके प्रति गहरी निष्ठा और अनुराग है हम हार्दिक अभ्यर्थना करते हैं। वे इस निधिके लिए अपनी उदार सहायताओंसे इस युग-प्रेरक कार्यको बल प्रदान करें। इस पवित्र महायज्ञमें आपकी श्रद्धा एवं उत्साह ही मूल्यवान् है। आपकी भावनाके इस अनुष्ठानसे आपके इस सांस्कृतिक नव जागरणसे, राष्ट्रीय एकताके निमित्त आज आपके प्रयाससे और इस युग पुरुष महामनाकी शताब्दीके शुभावसर पर श्रद्धांजलि-प्रदानसे अवश्य ही देशके महान् कल्याणका सूत्रपात होगा और इस पीढी तथा भावी पीढी के लोगोंके लिए कल्याणकारी होगा। उठें और गौरवमयी भारतमहीको यशस्वी बनानेके लिए महामनाकी इस महान् स्मृतिको चिरंजीवी करें।



दिनांक २३ अक्टूबर १९६१ ई०

(संस्कृति-सम्मेलन) श्री के. लक्ष्मण शास्त्री का

उद्घाटन भाषण

★

आदरणीय अध्यक्ष महोदय, श्रद्धेय विद्वद्गण, पूज्य सभासद्, देवियों सज्जनों !

आज मैं आग्रह करके हिन्दीमें बोल रहा हूं। मैं अहिन्दी भाषी प्रान्तका रहनेवाला व्यक्ति हूं। मेरे मित्र श्री वासुदेव द्विवेदीजीका अनुरोध है कि मैं हिन्दीमें बोलूं। मेरी टूटी फूटी भाषाको विद्वान् क्षमा करेंगे। दूसरी क्षमा प्रार्थना है कि मैं जो कार्य कर रहा हूं, वह किसी दूसरे योग्यतम विद्वान् द्वारा संपादित होनेवाला था, जिनके नहीं आनेसे यह मांगल्य कार्य मुझे संपादित करना पड रहा है। यहां बडे-बडे विद्वान् उपस्थित हैं। महामना मदन मोहन मालवीयजीकी इस शतवार्षिकी जयंतीमें वैदिक रत्न श्री सातवलेकरजीके सान्निध्यमें मुझे अपार प्रसन्नता है। महामना मालवीयजी संस्कृतिके प्रतीक थे। आज सारा भारत उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए यहां समवेत है। महामना, जो भारतीय संस्कृतिके प्रतीक और प्राच्य-प्रतीच्यके संगम थे, के समान महान् विद्वान दूसरा कोई नहीं हो सकता।

यह सरवारका ऐतिहासिक ऋषि-क्षेत्र, महर्षि वेदव्यास नगर पुण्य सलिला सरयूका पावन तट और पूज्य बाबाजीका दिव्य आश्रम सब कुछ अनुपम है। यहां मैं, महामनाके चरणों पर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

मैं यहां उपस्थित विद्वानोंके सामने नगण्य हूं। कुछ जानता नहीं। लेकिन मुझे अपना कर्तव्य तो पालन करना ही होगा।

भारतीय संस्कृति आजकी नहीं है। यह अति प्राचीन है। वैदिक कालसे इसकी गांठ बंधी है। वेदको हम भूल नहीं सकते। भूल कर हम अपनी संस्कृति और धर्मसे दूर जा पडेंगे और तब हमारा अस्तित्व भी नहीं बचेगा। संस्कृति और धर्म दोनों अभिन्न हैं। संस्कृतिके पालनसे धर्मका पालन होता है और धर्मके पालनसे संस्कृतिका। दोनों एक ही हैं। संस्कृतिमें दो तत्व हैं 'सम्' और 'कृ'। सम्का अर्थ होता है, चारों ओरसे, सम्यक् प्रकारसे और कृ का अर्थ होता है भूषित करना। संस्कृतिका अर्थ है, भूषण अलंकार। प्रत्येक देशोंके एक एक आभूषण हैं। जो देशवासी उसे नहीं जानते या भूल जाते हैं उनका अलंकार छिन जाता है। उनकी दशा आभूषण विरहिता विधवाकी तरह होती है। संस्कृति देशकी आत्माकी अलंकृति होती है। आत्माका भूषण होती है। हमारे एक एक काममें संस्कृति घुसी रहती है, समायी रहती है। संस्कृति प्रतिक्षण हमसे संलग्न रहती है।

आज हम अपनी संस्कृतिसे दूर होते जा रहे हैं। विदेशोंमें यहांके आधुनिक विद्वान् जब जाते हैं तो पाश्चात्यों द्वारा यहांकी संस्कृतिके बारेमें पूछे जाने पर वे मूक हो जाते हैं या गलत उत्तर देते हैं। सरकारको चाहिए। कि वह बडे-बडे विद्वानोंको जो संस्कृतिके प्रकाशनकी क्षमता रखते है— विदेशोंमें भेजे। आज प्रायः संस्कृतिसे अनभिज्ञ लोग बाहर जाते हैं और भारत तथा उसकी संस्कृतिको नाहक बदनाम करते हैं।

आजके विश्वमें वैज्ञानिक उन्नति चरम सीमाको पहुंच रही है। किन्तु संसारमें शान्ति नहीं है। संसार विनाशके कगार पर खडा है। संसारके लोग आज राधाकृष्णन् और जवाहर लालजीकी ओर आशा भरे नेत्रोंसे निहारते हैं।

यह सत्य है कि भारतीय संस्कृति ही आज विश्वमें शान्तिकी स्थापना कर सकती है, क्योंकि यह शान्तिकी संस्कृति है। भारतीय संस्कृतिमें सत्य, दया, शौच आदि गुणोंका समावेश है। मानवता और भारतीय संस्कृतिमें कोई अंतर नहीं है। भारतीय संस्कृतिके प्रचार-प्रसारसे ही आजकी त्रस्त मानवताका कल्याण संभव है। यह निर्विवाद है।

वैदिक सार्वभौम श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महोदयेभ्यः सादरं समर्पिता

पद्यनवरत्नाञ्जलिः

★

श्रीमान् श्रीपाददामोदरविबुधवरः सात्वलेवंशरत्नम्, प्रेयान् श्रेयान् वरीयान् कलिमलकलिले भारतेऽस्मिन् हि देशे। श्रौतस्मार्तप्रवक्ता तपसि च निरतो वेदवेदाङ्गवेत्ता, वेदे ब्रह्मण्यनन्ते चरति स सततं जीवतात् वेदमूर्तिः ॥ १ ॥

आयुष्यैस्त्रिभिरेव मानुषमितैर्यो ब्रह्मचर्यं चरन्, भारद्वाजमहामुनिः श्रुतिचयं ज्ञातुं पुरा नाशकत्। तं वेदं सरहस्यमप्यतितरां जानीत आयुष्ययम्, ह्येकास्मिन् सुकृती कृती गुरुकुलक्लिष्टो विशिष्टो मुनिः ॥ २ ॥

वेदानध्यैष्ट देवानतिथिपितृगणांश्चापि विद्वानयष्ट, छात्रानध्यापयन् यो विधिविहितविधीनाचरन् मन्त्रदर्शी। श्रौतं धर्मं प्रचारं नयति निशिदिवा लोककल्याणहेतोः, ब्रह्मर्षिस्सार्थनामा शतशतशरदो जीवतात् सातवलेयः ॥३॥

वंशः सात्वल एव नो, जगदिदं सर्वं तु सम्पावितम्, श्रीपादस्य हि जन्मनाऽऽत्मजनुषो दामोदरज्ञानिनः। सर्वं जीवितमेव येन विदुषा वेदप्रचारे स्वयम्, साऽऽनन्दं व्यतियाप्यते तमधुना सेवामहे सादरम् ॥ ४ ॥

एतादृक् पुण्यशीलं श्रुतिशुभसलिलैः क्षालयन्तं प्रपञ्चम्, गैर्वाणीं भूषयन्तं मुनिकुलतिलकं ब्राह्मणं ब्राह्मणानाम्। लोके सम्मान्यमेनं समुचितविधिना पूजयित्वा वयं स्मः, धन्यान् मन्यामहेऽस्मान् यदमलजनुषा पावितो भारतोऽयम् ॥ ५ ॥

पवित्रसरयूतटे भृगुवसिष्ठमुख्यर्षिसत्तपोविसरपाविते रघुवरेण सम्भाविते। तपोवनविराजिते सुकृतभारते भारते द्विजर्षिपद अर्च्यते प्रथितसात्वलेऽन्वितद्विजः ॥ ६ ॥

वैदिक सार्वभौम श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महोदयको सादर समर्पित

पद्यनवरत्नाञ्जलिः

★

सात्वलके वंशमें जन्म लेनेवाले, श्रीमान्, प्रीतियुक्त, मंगलकारी, श्रेष्ठ, विद्वानोंमें श्रेष्ठ, कलियुगके मल रूपी कीचडमें फंसे इस भारत देशमें श्रुति और स्मृतिके धर्मोंके उपदेष्टा, तपमें संलग्न, वेद वेदाङ्गोंके जाननेवाले, अनन्त वेद और ब्रह्ममें विचरनेवाले, वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर चिरंजीवी हों ॥ १ ॥

भारद्वाज मुनि मनुष्यकी तीन आयुओंमें भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जिस श्रुतिके रहस्यको नहीं जान सके, उसी वेदको गुरुओंकी कृपासे इस विद्वान् मुनिने एक ही आयुमें सरहस्य जान लिया ॥ २ ॥

वेदोंको इसने पढा, देव, अतिथि और पितरगणोंकी इसने पूजा की, और अब विद्यार्थियोंको पढाते हुए वेद समर्थित विधियोंका आचरण करते हुए लोक कल्याणके लिए रातदिन वेदधर्मका प्रचार करते हुए ' ब्रह्मर्षि ' पदवीको सार्थक करनेवाला यह सातवले कुल भूषण सैंकडों वर्ष जीवे ॥ ३ ॥

अपने समान ही उत्पन्न करनेवाले ज्ञानी दामोदरसे उत्पन्न होनेवाले श्रीपादके जन्मसे केवल सातवल कुल ही नहीं, अपितु सारा जगत् ही पवित्र हो गया। जो विद्वान् स्वयं ही वेद प्रचारमें अपना सारा जीवन आनन्दपूर्वक बिता रहा है, उसका हम आदर करते हैं ॥ ४ ॥

इस प्रकारके पुण्यशील, वेदके पवित्र जलसे सारे जगत्को निर्मल करनेवाले, संस्कृतको अलंकृत करनेवाले, मुनियोंके कुलतिलक, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ, लोकमें सम्मानके योग्य, तथा जिसने अपने जन्मसे यह भारत पवित्र कर दिया ऐसे इसकी विधिवत् पूजा करके हम अपनेको धन्य मानते हैं ॥ ५ ॥

तपोवनोंसे युक्त पुण्यशालियोंके देश इस भारतमें भृगुवसिष्ठादि महर्षियोंके तपसे पवित्र, रामके द्वारा सुशोभित पवित्र सरयू नदीके तटपर, सुप्रसिद्ध सातवलके वंशमें उत्पन्न विद्वान् को 'ब्रह्मर्षि' पदवीसे अलंकृत किया जाता है ॥ ६ ॥

ब्रह्मर्षिविरुदेनायं ब्रह्मर्षित्वमनेन हि ।
विभ्राजतितरां नूनमन्योन्यं जयतात् भुवि ॥७॥

ब्रह्मर्षिके पदसे यह और इससे ब्रह्मर्षि पद दोनों परस्पर एक दूसरेसे अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं, दोनोंको संसारमें विजय प्राप्त हो ॥ ७ ॥

एकं वेदं द्विवेदौ त्रितयमथ चतुर्वेदविद्याविभागान्, जानन्तः पूर्वमासन्निति भुवि शृणुमः कोविदाः शास्त्रकल्पाः । ते सर्वेऽद्य प्रभूताः जगति परिचिता नाममात्रप्रभूषाः,श्रीपादस्सत्यमभ्यर्हिततमविबुधस्सार्थवेदब्रह्मलोके ॥ ८ ॥

एक वेद, दो वेद, तीन और चारों वेदोंको जाननेवाले, शास्त्रोंमें निष्णात विद्वान् पहले इस भूमि पर थे, ऐसा हम सुनते हैं, वे सब भूतकालमें चले गए, अब तो संसारमें केवल नाम मात्रसे ही परिचित हैं, अब लोकमें श्रीपादने उन्हें सरहस्य जाना है ॥ ८ ॥

ब्रह्मर्षिविरुदभूषणमाद्यो हि ब्रह्मवित्सु पूज्योऽयम् । ब्रह्मप्रचारचतुरो जीवत्वब्दान् सहस्रमवनितले ॥ ९ ॥

ब्रह्मर्षिको पदवीसे भूषित, ब्रह्मको जाननेवालोंमें पूज्य, ज्ञानके प्रचारमें व्यस्त यह पृथ्वीपर सहस्रों वर्षोंतक जीवे ॥ ९ ॥

एवं विज्ञापयिता—
देवरहवा बाबा

आशीर्वाद दाता—
देवरहवा बाबा

卐 卐 卐 卐

सम्मेलनके अवसरपर कविवर 'जीवन', गोरखपुर, द्वारा पठित कविता

(१)
यह धन्य आजका दिवस आज की धन्य घडी,
रसधार–उंडेल रही उर-उर की पंखडियां ।
शूलोंकी काया बदल गई फूलों में,
मणियों की माला लिए राह की कंकडियां ।

(२)
मानस की उठती नई उमंग तरंगें क्यों,
अभिनव आशाओं का होता नव नर्तन है ।
छाया प्रकाश, छंट गये तिमिर के वे बादल,
क्यों हंसता ही हो गया प्रकृत परिवर्तन ।

(३)
यह निर्मल नभ, धुली धरा, यह मंद पवन,
दर्शन के प्यासे पपीहरों की यह बोली ।
क्यों लालायित सी उमड उठी उल्लास भरी,
श्रद्धा समेत उत्सुक जनता की यह टोली ।

(४)
यह महामना की शती–जयंती का दिन है,
गुंजन है गत के गायन, गौरव–गीतों का ।
तर्पण सुधियों का, और समर्पण साधों का,
दर्पण धुंधले से चित्रों का, मन चीतों का ।

(५)
यह महामना, जिसकी सुकीर्ति की धारा मे,
जन–जन के मनका पाप–पंक धुल जाता है ।
जडता से विजडित और विकुण्ठित प्राणों का,
अंतर का बंद कपाट–कंठ खुल जाता है ।

(६)
यह शती–जयंती जाग्रत युग के जीवन की,
सम्मान सुलभ यह रम्य राष्ट्र के नेता का ।
यह प्रेम प्रसारक, मारक मन की कुण्ठा का,
स्मारक पौरूष का, पावन पुण्य प्रचेता का ।

(७)
पावन सलिला सरयू का तट यह शुचि आश्रम,
यह महामना की शती–जयंती की वेला ।
कितना अद्भुत, कैसा महान् अनुपम अभिनव,
संतों का, विद्वानों का यह मंजुल मेला ।

(८)
हर नगर और हर डगर हास उल्लासमयी,
यह दिव्य ज्योति का जाल-जागरण जगर मगर ।
श्रुतियों–स्मृतियों, वेदों के और पुराणों के,
विश्वासों का आवास बन गया व्यास–नगर ।

(९)
यह ध्येय, धारणा और धर्म से भरी हुई,
यह मानवता की हरी भरी सी कर्म भूमि ।
उगते ब्रह्मर्षि–महर्षि और राजर्षि जहां,
पावन प्रसिद्ध यह सिद्ध संत की कर्म भूमि ।

(१०)
रुक गयी रजोगुण और तमोगुण की धारा,
सात्विकता की लहरें उठतीं मन मानी हैं ।
स्वाभाविक वैर विरोध भूल कर साथ–साथ,
सब जीव पी रहे एक घाट पर पानी हैं ।

(११)
यह गौतम, गर्ग, वशिष्ठ, पराशर की धरती,
भृगु–भरद्वाज शांडिल्य धरा है उठी फूल ।
इस योगिराज के व्यास नगर में पड़ी आज,
उस महाराष्ट्र के सुधी संत की चरण–धूल ।

(१२)
उत्तर प्रदेश का महाराष्ट्र का मधुर मिलन,
आमोद मग्न हो रहे जगत के जड जंगम ।
सरयू से आकर भीमरथी है मिली आज,
तुलसी-कबीर से ज्ञानेश्वर का यह संगम ।

(१३)
शुचि ओस कणों से नभ गंगा की बूंदों से,
विकसित सरोज सेवित सरिता के कूलों से ।
कर रहीं शरद सानन्द अतिथि का यह अर्चन,
हर सिंगारों के नव हारों से फूलों से ।

(१४)
रसपुंज हरे हर कुंज–कुंज की क्यारी में,
मर रहे प्रभा पावन कमनीय कुसुम से हम ।
तुम निरुपमेय उपमान तुम्हारा कौन कहां,
तुम सबमें फैले हुए स्वयं में गुम से हो ।

(१५)
भूली सी वेद–ऋचाओं भूले भावों का,
युग के कंठों से महोच्चार फिर जाग उठे ।
जिसमें आत्मा का रसोद्रेक अभिनव अभेद,
प्राणों की पावनतम पुकार फिर जाग उठे ।

(१६)
हम स्वागत में क्या धरें कहां फल फूल यहां,
वन मार्गों में हैं भरे बबूल बबूल यहां ।
इस योगिराज की पुण्य कुटी में तो केवल,
यह रखी राख है और धरी है धूल यहां ।

(१७)
तुम आगत और तथागत की यह तपोभूमि,
स्वागत अंतर में भरे मनोरम भावों का ।
पढ रहे कि जिसमें हम प्रसार मानवता का,
स्वागत पथ पर बढ रहे प्यार के पांवों का ।

(१८)
युग संचित–वंचित प्यार हमारी त्रुटियों को,
मिल गया आज दैवी दुलार का दामन है ।
यह प्रेम–बट जिस पर विराट् में बदल गया,
करुणा–उदारता और दया का दामन है ।

(१९)
हम देख रहे इस ओर सुदामा का तंदुल,
व शबरी के जूठे बेर विदुर की भाजी है ।
हम देख रहे आ रही उधर से प्यार भरी,
वह राम श्याम की गरीबनेवाजी है ।

(२०)
यह पलक पांवडे पथ में खडी बिछाये जो,
स्वागत करती वह अगणित जनता कल्याणी
श्रीमान् गा रही स्वागत गान तुम्हारा है,
लो मुक्त कंठ से उत्कंठित कवि की वाणी ।

(२१)
तुम युग–युग के आह्वान तुम्हारा स्वागत है,
तुम मानव महिम महान् तुम्हारा स्वागत है ।
हम भक्तों के भगवान् तुम्हारा स्वागत है,
स्वागत है हे श्रीमान् तुम्हारा स्वागत है । • • •

महर्षि वेदव्यास नगरमें महामना मालवीय शती जयंतीके अवसरपर, २४ अक्टूबर १९६१ को, ९ बजे पूर्वाह्नमें आयोजित विद्वद्गोष्ठीमें देशी-विदेशी विद्वानोंके भाषण—

गत २४ अक्टूबरको ९ बजे पूर्वाह्णमें, आदरणीय श्री पं. गणेश शास्त्री शेण्ड्ये सभापति विद्वत्सभा पूना, की अध्यक्षतामें

संस्कृत भाषाके प्रचार एवं प्रसार और विद्वद्वर्गका दायित्व

विषयपर किए गए विचारोंका संग्रह

*

श्री पं० वासुदेवजी द्विवेदीका भाषण—

सर्वप्रथम श्री पं. वासुदेवजी द्विवेदी शास्त्री, वेदशास्त्री, साहित्याचार्य, संस्थापक सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय टेढीनीम, वाराणसी,ने सरल एवं प्रवाहपूर्ण संस्कृत भाषामें सबका स्वागत करते हुए संस्कृत भाषाके अनन्यतम महत्व पर आकर्षक भाषण दिया। आपने कहा कि संस्कृत भाषाका महत्व सर्वाधिक है। अंग्रेज चले गये, किन्तु आज उनकी भाषाका आधिपत्य हमारी मानसिक दासताका द्योतक है। हमें सारी बाधाओंको दूर करके संस्कृत भाषाके प्रचार एवं प्रसार कार्यमें जुट जाना चाहिए। घर-घरमें संस्कृतका प्रचार होना चाहिए। यह एक महान् कार्यक्रम है। अनेक बाधाओंकी चर्चा करते हुए आपने संस्कृतके विद्वानोंका आवाहन किया कि उनका ही यह सबसे बडा दायित्व है कि वे बाधाओंके निराकरण पर सोचें और उन्हें निराकृत करनेमें सफलता प्राप्त करें। हमारे वेद, रामायण, महाभारत और गीता आदि सभी सांस्कृतिक एवं धार्मिक ग्रंथ संस्कृत भाषामें ही हैं। इन ग्रंथोंसे हमें और हमारे परिवारको सुपरिचित रहना चाहिए। यह बहुत आवश्यक है। पुनः आपने अपने दीर्घ भाषणके पश्चात् संस्कृत भाषाके प्रचार पर बहुत जोर दिया।

डा. वीर राघवाचार्यजीका भाषण—

डा. वीर राघवाचार्य, प्राध्यापक, रामानुज वेदान्त चामी राजेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय, बैंगलोरने अत्यंत ललित संस्कृत भाषामें भाषण दिया। आपने अपने भाषणमें अपने प्रान्तमें संस्कृत भाषाके अध्ययन-अध्यापनकी स्थितिका सिंहावलोकन कराते हुए बतलाया कि आज यद्यपि स्थिति पहलेसे अच्छी है, तथापि जीविकाके प्रश्नके संदर्भमें संस्कृत की ओर लोगोंका झुकाव कम देखनेमें आता है। धुरंधर संस्कृतके विद्वान् भी अपने पुत्र पौत्रोंको संस्कृत नहीं पढाते क्योंकि वे जानते हैं कि इस भाषाके अध्ययनसे अच्छी-अच्छी नौकरियां नहीं मिल सकतीं। लंबे वेतन नहीं प्राप्त हो सकते। इस प्रकार दीर्घकालसे आती पंडित-परंपरा भी नष्ट होती जा रही है। इस समस्याका भी हल होना ही चाहिए। संस्कृत पढे-लिखे लोगोंका भी उत्तम सम्मान होना चाहिए और उनके जीविकाका प्रबंध होना चाहिए। संस्कृत भाषा गौरवपूर्ण है। इसके द्वारा ही ऐक्यकी

स्थापना संभव है। भावनात्मक ऐक्यकी स्थापना भी संस्कृत वाणीके द्वारा ही संभव है। इसका विस्तार कामरूपसे कन्याकुमारी तक है। संस्कृत भाषामें हमारे वेद, उपनिषद्, पुराण, और काव्य आदि अभिव्यक्त हैं। यह भारतीय आत्माकी भाषा है इसके प्रचलनसे ही एकात्माकी दृढ स्थापना हो सकती है।

आचार्य श्री त्रिनाथ शर्मा एम्.ए. का भाषण—

उत्कलके निवासी आचार्य त्रिनाथ शर्मा एम्. ए., प्राध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, ने अत्यत मधुर स्वरमें 'जय जय देव हरे' गीत गोविन्दके पदको सुनाते हुए संस्कृतके माधुर्य पर प्रकाश डाला। आपने कहा जिस क्षेत्रमें मिट्टीके स्थान पर शर्करा हो, शहदकी वृष्टिसे वह संसिक्त हो, नवनीतका स्वाद हो और पानीके स्थानपर अंगूरका रस हो, उसमें जो गन्ना उत्पन्न हो, उसके फलके माधुर्यसे कदाचित् संस्कृतकी मधुरताकी समानता हो सके। आपने 'अपिऽग्रावारोदित्यपि गलतिवज्रस्य हृदयम्' कहते हुए कहा– ऐसी मधुर भाषा और सांस्कृतिक भाषाका अध्ययन–अध्यापन आज संतोषजनक स्थितिमें नहीं है। आज अच्छी नौकरी और लंबे वेतनके लोभमें लोग संपूर्ण भाषाओंकी जननी और आत्माकी भाषा, संस्कृत भाषासे पराङ्मुख होते जा रहे हैं। आज संस्कृत पढनेवालोंका सम्मान भी नहीं होता। अर्थोपार्जक वेतन नहीं मिलते। संस्कृत प्रचारमें बाधक इस बाधाको दूर करना अनिवार्य होना चाहिए। संस्कृत पढनेवालोंको अन्य भाषाओंमें भी पारंगत होना चाहिए। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ १८ भाषाओंके विद्वान् थे। उनके पिता १४ भाषाओंके।

जब लडके पढने जाते हैं तो उन्हें 'बरगदके भूत' की तरह भयमें डाला जाता है कि संस्कृत कठिन भाषा है। उन्हें कामर्स, इकोनामिक्स आदि पढनेकी राय दी जाती है। लेकिन संस्कृत भाषा सभी भाषाओंसे सरल है और तीन महीनेमें सीखी जा सकती है। इस पर पंडितोंको भी ध्यान देना चाहिए। विद्यार्थियोंके पहुंचते ही उन्हें लघुकौमुदी कंठ करनेके लिए कह देना अमनोवैज्ञानिक प्रणाली है। इसके अतिरिक्त तीक्ष्ण बुद्धि विद्यार्थीको लोग संस्कृत नहीं पढाते। इसे दरिद्रकी भाषा मानते हैं और इसलिए ही जो बुद्धिसे दरिद्र होता है, उसे ही इसे पढाया जाता है। संस्कृत भाषा सभी भाषाओंकी मूक जननी है और हमारे जीवनमें सब ओर अनुस्यूत है। इसका ज्ञान जीनेके लिए अनिवार्य है यह परमेश्वरका वरदान है। इसमें जो पढा जाता है, वही लिखा जाता है, जो लिखा जाता है वही पढा जाता है। यहां 'मनसि अन्यत् वचसि अन्यत्' का विधान नहीं है।

इसके अतिरिक्त इसके पढने-पढानेमें एक नियम होना चाहिए। उत्कलसे या अन्यत्रसे पढ कर आनेवाले विद्यार्थीका नाम, यदि वह मध्यमा पास हो तो वाराणसेय संस्कृत विश्व विद्यालयमें भी शास्त्रीमें ही लिखा जाना चाहिए। यह नहीं होना चाहिए कि उसे पुनः संस्कृत विश्वविद्यालयकी मध्यमा परीक्षा पास करनी पडे। भारतवर्षके सभी प्रांतके विद्वान् एक हों और समवेत स्वरमें संस्कृतके उन्नयनकी आवाजको ऊंची उठायें। पारस्परिक विरोधोंको भूलकर संस्कृत प्रचार–प्रसारकी बाधाओंको दूर करना चाहिए और मानव उन्नति एवं कल्याणके लिए संस्कृतके सार्वभौम प्रचारमें लग जाना चाहिए।

श्री एम्. एच्. शास्त्री का भाषण—

महोपाध्याय श्री एम्. एच. शास्त्री, प्राध्यापक, संस्कृत कालेज त्रिवेन्द्रम, ने अपने विद्वतापूर्ण भाषणमें संस्कृतकी गौरव–गरिमाका मनोहर वर्णन किया। सरदारके इस पुण्याचलका आपने बखान किया और कहा– देववाणी मूल भाषा है और सभी भाषाएं उससे प्रसूत हैं। समग्र भाषाएं उससे ही परिपुष्ट हो रही हैं। यह सूर्य प्रकाशकी तरह प्रकाशित है। भारत देशकी यह भाषा है। इसी देशसे, इसी भाषाके माध्यमसे सार्वभौम एवं सार्वभूत सिद्धान्तोंका प्रसार हुआ है। यह माता है। माताकी उपेक्षा अनिष्ट कर होती है। इसकी सेवा करेंगे तो यह सर्वथा अनुग्रह करनेवाली है। हम संस्कृताभिमानी जनोंको संस्कृतकी महिमाका प्रसार करने में जुट जाना चाहिए।

श्री चन्द्रवर्ण (कम्बोडिया) का भाषण—

कम्बोडियाके प्रतिनिधि श्री चन्द्रवर्णजीने भाषण किया। आपने कहा मैं कम्बोडियासे आया हूं। कम्बोडिया और

भारतका संबंध सर्वविदित है। आप विद्वानोंके समक्ष मैं क्या बोलूं ? मैं आप लोगोंके सामने लडकेके तुल्य हूं। भारतीय सभ्यता, संस्कृति और संस्कृतसे हम नितान्त प्रभावित हैं। मैं यहां अनुसंधान करता हूं। मुझे पदे-पदे अपने अनुसंधान में संस्कृत भाषाकी जानकारीकी आवश्यकताका अनुभव होता है। कम्बोडिया भाषाके ४५ प्रतिशत शब्द संस्कृत भाषाके हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृतिका ज्ञान संस्कृतके अभावमें कदापि संभव नहीं है। मैं आप लोगोंका कृतज्ञ हूं कि आप लोगोंने मुझे यहां उपस्थित होनेका अवसर प्रदान किया।

श्री के० लक्ष्मण शास्त्री का भाषण—

आकर्षित व्यक्तित्वसे संपन्न और परम विनोदी श्री के० लक्ष्मण शास्त्री विशेषाधिकारी, संस्कृत शिक्षा विभाग, आन्ध्र सरकार, हैदराबादने अपना आह्लादकारी भाषण दिया। आपने कहा कि मेरे मित्र श्री पं. वासुदेव द्विवेदी शास्त्रीजीने जिस उद्देश्यसे यह सार्वभौम संस्कृत-प्रचार-सम्मेलन किया है, उनका उद्देश्य सफल होगा। संपूर्ण एशियाकी संस्कृति एक है और उसका अक्षय भंडार संस्कृतमें ही सुरक्षित है। संपूर्ण एशियाके लिए संस्कृतका ज्ञान अनिवार्य है। संस्कृत भाषाका सारे संसारमें प्रचलन है। यहां जो विभिन्न प्रान्तोंसे और विदेशोंसे भी विद्वान् आये हैं, केवल संस्कृत भाषा और उसके सम्मेलनके आकर्षणसे ही। अन्य किसी भाषाके सम्मेलनमें कदाचित् ये लोग नहीं आते। संस्कृत भाषाकी सार्वजनीनता एवं सर्व प्रियता इससे स्पष्ट है। सभी विद्वानोंको संस्कृत भाषाके प्रचारमें जुट जाना चाहिए। हमारे मित्र पं. वासुदेवजीने संस्कृत प्रचारमें अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया है। घर, कुटुम्ब और दारा सबका परित्याग करके यह सन्यासी संस्कृत प्रचारके पीछे दीवाना बना है। न रहनेका ठिकाना, न खानेका, फिर भी यह अचल व्रती अपने मार्ग पर चलता जाता है। सार्वभौम संस्कृत-प्रचार-कार्यालयसे हर साल छोटी-छोटी उपयोगी संस्कृत पुस्तकोंका प्रकाशन कराता ही रहता है। इनका यह कार्य महान् है। जनता इनकी ऋणी है। फिर आपने 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' की व्याख्या करते हुए सभापति शेंडेजीकी विद्वता और तज्जन्य उनके समादरकी चर्चा की।

श्री बदरीनारायण मिश्र का भाषण—

प्रसिद्ध देश भक्त और क्रान्तिकारी नेता तथा इस महान् मालवीय शती जयंतीके आयोजक श्री बदरीनारायण मिश्रने अपने भाषणमें संस्कृतके प्रचार-प्रसारके लिए उत्साह वर्धक बातें कहीं। आपने कहा- भारतीय जीवन संस्कृति और स्वतंत्रताकी रक्षाके लिए संस्कृतको 'बहुजन वेद्य' बनाना बहुत जरूरी है। आर्थिक बाधाएं कोई बहुत बडी बाधाएं नहीं हैं। आप आगे बढे। मैं चाहता हूं कि संस्कृतको ऐसी सरलता आप लोग प्रदान करें कि वह राष्ट्र भाषाके पद पर आसीन हो सके।

श्री पं. गणेश शास्त्री, शेण्डेका भाषण—

अन्ततः सभापति श्री पं. गणेश शास्त्री शेण्डेने अत्यंत सरल संस्कृतमें अपना महत्वपूर्ण भाषण दिया। आपने कहा कि विद्वानोंने अत्यंत तत्वपूर्ण भाषण दिये। संस्कृतिकी रक्षाके लिए धर्मकी रक्षा बहुत जरूरी है और धर्मके ज्ञान और उसकी रक्षाके लिए 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' के अनुसार वेद रक्षण अनिवार्य है। वेद रक्षणका अर्थ उनका अध्यापन पठन-पाठन आदि है और इसके लिए संस्कृत भाषाका ज्ञान बहुत आवश्यक है। वेदोंके रक्षणके लिए पुनः वेदोंका विभाग करना आवश्यक हो गया है। हमारे सभी संस्कार वेदोक्त हैं। धर्म रक्षणका महत्व अप्रतिम है। आज हम-लोग (इतनी विशाल जनसंख्या) श्री देवरहवा बाबाके दर्शनोंके लिए समवेत हुए हैं, इसका क्या कारण है? इस लिए कि बाबाके पास बहुत रुपये हैं ? या वे राजा महाराजा हैं ? नहीं, उन्होंने धर्मका रक्षण किया है। जिनके मूक वेद हैं, जिनकी रक्षा संस्कृत भाषाके प्रचार-प्रसारके द्वारा ही संभव है।

आज शासकोंने हमारे राज्यको धर्म निरपेक्ष कहा है, किन्तु उसका अर्थ धर्म हीनता कदापि नहीं है। इसका अर्थ सभी धर्मोंका संरक्षण ही है। हां आज अंग्रेजी भाषाका प्रभुत्व दिखाई पडता है, जो निश्चय ही हमारी मानसिक दासताका द्योतक है। विद्वानोंको इधर ध्यान देना चाहिए। उन्हें संस्कृत साहित्यको समृद्ध बनाना चाहिए। संस्कृत साहित्यको आधुनिक दृष्टिसे समृद्ध करना होगा। अंग्रेजीकी प्रधानता नष्ट होगी-नष्ट होगी,, नष्ट होगी।

अंग्रेजी देशकी भाषा नहीं है, फिर भी इसका प्रभुत्व है इससे स्पष्ट है कि हम अभी स्वतंत्र नहीं हुए। कुछ लोग दलील देते है कि अंग्रेजी उन्नतिके लिए आवश्यक है, किन्तु आज रूस उन्नतिके शिखर पर है, जापान भी है, अन्य देश भी हैं जो उन्नत हैं, किन्तु अंग्रेजी भाषा नहीं बोलते-लिखते, अतः यह दलील झूठी है कि अंग्रेजीके बिना उन्नति रुक जायेगी।

मालवीयजी राष्ट्रीयताके परम पुजारी थे। लंदन गये तो गंगा जल भी लेते गये। वहां पूछने पर बताया कि मैं गंगा जलमें पकाया अन्न ही खा सकता हूं। आज उसी पवित्रात्माकी शती जयंतीके अवसर पर हमें अपनी राष्ट्रीयताको स्मरण करना चाहिए और अंग्रेजीके प्रभुत्वको हटाना चाहिए। हिन्दी राष्ट्र भाषा है, किन्तु इसकी समृद्धि और उन्नति भी संस्कृतकी उन्नति और समृद्धि पर ही निर्भर है।

इस दिशामें श्री वासुदेवजी द्विवेदीके प्रयत्न प्रसंशनीय हैं। उन्होंने छोटी छोटी तमाम सुलभ पुस्तकें संस्कृतमें लिखी हैं। जिनमें संस्कृतको बिल्कुल सरल बोल-चालके रूप-में प्रस्तुत किया है। उनके प्रचारसे संस्कृतमें बडी सहायता मिलेगी।

संस्कृत भाषा संसारकी सभी भाषाओंसे बोलने, लिखने और सीखनेमें सरल है। पंडितोंको इसके प्रचार-प्रसारमें जुट जाना चाहिए। अपना हर कार्य संस्कृतमें करना चाहिए। पत्राचार संस्कृतमें ही होना चाहिए। संस्कृत वाङ्मयकी रक्षासे ही मानवताकी रक्षा हो सकती है, इसे हमें स्मरण रखना चाहिए। धर्म ही मानवताका संवर्धक है, जिसका निर्वचन और पोषण वेदोंमें है और वेदकी भाषा संस्कृत है।



महामना मालवीयजी

महामना मालवीय शती जयंती प्रथम समारोहके अवसरपर

सार्वभौम संस्कृत-प्रचार-सम्मेलन में

स्वागताध्यक्ष-
आचार्य श्री केशवचन्द्रजी मिश्र, एम. ए., बी. टी., साहित्यरत्न,

प्रधानाचार्य-
मदनमोहन मालवीय महाविद्यालय, भाटपार रानी, देवरिया (उ. प्र.) का

स्वागत भाषण

*

आदरणीय सभापतिजी, विद्वद्वृन्द प्रतिनिधिगण, देवियों तथा बंधुओं।

आज महामनाकी पुण्यशतीके इस दुर्लभ अवसर पर आप महानुभावोंका यह अभूतपूर्व और अत्यंत आनन्द मय संगम, हमें आनन्दाभिभूत कर रहा है। महामना, यद्यपि पार्थिव शरीरसे आज हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु उनका दिव्य विग्रह आज भी संस्कृति एवं संस्कृतके उत्थान एवं उत्कर्षकी दिशामें सर्वत्र विद्यमान् दिखायी पड रहा है। यह परम रमणीय सत्य है कि पीयूष तरंगिणी सरयूके इस पुनीत तटपर, योगिराज श्री देवरहवा बाबाकी आध्यात्मिक तपोभूमिमें, आज यह अन्यतम और अलौकिक सज्जन एवं विद्वन्मण्डलीके शुभ समागमसे जो 'महान् तीर्थराज' साकार हो रहा है, उसका निमित्त वह महान् आत्मा ही है। आज उस महर्षि और आप महात्माओंका अपूर्व अद्वैत, हमें कृतकृत्य बना रहा है। हम बारंबार आपका हृदयसे स्वागत करते हैं और आपसे तथा परमेश्वरसे हमारी यही प्रार्थना है कि हम बराबर आपका स्वागत करते रहें। हम सदा आपके प्रकाशप्रद दर्शनोंसे प्रकाश पाते रहें। आपका सतत स्पृहणीय स्वागत करके पुनीत होते रहें। आज यह उक्ति—

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः
कालेन फलते तीर्थः सद्यः साधुसमागमः।

अक्षरशः प्रत्यक्ष और चरितार्थ हो रही है और आज आप महानुभावोंके बीच आजके विश्वकी स्थितिको देखकर, जहां फिर सत्य आवृत्त हो गया है पुनः हमारा अन्तरतम यही कह रहा है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

सत्य आवृत हो गया है। आवरण भी सुनहला है। पर्याप्त मोहक है। वह आवरण स्वार्थका है, जिसे हटाना दुष्कर है। हम भारतवासियोंके लिए भी दुष्कर हो रहा है। हमारे लिए यह दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण तो है ही, आश्चर्यजनक भी है। ऐसा इसलिए कहना पड रहा है कि जिस मिट्टीसे हम उभडे हैं, उसके आकाश, वायु, अग्नि, और जलमें-अणु परमाणुओंमें भी 'योऽसौ पुरुषः सोऽहमस्मि' और 'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एवानुपश्यति, सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति' की ध्वनियां तद्गत एवं तद्भूत हो रही हैं, तथापि हम लोग 'आत्महनोजनाः' की ओर उन्मुख हो रहे हैं।

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृतिके हेमाभ आवरणसे हम सर्वात्मना आवृत हो रहे हैं। यह सब होनेके बाद भी हम 'आत्महंता' होनेसे बच जाते, यदि हम अपनी भारतीसे विमुख नहीं होते। हमारी आत्मा तो हमारी भारती सुर-भारती-से ओतप्रोत है, अनुस्यूत है और हम उससे दूर

बहुत दूर जा पडे हैं। सत्य आछन्न हो गया है। उसे ही खोलना है और यह आप विद्वद् वरेण्योंके सामर्थ्यकी ही बात है।

जिस अमर वाणीमें ' विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।' इस तत्वकी उद्घोषणा है, उसका ही उद्धार और उसके साथ ही संपूर्ण भारत क्या, संपूर्ण विश्वका उद्धार करना आप विद्या-सम्पन्नोंकी कृपा पर ही निर्भर है। संस्कृतवाणीके नवोन्मेषके बाद ही आजका भारत पुनः परस्पर विनाशोन्मुख विश्वको ' संगच्छध्वं, संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् ' और ' समानो मंत्रः, समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मंत्रं अभिमंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ' का महामंत्र प्रदान करके सबको प्रेम प्लावित एवं सहकारितामूलक नूतन जीवनकी ओर ले जा सकता है और नये अर्थोंमें नये समाजकी रचना कर सकता है।

आज संस्कृत भाषाकी स्थिति क्या है? उसके गौरवके अनुरूप, देश उसपर ध्यान नहीं दे रहा है। कुछ शिक्षा शास्त्री संस्कृत वाङ्मयके महत्वकी घोषणा अवश्य करते देखे जाते हैं, किन्तु वे भी माध्यमिक शिक्षा क्रममें संस्कृत भाषाके पठन पाठनका हार्दिक समर्थन करते हुए नहीं प्रतीत होते। तर्क यही दिया जाता है कि माध्यमिक शिक्षाक्रममें विविध विषयोंके भारसे विद्यार्थी स्वयं दबे रहते हैं। उस-पर भी संस्कृतका दुर्वह भार उनपर लादना वैज्ञानिक प्रणाली से बाहरकी बात है। किन्तु यह स्मरण रखनेकी बात है कि भारतीय दृष्टिकोणसे विचार करने पर संस्कृत केवल एक भाषा मात्र नहीं है, प्रत्युत वह भारतकी आत्माको वाणी प्रदान करनेवाली, उसके विविध युगीन ज्ञान–विज्ञान का अक्षय भण्डार भी है।

यह निर्विवाद और सर्ववादि सम्मत तथ्य है कि संस्कृत और भारतीय संस्कृतिमें निरंतर अभिन्न संबंध है। सहस्राधिक वर्षोंसे भारतीय आत्माको समभिव्यंजित करनेवाली और उसे अनुरंजित करनेवाली भाषा संस्कृत ही है। प्राणवान् भारतीय संस्कृतिने संस्कृत वाङ्मयमें ही अपनी आकृति और रूपका निर्माण किया है। इस वाङ्मयमें न केवल दार्शनिकों, कवियों एवं महर्षियोंने ही अपने विचारोंको प्रकट किया है प्रत्युत वैज्ञानिकों, चिकित्सकों और गणितज्ञोंने भी अपने विचारोंका वाहन इसी भाषाको बनाया है।

यह विस्मरणीय तथ्य नहीं है कि भारतकी संपूर्ण राज्य-भाषाएं, पूर्ववर्तिनी द्रविड भाषासे निर्गत भाषाएं भी, संस्कृत भाषासे प्रभावित एवं अनुप्राणित हैं। इन भाषाओंके शब्द-कोष, साहित्यरूप, कल्पना, पारिभाषिक शब्द, वाक्य एवं अलंकार शास्त्र भी संस्कृताश्रित ही हैं। इनकी भावी समृद्धि भी निःसन्देह संस्कृतकी समृद्धमें ही निहित है। आजकल संस्कृतका सर्वाधिक विरोध द्रविड कजगमके द्वारा हो रहा है। किन्तु इसकी प्रादेशिक भाषा तामिल भी संस्कृत भावापन्न है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रान्तीय भाषाओंकी लिपियों, शब्दकोषों विन्यासों, साहित्यस्वरूपों, छन्दशास्त्रों, शिल्पविधानों, कल्पना एवं अलंकार शास्त्रोंपर संस्कृतका निरंतर प्रभाव है और बिना संस्कृतका परिशीलन किये उनकी उन्नति असंभव है। संस्कृत ज्ञानके अभावमें इन भाषाओंका स्फुट ज्ञान ही संभव नहीं। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषद्, पंचतंत्र और हितोपदेशादिमें व्यक्त भाव एवं विचार संपत्तियाँ, संपूर्ण भारतकी संपत्तियाँ हैं। इसलिए संस्कृतको संस्कृत वाणी भी कहा जाता है। संस्कृत वाङ्मयके राम, सीता, हनुमान्, गणेश, कृष्ण, राधा, युधिष्ठिर, अर्जुन कर्ण और नारद इत्यादि-भारतके अन्य भाषाओंके भी चरित्र और पात्र हैं। वस्तुतः संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओंका मूल कोष है।

आज भारतीय शिक्षा शास्त्रियोंके सम्मुख यह महान् प्रश्न उपस्थित है कि भारतीय शिक्षा क्रमोंमें संस्कृतका क्या स्थान होना चाहिए।

कुछ विद्वानोंका यह मत है कि ग्रीक और लैटिन आदि भाषाओंकी भांति संस्कृत भाषा भी मृत है, उसका केवल शरीर मात्र ही शेष है, अतः अद्भुतालयके रूपमें उसके पुस्तकालयोंकी रक्षा की जा सकती है, किन्तु वह शिक्षाका विषय नहीं बनायी जा सकती है। किंन्तु यह मत सर्वथा युक्ति विरुद्ध है क्योंकि आंग्ल देशोंमें लैटिन आदि मृत कही जानेवाली भाषाओंका जो स्थान है, वही स्थान भारतमें संस्कृतका भी नहीं है। आंग्लदेशवासियोंसे लैटिन भाषाका कोई निकटतम संबंध नहीं है। संस्कृत भाषा न केवल संपूर्ण आधुनिक भारतीय भाषाओंकी प्रसविनी है प्रत्युत निरंतर सहचरी भी है। उनके साथ अनेक शताब्दियोंसे जीवित है। वह आज भी जी रही है आजकी भारतीय भाषाओंके साहित्यका वाल्मीकि, व्यास और कालिदाससे वही संबंध है जो वर्तमान आंग्ल साहित्यका चासर, मिल्टन और शेक्सपियरसे। कोई आंग्ल इन साहित्य-

कार्योंकी उपेक्षा नहीं कर सकता। आंग्ल भाषामें भी परिवर्तन होते रहे हैं और बहुत परिवर्तन हुए हैं। शब्दार्थ, लेखनशैली एवं भावनाओंमें भी परिवर्तन उपस्थित हुए हैं, किन्तु क्या इससे चासरकी भाषाको आंग्ल विद्वान् मृत कहते हैं? ठीक इसी प्रकार वाल्मीकि व्यास और कालिदासकी भाषाको भी भारतीय मृतप्रायः कैसे समझ और कह सकते हैं? यह विचारणीय बात है कि जो भाषा सुधाकर की सुधारश्मियोंकी तरह हमारे जीवनमें अभिव्याप्त है, उसे हम कैसे मृत मान सकते हैं। हमारे जन्मसे लेकर मरणपर्यंत जितने संस्कार हैं सबमें गीर्वाण वाणीकी आवश्यकता है दैनिक संध्या, तर्पण आदिमें वेदमंत्रोंका उच्चारण अनिवार्य है। हमारे आदर्श वाक्य संस्कृत मय ही होते हैं— तथा 'सत्यमेव जयते नानृतम्' 'अहिंसा परमोधर्मः' और 'वीरभोग्या वसुन्धरा' इत्यादि। हमारा संपूर्ण जीवन संस्कृत वाणीसे परिवृत्त है, उससे निकल जाना शक्य नहीं। जो भाषा इस प्रकार हमारे जीवनमें व्याप्त है, उसे कौन बुद्धिमान मृत कहनेका दुस्साहस कर सकता है? राष्ट्रके शिक्षा क्रममें कैसे इसकी उपेक्षा कल्याण कर हो सकती है?

कुछ ऐसे विद्वान् भी हैं जो देववाणीको संपूर्ण भारतीय भाषाओंकी जननी, अनन्त शब्दभंडारसे युक्त, भावाभिव्यञ्जनमें सक्षम और माधुर्य इत्यादि गुणोंसे अलंकृत देखकर इसे ही राष्ट्रभाषाके रूपमें भी प्रतिष्ठित करनेकी बात करते हैं। किन्तु इसपर व्यवहारिक दृष्टिसे विचार करना ही समीचीन होगा। ३५ करोड़ भारतवासियोंमें संस्कृतको समझने वालोंकी संख्या लक्षाधिक नहीं होगी। राज्य भाषा, राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो राष्ट्रमें 'बहुजन वेद्य' हो। अतः संस्कृत राष्ट्रभाषाके पद पर तभी प्रतिष्ठित हो सकती है जब उसमें 'बहुजन वेद्यता' आवे। हिन्दी या कोई भी भाषा राष्ट्रभाषाके पदका भार वहन नहीं कर सकती है, यदि वह संस्कृतका आश्रय नहीं लेती। जिस प्रकार प्राण बिना शरीर व्यर्थ होता है तद्वत संस्कृताश्रयके बिना हिन्दी या कोई अन्य भाषा जी सकनेमें समर्थ होगी यह संशयास्पद है। अतः माध्यमिक शिक्षा हो, या उच्च शिक्षा हो, संस्कृतका शिक्षण अनिवार्य है।

हमारा धर्म, इतिहास, भूत और भविष्य संस्कृत वाङ्मय से एकान्त रूपसे संबद्ध है। संस्कृत भाषासे सभी भारतीय लोग बहुत परिचय रखते हैं। संस्कृत लेखन और भाषणमें यथाशक्य सरल भाषाका उपयोग करना वांछनीय होना चाहिए। वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक विषयोंसे संबंधित मौलिक एवं प्रमाणिक ग्रंथोंका सरल संस्कृत वाङ्मयमें प्रणयन होना चाहिए। अनुवाद भी होना चाहिए। माध्यमिक विद्यालयों एवं महाविद्यालयोंमें आवश्यक रूपसे संस्कृतका शिक्षण चलना चाहिए। मूलतः वेदवाणी उतनी क्लिष्ट नहीं है, जितना लोग समझते हैं। उसे सर्ववेद्य बनानेके लिए उसको क्लिष्ट बनाने वाले कारणोंका निरास करना चाहिए। वेदोंकी पद रचना देखने पर उनकी सर्व वेद्यता स्पष्ट है, उदाहरणके लिये—

"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्" ॥ इस मंत्रको लीजिए। पदच्छेद करनेपर इसके सभी पद एकदम सुस्पष्ट हो जाते हैं। जैसे- 'अग्निम् ईळे पुरोहितं यज्ञस्य, देवम्, होतारं रत्न-धातमम्।' इसी तरह ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषद् आदिकी भाषाएं भी सुगम और सरल हैं। शतपथ ब्राह्मणके आरंभ वाक्यको देखिये- व्रतमुपैष्यन्, अन्तरेण, आहवनीयं च, गार्हपत्यं च प्राङ्तिष्ठन् अप उपस्पृशति। तद् यत् अप उप स्पृशति अमेध्यः वै पुरुषः। यद् अनृतं वदति। इन वाक्योंमें कितनी सरलता है। इसी तरह केन उपनिषद्के आरंभमें देखिये— केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति,' यह स्पष्ट है कि उपनिषत् कर्ताका लक्ष्य ज्ञानोपदेश है, पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं। वस्तुतः भाषाकी क्लिष्टतामें पाण्डित्य नहीं होता, विषयकी गंभीरता ही पाण्डित्य मूलक हो सकती है। मध्यकालीन दण्डी, बाण और माघ आदिने भी गौडी, पांचाली और वैदर्भी संज्ञक काव्य रीतियोंमें प्रसाद गुणयुक्ता वैदर्भीको ही महत्व दिया है। बहुलसमासान्ता गौडी तो केवल पाण्डित्य प्रदर्शनार्थ मान्य थी मनोभावोंको अभिव्यक्ति देनेके लिए तो भाषाकी सरलता ही श्रेयस्कर और उपादेय होती है। लिखा भी है—

वेदवाणीं समुद्धर्तुं यदि कल्पोऽस्ति ते कवे।
कवीनां सरलां रीतिं प्रसादाख्यं समाश्रय ॥

विज्ञान शिल्प इतिहास, और अर्थशास्त्रादिसे संबंधित सरल और प्रमाणिक ग्रंथोंका प्रणयन होना चाहिए। स्वयं हमारे यहां संस्कृत भाषामें भी प्राचीन कालमें भी नाना प्रकारकी विद्याओंका संग्रंथन हुआ है। छान्दोग्य उपनि-

षद्में इतिहास-पुराण-ऐकायन-देवविद्या- ब्रह्मविद्या-भूत-विद्या-क्षत्रविद्या-नक्षत्रविद्या-सर्पजन आदि विद्याओंकी चर्चा है। ऋषिमहर्षियोंने जड एवं चेतन संबंधी नाना प्रकारके प्रमाणिक ग्रंथोंका प्रणयन करके ज्ञानागारको समृद्ध किया है। आज भी संस्कृतके विद्वानोंका मन्तव्य और कर्तव्य होना चाहिए कि वे संस्कृत भाषाके बहुजनवेद्यशैली में आधुनिक ज्ञान-विज्ञानसे संबंधित उत्कृष्ट कोटिके ग्रंथोंकी रचना करें।

संस्कृत भाषाको सरल बनानेमें यथाशक्य लोक प्रचलित शब्दोंका उसमें प्रयोग होना चाहिए। भाषाओंको अलंकृत करने एवं उसमें कठिनतम पर्यायवाची शब्दोंका प्रचुर 'प्रयोग करनेसे उसकी क्लिष्टता बढ जाती है। दुर्बोध्य शब्दोंके प्रयोग बाहुल्यसे संस्कृत प्रचारमें बाधाएं उपस्थित होती हैं संस्कृतको सरल बनानेकी दिशामें उसके संधि-विधानको भी शिथिल बनाना उचित हो सकता है। जैसे 'रामागच्छति' के स्थान पर 'राम आगच्छति' कहना अधिक उचित होगा, 'गच्छञ्छृणोति' के स्थानपर 'गच्छन् श्रृणोति' इस तरहका प्रयोग उपयोगी होगा। अभिप्राय यह कि संस्कृत भाषाका साधारणीकरण होना चाहिए। विद्वद् वर्गके लिये यह सतत साध्य है। संस्कृत सांस्कृतिक वाङ्मय है। संस्कृति ही जातिकी जीवन्त प्राणधारा है, अतः संस्कृतमें सर्व सामान्यका प्रवेश ही हमारे कथनका अभीप्सित उद्देश्य है।

सच पूछिए तो इस शंका और संदेहको उठानेमें भी लज्जाका अनुभव होना चाहिए कि क्या संस्कृतका अध्ययन अध्यापन आवश्यक है? क्योंकि विदेशी विद्वानोंने भी सांस्कृतिक उन्नयन एवं उत्कर्षकी दृष्टिसे संस्कृत वेदाध्ययन एवं प्रसारको महत्वपूर्ण बतलाया है। इस संबंधमें कहीं कोई विचिकित्सा नहीं देखी जाती। आज जिस प्रकार अनेक देशके विद्यार्थी योरूप और अमेरिका आदि देशोंमें ज्ञान लाभके लिए जाते है, एवमेव प्राचीन कालमें प्रायः हजारों वर्ष पूर्व अन्य देशोंके छात्र भारतमें भी आया करते थे। संस्कृत वाङ्मयका अध्ययन एवं उसमें अभिव्यक्ति ज्ञान धारामें अवगाहन करना ही उनका उद्देश्य होता था। चीनी, यवन, पारसीक, अरबी और स्वर्णद्वीपमालाके विद्यार्थी भारत आकर संस्कृतका अध्ययन करके कृतार्थ होते थे। इसके लिए भारतीय विद्वान् भी बाहरके देशों द्वारा निमंत्रित किये जाते थे,। संस्कृत भाषा ही उस कालमें सभ्यताके रहस्यको बतलानेवाली भाषा थी।

राजनीतिक पराभव एवं तज्जन्य आर्थिक पराभव तथा विदेशी बर्बरोंके आक्रमणसे आक्रान्त होकर यहांके विद्यापीठोंके नष्ट हो जानेपर भी संस्कृत भाषा क्षीण नहीं हो सकी। आज भी योरप, जापान, अमेरिका और रूस आदि देशोंमें संस्कृतके अध्ययनका विशेष प्रबंध है और उसके लिए पर्याप्त द्रव्य राशिका व्यय होता है। संस्कृतके अध्ययनसे मानव जातिकी अतीत संस्कृति और सभ्यताका सर्वांगीण ज्ञान हो सकता है। विदेशियोंकी अपेक्षा हम भारतीयोंके लिए तो इसका अध्ययन अपरिहार्य है। अन्यथा हम अपनी संस्कृति, प्रादेशिक भाषाओंके तात्विक ज्ञान, कला, विज्ञान और इतिहास आदि संपूर्ण जीवनसे अपरिचित रह जायेंगे। हमारा सम्पूर्ण जीवन हमारे सामने एक पहेली ही बना रहेगा। यह सोचना-कहना अत्यंत समीचीन होगा कि जबतक हमारे चिन्तक, शिक्षाशास्त्री तथा लोकनायक संस्कृत वाणीसे अपरिचित रहेंगे, तब तक उन्हें अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्वका ज्ञान नहीं होगा और न उन्हें पूरी सफलता ही प्राप्त होगी। हमें अपने अतीतकी जानकारी होनी चाहिए। हमें उसे प्यार करना चाहिए और उस पर गर्व करना चाहिए। किन्तु कथमपि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अतीत भावनाकी दासत्व शृंखलामें बंधा जाए। कोई भी जाति या राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता और न तो उसे क्वचिदपि सफलता ही प्राप्त हो सकती है, जब तक उसे अपनी ऐतिहासिक चेतना, जातीय मनोवृत्ति और अपनी शक्ति सीमाका परिज्ञान नहीं। भारतीय चेतना, मनोवृत्ति एवं शक्ति सीमाकी जानकारीके लिए संस्कृत वाङ्मयका परिज्ञान अनिवार्य है। किसी भी भारतीय लोकनायकको इस तथ्यकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, यदि उसे राष्ट्र और जातिको प्रगतिकी ओर उन्मुख करना है। राष्ट्रपिता गांधीजी इसका माहात्म्य भली भांति जानते थे और उन्हें भारतीय चेतना तथा उसके भण्डार संस्कृतका ज्ञान भी था। वे बराबर संस्कृत विद्वानोंका सत्संग करते थे। भारत वर्षके भविष्यको भव्य बनानेके लिए, उसकी सर्वतोमुखी समुन्नतिके लिए, जातीय चेतनाके परिज्ञानका प्रबंध भी होना चाहिए और इस आधार पर एतदर्थ संस्कृतका अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार प्रसार नितांत आवश्यक है। भारतीयोंके आत्म दर्शनके लिए संस्कृत विद्वानोंका समादर और उनकी आर्थिक

स्थितिके पर्युंन्नयन पर भी समाज और सरकारको ध्यान देना चाहिए।

प्राचीन युगमें समाज स्रोतसे उद्भूत दान तरंगिणी संस्कृतके विद्वानोंको आप्लावित करती थी और उन्हें अर्थ-चिन्तासे मुक्त रखती थी। कुछ इस तरहकी नवयुगीन व्यवस्थाभी चिन्त्य है। प्राचीन संस्कृतके आचार्योंने जीवनके प्रत्येक क्षेत्रोंमें स्तुत्य एवं उल्लेखनीय कार्य प्रस्तुत किये हैं। आज भी संस्कृत साहित्यमें ऐसे महान् और ऊर्ध्वचेत विद्वान् विद्यमान हैं कि यदि उनका समीचीन उपयोग किया जाय तो उनके कार्य चमत्कारिक और आश्चर्यजनक रूपसे महान् होंगे। संस्कृत विपश्चितों-विद्वानोंको राज्याश्रयसे विच्छिन्न होना कल्याण कर नहीं हुआ। राज्याश्रयसे विच्छिन्न होनेपर भी, नाना कष्टाकीर्ण अवस्थाओंमें भी, हमारे आदरणीय पंडितों और मनीषियोंने संस्कृत साहित्यके संरक्षणके, जो स्तुत्य प्रयत्न किया है, उसे स्मरण कर हम कृतज्ञतासे भर उठते हैं। आज समाज स्रोतसे उद्गमित दान सरिता एवं राज्याश्रयकी स्थिति दोनों ही क्षीण दशामें होती जाती है। यह दुःखद है। इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। आंग्ल दासताने विचित्र शिक्षण व्यवस्थाको प्रचलित करके अपनी सभ्यता और संस्कृतिको उत्तमतम और महत्तम भारतीय संस्कृति एवं सभ्यताको हेय ठहरानेकी कुचेष्टा की थी, जिससे भारतीय मानस दिग्भ्रान्त भी हुआ। धीरे धीरे संस्कृत एवं संस्कृतके विद्वानोंके प्रति लोगोंमें उपेक्षाके भाव घर करते गये और इनका परिणाम निःसंदेह आत्मघातक सा हुआ। प्राचीन युगमें जो महत्तम स्थान हमारे यहांके संस्कृताचार्योंको प्राप्त थे, वे स्थान आंग्ल पंडितोंको प्राप्त हो गये। इंग्लैंड भारतके लिए 'प्रकाशस्तंभ' का काम करने लगा। तथापि संस्कृतके पूज्य विद्वानोंने संस्कृत भाषाको बचाये रखा। उपेक्षा और उपहासोंकी आंधीमें भी तपस्वियोंने ज्ञानदीपको निष्कम्प रखा। क्योंकि वे अपनेको लक्ष्मीका दास कभी नहीं और कथमपि नहीं मानते। उनके सामने यह सिद्धान्त अटल रूपसे विद्यमान रहा—

> निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
> न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

आज जब कि भारत स्वतंत्र है अपनी सरकार है, तथापि इन महान तपस्वी और धीर-गंभीर विद्वानोंका समुचित समादर नहीं हो पाता तो यह बहुत बड़ी ग्लानि और आत्मघातकी बात होगी। आज भी संस्कृत विद्यालयों, संस्कृतके अध्येताओं एवं आचार्योंकी दशा शोचनीय ही है। जो कुछ व्यवस्थाएं होती हैं, वे भी नगण्य हैं। संस्कृतका अध्ययन करनेवालोंको अन्य भाषा पढनेवालोंकी तुलनामें, कम सुविधाएं प्राप्त होती हैं। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हर क्षेत्रमें ऐसी विषमता विद्यमान है। फलतः संस्कृत अध्ययनकी ओर लोगोंका झुकाव कम होता जा रहा है और अपनी सांस्कृतिक भाषासे हम दूर हटते जा रहे हैं। संस्कृतज्ञको 'संस्कृतहा' कह कर उपहसित किया जाता है, नाना प्रकारके कारणोंसे आजका गृहस्थ भी दैन्य-जर्जर होनेके कारणसे एवं युग नास्तिक्यके प्रभावके कारण भी संस्कृतके विद्वानों एवं छात्रोंका समादर नहीं करता। हर तरफके आकर्षण लुप्त हो गये हैं। फलतः संस्कृतके अध्यापक एवं छात्र सबकी दशा शोचनीय हो रही है। स्वतंत्र भारतमें इस तरहकी परिस्थितिका उदय लज्जाजनक है।

यही कारण है कि आज बड़े बड़े विद्वान् भी, जिनके यहां आचार्योंकी परंपरा चलती रही है, अपने पुत्रों-पुत्रियोंको संस्कृत न पढा कर, वह विद्या पढानेको बाध्य हो रहे हैं जो लम्बे वेतनका भोक्ता बना सकती है। संस्कृतके उद्धार, उन्नयन एवं उत्कर्षके लिए समाज और सरकारको भी समुचित ध्यान देना चाहिए और उसके प्रति उत्पन्न निरर्थक उपेक्षाओंका उन्मूलन करना चाहिए। संस्कृताचार्योंको भी अपने पूर्वादर्शों और सरस्वतीके आदरकी भावनाको मिटने नहीं देना चाहिए। जब उन्होंने बड़ी बड़ी आपत्तियोंके सिन्धुको पार कर लिया तो अब उन्हें कदापि धैर्य नहीं खोना चाहिए। यह सत्य है कि उन्हें बड़ी निविड आशा रही होगी कि अपनी सरकार होने पर, वह हमारा महत्त्व स्वीकार करेगी और इसका अभाव देखकर वे हत संतुलन हो गये हैं किन्तु वे अपनी 'महत्तम विभूति' को न भूलें। अवश्य समय अच्छा आवेगा। उन्हें पथच्युत होनेकी आवश्यकता नहीं।

आज हमारे सामने अति महत्त्वपूर्ण प्रश्न यही है कि संस्कृतका व्यापक प्रचार कैसे हो। संस्कृत पाठशाला एवं विद्यालयोंके सुचारु संचालनके लिए पर्याप्त वित्तका प्रबंध होना सबसे बड़ी आवश्यकता है। अब तक ये पाठशालाएं और विद्यालय दानशील राजाओं, भूस्वामियों और सेठोंके

द्वारा संचालित होते थे। अब राज्य एवं भूस्वामियोंका उन्मूलन हो गया है और संस्कृत प्रचारमें सहायक यह स्रोत भी सूख गया है। सेठों द्वारा भी पर्याप्त सहायताकी आशा धूमिल ही है, क्योंकि प्रायः धनीवर्गके नवयुवक दानशील होनेके स्थान पर मद्यपान शील होते जा रहे हैं और उनकी संख्या भी न्यून होती जा रही है। कुछ थोडे नगरोंमें धनका केन्द्रीकरण भी होता जा रहा है। मध्यवर्गीय कृषकों और श्रमिकोंकी दशा भी अच्छी नहीं है। सभी स्रोत सूखे दिखाई पडते हैं। विद्यमान पाठशाला एवं विद्यालयोंका संचालन ही दुष्कर दिखाई पडता है नवीन एवं विद्यालयोंकी स्थापनाकी बात तो और भी उपहासास्पद कही जायेगी। यह स्पष्ट है कि आजका शासन एवं राज्य पहलेसे भिन्न है, मानव जीवनके विस्तृत क्षेत्र और समाजके तमाम महत्त्वपूर्ण सूत्रोंको उसने अपने हाथों मे ले लिया है, अतः उसे संस्कृतके प्रचार प्रसारमें सबके स्थान पर अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण ढंगसे व्यवस्था करनी चाहिए। उसे ही करना होगा। जब शासनमें समाजकी सम्पत्ति आत्मसात हो तो उसे समाजके सभी कार्योंका दायित्व भी योग्यता पूर्वक वहन करना चाहिए और संस्कृत प्रचार प्रसारके लिए वित्तकी व्यापक और प्रचुर व्यवस्था करना भी इसका ही कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त हमें यह तथ्य भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारी संस्कृति सहकारिता-मूलक है। विद्वानोंका भार गृहस्थों पर रहता आया है। और गृहस्थोंके मार्ग प्रदर्शनका भार विद्वानों पर रहा है। दोनों एक दूसरेका पोषण भी करते रहे हैं। इसे आज भी कायम रखना चाहिए। सरकार अपने कोषसे पर्याप्त वित्तकी व्यवस्था तो करे ही समाज भी अपनेको दायित्व मुक्त न समझे। इस तरहसे सहकार होने पर ही संस्कृतका प्रचार और प्रसार व्यापक रूपसे संभव है और संस्कृतके प्रचारसे भारतका कल्याण भी है। उद्योगपतियोंका भी तो कर्तव्य है कि अन्य सहायता तो करें ही, विश्वविद्यालयोंमें संस्कृतके अध्ययनके लिए विशेष पीठोंकी स्थापनाका भी प्रबंध करें और उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता प्रदान करके संचालित करें।

विदेशोंके उद्योगपति ऐसा अपनी भाषाओंके प्रचार और प्रसारके लिए करते है। सरकार द्वारा ऐसा प्रबंध होना चाहिए कि जैसे अन्य भाषा और साहित्यके विद्वान् आर्थिक क्षेत्रोंमें लाभान्वित होते हैं, संस्कृतके विद्वान भी उसी तरह लाभान्वित हों। वह इसकी व्यवस्था करें। वैषम्यका अंत हो। संस्कृत विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयोंमें संस्कृत विद्याके अध्ययनके साथ साथ आधुनिक, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र आदिका भी पठन पाठन हो ताकि संस्कृतज्ञ आधुनिक ज्ञान विज्ञानमें भी निष्णात हों और जीवनके हर क्षेत्रमें उनका उपयोग हो सके। सभ्यता के संरक्षणके लिए और क्या अधिक कहें, मानव जातिके संरक्षणके लिए अध्यात्मकी पृष्ठभूमिसे इसकी भाषा और उसके साहित्यका अध्ययन अनिवार्य है।

ईश्वरने संस्कृत भाषाके माध्यमसे अध्यात्म विद्याका दान करके मानव जातिका सर्वाधिक उपकार किया है और आज अध्यात्म एवं भौतिकवादका उचित समन्वयके द्वारा संसारका कल्याण करना भारत वासियोंका कर्तव्य है और यह कार्य संस्कृत वाङ्मयकी उपेक्षासे नहीं, प्रत्युत उसके सतत समृद्धिसे संभव है।

यही सत्य है जिसपर नाना प्रकारके आवरण पड गये हैं इसे निरावृत करना और महान संस्कृतिकी स्थापना करना आप सज्जनोंकी ही अनुकंपासे संभव है।

इस अत्यंत अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण कार्यको संपादित करनेमें आदरणीय श्री वासुदेवजी द्विवेदी, वेदशास्त्री, साहित्याचार्य, तथा उनके द्वारा संस्थापित एवं प्रवर्तित संस्था सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय, टेढी नीम, वाराणसीके प्रयत्न अत्यंत स्तुत्य और अविस्मरणीय हैं। गत अनेक वर्षोंसे द्विवेदीजी और उनकी संस्था अपने अथक त्याग और तपस्याके द्वारा संस्कृत वङ्मयके प्रचार एवं प्रसारमें लगी हुई है और आजके पुनीत सम्मेलनके पुरस्कर्ता भी वही हैं।

इस ज्ञानयज्ञमें आप महानुभावोंका पुनः पुनः स्वागत करते हुए मैं राष्ट्रकी इस महान कामनाका उद्घोष कर रहा हूं।

तेजो असि तेजोमयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहोऽसि सहो मयि धेहि।

दिनांक २४ अक्टूबर १९६१ ई०

सार्वभौम संस्कृत-प्रचार-सम्मेलन

में

श्री कुबेरनाथजी शुक्ल, प्रस्तोता, वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय

का

उद्घाटन भाषण

★

श्रद्धेय अध्यक्ष महोदय, विद्वद्गण, सज्जनों और देवियों।

मुझे आदेश मिला है कि मैं सार्वभौम संस्कृत प्रचार सम्मेलनका उद्घाटन करूं। यह हमारे लिए गौरवका विषय है। आज यह परम सौभाग्य और हर्षका अवसर है कि ऋषियोंके इस अतिप्रिय सरवार क्षेत्रमें, सरयूके पावन तटपर श्री देवरहवा बाबाकी दिव्य तपोभूमिमें, महर्षि वेदव्यास नगरमें पूज्य महामना मालवीयजीकी शती जयंती के मंगलमय अवसर पर सार्वभौम संस्कृत प्रचार सम्मेलन का आयोजन हुआ है। संस्कृत वाङ्मयकी महिमा प्रत्यक्ष है, फिर भी उसकी बड़ी उपेक्षा होती आई है, जो भारतके लिए ही नहीं-संपूर्ण विश्वके लिए-घातक हुई है। आज विज्ञानका बड़ा प्रचार है और उसका बहुत बोलबाला है। मानव चन्द्रलोककी यात्राके लिए तैयार है। इस विराट् वैज्ञानिक विकाससे सम्पन्न विश्वके समक्ष गरीब भारतके पास क्या है?

वह है, संस्कृत भाषाका गौरवमय साहित्य। केवल संस्कृत वाङ्मयने ही उसे इतना सम्पन्न बना दिया है कि वह इस मानेमें सबसे बड़ा धनी है। संस्कृत साहित्यमें प्रवाहित ज्ञान, धर्म और संस्कृतिकी धारा ही आजके मुमूर्षु विश्वको बचानेकी क्षमता रखती है। अनादिकालसे भारत के विद्वानों एवं ऋषियोंने लोक कल्याणके लिए जिन विज्ञानों एवं कलाओंका अन्वेषण किया, वह सब संस्कृत भाषामें सुरक्षित हैं। आजका विश्व जड़वादसे ग्रस्त है। उसे अंधकारमें मार्ग नहीं दिखाई पड़ता। संस्कृत भाषामें वह आलोक सुरक्षित है, जो उसे जीवन-मार्गकी ओर बढ़ानेमें समर्थ है।

भारतमें आज जितनी समस्याएं हैं, उनमें भाषाकी समस्या भी एक प्रबल समस्या है, जिसे प्रधान मंत्री सुलझा नहीं पा रहे हैं, किन्तु संस्कृतके प्रचार-प्रसारसे यह समस्या भी सुलझ सकती है।

विद्वानों और जनताका कर्तव्य है कि वह संस्कृत भाषा के पठन-पाठन एवं प्रचार प्रसारमें लग जाय। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय इस दिशामें प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। वहां संस्कृतके पंडितोंका सम्मान, अन्य भाषाके पंडितोंके समान ही है। संस्कृत वाङ्मयके प्रचारमें देशकी जनता और सुधी वर्गको सतर्क होकर लग जाना चाहिए। विश्वका-मानवताका-कल्याण संस्कृत भाषामें ही निहित है।

ॐ

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च नमः शंकराय च।
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥

विद्वद्वरेण्याः अस्माकं प्रीतिभाजः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महानुभावाः,

प्राक् कतिचिद् वर्षेभ्यः यदाऽयम् भारतः दासत्व शृङ्खलया निगडितः आत्मपरिच्छेदक राष्ट्रीय वैशिष्ट्य विच्छिन्नः, अज्ञानान्धेन तमसा प्रलुब्धः, आत्म-विस्मृति-कारिणीम् सरणीम् अनुव्रजन्, दुर्भेद्यग्रह ग्रंथिले हीनत्वे परिक्लिश्यंश्चासीत्, सम्परीक्ष्येमां सहृदय-हृदयविदारिणीम् विषमावस्थाम् समुद्धर्त्तुम् भारतीयाम् संस्कृतिम्, संस्थापयितुम् च प्राक्तन भारतीय जीवन पद्धतिम्, 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' इति महत् सत्यं दृष्टं भवद्भिः। पुनश्च श्रीमद्भिः प्रतिज्ञाय दुस्सहं तपः, अङ्गीकृत्य दृढव्रतं, तत्त्वमूलानां निखिलसांगनिगमानां सम्यक् कृतं परिशीलनम्।

सततसाधनासमन्वितया क्रान्तगतया च स्वकीयमेधया आत्मतत्त्वस्य अनिर्वचनीयः आलोकः साक्षात् कृतो भवद्भिः। अस्मिन् चालौकिके आत्मदर्शनालोके वेदैः प्रतिपादितम् शब्दार्थोभयात्मकम् ब्रह्म समुद्भासितम् श्रीमतां पुरतः। वेदवेदाङ्गानामशेषतत्त्वदर्शनेषु निष्णातानाम् भवताम् अमर वाणी प्रवीणा लेखनी च, तेनैव दिव्यालोकपुञ्जेन श्रीमताममोघदर्शनेनाविष्कृतेन निखिलं जगदाप्लावयितुम् मुक्तम् सुतराम् प्रवाहिता। कृतिनो भवन्तः विश्वं कृतकृत्यं विधातुम् ध्रुवञ्च व्रतं पर्यपालयन्।

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञानाम्, संस्कृतेः संस्कृतस्य च मर्मज्ञानाम्, श्रौतस्मार्तधर्मशीलानाम्, गीतोक्तदैवीभिः सम्पद्भिः सम्पन्नानाम्, ब्राह्मीं स्थितिमापन्नानाम् स्थितप्रज्ञानाम् ब्रह्मर्षित्वस्याखिलाभिः प्रभाभिः समूर्जितानाम्, महापुरुषाणाम् श्रीमताम् निसर्गमण्डितमभिधानम्, अस्मिन् महामङ्गलावहे महामनसाम् मदनमोहनमालवीयमहाभागानां शती-जयन्ती-समारोहस्य प्रथम पुण्यावसरे विद्वद्वृन्दसमवेतपुनीतसत्समागमे, अतिपावने सरयू-तटे, विश्वकल्याणार्थं परमेश्वरप्रीत्यर्थञ्च '**ब्रह्मर्षि**' रित्युच्चैरुपाधिना अलङ्कुर्वाणाः एनामन्वर्थामुपकृताञ्च विदधामो वयम्।

अहोबिल प्रपन्नाचार्याः
योगिराज सच्चिदानन्द महाराजाः
(देवरहवा बाबा)
अष्टादशोत्तर विंशतिशततमस्य वैक्रमाब्दस्य
आश्विन मासीया सोमवारान्विता पूर्णिमा तिथिः

महर्षि वेदव्यास नगरम्
योगिराज श्री देवरहवा बाबा
आश्रमः
देवरिया, उत्तर प्रदेशः

ॐ

कल्याण कर तथा सुखकर अस्तित्ववाले, संसारको कल्याण तथा सुखको प्रदान करनेवाले,
स्वयं अत्यन्त कल्याण स्वरूपवाले उस परमात्माको कोटिशः प्रणाम ॥ यजु. १६।४१

विद्वानोंद्वारा वरणीय हमारे प्रेमके पात्र श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महानुभाव;

कुछ वर्ष पूर्व जब यह भारत दासताकी जंजीरोंमें जकडा हुआ, राष्ट्रीयतासे रहित, अज्ञानान्धकारमें भटका हुआ, अपने स्वरूपको भुलाकर अन्य मार्गोंपर चलता हुआ, हीनताके भावोंमें बंध कर कष्टको प्राप्त हो रहा था, उस समय हृदयको फाडनेवाली इस विषमावस्थाको देखकर भारतीय-संस्कृतिको ऊंचा उठाने और प्राचीन भारतीय-जीवन पद्धतिकी स्थापना करनेके लिए " वेद ही धर्मका मूल है " इस महान् सत्यके आपने दर्शन किए थे। फिर आपने प्रतिज्ञा करके, तथा दुस्सह तप और व्रतको स्वीकार करके तत्वज्ञानके मूल सभी वेदोंका परिशीलन किया।

अपनी सतत साधना, दूर दृष्टि तथा अपनी मेधासे आत्मतत्वके अनिर्वचनीय प्रकाशका आपने साक्षात्कार किया। इस अलौकिक आत्मदर्शनके प्रकाशमें वेदोंद्वारा प्रतिपादित शब्द और अर्थ रूपी ब्रह्म आपके सामने प्रकट हुआ। तब वेद वेदाङ्गोंके तत्वदर्शनमें निष्णात आपकी वेदवाणीमें प्रवीण लेखनी भी उसी दिव्यालोकसे जगत्को भी स्नान करानेके लिए चली। बुद्धिमान् आपने विश्वको कृतकृत्य करनेके लिए दृढ व्रतका पालन किया।

वेदवेदाङ्गोंके तत्वज्ञ, संस्कृति और संस्कृतके मर्मज्ञ श्रुति स्मृत्युक्त धर्मोंके पालन करनेवाले, गीतामें कथित दैवी सम्पत्तियोंसे युक्त, ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त हुए स्थित प्रज्ञ, महर्षिके सकल प्रमाणोंसे प्रकाशित आप महापुरुषको इस मंगलमय, महामना मदन मोहन मालवीयजीके शती जयन्ती समारोहके प्रथम पुण्यावसरपर विद्वद्वृन्दोंके सत्संगमें, अति पवित्र सरयू तटपर विश्वके कल्याण और परमेश्वरकी प्रीतिके लिए " ब्रह्मर्षि " की उच्च उपाधिसे अलंकृत करते हुए हम इस जयन्तीको सार्थक और उपकृत कर रहे हैं।

अहोबिल प्रपन्नाचार्य
योगिराज सच्चिदानन्द महाराज
(देवरहवा बाबा)

महामना मालवीय शती जयंतीका प्रथम समारोह

एवं

श्री पं. श्रीपाद् दामोदर सातवलेकरजी को

'ब्रह्मर्षि' उपाधि प्रदान समारोह–

एक विहंगम दृष्टि

लेखक— श्री रामायण उपाध्याय एम्. ए.

महामनाके रूपमें भारतीय संस्कृतिने अपने भास्वर व्यक्तित्वको मूर्तिमान किया था। महामना आपादचूड हृदय ही हृदय थे। विद्वानोंकी व्याख्याके अनुसार 'हृदयम्' शब्द भारतीय संस्कृतिका मूलाधार है। 'हृ' का अर्थ होता है आदान, 'द्' का अर्थ होता है विसर्ग या प्रदान और 'यम्' का तात्पर्य होता है आदान और प्रदानकी नियमन या संतुलन भूमि। संग्रह और त्यागका महत्तम विवेक और दोनोंका उचित उपयोग ही नियमन है। महामना यम या नियमनकी वह विवेकभूमि थे, जहां भूत, वर्तमान, भविष्य, संग्रह और त्याग, संवरण और प्रसरण, प्राणन और अपानन, अगति और गतिका अपूर्व संतुलन एवं संगमन होता था, जहां प्राच्य और प्रतीच्य तथा प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनोंको विश्राम प्राप्त होता था। महामना वह 'व्यान' तत्व थे जहां प्राण अपानका संगमन होता है। भारतीय राष्ट्रको इस अमितप्रभ व्यक्तित्वने बाहर भीतर सब ओरसे उद्बुद्ध किया। आदर्श बालक, आदर्श युवा, आदर्श वक्ता, आदर्श शिक्षा शास्त्री, आदर्श आचारवादी, आदर्श वृद्ध, आदर्श अध्यापक, आदर्श नेता, आदर्श धार्मिक, आदर्श दीक्षा गुरु, आदर्श विधिशास्त्री, आदर्श आलोचक, आदर्श कथावाचक, आदर्श मनस्वी, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श दाता, आदर्श ग्रहीता, आदर्श पारिवारिक सदस्य और आदर्श कवि एवं साहित्यिक रूपमें–जीवनके हर क्षेत्रोंमें अपने आदर्श व्यक्तित्वको अभिव्यक्त करके महामनाने आदर्श–जीवनका सजीव उदाहरण उपस्थित किया और अखिल मानव समाजको आदर्श व्यक्तित्वसे संपन्न होनेके लिए सतत उत्प्रेरित किया। महामना वस्तुतः महामानव थे। इनका आदर्श जीवन जितना ही व्यापक था, उतना ही गहरा भी। भारतीय धरित्रीने ऐसे सुपुत्रको जन्म देकर अपनेको धन्य और कृतार्थ माना था।

इस वर्ष महामानवकी शताब्दिकी जयंतीका अवसर उपस्थित होते ही देशके चिन्ताशील विद्वानोंका ध्यान सहज ही इधर आकृष्ट हुआ। विद्वानोंने विचार किया कि महामनाकी जयंती भी उनके अनुरूप ही मनायी जानी चाहिए। जिस प्रकार संपूर्ण मानव जीवनको महामनाने आलोक रंजित एवं उद्बुद्ध किया था वैसे ही उनकी जयंती भी उसको आलोकप्लावित और प्रोद्बुद्ध करे। इस तरहके विचारकोंमें सुप्रसिद्ध विद्वान् और विचारक आचार्य केशवचन्द्र मिश्र, प्रधानाचार्य, मदन मोहन मालवीय महाविद्यालय, भाटपार रानी (देवरिया) को बहुत श्रेय दिया जाना चाहिए। आप महामनाके श्रद्धालु जनोंमें अन्यतम स्थान रखते हैं। इसे विस्मृत नहीं किया जा सकता कि अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदत्त प्राध्यापक पदके आमंत्रणोंको

अस्वीकार करके बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीकी स्नातकोत्तर परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके बाद, आजसे १६ वर्ष पूर्व, निरे देहाती क्षेत्रमें, महामनाकी स्मृतिमें, भारतवर्ष भरमें एक मात्र और सर्व प्रथम संस्था महामना मदन मोहन मालवीय महाविद्यालयकी स्थापना आपने की। आपके आदर्श व्यक्तित्व और गुरुतम तपश्चर्याके बल पर, अनेकमुखी विघ्नों और कठिनाइयोंके बाद भी, निरंतर उत्कर्षोन्मुख और नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाओंके उत्पादक, पोषक एवं प्रवर्द्धक रूपमें महाविद्यालय अविरल ज्योतिपिण्डके रूपमें जगमगा रहा है। फिर आपने और आपके अग्रज प्रसिद्ध देश भक्त और क्रान्तिकारी नेता श्री बदरीनारायण मिश्रने श्री सुरतिनारायणमणित्रिपाठी, सदस्य लोकसेवा आयोग, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, सपादक कल्याण, श्री हरिशंकर प्रसाद गुप्त, अध्यक्ष, अंतरिम जिला परिषद गोरखपुर, श्री देवनन्दन शुक्ल वकील, देवरिया, श्री परशुराम तिवारी वकील, देवरिया, श्री वासुदेव द्विवेदी, साहित्याचार्य और श्री विश्वनाथ पाण्डेय जिला कांग्रेसाध्यक्ष प्रभृति विद्वानों एवं देशके अन्यान्य गण्यमान्य विद्वानों, विचारकों एवं महापुरुषोंसे संपर्क स्थापित करके उनके उदार और सक्रिय सहयोगसे अखिल भारतीय महामना मालवीय शती स्मारक समितिका संघटन किया। समितिने जयंतियोंके मानेनेका कार्यक्रम तो अपनाया ही, स्मारक कोषकी स्थापना एवं संचयनका भी संकल्प किया, जिसके द्वारा महामनाकी स्मृतिको चिरस्थायित्व प्रदान करनेके उद्देश्यकी पूर्ति होती है।

इसी शुभावसरपर वेद-विद्याको भी प्रकाशमें लानेकी आयोजना बनी, और इसके लिए उत्तरप्रदेशके महान् सन्त श्री देवरहवा बाबाजीके तत्वावधानमें किसी वेद विद्याके प्रकाण्ड पण्डितको 'ब्रह्मर्षि' की उच्च उपाधिसे भूषित करनेका विचार विद्वानोंके मस्तिष्कमें आया। यह बिलकुल एक नया कदम है, जिसमें कि एक वेदोंके पण्डितका सम्मान होना था। अब ऐसे विद्वान्के चुनावके लिए विद्वानोंकी समिति नियुक्त हुई और सब सदस्योंकी दृष्टि वेदमूर्ति पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी पर गई। श्री सातवलेकरजीसे इस बातके लिए प्रार्थना की गई, जिसे उन्होंने स्वीकार कर अनुगृहीत किया। श्री सातवलेकरजी ९५ वर्षीय हैं। यद्यपि उनका बाहर आना जाना नितान्त कठिन है, पर फिर भी अपनी स्वीकृति देकर यहां आनेका कष्ट किया और हमें उत्साहित किया।

समितिने महामना शती जयंतीके प्रथम अखिल भारतीय शुभारंभ समारोहको सांस्कृतिक पर्वके रूपमें चरितार्थ करनेका निश्चय किया। इसमें संस्कृत सम्मेलन, संस्कृति सम्मेलन विद्वत्सम्मान, विशाल वैदिक वाङ्मयकी विराट् प्रदर्शनी, महाविष्णु यज्ञ और शास्त्रीय संगीतके कार्यक्रमोंको स्वीकार किया गया और इसके लिए कारराेड स्टेशन (देवरिया) पूर्वोत्तर रेलवेसे ४ मील पश्चिम, पीयूषवाहिनी सरयूके पावन तट पर-स्थित, अध्यात्म महर्षि योगीराज श्री देवरहवा बाबाकी दिव्य तपोभूमिका सुरम्य प्रदेश चुना गया जिसे महर्षि वेद व्यास नगरके अभिधानसे अभिहित किया गया। इसमें देशके संपूर्ण प्रान्तोंके तथा विदेशोंके भी ज्ञान विज्ञानके सभी क्षेत्रोंके विशेषज्ञ और मूर्धन्य विद्वान्, विचारक, संत, महात्मा, संगीतज्ञ और लोकनायक आमंत्रित किये गये और वे पधारे भी।

श्री पं. सातवलेकरजीका स्वागत और शोभा यात्रा

श्री पंडितजीका कार्यक्रम बनारस हिन्दू विश्व विद्यालयमें भी था। वहां पर इन्होंने ७ दिन रहकर वैदिक विषयों पर प्रवचन भी दिए। वहांसे श्री पं. जी २२ अक्टूबरको प्रातः



पं. श्री. दा. सातवलेकर

दस बजे लाररोडके लिए रवाना हुए, जहां इन्हें श्री देवरहवा बाबा 'ब्रह्मर्षि' की उपाधिसे अलंकृत करनेवाले थे। रास्ते भर पण्डितजीके दर्शनोंकी लालसामें जनता बडी भारी संख्यामें प्रतीक्षा कर रही थी, और प्रायः हर स्टेशनों पर जनताने श्री पं. जीका हृदयसे स्वागत किया। जैसे ही श्री पं. जी लाररोड स्टेशनपर उतरे करीब २, ३॥ लाखकी जनता पण्डितजीके स्वागतके लिए उमड आई। जनमानवका समुद्र लहरा उठा। चारों ओर सिर ही सिर दिखाई पड रहे थे। पुलिस भारी तादादमें आ गई थी। पर वह भी इस आशातीत जन सम्मर्द पर नियंत्रण रखनेमें असफल हो रही थी। जनता श्री पं. जीके दर्शनके लिए व्याकुल हो रही थी, अतः कार्यकर्ता गण पं. जीको समीप ही बने एक ऊंचे मंच पर ले गए। वहां श्री पं. जीके दर्शन कर जनता बडी प्रसन्न हुई। वहींसे ३॥ बजे अपराह्नमें लाररोड स्टेशनसे महर्षि वेदव्यास नगर तक पहुंचने वाला एक विराट् जुलूस निकला। इसमें १०० से ऊपर बैलगाडियां थीं, जो चित्रों और पुष्पोंसे आच्छादित तो थीं ही, अन्य प्रकारसे भी इन्हें शोभा संपन्न बनाया गया था।

इन्हीं बैलगाडियोंमें एक अत्यन्त सुन्दर गाडी पर एक ऊंचा मंच बनाया गया था, जिस पर श्री पं. जी बैठे हुए थे। इनकी गाडीके आगे और पीछे अन्य बैलगाडियां थीं। जुलूसके नियंत्रणके लिए पुलिस भी भारी संख्यामें वहां मौजूद थी। इस प्रकार श्री पं. जीकी शोभा यात्रा शुरू हुई।

सुसज्ज एवं सुपुष्ट बैलोंके शृंगार भी अत्यंत हृदयाकर्षक थे। प्रत्येक गाडियों पर मंडलियां गायन और वादनके द्वारा वायुमंडलको परिपूत बना रहीं थीं। कई लाख नर-नारियोंका समवेत सहगमन वाला यह दो ढाई मीलका लंबा जुलूस वेदोंका सहस्रशीर्षा, सहस्रपात् वाले विराट् ब्रह्मका प्रत्यक्ष स्वरूप जान पड रहा था। इस जनसागरमें उत्साह और उमंगकी तरंगें मानों आकाश चूम रही थीं। जुलूसके दोनों पार्श्वके ग्रामोंके लोग जुलुसको व्यवस्थित रखनेके लिए ढाई मील दोनों ओर कतार बना रहे थे, महामनाके प्रति जनतामें जो महान प्रेम और श्रद्धा है, उसकी हृदयग्राहीनताका भी परिचय मिल रहा था। साथ-साथ आचार्य केशवचन्द्रजी मिश्रकी व्यवस्था पटुताका अद्भुत परिचय भी मिल रहा था। इतना बडा जुलूस, लक्षाधिक जनताका समागम, किन्तु शोर अव्यवस्था तो दूर, देहाती क्षेत्रकी जनता द्वारा भी किंचिदपि क्रम भंगता नहीं देखी गयी। जुलूस बडे गौरवपूर्ण ढंगसे गया और जुलूसका जनार्णव, महर्षि वेद व्यास नगरके जन महार्णवमें एकाकार हो गया। न कोई अवटित घटना घटी, न कोई अव्यवस्था ही अभिगोचर हुई।

लाररोड स्टेशनसे लेकर महर्षि वेदव्यास नगर तक, भारद्वाज, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि, मनु, जनक, और नारद आदि ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों एवं देवर्षियोंके नाम पर अनेक सुरम्य और आकर्षक द्वार निर्मित हुए थे, जो प्राचीन भारतकी स्मृतिको सजीव बना रहे थे।

महर्षि वेदव्यास नगर तो आकर्षकका अनुपम केन्द्र हो रहा था। एक ओर पीयूषवाहिनी सरयूके शत सहस्राधिक तरंग करोंकी सान्द्र-वरद छायामें दूर व्यापी बबूल वनोंमें योगिराज ब्रह्मर्षि देवरहवा बाबाका सत्वोद्रेकी पुण्याश्रम, दूसरी ओर नाना वस्तुओंकी पर्णकुटियों एवं पटमंडपोंमें सजी दूकानोंकी दूर व्यापिनी किन्तु क्रमबद्ध कतारें और मध्यमें विशाल पंडाल, विशाल एवं विराट् प्रदर्शनियोंके कक्ष, विद्वानों, संतों, विचारकों, कलाकारों, एवं लोक नायकोंके निवास, विविध पट मंडप, यज्ञशाला, और श्री राधेश्यामजीका मनोहर मंदिर-कुल मिला कर-एक नये दिव्य लोकको रचना हो गयी थी वहां। चांदनी रातमें-प्रकाश जगमग नगर-आध्यात्मिक जगतका चिन्मय नगर ही प्रतीत होता था। समागत जनसमूहके संबंधमें बहुतोंके अनुमानसे १० लाखसे भी अधिक जनता वहां एकत्र हुई थी, तथापि वहां आचार्य श्री केशवचन्द्रजी मिश्रकी व्यवस्थासे, महामना मदन मोहन मालवीय विद्यालयके सात-आठ सौ स्वयंसेवकों और अन्य आसन्नवर्ती शिक्षा संस्थानोंके ५-७ सौ स्वयंसेवकोंके श्रम साध्य सतत प्रयत्नसे और सबके ऊपर जनतामें तरंगित महामनाके प्रति भक्ति भावनासे, बडी ही शान्ति और सुव्यवस्था रही। मालवीय महाविद्यालय, भाटपार रानी (देवरिया) के अध्यापकों एवं प्राध्यापकोंने भोजनादि विभागोंको बडी तत्परता एवं योग्यतासे संभाल कर विशाल अतिथियोंके समूहके स्वागतमें भी कोई त्रुटि नहीं आने दी। निश्चय ही इस दुष्कर कार्योंको सुचारु करनेवाले वे बधाईके पात्र हैं। स्थानीय ग्रामोंकी जनताने

भी अपना हार्दिक योग दान दिया।

२३ अक्टूबरको प्रातः ६ बजेसे ही विष्णुयज्ञमें वेदमंत्रों के उच्चारण और स्वाहा-स्वाहाकी पूतध्वनिसे वायुमंडल चिद्घनानन्दमय प्रतीत होने लगा। ऋषि युगीन भारत कितना तेजोमय, वर्चस्वक और तपःपूत रहा इसकी स्मृति ने हृदयको राग रंजित कर दिया था।

९ बजेके लगभग विशाल वैदिक वाङ्मयकी विराट् प्रदर्शनीका उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ। इस प्रदर्शनीमें देशी एवं विदेशी भाषाओंमें उपलब्ध एवं देशी तथा विदेशी विद्वानों द्वारा व्याख्यायित, आलोचित, संपादित और टिप्पणित चारों वेद, वेदांग, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद साहित्योंके अतिरिक्त अन्य एतत्संबंधित साहित्योंका सुन्दरतम संकलन तो था ही, आधुनिक मूल्यवान और महत्तम संस्कृत एवं संस्कृतसे संबंधित साहित्योंका भी विभिन्न कक्षों एवं कतारोंमें रुचिर संकलन पर्याप्त प्रभावकारी दिखाई पड़ रहा था। संस्कृतकी पत्र-पत्रिकाओंका भी एक पृथक् कक्ष संस्कृतके आधुनिक उत्कर्षका स्पष्ट परिचायक था। देशी-विदेशी विद्वानोंके संस्कृतके प्रति वचनोंके पट्ट, देशी-विदेशी संस्कृत विद्वानोंके चित्र और देशी-विदेशी विद्वानोंकी रचनाओंके पृथक् पृथक् परिचय सहित कक्षोंकी सजावट बहुत आकर्षक लग रही थी। इसके अतिरिक्त इसमें ऐसे पोस्टर और चार्ट्स भी पर्याप्त मात्रामें यथास्थान आलग्न थे जिनसे संस्कृत भाषाका प्राचीन कालसे अद्यावधि पर्यंत विकास और देश-विदेशोंमें प्रचार और प्रसारकी स्पष्ट सूचना मिल रही थी। इस प्रदर्शनीका आयोजन सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय, वाराणसी, जिसके प्रधान मंत्री आचार्य केशवचन्द्रजी मिश्र हैं और संस्थापक श्री वासुदेवजी द्विवेदी हैं, के तत्वावधानमें संपन्न हुआ था। इसमें भाग लेनेवाली संस्थाओंमें संस्कृत साहित्य परिषद् त्रिचनापल्ली, अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन, नई दिल्ली, संस्कृत भाषा प्रचारणी सभा, चित्तूर (आन्ध्र) नेपाल ऐकेडमी, काठमांडू, सदाशिव संस्कृत कालेज जगन्नाथपुरी, उडीसा, संस्कृत कालेज, त्रिवेन्द्रम, केरल, संस्कृत विद्वत्सभा, पूना, (महाराष्ट्र) संस्कृत कालेज बेंगलौर, कर्णाटक, संस्कृत प्रचारणी सभा नागपुर, ब्राह्मण सभा बंबई, भारतधर्म महामंडल, वाराणसी, वैदिक स्वाध्याय मंडल पारडी, सूरत, मोती लाल शास्त्री, जयपुर, स्वामी भगवदाचार्यजी (अहमदाबाद) और संस्कृत विद्वत्सभा बड़ौदा प्रभृतिके नाम प्रमुख हैं।

इस प्रदर्शनीके अतिरिक्त इसके सन्निकट ही उत्तर प्रदेशीय सरकारकी भाषा विभागीय प्रदर्शनी, गीता प्रेस गोरखपुर, की प्रदर्शनी और गांधी खादी भंडारकी प्रदर्शनियां भी पर्याप्त आकर्षक थीं। प्रदर्शनीमें सम्मिलित होनेवाली देशी-विदेशी विद्वानों, विचारकों, और कलाकारोंमें श्री शारंगधर सिनहा, भूतपूर्व वाइसचान्सलर पटना विश्वविद्यालय, महोपाध्याय श्री आर. वासुदेवन पोट्टी एम. ए., श्री एम. हरिहर शास्त्री, एम. ए. प्राध्यापक संस्कृत कालेज त्रिवेन्द्रम, श्री के. लक्ष्मण शास्त्री विशेषाधिकारी, संस्कृत शिक्षा विभाग आन्ध्र सरकार, हैदराबाद, आचार्य त्रिनाथ शास्त्री एम. ए., (उत्कल) प्राध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्रीकुबेर नाथजी शुक्ल, प्रस्तोता, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, डा. वीर राघवाचार्य, प्राध्यापक रामानुज वेदान्त चामर राजेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय' बंगलौर, श्री पं. गणेश शास्त्री धौण्डे सभापति, विद्वत्सभा पूना, श्री पं. मुरलीधर शास्त्री धौण्डे, ऋग्वेदी, पूना, श्री पं. दत्तात्रेय शास्त्री धौण्डे, ऋग्वेदी पूना, श्री सुरति नारायण मणि त्रिपाठी, लोक सेवा आयोग, कानपुर, श्री आचार्य केशवचन्द्र मिश्र, प्रधानाचार्य, मदन मोहन मालवीय महाविद्यालय, श्री बदरी नारायण मिश्र, श्री देवनन्दन शुक्ल वकील, देवरिया, श्री काशी नाथ पाण्डेय, श्री विश्वनाथ पाण्डेय अध्यक्ष, कांग्रेस कमेटी देवरिया, श्री परशुराम तिवारी वकील, देवरिया, श्री हरिशंकर पाण्डेय, अध्यक्ष जिला अंतरिम परिषद् गोरखपुर, कविवर 'जीवन' गोरखपुर, श्री शिव प्रसाद त्रिपाठी, गायनाचार्य, वाराणसी, श्री रामअवधजी एम. ए. प्राध्यापक, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रेवतधम्म, बर्मा, श्री उत्तमदत्त, बर्मा, श्री अभ्गरत, कम्बोडिया, श्री चन्द्रवर्ण, कंबोडिया, श्री लिखितानन्द, थाईलैंड, श्री पुक्जोथेरो, थाईलैंड, श्री जम्सपल, लद्दाख, श्री सुमनसार, लंका, श्री सुवर्णवंस, लाओस, श्री ड्. वड्. दग्चा तिब्बत, और श्री थुप्तन लोवड्सुप, तिब्बतके नाम उल्लेखनीय हैं। इन महानुभावोंने समारोहमें सक्रिय भाग लिया है।

प्रदर्शनीके उद्घाटनके पूर्व आचार्य श्री चन्द्रबलीजीने वेदपाठ किया। महामना मालवीय विद्यालयके छात्र रामप्यारेने अत्यंत श्रुतिपेशल ध्वनिमें 'वन्दो चरण सरोज तिहारे' से वंदनाकी। आचार्य केशवचन्द्रजी मिश्रने ऋषि महर्षियोंकी याद दिलाते हुए पार्थिव जीवनके ऊपर आध्यात्मिक जीवनके दिव्य महत्व पर प्रभावोत्पादक प्रकाश डाला और वैदिक जीवन और संस्कृतिका विद्वत्तापूर्ण चित्र उपस्थित किया। इसके बाद विशाल वैदिक प्रदर्शनीका उद्घाटन भाषण करते हुए श्री गंगाधर सिनहाने प्रदर्शनी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए वैदिक संस्कृतिका मर्मोद्घाटन किया और कहा कि हमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञानके साथ अपने प्राचीन ज्ञान-विज्ञानका समन्वय करना चाहिए।

प्राचीन-नवीन विज्ञानोंसे समन्वित भारत ही सर्व श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकता है। आपने कहा-हमारी संस्कृतिमें बाह्य और आंतरिक दो तत्व हैं। आंतरिक तत्व सार्वभौम सनातन और संपूर्ण विश्वको जीवन और चरित्र देनेवाला है। बाह्य तत्व परिवर्तनशील है। जिन्हें परिवर्तित करनेमें हमें संकोच नहीं करना चाहिए। इसके बाद पूर्वोक्त सभी देशी-विदेशी विद्वानोंके संक्षिप्त प्रवचनोंके पश्चात् प्रदर्शनीका उद्घाटन कार्य समाप्त हो गया।

२॥ बजे अपराह्नमें वेद व्याख्याता, वेदमूर्ति, श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके सभापतित्वमें 'अखिल भारतीय संस्कृति सम्मेलनका' कार्य-क्रम आरंभ हुआ। श्री के. लक्ष्मण शास्त्रीजीने सम्मेलनका उद्घाटन किया। आपका उद्घाटन भाषण अत्यंत विद्वत्तापूर्ण और संस्कृतिके मर्मको खोलनेवाला था। आपने कहा-महामना मालवीय संस्कृति के प्रतीक थे। यह भारतका सौभाग्य है, कि आज संपूर्ण भारत उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए यहां समवेत है। महामना प्राचीन--अर्वाचीन और प्राच्य--प्रतीच्यके संगम, अद्वितीय विद्वान् और महामानव थे। श्री के. लक्ष्मण शास्त्रीने महामना पर अत्यंत ललित, स्वनिर्मित श्लोक भी सुनाया। आपने कहा--भारतमें संस्कृति और धर्म दोनों अभिन्न हैं, इनका मूल वेद है। संस्कृतिमें दो तत्व हैं 'सम्' और 'कृ'। 'कृ' का अर्थ आभूषित करना होता है। सम्यक् आभूषित करनेवाला आभूषण ही संस्कृति है। हर देशोंके पृथक् आभूषण हैं। किन्तु उनमें भारतीयोंका आभूषण उनकी संस्कृति निराली ही है। यह हमारे देशकी आत्माका अलंकार है। इसे भूलना विधवाकी तरह निराभूषित होना है। हमारी प्रत्येक गतिमें संस्कृतिकी प्राणधारा का दर्शन होता है। संस्कृतिकी जानकारी सबको होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति विश्वको त्राण देनेवाली है।

स्वागताध्यक्ष श्री सुरतिनारायण मणि त्रिपाठीने अपना स्वागत भाषण दिया। इसमें आपने महामनाकी अपूर्व महिमाका उद्घाटन करते हुए भारतीय संस्कृतिकी मूल धाराका परिचय दिया। आपने सबका स्वागत करते हुए बतलाया कि आजका समुन्नत विज्ञान संसारके निर्माणकी ओर न जाकर विनाशकी ओर झुक रहा है। इसका कारण यही है कि वह पाश्चात्योंके हाथमें है, जिनकी संस्कृति जीवनको संग्राम मानती है। कठोर प्राकृतिक वातावरणमें उत्पन्न होनेवाले पाश्चात्योंको जीवनके लिए संघर्ष मानते हैं और परदलनमें ही अपना कल्याण देखते हैं। भय और विनाशकी छाया जो आज विश्वके शिरपर मंडरा रही है इसका कारण पाश्चात्योंकी त्रुटिपूर्ण संस्कृति ही है। विपरीत इसके भारतीय संस्कृति त्याग मूलक है और 'पर के लिए 'स्व' के त्यागमें ही श्रेय देखती है। 'लोकाः समस्ता सुखिनो भवन्तु' और 'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु' इसका पावन उद्घोष है। आजका त्रस्त विश्व भारतीय संस्कृतिकी ओर आशा भरे नेत्रोंसे निहार रहा है। इस पावन पर्व पर हमें भारतीय संस्कृतिके प्रचार-प्रसारके लिए दृढ संकल्प करना चाहिए।

इसके पश्चात् श्री हरिशंकर गुप्तने भाषण दिया। श्री गंगाधरजी शुक्ल और श्री 'जीवन' जी गोरखपुरने कविता पाठ किया। श्री नारायण दत्त शास्त्री एवं अन्य आगत विद्वानोंने मालवीयजी पर श्लोक सुनाये तथा संस्कृतिकी महत्ता पर मर्मपूर्ण भाषण भी दिये।

सायंकाल ६ बजे लगभग योगिराज महर्षि श्री देवरहवा बाबाके हस्ताक्षरसे सम्पन्न ब्रह्मर्षिका उपाधि-पत्र, वेदोंके अन्यतम विद्वान् और व्याख्याता श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीको, श्री पं. कुबेरनाथजी शुक्ल, प्रस्तोता, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, ने समर्पित किया। श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर संस्कृत वाङ्मयके

उद्भट विद्वान् वेदोंके अन्यतम भाष्यकार और व्याख्याता तथा वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं गीता आदिके वैज्ञानिक व्याख्याता और टीकाकार हैं। आप अंग्रेजी सरकारके कोपभाजन भी बने थे। आपका ६५ वर्षका जीवन वेदोंके मर्म और तत्व दर्शनमें ही खपा है। आज तककी जितनी वैदिक एवं संस्कृत साहित्यकी मर्मपूर्ण व्याख्याएं हुईं, उनमें आधुनिक वैज्ञानिक और बौद्धिक युगके स्तरकी व्याख्याएं या भाष्य यदि किसीके है- तो वह सातवलेकरजीके ही हैं। यह निर्भ्रम सत्य है। इस प्रकार इनको ब्रह्मर्षिका उपाधिदान देकर, विद्वानोंके सम्मानकी नयी दिशाका संकेत किया गया है। आज सरकार भी ' पद्मभूषण ' ' पद्मश्री ' आदि उपाधियां देती हैं, किन्तु उसमें मर्यादाका अभाव देखा जाता है। ' सब धान बाइस पसेरी ' वाली कहावतके अनुसार नर्तकी और विद्वान् एक ही उपाधिसे विभूषित किये जाते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृतिकी पुनर्प्रतिष्ठाकी दिशामें यह उपाधि दानोत्सव भी एक महत्वपूर्ण कदम है। इसका स्वार्थी व मूढ, अल्पज्ञ एवं कुछ रूढिवादियोंने बिना गहराईसे सोचे विरोध करनेकी चेष्टा अवश्य की, किन्तु वास्तविकताके समक्ष वे विलीन हो गये।

अंतमें सभी विद्वानोंके भाषणोंके पश्चात् श्री सातवलेकरजीका अत्यंत विद्वत्तापूर्ण वैदिक भाषण हुआ। आपने वेदोंके अध्ययन और उनमें दिखाये मार्गोंके अनुशीलन और उस पर चलनेसे अमरत्वकी प्राप्ति होती है- इसे दृढ कंठसे उद्घोषित किया। आपके भाषणका विषय था ' वैदिक धर्मसे मानव मात्रका कल्याण '। आपने इस शरीरको, आठ चक्र और नव द्वारोंवाली देवोंकी अयोध्या नगरी, जो स्वर्गके समान देदीप्यमान है- स्वर्ग है, ' अष्टाचक्रा नवद्वारा ' अथर्ववेदके मंत्रका अर्थ बतलाते हुए कहा। आपने कहा- यह शरीर मूत्र-पुरीषमय अपवित्र नहीं, अपितु देवोंका निवास स्थान पवित्र मंदिर है। फिर आपने शरीरमें देवोंके निवासका वर्णन किया। उसके बाद वेदोंसे मंत्रोंको उद्धृत करते हुए बिलकुल व्यवहार्य जल-चिकित्सा, अग्निचिकित्सा आदिका वर्णन किया। पुनः आपने दीर्घायुष्यकी वैदिक कल्पनाको प्रत्यक्ष करते हुए उपसंहारमें कहा- वेदोंमें मानव जीवनसे संबंधित आरोग्य आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक साहित्यिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सभी तरहके प्रकरणोंका प्रभूत और व्यवहारिक वर्णन है, जिनकी उपादेयता देश-कालसे अतिक्रान्त सर्वव्यापी एवं सनातन है। वैदिक मार्ग पर चलकर मनुष्य सदा अपने व्यक्तित्व और जीवनका विकास कर सकता है।

अपार जनमहार्णव चतुर्दिक शान्त और प्रशान्त दिखाई पडता था। वेदघोष हो रहा था। आकाश यज्ञ धूमसे धूमायित दृष्टिगोचर हो रहा था। योगिराज ब्रह्मर्षि देवरहवा बाबा, अपने मंचसे १०-१०, २०-२० मिनिट बाद बाहर निकलते थे और अपने चिन्मय विग्रहसे जनताको चिन्मय बना देते थे। बाबाके निकलते ही जनमहार्णव जय जयकारसे गगनमंडलको कंपा देता था। इस समयका दृश्य भारतीय श्रद्धा और विश्वासकी अमृत धारासे परिप्लावित अत्यंत मनोरम प्रतीत होता था।

८॥ बजे रात्रिमें संगीतका कार्यक्रम आरंभ हुआ। लखनऊके प्रसिद्ध गायनाचार्य श्री रहीमुद्दीन डागर, तबलावादक श्री रामकुमार, गायक श्री राम कुमार वैष्णव दयालु और श्री शिव प्रसादजी त्रिपाठी गायनाचार्यने शास्त्रीय संगीतके गायनसे जनताके मनोधरातलके उच्चतम संस्कारोंको उद्बुद्ध किया। विशाल जनसमूह मंत्र मुग्ध होकर संगीतकी रसमाधुरीका पान करता रहा। शास्त्रीय नृत्यके दृश्यकी उपस्थितिने नृत्य संबंधी जनताके भ्रमोंका निराश किया।

२४ अक्टूबरको यज्ञादिके कार्यक्रमोंके बाद ६ बजेके पूर्वाह्नमें आदरणीय श्री पं. गणेशशास्त्री खैण्डेकी अध्यक्षतामें संस्कृत भाषाके प्रचार-प्रसार एवं विद्वद् वर्गका दायित्व विषय पर विचार करनेके लिए विद्वद् गोष्ठी आरंभ हुई। पुनः श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीकी अध्यक्षतामें २ बजे अपराह्णसे सार्वभौम संस्कृत प्रचार सम्मेलन आरंभ हुआ। इस गोष्ठी और सम्मेलनका आयोजन सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय, टेढीनीम, वाराणसी, के तत्त्वाधानमें हुआ था। इसके संस्थापक श्री वासुदेवजी द्विवेदी, साहित्याचार्य और प्रधान मंत्री आचार्य श्री केशवचन्द्रजी हैं। गोष्ठी और सम्मेलन दोनोंकी अपूर्व सफलता रही। इसमें पूर्वोक्त देश एवं विदेशसे समागत सभी विद्वान् सम्मिलित हुए और संस्कृत पर अपने मर्मपूर्ण एवं सारगर्भित भाषण प्रदान किये। सबने संस्कृतके सार्वभौम महत्व पर प्रकाश डाला। सबके भाषणोंका सारांश यही था कि संस्कृत सर्व

प्रिय एवं संपूर्ण भाषाओंकी जननी है। संस्कृतके ज्ञान होने पर ही अन्य किसी भाषाका पूर्ण ज्ञान संभव है। संस्कृत मृत भाषा कदापि नहीं। देशके विभिन्न प्रान्तीय विद्वानों एवं विदेशसे समागत विद्वानोंने यह तथ्य मुक्त कंठसे स्वीकार किया कि उनकी भाषाओंमें संस्कृत शब्दराशिका बाहुल्य है और संस्कृतके ज्ञानके बिना अपनी-अपनी भाषाओंमें भी पारंगत होना कठिन है। संस्कृत ज्ञान, आत्म और संस्कृतिकी भाषा है।

किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रके उत्थानके लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान अपरिहार्य है। संस्कृत अत्यंत मधुर और सरल है। अन्य भाषाओंकी अपेक्षा यह अत्यंत शीघ्रता एवं स्वल्पायाससे सीखी जा सकती है। संपूर्ण भारतको सांस्कृतिक दृष्टिसे, धार्मिक दृष्टिसे, भाषिक दृष्टिसे या भावात्मक दृष्टिसे कोई एकत्व प्रदान कर सकता है तो वह संस्कृत भाषा ही है। संस्कृत भाषा ही मानव जीवनको सुरक्षित रखनेवाली वह प्रधान नाडी है जहांसे अन्य भाषाओं, विचारों और संस्कृतियोंकी अन्य नाडियां प्रसृत एवं निःसृत हुई हैं। इसके जीवनपर सबका जीवन निर्भर करता है। इसके प्रचार-प्रसारके लिए इसके संबंधमें फैले भ्रमोंको दूर करना चाहिए और प्रतिभाशाली छात्रोंको इसे पढनेके लिए प्रेरित करना चाहिए। संस्कृत भाषाके पाठ्यक्रम एवं परीक्षा प्रणाली में प्रचलित वैषम्योंका भी अंत होना चाहिए। इसमें एकरूपता आनी चाहिए। संस्कृत विद्वानोंके प्रति उपेक्षा भावका अंत करके उन्हें सम्मानका पात्र बननेका अवसर प्रदान करना चाहिए। संस्कृत भाषाके विद्वानों एवं अन्य भाषाके पंडितोंके बीच वेतनोंके वैषम्यका भी अंत होना चाहिए। संस्कृत भाषा और आधुनिक ज्ञान-विज्ञानका भी समन्वय होना चाहिए।

भाषणोंमें उपर्युक्त बातें सामान्य थीं। दक्षिणके विद्वानों एवं विदेशी विद्वानोंने अपने-अपने प्रान्तों एवं देशोंके संस्कृतके प्रचार एवं प्रसारकी प्रगतिका भी विवरण दिया। श्री पं. कुबेर नाथ शुक्लजीने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयके संदर्भमें संस्कृत प्रचार-प्रसारका लेखा उपस्थित किया। अनेक प्रस्ताव भी पास हुए। अंतमें श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीका विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। आपने वेदोंसे उद्धरण देते हुए अफगानिस्तानके पश्तोंसे संस्कृतका संबंध दिखाया और कहा-वहां संस्कृतकी ओर जनता काफी झुक रही है। पंजाबके छोटी माईकी चर्चा करके हुए आपने कहा कि रूसमें बडी माई अर्थात् बडी माताका मंदिर है। भारतकी संस्कृति रूसमें गई थी। विदेशोंमें आज भी अनेक नगरोंके नाम विशुद्ध संस्कृतमें हैं। स्वीडनका नाम स्वर्ग है। अश्वसोमका ही रूप स्टाकहोम है। 'होम' 'सोम' का ही परिवर्तित रूप है। भारतीय संस्कृति और संस्कृतका विदेशोंमें बहुत प्रचार रहा है। सुदूर अतीतमें भारतकी संस्कृतिका प्रसार विदेशोंमें प्रभूत मात्रामें रहा है। आज भी विदेशोंमें संस्कृत एवं भारतीय संस्कृतिके प्रति लोगोंमें काफी अनुराग है। हमें सम्हलना चाहिए। अपनी संस्कृतिको पहचानना चाहिए और संस्कृतका व्यापक अनुशीलन आरंभ कर देना चाहिए। ऐसा न होने पावे कि गीता, रामायण, और महाभारत आदि पढानेके लिए विदेशोंसे अध्यापक बुलाने पडे।

इस प्रकार यह महामना मालवीय शती जयंतीका प्रथम समारोह संपन्न हुआ। यह समारोह निश्चय ही अभूतपूर्व रहा है और सांस्कृतिक दृष्टिसे इस प्रकारका समारोह समस्त भारतवर्षमें अद्वितीय और अनुपम है। महामनाकी शती जयंतीके श्री गणेशमें ही संपूर्ण भारतवर्षका सांस्कृतिक संगम हुआ है, जिसमें विदेशी विद्वानोंके समागमने इसे और गरिमा प्रदान कर दिया है। विद्वानोंका विचार है कि डेढ दो हजार वर्षोंके बाद इस प्रकारका यह प्रथम समारोह है। इसने भारतीय जीवनके शिथिल एवं प्रसुप्त तंत्रीको इस प्रकार छेडा है, कि वह एक बार फिर जग उठी है और इस सनातन गीतसे पुनः आकाश मंडल गूंजने लगा है।

असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्यो मा अमृतं गमय।

सत्ता और संस्कृति

लेखक— श्री रामायण उपाध्याय एम्. ए.

★

आज संस्कृतिकी बड़ी चर्चा सुनाई पड़ती है। किन्तु संस्कृति आजकी चर्चाका प्रमुख विषय होते हुए भी बहुत ही अस्पष्ट बनी हुई है। अपने-अपने अनुकूल लोग इसकी व्याख्या और निन्दा-स्तुति भी करते हैं। इसके साथ दैशिक एवं कालिक विशेषण भी लगे रहते हैं। कुछ इसे सभ्यताका आंतरिक प्रकाश, कुछ मन, आचार अथवा रुचियोंकी परिष्कृति और कुछ इसे शारीरिक या मानसिक शक्तियोंका प्रशिक्षण, विकास और दृढ़ीकरण, किम्वा इससे उत्पन्न अवस्था कहते-बतलाते हैं। कुछ इसकी परिभाषा देते हैं और कुछ इसे अपरिभाषेय घोषित करते हैं।

सरकार भी, प्रान्तीय और केन्द्रीय स्तर पर 'संस्कृति' में रुचि लेने लगी है। संस्कृतिमें, नर्तन, वादन, गायन, विनोद, उल्लास, हास, परिहास और अभिनय आदिका भी समावेश होता है। विभिन्न देशोंमें 'मैत्री' भावको प्रतिष्ठित एवं बद्धमूल बनानेके लिए शिष्टमण्डलोंका आदान-प्रदान भी चलने लगा है। सत्ता, जिसे 'संस्कृति' मान रही है, देशका प्राज्ञवर्ग भी उसीका अनुमोदन करने लगा है। यह बात आजके ही युगमें सत्य नहीं है, प्रत्युत इतिहासका आलोडन करने पर बुद्धयुगसे यही दशा चली आती दिखाई पड़ रही है। संस्कृति, सांस्कृतिक आचार और सांस्कृतिक आयोजनोंके जिस स्वरूपको तत्तद्युगीन सरकारोंने मान्यता दी है, प्राज्ञोंने भी उसे ही आंखमूंद कर या कदाचित् किसी लोभवश, स्वीकृति दे दी है। फलतः विकारशील विकृतियां ही संस्कृतिके रूपमें मान्य होती आने लगी हैं। संस्कृति वस्तुतः देश एवं काल-जन्य परिवर्तनोंके प्रभावसे संस्पृष्ट नहीं होती।

आजके प्राज्ञ जिसे 'संस्कृति' और सांस्कृतिक इतिहास कहने और समझने लगे हैं, उसकी सीमा सत्तासापेक्ष भौतिक इतिहास तक ही पर्यवसित होती है। 'संस्कृति' तो प्राणधारा है, जो मानवीय व्यक्तित्वको सजीव एवं उत्थानशील बनाती है। सत्ताएं भी संस्कृतियोंसे ही जीवित रहती हैं, किन्तु जब संस्कृति सत्ताकी अनुगामिनी या तदाश्रिता होती है, तो वह संस्कृति न रहकर सभ्यताका रूप धारण कर लेती है। संस्कृति और सभ्यतामें महदन्तर है। भ्रान्तिवश सत्तासापेक्ष संस्कृति अर्थात सभ्यताको ही जब सत्तानिरपेक्ष 'संस्कृति' समझ लिया जाता है तो सभ्यता के संघर्षों, आवर्तनों एवं विवर्तनोंके इतिहासको ही संस्कृति का आवर्तन-विवर्तन एवं इतिहास कहा जाने लगता है। आज जिस भारतीय संस्कृतिकी चर्चा और उसके इतिहासोंका आलेखन होता है, उसमें संस्कृतिके स्थानपर सत्तानुमत हजारों वर्षोंके परिवर्तनशील बाह्याचारों एवं सभ्यताओंका ही संकलन होता है। शासनतंत्र या सत्ताओंने इन्हीं परिवर्तनशील बाह्याचारों एवं सभ्यताओंको ही 'संस्कृति' मान लिया और विद्वद्वर्गने भी सत्ता तुष्ट्यर्थ एवं अपने लोक पूज्य रूपको अक्षुण्ण रखनेके लिए प्रायः सत्तास्वीकृत मान्यताओं पर ही अपनी मुहर लगा दी। यदि विद्वद्वर्ग ऐसा नहीं करता तो उनके ज्ञान पर भी सत्ताकी मुहर नहीं लगती। विद्वान् जब अपनी विद्वत्ताको सत्ता द्वारा प्रमाणित मनवानेकी चेष्टामें लगते हैं तो नाना अनर्थोंकी सृष्टि होती है। आज इस स्थितिका नग्न रूप प्रत्यक्ष है और भारतीय इतिहासमें हजारों वर्षोंसे यही स्थिति है।

पुरातत्व विभागके अन्तर्गत भूगर्भगत पुरातन खंडहरों और प्राचीन ध्वंसावशेषोंका जो अध्ययन होता है और उनके द्वारा संस्कृतिके स्वरूपोंके जो इतिहास उपनिबद्ध होते हैं वहां भी सभ्यताके इतिहासको ही संस्कृतिके इतिहासके नामसे प्रकट करनेकी भयावह भूल की जाती है।

पुरातन खंडहर और ध्वंसावशेष तो सत्ताप्रचारित एवं मान्य सभ्यताओंके ही खंडहर और ध्वंसावशेष होते हैं, जो युग-धर्मके अनुगत एवं देशकाल सापेक्ष होते हैं। देश और कालानुसार उनमें विकार और परिवर्तन होते रहते हैं। वे खण्ड-खण्ड, परिवर्तनापेक्षी और विकृतिगर्भ होते हैं, जब कि संस्कृति अखण्ड, अपरिवर्त्य, शाश्वत और सुकृतिगर्भ होती है।

सत्तासापेक्ष पद्धतियोंसे एवं ध्वंसावशेषोंके द्वारा उपलब्ध सभ्यताके इतिकृत अनेक सभ्यताओंके समन्वयनके इतिकृत होते हैं। व्यस्त सभ्यताओंके एकत्र-समाहृत-स्वरूपोंको सामासिक सभ्यता कह सकते हैं। संस्कृतिमें अनेकत्व नहीं होता।

सभ्यताओंके दो रूप होते हैं। सामासिक सभ्यता और प्रतिद्वन्द्विता पूर्ण विषमा सभ्यता। सभ्यताएं प्रायः सत्तानुबंधिनी होती हैं। सत्ताओंमें सशक्त एवं दुर्बलसत्ताएँ होती ही हैं। प्रायः ऐसा होता है कि सशक्त सत्ताएं दुर्बल सत्ताओंको समेट लेती हैं और उन्हें निगल कर पचा लेती हैं। स्पष्टतया सत्तानुबंधी सशक्त सभ्यता, दुर्बल सत्तानुबंधी, दुर्बल सभ्यताओंको उदरस्थ करनेवाली 'सभ्यता' तो सामासिक सभ्यता कही जाती है, किन्तु यदि इतर सभ्यता सशक्त हुई और उसे उदरस्थ करना संभव न हुआ तो वह 'विषमा सभ्यता' कही जाती है। वहां प्रतिद्वंद्विता और प्रतिघर्षणके भाव प्रत्यक्ष देखे जाते हैं और दोनों सभ्यताएं परस्पर एक दूसरेको असभ्य कहने लगती हैं। इस तरहकी 'सभ्यताएं' देश और कालकी सीमामें सीमित होती हैं और मानवीय भावुकताको उत्तेजित भी करती हैं। यहां कलह कोलाहल और संघर्ष भी होते देखे जाते हैं। जातियोंके उत्थान-पतन, संधि-संघर्ष, आगमन-बहिर्गमनका इतिहास एवं पुरातात्विक शोधोंके द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर उपनिबद्ध नाना निबंध उपर्युक्त सामासिक एवं विषमा सभ्यताओंका ही निर्वचन करते हैं। संस्कृति तो उनकी दृष्टिसीमासे दूर पड़ी रहती है।

भारतीय संस्कृति पर विचार करनेवाले भारतीय चिन्ताशील विद्वान् भी आज व्यामुग्ध दिखाई पड रहे हैं। इसका कारण पाश्चात्य चकाचौंधसे अभिभूत हो जाना और हर क्षेत्र में पाश्चात्योंके अनुकरण-अनुसरणकी भेडिया-धंसानवाली अन्धप्रवृत्ति ही कही जा सकती है। प्रतीच्य विद्वानोंके विचार ही हमारे यहां मूर्धन्य प्रमाण माने जाने लगे हैं। प्रायः भारतीय विचार भी प्रतीच्योंके अनुवाद मात्र होने लगे हैं। भारत राजनीतिक दृष्टिसे भले मुक्त हो गया हो, किन्तु 'स्व' तंत्रमें निविष्ट स्वतंत्र नहीं हुआ लगता, कदाचित् दिनानुदिन इस दृष्टिसे 'पर' प्रतीच्य-तंत्र- में ही निमग्न होता जा रहा है यदि आचूड नहीं, आकण्ठ मग्न तो हो ही गया है।

आधुनिक प्राच्य पंडितोंका प्रतीच्योंने निगरण कर ही लिया है, और उनकी वीणाके तारोंसे पश्चिमी झंकारें निकलने ही लगी हैं, किन्तु क्या मात्र भारतीय श्रौत-स्मार्त-पुराण धर्मानुयायी होनेका दावा करनेवाले भारतीय पंडितोंने भी उन्मुक्त चिन्तन करनेका कष्ट उठाया है? क्या इन्होंने भी आवरणोंको चीरनेकी चेष्टा की है? इसका उत्तर खोजने और पाने पर नतमस्तक ही होना पडता है। हजारों वर्ष गुजर गये, इन्होंने वेदोंको अपौरुषेय कहने और उन्हें पत्र-पुष्पसे अर्चन करने योग्य ही, साबित करनेमें अपनी बुद्धियां खपायी। वेद 'संस्कृति' के स्मृतिग्रंथ सांस्कृतिक आचारोंके और पुराण सांस्कृतिक आयोजनोंके विश्व-कोष हैं। किन्तु पंडितगण तत्कालीन सत्तातन्त्रों, सत्तातन्त्रोंसे मान्य शाखा और अपने-अपने अहंकारोंके पोषक संप्रदाय विशेषमें प्रचलित मतवादोंके पोषण एवं निबंधनमें ही लगे रहे। नाना मतवादोंके प्रति दंभपूर्ण आसक्तियों एवं तज्जन्य दुराग्रहोंसे आच्छन्न प्रज्ञावाले इन विद्वानोंने भारतीय मूल संस्कृति, सांस्कृतिक आचार, एवं सांस्कृतिक आयोजनोंके शाश्वत-सनातन एवं अखण्ड स्वरूपोंको खंड-खंड करनेमें ही अपनी चिन्ता और मेधाका दुरुपयोग किया। इस भयावह दुर्बलताके दुष्परिणाम स्वरूप भारत सहस्राब्दियोंसे मनसा, वाचा, कर्मणा दासत्वके पंकमें बिलबिला रहा है। इसका 'स्व' आच्छन्न होता जा रहा है, और उस पर 'पर' का रंग दिनानुदिन गाढा होता जा रहा है। आज भी ये भारतीय पंडित अपनी 'संस्कृति' के मूल स्वरूपको उपस्थित करनेका ठोस कार्य न करके पश्चिमको कोसने और गाली बकनेमें ही अपने समय और बुद्धिका अपव्यय कर रहे हैं। सांप्रदायिक मतवादोंसे ऊपर उठकर संस्कृति, सांस्कृतिक आचार एवं सांस्कृतिक आयोजनोंके संबंधमें आज भी इनका कोई प्रयास नहीं दिखाई पड रहा है।

प्राचीन प्राच्य विद्वान् मतवादासक्त हैं और अभिनव प्राच्य विद्वानोंकी बुद्धिपर 'प्रत्ययनेय मूला' और 'परदर्शनात्मिका' हो रही है। भारत आज 'पर' के तंत्रोंसे मुक्त हो गया है, किन्तु क्या वह 'स्व' 'तंत्र' में प्रतिष्ठित भी हो गया है? दासतामें पड़नेसे व्यक्ति या राष्ट्रके भीतर दासताकी वृत्ति बद्धमूल हो जाती है, इस वृत्तिका नाश होने पर ही, इस आदतके मिटने पर ही और अपनी निजी वृत्तिके उदय होने पर ही, स्वतंत्रता चरितार्थ होती है। एक दास जो अपने मालिककी इच्छासे ही सब कुछ करने और सोचनेको बाध्य है अब स्वेच्छासे सब कुछ सोचने और करनेमें समर्थ हो जाय और अपनी जीवन पद्धतिका स्वयं निर्द्धारण करनेमें सक्षम हो जाय तो उसे 'स्वतंत्र' कहा जा सकता है।

आज भारतको परतंत्रता पाशसे मुक्त हुए एक दशकसे ऊपर हो रहा है। हमें देखना चाहिए कि उसने कौनसे ऐसे कार्य किये हैं, जिनसे उसे स्वतंत्र माना जा सके। क्या जनतंत्रके कर्णधार 'स्व' स्थ हैं? उनके स्वके स्थान पर कहीं 'पर' ही तो 'स्व' के छद्म रूपमें विद्यमान् नहीं है? वे स्वतः सोचनेमें क्षम हैं या उनकी चिन्तनधारा किसी 'पर' की चिन्तनधाराका अन्धानुकरण या अनुवाद मात्र है? विचार करने पर तो ऐसा लगता है कि केवल महत्वपूर्ण शासनके 'पद' जिनसे कभी भारतीय वंचित थे, भारतीयोंको अब प्राप्त हो गये हैं, किन्तु उनका मस्तिष्क तो अभी परतंत्र बतानेवालोंकी मुट्ठीमें ही कैद है? ऐसे मस्तिष्कहृत, अपने अनुगामी, भारतीयोंके हाथमें शासनतंत्र, सौंप कर, समुद्रपारसे आज भी भारतीय जनतंत्रके संचालक तो वे पुराने मालिक ही दिखाई पड़ रहे हैं? वे ही विधि-विधान आचार-पद्धतियां और जीवनादर्श आज भी पालित एवं पुष्ट हो रहे हैं, जिन्हें मालिकोंने प्रवर्तित किया था। यदि कुछ आज अधिक है तो बस यही कि नर्तन, वादन, गायन, और अभिनय आदिके आचार्योंके शिष्टमंडलोंके सांस्कृतिक आदान-प्रदान चलते हैं।

अब हमें यहां भारतीय राष्ट्रके 'स्वत्व' पर विचार करना चाहिए। उस 'स्व' को खोजना चाहिए, जिसमें प्रतिष्ठित होनेपर 'स्व' प्रतिष्ठित या 'स्वतंत्र' कहा जा सकता है। उसका 'स्व' क्या है?

आज भारत तमाम अन्तर्राष्ट्रीय व्यामोहनोंसे व्यामुग्ध हो रहा है। दासत्व कालमें-जिस 'स्व' भावको वह पराक्रान्त होने पर भी बड़े यत्नसे बचाये रखता था, आजके स्वतंत्रता कालमें उसी 'स्व' भावकी उसे परवाह नहीं। उसका 'स्व' भाव 'पर' भाव द्वारा तिरोहित होता जा रहा है। वह उत्साह एवं उल्लाससे 'पर' भावको ही 'स्व' भाव मानता जा रहा है। यही प्रगति है, विकास है। यही उसका अन्तर्राष्ट्रीय औदार्य एवं मैत्री भाव है। तो क्या भारतका 'स्व' था ही नहीं या है ही नहीं?

वर्तमान शासनतंत्रने स्वतंत्रता प्राप्त करते ही धर्म निरपेक्ष राज्यकी घोषणा की। यह दुर्घटना, इस तर्कके आधार पर घटाई गयी कि भारत विभिन्न धर्मों-मतवादोंका एक महादेश है। धर्म सापेक्ष राज्य होने पर, यह जनतंत्री शासन किस धर्म विशेषको प्रश्रय देगा? किसी धर्म विशेषको प्रश्रय देनेकी अपेक्षा किसी भी धर्म विशेषकोंसे अपेक्षा न रखते हुए सभी धर्मोंको फूलने-फलनेका अवसर देना ही उचित है। शासनने राज्यादर्शके रूपमें 'रामराज्य' की घोषणा की, किन्तु राजनीतिको उसने धर्म निरपेक्ष घोषित किया। आदर्शके रूपमें जिस राज्यकी घोषणा की गई, उसके संस्थापक मर्यादा पुरुषोत्तम रामने मुक्त कंठ से घोषणा करते हुए कहा था—

> भूयो भूयो भाविनो भूमि पालान्
> नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः
> सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणाम्
> काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥

भविष्यमें होनेवाले सभी शासक राज्यपुरुषोंसे पुनः पुनः नमस्कार करते हुए रामचन्द्रने पुनः पुनः यही याचना की थी कि धर्म मानवोंको पार उतारनेवाला 'सेतु' है इसे आप लोग सदा पालें और बढ़ावें। किन्तु रामराज्यके लक्ष्यकी उद्घोषणा करनेवाले राजपुरुषोंने रामकी प्रार्थना को ठुकराते हुए धर्म निरपेक्ष राज्यकी घोषणा की। अनेक धर्मोंके आतंकसे सुरक्षाके लिए ही इस तरहकी शासन नीतिकी घोषणा हुई और राजनीतिसे धर्मको पृथक् कर दिया गया। यह कोई 'स्व' भाव नहीं था, यह भी 'पर' भावानुप्राणित दासत्व बुद्धिका प्रकाशन और उसका परिणाम ही था।

इस संदर्भमें विक्टोरियाकी घोषणा ' हम किसीके धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। सबको अपने-अपने धर्म पालनेकी पूरी स्वतंत्रता रहेगी ' का स्वतः स्मरण हो आता है। विक्टोरियाकी घोषणासे धर्मभीरु जनसमुदाय अंग्रेजोंके वारुणपाशमें स्वेच्छया आबद्ध हुआ था इसे कौन नहीं जानता ? हमारे यहांके विशाल जनसमुदायने-जो धर्मप्राण था-अपनेको राजनीतिसे पृथक् कर लिया। धर्मकी स्वतंत्रता मिल गयी थी-राजनीतिसे क्या लेना-देना था तब ? राजनीति और धर्म पृथक् नहीं है, राजनीति भी धर्म ही है -इस सत्यसे विमुख भारत राष्ट्र अपनी गुलामीमें भी मजेसे संतोषकी सांस लेता रहा। धार्मिक वर्ग अलग हो गया, राजनीतिसे कोटिकोशीय दूरी हो गयी। चतुर अंग्रेजोंकी यह चाल चल गयी अच्छी तरह। धर्म निरपेक्ष राज्यकी घोषणामें यह चाल अब भी सक्रिय है।

अब जरा धर्म शब्दपर भी विचार करना चाहिए। कहा जाता है कि असंख्य धर्म हैं, किसी विशिष्ट धर्मको जनतंत्रमें कैसे प्रश्रय दिया जाय ? धार्मिक कलहोंके उच्छेदके लिए धर्म निरपेक्षता ही एक मात्र मार्ग है। किन्तु ये सारे तर्क धर्मसे अनभिज्ञताके द्योतक हैं ! धर्म असंख्य तो हैं हीं नहीं, वह तो एक ही है, अखण्ड सनातन, शाश्वत और सार्वभौम-मानवधर्म।

धर्म निरपेक्षकी बात कहनेवाले ' धर्म ' और मतको एक ही अर्थमें जोड देते हैं या एक ही समझते हैं। किन्तु क्वचित्-कदाचिदपि धर्म और मत एक नहीं है। दोनोंके भिन्न-भिन्न अर्थ और दोनोंकी भिन्न-भिन्न स्थितियां हैं। यहां भी पाश्चात्योंके रिलीजन को ही ' धर्म ' कहने-मानने का दुराग्रह मूढताकी व्याप्ति है। रिलीजन ' धर्म ' नहीं ' मत ' है। आज प्रचलित अर्थोंमें, जिन्हें हिन्दू धर्म, आर्य-धर्म, वैष्णवधर्म, कबीर धर्म, नानक धर्म, रैदास धर्म, आदि संज्ञाओंसे अभिहित किया जाता है, ये सभी धर्म नहीं, ' मत ' हैं और इनकी सत्ता मानवीय मान्यताओं पर ही निर्भर है। ये शाश्वत नहीं, परिवर्तनशील हैं, ये संस्कृति नहीं विकृति शील हैं और इनमें देश और कालके अनुसार परिवर्तन-प्रतिवर्तन होते ही रहते हैं। ये सभी मतवाद हैं। इन्हें रिलीजन, मजहब या ' मत ' कुछ भी कह सकते हैं। ये नाम इन्हीं पर घटते हैं। ये सभी मत आचार्यों द्वारा युग और देशके अनुसार सबके कल्याणके लिए ही प्रवर्तित किये जाते हैं, और तत्तद्युग एवं तत्तद्-देशमें ये कल्याणकारी भी होते हैं, किन्तु जब ये ' मत ' देश और कालमें परिवर्तन उपस्थित हो जानेपर भी बदलना नहीं चाहते और इनके अनुयायी इन्हें सार्वदेशिक और सार्वकालिक कहनेका दुराग्रह करने लगते हैं, तो इनका स्वरूप ' मतवाद ' या ' संप्रदाय ' का हो जाता है, जो निश्चय ही अनिष्टकारी होता है। इस तरहके ' मतवादों ' से निरपेक्ष होना तो कल्याणकर, शोभाकर तथा सर्वथा अभिनन्दनीय है, किन्तु धर्मसे निरपेक्ष होना तो घातक है।

सनातन नियम ही जो प्रकृतिसिद्ध किन्तु ' स्व ' स्वरूपसे अप्राकृतिक अर्थात् प्राकृतिक देश और कालसे सर्वथा असंस्पृष्ट एवं अतीत है - धर्म है। इसके आत्मनिष्ठ स्वरूपको ' संस्कृति ' और आचारात्मक या व्यवहारिक स्वरूपको ' सभ्यता ' कहा जाता है। धर्मका आत्मनिष्ठ या आत्मवादी स्वरूप अप्राकृतिक, तत्वात्मक और अविकृत-शाश्वत-होता है, यही ' संस्कृति ' है। यह देश, काल या सत्ताओंकी अपेक्षासे परे और अतीत होता है। जब इसका स्वरूप मनः शारीरिक होता है अर्थात् जब यही आचारमें व्यवहृत होता है, आचरणोंमें प्रतिफलित होता है, तो इस बाह्य प्रकाशनको सभ्यता कहते हैं। सभ्यतासे भी दो धाराएं फूटती हैं-'एकको सांस्कृतिक आचार ' कहते हैं और दूसरीको ' सांस्कृतिक आयोजन '। शरीरस्थ मनमें संस्कृतिसे अनुप्राणित जो भाव, इच्छाएं और क्रियाएं प्रवर्तित होती हैं, वही सांस्कृतिक आचार या ' अन्तःसभ्यता ' कही जाती है। मनके आचारका जब शरीर द्वारा कार्यान्वयन होता है अर्थात्, मनकी अंतःसभ्यता, मनमें उत्थित संस्कृति-प्रेरित, आचार जब कर्मेन्द्रियों द्वारा कार्यरूपमें परिणत होते हैं तो इसको सांस्कृतिक आयोजन कहा जाता है। धर्म ही संस्कृति है, और भारतीय संस्कृतिका तात्पर्य इसी ' संस्कृतिसे ' है। सांस्कृतिक आचारों एवं सांस्कृतिक आयोजनों पर देश-कालका प्रभाव पडता है। इन पर संस्कृतिका या शाश्वत सार्वभौम धर्मका नियंत्रण रहता है अतः इनमें विस्फोट नहीं होता। धर्मसे या संस्कृतिसे अनियंत्रित होने पर सांस्कृतिक आचार या ' सांस्कृतिक ' आयोजन विभ्रष्ट होकर विनाशकारी हो जाते हैं। सांस्कृतिक आचार और

सांस्कृतिक आयोजनोंको ही अत्यधिक स्पष्ट शब्दोंमें प्राकृतिक धर्म और लोक धर्म कहा जा सकता है। उपर्युक्त संस्कृति (धर्म) सांस्कृतिक आचार, और सांस्कृतिक आयोजनोंमें पारस्परिक संबंध सूत्रोंको दृढ बद्ध रखना चाहिए, अन्यथा विघातक स्थिति उत्पन्न हो ही जाती है।

संस्कृति (शाश्वतधर्म) सांस्कृतिक आचार (प्राकृत धर्म) और सांस्कृतिक आयोजन (लोकधर्म), इस धर्मत्रयीके आधारभूत शास्त्रत्रयी हैं, क्रमशः वेद, स्मृति और पुराण शास्त्र।

जिस तरह मत प्रवर्तक आचार्योंके मंगलावह दृष्टियोंको पश्चात्कालीन अनुयायी जन दुराग्रहवश विकृत बनाकर उसे वितंडामूलक मतवाद बना देते हैं, ठीक वैसे ही मतवादासक्त पंडित नामधारी दुराग्रह मूढोंने शास्त्रत्रयीको भी, अर्थोंका अनर्थ करते हुए, कुख्यात बना डाला है।

शाश्वत धर्म या संस्कृतिके- मूलाधार और भण्डार वेद हैं, प्राकृत धर्म या सांस्कृतिक आचारके विधायक और निधि स्मृतिशास्त्र हैं और लोकधर्म या सांस्कृतिक आयोजनोंके परिचायक या कोष पुराणशास्त्र हैं। इन सबमें परस्परान्वयन है। इनके परस्परान्वयनमें तनिक भी ' व्यतिक्रम ' ब्रह्मांड क्षोभक बन जाता है।

वैदिक धर्म, शाश्वत धर्म, आत्मा या ईश्वरका धर्म- संस्कृति-सापेक्ष आचरणधर्म ही प्राकृत धर्म है, जो मानवीय मनमें अभिव्यक्त मनोरूप होता है और प्राकृत धर्म सापेक्ष आयोजन धर्म ही लोक धर्म है, जो मानवीय कार्योंके रूपमें प्रकाशित होता है। लोकधर्मका आधार शरीर है तो प्राकृत धर्मका आधार मन है और एवमेव शाश्वत धर्म या संस्कृतिका आधार आत्मा है। आत्माका धर्म ही मानवधर्म है, यही संस्कृति है और इसे ही ' भारतीय संस्कृति ' के नामसे शास्त्रोंने अभिहित किया है।

रामने जिस ' धर्म ' या संस्कृतिका भावी राजाओंसे पालन करनेकी याचना की है वह उपर्युक्त धर्म या संस्कृति ही है। इस व्याख्याके बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म निरपेक्षताका अर्थ, संस्कृतिसे निरपेक्ष होना, हो जाता है। हम अपनी सनातन संस्कृतिसे निरपेक्ष होकर, यदि ध्यान नहीं दिया गया तो धर्म निरपेक्षताको ही अपनी संस्कृति माननेके आदी हो जायेंगे और चिर कालके लिए ' आत्मविस्मृत ' के गह्वरमें गिर जायेंगे।

सन्त देवरहवा बाबा की तपोभूमि में राष्ट्रीयता

संस्कृति एवं संस्कृतका अपूर्व संगम

(एक दर्शक)

विजयादशमीके पवित्र उत्सवके बाद ही भारत प्रसिद्ध सन्त योगिराज देवरहवा बाबाकी तपोभूमि पर २२ से लेकर २४ अक्टूबर तक वेदव्यासपुरीमें राष्ट्रीयता, संस्कृति एवं संस्कृतकी त्रिवेणी बहती रही, उनमें नहाकर देवरिया एवं पड़ोसी जनपदोंकी जनता धन्य हो गयी। बाबाजीको केन्द्रमें रहकर उस महाविभूतिके आश्रयमें अत्यन्त कर्मठ नेता श्री बद्रीनारायण मिश्रने जो कल्पनायें की वे इन तीन चार दिनोंमें मूर्त हो गयीं। सरयूके पावन तट पर वैदिक मन्त्रोंके उच्चारण; पूजन, वन्दन एवं हवन धूपके पुण्य गन्धमय वातावरणमें धर्मकी आन्तरिक शक्तिके विविध स्रोत फूट निकले। देखने वालोंने देखा कि नये युगके निर्मम प्रहारोंको सहकर भी वैदिक धर्म अभी भी कितना शक्तिशाली है। जनतामें श्रद्धा और आस्थाकी नींव कितनी गहरी है! सन्त शिरोमणि देवरहवा बाबा मौन साधक हैं। परम ज्योतिका पुंज उनके अन्तःमें उद्भासित है। उस ज्योतिके एक सकेत पर लाख लाख जनजीवन सरयूकी बाढकी तरह ही कष्टोंकी परवाह छोड उमड पड़ी। प्रयागकी अर्ध-कुम्भीका सादृश्य वहां उपस्थित था। व्यास पुरीकी कल्पना अत्यन्त उर्वर मस्तिष्ककी उपज थी, जब हम अपने गौरवमय अतीतको भूलकर पश्चिमकी अनात्मीय भोगवादी धारामें डूब-चूभ रहे हों तो ऐसे समय ऐसा सांस्कृतिक महायास सर्वथा स्तुत्य है। इस सांस्कृतिक चेतनाकी पावन धारामें डुबकी लगानेकी अदम्य लालसा लिये हम लोग २३ अक्टूबरको देवरियासे चले लगभग ११ बजे हमारी मोटर भागलपुर जानेवाली सड़कसे ज्योंही पश्चिमको मुड़ी त्योंही सामने वेदव्यास द्वार मिला। वेदव्यास द्वारसे प्रवेश कर भाष्यकार पतंजलि, महर्षि दयानन्द' जनक एवं नगर द्वारके बाद हम पहुँचे महामना मालवीयके द्वार पर। इन युग प्रवर्तक महापुरुषोंके नामांकित द्वारोंसे गुजरते-गुजरते मन स्वार्थोंकी दुनियांको लांघ स्वर्णिम अतीतके स्पर्शसे पुलकित हो उठा। भावोच्छ्वाससे तन रोमांचित हो गया। इन महापुरुषोंकी कीर्ति पताकायें सामने फहराती नजर आई और इस सुयोगको संजोने वालोंके आभारसे हृदय भर आया। लगा कि संस्कृति हमारी जीवित है। हम मेलेमें पहुंचे। ऊंची-नीची, वर्षासे गीली जमीनको बड़े परिश्रमसे साफ कर जगह-जगह टेण्ट पडे थे शामियाने तने थे। हलवाइयोंकी दूकानों पर खाने-पीनेवालोंकी भीड़ लगी थी। पेट पूजा तो घर पर हो चुकी थी, पर प्यास तेज लगी थी। साथी ऐसे जो दर्शनके लिए उत्सुक। रुकने का नाम नहीं लेनेवाले। हम चले भीड़में धंसते, धक्के पर धक्के खाते उस ओर जहां नवनिर्मित मचानकी कुटीमें इस तपोभूमिकी आत्मा, बाबा बैठे थे पचासों हजारकी भीड़ बाबाकी जय-जयकार कर रही थी। बाबा क्षण भर बाहर आ दर्शन देते। क्षणमें भीतर जाते, फिर आते। उनमें तथा जनतामें तादात्म्य हो गया था। जनता उनके बिना बेचैन और वे जनताके लिये बेचैन। भीड़ तथा बाबाकी परिक्रमा कर गिरते-पड़ते विष्णु-यज्ञके मण्डप और मन्दिर के मध्यसे निकल हम आये उस पर्णकुटीके पास जहां ब्रह्मर्षिकी उपाधि प्राप्त करनेके लिये उपस्थित वेदोंके अभिनव भाष्यकार श्रीपाद दामोदर सातवलेकर बैठे थे। श्रीपादको देख आत्मा तृप्त हो गयी। ९५ वर्षकी आयुमें भी इस वैदिक विद्वान्के मुखमण्डल पर अद्भुत ओजका आकर्षण था। सूर्यके समान आनन चमक रहा था। आंखोंमें चिन्तनकी आभा। ललाट दमकता, सिर पर श्वेत उठे केश, कांतिके प्रतीकसे भरा-पूरा मांसल, गौर शरीर। सहज मुस्कान। अद्भुत आकर्षण व्यक्तित्व। सामने वैदिक ऋषिकी यह मूर्ति साक्षात् विराजमान दीख पड़ी। हम फिर वैदिक कालकी भाव भूमिमें पहुंच गये। यात्रा इनके दर्शन मात्रसे ही सफल हो गयी। हमारे लिये सारा आयोजन पूर्ण सा लगा। इस अकेलेको ही बुलाकर आयोजक कृतकार्यसे लगे

फिर हम बाबाकी कुटीके नीचे पहुंचे। चरणोंकी छायामें आन्तरिक शान्तिकी अनुभूतिमें निमग्नसे हो गये। लेकिन भौतिक प्यासका आकर्षण भी तो कम नहीं। हम श्री उमा बाबूकी पर्णकुटीमें आये। उन्होंने देवरियाके पेड़े खिलाये। मशहूर पेड़े। नीबू मिश्रित जलपानसे सद्यः हम स्वस्थ हो गये।

२ बजेसे मालवीय शती समारोह, संस्कृति सम्मेलन और ब्रह्मर्षिकी उपाधिके दानका पावन पर्व समुदित रूपसे आया। एक ओर विशाल पण्डाल १५ हजारकी भीड़से ठसाठस भरा था तो एक ओर बाबाकी भक्तिसे एकान्त एक मात्र पूरित २० हजार जनता बाबाकी जयकी रट लगाये सब कुछ भूल, उन्हींके दर्शनमें तन्मय थी। पण्डालके दक्षिण पार्श्वमें स्थित मंच भारतीय राष्ट्रीयताका प्रतिनिधित्व कर रहा था विभिन्न प्रदेशोंके धुरन्धर विद्वान बैठे थे। कम्बोडिया, थाइलैण्ड, सिलोन तथा वर्माके संस्कृतज्ञ बौद्ध-भिक्षु क्षौमपीत चीवरोंसे मंडित विशेष आकर्षणके केन्द्र बने थे। भारतीयताके साथ एशियाई राष्ट्रोंका मधुर मिलन इस मंच पर देख आत्मा प्रफुल्ल हो गयी। संस्कृत भाषाकी कड़ीने सारे प्रदेशोंको जोड़ कर एकत्रस्थ किया ही था, इसने विदेशियोंका भी बिठा दिया। उत्तर प्रदेशके गौरव गोरखपुर विश्वविद्यालयके संस्थापक महामनाके लघु-संस्करण श्री सुरतिनारायण मणिने मालवीय शती समारोह एवं संस्कृति सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष पदसे युगानुकूल स्वागत भाषण किया। अनेक प्रदेशोंके वक्ताओंने महामना एवं संस्कृतिके सूक्ष्म तत्व पर सारगर्भित भाषण दिये। अध्यक्ष पदसे श्री सातवलेकरने अपने वैदिक ज्ञानका खजाना सर्व सुलभ कर दिया। वेदोंमें आयुर्विज्ञानका विवेचन कर अध्यक्षने 'शतमूजीवेम' का प्रयोगिक रूप उपस्थित कर दिया। तब आई उपाधिदानकी वारी। शताधिक वैदिकोंने वेद—मन्त्रोंका मङ्गलपाठ किया। मन्त्रोच्चारणसे आकाश गूंज उठा। पूज्यपाद सन्त देवरहवा बाबाने भी सातवलेकरजीको माला पहनाई। फल-फूल दिये। आशीर्वाद दिया।

संस्कृतमें लिखित मुद्रित उपाधि पत्र दिया जिसे वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयके प्रस्तोता श्री कुबेरनाथ शुक्लने सभामें पढ़कर सुनाया। सायंकाल ८ बजे चलकर हम १० बजे देवरिया पहुंच गये। दूसरे दिन २४ अक्टूबरको पुनः

> ### भूल सुधार
>
> वैदिक धर्मके दिसम्बर अङ्कमें श्री ब्रह्मानन्द-जीका " भारत, निनेवा और बाबुल " लेख प्रकाशित हुआ था। पाठक उसमें ४४४ पृष्ठपर " खवासनकी दौरिया " की जगह " खवासनकी टौरिया " तथा ४४५ पृष्ठपर " बेबीलोन शोक " की जगह " बाबुल शोक " पढ़ें। —सम्पादक

११॥ बजे पहुंचे। इस दिनका मुख्य कार्य क्रम संस्कृत सम्मेलन था। सार्वभौम संस्कृत प्रचार सम्मेलनके अधिष्ठाता साहित्याचार्य पं. वासुदेव द्विवेदीको कौन संस्कृतज्ञ नहीं जानता। उनकी ही चेष्टासे यह सम्मेलन पूर्ण सफल हुआ। केरलकी राजधानी त्रिवेन्द्रमके पं. वासुदेवने सारगर्भित संस्कृत भाषणमें संस्कृतके महत्वको बड़े सुन्दर ढंगसे रखा। इस सम्मेलनको देखकर लगा कि संस्कृतको मृत भाषा कहनेवाले कितनी मूर्खताकी बात करते हैं। यदि संस्कृत मृत है तो केरली हृदयको उत्तर प्रदेशके हृदयसे कौन जोड़ रहा है? आंध्रसे तामिल नाडसे, महाराष्ट्र आदिसे हमें सीधे-सीधे कौन जोड़ रहा है? अंग्रेजी तो विदेशी है। उसमें हमारे हृदयका स्पन्दन कहां? यह संस्कृत है जो आज भी हमें एक राष्ट्र बना रही है। संस्कृत सम्मेलनके मंच पर कम्बोडिया, थाइलैण्ड, बर्मा और सिलोनके विद्वानोंने संस्कृतमें लिखित अपने विचार दिए। एक स्वरसे उन सबने बताया कि हमारा संस्कृतसे अविच्छिन्न सम्बन्ध है। संस्कृतने वहां भारतीय राष्ट्रीयताको साकार कर दिया था।

मेलेमें बाहरसे आनेवाले प्रतिनिधियोंको भी कुछ कष्टका अनुभव हुआ है। यह बात कई मित्रोंसे ज्ञात हुई।

सबसे बड़ा कष्ट पानीका था। १०० बीघेसे अधिक भूमिमें लगे इस मेलेमें ५-६ हैंड पम्प लगे थे। जो अत्यंत अपर्याप्त थे। लोगोंको दो आने घड़ा पानी तक खरीदना पड़ा। पम्पों पर पहुंचना और जल पा लेना बड़े सौभाग्यकी बात थी। बेचारी स्त्रियोंकी दशा, जल कष्टसे अति दयनीय थी। सब ओर पानी-पानीकी पुकार थी। गन्दे पानीसे भरे नालेका तट मल-मूत्रकी गंदगीसे पटा था।

मेहतरोंका कोई प्रबन्ध नहीं था। इन तमाम कष्टोंके बावजूद भी यह सांस्कृतिक मेला अपने ढंगका अनूठा था। इतना बडा आयोजन देवरिया, शायद उत्तर प्रदेशमें किसी भी भागमें नहीं हुआ था। इस आयोजनके कर्ता धर्ता श्री बद्रीनारायण मिश्र, श्री केशवचन्द्र मिश्र, वासुदेव द्विवेदी, श्री परशुराम तिवारी आदि एवं उनके साथी प्रशंसाके पात्र हुए हैं। उन्हें विरोधियोंकी निन्दाका भी सामना करना पडा है, पर जो विरोध करनेमें ही अपनी बडाई मानते हैं उन्हें कैसे समझाया भी जा सकता है।

ब्रह्मर्षिकी उपाधिको भी लेकर कुछ अप्रसिद्ध जन सहसा प्रसिद्धि पानेको लालचा उठे तो यह स्वाभाविक है। स्वयं शास्त्रका क, ख, ग, भी न जानकर ऐसे लोग शास्त्रार्थ भी करनेको तैयार हो गये। शास्त्रको गाली देनेवाले ही शास्त्री बन बैठे। नास्तिकताका पाठ पढानेवाले आस्तिकताकी खाल ओढ जनताको गुमराह करने लगे। लेकिन इससे होता क्या? वेदव्यास नगरीमें इन शास्त्रियोंको कहीं नहीं देखा गया। जाने ये कहां दुबक गये थे। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महापांडित्य एवं वैदिक निधिके मंथनके फल स्वरूप-ब्रह्मर्षि पदसे विभूषित हो गये। राजर्षि टण्डनजीकी तरह ही वे भी ब्रह्मर्षि सातवलेकर हो गये। वे मंत्र द्रष्टा नहीं तो न सही, मंत्र व्याख्याता और भाष्यकार तो हैं ही। शब्द ब्रह्मके चिन्तनसे वे ब्रह्मर्षि तो थे ही। उपाधि दानके द्वारा बाबाने कोटि जनताके हृदयोद्गारको ही व्यक्त किया है। इस महापंडित और तपस्वीको एक मात्र अपना पारिश्रमिक फल मिला है। कोई पुरस्कार नहीं दिया गया।

ब्रह्मर्षिकी उपाधि

इस सिलसिलेमें देवरिया नगरके आर्य समाजमें कलम कश हो गई है। पहले एक विरोधी नोटिस निकली, जिसमें उपाधि दानका विरोध और शास्त्रार्थके लिये भी ललकारा गया था। फिर उसके खण्डनमें यहांके प्रतिष्ठित श्री चन्द्रमा प्रकाश आदि समाजी सज्जनोंके नामसे एक नोटिस निकली। आर्य समाजसे अलग रहनेवाले कुछ दूसरे लोगोंका भी विरोधी स्वर सुननेको मिला, किन्तु मेलेमें कहीं कोई विरोधी नहीं दीख पडा। सब एक ही दिशामें बहते नजर आये। सब पर बाबाका प्रभाव दीख पडा। श्री सातवलेकरजीको उपाधि दे दी गयी। वह उनके नामसे जुड भी जायगी क्योंकि अधुनिक युगमें वैदिक ज्ञानकी उन्होंने अपनी नव्य व्याख्याओंसे विज्ञान सम्मत करनेकी प्रबल चेष्टा की है। वैज्ञानिक युगके अनुसार यदि वेदमंत्रोंकी समीचीन व्याख्या न हो तो आजका मानव किसी मंत्र या उपदेशको आंख मूंद कर सुननेवाला नहीं। श्री सातवलेकरने विज्ञान युगीय मानवको भी वेद ज्ञानके लिये जिज्ञासु बनानेका अतुल प्रयत्न किया है।

इस कामके बदलेमें उन्हें ब्रह्मर्षिकी उपाधिसे यदि विभूषित ही कर दिया गया तो आयोजनकर्ताओंने कौनसा अपराध कर दिया। विरोध करनेवालोंको सोचना चाहिए कि आज हमारे सारे संस्कार वैदिक युगके समान ही नहीं होते। वर्णाश्रम व्यवस्थाके भग्नावशेष ही अब दीख रहे हैं। फिर समयानुसार ब्रह्मर्षिकी उपाधि दी गयी तो क्या अनर्थ हो गया? दस हजार शिष्योंके कुलका व्यवस्थापक गुरु कुलपति होता था। आजके विश्व विद्यालयोंके कुलपति हमारे राज्यपाल हैं। कुल परम्पराका बिलकुल ही ध्यान न रखनेवाले लोग उप कुलपति कहला रहे हैं। स्कूलोंके प्रिंसिपलोंको आचार्य ही नहीं प्रधानाचार्यकी पदवी दी जा रही हैं। छात्रोंको ज्ञानके साथ सदाचारकी प्रायोगिक शिक्षा देनेके कारण पुराने जमानेके गुरु आचार्य पद प्राप्त करते थे। और भी देखिए। अपने अपने कर्मोंको छोडकर भी हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र बने हुए है। वैदिक कर्मकाण्ड करा रहे हैं और कोई दल विरोध नहीं करता। तब वेदोंके अनुशीलनमें ९५ वर्षकी लम्बी आयु बितानेवाले इस तपस्वीको ब्रह्मर्षि पद दे दिया गया तो क्या बुरा हो गया?

कुछ सूट-बूट धारी विरोधी देवरियामें मिले, जिन्हें प्राचीन धर्म पर कोई निष्ठा नहीं। न धर्मके प्रति उनकी ममता कभी देखनेमें आई। ऐसे लोगोंके विरोधका क्या रहस्य है समझमें नहीं आया। हां यह हो सकता है कि धर्मकी प्रबल शक्तिको देखकर वे चौंधियासे गये हैं। इसी लिये धर्मका नाम लेकर उक्त धार्मिक आयोजनका विरोध कर रहे हैं।

(लोकायनसे साभार)

दिनांक २३–२४ अक्टूबर १९६१ ई. को, महर्षि वेदव्यास नगर में परिसम्पन्न, महामना मालवीय शती जयंती के प्रथम अखिल भारतीय समारोह में, दक्षिण भारत से समागत विद्वानों के

प्रान्त और उनके नाम:—

केरल

१- महोपाध्याय एम० एच० शास्त्री, एम० ए०, लेक्चरर-संस्कृत कालेज, त्रिवेन्द्रम।

२- महोपाध्याय आर० वासुदेवन पोट्टी, एम० ए०, संस्कृत कालेज, त्रिवेन्द्रम।

आन्ध्र

१- श्री के० लक्ष्मण शास्त्री, विशेषाधिकारी, संस्कृत शिक्षा विभाग आन्ध्र सरकार, हैदराबाद।

कर्णाटक

१- डा० वीर राघवाचार्य, प्राध्यापक, रामानुज वेदान्त, चामर राजेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय, बेंगलौर।

उत्कल

१- आचार्य त्रिनाथ शास्त्री, एम० ए०, प्राध्यापक, हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी।

महाराष्ट्र

१- श्री पं० गणेश शास्त्री झेण्ड्ये, सभापति, विद्वत्सभा, पूना।

२- श्री पं० मुरलीधर शास्त्री झेण्ड्ये, ऋग्वेदी, विद्वत्सभा, पूना।

३- श्री पं० दत्तात्रेय शास्त्री झेण्ड्ये, ऋग्वेदी, विद्वत्सभा, पूना।

卐 卐 卐

दिनांक २३–२४ अक्टूबर १९६१ ई. को, महर्षि वेदव्यास नगर में परिसम्पन्न, महामना मालवीय शती जयंती के प्रथम अखिल भारतीय समारोह में, विदेशों से समागत विद्वानों के

नाम और उनके देश—

१- ऊरैवत धम्म	(बर्मा)	७- पुञ्ञाथेरो	(थाईलैंड)
२- ऊयेअउतोधम्म	(बर्मा)	८- अम्सपल	(लद्दाख)
३- ऊधम्म उत	(बर्मा)	९- धम्मिक	(लंका)
४- अग्गरत	(कम्बोडिया)	१०- सुमनसार	(लंका)
५- चन्द्रवर्ण	(कम्बोडिया)	११- सुवर्ण वंश	(लाओस)
६- लिखितानन्द	(थाईलैंड)	१२- ङ्.वङ्.डग्पा	(तिब्बत)
		१३- थुप्तन छोवडुप	(तिब्बत)

दिनांक २३–२४ अक्टूबर १९६१ ई० को, महर्षि वेदव्यास नगरमें परिसम्पन्न होनेवाले अखिल भारतीय महामना मालवीय शती जयंतीके प्रथम ऐतिहासिक, सांस्कृतिक समारोहके मुख्य कार्यकर्ताओं का

संक्षिप्त परिचय

★

१ आचार्य श्री केशवचन्द्रजी मिश्र एम. ए. बी. टी. 'साहित्यरत्न' प्रधानाचार्य, मदनमोहन मालवीय महाविद्यालय, भाटपार रानी (देवरिया) उ. प्र.।

आपका बाह्य और आभ्यन्तर व्यक्तित्व अत्यंत संघटित और आकर्षक है। आपमें ज्ञान, संवेदना और क्रियाशक्तिका अपूर्व संतुलन और समुच्चय हुआ है। आपकी तलमेदिनी मेधा, आपकी आंखोंसे टपकी पड़ती तो जान ही पड़ती है, आपकी सादी, किन्तु आकर्षक वेषभूषा तो आपको ज्ञान और पौरुषका साक्षात् प्रतिमान ही प्रमाणित करती है।

आप अत्यंत उदार, अनुभूति प्रवण, मनस्वी, कर्मठ और सौम्य महापुरुष हैं! आपने आजसे १६ वर्ष पूर्व–जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे ससम्मान स्नातकोत्तर परीक्षा उतीर्ण की थी अनेक विश्वविद्यालयोंसे प्राध्यापक पदके लिए प्राप्त आमंत्रणोंको सधन्यवाद अस्वीकृत करते हुए– भाटपार रानी जैसे निपट देहाती क्षेत्रमें, महामनाकी पवित्र स्मृति में, महामना मदन मोहन मालवीय महाविद्यालय, की स्थापनाकी। इस आदर्शवादी तपस्वीके मार्गावरोधके लिए विघ्नों एवं बाधाओंके बड़े-बड़े विशाल बवंडर एवं विभीषकापूर्ण झंझावात आये, किन्तु यह आलोक निष्कम्प और सदा अमंद किरणोंसे इस प्रदेशके तमावरणको चीरता ही गया।

विद्यालय निरंतर उन्नति एवं उत्कर्षके पद पर बढ़ता ही गया और बढ़ता ही आ रहा है अतिशीघ्र यह स्नातकस्तरीय महाविद्यालयके रूपमें परिवर्तित होनेवाला है। पासमें पैसे नहीं हैं, किन्तु विद्यालयके प्रांगणमें १५–१६ सहस्र रुपयोंके व्ययसे निर्मित, एक विशाल एवं भव्य महामना की संगममंरीय मानवाकार मूर्तिकी स्थापनाकी परिकल्पना है जो अग्रिम दिसंबर १९६१ ई. में ही परिसम्पन्न हो रही है। इसके साथ ही एक विशाल वैदिक ग्रंथागारकी स्थापना भी हो रही हैं, जिसमें समस्त भाषाओंमें उपलब्ध संपूर्ण प्रकारके वैदिक साहित्योंका विशाल संकलन होगा, जिससे देश विदेशके गवेषणाशीलमनीषि यहां आकर लाभान्वित हो सकेंगे। यह सब आपकी ही सूझ और कार्यपटुताकी परिणति स्वरूप हो रहा है।

विगत २३, २४ अक्टूबर १९६१ ई. को महर्षि वेदव्यास नगरमें अखिल भारतीय महामना मालवीय शती जयंतीका जो प्रथम ऐतिहासिक सांस्कृतिक समारोह परिसम्पन्न हुआ है, उसकी परिकल्पना, आपकी महामनाके प्रति अगाध श्रद्धा, भारतीय संस्कृतिकी गूढ मर्मज्ञता और विद्वत् सम्मानकी तरुण आकांक्षाकी परिचायिका तो है ही, उसका इस प्रकार विशाल एवं विराट् रूपमें सहज ही संपादित हो जाना आपकी कर्मक्षमताका अनन्य निदर्शन है।

आप दर्शनके जिज्ञासु, साहित्यके मर्मज्ञ और इतिहासके अप्रतिम विद्वान् हैं, जिसकी साक्षी हैं आपकी अनेक शोधपूर्ण पुस्तकें, रचनाएं एवं अन्य विविध कृतियां।

२ श्री बदरी नारायण मिश्र, भूतपूर्व एम. एल. ए., उत्तर प्रदेश।

आप साहस, वीरता और पौरुषकी प्रतिमूर्ति हैं। आपमें जनसेवाकी उदात्त भावना निरंतर तरंगशील रहती है। आप धुनके बड़े पक्के हैं। कार्य करनेमें ऐसे कि शीत, घाम, वर्षा, दिन और रातका कुछ ध्यान नहीं रखते। कार्य और अनवरत कार्य–यही इनकी प्रकृति है। राष्ट्रीयताकी भावनासे आपका व्यक्तित्व ओतप्रोत है।

गांधीजीके असहयोग आंदोलनकी पुकारमें अल्पवयसमें ही आपने स्कूल छोड़ दिया और फिर नियतिने इनका संबंध बंगालकी युगान्तर पार्टीसे अत्यंत घनिष्ठ रूपसे जोड़ दिया। आप अंग्रेजी सरकारके कोप भाजन भी बने। चटगांव शस्त्रागार केसमें आपको लपेटा गया। अनेकबार इस महान् क्रान्तिकारीने प्राणोंको हथेली पर रख कर तत्कालीन सरकारसे सशस्त्र युद्ध भी किया है। और इस मैदानमें बहुतसे आततायियोंको मौतके घाट भी उतारा है। सारे देशकी इस दीवानेने खाक छानी। दुर्गम वन-पर्वतोंमें रातें काटी हैं। सन् १९३६ में इन्हें कारावासकी सजा मिली और फिर ८ वर्षोंके पश्चात् मुक्त हुए। इन्हें कारावास कालमें अनेक बार कुल मिलाकर नब्बे बेंत लगे थे। ६३ दिनों तक इन्होंने अनशन भी किया था।

आपके हृदयमें राष्ट्रसेवा और लोकसेवाकी आग निरंतर जलती है। आप भारतीय संस्कृतिके अत्यंत प्रेमी और जन-जीवनको हर दिशामें जाग्रत एवं समुन्नत करनेके लिए सतत सचेष्ट रहनेवाले अद्भुत व्यक्ति हैं। खानेकी परवाह नहीं, पोशाकका ख्याल नहीं और आरामकी याद नहीं ऐसा है आपका स्वभाव। आपको देखते ही शिथिलता समाप्त हो जाती है और श्लथ व्यक्ति भी स्फूर्तिशील सा कार्यरत होता देखा जाता है।

आपको विगत आम चुनावमें जनताने उत्तर प्रदेशीय विधान सभाके लिए अपना प्रतिनिधि भी चुना था।

विगत २३-२४ अक्टूबर १९६१ ई. को वेदव्यास नगरमें परिसम्पन्न होनेवाले अखिल भारतीय महामना मालवीय शती जयंतीके प्रथम किन्तु ऐतिहासिक सांस्कृतिक समारोहको सफल बनानेमें आदिसे अंत तक आपका प्रमुख हाथ रहा है। परिकल्पनासे लेकर उसकी परिपूर्णता तक लगातार आपने सहयोग दिया है। और उसकी सफलताका अधिक श्रेय आपको है।

३ **श्री सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी**, आई. ए. एस., सदस्य लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश, सीनियर डिप्टी मैनेजिंग डाइरेक्टर, ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन, कानपुर।

आप अन्यतम जनसेवी, सहृदय और उदार पुरुष हैं। आपने सदा सरकारी सेवामें उच्च पदों पर कार्य करते हुए भी निरहंकार रूपसे राष्ट्रसेवा एवं लोकसेवामें अपना तन, मन और धन भी लगाया है। पाश्चात्य वेषभूषामें भी आपकी सरल और आत्मीयतासे ओतप्रोत भारतीय आत्मा ऊपर झलकती दिखाई पड़ती है। आपने जनजीवनको हर ओरसे सम्पन्न और जागरूक बनानेका सतत प्रयास किया है और अब भी करते जा रहे हैं। ये बहुतसी संस्थाओंके संस्थापक और संचालक रहे हैं एवं अब भी हैं।

इधर आपके अन्य महत्तम कार्योंमें–गोरखपुर विश्वविद्यालयकी स्थापना एवम् उसके पोषण और संवर्द्धनकी सतत चेष्टाके कार्य-अत्यधिक गौरवपूर्ण हैं। महामनाने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाकी है तो आपने भी उनके पदचिन्हों पर चलकर गोरखपुर विश्वविद्यालयकी महान् परिकल्पनाको कार्यरूपमें परिणत करनेकी साधु चेष्टा की है। आप गोरखपुर विश्वविद्यालयके कोषाध्यक्ष भी हैं।

२३-२४ अक्टूबर १९६१ ई. को, वेदव्यास नगरमें होनेवाले महामना मालवीय जी की शती जयंतीके प्रथम अखिल भारतीय समारोहको सफल बनाने एवं उसे पूर्णता देनेमें आपका महत्तम योगदान रहा है।

४ **श्री वासुदेव द्विवेदी**, वेदशास्त्री, साहित्याचार्य, संस्थापक सार्वभौम संस्कृत-प्रचारकार्यालय, टेढ़ीनीम, वाराणसी।

आप भारतीय संस्कृतिके प्रेमी और संस्कृत साहित्यके उद्भट विद्वान् हैं। साथ ही एक हृदयवान् कवि भी हैं। संस्कृत वाङ्मयके प्रचार एवं प्रसारसे ही लोकमंगलकी सिद्धि हो सकती है -इस पर आपका दृढ विश्वास है। गृह और दाराका परित्याग कर, यह दीवानासन्यासी, अमरवाणीके प्रचार एवं प्रसारमें निरंतर मनसा, वाचा और कर्मणा संलग्न, स्थान-स्थानकी खाक छानता फिरता है। खानेपीने, सोने-बैठने, और अन्य आरामकी सुविधाओंके अभावकी परवाह किये बिना यह लक्ष्यकी ओर निरंतर बढ़नेकी धुनमें ही मस्त रहता है। हर तरहकी सुविधाओं एवं अभावोंके बीच भी संसारकी निन्दा-स्तुतिकी उपेक्षा करते हुए, इन्होंने बहुत वर्षों पूर्व सार्वभौम संस्कृत प्रचार

कार्यालयकी वाराणसीमें स्थापनाकी। संस्कृत प्रचार कार्यमें इस संस्थाके योगदान अपना एकान्त महत्व रखते हैं। द्विवेदीजीने मानवके व्यापक जीवनसे संबंधित बहुतसी छोटी-छोटी, सरलतम, बोल चालकी शैलीमें संस्कृत पुस्तकें लिखी हैं, जिनको अध्येता सरलता पूर्वक हृदयंगम कर लेता है और संस्कृतकी ओर सहज ही आकर्षित हो जाता है। संस्कृत शिक्षण संबंधी पाठय पुस्तकोंके अतिरिक्त, आपने ऐसी सरणी एवं विधि-विधानोंवाली पुस्तकें भी रची हैं, जिनके अनुसरणसे संस्कृत सीखनेमें न कोई कठिनता रह जाती है न विलंब।

५ श्री हरिशंकर प्रसाद गुप्त, अध्यक्ष अंतरिम जिला परिषद, गोरखपुर।

आप अपनी विचारशीलता एवं उत्साहपूर्ण समाज सेवा के कारण बहुत लोकप्रिय हैं। जन-जीवनको सब तरह उत्कर्षपूर्ण और जागृत करनेकी दिशामें आपके प्रयास अत्यंत सराहनीय हैं। आप बहुत उदार, नम्र एवं अन्य अनेक स्पृहणीय सद्गुणोंसे सम्पन्न आदरास्पद व्यक्ति हैं।

उपर्युक्त सम्मेलनकी सफलतामें आपके योग दानका निःसंशय महत्व सराहनीय है।

आपने संस्कृत प्रचार-प्रसारके लिए कई बार समस्त भारतका दौरा किया है और उपर्युक्त महामना मालवीय शती जयंतीके प्रथम अखिल भारतीय समारोहको सफल बनानेमें आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। २४ अक्टूबर १९६१ ई. को हुई विद्वद् गोष्ठी और उत्साह वर्द्धक सार्वभौम संस्कृत सम्मेलन, सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय वाराणसीके तत्वावधानमें ही सम्पन्न हुआ था, जिसके आप संस्थापक है।

६ श्री देवनन्दन शुक्ल, वकील, भूतपूर्व एम० एल० ए०, देवरिया।

आप एक कर्मठ देशभक्त और समाज सेवी व्यक्ति हैं। भारतीय संस्कृतिके प्रति आपका अधिक आकर्षण और अनुराग है। राष्ट्रोत्थान एवं लोकोत्कर्षसे संबंधित कार्योंमें आप सदा सहर्ष हाथ बंटाते हैं। आपमें उत्साह और उमंगकी प्रचुरता देखी जाती है।

आपको जनताने विगत आम चुनावमें उत्तरप्रदेशीय विधानसभाके सदस्यके रूपमें अपना प्रतिनिधि चुनकर आपके प्रति अपना सम्मान प्रकट किया था। राजनीति शास्त्रके आप मर्मज्ञ हैं, और उसे भारतीय पुट देकर परिष्कृत बनाना चाहते हैं। उपर्युक्त समारोहको सफल बनानेमें आपका योगदान भी अत्यंत सराहनीय है।

७ श्री परशुराम तिवारी, वकील, देवरिया।

आप एक प्रतिभाशाली वकील तो हैं ही, लोक मंगलकी दिशामें भी सदा सक्रिय रहनेवाले, सज्जन व्यक्ति हैं। भारतीय धर्म और संस्कृतिके प्रति आपकी बड़ी श्रद्धा और आस्था है। उपर्युक्त समारोहको सफल बनानेमें आपका सहयोग भी अविस्मरणीय है।

८ श्री रामायण उपाध्याय, एम. ए.

आप एक विद्या विनय सम्पन्न, उत्साही व्यक्ति हैं। विगत सन् १९५९ में आपने हिन्दी साहित्यमें, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे प्रथम श्रेणीमें एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण किया और आजकल शोध कार्य कर रहे हैं।

भारतीय साहित्य, धर्म, संस्कृति, विज्ञान और राजनीति आदिमें आपकी शोधात्मक रूचि है। आप मदन मोहन मालवीय महाविद्यालयके पुराने छात्र हैं और सम्प्रति अपने गुरु आचार्य केशवचन्द्रजी मिश्र द्वारा संचालित महामना मालवीय शती जयंतीके कार्योंमें हाथ बँटा रहे हैं। कार्यालयका दायित्व आपके ही ऊपर है। उपर्युक्त समारोहकी सफलतामें आपका योगदान भी काफी सराहनीय है।

९ श्री श्यामबिहारी सिंह— आई. काम.

आप अत्यंत परिश्रमी और विनीत व्यक्ति हैं। अनवरत कार्यमें जुटे रहना आपका स्वभाव जान पड़ता है। आपके कार्यमें श्रद्धा, विश्वास, ईमानदारी, उत्साह और निष्ठाके भाव छलकते दिखाई पड़ते हैं। आपने महामना शती जयंती कार्यालयके टंकणका कार्य जिस निपुणतासे निभाया है, वह निश्चय ही सराहनीय है और एवमेव समारोहकी सफलतामें आपका योगदान निःसंदेह प्रशंसनीय है।

दिनांक २१-२४ अक्टूबर १९६१ ई० को, महर्षि वेदव्यास नगरमें परिसम्पन्न होनेवाले अखिल भारतीय महामना मालवीय शती जयंतीके प्रथम ऐतिहासिक, सांस्कृतिक समारोह में

प्रमुख सहयोग दात्री संस्थाएं

१ मदन मोहन मालवीय महाविद्यालय, भाटपार रानी (देवरिया)

यह महाविद्यालय इस अंचलमें आलोक स्तंभका कार्य करता है। आजसे १६ वर्ष पूर्व, समस्त भारत वर्षमें सर्व प्रथम महामना मालवीयजीकी पुण्य स्मृतिमें आचार्य केशवचन्द्रजी मिश्र द्वारा इसकी स्थापना हुई। आचार्यजीके आदर्श व्यक्तित्वका प्रतिफल यह महाविद्यालय भी है। मानव जीवनके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थोंकी आदर्श सिद्धि, आदर्श सरणीसे सम्पन्न हो सके, विद्यालयके प्रयत्न इस दिशामें सतत सराहनीय हैं। यहांके अध्यापक, प्राध्यापक और छात्र सभी अनाविल आदर्श और निष्ठासे सम्प्रेरित दिखाई पडते हैं, यही कारण है कि दुर्वह एवं दुर्गम विघ्नोंके उपस्थित होनेके पश्चात् भी यह निरंतर उत्कर्षशील रहता है। इस निपट देहाती क्षेत्रमें स्थापित होने पर भी इस अंचलमें इसके कार्य सर्वथा औरोंके लिए अनुकरणीय एवं स्पृहणीय होते हैं।

अग्रिम दिसंबर १९६१ ई. के अंतिम सप्ताहमें यह स्नातक स्तरीय महाविद्यालयके रूपमें आभूषित होनेवाला है।

२ महामना संस्कृत विद्यालय, भाटपार रानी, देवरिया।

उपर्युक्त मदन मोहन मालवीय महाविद्यालयसे सम्पृक्त, उसीके अंग स्वरूप संचालित, यह विद्यालय भी आदर्शोंसे अनुप्राणित होकर संस्कृत-शिक्षण-क्षेत्रमें आदर्शोंकी स्थापना कर रहा है।

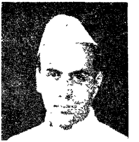
३ सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यलय, टेढीनीम, वाराणसी।

यह संस्था भी सुप्रसिद्ध है। इसका मूल उद्देश्य भारतीय संस्कृति और संपूर्ण संस्कृत वाङ्मयका संरक्षण, सम्वर्द्धन एवं सम्प्रचार है। इसके प्रवर्तक एवं संस्थापक हैं श्री पं. वासुदेवजी द्विवेदी, वेदशास्त्री, साहित्याचार्य और प्रधान मंत्री हैं आचार्य केशवचन्द्रजी मिश्र एम. ए. बी. टी. साहित्यरत्न।

दोनों महानुभावोंके सहयोगसे संस्कृत प्रचार एवं प्रसारकी दिशामें निरंतर ठोस, लाभकर एवं गौरवपूर्ण कार्य हो रहे हैं। संस्कृतके प्राचीन साहित्योंका अन्वेषण और उद्धार तो यह संस्था कर ही रही है, आधुनिक युगानुकूल संस्कृत साहित्यके सृजन द्वारा भी उसे समृद्ध बनानेमें यह निरत है। उपर्युक्त ऐतिहासिक समारोहमें सार्वभौम संस्कृत प्रचार सम्मेलन, का आयोजन इसी महती संस्थाने किया था।

स्वर्गीय श्री विक्रमसिंहजी शूरजीवल्लभदास

संक्षिप्त-परिचय



स्व. श्री विक्रमसिंहजी

सदा हंसमुख, प्रेममय व्यवहार, सभी परिचितोंको मुग्ध करनेवाला स्वभाव, आकर्षक व्यक्तित्व, विद्या प्रेमी, और विशाल धन राशिका स्वामी, यह एक ऐसे व्यक्तिका चारित्र-चित्रण है, जिसने अल्पवयसमें यह दिखा दिया कि मनुष्य पौरुष और निरन्तर कार्य शीलताके कारण जो कुछ चाहता है बन सकता है।

हमारे चारित्र नायक श्री विक्रमसिंहजीका जन्म बम्बईमें एक ऐसे परिवारमें हुआ था, जो संस्कृतका कट्टर प्रेमी, महर्षिका भक्त तथा वैदिक धर्मका पूर्ण रूपेण अनुयायी था। श्री विक्रमसिंहजीके पिता श्री शूरजी वल्लभदास महर्षिके अनन्यतम प्रेमी थे, इसीलिए उन्होंने अपनी सन्तानोंको भी महर्षिके बताये मार्ग पर ही चलाया। परिणाम यह हुआ कि सारा परिवार भारतीय संस्कृति और सभ्यतासे प्रभावित होकर अन्य परिवारोंके लिए एक आदर्श बन गया। इसी आदर्श परिवारमें श्री विक्रमसिंहजीने ११ मई १९२३ को बम्बईमें जन्म लिया। परिवारका प्रभाव इनके ऊपर भी पडा। इनके परिवारमें संध्या अग्निहोत्र आदि नित्य प्रति होता था। और आज भी होता है। प्रति दिन सस्वर वेदपाठ करनेवाले वेदपाठी वेदोंका पाठ करते हैं। श्री विक्रमसिंहजीको भी उसी प्रकार इनके पिताजीने शास्त्रोंका और संस्कृतादिका सुन्दर ज्ञान दिया था और साथ ही स्कूल और कॉलेजकी पढाई भी पूरी करवाई।

ये बम्बईके एलफिन्स्टन कॉलेजमें बी. एस. सी. की उपाधि प्राप्त करनेके बाद अपने पिताजीके साथ जहाजी संस्थाके व्यवसायमें लग गए। परिश्रमसे कार्य करके व्यवसायमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। १९५१ में अपने पिताजीके दिवंगत होने पर इतनी विशाल संस्थाका कार्य इन्होंने तथा इनके बडे भाई श्री प्रतापसिंहजीने बडी कुशलतासे सम्हाला। इसी संस्थाके कार्यके लिए उन्होंने कई बार विदेश यात्रा भी की। ये प्रमुख जहाजी संस्थाके १९५४ से लेकर १९५६ तक कोषाध्यक्ष रहे, और ५७ से ५९ तक उसी संस्थाके उप प्रधान पर कार्य करते रहे, फिर ६० में प्रधान पदको भी इन्होंने सुशोभित किया। ये ५९ में भारत सरकार द्वारा संघटित किए गए राष्ट्रीय जहाजी परिषद्के सम्मानित सदस्य रहे। इसके अलावा भारतीय व्यापारी परिषद्, व्यापारिक जहाज प्रशिक्षण परिषद् व भारत सरकारके शिक्षण, जहाज डेफरिनकी चुनाव समितिके भी सदस्य थे। इस प्रकार अपने व्यवसाय क्षेत्र पर इनका लगभग पूरा ही अधिकार था।

ये एक व्यवसायी होते हुए भी समाज प्रेमी थे। तथा व्यक्तिगत जीवनमें भी ये बडे क्रीडा प्रेमी रहे। तैरना, टेनिस खेलना इनका प्रिय मनोरंजन था।

इनका क्षेत्र सर्वाङ्गीण था। जिस क्षेत्रमें भी यह प्रवेश करते थे, थोडे समयके बाद उस क्षेत्र पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया करते थे। इनके अधिकार करनेमें इनका आकर्षक व्यक्तित्व, मधुर स्वभाव बहुत सहायक रहा है। मृत्युके समय इनकी अवस्था केवल ३८ वर्षकी थी। इतने अल्पकालमें ही काल कवलित हो जाना, वास्तवमें एक महान् दुःखकी बात है। इनकी मृत्युके समाचारको सुनकर

समालोचना

अभ्यास और वैराग्य

लेखक- श्री स्वा. ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक विद्या मार्तण्ड। मिलनेका पता- सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (रामलीला मैदान) दयानन्द भवन। नई दिल्ली-१। पृष्ठ १५२ मूल्य १ रु. ६५ न. पै.

मनुष्यका उद्देश्य है परमानन्दकी प्राप्ति। इसकी प्राप्तिके लिए आवश्यक है कि मनुष्य संसारके माया जालमें न फंसकर आत्मोन्नतिकी तरफ अग्रसर हो। उसके अन्दर वैराग्यकी भावनायें हों। इस वैराग्यकी भावनाके लिए यम नियमादि अष्टांग साधनोंकी जरूरत है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इस लिए स्मृत्यादि शास्त्रोंमें इन दोनोंका एक साथ वर्णन है। योग दर्शन तथा गीतामें मनकी चंचल वृत्तियोंके रोकनेका एक मात्र उपाय बताया है अभ्यास और वैराग्य।

प्रस्तुत पुस्तक भी इन्हीं दो साधनों पर प्रकाश डालता है। इस पुस्तकके लेखक स्वयं भी एक अनुभवी हैं, इसलिए इनका सारा लेखन अनुभव पर आधारित है। आजके मनुष्य वैराग्यके नामसे ही चिढ़ुक उठते हैं, इसका कारण ही यह है कि अनेक पुस्तकोंने, जो केवल ज्ञानके आधार पर ही लिखी गई हैं, अनुभवके आधार पर नहीं, पाठकोंके मस्तिष्कमें यह धारणा पैदा कर दी है कि वैराग्य पर सर्व साधारणका अधिकार नहीं है। पर प्रस्तुत पुस्तकमें इसी नीरस विषयको सरस बनाकर अनुभवी लेखकने पाठकोंके सामने रखा है।

आशा है कि सर्व साधारण पाठकों द्वारा भी इस पुस्तकका हार्दिक स्वागत किया जाएगा।

बाल-संस्कृति सुधा

लेखक- श्री स्वा. ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक विद्या मार्तण्ड, मिलनेका पता- सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन (रामलीला मैदान) नई दिल्ली १। पृष्ठ ४२; मूल्य ५० न. पै.

अंग्रेजी साहित्यके एक कविका कथन है कि बच्चा मनुष्यका पिता होता है, इस कथनका सारांश यही है कि बच्चे ही मानवताके आधार हैं। बालकोंके निर्माणमें ही मानवता और देशका निर्माण निहित है। अतः आवश्यक है कि बच्चोंको शुरूसे ही ऐसी शिक्षा दी जाए, जिससे वे आगे चलकर सुसभ्य और सुसंस्कृत नागरिक बनकर मानवताकी सेवा कर सकें। इसका सबसे उत्तम साधन है शिक्षा।

सबको महान् दुःख हुआ। इनकी मृत्युपर सभी 'चेम्बर ऑफ कॉमर्स' 'इण्डियन मर्चेण्ट्स चेम्बर' तथा 'स्टीमशिप ऑनर्स एसोसिएशन' और भुज, मांडवीकी बड़ी बड़ी व्यापारिक संस्थाओंने अपने सम्वेदनात्मक संदेश भेजे इसके अतिरिक्त भारतके अनेक गणमान्य मंत्रियों तथा अन्य पुरुषोंके दुःख प्रदर्शक सन्देश मिले। और भारतभरके तथा अफ्रीकाके सभी आर्य समाजोंमें और कच्छके प्रत्येक गावोंमें इनके मृत्यु-समाचारको महान् कष्टसे सुना गया और शोक सभायें की गई।

इन सबसे ज्ञात होता है कि इनका प्रभाव कितना व्यापक था। वह उनका व्यापक प्रभाव उनकी कार्य कुशलताका ही परिणाम था। इनके असमयकी मृत्युसे विभिन्न संस्थाओंको जो क्षति पहुंची है, उसकी पूर्ति होना लगभग असम्भव ही है।

हम सब स्वाध्याय-मण्डल वेदानुसंधान संस्थाके अध्यक्ष तथा अन्य कर्मचारी गण उनके इस असामयिक देहावसान पर शोक सम्वेदना प्रकट करते हुए परमपिता परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि इनकी आत्माको सद्गति प्रदान कर उनके अभावमें शोक-सन्तप्त परिवारके सदस्योंको आत्मिक बल और शान्ति प्रदान करें।

इस दिशामें अनेक लेखकोंने कदम उठाये, और अनेक ऐसी पुस्तकोंका प्रणयन किया, जिनमें कविता और कहानीके माध्यमसे बच्चोंको उत्तम शिक्षा दी गई है।

श्री स्वामीजीकी उपरोक्त पुस्तक भी इसी श्रेणीकी है, पर इसकी एक और विशेषता है, वह यह कि यह पुस्तक कथाके रूपमें न होते हुए भी उतनी ही आकर्षक है, कि बच्चा एक बार हाथमें लेने पर इसे अपूर्ण छोडनेकी इच्छा नहीं करेगा। यह पुस्तक लेखककी सर्वतोन्मुखी प्रतिभाका भी परिचायक है। हमें ' अभ्यास और वैराग्य ' ' वैदिक वन्दन ' आदि पुस्तकोंमें लेखक एक गम्भीर दार्शनिकके रूपमें दीखते हैं, पर इस पुस्तकमें वे एक कुशल अध्यापकके रूपमें हमारे सामने आते हैं।

बालकोंके लिए अब तक जो भी पुस्तक सीरीज निकल चुकी हैं, उनमें इस पुस्तकका निस्सन्देह अत्युत्तम स्थान है। आशा है कि सर्व साधारण जनताके साथ सरकार तथा शिक्षण संस्थायें भी इस पुस्तकको अपनायेंगी, तथा अपने पाठ्यक्रममें स्थान देकर बच्चोंके विकासमें सहयोग देंगी।

शास्त्रीय धर्म दिवाकर वा यथार्थ प्रकाश

लेखक- श्री दण्डी स्वामी रामतीर्थजी महाराज; प्रकाशक- श्री पं. अमोलकराम ज्योतिषी, मन्दिर सोनियां। लुधियाना; पृष्ठ २००; मूल्य १)

आजसे कुछ समय पूर्व तक धर्मके ठेकेदारोंने धर्मके नाम पर अनेक अत्याचार किए। उसका फल भारतीय समाज आज भी भुगत रहा है। इसी बीचमें अनेक कुरीतियोंने जन्म लिया, और वे कुरीतियां समाज पर पूर्ण रूपसे छा गईं। पर इसके साथ ही अनेक समाज सुधारकोंने जन्म लिया, जिन्होंने इन कुरीतियों पर बडा प्रबल कुठाराघात किया।

श्री स्वामीजीकी उपरोक्त पुस्तक भी उन्हीं श्रेणियोंमें रखी जा सकती है। लेखकने धर्म पर चिन्तन करके प्रचलित कुरीतियोंसे बचकर अपने ढंगसे धर्मकी खोज की है। धर्मके ठेकेदारोंने पतित्रत धर्मका मार्ग निकालकर स्त्रियोंको तो बांध दिया, पर पुरुषों पर कोई प्रतिबन्ध न लगाकर उन्हें खुली छूट दे दी। यह पुस्तक पाठकोंको उस पहलू पर भी विचार करनेके लिए प्रेरित करती है। प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने अपने विचार व्यक्त किए हैं, और ईश्वर धर्म वेद, स्मृति, पुराण, वर्ण आदि सब भारतीय समाज व्यवस्थाओं पर सरल भाषामें प्रकाश डाला गया है।

यह पुस्तक लेखकके असाधारण परिश्रमका फल है। लेखकके निष्पक्ष विचारने भी इस पुस्तकको बडी महत्ता प्रदान की है। ऐसी पुस्तकोंके प्रचारकी अत्यन्त आवश्यकता है।

तत्वमसिका अर्थ

लेखक- श्री दण्डी सन्यासी रामतीर्थजी; प्रकाशक- मुरारिलाल सोनी ' खत्री ' मुहल्ला सोनियां, लुधियाना; पृष्ठ ५६; मूल्य २० न. पै.

अद्वैत वेदान्त साहित्यमें ' अहं ब्रह्मास्मि ' ' तत्वमसि ' ये उपनिषद्वाक्य महावाक्यके नामसे कहे गये हैं। और प्रायः सभी भाष्यकारोंने इन महावाक्यों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। आचार्य शंकरके मतमें ये दोनों महावाक्य स्पष्टतया इस बातकी घोषणा करते हैं कि जीव और ब्रह्म एक ही हैं पृथक् पृथक् नहीं। अतः ये दोनों महावाक्य अद्वैत सिद्धान्तके आधार स्तम्भ हैं। पर ये महावाक्य जितने महत्वके हैं उतने ही सवादित हैं। और इनमें भी ' तत्व मसि ' तो अत्यधिक है। यही कारण है कि बहुतसे विद्वानोंको इस दिशामें कार्य करना पडा।

श्री दण्डी संन्यासी रामतीर्थजी कृत उपरोक्त पुस्तक भी उन्हींमेंसे एक है। श्री स्वामीजीने इस पुस्तकमें अनेक सम्भावित प्रश्नोंको स्वयं उठाकर उनका युक्ति युक्त समाधान किया है। श्री स्वामीजीकी यह कृति विशेषतया शांकर भाष्य पर आधारित है। इसमें स्वामीजीने महावाक्यका जो विवेचन किया है, वह प्रशंसनीय है। इसके साथ ही इस महावाक्यका एक नया रूप भी प्रस्तुत किया है। श्री स्वामीजीकी अन्य पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, इन सभी कृतियोंने अद्वैत साहित्यकी भी वृद्धि की है।

श्री स्वामीजीका यह प्रयास सर्वथा सराहनीय है।

Regd No. G. 71

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्यको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोन।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जांयगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≈) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

वैदिकधर्म

अप्रैल १९६२



नाथकी पूजामें बालकृष्ण



संत एकनाथ

५० नये पैसे

वर्ष ४३

वैदिक धर्म

अंक ४

क्रमांक १६० : अप्रैल १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

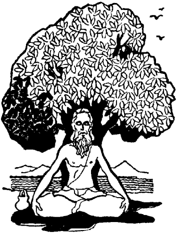
विषयानुक्रमणिका

वैदिकधर्म

मनुष्यका कर्तव्य

ओ३म् । उत्क्रामातः पुरुष मावं पत्था
मृत्योः पड्वीशमवमुंचमानः ।
मा च्छित्था अस्मात् लोकात्
अग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥

(अथर्व. ८।१।४)



हे (पुरुष) पुरुष ! (अतः उत् क्राम) यहांसे ऊपर चढ (मा अवपत्थाः) नीचे मत गिर, (मृत्योः पड्वीशं अवमुंचमानः) मृत्युकी बेडीसे अपने आपको छुडाते हुए (अस्मात् लोकात्) इस लोकसे तथा (अग्नेः सूर्यस्य सन्दृशो) अग्नि और सूर्यके दर्शनसे अपने आपको (मा च्छित्थाः) दूर मत रख ।

मनुष्यको हमेशा उन्नति करनी चाहिये, कभी भी अवनति न हो ऐसी सावधानी बर्तनी चाहिये । तभी मृत्युसे उसका छुटकारा हो सकता है । अग्नि और सूर्यके दर्शनसे भी दीर्घायु प्राप्त होती है, इसलिए मनुष्यको सूर्यके प्रकाशमें रहना चाहिये और अग्निमें यज्ञ करना चाहिये ।

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आय धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अधेक ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये **देवता-मंत्र-संग्रह** मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता– (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता– (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता– (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२१
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१९
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

स्वाध्याय-मण्डल संस्थामें

माननीय श्री नवाब मेहदी नवाज जंग बहादुर

राज्यपाल गुजरात राज्य का शुभ-आगमन



पं. सातवलेकर (बायें) माननीय राज्यपालको (दाये) पुष्पगुच्छ अर्पण करते हुए।

*

१५ फरवरी सन् १९६२ को प्रातः ८ बजे गुजरातके राज्यपाल श्री नवाब मेहदी नवाज जंग बहादुरका आगमन भारत प्रसिद्ध वैदिक संशोधन संस्था स्वाध्याय-मण्डल, पारडीमें हुआ। पारडीके एक महान् जन समुदाय तथा मण्डलके अध्यक्ष तथा कार्यकर्त्ताओंने माननीय राज्यपालका अभिनन्दन किया। उस समयका वातावरण शान्त एवं सुखोत्पादक था। सूर्यकी सुनहली किरणें मानों राज्यपालके आगमनके उमंगमें थिरक-थिरक कर नाच रहीं थीं, और वासन्ती बयार बडे लयसे धीरे-धीरे बहती हुई लोगोंके श्रमको हर रही थी। सारे उद्यानके प्रांगणमें विकसित फूलवाले पौधे भी मानों हाथोंमें फूल लिए राज्य-पालके आगमनकी बाट उत्सुकतासे जोह रहे थे।

इस प्रकार सारा प्राकृतिक वातावरण उल्लाससे भरपूर था। सब जगह पुलिसके आदमी तैनात थे। मण्डलके बाहरी द्वार पर मण्डलके अध्यक्ष श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर हाथोंमें गजरा लिए हुए अन्य सदस्योंके साथ राज्यपालके अभिनन्दनके लिए समुत्सुक थे। सारा वातावरण तथा सभी अभिनन्दन कर्ता व अन्य दर्शक उल्लास पूर्ण थे। इसी समय माननीय राज्यपालके आगमनका पूर्व संकेत हुआ और अगले ही क्षण माननीय अभ्यागतकी कार मण्डलके द्वारके सामने आकर रुकी। तंगमोहरीका पायजामा, कुर्ता, उस पर वास्कट, सिर पर गांधी टोपी पहने हुए राज्यपाल कारसे उतर कर सीधे श्री पं. जीसे मिलनेके लिए आगे बढे। श्री. पं. जीने भी अतिथिको माला पहना कर सादर अभिनन्दन किया।

उसके बाद अतिथिको भारत मुद्रणालयको दिखाने ले जाया गया। मुद्रणालयके अबतक तकके प्रकाशनोंको देखकर, तथा मण्डलके कार्य कलापसे राज्यपाल अत्यन्त संतुष्ट हुए। तत्पश्चात् वेद मन्दिरमें उनके सम्मानार्थ एक बृहत् सभा संगठित हुई। सारा मन्दिर श्रोतागणोंसे भरा हुआ था। सभाका प्रारम्भ वेदमंत्रोंसे हुआ। इन मंत्रोंमें देशकी समृद्धि तथा शान्तिकी प्रार्थना थी। तत्पश्चात् एक गान हुआ। इस गानके बाद स्वाध्याय-मण्डलके अध्यक्ष श्री पं. सातवलेकरजीका स्वागत-भाषण हुआ। उसका संक्षिप्त रूप नीचे प्रस्तुत है--

*

ॐ

स्वागत-भाषण

सेवामें :—

माननीय श्री नवाब मेहदी नवाज जंग बहादुर

राज्यपाल गुजरात-राज्य।

समादरणीय महोदय !

स्वाध्याय-मंडल वैदिकसंशोधनसंस्थाके कर्मचारीगण तथा पारडी नगरके अनेक संस्थाओंके सन्मान्य सदस्योंकी ओरसे मैं आपका हार्दिक स्वागत कर रहा हूं। आपने यहां आकर इस संस्थाको देखनेका कष्ट किया, इसके लिये हम आपके कृतज्ञ हैं और आपको धन्यवाद देते हैं। इस वनस्थलीमें आपका स्वागत करते हुए हमें महान् हर्ष हो रहा है।

स्वाध्याय--मण्डलका परिचय

सन्मान्य अतिथे ! सर्व प्रथम मैं आपको इस स्वाध्याय-मण्डल संस्थाका परिचय करा देना चाहता हूँ। इस संस्थाकी स्थापना, आजसे ४३ वर्ष पूर्व, सन् १९१८ में हुई थी। इस संस्थाकी स्थापनामें हमारा उद्देश्य यही था, और आज भी है कि इस संसारमें जितने मुख्य धर्म हैं, जैसे वैदिक, पारसी, ईसाई और इस्लाम आदि, उनका सूक्ष्म रूपसे अध्ययन तथा मनन करके, उनके अन्दरकी समानताको प्रकाशमें लाकर. लोगोंके हितके लिये उसको प्रकाशित करना और इसके द्वारा आपसकी वैमनस्यता तथा द्वेषभावोंको दूर करना और सब धर्मानुयायियोंमें प्रेमभाव फैलाना। इस महान् उद्देश्यको सामने रखकर यह संस्था इतने वर्षोंसे कार्य कर रही है।

वेदोंके अध्ययन

इस कार्यके लिये सर्व प्रथम अपने वैदिक धर्म-- सबसे प्राचीन धर्मका निश्चित ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। अपने धर्मका सूक्ष्म ज्ञान जबतक जिसको न हो, तब तक वह दूसरे धर्मोंके साथ अपने धर्मकी तुलना किस तरह कर सकेगा ? इसलिये वैदिक धर्मके मूल ग्रंथ-चारों वेदोंका- उत्तम परिशीलन इतने वर्षोंमें किया और अब भी उनके अनुवादोंका स्पष्टीकरणके साथ प्रकाशनका कार्य चल रहा है।

इस कार्यके लिये हमें केन्द्रीय तथा महाराष्ट्रीय सरकारने आर्थिक सहायता भी प्रदान की है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त और सहायताओंके मिलनेकी भी संभावना है। इस तरह ४३ वर्षोंके कठिन परिश्रमके बाद हम कुछ अंशतक वैदिक धर्मका स्वरूप निश्चित करनेमें समर्थ हुए हैं।

पारसी धर्म

पारसी धर्मकी धर्मपुस्तक जिन्दावस्ता है। इसका अनुवाद भारतकी भाषामें प्रकाशित हो रहा है। जब हम जिन्दावस्ताकी भाषाकी संस्कृत भाषासे तुलना करते हैं, तो उन दोनोंमें बहुत समानता देखते हैं। जैसे—

यानि मनो, यानि वचो
यानिम स्योक्थ्नेम ॥

इनमें 'मनो' और 'वचो' ये शब्द शुद्ध संस्कृत भाषाके ही हैं, इनके सिवाय और भी बहुतसी समानताएं इन दोनों भाषाओंका ज्ञाता देख सकता है।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्मके अध्ययनके प्रसंगमें श्री लुईस जाकोलियटकी लिखी हुई 'बाइबिल इन इन्डिया' नामकी पुस्तक हमने देखी। यह पुस्तक सर्व प्रथम फ्रेंच भाषामें छपी और बादमें उसका अंग्रेजी अनुवाद सन् १८७० में लन्दनसे प्रकाशित हुआ। बाईबिलके उपदेश वेदों और उपनिषदोंमें किस रूपमें और कहां कहां पर आये हैं, इस बातका पूरा विवरण श्री जाकोलियटने इस पुस्तकमें दिया है। यह पुस्तक इस संशोधन कार्यके लिये बडी सहायक सिद्ध हुई है। संशोधनके द्वारा विभिन्न धर्मोंके समान विचारोंको इकट्ठा करनेका विचार जो आज हम कर रहे हैं, उसी कार्यको आजसे कई वर्ष पूर्व श्री जाकोलियटने किया था। अतः हमारा यह कार्य कोई नया नहीं है। यही बात अनेक युरोपीयन विद्वानोंके मस्तिष्कमें आ चुकी थी।

इस्लाम धर्म

इस्लाम धर्मका ग्रंथ 'कुरान शरीफ' है। इसका संशोधन भी हमने शुरू किया है। इससे इनमें भी कई समानताएं देखनेमें मिलीं हैं। उदाहरणके लिये देखिये—

'अल्लाह' शब्दसे कुरानशरीफमें परमेश्वरकी उपासना कही है। यह 'अल्लाह' शब्द शुद्ध संस्कृत भाषाका शब्द 'परमेश्वरीय शक्ति' का बोधक है। पाणिनीने 'अल्ल' पदका प्रयोग किया है, इतना इसका उपयोग पुराना है। 'अल्लाह एक ही है' यह उपदेश कुरानशरीफमें बारबार आया है। यह एकेश्वरवादका सिद्धान्त वेदोंमें भी हम देखते हैं—

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋ. १।१६४।४६)
विश्वं जनयन् देव एकः।

इस प्रकार वेद और उपनिषदोंके अनेक वचनोंमें एकेश्वरवाद स्पष्ट रूपसे कहा है। इस तरह उपदेशोंकी समानता बहुत है। और इन वचनोंको एक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेका हमारा विचार है।

विरोधोंको हटाना

आज एक धर्मानुयायी दूसरेके धर्मका विरोध कर रहा है। इससे द्वेष बढ रहा है। यह विद्वेष दूर करनेके लिये इस तरहके समान विचारके संग्रह प्रसिद्ध करनेका कार्य बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। इससे आपसका प्रेम बढेगा तथा मित्रता कायम रखनेमें सहायता मिलेगी।

इस मुख्य उद्देश्यसे इस स्वाध्यायमण्डलमें सब धर्मग्रंथोंका अध्ययन किया जा रहा है और यह अत्यंत महत्त्वका संशोधन है। यह मूल सत्य तत्त्वोंका संग्रह करनेका कार्य है। इससे सब धर्म एकत्रित हो जायगे, तथा आपसका विद्वेष दूर होगा।

योग--महाविद्यालय

आजकल भारतीयोंकी शारीरिक स्थिति गिरी हुई है। इसको ध्यानमें रखते हुए इस दिशामें भी स्वाध्यायमंडलने शारीरिक प्रशिक्षणका कार्य किया जो अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। इस कार्यके लिये 'योगमहाविद्यालय' खोला है, इसमें नवयुवकोंको यौगिक आसनोंकी शिक्षा दी जाती है। इससे अबतक करीब १७०० विद्यार्थियोंने लाभ उठाया है। हमें यहां यह बताते हुए बडी प्रसन्नता हो रही है कि, इन नवयुवकोंमें अन्य धर्मोंके नवयुवक भी लाभ लेते रहे हैं। अर्थात् इस शारीरिक शक्तिविकासके कार्यमें भी इस स्वाध्यायमण्डलका कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

संस्कृत भाषाका प्रचार

इस स्वाध्याय मंडलका संस्कृत भाषाके प्रचारका कार्य भी बडा है। हमारे १२०० केन्द्र अपने भारतमें, सिलोनमें और आफ्रिकामें हैं और इन केन्द्रोंमें ४२००० विद्यार्थी संस्कृत सीख रहे हैं। इनमें कई केन्द्रोंमें मुसलमान और यूरोपीयन भी संस्कृत सीख रहे हैं। और कई केन्द्र चलानेवाले मुसलमान भी हैं।

मान्यवर! मैंने आपके सामने अपनी इस स्वाध्यायमंडल संस्थाके उद्देश्य तथा उसके कार्योंका संक्षिप्त विवरण रखा है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इस कार्यको प्रेमकी दृष्टिसे देखें।

स्वाध्याय-मण्डल पारडी (जि. सूरत) ता. १९।२।६२	हम हैं आपके विनम्र धर्मसेवक — श्री. दा. सातवलेकर अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य और कार्यकर्ता गण

\+ \+ \+ \+

स्वागत भाषणके बाद संस्थाके मंत्री श्री वसन्त श्रीपाद सातवलेकरजीने अतिथिको सम्मान-पत्र अर्पित किया। जो निम्न प्रकार है।

सम्मान-पत्र

ॐ यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधि तिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ (अथर्ववेद १०।८।१)

सेवामें:— माननीय श्री नवाब मेहदी नवाज जंग बहादुर
राज्यपाल, गुजरात राज्य ।

समादरणीय महानुभाव !

स्वाध्याय मण्डल वैदिक संशोधन संस्थाके समस्त कर्मचारियोंकी ओरसे मैं आपका हार्दिक स्वागत कर रहा हूं । आपने यहां आकर इस संस्थाको देखनेका कष्ट किया इसके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं और आपको धन्यवाद देते हैं । इस वनस्थलीमें आपका स्वागत करते हुए हमें महान् हर्ष हो रहा है ।

सम्मान्य अतिथे ! हम आज आप जैसे विद्वान्को अपने मध्यमें पाकर फूले नहीं समा रहे हैं । आपने भारतस्वातंत्र्य संग्राममें जो योगदान किया, उससे हम भलीभांति जानते हैं । आज भी गुजरात राज्यके राज्यपाल पद पर आसीन होकर जो कार्य आप कर रहे हैं, वह सर्वथा गौरवास्पद है । आपके कार्य, आपके विचार भारतीयोंको प्रेरणा देते रहते हैं, कि जिससे वे आपसके मजहबी झगडोंको छोडकर एक साथ मिलकर चलें और भारतकी उन्नतिमें सहायक हों ।

मान्यवर ! भारतीय स्वातन्त्र्य संग्रामके मध्यमें आपने अपने कार्योंसे, भाषणोंसे जो जन-जागृति फैलायी तथा अन्य धर्मावलम्बियोंको भी भारतमाताकी दास्यशृंखलाको तोडनेके लिए जो प्रेरणा दी वह सदा अविस्मरणीय रहेगी ।

महोदय ! इस संस्थाको अपना समझकर जो आप यहां पधारे उसके लिए हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं । यह संस्था सदासे ही आप जैसे विद्वद्वरेण्योंकी रही है और सदा रहेगी । इस संस्थाके अबतक जीवित रहनेका कारण ही यह है कि आप जैसे विद्वानों तथा महापुरुषोंने इसको अपनेपनकी दृष्टिसे देखा, और सदा यहां पधारकर तथा अन्य प्रकारसे भी इसकी सहायता करनेकी कृपा करते रहे हैं । हम आशा करते हैं कि भविष्यमें भी इसी तरह इस संस्थापर आप अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखेंगे । इन शब्दोंके साथ फिर एक बार हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए आपका धन्यवाद करते हैं ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥

हम हैं आपके—
अध्यक्ष एवं कर्मचारीगण

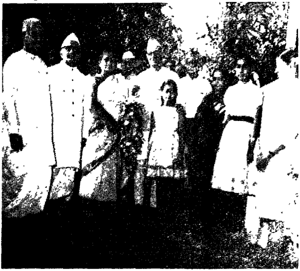
सबसे अन्तमें सम्माम्य अतिथिका भाषण हुआ। सम्मान्य राज्यपालने अपने भाषणमें कहा—

'मुझे इस संस्थामें आकर अपार प्रसन्नता हुई। यहां मुझे सर्वत्र प्रेम, शान्ति और एकताका वातावरण दिखाई पड़ा। श्री पं. सातवळेकरजीके भाषणमें भी प्रेम और एकता पर बल दिया गया था।

'आजकल भारतमें' उन्होंने आगे कहा। 'जुदे जुदे मजहबोंका बोलबाला है, और सब लोग मजहबके नाम पर देशमें अशान्ति फैला रहे हैं। इन सबका एक इलाज है कि सब अपने-अपने मजहबकी बातको खतम करके आपसमें मिल जुल कर रहें।



मा. राज्यपाल मण्डलके प्रकाशनका निरीक्षण करते हुए।



मा. राज्यपालका प्रवेश द्वारपर स्वागत

एक घटनाको बताते हुए उन्होंने आगे कहा 'मैं एक बार कहीं जा रहा था, बीचमें एक साहबानसे मुलाकात हुई, बातचीतके दौरानमें मैंने उनसे उनके रहनेका पूछा तो तपाकसे उन्होंने जवाब दिया कि मैं फलाना मुसलमान हूं। यह सुनकर मुझे अचरज भी हुआ और कुछ धक्का भी लगा, यह क्या? मैं फलाना मुसलमान हूं, मैं फलाना हिन्दू हूं, मैं फलाना पारसी हूं, यह मजहबी बात क्यों? हमें सभी मजहबी ख्यालातोंको छोडकर यह कहना चाहिये कि मैं भारतीय हूं। भारत हम सबका वतन है, और हम सब उसके वतनी हैं।

[देखिए कवर पृष्ठ ३]

वैदिक साधनाकी मूल-भित्ति सूर्य-विज्ञान

लेखक— श्री अरुणकुमार शर्मा

सूर्य विज्ञान (सावित्री विद्या) किसे कहते हैं ? और इस विज्ञानके माध्यमसे प्राचीन भारतवासी आचार्यगण कौनसा जटिल कार्य पूर्ण करते थे ? काल धर्मके कारण हम इन सबको भूल गये हैं। परन्तु यह सत्य है कि प्राचीन कालमें यही ' विज्ञान ' ब्राह्मण धर्म और वैदिक साधनाकी मूल भित्ति स्वरूप था एवमेव यह विज्ञान भारतकी ही वस्तु है। उच्चकोटिके महात्मागण इसे जानते थे। वर्तमान समयमें भी हिमालय और तिब्बतके उपान्त भागमें स्थित ' ज्ञान गंज ' नामक ' योगाश्रम ' में गुप्त रूपसे इस विद्याके ज्ञाता हैं। प्रकट रूपमें स्थित बंगालके निवासी और विख्यात योगी ' गन्धबाबा ' हैं जो सूर्य विज्ञानके सिद्धान्त, रहस्य और उससे कार्य सम्पन्न करनेकी कलाके पूर्ण ज्ञाता हैं। समय पर हम उनका जीवन परिचय और उनके यौगिक चमत्कारोंके विषयमें लिखेंगे। अस्तु, प्रस्तुत लेखमें हमने सूर्य विज्ञानके विषयों पर संक्षिप्त रूपसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया है।

सूर्य मण्डल तक ही संसार है— सूर्यमण्डलका भेदन किये बिना मुक्ति कदापि नहीं मिल सकती। सूर्य मण्डल तक ही वेद या शब्द ब्रह्म है— उसके बाद सत्य या परब्रह्म है। शब्द ब्रह्मका अति क्रमण किये बिना या सूर्य मण्डल को पार किये बिना सत्यमें नहीं पहुंचा जा सकता। यह संसार ' कर्मात्मक ' है जिसे कर्मात्मक संसार वृक्ष भी कहते हैं इसके दो बीज, सौ मूल, तीन नाल, पांच स्कन्ध, पांच रस, ग्यारह शाखायें हैं। जिसमें दो पक्षियोंका निवास स्थान है— जिसके तीन वल्कल और दो फल हैं— प्रकृतिका रहस्य जाननेके लिये सूर्य ही एक मात्र साधन है। सूर्यसे ही चराचर जगत् उत्पन्न होता है। प्रसव धर्मके कारण ही सूर्यका नाम ' सविता ' भी एक है ! (सवनात् सविता ; संसारकी उत्पत्तिका हेतु सूर्य ही हैं। एक मात्र सूर्यसे ही स्थावर, जंगम पदार्थ उत्पन्न होते हैं— और उसमें लीन हो जाते हैं। समस्त देवता इनकी रश्मिमें निविष्ट है ! सूर्य समस्त जगतके आदि हैं इस कारण ये आदित्य हैं— जगतको प्रसव करते इस कारण ' सूर्य ' और ' सविता ' हैं।

सूर्यके बिना ' सर्व-दर्शित्व ' नहीं— ये तीनों जगत्के प्रबोध हेतु हैं। सूर्यसे ही सर्व भूतोंके चैतन्यका उन्मेष और निमेष होता है। ॐ कार या उद्गीथ ही सूर्य हैं— ये नाद ब्रह्म हैं— ये निरन्तर ' रव ' करते हैं इस कारण ' रवि ' नाम इनका सार्थक हुआ।

' त्रयी विद्या ' या छन्दों रूप तीन वेदोंने इस उद्गीथको आवृत कर रखा है ! इसके बाहर मृत्युका राज्य है। देवताओंने मृत्यु-भयसे डर कर सबसे पहले वेदकी शरण ली, और छन्दों द्वारा अपनेको आच्छादित किया— तथापि मृत्युने उन लोगोंको देख लिया था— जिस प्रकार जलके भीतर मछली दिखलायी पड़ती है— इसी दृष्टान्तसे स्पष्ट होता है कि वेदत्रय जलवत् स्वच्छ आवरण है। इसीलिये ' मधु-विद्या ' में वेदत्रयीको ' आप ' या जल कहा गया है। यही ' कारणवारि ' है क्योंकि वेदसे ही सृष्टि होती है। अस्तु, उस समय देवता गणने वेदसे निकल कर ' नाद ' का आश्रय लिया।

इसीसे वेद-अन्तमें ' नाद ' का आश्रय लिया जाता है। यही अमर अभय पद है। प्रणव ही सूर्य है— ये सर्वथा नाद करते हैं— इस प्रणव सूर्यकी दो अवस्थायें हैं— एक अवस्थामें इनकी रश्मि माला चारों तरफ बिकीर्ण हुई है— ये रश्मियां इस लोकसे परलोक पर्यन्त तक हैं— इनकी एक सीमा पर सूर्य मण्डल है और दूसरी सीमा पर नाडी चक्र। सुषुप्ति कालमें जीव इस नाडीके अन्दर प्रवेश करता है— उस समय स्वप्न नहीं रहता शान्ति रहती है। यह तेज स्थान है। मृत्युके बाद जीव इन सब रश्मियोंका अवलम्बन लेकर— ॐ कार भावनाकी सहायतासे ऊपरकी ओर

उठता है। संकल्प मात्रसे ही मनसे वेग पैदा होता है। इसी वेगसे सूर्य पर्यन्त उत्थान होता है।

ब्रह्माण्डका द्वार स्वरूप सूर्य है। ज्ञानी इस द्वारको पार कर सत्यमें पहुंचते हैं- अज्ञानी नहीं। हृदयसे चारों तरफ असंख्य नाडियां या पथ फैले हुये हैं- केवल एक सूक्ष्म पथ ऊपर मूर्द्धाकी ओर गया हुआ है। इसी सूक्ष्म पथसे चल सकने पर सूर्य द्वारका अति क्रमण किया जाता है। दूसरे पथपर चलनेसे भुवन कोषमें आबद्ध रहना पडता है। अस्तु!

दूसरी अवस्थामें समस्त रश्मियां संहृत होकर मध्य बिन्दुमें विलीन हुई हैं। यह प्रणवकी कैवल्य या शुद्धावस्था है अतएव सूर्य मण्डलमें प्रवेश किये बिना जीवका लिंग शरीर नष्ट नहीं होता। लिंग शरीरके मुक्त हुये बिना जीव-मुक्ति असम्भव है। सूर्यकी रश्मियां सौर जगत्‌में एकत्र हो कर नाना प्रकारकी शक्ति उत्पन्न करती हैं। सूर्यकी रश्मियां अनन्त हैं- परन्तु मूल प्रभामें एक हैं। मूल प्रभामें एक वर्ण यानी शुक्ल वर्ण है। यही मूल शुक्ल वर्ण लाल, नील इत्यादि नाना प्रकारके वर्णोंके रूपमें प्रकाशित होता है। सर्व प्रथम शुक्ल वर्णसे लाल, नील जैसे प्रथम स्तरका जन्म होता है। शुक्लसे अतीव वर्णातीत तत्व है उसके साथ शुक्लका संघर्ष होनेसे इस प्रथम भूमिका विकास होता है। यह अन्तः संघर्षका फल है। वह वर्णातीत तत्व ही चिद्-रूपा शक्ति है। अतएव सूर्य विज्ञानका मूल सिद्धान्त सम-झनेके लिये इस अवर्ण, शुक्ल वर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्णको समझना आवश्यक है जो एक स्वतंत्र लेखमें ही बतलाना सम्भव है। अस्तु—

शुक्लवर्ण ही विशुद्ध सत्व है- इस सादे प्रकाशके ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमयरंगका खेल निरन्तर हो रहा है- वही विश्वलीला है- वही संसार है। जैसा बाहर है वैसा ही भीतर है। भीतर बाहर एक ही व्यापार है। प्रथम सादे प्रकाशके स्फुरणको प्राप्त करना- फिर उपवर्णके विश्लेषण से प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णोंको एक-एक करके अलग अलग पहचानना सावित्री विद्या (सूर्य विज्ञान) की साधना है। मूल वर्णको जाननेके लिये सादे रंगकी आवश्यकता है।

क्योंकि जिस प्रकाशमें रंग पहचानना है- वह प्रकाश यदि स्वयं रंगीन है तो उसके द्वारा ठीक ठीक रंग (वर्ण) का परिचय पाना सम्भव नहीं। रंगीन चश्मेसे जो कुछ दिखलायी देता है वह वस्तुका रूप नहीं होता। कहनेकी जरूरत नहीं। योग शास्त्रमें जिस तरह चित्त शुद्धि हुये बिना तत्व-दर्शन नहीं होता, उसी तरह सूर्य विज्ञानमें भी वर्ण (रंग) शुद्धि हुये बिना वर्णभेदका तत्व हृदयङ्गम नहीं हो सकता।

हम संसारमें जो कुछ भी देखते हैं- सब मिश्रण है- उसका विश्लेषण करने पर संघटक शुद्ध वर्णका साक्षात्कार होता है। सृष्टिके अन्दर शुक्लवर्ण सादा रंग कहीं भी नहीं है- जो है वह आपेक्षिक है। पहले कौशलसे विशुद्ध शुक्ल-वर्णको प्रस्फुटित कर लेना होगा- यही सब कुछ नहीं है- मैंने पहले ही लिखा है कि यह समस्त जगत् सादे रंग पर खेल रहा है। इस रंगोंके खेलको स्थान विशेषमें अवरुद्ध कर देनेसे ही वहां पर तुरन्त शुक्ल तेजका विकास हो जाता है। उस शुक्लको कुछ काल तक स्तम्भित करके पूर्वोक्त विचित्र वर्णोंको पहँचान लेना होता है। इस वर्ण ज्ञानसे हम समस्त वर्णोंके संयोजन और वियोजनको अपने आधीन कर ले सकते हैं। कुछ वर्णोंके निर्दिष्ट क्रममें मिलने पर निर्दिष्ट वस्तुका जन्म होता है। क्रम भंगसे नहीं! किस वस्तुमें कौन कौन वर्ण किस क्रमसे रहते हैं यह सीखना चाहिये।

उन सब वर्णोंको ठीक ठीक उसी क्रमसे सजाने पर ठीक उस वस्तुकी उत्पत्ति होगी- अन्यथा नहीं। समस्त सांसा-रिक पदार्थ वर्ण संकर और संघर्ष जन्य हैं इसीलिये जो पुरुष वर्ण परिचय और वर्ण संयोजन, वियोजनकी प्रणाली जानते हैं- उनके लिये उन पदार्थोंको सृष्टि और संहार करना सम्भव न होनेका कोई कारण नहीं। साधारणतः जिसे हम लोग वर्ण कहते हैं- वह सूर्य विज्ञानकी दृष्टिसे ठीक वर्ण नहीं- वर्णकी छटा मात्र है। एक ही वर्णसे सृष्टि नहीं होती।

भारत वर्षमें प्राचीन कालमें वैदिक लोगोंकी तरह तान्त्रिक लोग भी इस विज्ञानका तत्व जानते थे। इसी बल पर वे मन्त्रज्ञ, मन्त्रेश्वर और मन्त्र महेश्वरके पद पर आरो-हण करनेमें समर्थ होते थे + जो षडध्वशुद्धिका रहस्य जानते हैं वे समझ सकते हैं कि वर्ण और कला नित्य संयुक्त

+ विशेष अध्ययनके लिये— भारतकी प्राचीन तन्त्र साधना, के. अरुणकुमार शर्मा।

हैं। अस्तु, वर्णसे मन्त्र और मन्त्रसे पदका विकास जिस प्रकार वाचक भूमि पर होता है- उसी प्रकार वाच्य भूमि पर कलासे तत्व और तत्वसे भुवन, तथा कार्य पदार्थकी उत्पत्ति होती है।

शुक्लवर्ण (शुद्ध सत्व) ही आगम शास्त्रका ' बिन्दु तत्व ' है। यह ' चन्द्र बिन्दु ' है। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश हैं। यही शब्द मातृका है। इसके विक्षोभसे ' नाद ' और वर्ण पैदा होते हैं। ' अ ' आदि वर्ण माला इस शुद्ध सत्व रूप चन्द्र बिन्दुसे- शुक्लवर्णसे क्षरित होती है ' क ' या ' अ ' प्रभृति वास्तवमें अक्षर नहीं है- क्योंकि ये सब वर्ण या रश्मियां सहस्रारस्थ सादे चन्द्र बिम्बके पिघलनेसे क्षरित होती हैं। मूलाधारकी प्रसुप्त अग्नि क्रिया कौशलसे उद्बुद्ध होकर ऊपरकी ओर प्रवाहित होती है। और अन्तमें चन्द्र बिन्दुका स्पर्श कर गला देती है। इसीसे रश्मियां विकीर्ण होती है। परन्तु मूलके साथ इनका संबंध अक्षुण्ण ही रहता है। इसीसे इनको ' अक्षर ' कहते हैं। सभी वर्णोंके मूलमें जो ' अ ' कार होता है वही इस मूल वर्णका प्रतीक है। सूर्य विज्ञानके अनुसार इसी प्रकार सृष्टि होती है। वैज्ञानिक सृष्टि मूल सृष्टि नहीं है। इसके बाद सृष्टिका विस्तार किस प्रकार होता है यह हम संक्षिप्तमें बता जायेंगे।

उदाहरणार्थ— मान लीजिये कि हमें कपूरकी सृष्टि करनी है। सौरविद्याके अनुसार क, म, त, र, इन चार रश्मियोंका इस प्रकार क्रम बद्ध संयोग होनेसे कपूर उत्पन्न होता है। जब उद्बुद्ध श्वेत वर्णके ऊपर क्रमशः क, म त, और र. इन चार रश्मियोंको डालनेसे कपूरकी गन्ध मिलेगी एक साथ रश्मियां डालनेसे नहीं बल्कि क्रमसे डालने पर ही गन्ध पैदा होगी। क्रम कालका धर्म है। क्रमोल्लंघन उचित नहीं। इसलिये सत्व शोधन कर उसके ऊपर प्रथम ' क ' वर्ण डालनेसे ही स्वच्छ सत्व ' क ' के आकारमें आकारित और वर्णमें रंजित हो जायगा। शुद्ध सत्व ही वास्तविक आकर्षण शक्तिका मूल है। इसीसे वह ' क ' को आकर्षित करके रखता है और स्वयं भी उसी भावमें भावित हो जाता है।

इसी प्रकार ' म ' की भी दशा होती है। इस प्रकार ' त ' और ' र ' के विषयमें भी समझना चाहिये। ' र ' अन्तिम वर्ण है इसीसे इसको डालते ही कर्पूर अभिव्यक्त हो जाता है। अव्यक्त कर्पूर सत्ताकी अभिव्यक्तिका यही आदि क्षण है। यदि क-म-त-र, इन रश्मियोंके उस संधानको अक्षुण्ण रखा जाय तो वह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी। अव्यक्तावस्था नहीं आयेगी। परन्तु दीर्घ काल तक उसे रखना कठिन है। यहां विशिष्ट प्रयत्नकी जरूरत है- क्योंकि जगत् गमनशील है। कपूरका अव्यक्तसे व्यक्त होते ही-उसको पुष्ट रखनेके लिये धारण करनेके लिये- यन्त्र चाहिए।

इसीका दूसरा नाम ' योनी ' है। यह अव्यक्त सत्ता लिंग मात्र है। योनि रूपा शक्ति प्रकृतिकी अन्तर्निहित लालिमा है। यह लालिमा सारे वर्णकी तरह विश्व व्यापी है। अन्तिम ' वर्ण ' के संघर्षसे जिस समय कर्पूर सत्ता केवल लिंग रूपमें अलिंग अव्यक्त सत्तासे आविर्भूत होती है, उस समय यह लालिमा ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती है और उसे स्थूल कर्पूरके रूपमें प्रसव करती है।

\+ \+

विश्व सृष्टिमें यवनिकाकी ओटमें यह गर्भाधान – और प्रसव क्रिया निरन्तर चल रही है। सूर्य विज्ञान-विज्ञ प्रकृतिके इस कार्यको देखकर इस पर अधिकार करनेकी कोशिश करता है। संयोगकी तीव्रताके अनुसार सृष्टि विस्तारका तारतम्य होता है। कर्पूरका सत्ता रूपमें आविर्भाव सृष्टि है इसका परिणाम या मात्रा वृद्धि- पूर्व स्पष्ट पदार्थकी मात्रा विषयक सृष्टि है। मात्रा वृद्धि अपेक्षा कृत सहज कार्य है। जो एक टुकड़ा कर्पूर निर्माण कर सकता है- वह सहज ही उसे क्षण मात्रमें लाख मनमें परिणत कर सकता है क्योंकि प्रकृतिका भण्डार अनन्त है। उसके साथ संयोजन करके- दोहन करके साधक जिस वस्तुको चाहे जिस परिणाममें आकर्षित कर सकता है।

इसी क्रियाके द्वारा भगवान् श्री कृष्णने द्रौपदीके पात्रसे बिन्दु बराबर अन्न लेकर उसके द्वारा हजारों ऋषियोंको तृप्त किया था। अस्तु। यद्यपि वस्तुकी विशिष्ट सत्ताका आविर्भाव कठिन कार्य है- यही स्थूल जगतकी बीज सृष्टि है ● परन्तु यह बीज सृष्टि भी प्रकृति बीजकी सृष्टि नहीं है।

● विशेष अध्ययनके लिये— ले. अरुणकुमार शर्मा ' मन्त्र संयोजन और साधना '।

है। मूल बीज दूसरा ही है। अव्यक्त सत्ता ही मूल बीज है। लिंग रूप बीज गौण या स्थूल बीज है। स्थूल बीज विभिन्न रश्मियोंके क्रमानुकूल संयोग विशेषसे उत्पन्न होता है परन्तु मूल बीज अलिंग, अव्यक्त प्रकृतिका आत्मभूत और नित्य है। सूर्य विज्ञान, रश्मि विज्ञानके द्वारा उस मूल बीजको व्यक्त करके सृष्टिका आरम्भ दिखा देता है। साधारणतः सृष्टि तीन प्रकारकी है- परासृष्टि, ऐश्वरिक सृष्टि और ब्राह्मी सृष्टि (वैज्ञानिक सृष्टि)

सूर्य विज्ञानका दूसरा कार्य ' जात्यन्तर परिणाम ' है। जगतमें सर्वत्र ही सत्ता मात्र रूपसे सूक्ष्म भावसे सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं, परन्तु जिसकी मात्रा अधिक प्रस्फुटित होती है वही अभिव्यक्त और इन्द्रिय गोचर होता है। जो ऐसा नहीं वह अभिव्यक्त नहीं हो सकता। इसको अभिव्यञ्जना कौशलसे जान लेने पर किसी भी जगह किसी भी वस्तुका आविर्भाव किया जा सकता है। अभ्यास योग और साधनाका यही मूल रहस्य है। हम व्यवहार जगतमें जिस पदार्थको जिस रूपमें जानते पहचानते हैं वह उसकी आपेक्षिक सत्ता है।

लोहेका टुकड़ा केवल लोहा ही है सो बात नहीं है उसमें सारी प्रकृति अव्यक्त रूपमें निहित है, परन्तु लौह भावकी प्रबलतासे अन्यान्य समस्त भाव उसमें विलीन होकर अगोचर-अदृश्य हो रहे हैं। किसी भी विलीन भावको- जैसे सोना- प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो पूर्वाभाव स्वभावतः ही अव्यक्त हो जायेगा और सुवर्णादि प्रबुद्ध-भाव प्रबल हो जानेसे वह वस्तु फिर उसी नाम मापमें परिचित होगी। वस्तुतः लोहा सोना नहीं हुआ- वह अव्यक्त हो गया- और सुवर्ण भाव अव्यक्तताको हटाकर प्रकाशित हो गया।

आपात दृष्टिसे यही समझमें आयेगा कि लोहा ही सोना हो गया है- परन्तु वास्तवमेंमें ऐसा नहीं है। मूल ' पृथक्त्व ' कह कर अव्यक्त भावसे योगियोंने बीजनिष्ठरूपमें भी पृथक्ता स्वीकारकी है। ऐसा न करनेसे सृष्टि वैचित्र्यका कोई मूल नहीं रह जाता। जातिका उच्छेद प्रलयमें भी नहीं होता ' जात्यनुच्छेदेन सर्वं अर्वाग्मकम् '। प्रलयमें भी अव्यक्तावस्थामें जाति भेद रहता है। अस्तु, कहना नहीं होगा कि यही योग शास्त्रका जात्यन्तर परिणाम है। पतञ्जलिके निमित्तम प्रयोजकम् के अनुसार प्रकृतिके आपूरणसे ' जात्यन्तर परिणाम ' होता है। एक जातीय वस्तु अन्य जातीय वस्तुमें परिणत होती है। ' जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात् '। एवमेव अब इस पर मैं यदि कुछ लिखता हू तो लेख काफी लम्बा हो जायगा इसीलिये फिर कभी विचार करूंगा अस्तु सभी पदार्थोंका मूल बीज सूर्यकी रश्मिमालाके विभिन्न प्रकारके संयोगसे ही उत्पन्न होता है। वर्ण भेदसे और विभिन्न वर्णोंके संयोग भेदसे विभिन्न पद उत्पन्न होते हैं-

वैसे ही रश्मि भेद और विभिन्न रश्मियोंके मिश्रण भेद से जगतके नाना प्रकारके भेद उत्पन्न होते हैं। स्थूल दृष्टिसे बीज सृष्टिका एक रहस्य है। सूक्ष्म दृष्टिमें अव्यक्त गर्भमें बीज ही रहता है। बीज न होता तो इस प्रकार सस्थान भेद जनक रश्मि विशेषके- संयोग- वियोग विशेषसे और इच्छा शक्ति या सत्य सकल्पके प्रभावसे भी, सृष्टि होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

इसलिये योग और विज्ञानके एक होने पर भी एक प्रकारसे दोनोंका किञ्चित् भिन्न रूपमें व्यवहार होता है। रश्मियोंको शुद्ध रूपसे पहचान कर उनकी योजना करना ही सूर्य विज्ञानका प्रतिपाद्य विषय है। जो सूर्य विज्ञानके ज्ञाता हैं वे सभी स्थूल और सूक्ष्म कार्य करनेमें समर्थ होते हैं।

सुख, दुःख, पाप, पुण्य, काम, क्रोध, लोभ, प्रीति, भक्ति, आदि सभी चित्तवृत्तियां और संस्कार भी रश्मियोंके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल वस्तुके लिये कुछ कहना ही नहीं है।

अतएव जो इस योजन, नियोजन प्रणालीको जानते हैं- वे सभी कुछ कर सकते हैं। निर्माण भी कर सकते हैं और संहार भी परिवर्तनकी कोई बात ही नहीं। यही सूर्य विज्ञान है।

वैदिक युगमें चन्द्रमाका स्थान

(लेखक— श्री एच. एस. उर्सेकर)

ऋग्वेदमें देवोंके लिए परम्परासे गाये जानेवाले गीतोंका वर्णन है।

ये देव संख्यामें तैतीस हैं (त्रयस्त्रिंशतमा वह- ऋ. १।४५।२; ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्- तैतीस देव आसन पर बैठे- ऋ. ८।२८।१)। ये देवगण अपने अपने स्थानके अनुसार तीन भागोंमें विभक्त हैं।

(१) द्युस्थानीय, (२) अन्तरिक्षस्थानीय और (३) पृथ्वीस्थानीय।

इन तीनों स्थानोंमें ग्यारह ग्यारह देव रहते हैं ऐसा निम्न लिखित मंत्रसे प्रतीत होता है-

ये देवासो दिव्येकादशस्थ पृथिव्यामध्येकाद-
शस्थ। अप्सुक्षितो महिनैकादशस्थ ते देवासो
यज्ञमिमं जुषध्वम्। (ऋ. १।१३९।११)

"जो ग्यारह देव द्युलोकमें हैं, जो ग्यारह पृथिवीमें हैं और जो अन्तरिक्षमें ग्यारह देव हैं वे सब हमारे इस यज्ञका सेवन करें।" पर इन देवोंमें चन्द्रमाका उल्लेख नहीं है।

शान्ति सूक्त (ऋ. ५।४६) में प्रधान अथवा गौण सभी देवोंके नाम हैं। इस सूक्तमें नदियों, पर्वतों और सूर्य आदि देवोंकी स्तुति करके उनसे प्रार्थना की गई है कि ये सब देव स्तुतिकर्ताको सुख व शान्ति प्रदान करें, पर चन्द्रमाका नाम भी इनमें नहीं है। यहां तक कि ऋग्वेदके सातवें मण्डलके १०१ और १०२ सूक्त वर्षाके लिए तथा १०३ वां सूक्त मेंढकोंके लिए बनाये हैं। चन्द्रमाको, यज्ञीय देव न होनेके कारण आप्री सूक्तोंमें भी नहीं रखा गया।

द्यौ आकाश है, इससे उषा, अग्नि, पर्जन्य, सूर्य, आदित्य मरुत और आंगिरस प्रकट होते हैं। पर चन्द्रमाका स्थान द्युलोक स्पष्ट होते हुए भी, आकाशसे प्रकट होनेवाले तत्वोंमें उसे शामिल नहीं किया गया।

निर्माताने सूर्य और चन्द्रको पैदा किया। इनमें सूर्यको अनेक विशेषणोंसे विभूषित किया गया है, कि 'वह विश्वकी आंख है' एक उत्तम पंखवाला पक्षी आकाशमें दौड रहा है' इत्यादि। कहीं कहीं 'सूर्यको विष्णुका मस्तक भी बताया है, पर चन्द्रमाको इनमेंसे किसी भी विशेषणके लिए उपयुक्त नहीं समझा गया। ऋग्वेदके पांचवें मण्डलके चालीसवें सूक्तमें सूर्य ग्रहणका वर्णन है, पर चन्द्र ग्रहणका तो वहां उल्लेख भी नहीं। पर यह सब हुआ कैसे ?

चन्द्रमाका सम्बन्ध

ऋग्वेदमें सूर्यके लिए अनेक प्रकारसे प्रशंसाके गीत गाये गये हैं, पर रात्रीके लिए कोई आदर भाव प्रकट नहीं किया गया। अतः इस प्रकारकी स्थितिकी (एककी बडी प्रशंसा और दूसरेकी जरासी भी नहीं) असम्भवता सिद्ध करनेके लिए कई विद्वानोंने प्रयत्न किया और चन्द्रमाको दूसरे देवनामोंमें, जिनकी प्रशंसा वेद मंत्रोंमें गाई गई है, ढूंढनेका प्रयास किया।

ओल्डनबर्ग और हिलेब्रांटके अनुसार वरुण ही चन्द्रमा है, और मित्रावरुण क्रमशः सूर्य और चन्द्र हैं। इस कल्पनाके पीछे दो कारण हैं, (१) वरुणको रात्रीका अधिपति बताया है, (२) वह मित्र (सूर्य) का हरदमका साथी है। पर ब्लूमफील्डने इस सिद्धान्तका खण्डन किया है।

ओल्डनबर्गकी इस कल्पनाका प्रमुख आधार यह था कि चन्द्रमा आदित्योंमेंसे एक है। आदित्योंमें सूर्य, चन्द्रमा और पांच अन्य ग्रह सम्मिलित हैं। यह सिद्धान्त भी ईरानियोंके आदित्योंकी गणना पर आधारित है। ईरानियोंका आदित्य भी सात नक्षत्रोंका समुदाय है। उसी समानताको लेकर ओल्डनबर्गने अपना सिद्धान्त स्थिर किया। पर यह सिद्धान्त भी मान्य नहीं है क्योंकि ईरानियोंके आदित्यों और वेदोंके आदित्योंमें बहुत थोडीसी ही समानता है, यहां कि इन दोनोंमें एकका नाम भी मिलता जुलता नहीं है।

हार्डी और कुनिकेने विष्णुको चन्द्रमा माना। पर मोनियर विलियम्स, हिलेब्रान्ट, हॉपकिन्स, ब्लूमफील्ड, और डॉ दाण्डेकर आदि अन्य विद्वानोंका यह कथन है कि

विष्णु वस्तुतः सूर्य देवता है। सूर्यको विष्णुका सिर माना है। विष्णुको सूर्य माननेमें कुछ प्रमाण भी हैं। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं (ऋ. १।१५४।२) में आये हुए विष्णुके तीन कदम सूर्यके तीन कालके द्योतक हैं। इसलिए मेकडॉनल्डका यह विचार है कि 'विष्णुके तीन पद निश्चित रूपसे सूर्यके तीन काल विभागके निदर्शक हैं'। (वैदिक गाथाशास्त्र - पृ. ५३)

लुडविग, मिलर, हिलब्रान्ट और हार्डीके अनुसार अश्विनौ देवतामेंसे एक देवता चन्द्रमा है। यह स्पष्ट है कि अश्विनौ जुडवें हैं, और अपृथक्त्व उनका विशेष गुण है, अर्थात् वे किसी प्रकार पृथक् नहीं किए जा सकते। पर सूर्य चन्द्रमा दोनों साथ साथ नहीं रहते और उन दोनोंकी स्थिति भी अलग है। इसके अलावा अश्विनौके प्रकट होनेका समय प्रातःकाल है, और तब तक चन्द्रमा अस्त हो चुका होता है। अतः अश्विनौको चन्द्र नहीं माना जा सकता।

हिलब्रन्टका यह भी विचार है कि बृहस्पति औषधियोंका राजा होनेसे वही चन्द्रमा है। हार्डी भी इस बातका समर्थक है। पर बृहस्पतिको ब्रह्मणस्पति भी कहा गया है, वह देवोंका पुरोहित है तथा अपने ज्ञानके कारण वह पूजा जाता है। वह प्रार्थनाओंका स्वामी कहा जाता है। वह एक योद्धा भी है। पर शूरता और ज्ञान चन्द्रमाके गुण नहीं हैं। इसलिए यह सिद्धान्त भी मान्य नहीं हुआ।

उपरोक्त दोनों विद्वानों (हार्डी और हिलेब्रांट) ने अपांनपात्‌को चन्द्रमा माना। अपांनपात् हिन्दुओं और ईरानियोंका देवता है। अपांनपात् यह पानीका पुत्र है। मेकडॉनल्डने इसका सम्बन्ध अन्तरिक्ष स्थानीय अग्नि देवतासे दिखाया है। सम्भवतः यह वह अग्नि है जो पानीके बादलोंमें पैदा होती है अर्थात् विद्युत्। मेक्समूलरके अनुसार भी अपांनपात् विद्युत् या सूर्य ही हो सकता है, चन्द्रमा किसी भी प्रकार नहीं।

एक दूसरा अन्तरिक्ष स्थानीय देवता अरित् आप्त्य है, जो हार्डीके अनुसार चन्द्रमाका प्रतिनिधित्व कर सकता है। पर इस देवताका एक ही विशेषण कि 'इसका स्थान गुप्त है' इसके विषयमें होनेवाली सारी भ्रान्तियोंका निराकरण कर देता है। हिलेब्रान्टके अनुसार अरित् आप्त्य कोई प्रकाशमान् द्युस्थानीय देवता है, पर वह चन्द्रमा नहीं।

आगे चलकर हार्डी यह मानता है कि 'अहिः-बुध्न्यः' (समुद्रका सांप) ही चन्द्रमा है। पर यह 'अहिर्बुध्न्य' सर्वदा 'अज एकपाद' के साथ रहता है। हार्डी 'अज-एकपाद' (अकेला चलनेवाला बकरा) को चन्द्रमा माननेको तैयार नहीं। अतः हमें इस सिद्धान्तको भी अमान्य करना पडेगा।

हिलेब्रान्टकी मान्यता है कि 'नाराशंस, त्वष्टृ और विश्वरूप' ये तीनों चन्द्रमाके भिन्न-भिन्न रूप हैं। ब्लूमफील्डके अनुसार कुत्तेसे सम्बन्ध रखनेवाले, चार आंख, चौडीनाकवाले जुडवें यम-यमी ही सूर्य और चन्द्रमा हैं।

इस प्रकार हिलेब्रान्टने चन्द्रमाको वरुण, आदित्य, बृहस्पति, अश्विनौ, अपांनपात्, नाराशंस, त्वष्टृ, और विश्वरूप आदि वैदिक देवताओंमें ढूंढनेका बडा प्रयत्न किया। और हार्डीने भी अन्य देवताओंमें चन्द्रमाको देखनेका प्रयास किया। हिलेब्रान्टने एक और कल्पनाकी कि ऋग्वेदमें सोमका अर्थ सर्वत्र चन्द्रमा ही है।

सोम

सोमका सिद्धान्त इस प्रकार है ऋग्वेदमें सोम एक मुख्य देवता है और इसका स्थान इन्द्र तथा सूर्यसे भी ऊंचा है। इस प्रकार चन्द्रमाके स्वभाववाला सोम ऋग्वेदमें सर्वत्र व्याप्त है।

इस प्रसंगमें फ्रेन्च विद्वान् बैंगेग (Baingaigue) का नाम भी उल्लेखनीय है। उसके अनुसार अग्नि सूर्यका और सोम चन्द्रमाका प्रतिनिधित्व करता है।

वैदिक देवताओंमें सोमका प्रमुख स्थान है। ऋग्वेदके १,०२८ सूक्तोंमें १२० सूक्त सोमका गान करते हैं। सोमका स्थान इन्द्र (२५० सूक्त) और अग्नि (२०० सूक्त) के बाद आता है। सोम इतना मुख्य है कि ११४ सूक्तोंवाले पूरे नवम मण्डलका वह अकेला ही देवता है। और बाकीके छै सूक्त ऋग्वेदके अन्य मण्डलोंमें हैं। सोमका वर्णन प्रायः इन्द्र, अग्नि, रुद्र और पूषन् आदि दूसरे देवोंके साथ आया है।

पर सोमके वास्तविक गुण क्या हैं ? क्या हिलेब्राण्टके कथनानुसार वह चन्द्रमाका प्रतिनिधि है ? इन प्रश्नोंके उत्तरके लिए हमें ऋग्वेदके मंत्रोंमें ही उसके गुणोंको ढूंढ कर देखना पडेगा।

गोतम

लेखक— श्री ना. गो. चापेकर

★

ऋग्वेदकी ' शाकल ' संहितामें प्रयुक्त ' गोतम ' शब्द निस्सन्देह गोत्रका वाचक है। ऋग्वेदके १।६२।१३ में आए हुए गोतम शब्दका अर्थ सायण भी ' गोतम कुलोत्पन्नः ' करके गोत्र अथवा कुल ही मानता है। गोतम शब्द ऋग्वेदमें विकृत रूपोंसे १८ जगह पर आया है-

गोतमः- चार बार (ऋ १।६२।१३, १।७८।२; १।८८।५; १।१८३।५)

गोतम गोतमाय गोतमस्य गोतमान्	प्रत्येक एक बार, क्रमशः (ऋ. १।७१।१०; १।८५।११; १।११६।९; ४।४।११)

गोतमासः- तीन बार (ऋ. १।६०।५; १।६१।१६; १।८८।४)

गोतमाः- चार बार (ऋ. १।७८।१; ४।३२।९; ४।३२।१२; ८।८८।४)

गोतमेभिः- तीन बार (ऋ. १।६३।९; १।७७।५; १।९२।७)

इन २८ मेंसे १४ बार प्रथम मण्डलमें ही आया है। यहां यह भी द्रष्टव्य है कि दसवें मण्डलमें गोतम शब्द एक भी नहीं आया है। चौथे मण्डलमें ३ बार और आठवेंमें केवल एक बार इस शब्दका प्रयोग हुआ है। नवम मण्डलमें, जिसमें विशेषकर यज्ञका वर्णन है, गोतमका कहीं भी उल्लेख नहीं है।

गोतम ७ बार अग्निकी, ६ बार इन्द्रकी, ३ बार (और यदि ५।५२।१२ को भी मिलाऊँ तो ४ बार) मरुत्की, २ बार अश्विनौकी और एक बार उषाकी स्तुति करते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि गोतम प्रशंसनीय देवोंके लिए स्तोत्र बनानेमें बड़े निपुण थे। कई ऋचायें हमें इस विषयमें बताती हैं, और विशेषकर—

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना। आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन्॥ ऋ. ८।८८।४;

(हे इन्द्र ! तू कर्म और बलसे योद्धा है और बलसे तथा महान् कार्योंसे सम्पूर्ण प्राणियों पर शासन करता है, जिसको गोतमोंने उत्पन्न किया ऐसा यह स्तोता अपनी रक्षाके लिए तुझे बुलाता है)। यह ऋचा इस विषयकी ओर संकेत करती है। यह यह भी बताती है गोतम अपने स्तोत्रोंके द्वारा शक्तिशाली इन्द्रको मजबूर कर देते थे कि वह अपना ध्यान इनकी ओर मोड़े और इन्हें आकर दर्शन दे।

जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशाऽसिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे। आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः। ऋ. १।८५।११

अद्यानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम्। ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैः ऊर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै॥ ऋ. १।८८।४

परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथु र्जिह्मबारम्। क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य॥ ऋ. १।११६।९;

(मरुतोंने पानीको नीचेकी ओर गतिवाला किया और प्यासे गोतमके लिए कुंएको भर दिया। वे कांतिमान् मरुत् अपने संरक्षण लेकर उसके पास आते हैं, और स्तोताके मनोरथ पूर्ण करते हैं।

(मरुतोंके विषयमें गोतम प्रतिदिन स्तोत्र गाते हैं। आज उन्होंने यह स्तोत्र गाया है, और इन दिव्य पर्जन्य

स्तोत्रोंको गाया है। गोतम पीनेके लिए स्तोत्रकी सहायतासे कुंएसे पानी बाहर निकालते हैं।

(हे अश्विदेवो ! तुम दूरके कुंएको पास ले आए और उसके तलको ऊपर किया। उनकी सहायतासे गोतमको पानीके समान हजारों प्रकारकी सम्पत्ति मिली।)

इन तीनों मंत्रोंमें एक कथा आती है कि गोतमको प्यास लगी। गोतमने नासत्यों और मरुतोंसे प्रार्थनाकी और उन्होंने बादलोंको झुकाया तथा गोतमके स्थान पर पानी बरसाया।

ऋग्वेद १।१८३।५ का कर्ता अगस्त्य अश्विनौको रथमें बैठकर आनेके लिए कहता है, और गोतम, पुरुमीळह और अत्रि भी अपने संरक्षणके लिए बलाते हैं। यह कोई निश्चित नहीं है कि पुरुमीळह और अत्रिकी घटनाओंसे अगस्त्यका भी कुछ सम्बन्ध है या नहीं। यह सन्देह इसलिए है कि पुरुमीळहका ऋग्वेदमें कोई मुख्य स्थान नहीं है। ऋग्वेदमें उसका नाम केवल तीन बार ही (१।१५१।२; १।१८३।५, ५।६१ ९;) आया है। सायण इसे एक क्षत्रिय बताता है। कुछके अनुसार वैददश्विः पुरुमीळहका घरका नाम है। पर इस बातके अनुमोदनके लिए ऋग्वेदमें कोई प्रमाण नहीं है। उसका नाम केवल ५।६१।१० में ही आता है। इसी प्रकार बिना किसी प्रमाणके रथवीतिको पुरुमीळहका भाई बताया जाता है। ऋग्वेदके जरिये हमें केवल इतना ही ज्ञात होता है कि श्यावाश्य रथवीतिको प्यार करता था और वह रथवीतिको नदीके किनारे पर्वत पर स्थित अपने घर ले गया था, ऐसा नीचेके मंत्रसे ज्ञात होता है—

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ।
न कामो अप वेति मे ॥　　ऋ. ५।६१।१८
एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥　　ऋ. ५।६१।१९

(मुझे कह कि सोमयाग करनेवाले रथवीति पर मेरा प्रेम खतम नहीं होता।)

(यह धनवान् रथवीति गोमतीके किनारे पर्वतपर आनन्दसे रह रहा है।)

यह कहा जाता है कि ५।६१ में एक कथा है, जो श्यावाश्यसे सम्बन्धित है। पर बिना बाह्य सहायताके इस सूक्तसे यह कथा नहीं निकाली जा सकती। दार्म्य सम्भवतः रथवीतिके कुलका नाम है।

ऋ. १।१५१।२ पर व्याख्या करते हुए सायण लिखता है कि पुरुमीळहका अर्थ है इच्छित वस्तुओंकी अतुल वर्षा करनेवाला। पुरुमीळह तीन हैं (१) पुरुमीळह आंगिरस, (२) पुरुमीळह वैददश्विः और (३) पुरुमीळह सौहोत्र (प्राचीन चरित्र कोश)

गोतमका व्युत्पत्ति जनक अर्थ है अनेक गायोंको रखनेवाला।

गोतम नोधाका कल्पित पिता है। निरुक्त नोधाकी व्युत्पत्ति करता है नो+धाः=नवनम्=स्तुः, धाः-दधाति (नि ४। १६) अर्थात् स्तुतियोंको धारण करनेवाला। इस प्रकार नोधा वह है जो अपनी अभिलाषाको गानोंके द्वारा प्रकट करता है। अतः यह नोधा भी गोतमके समान उत्तम स्तोत्र बनानेमें निपुण था ऐसा दीखता है।

ऋग्वेदमें नोधाका नाम चार बार आया है (१।६१।१४; १।६२।१३; १।६४।१; १।१२४।४)। मेरे ख्यालमें राजवडेका नोधाको इन्द्र बताना ठीक है। उनके अनुसार—

अस्येदु भिया गिरयश्च हळहा द्यावा च भूमा
जनुषस्तुजेते। उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं
सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः।　　१।६२।१४
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरि-
योजनाय। सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रात-
र्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥　　१।६२।१३
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवावि-
रकृत प्रियाणि। अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती
शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम्।　　१।१२४।४;

इन तीनों मंत्रोंमें नोधा इन्द्रके अलावा और कोई नहीं है। शेष १।६४।२ में भी राजवडेका अर्थ युक्ति युक्त है। इस मंत्रमें आए हुए 'सुवृक्ति' पदका अर्थ 'वज्र' है। राजवडेके अनुसार 'सुवृक्ति' शब्द 'व्रश्च (काटना) धातुसे बना है। कवि वृष्टिके देवता इन्द्र (नोधाः) से प्रार्थना करता है कि वह अपने वज्र (विद्युत्) से मरुतों (वायु) की सहायता करें जिससे वृष्टि हो। दूसरे पादमें कवि स्वयंसे कहता है कि वह अपने स्तोत्रोंको प्रभावशाली शब्दोंसे युक्त करनेका प्रयत्न करेगा। संक्षेपमें १।६४।१ में वृष्टिके लिए प्रार्थना है।

वैदिक सन्देश और विश्वशान्ति

(लेखक— डॉ. विश्वमित्र, सिद्धान्त-विशारद)

[गताङ्कसे आगे]

★

पूर्वाभास

[प्राचीन समयमें युद्ध होते थे, पर देशमें शान्ति बनी रहती थी। इसका कारण ही यह था कि देशकी आन्तरिक स्थिति पर बाह्य विकृतियोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, और अन्दरकी प्रजाका कार्य कलाप यथापूर्व चलता रहता था। युद्धमें भाग न लेनेवाली जनता पर युद्धका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इस समयकी प्रजाको इसी प्रकारका प्रशिक्षण दिया जाता था कि बाहर युद्धके चलते रहने पर भी देशके अन्दर शान्ति बनी रहे]

वेद क्या हैं ?

ऊपरकी स्थितिको समझनेके लिए हमें वेदोंकी ओर चलना पड़ेगा। उस समय देशकी स्थितिको संतुलित बनाये रखनेके लिए सब जगह वेदोंका सन्देश फैलाया जाता था।

वेदोंके सन्देशको जाननेके पूर्व यह आवश्यक है कि हम यह जान लें कि वेद क्या हैं? वेद शब्द संस्कृतके 'विद्' (जानना) धातुसे सिद्ध हुआ है। इसलिए वेदका अर्थ है ज्ञान। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि ज्ञानकी कोई सीमा नहीं है, यह तो वह महासागर है, जिसकी गहराई और सीमाको अभी तक कोई जान नहीं सका। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि यह ज्ञान अथवा वेद उन हर प्रकारके ज्ञानोंको अपने अन्दर रखता है, जो मनुष्यकी इस सांसारिक यात्राके लिए आवश्यक है, इसके साथ ही उस अन्तिम उद्देश्यको, जिसे संस्कृतमें शाश्वत शान्ति, मुक्ति अथवा मोक्षके नामसे कहा गया है, प्राप्त करनेके लिए भी जिसकी आवश्यकता होती है।

हमारा उद्देश्य

यहां हमारा उद्देश्य इस ज्ञान सागरसे उन्हीं ज्ञानोंको प्राप्त करना है जिनसे हम इस संसारकी स्थायी शान्तिको पा सकें। इस प्रकार वह विश्वशान्तिके लिए किए गए अपने प्रयत्नों द्वारा उस नित्य शान्ति या अन्तिम उद्देश्यको पानेके पथको भी प्रशस्त करता जाता है।

वेदोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप

भारतके विद्वान् और ऋषियोंके अलावा, पाश्चात्य देशके विद्वान् मेक्समूलर, जो अपने समयका वेदोंका महान् पण्डित था, ने भी कहा है कि ऋग्वेद मनुष्यके पुस्तकालयमें प्राचीनतम पुस्तक है। यद्यपि वस्तुतः दूसरे वेद, यजु, साम और अथर्व भी ऋग्वेदके समान ही प्राचीन हैं। इसके आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वैदिक संस्कृति जिसे आर्य संस्कृति भी कहा जाता है सबसे प्राचीन है। यह संस्कृति मनुष्योत्पत्तिके साथ ही शुरू हुई। निष्पक्षपात और दयालु परमात्मासे ऐसा कभी नहीं हो सकता कि वह मनुष्यको अज्ञानता युक्त ही इस पृथ्वी पर भेज दे, और उसके साथ सांसारिक और पारमार्थिक ज्ञानको, जिसकी कि मनुष्यको संसार यात्राके लिए आवश्यकता होती है, न दे।

फ्रांसका एक सुप्रसिद्ध विद्वान् जेकोलियट (Jackoliet) अपने ग्रंथ 'बाइबिल इन इण्डिया' में लिखता है 'हिन्दु प्रकाशन (वेद) ही एक ऐसा है जो आधुनिक विज्ञानके साथ एक मत रखता है, जो संसारकी शनैः शनैः और क्रमशः उत्पत्तिका समर्थक है'।

वेदके प्रकाशके विषयमें मैं और दो पाश्चात्य विद्वानोंके कथनको प्रस्तुत करता हूँ। रेव. मॉरिस फिलिफ अपने 'ग्लोरी ऑफ दि वेदाज' (वेदोंका महत्व) में कहता है—' 'अन्तमें हम यह कह सकते हैं कि वैदिक आर्योंके ये शुद्ध

और उच्च विचार प्राचीन दैवी प्रकाशके परिणाम थे'। श्रीमती ह्वीलर विलकॉक्स अपने ' सब्लिमिटी ऑफ दि वेदाज ' (वेदोंकी पवित्रता) ग्रंथमें लिखती है ' हम सबने भारतके प्राचीन धर्मके बारेमें सुना होगा। यह महान् वेदोंकी भूमि है। इन ग्रंथोंमें न केवल जीवनको पूर्ण बनानेवाले धार्मिक विचार ही हैं अपितु वे तथ्य भी हैं, जिनको आज विज्ञानने सत्य सिद्ध कर दिया है।'

इन उद्धरणोंमें तीन सत्य मिलते हैं- पहला कि सृष्टिके प्रारम्भमें ईश्वरने मनुष्योंकी भलाईके लिए वेदोंका प्रकाश किया। दूसरा-वेदोंकी वाणी पूर्ण वाणी है (क्योंकि यह संपूर्ण ज्ञानसे युक्त है) और तीसरा-वेदोंमें और विज्ञानमें पूर्ण साम्यता है। वास्तवमें तो विज्ञान-सायंस और वेदका अर्थ एक ही है, उसीको अंग्रेजीमें सायंस और संस्कृतमें वेद कहते हैं। इन तीनों बातों पर अपनी सहमति प्रकट करनेवाले ऐसे अनेकों विद्वान् हैं। पर प्राचीन ऋषियोंसे लेकर महर्षि दयानन्द तकके इन विद्वानोंकी तथा पाश्चात्य विद्वानोंकी सम्मति यहां देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

विकास और दैवीवाणी

(Evolution and Revelation)

दैवीवाणीके विषयमें विचार करते हुए विकासवाद पर भी विचार कर लेना असंगत न होगा। पाश्चात्य देशोंने इस विकासवादके सिद्धान्तको अपना कर पहली गलती की। इस सिद्धान्तने, अनेक महान् नेताओं द्वारा विश्व-शान्ति लानेके लिए अपनी सेवायें अर्पित करनेके बावजूद भी, देशमें सुपरिणाम लानेके बजाए विश्वमें अशान्ति ही बढाई।

यहां मैं कुछ प्रमाणोंके आधार पर इस विषय पर विचार करूंगा। इस बातको कई विद्वानोंने सिद्ध किया है, कि एक मनुष्य, यदि उसे शिक्षा न दी जाए अथवा उसे संसार के सम्पर्कमें न लाया जाए तो निश्चित रूपसे जानवरके समान अज्ञानी रह जाएगा। कुछ अर्थोंमें वह जानवरसे भी बदतर हो जाएगा। एक छोटा कुत्तेका बच्चा भी पानीमें फेंके जाने पर तैरकर वापस आ जाता है। पर किसी भी आयुका बालक, अथवा मनुष्य भी जबतक उसे तैरनेकी शिक्षा दी न जाए तबतक तैर नहीं सकेगा, और पानीमें डूब जाएगा। ऐसी अवस्थामें भी यदि मनुष्य यह सोचे कि किसीकी सहायताके बगैर ही वह क्रमशः विकसित हो गया, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि उसके हर कार्य और बातके पीछे " अहं " की भावना कार्य करती रहती है।

इसलिए वह सत्य और असत्यमें भेद नहीं कर पाता। प्रत्येक आदमी सोचता है कि वह जो कुछ कहता या करता है वह ठीक ही है, उसके पास अपने विचारोंको कसनेके लिए कोई कसौटी नहीं होती, क्योंकि वह अपनेसे ऊंचे बुद्धिवालेकी शिक्षा लेनेको तैय्यार नहीं होता। जब उसे कुछ सन्देह होता है, और किसी मार्गदर्शकको चाहता है, तो वह किसी ऐसे मार्ग दर्शककी ही खोज करेगा, जो उसीकी प्रकृति अथवा स्वभावका हो। तब उसका प्रयास ऐसे ही होता है जैसा कीचडको पानीके बजाय कीचडसे ही साफ करनेका प्रयास करना। कई बार ऐसा होता है कि उसके पीछे कोई आदर्श सहायक नहीं होता, और उसे अच्छी सलाह देनेवाला कोई नहीं होता, लिहाजा वह उन्हीं कार्योंको करता है, जिनको उसे नहीं करना चाहिए। यह अज्ञानता, जो कि स्वार्थ, ईर्ष्या, अभिमान और दुःखका निवास स्थान है, जड पकड लेती है, और विभीषिका उत्पन्न कर देती है। इसका आजकल प्रसार बहुत बडे पैमाने पर हो रहा है, जो विश्वकी अशान्तिका कारण है। दैवीवाणीका हमारे लिए दिया जाना उतना ही निश्चित है, जितना कि सूर्य, चन्द्र आदिका होना। अतः इस दैवीवाणीको हमें स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि यह सुविचारकोंकी तर्क-शक्ति पर खरी उतरी है। फराडे (Faraday) का नियम क्या है? आर्किमिडीजके सिद्धान्त क्या हैं? क्या यह सब इन महान् आत्माओंके जरिये उस सर्वशक्तिमान्की वाणीका प्रकाशन नहीं है? क्या कितने ही असंख्य मनुष्योंने पेडसे सेव या किसी फलको गिरते हुए नहीं देखा होगा? तो फिर ऐसा क्यों हुआ कि न्यूटन ही पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणके नियम-को सिद्ध करनेमें सफल रहा? अब अध्यापक विद्यार्थीको न्यूटन, ऑहनीज (Ohnis) आदिके नियमोंको बताता है, और विद्यार्थी अध्यापकको बातोंका विश्वास करके इन नियमोंको उसी रूपमें स्वीकार कर लेता है, और अपने अध्ययनमें आगे बढ जाता है। कल्पना करो कि यदि विद्यार्थी उन नियमोंको स्वीकार न करे, तो वैज्ञानिक जगत्‌का क्या होगा? डॉ. अर्थरेज (Erthredge) लिखते हैं- ' संसारके इतने बडे संग्रहालयमें जीवजन्तुके परिवर्तनका एक भी प्रमाण नहीं है। विकासके बारेमें ९०% बातें प्रमाणित तथ्यों तथा निरीक्षणों पर आधारित न होनेसे

स्पर्थ हैं'। अतः पाश्चात्य देश यदि विकासवादके सिद्धान्त को छोडकर दैवी वाणीके सिद्धान्तको अपनाये तो विश्व शान्तिकी दिशामें सराहनीय कार्य कर सकता है।

विश्वशान्तिके बारेमें वेदोंके उपदेश

देववाणीके विषयमें संक्षिप्त विचार प्रकट करके तथा जेकोलियटके ' बाइबिल इन इण्डिया ' मेंसे वेदोंकी पूर्णता विषयक उद्धरण प्रस्तुत करनेके बाद मैं यह देखनेका प्रयास करूंगा, कि विश्व शान्तिकी स्थापनाके विषयमें वेदोंके क्या उपदेश हैं ऋग्वेदके नवम मण्डलके ६३ सूक्तमें एक मंत्र आता है—

इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ५ ॥

इस मंत्रमें विश्वशान्ति विषयक वेदोंके सन्देशका मूल तत्व है। मैने पूर्व ही बताया है कि वेदोंका मूल उद्देश्य शान्ति-शान्ति-शान्ति स्थापित करना है अर्थात वैयक्तिक शान्ति, सामाजिक अथवा राष्ट्र-शान्ति और विश्वशान्ति। हमारा अब उद्देश्य विश्व शान्ति है। पर इससे पूर्व हमें राष्ट्रमें शान्ति स्थापित करनी पडेगी और उससे भी पहले हमें समाज और व्यक्तिमें, जो क्रमशः देशके ही बडे और छोटे हिस्से हैं, शान्ति स्थापित करनी पडेगी। इसलिए हमें इन तीनोंमें ही शान्ति स्थापनका प्रयास करना पडेगा। प्रत्येक एक दूसरे पर आधारित हैं। अब हम इस मंत्र पर विशेष विचार करते हैं। इस मन्त्रके तीन भाग है। पहला है 'इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः ' इसका शाब्दिक अर्थ है, कि ' इन्द्रको बढानेवाले इस मार्गसे हटते नहीं '। यह इन्द्र क्या है ? +

इन्द्र शब्द वैदिक भाषा-विज्ञानके अनुसार ' इदि ' (परमैश्वर्य) धातुसे बना है। इस धातुका अर्थ है, ऐश्वर्य। इसलिए इन्द्र उसे कहते हैं, जो उत्तमसे उत्तम धन और ऐश्वर्य रखता है, जिससे वह दूसरोंको भी धनवान् बना सके। इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ हैं, पर हम यहां विचारके लिए केवल दो ही अर्थ लेंगे। परमात्मा प्रथम इन्द्र है, क्योंकि वह इस विश्वको सर्वोत्तम संपत्तियोंको अपने पास रखता है। अगला इन्द्र है जीवात्मा, जो कि शरीरको सर्वोत्तम सम्पत्तियोंका धारक है। मैं यहां एक बात कह दूं यह मानव देह विश्वका ही संक्षिप्त रूप है, और विश्वमें रहनेवाली सब शक्तियोंको धारण करता है, पर वह भी संक्षिप्त रूपमें, इस प्रकार जीवात्माके अधिकारमें यह अमूल्य सम्पत्ति है। अतः यदि वह इन सम्पत्तियोंका उचित उप-योग करे तो श्रेष्ठतम आनन्द प्राप्त कर सकता है। इस मंत्रकी व्याख्याके दौरानमें यह भी आवश्यक है कि हम धर्म और राजनीतिके बीचके सम्बन्ध देख लें।

+ वैदिक-भाषा विज्ञानके अनुसार प्रत्येक वैदिक शब्द धातुमें उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं। और तब एक ही धातु अनेकार्थक हो जाती है। जब उससे शब्द बनते हैं, तो उसमें धातुके सब अर्थ निहित रहते हैं। अब यहां प्रश्न उठता है कि क्या एक ही शब्दसे अनेक अर्थोंका निकलना अर्थोंमें संदिग्धता उत्पन्न नहीं करता ? उत्तर यह है कि यह पहले ही बता दिया है कि ज्ञान अथाह और निस्सीम है और मनुष्यके लिए यह सर्वथा असम्भव है, कि वह इस ज्ञानको, जिस पर उसका सीमित अधिकार है, अपने कुछ चन्द शब्दों द्वारा व्यक्त कर सके। इसलिए यह आवश्यक है कि एक ही शब्दके अनेक अर्थ हों, और हम उन अर्थोंको प्रसंग तथा प्राचीन विद्वानों द्वारा की गई व्याख्याओं द्वारा समझें।

वैदिक-भाषा-विज्ञानका अध्ययन अतीव मनोरंजक है। जिस प्रकार हमारा एक सुन्दर संसार है, उसी प्रकार शब्दोंका भी अपना एक सुन्दर संसार है। इसीलिए वेदोंको वाक्प्रपंच कहा गया है। शब्दोंका संसार और पदार्थोंका संसार दोनों परस्पर समान हैं। इन दोनोंका निमित्त कारण परमात्मा एक ही है।

	शब्दोंका संसार	तत्वोंका संसार	
शब्द	(१) उपसर्ग	मन	प्राणियोंमें
	(२) धातु	प्राण	
	(३) अर्थ	आत्मा	
	(४) प्रत्यय	शरीर	

धर्म और राजनीति पृथक् नहीं किये जा सकते—

यहां धर्मसे मेरा तात्पर्य ईसाई, मुस्लिम अथवा हिन्दु आदि मतोंसे नहीं है। अपितु उस अलौकिक शक्तिको जानकर उसके अनुसार अपने कर्तव्योंको जानना तथा प्रेमके कार्य करना और असीम शक्तियोंके धारक ईश्वरकी आज्ञा पालनका नाम ही धर्म है

मंत्रका प्रथम भाग ' इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः ' हमें यह बताता है कि हमें अपनी आत्मा विकसित करनी चाहिये। किस प्रकार ? उस सर्व शक्तिमान्की पूजा और ध्यान करके, उसके आश्चर्य जनक कार्योंको देखकर और उसके सिद्धान्तों पर चलकर। पर आजकल खेदकी बात है कि जैसे-जैसे विज्ञान बढ रहा है, वैसे-वैसे राजनीतिज्ञ भी ईश्वरकी सत्ता माननेसे इन्कार कर देते हैं, यद्यपि न्यूटन, सर ऑलिवर लॉज आदि वैज्ञानिकोंने यही बताया कि विज्ञानका मुख्य उद्देश्य विज्ञानके विज्ञान (Science of Sciences) अर्थात् ईश्वरको जानना ही है। राजनीति भी विज्ञानकी एक शाखा है। हम जो आज दुनियामें उपद्रव, अशान्ति अथवा परस्पर अविश्वास देखते हैं, उन सबका कारण राजनीति है। आजके राजनीतिज्ञ सम्भवतः इस बातको भूल गए प्रतीत होते हैं कि सबसे बडा राजनीतिज्ञ वह परमात्मा है, जो इतने बडे विश्व राज्यकी सरकारको इतनी खूब सूरतीसे चला रहा है। आजके राजनीतिज्ञोंको उससे शिक्षा लेनी चाहिये। (क्रमशः)

अर्थ शब्द पर शासन करता है, उसी प्रकार आत्मा शरीर पर शासन करती है।

जब उपसर्ग शक्तिशाली होता है तो धातुके मूलार्थको बदल देता है, और जब उपसर्ग नहीं होता और वह शब्दार्थको नहीं बदलता तो धातुका मूलार्थ पकडमें आ जाता है।

उसी प्रकार

जब मानव शरीरमें मन शक्तिशाली होता है, और निग्रहमें नहीं आता तो वह आत्मा, इन्द्रिय आदिको जहां चाहता है, ले जाता है। पर जब आत्माके निग्रहमें आता है, तथा मन, प्राण और इन्द्रियें एकात्म होती हैं, तो आत्माकी शक्ति प्रकट हो जाती है।

शब्द संसारमें उपसर्ग, धातु और अर्थका कोई लिंग नहीं होता, पर जब वह लिंगके द्योतक प्रत्ययोंसे सम्बन्धित हो जाता है, तो वह भी स्त्रीलिंगी, पुंल्लिंगी या नपुंसक लिंगी हो जाते हैं।

उसी प्रकार

मन, आत्मा और प्राणका भी कोई लिंग नहीं होता। पर जब वे शरीरमें आ जाते हैं तो वे स्त्री या पुरुष बन जाते हैं।

जिस प्रकार एक मनुष्य विभिन्न दशाके कारण भिन्न-भिन्न हो जाता है, उदाहरणार्थ एक ही मनुष्य बच्चेका पिता, पत्नीका पति, शिष्यका गुरु होता है उसी प्रकार उपसर्ग और प्रत्यय युक्त धातु प्रसंगोंकी भिन्नताके कारण भिन्न-भिन्न अर्थ देनेवाले होते हैं।

वह परमात्मा एक पूर्ण वैय्याकरण है। उसने शब्दोंको साधारण मस्तिष्ककी पहुंचके परे बनाया है, और मनुष्य जितना-जितना देव सदृश होता जाएगा उतना-उतना ही वह इन शब्दोंके महत्व समझेगा। संस्कृतके वैय्याकरण पाणिनी और पतंजलि आदि तथा शब्द शास्त्रज्ञ (Etymologists) जैसे यास्क और स्कन्द आदियोंने ऋषि और योगी होकर ही वैदिक ज्ञानके महासागरमें डुबकी लगाई, और उस महानतम भाषा विज्ञान-शास्त्रज्ञ परमात्माके सिद्धान्तोंको समझा, और अपने व्याकरण तथा शब्दशास्त्रको उसीके अनुसार बनाया। उन्होंने धातु प्रत्यय और उनके अर्थोंका पता लगाया तथा इन्हें अपने शिष्योंको पढाया। न्यूटन, फेराडे, आर्किमिडीज इत्यादियोंने बाह्य संसारके नियमोंका ही पता लगाया, जिन्हें अब विद्यार्थियोंको पढाया जाता है।

इसके अतिरिक्त वेदके प्रत्येक मंत्रका अर्थ देवताके अनुसार निश्चित है, इन देवताओंकी सूचना प्रत्येक सूक्तके प्रारम्भमें ही दी गई होती है। वहीं पर मंत्रद्रष्टा ऋषियोंका नाम भी दिया होता है।

श्री अरविन्द–मिशन और कार्य

(लेखक— श्री एम् . एम् . पटेल)

आजके समयमें यह सर्व साधारण अनुभव है कि विचारकोंका ध्यान दिन-ब-दिन श्री अरविन्दके मिशन और कार्यकी ओर खिंचता जा रहा है। अधिकांशमें मनुष्योंका यह विचार है कि श्री अरविन्दके मिशनके पीछे कोई महत्वपूर्ण चीज है, पर वह है क्या यह जानना उनके लिए बड़ा मुश्किल हो जाता है। श्री अरविन्दके कार्यको जाननेका एक मात्र साधन उनका साहित्य है। पर वह साहित्य भी इतना विशाल और कठिन है एक सामान्य मनुष्य उसको समझ नहीं सकता। बड़े बड़े विद्वान् भी उस साहित्यको समझनेमें गल्ती करते हैं और इस बातकी घोषणा करते हैं, कि उनके साहित्यमें नई बात कुछ नहीं है।

पूर्व तथा पश्चिम देशोंमें कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जो यह कहते हैं कि श्री अरविन्दके द्वारा दिया हुआ ज्ञान अद्भुत है और वह सभी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक समस्याओंको सुलझानेमें समर्थ है।

वे मनुष्य, जो अपनी पुरानी अन्ध परम्पराओंमें जकड़े हुए हैं, नई बातोंको सुननेके लिए तैय्यार नहीं। वे नये प्रकाशका भरपूर विरोध करते हैं। और प्राचीन समयमें हुआ भी यही, ईसा, सुकरात, महर्षि दयानन्द आदि जितने भी प्राच्य और पाश्चात्य विद्वान् हुए उनको जनताके तथा तथाकथित विद्वानोंके विरोधोंका सामना करना पड़ा। पर कुछ ऐसे जिज्ञासु भी रहते हैं, जो नये प्रकाशको अपनाते हैं, और भावी-सन्ततिके लिए प्रकाश स्तम्भ बन जाते हैं।

प्राचीन कालके साधु, सन्त और योगी अधिकतर अपने आत्म-साक्षात्कारमें ही व्यस्त रहते थे। और सामान्य जनताके जीवनकी समस्याओंसे उनका कोई खास सम्बन्ध नहीं रहता था। वे इस संसारको व्यर्थ और माया समझते थे, और सोचते थे कि संसार सर्वदा दुःख और कष्टोंसे भरा हुआ रहेगा, और इसको बदला नहीं जा सकेगा। [सम्भवतः यहाँ लेखकका संकेत बौद्धोंकी ओर ही है, क्योंकि वैदिक ऋषि समाज सुधारको अपना मुख्य ध्येय समझते थे– सम्पादक]

अनेक शताब्दियों और युगोंसे धर्मके माध्यमसे विद्वान् जनताको उपदेश देते चले आ रहे हैं। पर जनताकी आज भी वही दुःखद परिस्थिति है, बल्कि उससे भी कहीं अधिक बिगड़ी हुई है। जीवनकी समस्यायें बढ़कर कठिनसे कठिनतर होती जा रही हैं। इससे हमें यह शिक्षा लेनी पड़ेगी, कि केवल मात्र उपदेशों व प्रचारोंसे मनुष्यकी दशा न कभी सुधरी है और न आशा ही है।

यहां श्री अरविन्दका कथन है कि मनुष्य कितनी भी चेष्टा करे, स्वयंका अतिक्रमण नहीं कर सकता अर्थात् मनुष्यसे ज्यादा और कुछ नहीं हो सकता। श्री अरविन्द संसार तथा उसके जीवनकी सत्ताको स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि ईश्वर सत्य है और उसकी रचना भी सत्य और वास्तविक है। चूंकि वह इस संसारको मानते हैं, लिहाजा उनका यह कर्तव्य है कि वह अपनी यौगिक दृष्टिसे संसार तथा मानवीय जीवनकी समस्याओंका अवलोकन करें। उसे इन समस्याओंको खोज निकालनेके लिए संसारकी गहराईमें उतरनेकी जरूरत है, तभी वह अपनी और संसारकी समस्याओंके लिए मार्ग निकाल सकता है।

अरविन्दका कहना है, कि हमारी प्रकृति विभिन्नताका समुदाय है, और हमें इस विभिन्नतामेंसे एकता और परिपूर्णताको खोज निकालना है। इस प्रकृतिका प्रथम विकास भौतिक जीवन है। प्रकृतिने भौतिक जीवनसे ही शुरु किया और मनुष्यको भी सर्व प्रथम इसीसे अपना काम शुरु करना पड़ता है। उसे पहले अपने प्राणके अस्तित्वको दृढ़ करना पड़ता है। पर यदि वह यहीं आकर रुक जाता है

तो इसका आगेका विकास भी बन्द हो जाता है। इसका अगला महत्वपूर्ण कदम है अपने इस भौतिक जीवनमेंसे मानसिक जीवनको ऊपर उठाना। ज्यों ही मानसिक विकास अपनी चरम सीमा पर पहुंचता है, त्यों ही इसका आत्मिक जीवन जाग उठता है। अपनी जीवात्माको वह अन्दरकी गहराईमें स्थित पूर्ण सत्यमें पाता है। और देखता है कि सारा प्राणीसमाज उसी सत्यमें एक हो रहा है।

यद्यपि मनुष्य जानवर (Animal) का ही विकसित रूप है, फिर भी जानवरको मनुष्यके सामर्थ्यका ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्य भी विकासकी दिशामें आगे आनेवाले अतिमानव (Superman) के सामर्थ्यकी कल्पना नहीं कर सकता। जैसा कि श्री अरविन्द कहते हैं कि वर्तमान कालका मनुष्य आधा जानवर (Half animal) है। प्रकृति पूर्णताकी तरफ बराबर बढती जा रही है इसके मध्यमें आनेवाले अपूर्ण परिणाम इसकी प्रगतिमें बाधा नहीं डाल सकते। इसकी प्रगतिके दौरानमें एक ऐसी जातिकी उत्पत्ति अवश्यम्भावी है, जो सब तरहसे पूर्ण होगी और यह जाति पृथ्वी पर दैवी शक्तिका प्रतिनिधित्व करेगी। ऐसी जातिके सामर्थ्य और स्वभावका संक्षिप्त परिचय देते हुए श्री अरविन्द कहते हैं कि इस जातिके कार्यका संचालन प्रेम और सहानुभूति आदि भावनाओं द्वारा नहीं होगा, अर्थात् केवल प्रेम और सहानुभूति दिखानेकी गर्जसे यह जाति कार्य नहीं करेगी, अपितु इस जातिके कार्यमें हृदय होगा और परस्पर एकात्मकता पर इसका कार्य आधारित होगा। अर्थात् सब प्राणिमात्रको अपना समझ कर अपने कार्य करेगी। इसके संसारमें जितने भी कार्य होंगे सब सत्यसे प्रकाशमान रहेंगे। वह स्वयं दैवीशक्तिसे युक्त होती हुई दूसरोंमें भी दैवीशक्ति पैदा करनेके कार्य करेगी। इस जातिका उद्देश्य अपने लिए, समाजके लिए, अथवा अपने राष्ट्रके लिए ही नहीं जीएगा। वह उस दैवी-सत्यके लिए जीएगा, जो इन सबसे ऊपर है।

प्रकृतिके विकासकी पूर्णताकी यही अन्तिम अवस्था होगी। पर इस अवस्थाको लानेके लिए इस पृथ्वी पर एक नई शक्तिकी, जिसे अरविन्द अतिमानसशक्ति कहते हैं, स्थापना करनी होगी। केवल वह उत्तमशक्ति ही संसारकी दशाको तथा भौतिक देहके जीवाणुसे लेकर सब मनुष्योंके जीवनको बदल कर पृथ्वी पर अमरता स्थापित करनेमें समर्थ होगी।

यह मानसातीत देह (Supramental Body), जैसा कि श्री अरविन्दका कथन है, चार मुख्य विशेषताओंसे युक्त होगी हल्कापन, वातावरणानुकूलता, (Adaptibility); वातावरणके अनुसार अपनेको ढालना (Plasticity); प्रकाशकता (Luminosity); । इस देहकी रचना मैथुनीय न होकर अमैथुनीय होगी। यह शरीर वजनमें बडा हल्का होगा, इसको देखनेवाला यह अनुभव करेगा कि मानों यह शरीर हवामें चल रहा हो। यह हर अवस्थामें एकसा रहेगा। यह आग और बर्फमें भी हानि रहित ही रहेगा। यह किसी भी हानि युक्त आक्रमणसे प्रभावित नहीं होगा। अन्तमें इस देहका प्रत्येक अणु चमकदार होगा, जो प्रत्येक सामान्य मनुष्यके द्वारा भी देखा जा सकेगा। यह शरीर लिंगविहीन (Sexless) होगा। निकट भविष्यमें ही हम श्री अरविन्दको उपरोक्त शरीरमें देखेंगे जो उनके योग और उपदेशोंका प्रमाण होगा।

अपने कार्य और मिशनके बारेमें श्री अरविन्दने कहा है कि हमने उस सत्यसे यही वरदान मांगा है कि पृथ्वीका परिवर्त्तन हो जाए। वह इन्द्रियातीतशक्ति प्रकृति पर उतरे और वह अति मानस शक्ति भौतिकस्तर पर आजावे। केवल दैवी दया ही यह आश्चर्य कर सकती है।

वैदिक ऋषि कभी भी उस शक्तिको पृथ्वी पर नहीं ला पाए न उन्होंने कभी प्रयास ही किया। वे व्यक्तिगत रूपसे उस स्तर तक पहुंच गये थे, पर उसको स्थायी रूपसे पृथ्वी पर लानेका प्रयत्न नहीं किया।

श्री अरविन्द कहते हैं कि इस योग द्वारा हम शाश्वत तक पहुंचना नहीं चाहते, अपितु उसे मानवीय जीवनमें बुलाना चाहते हैं। मेरा उद्देश्य पृथ्वीपर ही दैवीशक्तिको स्वयं देखना और दूसरोंको दिखाना है। उस अति मानस शक्तिको पृथ्वी पर ला कर उसे यहीं स्थायी कर देना है।

उपरोक्त कथनसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि श्री अरविन्द स्वयं व्यक्तिगत आत्मसाक्षात्कारके पक्षमें नहीं हैं, उनका काम अद्भुत है। उनका काम संसार और मानवता-

के परिवर्तनार्थ है। यदि श्री अरविन्दसे पहले भी कोई ऐसा कार्य करता जैसा कि आज अरविन्दका है, तो संसारकी दशा कुछ और ही होती। यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि उसके कार्यके लिए किसी उपदेशकी आवश्यकता नहीं है। केवल नई शक्ति ही यह आवश्यक परिवर्तन कर देगी।

आजकल श्री माताजी अरविन्दके मिशनको पूरा करनेमें सलग्न हैं, उनकी भी घोषणा है—

सरकारोंके बाद सरकारें गुजर गईं, अनेक राज्य गुजर गए, सैकडों वर्ष खतम होगए पर मनुष्यकी पीडा उसी प्रकार रह गई। और जबतक मनुष्य अन्धा और अज्ञानी रहेगा, तबतक वह ऐसा ही रहेगा।

श्री अरविन्दने मानसातीत चैतन्यके रूपमें अवतार ले लिया है, और उन्होंने हमें उस उद्देश्य तक पहुंचनेका न केवल मार्ग ही दिखाया है अपितु अपना व्यक्तिगत रूप दिखला कर हमें यह भी बताया है कि अब समय आ गया है कि हम काम करें।

\+ +

श्री अरविन्दने हमारे लिए अपना बलिदान दे दिया। उन्हें शरीर छोडनेके लिए बाध्य नहीं किया गया था, अपितु किन्हीं पवित्र कारणोंकी वजहसे उन्होंने स्वयं इस बातको चुना। वे पवित्र कारण मानव मस्तिष्ककी पंहुचके परे है। और जब कोई कुछ समझ नहीं सकता तो अच्छा यह है कि वह उसके बारेमें आदर भाव मनमें रखकर मौन रहे।

\+ +

पृथ्वी पर अतिमानवका अवतरण केवल वाग्विदग्धता मात्र नहीं है, एक जीवित जाग्रत सत्य है, एक वास्तविकता है।

\+ +

यह अपने कार्यमें संलग्न है, और एक दिन ऐसा आएगा जब कि अन्धे, अचैतन्य और अनिच्छुक भी उसे देखनेके लिए बाध्य होंगे।

दयानन्द

(हाजीबाबा, बगदादीके "दीवान-ए-हाजी" से- ब्रह्मानन्द शर्मा, सदरबाजार, झांसी)

मार्ग था बीहड विकट
अति वायु वर्षा घोर थी

नैराश्योत्पादक था तिमिर
राकेश भी विश्राममें

अविशिष्ट कुछ नक्षत्र थे
पर दूर थे अति मंद थे

जब ईश बन साकार
था, पाषाणमें सोया हुआ

बस शेष थे पण्डे पुजारी
पथ प्रदर्शक जो वहां

थे गढ रहे जगदीशको
मठ या मन्दिरमें वहां

थी परिस्थिति अतिविषम्
नहीं पार पाना सरल था

दीखती थी प्रलय सी
संसार घबडाया सा था

ओह ! फट गई पौ
घोर वर्षा और तिमिर भी हट गया

देखलो ! गाढ़ तिमिर नाशक ज्ञान ज्योति
वो दयानन्द आ गया ॥

हाईस्कूलोंमें शिक्षकोंकी नियुक्तिके लिये शास्त्रीय योग्यताओंकी मान्यता

मुंबई सरकारने सरकारी और अ-सरकारी हाईस्कूलोंमें शिक्षकोंकी नियुक्तिके लिये **स्वाध्यायमंडल, पारडी** की **तीन साहित्यिक परीक्षाओं**को मान्यता दी है। इनकी योग्यता निम्न प्रकार स्वीकृत की गई **है—**

स्वाध्यायमंडल किल्ला पारडी (जि. सूरत) की **साहित्यिक परीक्षाएं—**

साहित्यप्रवीण— एस. एस. सी./मेट्रिक के समान है,

साहित्यरत्न — इण्टर आर्ट्स के समान है, और

साहित्याचार्य— बी. ए. के समान है।

बंबई तथा मध्यप्रदेश सरकारने हमारे संस्कृत प्रचारमें परीक्षाओंको मान्यता देकर जो हमें प्रोत्साहित किया है उसके लिये हम उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

—परीक्षा-मन्त्री

वैदिक समयकी सेना-व्यवस्था

'मरुत्' देवताका विचार

(लेखक— पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

वैदिक राज्यशासनमें कई प्रकारके राज्यशासन कहे हैं साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य, आधिपत्यमय राज्य इत्यादि अनेक प्रकारके राज्य थे। किसी प्रकारका राज्य हो उसकी सुरक्षितताके लिये सैन्य तो अवश्य चाहिये। अतः वैदिक राज्यशासनमें भी सैन्य अवश्य था। इस विषयमें लिखा है—

सेनाकी व्यवस्था

शूरा इव इद् युयुधयः न जग्मयः।
श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यः
राजान इव त्वेषसंदृशो नरः॥ ऋ. १।८५।८

(शूराः इव युयुधयः) शूरोंके समान युद्ध करनेवाले (जग्मयः न) वीरोंके समान शत्रुपर आक्रमण करनेवाले (श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे) यश प्राप्त करनेवाले वीरोंके समान युद्धोंमें पुरुषार्थका प्रयत्न करते हैं। इन (मरुद्भ्यः) मरुत वीरोंको देख कर (विश्वा भुवनानि भयन्ते) सब प्राणी भयभीत होते हैं ये वीर (राजानः इव त्वेष संदृशः) राजाओंके समान तेजस्वी दीखते हैं।

इस मंत्रमें सेनावाचक 'पृतना' यह पद है। युद्ध सूचक भी यह पद है। युद्धमें जहां सेना चलती है वहां ये जाते हैं। तथा और देखिये—

सं यद् हनन्त मन्युभिर्जनासः
शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासः
त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः॥ ऋ. ७।५६।२१

हे शूर वीरो! जब तुम्हारे (शूरा जनासः) शूर पुरुष (यह्वीषु) नदियोंमें (ओषधीषु) झाडियोंमें (विक्षु) प्रजा जनोंमें रहकर (मन्युभिः सं हनन्त) उत्साहसे शत्रु पर मिलकर हमला करते हैं, उस समय (पृतनासु अर्यः) सेना विभागोंमें रहकर आगे बढनेवाले तुम सब वीर (नः त्रातारः भूत) हमारे संरक्षण करनेवाले बनो।'

इस मंत्रमें 'पृतना' पद सेनाका वाचक है और ये वीर इन सेनापथकोंमें रहकर मिलकर संघसे शत्रु पर आक्रमण करते हैं और शत्रुका नाश करते हैं। यह युद्ध वैयक्तिक युद्ध नहीं है पर सेनापथकोंका संघ युद्ध है। व्यक्तिशः युद्ध करना और बात है और संघशः युद्ध करना और बात है। इस मंत्रमें 'संहनन्त' पद है जिसमें मिलकर एक होकर शत्रुपर आक्रमण करनेका भाव स्पष्ट है। सेनाके सब वीरोंकी इकट्ठा होकर शत्रुपर हमला करनेकी कल्पना यहां विशेष देखने योग्य है। तथा—

मरुद्भिः उग्रः पृतनासु साळ्हा
मरुद्भिः इत् सनिता वाजमर्वा॥
ऋ. ७।५६।२३

(मरुद्भिः) वीरोंके साथ रहनेवाला वीर (पृतनासु उग्रः) सेनाओंमें शूरवीर होता है और (साळ्हा) शत्रुका पराभव करनेवाला भी होता है। सेनाके साथ रहनेवाला साधारण मनुष्य भी उग्र और शूरवीर बनता है और शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ भी होता है। अनुशासनमें रहनेका यह प्रभाव है। सेनाकी अनुशासन शिक्षासे ऐसा प्रभाव बढता है, यह वैदिक राष्ट्रशासनवादियोंको ज्ञात था।

अनुशासनयुक्त सेनाका महत्त्व वे अच्छी तरहसे जानते थे, यह इससे सिद्ध होता है।

तथा—

नहि व ऊति पृतनासु मर्धति
यस्मा अराध्वं नरः ॥ ऋ. ७।५९।४

हे (नरः) नेता वीरो! (यस्मै अराध्वं) जिसके लिये तुम सहायक होते हो, उसके लिये (वः ऊती) आपकी संरक्षण शक्ति (पृतनासु नहि मर्धति) सेनाओंमें रहनेके कारण कम नहीं होती। अनुशासनशील संघमें रहनेसे मनुष्यकी शक्ति अवश्य बढती है। अनुशासनशील सेनाका यह लाभ वेदमंत्रोंमें स्पष्ट दिखाया गया है। तथा और देखिये—

तिग्मं अनीकं विदितं सहस्वत्
मारुतं शर्धः पृतनासु उग्रम् ॥ अथर्व. ४।२७।७

(तिग्मं सहस्वत्) प्रखर और शत्रुका पराभव करनेवाला तुम्हारा (अनीकं विदितं) सेनाका प्रभाव सबको विदित है। वह (मारुतं शर्धः पृतनासु उग्रं) वीरोंका बल सेनामें तथा संघर्षोंमें विशेष उग्र दीखता है। इस मंत्रमें 'अनीकं' और 'पृतना' ये दो पद सेनाके वाचक हैं। सेनाके अनुशासनमें रहनेसे वीरोंका बल बढता है यह बात इन मंत्रोंसे स्पष्ट होती है। अकेला वीर पृथक् रहकर जितना पराक्रम कर सकता है, उससे अत्यंत अधिक वीरता वही वीर सेना विभागके साथ रहकर बता सकता है। अनुशासनशील सेना पथकका यह महत्त्व है।

सेना पथक

सेना पथकोंका और उनकी अनुशासनशीलताका प्रभाव वर्णन वेदमंत्रोंमें इस तरह किया है—

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतां-
अनीकम्। ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वं आदित्
स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ऋ. १।१६८।९

(पृश्निः) मातृभूमिने (महते रणाय) बडे युद्धके लिये (अयासां मरुतां) शत्रु पर हमला करनेवाले सैनिकोंका (त्वेषं अनीकं असूत) तेजस्वी सेना पथक निर्माण किया है। (ते) वे सैनिक (सप्-सरासः) संघसे हमला करनेवाले वीर (अभ्वं अजनयन्त) बडा सामर्थ्य प्रकट करते रहे और उन्होंने (इषिरां स्वधां आत् इत् पर्यपश्यन्) बल देनेवाली अपनी धारण शक्तिको सर्वत्र देखा। अपनी ही शक्ति सर्वत्र कार्य कर रही है ऐसा उन्होंने देखा।

यहां 'अनीकं' पद सेनाका वाचक है। और सेना पथकके अनुशासनमें रहनेवाले वीर कैसा विशाल सामर्थ्य प्रकट करते हैं यह भी इस मंत्रने बताया है। तथा—

अनीकेषु अधि श्रियः ऋ. ८।२०।१२

'सेना पथकोंमें रहकर ये वीर विजय श्री प्राप्त करते हैं'

इस तरह सेना, सैन्य, सेना पथक आदिके वाचक पद वेदमंत्रोंमें हैं। वैदिक समयमें अनेक प्रकारके राज्य शासन थे। राज्यके संरक्षणके लिये सेना थी, तथा सेनाके अनुशासनमें रहनेवाले सैनिक विशेष शूरता प्रकट करते थे इत्यादि वर्णन स्पष्टतासे इस बातकी सिद्धता करता है कि अनुशासनशील सेना अच्छी तरहसे संरक्षण कार्य करती है।

सेनाकी कल्पना

वेदमें सेनाकी कल्पना है वा नहीं, और अगर है तो किस तरहकी है यह हम यहां प्रथम देखेंगे। वेदमें सेनाकी अच्छी कल्पना है, इस विषयमें नीचे लिखा हुआ मंत्र देखिये, इसमें उत्तम सेना कैसी होती है यह स्पष्ट लिखा है—

असौ या सेना मरुतः परेषां
अस्मानेत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन
यथैषां अन्यो अन्यं न जानात् ॥ अथर्व. ३।२।६

हे मरुतो! यह जो शत्रुकी सेना बडे जोरसे स्पर्धा करती हुई हमारे ऊपर आक्रमण करके आ रही है उस सेनाको अपव्रत-तमसास्त्रसे वींधो और उससे ऐसा करो कि उस शत्रु सेनामेंसे एक दूसरेको पहचान न सके।

इस वर्णनमें स्पष्ट रीतिसे दीखता है कि अपनी सेना है, शत्रुकी सेना स्पर्धा करके आरही है, उस शत्रुसेनापर अपव्रत-तमसास्त्रका प्रयोग करना और उस शत्रुकी सेनामें गडबडी मचाना और उनको मोहित करना इससे स्पष्ट रीतिसे सिद्ध होता है कि वैदिक समयके राष्ट्र शासनमें अनुशासनशील सैन्यका उत्तम प्रबंध था।

अपव्रत तमसास्त्र

'अपव्रत-तमसास्त्र' नामक एक अस्त्र है जो शत्रुसेनापर फेंकनेसे उस सेनामें ऐसी गडबडी मच जाती है

कि जिससे एक सैनिक दूसरे सैनिकको पहचान सकता नहीं। 'तमसास्त्र' या 'धूम्रास्त्र' भी एक प्रकारका अस्त्र है। इस मंत्रसे पता लगता है कि ऐसे शस्त्रास्त्रोंसे वैदिक समय की सेना सुसज्जित होती थी। शत्रु सेनाकी अपेक्षा अपनी सेनाको अधिक सुसज्जित करके रखना चाहिये, यह वेदका आशय यहां प्रतीत होता है। देखिये—

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतः घ्नन्तु ओजसा।
चक्षूंष्यग्निरादत्तां पुनरेतु पराजिता॥ ३। १।६

इन्द्र सेनाको मोहित करें, शत्रुकी सेना मोहित होने पर मरुत उन पर हमला करके उनका वध करें। अग्नि शत्रुकी सेनाकी दृष्टि दूर करे अर्थात् उस सेनाको कुछ भी दिखाई न दे ऐसा करे, इसके पश्चात् वह शत्रुकी सेना पराजित होती हुई वापस फिरे।'

इस तरह इस मंत्रमें शत्रुसेनाको मोहित करना, पश्चात् उनको कतल करना, शत्रुसेनाको कुछ भी आंखोंसे न दीखे ऐसा करना और अन्तमें उसका पूर्ण पराभव करना ऐसा लिखा है। यहां युद्ध करनेकी युक्तियां दी हैं। वैदिक समय में अनुशासन शील सैन्य था, इस सैन्यका उत्तम संचालन किया जाता था, शत्रुसेनाको मोहित करनेके साधन थे, उनका उपयोग किया जाता था। अर्थात् उच्च प्रकारकी युद्ध नीति थी। और देखिये—

ते इदुग्रा शवसा धृष्णुषेणा
उभे युजन्त रोदसी सुमेके।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिः
आमवत्सु तस्थौ न रोकः॥ ऋ. ६।६६।६

(ते उग्राः) वे सैनिक उग्रवीर हैं, (शवसा धृष्णु-सेनाः) अपने बलसे साहसी सैन्यसे युक्त हैं। वे पृथिवी और आकाशमें अपने कार्यमें लगे रहते हैं अर्थात् युद्धकर्ममें दक्ष रहते हैं।

इन वीरोंके (स्व-शोचिः) अपने तेजके साथ (आमवत्सु रोकः न तस्थौ) इनको रोकनेवाला कोई नहीं है।' अर्थात् ऐसे शूर सैनिक रहनेपर उस राष्ट्रकी प्रगतिमें किसी तरहका प्रतिबंध खडा नहीं रह सकता। प्रतिबंध उत्पन्न हुआ तो ये सैनिक उसको दूर करते हैं

युद्धकी संभावना

जहां युद्धकी संभावना होती है वहां सैन्यकी तैयारी आवश्यक होती है। युद्धका कारण पक्ष प्रतिपक्षोंके दुराग्रहमें रहता है देखिये—

त्वां जना ममसत्येषु इन्द्र
सन्तस्थाना विह्वयन्ते समीके॥ ऋ १०।४२।४

'(मम-सत्येषु) मेरापक्ष सत्य है ऐसा जहां दुराग्रह होता है, वहां युद्ध होता है, ऐसे युद्धके प्रसंग उत्पन्न होने पर हे इन्द्र! (जनाः त्वां विह्वयन्ते) लोग तुझे सहायार्थ बुलाते हैं, इसी तरह (समीके संतस्थानाः) युद्धमें खडे रहे वीर भी अपनी सहायताके लिये तुझे बुलाते हैं। इस मंत्रमें 'मम-सत्यं' यह युद्धका नाम आया है। 'मेरा-पक्ष सत्य है' ऐसा दुराग्रह जहां होगा वहां युद्ध होनेकी संभावना होगी। वेदका युद्धवाचक 'मम-सत्यं' यह पद बडा बोध दे रहा है। राष्ट्रोंमें तत्त्वज्ञानके कारण बडे पक्ष होते हैं और उनके कारण राष्ट्रोंमें अथवा उन पक्षोंमें झगडे होते हैं। यह सब इतिहास 'मम-सत्यं' इस पदने बताया है।

एक पंक्तिमें सात वीर

मरुतोंका सैन्य होता है। और वह अनुशासनशील होता है इस कारण उनमें अधिक बल होता है। यह अनु-शासनशीलता कैसी होती है देखिये—

गणशो हि मरुतः। ताण्ड्य ब्रा. १९।१४।२
मरुतो गणानां पतयः। तै. ब्रा. ३।११।४।२

ये मरुद्वीर गणशः रहते हैं, ये मरुद्वीर गणोंके पति होते हैं। मरुतोंका वर्णन गणोंके साथ ही होता है। जहां वीर लोग नियत संख्यामें रहते हैं, उस नियत संख्याको गण कहते हैं मरुतोंके गणोंकी संख्या सात होती है। यह सात संख्या सदा मरुतोंके गणोंकी ही समझी जाती है, देखिये ऐसा वर्णन इसका आया है—

सप्त हि मरुतो गणाः। श. ब्रा. ५।४।३।१७
सप्त गणा वै मरुतः॥ तै. ब्रा. १।६।२।३
सप्त सप्त हि मारुता गणाः वा. यजु. १७।८०।८५;
३९।७; श. ब्रा. ९।३।१।२५

' मरुतोंका गण सात सातका होता है। अर्थात् एक एक कतारमें मरुतोंके सात सात सैनिक होते हैं। इनको यज्ञमें उपहार दिया जाता है वह भी उक्त कारण सात सात कटोरियोंमें ही दिया जाता है, देखिये—

मारुतः सप्त कपालः (पुरोडाशः) । ताण्डय ब्रा. २१।१०।२३ श. ब्रा. २।५।१।१२, ५।३।१।६

मरुतोंके लिये उपहार सात कटोरियोंमें दिया जाता है। क्योंकि एक कतारमें ये सात होते हैं। एक एक वीर आकर एक एक कटोरी ले जाता है और खाता है और देखिये—

श्रृणवद् सुदानवः त्रिसप्तासः मरुतः स्वादु-संमुदः ॥ अथर्व. १३।१३

सप्त मे सप्त शाकिनः ॥ ऋ. ५।५२।१७

प्र ये शुंभन्ते जनयो न सप्तयः । ऋ. १।८५।१

आ वो वहन्तु सप्तयः रघुष्यदः । ऋ. १।८५।६

भेषजस्य वहत सुदानवः यूयं सखायः सप्तयः ।

ऋ. ८।२०।२३

' (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले (त्रि-सप्तासः) तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस मरुत वीर (स्वादु-संमुदः मरुतः श्रृणवत्) प्रेमसे मीठा बर्ताव करनेवाले हमारी बात सुनें। (सप्त सप्त) सात गुणा सात अर्थात् उनन्चास (शाकिनः) बडे शक्तिशाली वीर ये मरुत् वीर हैं। ये (सप्तयः) सात सातकी कतारमें रहनेवाले वीर (जनयः न शुम्भन्ते) स्त्रियोंके समान शोभते हैं। (रघुष्यदः सप्तयः) शीघ्र गतिसे जानेवाले ये वीर (वः आवहन्तु) आपको ले जांय (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले (सप्तयः) सात सातकी कतारोंमें रहनेवाले (सखायः) परस्पर उत्तम मित्र (भेषजस्य वहत) औषधको आपके पास पहुंचा देवें। '

इन मंत्रोंमें मरुतोंको ' सप्त, सप्ती, सप्तयः ' ऐसा कहा है। ये पद बता रहे हैं कि सात सातकी कतारमें रहना इनका एक नियम है, एक अनुशासन है। शत्रु पर हमला करना हो तो भी ये सात सातकी कतारमें ही जाते हैं। ' मरुत् ' का अर्थ ' मारुद् ' नहीं रोनेवाले, तथा ' मर-उत् ' मरनेतक उठकर खडे होकर अपना कर्तव्य करते रहते हैं। ये इतने शूर हैं कि मरनेतक लडते रहते हैं, युद्धसे पीछे हटते नहीं।

प्रजाजनोंमेंसे आये वीर

ये मरुत् वीर प्रजामेंसे आये वीर हैं अतः इनका वर्णन इस तरह किया गया है—

मरुतो ह वै देवविशः । कौ. ब्रा. ७।८

विशो वै मरुतो देवविशः । तां. ब्रा. १।९

मरुतो वै देवानां विशः । ए. ब्रा. १।९

देवानां मरुतो विट् । श. ब्रा. ४।५।२।१६

विट् वै मरुतः । तै. ब्रा. १।८।३।३

विशो मरुतः । श. ब्रा. २।५।२।६

कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ।

तै. ब्रा. २।४।८।७

मरुतो वै क्रीडिनः । श. ब्रा. २।५।३।२०

इन्द्रस्य वै मरुतः क्रीडिनः । गो. ब्रा. १।२३

' मरुद्वीर देवोंके प्रजाजन हैं। वे प्रजाजन हैं। प्रजाजन ही मरुत् वीर हैं। किसान ये मरुत् वीर हैं, पर ये उत्तम दान देनेवाले हैं। मरुद्वीर उत्तम खिलाडी हैं। इन्द्रके साथ खेलनेवाले ये मरुद्वीर हैं। '

इन वचनोंमें यह कहा हैं कि ये मरुत् वीर सैनिक हैं, पर ये दिव्य प्रजाजन हैं और वे ' की-नाश ' किसान हैं। जो अच्छा किसान है, जो भूमिको कसनेवाला है उसका कभी नाश नहीं होता।

इस वर्णनसे यह पता लगता है कि ये मरुत् वीर सैनिक हैं, पर ये किसानोंमेंसे लिये वीर हैं, ये प्रजाजन हैं, ये कृषक हैं। प्रजाजनोंमेंसे चुनकर लिये, सेनामें इनको मरतोंकी और वीरताका अनुशासन युक्त शिक्षण देकर इनको वीर बनाया है। सैनिक प्रजाजनोंमेंसे बनते हैं, किसानोंसे बनते हैं और सैनिकीय शिक्षा देनेसे वे उत्तम लडनेवाले वीर सैनिक बन जाते हैं। आज भी ऐसा ही हो रहा है और ऐसा ही हमेशा होता रहेगा।

इन सैनिकोंकी एक पंक्ति ७।७ की होती है, इनकी रचना ऐसी होती है—

पार्श्व रक्षक	सैनिक	पार्श्व रक्षक
+	o o o o o o o	+
+	o o o o o o o	+
+	o o o o o o o	+
+	o o o o o o o	+
+	o o o o o o o	+
+	o o o o o o o	+
+	o o o o o o o	+

सात-सात वीरोंकी सात पंक्तियां यहां बन कर ७×७= ४९ का एक गण बना है। एक-एक पंक्तिके दोनों बाजुओंमें एक-एक पार्श्वरक्षक होता है। अतः सात पंक्तियोंके ७×२= १४ पार्श्वरक्षक हुए। ये १४ उन ४९ में मिलाये जांय तो ४९×१४=६३ सैनिक हुए अतः ऋग्वेदमें कहा है—

त्रिः षष्टिः त्वा मरुतो वावृधानाः। ऋ. ८।९६।८

'तीन और साठ मरुत् तुझे बढाते है।' इस ७ के अनुपातमें इनकी संख्या बढती जाती है और इनकी गति प्रतिबंधरहित होती है—

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो
यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ऋ. ५।५५।७

हे मरुद्वीरो! (न पर्वताः) न पर्वत और (न नद्यः) न नदियां (वः वरन्त) आपके मार्गको प्रतिबंध कर सकती है, (यत्र अचिध्वं) जहां तुम जाना चाहते हो (तत् गच्छथ) वहां तुम पंचहुते ही हो। तुम द्यावापृथिवीपर जहां चाहिये वहां जाते हो (शुभं याता) शुभ स्थानको जानेके समय (रथाः अनु अवृत्सत) आपके रथ आगे बढते हैं। इनको कोई प्रतिबंध नहीं कर सकता।

मरुतोंके रथ

ये मरुद्वीर पैदल चलते है वैसे रथोंमें भी बैठते हैं

मरुतां रथे शुभे शर्धः अभि प्रगायत।
ऋ. १।३७।१

उत्तम रथमें शोभनेवाला उन मरुतोंका सांघिक बल प्रशंसा करने योग्य है। मरुतोंके रथोंके विषयमें वेदमें अनेक मंत्र हैं उनमेंसे कुछ देखिये—

एषां रथा स्थिराः सुसंस्कृताः। ऋ. १।३८।१२
वृषणश्वेन वृषप्सुना वृषनाभिना रथेन आगतम्
ऋ. ८।२०।१०

विद्युन्मद्भिः स्वर्कैः ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः रथोभिः आयातम्। १।८८।१
वः रथेषु विश्वा भद्रा। ऋ. १।१६६।९
मरुतो रथेषु अश्वान् आयुञ्जते। ऋ. २।३४।८
युष्माकं रथान् अनुदधे॥ ऋ. ५।५३।५
शुभं यातां रथा अनु अवृत्सत॥ ऋ. ५।५५।१

(एषां रथाः स्थिराः) इन मरुतोंके रथ सुदृढ हैं। मजबूत हैं और (सुसंस्कृताः) उत्तम संस्कारोंसे सुसंस्कृत भी हैं। जिनके अन्दर बैठनेके लिये या बैठकर युद्ध करनेके लिये जैसे स्थान बनने चाहिये वैसे बनाये हैं। (वृषणश्वेन) बलवान् घोडे जिनके रथोंको जाते हैं, (वृषप्सुना) जिन रथोंके बलवान् बंधन है, (वृषनाभिना) रथकी बलवान नाभी जिनमें लगी है। ऐसे रथ मरुतोंके होते हैं।

रथ दो प्रकारके होते हैं, एक धनीजन जिनमें बैठकर भ्रमण करते हैं। दूसरे युद्धके रथ बडे मजबूत होते हैं जो रथ युद्धके कार्यमें ही जोडे जाते हैं। गढोंमेंसे जाना, ऊंचे नीचे स्थानसे जाना युद्धकी स्पर्धामें टिक कर रहना आदिके लिये बलवान् रथ आवश्यक होते हैं। ऐसे बडे मजबूत रथ मरुतोंके- सैनिकोंके होते थे। 'वृषणश्व, वृषणप्सु, वृषनाभी' ये युद्धके उपयोगी रथोंके दर्शक पद हैं। इनको 'युद्धरथ' कह सकते हैं।

'अश्वपर्ण रथ' वे हैं जिनपर अश्वके स्थान पर 'पाल' कपडेके होते हैं और उनमें हवा भरनेसे वे रथ चलने लगते हैं।

हिरनवाले रथ

मरुतोंके रथोंमें हिरणियां तथा हिरनोंमेंसे बडे हिरन जोडे जाते थे इस विषयमें ये मंत्र देखने योग्य है—

ये पृषतीभिः अजायन्त। ऋ. १।३७।२
रथेषु पृषतीः अयुग्ध्वम्। ऋ १।३९।६
एषां रथे पृषतीः। ऋ. १।८५।५
रथेषु पृषतीः अयुग्ध्वम्। ऋ. १।८५।४
पृषतीभिः पृक्षं याथ॥ ऋ. २।३४।३
संमिश्ला पृषतीः अयुग्ध्वम्। ऋ. ३।२६।४
रोहितः प्रष्टिः वहति। ऋ. १।३९।६
प्रष्टिः रोहितः वहति। ऋ. ८।७।२८

'पृषती' का अर्थ धब्बोंवाली हिरणियां है और 'रोहितः प्रष्टिः' का अर्थ बडे सींगवाला विशाल हिरन है। मरुत अपने रथके साथ हरिनियोंको जोडते हैं। ये रथ बर्फानी भूमि पर चलते है। इनका यह वर्णन है--

सुषोमे शर्यणावति आर्जीके पस्त्यावति।
ययुः निचक्रया नरः॥ ऋ. ८।७।२९

(सु-सोमे) जहां उत्तम सोम होता है, वहां शर्यणा

नदीके समीप, ऋजीकके समीप चक्ररहित रथसे ये वीर आते हैं।

यहां चक्ररहित रथसे मरुत् आते हैं, बर्फानी भूमिपर से वे आते हैं ऐसा कहा है। यहां चक्ररहित रथका वर्णन आया है। इनको अंग्रेजीमें ' Sledge स्लेज ' कहते हैं।

अश्वरहित रथ

मरुतोंके रथ अश्वरहित भी होते थे। इनका वर्णन मंत्रमें ऐसा है--

अनेनो वो मरुतो यामोऽस्तु
अनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूः
वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ऋ. ६।६६।७

हे वीरो! आपका यह रथ (अनेनाः-अन्+एनः) निर्दोष है, इसमें (अन्-अश्वः) घोडे जोते नहीं है, घोडोंके बिना ही यह रथ (अजति) दौडता है, वेगसे जाता है। (अ-रथीः) उत्तम रथी वीर इसमें न बैठा तो भी यह दौडता है, (अन्-अवसः) इसको पृष्ठ रक्षककी भी आवश्यकता नहीं है, (अन्-अभीशूः) जिसको चाबुककी भी जरूरत नहीं है, (अनवसः) जिसको रक्षककी भी जरूरी नहीं है, (रजस्तूः) जो धूली उडाता हुआ दौडता है (पथ्या साधन् याति) ठीक मार्ग परसे चलता है। यह घोडोंके बिना चलनेवाला रथ है।

इस तरह घोडोंके रथ, हिरनियोंके चक्ररहित रथ, और घोडोंके बिना दौडनेवाले रथ मरुतोंके होते थे। ऐसे ही विमान भी उनके होते थे--

पक्षी जैसे विमान

मरुतोंके विमान पक्षी जैसे थे। इस विषयमें मंत्रमें कहा है--

ते म आहुः य आययुः उप द्युभिर्विभिर्मदे।
नरो मर्या अरेपसः इमान् पश्यन्निति ष्टुहि ॥
ऋ. ५।५३।३

वे (अरेपसः मर्या नरः) निष्पाप वीर (मे) मेरे पास (द्युभिः विभिः उप आययुः) तेजस्वी पक्षी सदृश आकाश यानोंसे आकर (आहुः) कहने लगे कि (इमान् स्तुहि) इन वीरोंकी प्रशंसा कर। यहां ' द्युभिः विभिः ' ये दो पद विचारणीय है। ' तेजस्वी पक्षी ' यह इनका अर्थ है। पक्षीके आकारके विमान यह भी इनका अर्थ हो सकता है। ' द्युभिः विभिः उप आययुः ' तेजस्वी पक्षियोंके समान यानोंसे पास आये। और देखिये--

वय इव मरुतः केनचित् पथा। ऋ. १।८७।२

ये मरुत् (वयः इव) पक्षियोंके समान (केन चित् पथा) किसी भी मार्गसे आते हैं। यहां किसी भी मार्गसे पक्षियोंके समान जल्दीसे आनेका वर्णन है तथा और देखिये--

आ विद्युन्मद्भिः मरुतः स्वर्कैः
रथेभिः यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।
आ वर्षिष्ठया न इषा
वयः न पप्तत सुमायाः ॥ ऋ. १।८८।१

(विद्युन्मद्भिः) बिजलीके समान तेजस्वी और (स्वर्कैः) चमकीले तथा (ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः) शस्त्रोंसे युक्त तथा अश्वोंके स्थान पर पर्ण [पाल] जिसमें लगे हैं ऐसे स्थानोंसे (आयात) आओ और हे (सुमायाः) उत्तम कुशल वीरो! (वयः न पप्तन) पक्षियोंके समान हमारे पास आओ।

ऐसे मंत्रोंमें पक्षियोंके समान आकाशमें उडनेवाले विमान भी मरुतोंके पास थे ऐसा लिखा है। देखिये--

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा
अन्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः
स पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ऋ. ५।५९।७

ये वीर (वयः न) पक्षियोंके समान (श्रेणीः) पंक्तियां बांधकर (ओजसा) बडे वेगसे (दिवः अन्तान्) आकाशके अन्त तक तथा (बृहतः सानुनस्परि) बडे पर्वतोंके शिखरोंपर (परि पप्तुः) उडते हैं, पहुंचते हैं। इनके (अश्वासः) घोडे (पर्वतस्य नभनून् अचुच्यवुः) पर्वतके शिखरोंके टुकडे टुकडे कर रहे थे। इस तरह मरुतोंके पास आकाशमें उडनेवाले विमान भी थे जो पर्वतोंके शिखरोंके ऊपरसे उठते थे।

इस तरह उनके वाहनोंके संबंधका विचार हुआ। अब उनके अन्य अनुशासनोंका विचार करते हैं।

मरुत एक घरमें रहते थे

मरुत् सैनिक सरकारी एक घरमें रहते थे। अपने अपने निज घरमें वे नहीं रहते थे, परंतु जब वे सेनामें भरती

होते थे तबसे उनका निवास सरकारी एक ही घरमें होता था। इस संबंधका वैदिक उल्लेख इस तरह मिलते हैं—

समोकसः इषुं दधिरे। ऋ. १।६४।१०
ऊरुक्षया सगणा मानुषासः। अथर्व. ७।७७।३
वः उरु सदः कृतं। ऋ. १।८५।६
उरु सदः चक्रिरे। ऋ. १।८५।७
समानस्मात् सदसः। ऋ. ५।८७।४

'एक घरमें रहनेवाले ये वीर बाण धारण करते हैं। इनके लिये बडा एक मकान तैयार किया जाता था।' इसी प्रकार और देखिये--

सनीळाः मर्याः स्वश्वाः नरः। ऋ. ७।५६।१
स्ववयसः सनीळाः समान्याः। ऋ. १।१६५।१

'(स-नीळाः) एक घरमें रहनेवाले (मर्याः) मरनेके लिये तैयार वीर (सु-अश्वाः) उत्तम घोडों पर बैठते हैं। वे सभी एक घरमें रहनेवाले वीर (समान्याः) समान संमानके योग्य हैं और वे सब (स्व-वयसः) समान आयुवाले हैं।' यह सब वर्णन स्पष्ट है कि ये वीर एक घरमें एक बैरकमें रहते हैं, वे सब एक आयुके हैं और सब प्रकारसे संमानके योग्य समझे जाते हैं। वे सब बराबरीके हैं ऐसा समझा जाता है। देखिये--

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ॥ ऋ. ५।६०।५
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो
ऽमध्यमासो महसा विवावृधुः॥ ऋ. ५।५९।६

'ये सभी मरुत् वीर समान हैं इनमें कोई (अ-ज्येष्ठासः) उच्च नहीं है, (अ-कनिष्ठासः) कोई कनिष्ठ नहीं है, कोई (अमध्यमासः) मध्यम भी नहीं है। ये सब (भ्रातरः) भाई भाई हैं ये सब आपसमें सम भावसे रहनेवाले (सौभगाय वावृधुः) अपना भाग्य उत्तम करनेके लिये अविरोधी भावसे प्रयत्न शील होते हैं।

अर्थात् ये वीर सब समान भावसे रहनेवाले, समान आयुवाले, समान पोषाकवाले, तथा सब मिलकर एक कार्यमें तत्परतासे लगनेवाले होते हैं। इनका संघ होता है, ये अलग अलग कदापि नहीं रहते, जो कार्य ये करते हैं संघशः ही करते है। इनके संघोंके नाम 'गण, शर्ध' आदि होते हैं देखिये—

मारुताय शर्धाय हव्या भरध्वं। ऋ. ८।२०।९
मारुतं शर्धं अभि प्रगायत। ऋ. १।३७।१
मारुतं शर्धः उत शंस। ऋ. ५।५२।८
वंदस्व मारुतं गणम्। ऋ. १।३८।१
मारुतं गणं नमस्य। ऋ. ५।१२।१३
गणश्रियः मरुतः। ऋ. १।६४।९

'मरुतोंके संघके लिये अन्नका संग्रह करो। मरुतोंके संघका वर्णन करो। मरुतोंके समुदायके लिये अभिवादन करो। समुदायमें ये सुशोभित दीखते हैं। तथा और देखिये—

मारुतं गणं सश्चत। ऋ. १।६४।१२
वृषव्रातासः पृषती अयुग्ध्वम्। ऋ. १।८५।४
स हि गणः युवा। ऋ. १।८७।४
वृषा गणः अविता। ऋ. १।८७।४
व्रातं व्रातं अनुक्रामेम। ऋ. ५।५३।११

'मरुतोंके समुदायको प्राप्त करो अर्थात् उससे मिलो, वह संघ (वृष-व्रातासः) बलिष्ठोंका संघ है। वे अपने रथको धब्बोंवाली घोडियां अथवा हरिन जोडते हैं। वह तरुणोंका समुदाय है जो हमारी सुरक्षा करता है। इस मरुतोंके समुदायके साथ हम चलते हैं।

'शर्ध, व्रात और गण' इस प्रकार इनके समुदायके ये नाम हैं। संख्याके दर्शक ये नाम हैं। गणमें ६३ वीर रहते हैं, शर्ध और व्रात इससे अधिक संख्याके गण हैं।

सिरपर शिरस्त्राण

ये मरुत् वीर अपने सिरपर शिरस्त्राण या साफा पहनते हैं। शिरस्त्राण लोहेका रहता है और उसपर सुनहरी बेल बूटी होती है इससे वह बडा सुशोभित रहता है और सिर पर बडा सुन्दर दीखता है। साफा भी रेशमी जर-तारी रहता है। इस विषयमें देखिये—

शीर्षन् हिरण्ययीः शिप्राः व्यञ्जत। ऋ. ८।७।२५
शिरण्यशिप्राः याथ। ऋ. २।३४।३
शीर्षसु नृम्णा। ऋ. ५।५७।६
शीर्षसु वितता हिरण्ययीः शिप्राः। ऋ. ५।५४।११

सिरपर रखा हुआ शिरस्त्राण सुनहरी बेलबूटीसे सुशोभित हुआ करता है और रेशमी साफे भी सिरपर पहने

जाते हैं । इससे ज्ञात होता है कि मरुतोंके गणवेशमें शिरोभूषण किस ढगके होते थे ।

सबका एकसा गणवेश

मरुतोंका सबका गणवेश समान होता था देखिये—

ये अञ्जिभिः अजायन्त । ऋ. १।३७।२

एषां अञ्जिसमानं रुक्मासः विभ्राजन्ते । ८।१०।११

वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः व्यञ्जते । ऋ. १।६४।४

गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते । ऋ- १।८५।३

वक्षःसु रुक्मा अंसेषु एता रभसास अञ्जयः ।

ऋ. १।१६६।१०

ते क्षोणीभिः अरुणेभिः अञ्जिभिः वावृधुः ।

ऋ. २।३४।१३

अञ्जिभिः सचेत । ऋ. ५।५२।१५

ये अञ्जिषु रुक्मेषु खादिषु स्रक्षु श्रायाः ५।५३।४

' ये मरुत वीर अपने अपने वीर भूषणोंके साथ प्रकट होते हैं । इनके गणवेश सबके लिये समान बनाये हैं और वे चमकते हैं । अनेक प्रकारके आभूषणोंसे वे अपने शरीरों को सुशोभित करते हैं । भूमिको माता माननेवाले ये वीर अपने गणवेशोंसे स्वयं सुशोभित होते हैं । इनकी छाती पर मालाएं तथा कंधोंपर गणवेश दिखाई देता है । वे अपने केसरी वर्णके गणवेशोंसे युक्त होकर अपनी शक्ति बढाते हैं । वे सदा अपने गणवेशोंसे युक्त होकर वक्षालंकार, स्वर्णमुद्राओंके हार, वलय कटक आदि पहनते हैं ।

उपर्युक्त वर्णनसे मरुतोंके गणवेशकी उत्तम कल्पना आ सकती है । ' अञ्जि ' पदसे गणवेशका बोध होता है, मरुतोंके कपडे केसरिया रंगके अथवा रक्तिम आभावाले होते हैं, ' अरुणेभिः क्षोणीभिः ' इन पदोंसे स्पष्ट होता है कि उनकी पोषाक अरुण या केसरिया रंगवाली होती थी । इनके छातीपर स्वर्णमुद्रा सदृश अलंकार होते थे । हाथोंमें तथा पावोंमें वलय सदृश अलंकार होते थे । इनके गणवेशके बारेमें निम्न, स्थानमें लिखित मंत्र और देखिये—

शुभ्रखादय एजथ । ऋ. ८।२०।४

रुक्मवक्षसः । ऋ. ८।२०।२१

वक्षःसु शुभ्रे रुक्मान् अधियेतिरे । ऋ. १।६४।४

वक्षःसु विरुक्मतः दधिरे । ऋ. १।८५।३

रुक्मैः आ विद्युतः असृक्षत । ऋ. ५।५२।२

पत्सु खादयः वक्षःसु रुक्माः । ऋ. ५।५४।११

रुक्मवक्षसः वयः दधिरे । ५।५५।१

रुक्मवक्षसः अश्वान् आ युञ्जते । ऋ. २।३४।८

इनकी छातियोंपर स्वर्णमुद्राओंके हार रहते हैं । पांवोंमें नूपुर तथा छाती पर मालाएं रहती हैं जो मालाएं चमकती हैं । ये आभूषण स्वच्छ और शुभ्र होते हैं और बिजली के समान चमकते हैं । गलेमें हार पहननेवाले ये वीर अपने रथोंमें घोडे जोतते हैं ।

हथियार, भाले

ये ऋष्टिभिः अजायन्त । ऋ. १।३७।२

बाहुषु अधि ऋष्टयः दविद्युतति । ऋ. ८।२०।११

अंसेषु ऋष्टयः नि मिमृक्षुः । ऋ. १।६४।४

भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वनं पनयन्त । ऋ. १।८७।३

भ्राजदृष्टयः दळ्हानि चित् अचुच्यवुः ।

ऋ. १।१६८।४

भ्राजदृष्टयः मरुतः आगन्तन । ऋ. २।३४।५

ये ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते । ऋ. १।८५।४

' ये वीर अपने भाले लेकर प्रकट होते हैं । इनकी भुजाओं पर तथा कंधोंपर भाले चमकते रहते हैं । तेजस्वी हथियारोंसे युक्त होकर ये वीर अपने महत्वको बढाते हैं तेजस्वी हथियार लेकर ये वीर न हिलनेवाले शत्रुओंको हिलाते हैं । चमकनेवाले हथियार के कर ये वीर आते हैं । ये वीर भालोंसे विशेष चमकते हैं । '

' ऋष्टि ' का अर्थ भाला, कुल्हाडी, फरसा या ऐसे दूसरे हथियार हैं । मरुत अपने गणमें खडे होते हैं उस समय भालोंके कारण चमकते रहते हैं ।

परशु लेनेवाले वीर

ये वाशीभिः अजायन्त । ऋ. १।३७।२

हिरण्यवाशिभिः अग्निं स्तुषे । ऋ. ८।७।३२

ते वाशीमन्तः । ऋ. १।८७।५

वः तनूषु अधिवाशीः । ऋ. १।८८।३

ये वाशीषु धन्वसु श्रायाः । ऋ. ५।५३।७

' वाशी ' का अर्थ है कुल्हाडी या परशु । यह मरुतोंका एक शस्त्र है । परशु सहित ये वीर प्रकट होते हैं । इन कुल्हाडों पर सुनहरी चित्रकारी की हुई रहती है । ये वीर

हमेशा कुल्हाडी रखते हैं। ये वीर अपने पास उत्तम कुठार तथा उत्तम धनुष रखते हैं।

इस प्रकार ये वीर अपने पास कुठार रखते हैं।

तलवार और वज्र

तलवार तथा वज्र भी मरुतोंके हाथमें होता है देखिये—

वज्रहस्तैः अग्निं स्तुषे। ऋ. ८।७।३२
विद्युद्धस्ताः। ऋ. ८।७।२५
हस्तेषु कृतिः च संदधे। ऋ. १।१६८।३
स्वधितिवान्। ऋ. १।८८।२

'ये मरुत् वीर हाथमें तलवार तथा वज्र धारण करते हैं। बिजलीके समान हथियार इनके हाथमें रहता है। तेज धारवाली, त्वरित काटनेवाली तलवार ये वीर अपने हाथमें धारण करते हैं।'

इनसे स्पष्ट होता है कि ये वीर अपने हाथमें तलवार तथा वज्र धारण करते हैं।

'कृति' का अर्थ है तीक्ष्ण धारावाली तलवार। वज्र भी एक बडा मारक हथियार है।

अन्य हथियार

ऋभुक्षणः। सुदीतिभिः वीळुपविभिः आगत।
ऋ. ८।२०।२
हिरण्यचक्रान् अयोदंष्ट्रान् पश्यन्। ऋ. १।८८।५
वः किविर्दती दिद्युत् रदति। ऋ. १।१६६।६
वः अंसेषु तविषाणि आहिता। ऋ. १।१६६।९
पविषु अधि क्षुराः। ऋ. १।१६६।१०
विद्युता संदधाति। ऋ. ५।५४।२
वः हस्तेषु कशाः। ऋ. १।३७।३

'शस्त्रधारी वीरो! उत्तम तीक्ष्ण धारवाले शस्त्र हाथमें लेकर आजाओ। तुम्हारे हथियार सुवर्णसे विभूषित फौलाद के बने दंष्ट्राके समान दांतोंसे युक्त हैं। तुम्हारा शस्त्र बिजली के समान तेजस्वी है वह शत्रुके टुकडे टुकडे करता है। तुम्हारे कंधोंपर हथियार लटक रहे हैं। तुम्हारे शस्त्रोंमें बडी तीक्ष्ण धारा है। बिजलीके समान तेजस्वी हथियार है तुम्हारे हाथोंमें चाबुक भी है।'

इन मंत्रोंमें मरुतोंके अनेक तेजस्वी हथियारोंका वर्णन है। ये हथियार सब वीरोंके पास समानतया रहते हैं।

शत्रुपर किया जानेवाला आक्रमण

मरुत् जिस समय संघशः शत्रुपर आक्रमण करते हैं उस समय—

वः यामः चित्रः। ऋ. १।१६६।४
वः चित्रं यामं चेकिते। ऋ. २।३४।१०

'तुम्हारा शत्रुपर जो आक्रमण होता है वह बडा ही विचित्र प्रभावी होता है।' तथा—

येषां यामेषु पृथिवी भिया रेजते। ऋ. १।३७।८
वः यामेषु भूमिः रेजते। ऋ. ८।२०।५
वः यामाय गिरिः नि येमे। ऋ. ८।७।५
वः यामाय मानुषा अबीभयन्त। १।३९।६

'तुम्हारा आक्रमण होनेपर पृथिवी भयसे कांपने लगती है। तुम्हारा आक्रमण होनेपर पहाड भी डरते हैं। तुम्हारे आक्रमण होनेपर मनुष्य भयभीत हो उठते हैं।'

तथा—

दीर्घं पृथु यामभिः प्रच्यावयन्ति। ऋ. १।३७।११
यत् यामं अचिध्वं पर्वता नि अहासत।
ऋ. ८।७।२

'तुम्हारी चढाईसे बडे सुदृढ शत्रु भी स्थान भ्रष्ट हो जाते हैं। आपका हमला होनेपर पहाड भी कांपने लगते हैं।'

अर्थात् मरुत् वीर शत्रुपर आक्रमण करने लगे तो शत्रुका संपूर्णनाश ही होता है। शत्रु पूर्णरीतिसे विनष्ट हो ऐसा प्रखर आक्रमण वीर मरुत करते हैं।

मरुत् मानव थे

यूयं मर्तासः स्यातन, वः स्तोता अमृतः स्यात्।
ऋ. १।३८।४
रुद्रस्य मर्या दिवः जज्ञिरे। ऋ. १।६४।२
मरुतः सगणा मानुषासः। अथर्व ७।७७।६
मरुतः विश्वकृष्टयः ऋ. ३।२६।५

'हे मरुद्वीरो! तुम मर्त्य मानव हो, पर तुम्हारा स्तोता अमर होता है। ये रुद्रके मानवी वीर द्युलोकसे उत्पन्न हुए ऐसा प्रतीत होता है। गणोंके साथ सब मरुद्वीर मानव ही है। मरुत सब मानव ही हैं।'

मरुतोंका ज्ञान

प्रचेतसः मरुतः नः आ गन्त । ऋ. १।३९।९

प्रचेतसः नानदति । ऋ. १।६४।८

ते ऋष्वासः दिवः अक्रिरे । ऋ. १।६४।२

' मरुत वीर विशेष ज्ञानी हैं। वे हमारे पास आजांय। मरुत् उच्च कोटीके विद्वान् प्रवचन करते हैं। वे विद्वान् वीर द्युलोकसे जन्मे हैं।' इस तरह मरुत वीर बडे ज्ञानी होते हैं।

दूरदर्शी

दूरे दृशः परिस्तुभः ॥ ऋ. १।६६।११

मरुत वीर दूरदर्शी होनेके कारण वे प्रशंसनीय होते हैं।

उत्तम वक्ता

सुजिह्वा आसभिः स्वरितारः। ऋ. १।१६६।११

वीर मरुतोंकी भाषण शैली उत्तम है अतः वे अपने मुखसे उत्तम वक्तृत्व करते हैं।

मरुत कवि हैं

वीर मरुत कवि भी हैं, इस विषयमें ये मंत्र देखने योग्य हैं।

ये ऋष्टि विद्युतः कवयः सन्ति वेधसः।

ऋ. ५।५२।१३

नरो मरुतः सत्यश्रुतः कवयो युवानः।

ऋ. ५।५७।८

मरुतः कवयो युवानः। ऋ. ५।५८।३

स्वतवसः कवयः ··· मरुतः। ऋ. ७।५।११

कवयो य इन्वथ। अथर्व. ४।२७।३

' ये मरुत उत्तम शस्त्रधारी कवि तथा ज्ञानी हैं। नेता मरुत सत्यज्ञानी और तरुण कवि हैं। अपने बलसे युक्त मरुत कवि हैं। कवि मरुतोंका आदर करो।'

इस वर्णनसे मरुत कवि हैं यह स्पष्ट होता है।

बुद्धिमत्ता

मरुतोंकी बुद्धिमत्ता भी प्रशंसनीय है, देखिये--

यूयं सुचेतुना सुमतिं पिपर्तन। ऋ. १।१६६।६

धियं धियं देवयाः दधिध्वे। ऋ. १।१६८।१

वः सुमतिं ओ सु जिगातु। ऋ. २।३४।१५

सूरयः मे प्रवोचन्त। ५।५२।१६

ये मरुत वीर अपनी विशेष बुद्धिमत्ताके कारण जनतामें सुबुद्धिका प्रचार करते हैं। इन वीरोंके हरएकमें दिव्य-भाव-युक्त बुद्धि निवास करती है। ये अच्छे विद्वान्, उच्च कोटिके वक्ता और सुबुद्धि देनेवाले हैं।' बुद्धिमत्ताके साथ इन मरुद्वीरोंमें साहसिकता भी विद्यमान है--

साहसिकता

धृष्णुया पान्ति। ऋ. ५।५२।२

ये मरुद्वीर अपने धैर्य युक्त धर्षण सामर्थ्यसे सबका संरक्षण करते हैं।

सामर्थ्यवान्

ये मरुत् बडे सामर्थ्यवान् भी है, देखिये—

शाकिनः मे शतं ददुः। ऋ.५।५२।१७

' इन शक्तिशाली वीरोंने मुझे सौ गायें दी हैं।' इस तरह इनकी शक्तिशालिताका वर्णन वेद करता है।

उत्साह

मरुतोंका उत्साह भी वर्णनीय होता है देखिये--

समन्यवः मापस्थात। ऋ. ८।३०।१

समन्यवः मरुतः। गावः मिथः रिहते।

ऋ. ८।२०।१

समन्यवः। पृक्षं याथ। ऋ. २।३४।३

समन्यवः मरुतः। नः सवनानि आगन्तन।

ऋ. २।३४।७

' (समन्यवः मरुतः) हे उत्साही मरुद्वीरो ! तुम हमसे दूर न रहो। तुम्हारी गौवें प्यारसे एक दूसरेको चाट रही हैं। हे उत्साही वीरो ! तुम अन्नका संग्रह करनेके लिये जाओ। हे वीरो ! हमारे यज्ञमें आओ।'

' समन्यवः ' का अर्थ है उत्साही, जोशीला, क्रोधसे युक्त, जो दूसरे शत्रुसे किया अपमान सहन करके चुप नहीं रह सकते।

उग्रवीर

उग्रासः तनूषु नाकि येमिरे। ऋ. ८।२०।१२

उग्राः मरुतः। तं रक्षत। ऋ. १।१६६।८

' ये उग्रस्वभाववाले वीर मरुत अपने शरीरोंकी पर्वाह कुछ भी नहीं करते। हे उग्र स्वभाववाले वीरो ! तुम उस प्रजाजनकी रक्षा करो।' ये मरुत कुशल वीर भी हैं—

कुशलवीर

सुमायाः मरुतः नः आयान्तु । ऋ. १।१६७।२
मायिनः तविषी अयुग्ध्वम् । ऋ १।६४।७

' ये अच्छे कुशल मरुत हमारे पास आ जांय । ये कुशलतासे कर्म करनेवाले वीर मरुत शक्तिशाली हैं ।

इन मन्त्रोंमें उन वीरोंकी कर्ममें कुशलताका वर्णन है ।

भव्य आकृतिवाले

वीर मरुत भव्य आकारवाले शरीरसे युक्त होते हैं--

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः ।
ऋ. ७।१०३।१४

सत्वानः घोरवर्पसः । ऋ. १।६४।२
मृगा न भीमाः । ऋ. २।३४।१

' ये वीर गौरवर्णवाले तथा भव्य शरीरोंसे युक्त हैं । ये अच्छे क्षत्रिय वीर हैं और बडे शरीरवाले हैं । बलवान् हैं और विशाल देहवाले हैं । ये सिंहके समान बडे भयंकर दीखते हैं ।

अपने तेजसे चमकनेवाले

ये मरुत सदा अपने तेजसे चमकते रहते हैं ऐसा वर्णन वेदमें मिलता है, देखिये--

ये स्वभानवः अजायन्त । ऋ. १।३७।२
स्वभानवः धन्वसु आयाः । ऋ. ५।५३।४
स्वभानवे वाचं प्र अनज । ऋ. ५।५४।१
ते भानुभिः वितस्थिरे । ऋ. ८।७।८
चित्र भानवः तविषीः अयुग्ध्वम् । ऋ. १।६४।७
चित्रभानवः अवसा आगच्छन्ति । ऋ, १।८५।११
अग्निश्रियः मरुतः । ऋ. ३।२६।५

' ये वीर मरुत अपने तेजसे प्रकट होते हैं । वे धनुष्योंका आश्रय लेकर अपना तेज दिखाते हैं । इन तेजस्वी वीरोंका वर्णन करो । मरुतोंका संघ तेजस्वी है । वे वीर अपने तेजसे चमकते रहते हैं । तेजस्वी वीर अपने बलसे युक्त होते हैं । वे विलक्षण तेजस्वी वीर अपनी संरक्षण शक्तिसे आते हैं । वे मरुत अग्निके समान चमकते हैं ।

इस तरह इनकी तेजस्विताका वर्णन वेद मंत्रोंमें किया है । ये सब मंत्र देखनेसे ये वीर मरुत सैनिक कैसे थे इसकी कल्पना हो सकती है । वैदिक समयमें ऐसी अनुशासन युक्त सेना थी ऐसा इससे सिद्ध हो सकता है । राष्ट्रका अभ्युदय होगा तब ही ऐसी उत्तम सेना रखी जा सकती है । मानवोंके प्रारंभिक अनुन्नत अवस्थामें ऐसी अनुशासन शील सेना हो सकेगी, ऐसी कल्पना भी नहीं हो सकती । यहां तो मरुतोंकी तैयार सुसज्य तेजस्वी सेना है । यह प्रत्यक्ष हम देख रहे हैं । इससे हम कह सकते हैं कि इस वैदिक समयकी राष्ट्रीय उन्नति पर्याप्त उन्नतिके शिखर पर पहुंच चुकी थी ।

पावमानी वरदा वेदमाता

अपना मानव धर्म ' वेद ' है। आज कल हमारे पास चार वेद हैं; वे ये हैं—

१	ऋग्वेद	मंत्र संख्या	१०५५२
२	यजुर्वेद	,,	३९८८
३	सामवेद	,,	१८७५
४	अथर्ववेद	,,	५९७७
		कुल मंत्र संख्या	२२३९२

चारों वेदोंके इतने मंत्र हैं। यजुर्वेदमें कंडिकाओंकी संख्या दर्शायी होती है। हरएक कंडिकामें अनेक मंत्र होते हैं। इन कंडिकाओंके मंत्रोंकी संख्या ऊपर दी है।

यजुर्वेद यज्ञवेद है

यजुर्वेद यज्ञका वेद है। यजुर्वेदके अध्याय यज्ञके अनुसार विभक्त हैं, इसलिये यजुर्वेदको जैसाका वैसा रखना उचित है। जो यज्ञ करना चाहेंगे, वे यजुर्वेदके अनुसार यज्ञ प्रक्रिया करेंगे। परंतु अन्य तीनों वेदोंका एकत्रीकरण करना योग्य है। इन तीन वेदोंका एकीकरण इस रीतिसे हो सकता है--

१	ऋग्वेद	मंत्र	१०५५२
२	सामवेद	,,	१८७५
३	अथर्ववेद	,,	५९७७
			१८४०४ कुलमंत्र

इसमें सामवेदमें ऋग्वेदके ही मंत्र है। ' या ऋक् तत् साम ' ऐसा छांदोग्य उपनिषद्में कहा है। और आजके सामवेदमें केवल साठ मंत्रके करीब ऋग्वेदमें नहीं मिलते ऐसे हैं, बाकीके मंत्र ऋग्वेदके ही मंत्र हैं। इसलिये सामवेदके मंत्रोंकी पृथक् गणना करनेकी आवश्यकता नहीं है। अथर्ववेदमें भी करीब दो हजार मंत्र ऋग्वेदके ही मंत्र हैं, उनको हटाया जाय तो मंत्र संख्या ऐसी होती है--

कुल	मंत्र संख्या	१८४०४
पुनरुक्त	,, ,,	२४०४
		१६००० (चारों वेदोंके मंत्र)

१६००० मंत्र संख्या श्रीमद्भागवतकी श्लोक संख्यासे कम है। यदि श्रीमद्भागवत एक पुस्तकके रूपमें छपकर बिक सकती है, तो संपूर्ण वेदमंत्रोंका एक ग्रंथ बन सकता है और वह सस्ता भी दिया जा सकता है।

आजके वेदोंका मूल्य

ऋग्वेद १०); यजुर्वेद २); सामवेद २); और अथर्ववेद ६) मिलकर २०) होते हैं। आज यह कमसे कम मूल्य है। २०) देकर हरएक घरमें वेद रखे जानेकी संभावना नहीं है। इतना मूल्य हरएक कुटुंब खर्च कर नहीं सकता। इसलिये चारों वेदोंके १६००० मन्त्रोंकी एक पुस्तक बनायी जावे, तो उसका मूल्य सस्ता होगा और वह हर एक घरमें पंहुच सकेगी।

चार वेदोंके चार पुस्तक रखनेकी अपेक्षा, चारों वेदोंके, पुनरुक्त सूक्त छोडकर, शेष मंत्रोंका एक पुस्तक बनाया जायगा, तो पुस्तक छोटा होगा और मूल्यमें भी सस्ता होगा।

इसमें कोई मंत्र छोडा नहीं जायगा, पुनरुक्त सूक्त तथा पुनरुक्त मंत्र हटाये जायगे। इससे मंत्र संख्या १६००० के करीब होगी।

वेदोंकी व्यवस्था

आजके वेदोंकी मंत्र संग्रहकी व्यवस्था निम्न लिखित प्रकार है--

१ ऋग्वेद संहिता ' आर्षेय संहिता ' है, केवल नवम मंडल ' दैवत संहिता ' है।

२ यजुर्वेद- यज्ञ संहिता है। यज्ञ पद्धति दर्शानेवाला यह वेद है।

३ सामवेद- गायनका वेद है। और ऋग्वेदके ही मंत्रोंका यह संग्रह है। इसलिये इस सामवेदके पृथक् विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

४ अथर्ववेद में ११ से २० काण्डतक विषयवार कांड हैं। और प्रथमके १ से १० तकके काण्ड फुटकर हैं, विषयवार नहीं हैं।

देवताके अनुसार वेदमंत्र संग्रह

वेद मंत्रोंके संग्रह (१) आर्षेयमंत्र संग्रह, (२) दैवतमंत्र संग्रह; (३) छांदसमंत्र संग्रह और (४) विषयवारमंत्र संग्रह ऐसे चार प्रकारके हो सकते हैं। ऋग्वेद संहिता मुख्यतासे 'आर्षेय संहिता' है और नवम मंडल 'दैवत संहिता' है। यजुर्वेद संहिता 'याज्ञिक संहिता' है, सामवेद संहिता जिनसे सामगायन बने हैं ऐसे गानयोनि मंत्रोंकी संहिता है और अथर्ववेद संहिता आधी विषयवार और आधी फुटकर है।

इन चारों वेदोंके मंत्रोंको किसी एक पद्धतिसे संग्रहित करेंगे तो वह संग्रह अध्ययन करनेके लिये, तथा विषय प्रतिपादनकी दृष्टिसे समझमें आनेके लिये बडा उपयोगी सिद्ध होगा।

उपास्य और उपासक

ऋषि 'उपासक' हैं और देवता 'उपास्य' हैं। उपासक उपास्योंके गुणोंका वर्णन करते हैं, उपास्योंके गुणोंको अपनाते हैं और अपनेमें वे गुण बढाकर देवत्वके गुणोंसे युक्त होना चाहते हैं। इसलिये 'उपास्य' श्रेष्ठ हैं। इस कारण 'दैवत संहिता' वेदमंत्रोंकी बनानेसे वह अध्ययनके लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, वेदका प्रतिपाद्य विषय भी इसीसे शीघ्र समझमें आवेगा।

विश्वराज्य

विश्वमें अग्नि, वायु, जल, विद्युत, सूर्य, चन्द्र आदि अनेक देवतायें हैं, ये देवताएं इस समग्र विश्वका राज्य चला रहीं हैं। इनमें नियमसे चलनेका गुण है, नियम भंग ये कभी नहीं करते, आलस्य नहीं करते, रिश्वत खोरी इनमें नहीं है, समय पालन इनमें है, अपना अपना नियत कर्तव्य यथा योग्य रीतिसे ये कर रहे हैं, इस कारण इनसे विश्वका महाराज्य उत्तम रीतिसे चलाया जा रहा है। अतः ये हमारे मानवी राज्यके लिये आदर्शमय्री हैं।

बाह्य देवताओंके अंश मानव शरीरमें आकर रह रहे हैं और मानव शरीरके अन्दरके सब कार्य यथा योग्य रीतिसे ये देवतांश कर रहे हैं। जितनी देवताएं विश्वमें हैं उतने देवतांश शरीरमें हैं।

शरीरमें जो देवतांश हैं उनके वर्णनको 'अध्यात्म' कहते हैं, विश्वमें जो देवता हैं उनको 'अधिदैवत' कहते हैं और राष्ट्रमें जो राज्यव्यवहार करनेवाले मंत्रीगण हैं उनको 'अधिभूत' कहते हैं। आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक इन तीन क्षेत्रोंमें वैदिक वर्णन देखे जाते हैं। यह स्पष्ट रीतिसे देखने और समझनेके लिये देवतावार मंत्रोंका संग्रह बडा उपयोगी सिद्ध होगा।

देवतावार किया हुआ मंत्र संग्रह विश्वराज्यके मंत्रिमंडलके अनुसार होगा और इससे वेदका गुह्य ज्ञान समझमें आनेके लिये बडी सहायता मिल सकेगी। अतः यह दैवत संहिताका मंत्र संग्रह नीचे दिये देवताओंके क्रमके अनुसार रहेगा—

१ तीन मूलतत्त्व— मंत्रसंख्या ५००

१ परब्रह्म— विश्वराज्यके संमाननीय राष्ट्रपति, जो स्वयं कुछ करते नहीं, पर जिनके रहने मात्रसे सब विश्वका कार्य चलता रहता है।

२ परमात्मा— विश्वराज्यके आदरणीय उपराष्ट्रपति। ये प्रकृति माताके साथ मिलकर विश्वनिर्मितिके कार्यमें अपनी शक्ति प्रदान करते हैं।

३ अदिति (प्रकृति-देवमाता)— यह देवोंको उत्पन्न करनेवाली माता है, अग्नि आदि देव इससे उत्पन्न होते हैं। जो विश्वराज्य चलाते हैं।

२ ध्येयदर्शन

१ पुरुष- १ 'विराट् पुरुष' (विश्वपुरुष, अधिदैवत),
२ राष्ट्र पुरुष (मानव समाज रूपी पुरुष, अधिभूत)
३ व्यक्ति पुरुष (अध्यात्म)

३ संसदध्यक्ष

१ सदसस्पति— विश्वराज्यकी विधानसभाके अध्यक्ष
२ क्षेत्रपति— विश्वराज्यकी विधानसभाके उपाध्यक्ष।

देवमाता अदितिके द्वारा विश्वराज्यके मंत्रिमंडलमें भेजे गये मंत्रीगण

१ शिक्षा विभाग— मंत्रसंख्या १०००
१ जातवेदा अग्नि— शिक्षामंत्री (१)
२ ब्रह्मणस्पति— उप शिक्षामंत्री
३ बृहस्पति— सहायक उपशिक्षामंत्री

२ संरक्षण विभाग— मंत्रसंख्या ४५००
४ इन्द्र— युद्धमंत्री, संरक्षणमंत्री (२)
५ उपेन्द्र (विष्णु)— उपसंरक्षणमंत्री (३)
६ रुद्र— सेना संचालक मंत्री (४)
७ मरुतः— सेनाके गण

३ आरोग्य विभाग— मंत्रसंख्या १०००
८ अश्विनौ— आरोग्यमंत्री (एक शल्य चिकित्सक और दूसरा औषधचिकित्सक) (५)
९ औषधि
१० सोम
११ अन्न
१२ गौ

४ पोषण विभाग— मंत्रसंख्या १०००
१३ पूषा— पोषण मंत्री (६)
१४ सूर्य— शोधन मंत्री (७)
१५ सविता
१६ आदित्य

५ धन विभाग— मंत्रसंख्या ५००
१७ भग— अर्थमंत्री (८)

६ उद्योग विभाग १०००
१८ विश्वकर्मा- उद्योग मंत्री (९)
१९ वास्तोष्पति- गृहरचना मंत्री (१०)
२० त्वष्टा- शस्त्रास्त्र निर्माण मंत्री (११)
२१ ऋभु- लघु व्यवसाय मंत्री (१२)

७ सागर विभाग १०००
२२ वरुण- नौका युद्ध मंत्री (१३)
२३ चन्द्रमा (१४)
२४ पर्जन्य (१५)
२५ नद्यः
२६ सरस्वती

८ जीवन विभाग १०००
२७ वायु- जीवन मंत्री (१६)

९ प्रकाश विभाग
२८ विद्युत्

१० स्त्री विभाग
२९ उषा- बालिका संरक्षण मंत्री

११ बाल विभाग
३० वेन- बाल रक्षण मंत्री (१७)

१२ गुप्त संरक्षण विभाग
३१ कः- गुप्त संरक्षण मंत्री (१८)

१३ वाहन विभाग
३२ अश्वः

१४ मातृभूमि
३३ पृथिवी

कुलमंत्र १६०००

इस प्रकार यह वेद विश्वराज्यकी व्यवस्था बता रहा है और इससे मानवराज्यकी सुव्यवस्था किस तरह होगी और उत्तम राज्य शासन किस तरह किया जा सकता है, इसका ज्ञान होगा और व्यक्तिके शरीरकी सुव्यवस्था किस प्रकार रह सकती है इसका भी बोध होगा।

जब संपूर्ण वेदमंत्रोंका अर्थ, मनन और स्पष्टीकरण तैयार होगा और उनका अच्छा ऊहापोह होगा, तब यह मंत्रोंका वर्गीकरण पूर्ण रीतिसे तैयार होगा। तबतक इन देवताओंको देखकर जितना विचार किया जा सकता है उतना किया है। ऐसा समझना चाहिये।

सब वेदमंत्रोंका मिलकर एक ही पुस्तक इस तरह होगा और वह हरएक वैदिकधर्मी खरीद सके ऐसा उसका मूल्य सस्ता रहेगा।

सस्वर और स्वररहित वेदपाठ

आज कल जनताका यह विचार हुआ है कि वेद सस्वर ही छपने चाहिये, परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है। स्वररहित भी वेदपाठ होता है, इस विषयमें विद्वानोंकी संमतियां देखिये--

एकश्रुतिः दूरात्संबुद्धौ । अष्टा० १।२।३३
यज्ञकर्मण्यजपन्यूंखसामसु । १।२।३४

इन अष्टाध्यायीके सूत्रोंपर पतंजलिका महाभाष्य ऐसा है–

त एते तंत्रे सप्त स्वरा भवन्ति उदात्तः उदात्ततरः, अनुदात्तः अनुदात्ततरः, स्वरितः स्वरिते य उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः एकश्रुतिः सप्तमः ।

महाभाष्य १।१।२।३७

अर्थात् उदात्त व अनुदात्तोंसे पृथक् सप्तम स्वर रूप एकश्रुति नामक स्वर होता है और वह एक श्रुति--

संबोधने यज्ञक्रियायां मंत्र एकश्रुतिः स्यात् जपादीन् वर्जयित्वा । सिद्धान्तकौमुदी स्वरप्रक्रिया सूत्र ३६६२-६३

' संबोधन तथा यज्ञ क्रियामें मंत्र एक श्रुतिसे बोलने चाहिये, अर्थात् यज्ञोंमें मंत्र स्वरोंके बिना एक श्रुतिमें बोलने चाहिये ।

यज्ञमें एक श्रुतिसे अर्थात् उदात्त अनुदात्त आदि स्वरोंका उच्चारण न करते हुए मंत्र बोलने चाहिये । यह प्राचीन पद्धति है, अर्थात् यज्ञ कर्ममें वेदमंत्रोंके स्वरोंका उच्चारण नहीं करना चाहिये । यदि यह नियम वेद कालसे चला आया है । तो इस तरह स्वररहित वेद छापे जांय तो कोई हानि नहीं है । पाणिनी मुनि, महाभाष्यकार पतंजलि और सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजी दीक्षितके मत ऊपर दिये हैं । उनसे बढकर और कोई विद्वान् नहीं है कि जो इनके मतका खंडन करे और सर्वत्र वेदपाठ सस्वर ही होना चाहिये ऐसा कहे ।

तात्पर्य यह है कि यज्ञ कर्ममें वेदपाठ स्वररहित होता है और जप आदिमें स्वरसहित होता है । यदि ऐसा है तो स्वररहित वेद छापे तो कोई दोष नहीं होगा । परंतु मूल्य सस्ता हो सकेगा, यह इससे लाभ होगा । स्वर सहित वेद तो मिलते ही हैं, ये स्वर रहित होंगे और सस्ते होंगे । हर एक इनको ले सकेगा ।

स्वरोंका उपयोग

पदोंका ठीक अर्थ करनेके लिये स्वरोंकी उत्तम सहायता होती है, इसमें संदेह नहीं है । पाणिनी स्वर-प्रक्रिया देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि स्वरोंका उपयोग पदोंके अर्थ निश्चित करनेमें होता है । स्वरका ज्ञान न रहा, तो पदोंका योग्य अर्थ ज्ञात नहीं हो सकता । यह सत्य है और बडे वेदार्थ करनेवाले विद्वानोंके लिये सस्वर वेद ग्रंथ अवश्य चाहिये यह भी सत्य है ।

पर यहां हम विचार कर रहे हैं वेदोंके पुस्तक सस्ते किस तरह हो सकते हैं । इसका उत्तर स्वर-रहित वेद छापे जायेंगे तो ही वे सस्ते हो सकते हैं और घर घर पहुंचाये जा सकते हैं ।

विद्वानोंको निश्चित अर्थ करनेके लिये स्वर-सहित वेद आज बाजारोंमें प्राप्त होते हैं, वैसे प्राप्त होते ही रहेंगे । सामान्य जनोंके घरोंमें वेद हों और वहां उनका पाठ हो इसलिये ये स्वर रहित वेद छापे जायें तो कोई हानि नहीं होगी, प्रत्युत् लाभ ही होगा ।

वेदोंका मूल्य

चारों वेदोंके मंत्र १६००० हैं इनके छपने पर मूल्यका विचार ऐसा होगा

१ सस्वर मोटा टाईप पृष्ठ १२६६ मूल्य १५) रु.
२ सस्वर बारीक टाईप पृष्ठ १००० ,, १२) ,,
३ स्वररहित मोटा टाइप पृष्ठ ८०० ,, १०) ,,
४ स्वर रहित बारीक टाइप पृष्ठ ५०० ,, ७) ,,

जो पुस्तक स्वर सहित छापनेसे १२ से १५ रु. देना कठिन होगा, वही पुस्तक स्वरोंके बिना छापनेसे ७ से १० में दिया जा सकता है । प्रचारकी दृष्टिसे इसका विचार करनेसे मालूम होगा, कि वेद स्वर रहित भी छापे जा सकते हैं और उनका प्रचार भी अच्छा होगा ।

दैवत संहिता, नया संकलन

दैवत संहिता यह नया संकलन है इसमें कोई संदेह नहीं है । यह नया संकलन है इसलिये सदोष है ऐसा कोई कह नहीं सकता । क्योंकि प्राचीन समयसे वेदोंके ऐसे संकलन खास खास कार्योंके लिये होते आये ही हैं. देखिये–

१ ऋग्वेदकी (१) शाकल, (२) बाष्कल और (३) शांख्यायन संहितायें आज उपलब्ध हैं ।

२ यजुर्वेदकी (१) वाजसनेयी, (२) काण्व, (३) तैत्तिरीय, (४) काठक और (५) मैत्रायणी इत्यादि संहितायें मिलती हैं ।

३ सामवेदकी (१) कौथुमी, (२) राणायणी और (३) जैमिनीय ये संहितायें उपलब्ध हैं ।

४ अथर्ववेदकी (१) पिप्पलाद और (२) शौनक ये संहिताएं उपलब्ध हैं।

इनमें हमारी ' दैवत संहिता ' अध्ययनकी सुकरताके लिये बनी और उसमें विश्वराज्यका संचालनका कार्य सुव्यवस्थासे बताया, तो कोई हानि नहीं, प्रत्युत इससे अनेक लाभ होंगे--

दैवतसंहितासे लाभ

दैवतसंहितासे अनेक लाभ हैं वे ये हैं—

१ एक एक देवताके मंत्र एक स्थानपर आनेसे उनके पदोंके अर्थ निश्चित रीतिसे ज्ञात हो सकते हैं।

२ एक एक देवताके गुण कर्म निश्चित रीतिसे ज्ञात होनेमें सुविधा होगी।

३ वह देवता विश्वराज्यमें किस स्थानपर है और उसका वहां क्या कार्य है, यह निश्चित रीतिसे ज्ञात हो सकता है।

४ ' यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि ' (श. बा.)— जो देवोंने किया वैसा कार्य मैं करूंगा, इस आदेशके पालनेमें सुभीता होगी।

५ वेदमंत्रोंका निश्चित अर्थ जाननेमें यह एक उत्तम साधन प्राप्त होगा।

इस प्रकार दैवत संहितासे अनेक लाभ हैं और वेदोंके अध्ययन करनेमें यह एक उत्तम साधन अध्ययन करनेवालोंको मिलेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

नामका विचार

इस ' दैवतसंहिता ' का नाम क्या रखा जाय, यह विचार करने योग्य बात है; अथर्ववेदमें एक मंत्र है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।

अथर्व १९।७१।१

इस मंत्रमें ' वेद ' के लिए ' पावमानी वरदा वेदमाता ' ये पद आये हैं, इस मंत्रके अनुसार वेदके तीन नाम हो सकते हैं—

१ वेदमाता

२ वरदा वेदमाता

३ पावमानी वरदा वेदमाता

इनमेंसे हमने ' पावमानी वरदा वेदमाता ' यह नाम रखा है। इस विषयमें विचार करके पाठक हमें सूचित करें कि इस संहिताको कौनसा नाम दिया जावे, अथर्ववेदमें और एक मंत्र है—

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं
तस्मिन्नन्तः अव दध्म एनम्,
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण
तेन मा देवास्तपसावतेह॥

अथर्व १९।७२।१

' जिस कोशसे हमने वेदके ग्रंथ बाहर निकाले उसी कोशमें हम पुनः उनको रखते हैं। हमने ब्रह्मज्ञानके वीर्यसे इष्ट कर्म किया, उस तपसे देव यहां मेरा रक्षण करें। ' इस मंत्रमें—

४ वेद

५ ब्रह्म

ये दो नाम वेदके लिये आये हैं। इस तरह वेदके पांच नाम अथर्ववेदके दो मंत्रोंमें दिये हैं। इनमेंसे हमने ' पावमानी वरदा वेदमाता ' ' पवित्र करनेवाली वर देनेवाली वेदमाता ' इस अर्थका नाम पसंद किया है। क्योंकि वेद पवित्र करनेवाले हैं, वर देनेवाले हैं और माताके समान हित करनेवाले भी हैं। तो भी पाठक इन नामोंमें कौनसा नाम इस वेदग्रंथको दिया जाय, इस विषयमें अपने विचार हमें मालूम करा देवें।

छपाईके प्रकार

यहां नमूनेके लिये छपाईके ४ प्रकार दिये हैं। (१) बड़ा स्वर सहित टाईप है और एक पंक्तिमें एक मंत्र आ जाय ऐसा एक छापा है। (२) दूसरा नमूना पृष्ठ दो कालमोंमें छापा है, (३) तीसरा नमूना जगह न छोडकर दौडता (रनिंग) कंपोज है। (४) और चौथा स्वर रहित है। इनमें एकसे दूसरा, उससे तीसरा और उससे चौथा प्रकार सस्ता रहता है। पाठक विचार करें कि कौनसा प्रकार हम इस वेदकी छपाईके लिये लगावें। उद्देश्य वेदग्रंथ सस्ता करनेका है।

विचारके लिए इस विज्ञप्तिके साथ वेदोंकी छपाईके नमूने भी नत्थी हैं।

जिनके पास यह पत्र पहुंचे, वे इसपर मनन करके अपने विचार हमारे पास सविस्तर लिखकर भेजें। विरोधी लेखका भी यहां शान्तिसे विचार होगा—

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल पारडी जि. सूरत
(गुजरात राज्य)

[१]

॥ १ ॥ (ऋ० ५।७५।१-९) अवस्युरात्रेयः । पङ्क्तिः ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥
आ नो रत्नानि बिभ्रता—वश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
बोधिन्मनसा रथ्ये—षिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥
आ वां नरा मनोयुजो—ऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥
अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥

---

[२]

॥ २ ॥ (ऋ० १।१८२।१-८) जगती; ६,८ त्रिष्टुप् ।

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता
रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू
दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा
दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं
तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे
जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं
ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥

जम्भयतमभितो रायतः शुनो
हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतं
उभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवं
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः
सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तः
अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा
उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥

कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो
यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ
उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥

[३]

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१८०।१-१०) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत् । हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥ युवमत्यस्याव नक्षथो यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः । स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥ युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः । अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥ युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे । तद् वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥ आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः । अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥ नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् । प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिः आ महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ३ ॥ वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् । अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥ युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ । अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥ ८ ॥ प्र यद् वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता । धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥ तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् । अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

---

[४]

॥ ४ ॥ (ऋ. ८।५।१-३७) ब्रह्मातिथिः काण्वः । (पूर्वार्धः) । गायत्री; ३७ बृहती ।

दूरादिहेव यत् सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानु विश्वधातनत् ॥ १ ॥ नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥ युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥ पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥ मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥ आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥ येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रींरक्तून् परिदीयथः ॥ ८ ॥ उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥ आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् । वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥ वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥ अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥ नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् । मो ष्व१न्याँ उपारतम् ॥ १३ ॥ अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥ अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥ पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥ जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥ अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥ यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥ तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥ उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः ॥ २१ ॥ कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा । यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ २१ ॥ युवं कण्वाय नासत्या ऽपिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥ २३ ॥

जनताके प्रतिनिधियोंके भारत-राष्ट्र-शासन-सम्बन्धी कुछ आवश्यक कर्तव्य

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

भारतकी जनताने स्वराज्य शासनके निमित्त अपने प्रतिनिधि अभी पिछले दिनों चुनकर भेजे और ये प्रतिनिधि अब अपने अपने प्रान्तोंमें शासनाधिकार चलानेके लिए अपने अपने मंत्रिमण्डल बना रहे हैं। यह आनन्दका विषय है। यह भारतीय जनताके लिए तीसरा अवसर है जब उसने अपने प्रतिनिधि चुने हैं। भारतमें वैदिक कालमें तथा इसके बाद पौराणिक कालमें भी अनेक प्रान्तोंमें प्रजातंत्रका राज्य था, और जनताको अपने प्रतिनिधियोंको चुननेका अधिकार था। पर पिछले हजार वर्षों तक भारत पर विदेशियोंका राज्य होनेके कारण भारतीय जनताके ये अधिकार इनसे छिन गए थे। परन्तु अब स्वराज्य-स्थापनके बाद भारतीयोंको ये अधिकार पुनः प्राप्त हो गए हैं, और उनका उपयोग भारतीयोंने किया भी है। यह चुनाव तीसरी बार हुआ है और इसमें जनताने सोच समझ कर अपनेमेंसे प्रतिनिधि चुनकर भेजे हैं। ये प्रतिनिधि पांच वर्ष तक भारतका शासन करेंगे। इसलिए इनके राष्ट्र-शासन सम्बन्धी कुछ मुख्य कर्तव्योंका विचार करना आवश्यक है।

जो लोग प्रतिनिधि भेजे गए हैं, वे अपने आवश्यक कर्तव्योंको जानें और जनता भी जाने कि उनके चुने हुए प्रतिनिधियोंके आवश्यक कर्तव्य क्या हैं?

मातृ-भूमिका धारण

अथर्ववेदमें ' मातृ-भूमि ' का सूक्त है। उसका ऋषि अथर्वा और देवता ' मातृ-भूमि ' है। इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें ही मातृभूमिका धारण किन शुभ गुणोंसे होता है, यह स्पष्ट रीतिसे कहा है वह मंत्र इस प्रकार है—

सत्यं बृहत् ऋतं उग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः
पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य
पत्नी उरुं लोकं पृथिवी न कृणोतु॥
अथर्व. १२।१।१;

' सत्य, बृहद्भाव, ऋत, उग्रत्व, दाक्षिण्य, तप, ज्ञान और यज्ञ ये शुभ गुण मातृभूमिका धारण और रक्षण करते हैं। हमारी मातृभूमि हमारे भूत-वर्तमान और भविष्यकी पालन करनेवाली है, वह हमें विस्तृत कार्यक्षेत्र देवे '—

इस मंत्रमें मातृभूमिका संरक्षण करनेवाले शुभ गुणोंका वर्णन किया है। इन गुणोंका स्वरूप यह है—

१ सत्यं— सत्यका पालन राज्य शासन व्यवहारमें होना चाहिये। शासन करनेवाले असत्य आचरण कदापि न करें असत्यको प्रोत्साहन न दें। जो अधिकारी असत्य भाषण करता है, असत्य व्यवहार करता है उसे शासक मण्डलसे हटा दिया जावे।

२ बृहत्— बृहद्भाव मनमें धारण करनेवाले शासक गण हों। संकुचित भावका आचरण करनेवाले राज्य शासक न हों। जितने भारतवासी हैं, उन सबके कल्याण करनेका भाव ' बृहद् भाव ' है। धर्म, जाति, प्रान्त, भाषा आदिकी आड लेकर अपने आदमियोंको ही सुखहाल करना, और दूसरोंकी ओर ध्यान न देना, ये संकुचित भाव मनमें रखकर शासन करना अयोग्य है। सम्पूर्ण राष्ट्रका शासन इस बृहद्भावको पूर्णतया मनमें रखकर करना चाहिये। संकुचित भावका स्थान शासकोंके मनमें जरा भी नहीं होना चाहिये।

३ ऋतं— जो योग्य है, उसी योग्य रीतिका अवलम्बन करके शासन करना चाहिये। ऋतके अर्थ हैं, ' योग्य, सरल, प्रामाणिक, सत्य, पूज्य, सम्मान्य, तेजस्वी, प्रदीप्त, निश्चित नियम, धर्म नियम, दिव्य नियम, और दिव्य सत्य। शासकोंको अपने शासन व्यवहारमें ऋतका पालन अवश्य करना चाहिये।

४ उग्रं— उग्रके अर्थ हैं ' शक्तिमान्, भयंकर, सामर्थ्ययुक्त, उग्र, निर्बलता जहां दृष्टि गोचर नहीं होती ऐसा व्यवहार करना '। जहां अपने भारतकी कमजोरी न दीखे इस प्रकार वीरताका व्यवहार करना, अपना सामर्थ्य प्रकट हो, ऐसा आचरण करना।

५ दीक्षा— दक्षतासे व्यवहार करना। जिस कार्यको ठीक तरह करनेका ज्ञान नहीं उस कार्यको ठीक तरह करनेकी दीक्षा उनसे लेनी कि जिसको उसका यथार्थ ज्ञान हो।

हर एक कार्य उत्तम दक्षतासे करना, कभी कार्य करनेमें आलस्य न करना या उदासीनता न दिखाना।

६ तपः- शीत, उष्ण आदि द्वन्द्व सहन करनेका अभ्यास करना। शीत-उष्ण, हानि-लाभ, जय-पराजय ये द्वन्द्व इस जगत्में मनुष्यके मार्गमें विघ्न डालते हैं। इनको सहन करनेका अभ्यास आवश्यक है। शीत लगनेसे सर्दी और उष्णता लगनेसे जिसका सिर दर्द करता हो, उससे राष्ट्र सेवाके कार्य नहीं हो सकते। इसलिए यह द्वन्द्व सहन करनेका अभ्यास राष्ट्र शासन करनेवालोंको होना चाहिए। यह अभ्यास होनेसे ही मनुष्य राष्ट्रकी सेवा उत्तम रीतिसे कर सकता है।

७-८ ब्रह्म— आत्मज्ञान और भूत विज्ञान इन दोनों विद्याओंकी विशेष उन्नति अपने राष्ट्रमें करनी चाहिए। भूतविद्यासे व्यावहारिक जीवन सुखपूर्ण किया जा सकता है और आत्मविद्यासे अन्तःकरणकी शक्ति प्राप्त हो सकती हैं। इसलिए राष्ट्रमें भौतिक विज्ञान और अध्यात्म ज्ञान इन दोनोंकी उन्नति करनी चाहिए। राज्यशासकोंको चाहिए कि वे अपने राष्ट्रमें इन दोनों अर्थात् ज्ञान और विज्ञानकी उन्नति करके अपने राष्ट्रको दोनों विद्याओंसे सुख और शान्ति प्राप्त करने योग्य उच्च बनावें।

९-११ यज्ञ— यह तीन प्रकारका होता है। 'देव-पूजा, संगतिकरण और दान' ये तीन रूप यज्ञके होते हैं। (९) राष्ट्रमें जो उत्तम या वीर ज्ञानी होते हैं उनका सत्कार करना चाहिए। (१०) संगतिकरण अर्थात् संगठन करके राष्ट्रकी सांघिक शक्ति बढानी चाहिए और (११) जो जिसके पास नहीं है वह उसे देकर उसे समर्थ बनाना चाहिए। यह दान चार प्रकारका होता है, ज्ञानदान, बलदान, धनदान और कर्मदान। इन चार प्रकारके दानोंका यथा योग्य व्यवहार करना अत्यन्त आवश्यक है। तभी राष्ट्रकी उन्नति संभव है—

ज्ञान दान- सब लोग साक्षर हों तथा ज्ञान विज्ञानमें सम्पन्न हों, ऐसा शासन द्वारा प्रबन्ध होना चाहिए।

बलदान— निर्बलोंके बलको बढानेके लिए जो आवश्यक साधन हैं वे देने चाहिए और छोटी आयुसे उनको बल सम्पादनके कार्योंमें नियुक्त करके राष्ट्रके स्त्री पुरुष बलवान्, कार्यक्षम निरोगी और दीर्घायु हों, इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। शासकोंका यह मुख्य और महत्व पूर्ण कार्य है।

धन दान— जिनके पास धन नहीं है, परन्तु वे ऐसे राष्ट्र हितैषी कार्योंमें लगे हुए हैं जो धनके अभावमें रुक सकता है उनको धन देना चाहिए। और उनके राष्ट्र पोषक कार्य होते रहें और बढते रहें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए।

कर्मदान— राष्ट्रमें कोई मनुष्य बेकार न रहे। बेकारोंको कार्य देकर उन्हें जीविका प्राप्त हो ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए।

तात्पर्य यह कि राष्ट्रमें ज्ञान प्रसार, बलका संवर्धन, उद्योगवृद्धि होकर बेकारीका पूर्ण रीतिसे उन्मूलन होना चाहिए। राष्ट्रके शासकोंको अपने राष्ट्रमें इन शुभ गुणोंकी वृद्धि करनेके लिए प्रबन्ध करना चाहिए। अपने राष्ट्रको पूर्ण स्वावलम्बी बना कर उन्नतिके शिखर पर पहुंचाना चाहिए। इस समय अपना भारत राष्ट्र उन्नत तो हो रहा है, पर जितना होना चाहिए था उतना नहीं हो सका।

भारत राष्ट्र कई दृष्टियोंसे उन्नत भी है। अध्यात्मज्ञान, योगसाधन, धर्म संस्कार आदिमें पृथ्वी परके सम्पूर्ण राष्ट्रोंमें भारत श्रेष्ठ है। भारतसे इन विद्याओंमें जगत्के सब राष्ट्रों को कुछ न कुछ मिल सकता है, ऐसी स्थिति आज भी है। यद्यपि भारतीयोंको इन विषयोंमें प्राचीनकालके समान आज भी प्रगति करनी चाहिए। पर इस स्थितिमें भी भारत इन विषयोंमें अग्रणी है।

परन्तु भौतिकशास्त्रोंमें भारतकी प्रगति कुछ भी नहीं है। अतः भूतविद्या और आत्मविद्या इन दोनोंमें अच्छी प्रगति हो, ऐसी शिक्षाका प्रबन्ध हमारे शासकोंको करना चाहिए।

१२- भारतवासियोंको विस्तृत कार्यक्षेत्र मातृभूमिमें ही मिले ऐसा भी प्रबन्ध जनताके प्रतिनिधियोंको करना चाहिए।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥
मनु

'इस देशके ज्ञानीसे पृथ्वीके सब मनुष्य अपने आचार व्यवहारकी शिक्षा प्राप्त करें' इस प्राचीनकालके सत्यको आज भी सिद्ध करें।

भारतीय लोगोंके प्रतिनिधियोंके, शासकोंके ये मुख्य कर्तव्य हैं, यह अथर्ववेदमें अथर्वाऋषिने बताया है। आजके शासक इस स्थितिको देशमें लावें. यह अभीष्ट है।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्॥

'राष्ट्रमें सब सुखी हों, सब निरोगी हों, सब कल्याणके मार्ग देखें किसीको दुःख न हो' इति। ● ● ●



स्वाध्याय-मंडल-वृत्त

इस महीने वेदमुद्रणनिधिमें आगेकी रकम इस प्रकार जमा हुई है--

सौ. सुशिलाबाई मु. देशपांडे, पुणे	३०
सौ. रेखा तळपदे, दादर	२०
श्री एम् जी जोशी, न्यू दिल्ली	२५·६५

आशीर्वाद टीकिट

श्री. जी. एम्. गोखले बी. कॉम्, नाशिक	५
,, जी एम् गोखले बी कॉम्, नाशिक	५
,, राजाभाऊ साठे ,,	५
,, राजाभाऊ साठे ,,	५
,, डॉ रा. ब. रा. व्यं मोने ,,	५
,, व्ही. आर्. जोशी जज्ज ,,	५
,, चिं नी पाटणकर वकील ,,	५
,, स. अ. पाटणकर इंजीनियर ,,	५
,, जयरामभाई बांटको ,,	५
,, रा. का. साठ्ये वकील ,,	५
,, लक्ष्मीकांत शर्मा ,,	१
,, श्रीनिवासराव देशमुख, खजुरी	३
,, रमेश मोघेकर, मोघा	३
,, सौ. कुसुम मोघेकर ,,	१
,, शंकरराव कुलकर्णी, आळंद	३
श्री. नृसिंहराव कुलकर्णी, रुद्रवाडी	३
,, दिगंबरराव देशमुख, खजुरी	३
,, गुरुदास नामजोशी, धुळे	२
,, डॉ इनामदार, गोरेगाव	१
,, मा. रा. परांजपे ,,	१
श्री. एस. डब्लयु. रत्नपारखे, गोरेगांव	१
कुल रु.	१४७ ६५
पूर्व प्रकाशित रु.	१,१९,३२५·८८
कुल जमा रु.	१,१९,४९३·५३

मंत्री— स्वाध्याय-मंडल, पारडी

[पृष्ठ १५६ परसे चालू]

यहीं पर मैंने पहली बार प्रेम और शान्तिके अल्फाज सुने और मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं उम्मीद करता हूं कि यह संस्था हरदम खुशहाल रह कर तरक्की करती जाएगी, और देश भरमें प्रेम व एकताका प्रचार करेगी'।

राज्यपालके इस भाषणके बाद उन्हें कई संस्थाओंकी तरफसे पुष्पमालायें अर्पित की गईं। बादमें एक घण्टे तक राज्यपाल तथा श्री पण्डितजीका व्यक्तिगत विचार विनिमय होता रहा। अन्तमें कुछ जलपानके बाद ११ बजेके लगभग संस्थाके सभी सदस्योंने राज्यपालको सहर्ष विदाई दी।

सूचना

लुधियानासे श्री दण्डी स्वामी रामतीर्थजी सूचित करते हैं कि अनेक प्रेमालु पाठकोंकी प्रेरणाके कारण 'वैदिक-ब्रह्म-विचार' को पुनः प्रकाशित करना पड़ा। अब वे पुस्तकें छपकर तैय्यार हो चुकी हैं।

कलेवर और प्रिन्ट सुन्दर होते हुए भी इसका मूल्य ७५ न. पै. मात्र है। अतः जो कोई मंगाना चाहे वे नीचेके पते पर पत्र व्यवहार करें।

इस पुस्तककी समालोचना "वैदिक धर्म" के अक्टूबर अंकमें हो चुकी है। इस पुस्तकसे जिज्ञासु बहुत लाभान्वित होंगे ऐसा हम मानते हैं।

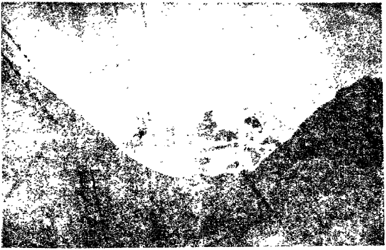
श्री पं. अमोलकराम ज्योतिषी
मन्दिर सोनियाँ, पुराना बाजार, लुधियाना (पंजाब)

-- सम्पादक

वैदिक धर्म

मई १९६२

★



कैलास पर्वत

५० नये पैसे

वर्ष ४३

वैदिक धर्म

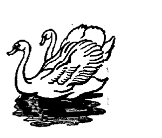
अंक ५

क्रमांक १६१ : मई १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका



" वैदिक धर्म "

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.–' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	१)	.५०
३ सामवेद संहिता	१)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	१)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये **देवता-मंत्र-संग्रह** मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	११)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	११)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

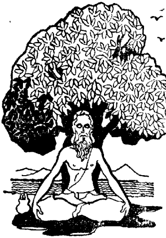
१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१९
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

वैदिकधर्म

मनुष्यकी उन्नति



अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥

ऋ. १०।३४।१३

(अयं अर्यः सविता) इस श्रेष्ठ सविता देवने (मे तत् विचष्टे) मुझे यह आज्ञा दी है कि हे मनुष्य ! (अक्षैः मा दीव्यः) पांसोंसे जुआ मत खेल, (कृषिं इत् कृषस्व) खेती ही कर तथा (बहु मन्यमानः) जो कुछ प्राप्त हो उसे बहुत मानकर (वित्ते रमस्व) धनमें रमण कर । हे (कितव) जुआरी ! (तत्र गावः) इस खेतीमें गायें, तथा (तत्र जाया) स्त्री प्राप्त होगी ।

मनुष्य सदा जुआ आदि कुकर्मोंसे दूर रहे । वह खेतीके द्वारा अन्न उत्पन्न करके लोगोंको धन धान्यसे समृद्ध करे, तथा स्वयं भी समृद्ध हो । अपने परिश्रमसे जो कुछ प्राप्त हो उसे अधिक समझे और आनन्दित रहे, अर्थात् परिश्रमसे जो कुछ प्राप्त हो उसीका सन्तोषपूर्वक उपभोग करे कभी भी असन्तोषी न हो । इस प्रकार खेतीका कर्म करते हुए गायोंका पालन करे तथा अपनी स्त्री तथा बाल बच्चोंके साथ सुख और आनन्दसे अपना जीवन बिताये ।

सन्तोष मनुष्यकी उन्नतिका अचूक साधन है ।

सात कारण— क्यों एक वैज्ञानिक ईश्वरमें विश्वास करता है ?

(लेखक— श्री ए. क्रेसी मोरिसन, विज्ञानकी न्यूयार्क अकादमीके भूतपूर्व अध्यक्ष)

हम अभी वैज्ञानिक युगके उषः कालमें हैं, और प्रत्येक अन्वेषण एक बुद्धिमान् रचयिता पर प्रकाश डालता है। डार्विनसे लेकर अब तकके ९० वर्षोंमें हमने कई महान् अन्वेषण किए हैं। और वैज्ञानिकता तथा ज्ञान विषयक श्रद्धाके साथ हम परमात्माके निकट आते जा रहे हैं।

मैं जो ईश्वर पर श्रद्धा रखता हूं, उसके सात कारण हैं—

पहला— गणितशास्त्रके नियमके आधार पर हम यह प्रमाणित कर सकते हैं कि हमारे विश्वका नक्शा किसी बुद्धिमान् इंजिनीयरके द्वारा खींचा गया है।

इस पृथ्वी पर जीवनके लिए कई अनुकूल वातावरण-की आवश्यकता रहती है। और इन सभी वातावरणोंका परस्पर उचित सम्बन्ध बनाकर रहना आकस्मिक (Chance) नहीं कहा जा सकता। (१) पृथ्वी अपनी धुरी पर १००० मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे घूमती है यदि उसकी गति १०० मील प्रति घण्टेकी हो जाए तो हमारे दिन रात अबकी अपेक्षा दस गुने लम्बे हो जायेंगे। और तब दिनके समय गर्म सूर्य हमारी सब वनस्पतियोंको जला देगा, और लम्बी रातमें सभी जम जायेंगे। (२) जीवनके स्रोत सूर्यकी सतह पर १२,००० डिग्री फारनहाइटका ताप है, और हमारी पृथ्वी उससे ठीक उतनी दूर है कि वह ' नित्य अग्नि ' हमें जितना चाहिए उतना ही गर्म करती है, ज्यादा नहीं। यदि सूरजका आधा ताप घट जाए तो हम जम जायेंगे, और यदि आधा ताप बढ जाए तो हम सब भुन जायेंगे। (३) २३ डिग्रीके कोण पर झुका हुआ पृथिवीका झुकाव हमें अनुकूल ऋतुएं प्रदान करता है यदि पृथ्वी इतनी झुकी हुई न होती, तो समुद्री भाप उत्तरसे दक्षिण तक फैल जाते, और सब जगह बर्फके महाद्वीप बन जाते। (४) यदि चन्द्रमा, जो हमारी पृथ्वीसे अब २३२००० मील दूर है, केवल ५० हजार मीलकी दूरी पर होता तो सागरोंमें ज्वार इतने भयंकर रूपसे उठता कि दिनमें दो बार सभी महाद्वीप जलमें डूब जाते और पहाड भी गायब हो जाते। (५) यदि पृथ्वी का ऊपरी भाग केवल १० फीट मोटा होता तो प्राणप्रद वायु (Oxygen) का बिल्कुल अभाव हो जाता, लिहाजा जीवनशक्ति ही समाप्त हो जाती। (६) यदि सागर कुछ ही फीट गहरे होते तो कार्बन डाइ ऑक्साइड और ऑक्सीजनके अभावमें वनस्पतियोंकी समाप्ति हो जाती। (७) यदि अन्तरिक्षके वायु या वातावरणकी परत बडी हल्की या पतली होती तो कुछ उल्काएं, जो कि आज अवकाशमें लाखोंकी संख्यामें जल जाती हैं, हमारी पृथ्वीके सब भागोंसे टकरातीं और सब जगह आग फैला देतीं।

उपरोक्त कारणोंकी तथा अन्य भी ऐसे ही उदाहरणोंकी वजहसे लाखोंमें एक भी ऐसा मौका हमारे पास नहीं है, कि जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि यह हमारा ग्रह (पृथ्वी) किसी आकस्मिक घटनाका परिणाम है।

दूसरा— जीवनका अपने ध्येयकी तरफ बराबर बढते जाना भी इस बातका प्रमाण है कि इन सबके पीछे एक बुद्धिमान् और सर्वव्यापी शक्ति काम कर रही है।

जीवन अपने आपमें क्या है ? इसकी थाह कोई भी नहीं पा सका। न इसका कुछ वजन है, न कुछ लम्बाई चौडाई या ऊंचाई आदि ही कुछ है। पर इसके अन्दरकी शक्ति महान् है, किसी पेडकी बढती हुई जड चट्टानको भी तोड देती है। जीवनने पानी, भूमि, हवा सब पर अधिकार कर रखा है। तथा इसका अधिकार सभी तत्वों पर भी है, और वह तत्वोंको आवश्यकतानुसार बिगाड और सुधारकर अपने अनुकूल बनाता रहता है।

जीवन एक मूर्तिकार है, जो सभी जीवित तत्वोंको आकृतियां प्रदान करता है। जीवन एक चित्रकार है, जो प्रत्येक वृक्षके प्रत्येक पत्तेको छवि या रूप देता है और प्रत्येक पुष्पको रंग देता है। जीवन एक संगीतकार है, जो सब चिडियोंको गाना सिखाता है और क्षुद्र कीटोंको भी अपनी विभिन्न आवाजोंमें गागाकर एक दूसरेको बुलाना सिखाता है। जीवन एक रसायन-तत्वज्ञ है, जो फलोंको स्वाद और

गुलाबको सुगंधि प्रदान करता है, वह पानी और कार्बोनिक एसिडको शक्कर और लकडीमें बदल देता है और ऐसा करते हुए वह ऑक्सीजनको भी देता है, जिससे कि प्राणी जीवित रहें।

एक अदृश्य प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) को ही देखें, जो पारदर्शक है और सूर्यसे शक्ति प्राप्त करता है। यह पारदर्शक अकेला जीवाणु ही अपनेमें जीवनतत्वोंको रखता है और इसी जीवनको वह सभी क्षुद्र तथा महान् प्राणियोंमें बांट देता है। इस जीवाणुकी शक्ति हमारी वनस्पतियों, जानवरों और मनुष्योंसे कहीं अधिक है, क्योंकि सारा जीवन ही इससे आया है। प्रकृति जीवनको उत्पन्न नहीं करती।

तब यह सब किसने बनाया ?

तीसरा — जीव-विज्ञान भी एक उत्तम निर्माताकी ओर संकेत करता है जिसने असहाय क्षुद्रप्राणियोंमें सहज-ज्ञान (instinct) को रखा।

एक विशेष प्रकारकी मछली (Salmon) छोटी होती हुए भी कई वर्ष समुद्रमें रहती है, फिर अपनी नदीको लौट आती है और नदीमें इधर उधर घूमते हुए उस स्थान पर पहुच जाती है जहां पर वह सहायक नदीआकर मिलती है, जिसमें उसका जन्म हुआ था। उसे कौनसी शक्ति उसके स्थान पर ठीक-ठीक वापिस पहुंचा देती है ? यदि कोई उसे किसी दूसरी सहायक नदीमें, जिसमें उसका जन्म न हुआ हो, जाकर छोड दे तो वह उसी समय यह जान लेगी कि वह अपने स्थानसे दूर हो गई है, और वह मुख्य धारामें वापिस आकर अपने मूल स्थान पर पहुंचनेकी पूरी कोशिश करेगी।

इस मछलीके जीवनसे भी अधिक जटिल जीवन ईल (Eel) मछलीका है। ये मछलियां यौवनावस्था आनेपर एक तालाबसे दूसरे तालाब, एक नदीसे दूसरी नदीकी यात्रा करती हुई और योरोपसे हजारों मीलकी समुद्री यात्रा करती हुई बरमूदा (Bermuda) के पास सागरकी अथाह गहराईमें सब इकट्ठी होती हैं। वहां वे अपने बच्चे पैदा करती हैं और मर जाती हैं। वे छोटी मछलियां इसके सिवाय कि वे सब अथाह जलमें हैं, और कुछ भी नहीं जानतीं, फिर भी वे सब उसी स्थान पर पहुंचनेके लिये, जहांसे उनके मातापिता आए थे, चल देती हैं। न केवल इतना ही अपितु वे उस उस तालाब और नदियोंमें भी जाती हैं, जिनमेंसे उनके माता पिता होकर आये थे। परिणामस्वरूप प्रत्येक तालाब और नदी ईल मछलियोंसे भर जाती है। कोई भी अमेरिकन ईल मछली कभी भी योरोपमें नहीं पकडी गई, और इसी प्रकार कोई भी योरोप की ईल मछली अमेरिकामें नहीं पकडी गई। प्रकृतिने योरोपके ईलकी युवावस्था भी जरा लम्बे समयकी बनाई है, कि जिससे वे अपनी इस लम्बी यात्राको पूरा कर सकें। इन मछलियोंका यह सहज-ज्ञान कहांसे पैदा होता है ?

इसी प्रकार बर्रकी जातिका एक कीडा (Wasp) एक टिड्डेको पकड लेता है, जमीनमें एक छेद करता है, उसमें टिड्डेको रखकर उसके ठीक उसी स्थान पर डंक मारेगा कि वह टिड्डा मरता नहीं अपितु बेहोश हो जाता है, और फिर उसे वह बर्र सुरक्षित मांसके रूपमें रखता है। तब वह बर्र उसी टिड्डेके पास अण्डे देता है, जिससे कि बच्चे अण्डेमेंसे निकलनेके बाद उस टिड्डेको बिना मारे ही कुतर-कुतर कर खा सकें, नहीं तो इन बच्चोंके लिए मरे हुए टिड्डेका मांस विष हो जाता है। तब बच्चोंकी माता कहीं बाहर उड जाती है और मर जाती है, वह अपने बच्चोंको दुबारा कभी नहीं देखती। निश्चित रूपसे पहली बर्रने भी ये सब काम किए होंगे, नहीं तो आगेकी बर्रें कैसे होतीं। ये सभी अद्भुत आदतें केवल वातावरणके कारण नहीं हुई अपितु इनमें पूर्वसे ही किसीने रखीं थीं।

चौथा— मनुष्यके पास जानवरके सहज-ज्ञानकी अपेक्षा और भी उत्कृष्ट शक्ति है-बौद्धिक शक्ति या विचारनेकी शक्ति।

किसी भी जानवरने अब तक दस तक गिन कर अथवा दसका अर्थ समझकर अपनी योग्यताका रिकॉर्ड स्थापित नहीं किया। यदि सहज-ज्ञान (Instinct) बांसुरीका एक राग है, सुन्दर है, पर सीमित, तो मानव मस्तिष्क एक आरकेस्ट्रा है, जिसमें अनेक वाद्योंके विभिन्न रागोंका सम्मेलन होता है। इस चौथे कारणके विषयमें ज्यादा कुछ लिखने की जरूरत नहीं है। विचारनेके शक्तिके कारण ही हम उन सम्भावनाओंको सोच सकते हैं कि हम जो कुछ भी अब हैं,

वह केवल इसी कारण है कि हममें विश्वका एक आलोक-बुद्धि प्राप्त है।

पांचवां — इस विश्वमें सभी प्राणियोंके आहारका प्रबन्ध है जिसे पहले डार्विन नहीं जानता था, पर आज हम जानते हैं जैसे कि जीवाणु।

ये जीवाणु इतने अकथनीय रूपसे क्षुद्र होते हैं कि यदि संसारके सभी जीवाणुओंको, जो सभी जीवितोंके कारण हैं, एक जगह इकट्ठा किया जाए तो ये सब मिलकर भी दर्जी जो अंगुलीकी टोपी पहनता है, उसे पूरा भर नहीं सकते। तो भी क्षुद्रवीक्षण यंत्रसे भी न देखे जानेवाले (Ultra-microscope) ये जीवाणु विश्वके सभी जीवित प्राणी और वनस्पतियोंमें जीवनके कारण हैं। अंगुलीकी टोपी (Thimble) यद्यपि छोटी होती है, फिर भी जीवाणुओंके रूपमें विश्वके २ अरब व्यक्तियोंको उसमें इकट्ठा किया जा सकता है। ये ऐसे तथ्य हैं, जिन पर किसी प्रकारका प्रश्न नहीं किया जा सकता। ये जीवाणु मनुष्योंके पूर्वजोंके संस्कारके साथ-साथ हर मनुष्यके मनोविज्ञानको भी अपने अन्दर धारण किए रहते हैं।

विकास वस्तुतः कोषाणुओं (Cells) से शुरु होता है, इन कोषाणुओंमें जीवाणुओं (Genes) का निवास होता है। कुछ ही लाखकी संख्यामें ये अणु किस प्रकार पृथ्वी परके जीवन पर शासन करते हैं यह एक और उदाहरण है, जो यह बताता है कि यह सारी रचना किसी महान् रचनात्मक बुद्धिकी है। इसके अलावा इस विषयमें और कोई कल्पना नहीं हो सकती।

छठवां — प्रकृतिके कार्य भी इस बातके प्रमाण हैं, कि इस सृष्टिकी रचना किसी दूरदर्शीने की है।

बहुत साल बीत गए आस्ट्रेलियामें जगह-जगह बाड़ लगानेके लिए नागफनी (Cactus) के पौधे लगाए गए। अपने विरोधी कीडोंको आस्ट्रेलियामें न पाकर ये पौधे बहुत ज्यादा बढने लगे। और इनकी उत्पत्ति इतनी बढ गई कि इंग्लैण्डके बराबर लम्बा चौडा क्षेत्रफल इन पौधोंसे घिर गया। वहांकी खेतियां नष्ट हो गई और वहांके निवासियोंका वहां रहना दुश्वार हो गया। आखिरकार कुछ जीवविज्ञानके शास्त्रज्ञोंने इसपर विचार किया, और वे कहींसे एक कीडा पकड लाए, जो केवल नागफणी ही खाता था। यह सन्तान भी बहुत देता था। और इस कीडेका शत्रु भी आस्ट्रेलियामें नहीं था इसलिए इस कीडेने नागफणी पर बहुत शीघ्र विजय प्राप्त कर ली। पर ये कीडे भी उतने ही सीमित रहे, जितनेकी नागफनीको रोकनेके लिए आवश्यक थे।

यह रोकथाम और सन्तुलन विश्वमें सब स्थानों पर है। तो फिर बहुत बच्चे पैदा करनेवाले कीडे, पूरी पृथ्वीपर क्यों नहीं फैल गए? क्योंकि मनुष्योंकी तरह इनके फेफडे नहीं होते, वे नलियों द्वारा सांस लेते हैं। पर जब कीडे बडे होते है, तो उनकी श्वास नलिएं उनके शरीरके अनुपातसे नहीं बढती। इसलिए वे कीडे बडे नहीं हो पाते। वृद्धिकी सीमा इन्हें सीमित कर देती है।

यदि इन कीडोंमें यह शारीरिक रुकावट न होती तो मनुष्य रह नहीं सकता था।

सातवां — मनुष्य स्वयं भी ईश्वर विषयक विचारकी कल्पना करता है यह भी ईश्वराखित्व विषयक एक अद्‌भुत प्रमाण है।

ईश्वर विषयक विचारोंका प्रादुर्भाव मनुष्यके एक दैवी स्थानसे होता है। इसमें संसारके अन्य किसी वस्तुका हिस्सा नहीं होता। यह स्थान है कल्पना (Imagination)। इसके द्वारा केवल मनुष्य, अदृश्य पदार्थोंके प्रमाण प्राप्त कर सकता है। मनुष्यकी इस शक्तिका क्षेत्र निस्सीम है। मनुष्यकी पूर्ण कल्पना अध्यात्मिक सत्य बन जाती है। वह उस परम सत्यका नक्शा अपनी कल्पना द्वारा खींच सकता है, कि परमात्मा सर्वव्यापक और 'सर्व' है, और हमारे हृदयोंमें जितनी समीपतासे रहता है, उतना और कहीं नहीं।

यह वैज्ञानिक तथा काव्यमिक दृष्टिसे भी सत्य है। किसी गीतकारके शब्दोंमें; आकाश उसके यशकी घोषणा करते हैं, और आकाशका विस्तार उसकी दस्तकारीका गान करता है।

स्वराज्य शासनका आदर्श

(लेखक— पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

हम भारत वासियोंको स्वराज्य प्राप्त हुआ है, जनताको अपने प्रतिनिधि चुनकर देनेका अधिकार प्राप्त हुआ है और इस अधिकारका उपयोग भारतीय जनता कर रही है। इस समय भारतकी जनताको अपने शासक चुननेमें "शुभ गुणोंसे युक्त वे हैं या नहीं हैं" यह ज्ञान हो, तो कितना अच्छा होगा, इसका विचार करनेका यह समय है। जनता अपने प्रतिनिधि विधान सभाके लिये भेजती है और विधान सभा अपने मंत्री मंडलके सदस्योंको चुनती है। चुनाव तो होता है, पर जिन गुणोंका विचार करना चाहिये वह विचार नहीं होता। इस लिये शासक वर्गके सदस्योंमें कौनसे गुण मुख्यतः रहने चाहिये, इसका विचार इस समय हम करना चाहते हैं।

अथर्ववेदमें अथर्वा ऋषिके मंत्रोंमें स्वराज्य शासनका विषय आया है, यह ऋषि स्वराज्यके शासक किन गुणोंसे युक्त होने चाहिये ऐसा कहता है वह देखिये—

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः।
यदजः प्रथमं संबभूव, स ह तत्स्वराज्यमियाय,
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्॥

अथर्व वेद १०।७।३१

'सूर्योदयके पूर्व अथवा उषः कालके पूर्व जो ईश्वरका नाम नम्र भावसे जपता है, जो हलचल करनेवाला प्रथम संघटित होता है, वही इस स्वराज्यको प्राप्त करता है, जिस स्वराज्य शासनसे अधिक श्रेष्ठ कोई दूसरा शासन नहीं है।"

इस मंत्रमें स्वराज्य शासकके कुछ गुण कहे हैं और स्वराज्य शासनको सबसे श्रेष्ठ राज्य शासन कहा है। इस स्वराज्य शासनसे अधिक उच्च या श्रेष्ठ शासन दूसरा कोई नहीं, ऐसा भी इस स्वराज्य शासनका वर्णन यहां किया है।

१ तत् स्वराज्यं; यस्मात् परं अन्यत् भूतं नास्ति- वह स्वराज्य शासन श्रेष्ठ है कि जिस स्वराज्य शासनसे अधिक श्रेष्ठ ऐसा दूसरा राज्य शासन हुआ ही नहीं है। जिस स्वराज्य शासनसे राष्ट्रके संपूर्ण मानव समाजकी पूर्ण उन्नति होती है। उन्नति होनेमें किसी तरहकी आपत्ति उत्पन्न नहीं होती। वह स्वराज्य शासन श्रेष्ठ है।

यदि स्वराज्य मिलनेपर भी उन्नति होनेमें रुकावट उत्पन्न होती रहे, तो समझना चाहिये कि उस स्वराज्यमें कुछ दोष अवश्य हैं। वे दोष कौनसे हैं, इसका विवेचन भी अपने मंत्रमें अथर्वा ऋषिने किया है। वह अथर्वा ऋषि कहता है कि—

२ सूर्यात् पुरा, उषसः पुरा नाम्ना नाम जोहवीति— सूर्योदयके पूर्व अथवा उषःकालके पूर्व ईश्वरका नाम नम्र भाव युक्त अन्तःकरणसे जो लेता रहता है वह स्वराज्यका शासक हो। अर्थात् जो ईश्वरकी भक्ति करता नहीं, अथवा जो ईश्वरको मानता नहीं, अथवा माननेपर भी जो उसका भक्ति भावसे, नम्रभाव युक्त अन्तःकरणसे ध्यान नहीं करता है, वह शासन करनेके लिये योग्य नहीं है।

ईश्वर सर्वत्र है, वह न्यायकारी है, उत्तम शासक है ऐसा माननेवाला स्वराज्य शासक चाहिये। जो नास्तिक है, उसको चुनकर लोगोंको अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके देना नहीं चाहिये।

इस नियमका हेतु क्या है? इसका हेतु यह है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दुष्टोंको दूर करनेवाला, सज्जनोंका प्रतिपालन करनेवाला, सर्वत्र उपस्थित है, ऐसा जो मानता है, वह ईश्वरको सर्वत्र देखता है और सर्वत्र सब व्यवहार करनेके समय वह अपने सामने परमेश्वरको देखता है। इस कारण उससे जानबूझकर आचार व्यवहारके दोष होते नहीं। ऐसे सर्वत्र परमेश्वरको देखनेवाले लोग जनताको चुनकर देने चाहिये। चुनावमें जो चुने जाते हैं, वे आस्तिक हैं, वा नास्तिक हैं, इसका विचार करना योग्य है।

परमेश्वर ज्ञानी, न्यायकारी, सुयोग्य शासक है वैसा राज्य शासन हम यहां अपने राष्ट्रमें करें। हम भी ज्ञान प्राप्त

करके ज्ञानी बनेंगे, तो अज्ञानसे जो दोष राज्य शासनमें हो सकते हैं, वे नहीं होंगे ।

परमेश्वर न्यायकारी है, वैसे हम भी न्यायकारी हों, तो हमारे राज्य शासनमें अन्याय नहीं होगा । इस तरह परमेश्वरके गुणोंका चिन्तन और मनन करके तदनुसार राज्य शासन चलानेवाले लोग जनता अपनेमेंसे चुनकर दें और वे राज्य चलावें तो राज्य शासन निर्दोष चलाया जा सकता है । यह है ' ईश्वर भक्त राज्य शासक चुने जांय ', इसका अर्थ ।

३ अजः प्रथमं संबभूव— जो हलचल करनेवाला प्रथम संघटना करता है, वह स्वराज्यके लिये योग्य है । ' अज ' पद विशेष अर्थसे प्रयुक्त है ।

' अज् ' धातुका अर्थ है गति करना, प्रगति करना; क्षेपण करना, त्यागना । इस धातुसे ' अजः ' शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है, ' हलचल करनेवाला, प्रगति करनेवाला, नेता (Mover, Leader)

जो नेता प्रथम (सं बभूव) मिलकर, एक होकर संघठन करता है, वह स्वराज्यके लिये योग्य होता है जो नेता अपने राष्ट्रमें प्रथम संघटना करके यश संपादन करता है (सः ह तत् स्वराज्यं इयाय) वही निःसंदेह इस स्वराज्यको प्राप्त करता है (यस्मात् परं अन्यत् भूतं नास्ति) जिस स्वराज्यसे दूसरा श्रेष्ठ ऐसा कोई शासन नहीं है ।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि, जो नेता अपने राष्ट्रमें अच्छी प्रकार संघटना करता है और राष्ट्रकी प्रगति करनेका यत्न करता है, जिसके प्रयत्नसे राष्ट्रकी सच्ची उन्नति होती है, वही राष्ट्र शासनके लिये जनतासे चुना जावे और ऐसे प्रत्यक्ष कार्य करनेवाले ही जनता द्वारा चुने जांय ।

ऐसे सज्जनोंसे जो राज्य शासन चलाया जाता है वही श्रेष्ठ स्वराज्य शासन है, जिससे अधिक श्रेष्ठ ऐसा दूसरा शासन नहीं है ।

धनका प्रयोग करके, या अन्य प्रकारका दबाव जनतापर लाकर, जो चुनाव होता है, इस प्रकारकी चुनावसे बने हुए प्रतिनिधी सच्चे राष्ट्रके प्रतिनिधि नहीं हो सकते, और उनके द्वारा चलाया जानेवाला राज्य शासन भी लाभकारी नहीं होगा ।

इस दृष्टिसे इस मंत्रका ' अज ' पद बडा महत्वका है । इसके अर्थ ' हलचल करनेवाला, प्रगति करनेवाला, नेतृत्व करनेवाला ' है । जो ये कार्य प्रजाकी उन्नतिके लिये करता है वही सच्चा राष्ट्रका प्रतिनिधि है और स्वराज्यको उत्तम रीतिसे चलानेवाला भी है ।

आजके चुननेवाले और आजके चुने जानेवाले विचार करें कि हम क्या कर रहे हैं । इससे श्रेष्ठ स्वराज्य शासन निर्माण होगा, या नहीं । विचार करनेसे सब कुछ पता लग सकता है ।

पाठक इस वैदिक आदर्शको अपने सामने रखें और वैसा श्रेष्ठ स्वराज्य भारत राष्ट्रमें लानेका यत्न करें ।

च्यवान

✶ लेखक— श्री ना. गो. चापेकर

ऋग्वेदमें दिए गए विशेषणोंके आधार पर जो च्यवानकी कथा बनती है, वह इस प्रकार है—

ऋषि च्यवान बहुत वृद्ध हो चुके थे, अतः उन्हें घरवालोंने त्याग दिया था। पर अश्विनौकी कृपासे इन्होंने फिर तारुण्य प्राप्त किया तथा जवान लडकियोंके साथ शादी की। अब यहां हम यह विचार करेंगे कि यह कथा ऋग्वेदके मंत्रों द्वारा कितनी प्रमाणित है।

सर्व प्रथम तो यह कथा उत्तम कर्मोंके प्रसंगमें कही गई है।

यह सर्वथा सन्देह रहित है कि अश्विनौने च्यवानको कन्याओंका पति बनाया (आत् इत् पतिमकृणुतं कनीनां- जवान बनानेके बाद ही उसे कन्याओंका पति बनाया- ऋ. १।११६।१०, यहां बहुवचन द्रष्टव्य है)। एक दूसरे ऋषिके मंत्रमें यह भी बताया है कि तरुणावस्थाकी प्राप्तिके बाद च्यवानमें स्त्री-सहवासकी उत्कट अभिलाषा जागृत हो गई (वध्वः कामं आकृण्वं- स्त्रीकी कामना उत्पन्न हो गई- ऋ. ५।७४।५)। इस प्रकार तरुणावस्था और शादीमें कारण और कार्यका सम्बन्ध है। यहां यह स्पष्ट है कि चूंकि च्यवानकी तरुणावस्था समाप्त हो चुकी थी अतः वह शादी नहीं कर सका। इस बातके लिए कोई मंत्र प्रमाण रूपमें प्रस्तुत नहीं किया जा सकता कि च्यवानकी पूर्व भी कोई पत्नी थी या नहीं। इसी घटनाका वर्णन सब ऋचाओंमें है कि च्यवान अश्विनौकी कृपासे दुबारा जवान बन गए।

पर च्यवानकी वृद्धावस्थाको तारुण्यमें बदल देना कोई अलौकिक घटना नहीं है। मंत्रोंमें " शचीभिः " और " दंसनाभिः " दो शब्द आये हैं। दोनों शब्दोंका अर्थ " कर्म " है। अतः यहां यह अनुमान आसानीसे लगाया जा सकता है कि अश्विनौने यह परिवर्तन औषधियोंके द्वारा ही किया होगा।

यह सत्य है कि च्यवान शक्तिहीन था। पर क्या उसकी यह शक्तिहीनता वृद्धावस्थाके कारण थी ? इसके लिए निम्न शब्दोंका प्रयोग हुआ है।

जुजुरुषः (ऋ. १।११६।१०) जरन्तम् (ऋ. १।११७।१३) जुरते (ऋ. ७।६८।६) जरसः (ऋ. ७।११।५) सनयं (ऋ. १०।३९।४)।

' जुजुरुषः ' और ' जुजुर्वान् ' दोनों शब्द ' जॄ ' धातुसे बने हैं। ऋ १।३७।८ में आये हुए ' जुजुर्वान् ' शब्दका सायणने अर्थ किया है ' वयोहानिरोगादिना जीर्णः ' आयु, रोग आदिसे जर्जरित। इससे यह ज्ञात होता है कि च्यवान किसी प्रकारके भयंकर रोगसे भी पीडित था। यह इस बातके रहस्यको खोल देती है कि वह ' जहित ' (ऋ. १।११६।१०) त्यागा हुआ क्यों था। वह केवल वृद्धावस्थाके कारण ही अपने मित्रों और सम्बन्धियों द्वारा त्याग नहीं दिया गया था।

अपने रोगसे छुटकारा पाकर च्यवानने यज्ञमें हवि देनी शुरू कर दी। इस बातका अनुमान—

उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे। अधि यद् वर्प इत ऊति धत्थः॥ ऋ. ७।६८।६

(हे अश्विनौ ! जिस च्यवानको मृत्युके समान वृद्धावस्था प्राप्त हो गई थी, उस हवि देनेवाले वृद्ध च्यवानको तुमने फिर जवानी दी)।

इस मंत्रसे किया जा सकता है। यदि दूसरी तरफ यह माना जाये कि वृद्ध च्यवान नियम पूर्वक दैनिक यज्ञ करता था जैसा कि इस मंत्रमें आये हुए ' हविर्दे ' शब्दसे पता भी चलता है, तो यह भी मानना पडेगा कि—

प्रातिरतं जहितस्यायुः । (ऋ. १।११६।१०)

(हे अश्विनौ ! तुमने [अपने भाइयों तथा सम्बन्धियों द्वारा] त्यागे हुए च्यवानकी आयु बढाई)

इस मंत्र भागमें आया हुआ 'जहितस्य' पद अर्थ-हीन है ।

जब च्यवानको तरुणावस्था प्राप्त हो गई तो उसने अपनी चमडीको इसी तरह उतार फेंका, जिस प्रकार किसी आच्छादनको । वव्रि, द्रापि और अत्क सभी समानार्थक शब्द हैं, जिनका अर्थ है ढकना, आच्छादित करना । इस आच्छादनको किसी क्रियाके द्वारा हटा दिया जाता है । द्रापि और अत्क शब्द अन्तरिक्षीय प्रपंचके लिए भी प्रयुक्त हुए हैं । विभिन्नवर्ण समय-समय पर आकाशको आच्छादित करते रहते हैं । पर कुछ प्राकृतिक शक्तियोंके कारण वे रंग गायब हो जाते हैं और आकाशका स्वाभाविक रंग सामने आ जाता है । अथर्ववेदमें द्रापि-आच्छादनको परमात्माको कृति बताई है—

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते । अथर्व. १३।३।१

(जिस परमात्माने इन द्युलोक और पृथिवीलोकको बनाया और जो उन्हें आच्छादन बनाकर भुवनोंमें व्याप्त होता है) । जब द्रापि शब्द सोमके साथ प्रयुक्त होता है तब वह रंगके परिवर्तनको सूचित करता है ।

मेरे विचारमें च्यवानके शरीरका रंग जो रोगके कारण भद्दा हो गया था फिर पूर्णतया बदल दिया गया था । इसीका अर्थ है वृद्धका तरुण हो जाना । च्यवानकी कथा ऋग्वेदकी रचनाके समय लोकप्रिय बन गई थी ।

यह समझके बाहरकी बात है कि किस प्रकार और क्यों पौराणिक च्यवानको ऋग्वेदीय च्यवानके साथ सम्बन्धित किया गया है ?

अब तक मैंने जो कुछ भी प्राप्त होने योग्य प्रमाण थे उन्हें प्रस्तुत कर दिया है और मैं आशा करता हूँ कि इन प्रमाणोंसे यह निश्चित हो सकेगा कि च्यवान क्या है । क्या च्यवान एक ऋषि था, जैसा कि सायण और दूसरे भाष्यकार मानते हैं ? मेरे विचारमें इस कल्पनाका आधार ऋ. १०।६१ में आया हुआ 'हविर्दे' शब्द है, इसके आधारपर यह कहा जा सकता है कि च्यवान एक याजक था जो देवोंको हवियां प्रदान किया करता था । पर वस्तुतः च्यवानको ऋषि सिद्ध करनेवाले प्रमाण नहींके बराबर हैं । ज्यादासे ज्यादा यह कहा जा सकता है कि यह कथा एक ऐसे बूढे और रोगी व्यक्तिसे सम्बन्धित है, जो अश्विनौकी कृपासे फिर तरुण हो गया था, तथा जिसने बादमें कई स्त्रियोंसे शादी की । इस कथाको ऋग्वेदमें इतना प्रसिद्ध बनाना भी बेढंगा ही है । इसके अतिरिक्त हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह च्यवानकी कथा अश्विनौके साथ बडे घनिष्ठ रूपसे सम्बन्धित है, जो कि देवताओंके वैद्य थे । पर हम जानते हैं कि अश्विनौ और देवोंमें कोई भी चलता फिरता जीव नहीं था । अश्विनौ उदय होते हुए सूर्यके अग्रगामी दूत हैं । इसलिए हमें तिलकके सिद्धान्तको स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पडता है, जिसके अनुसार च्यवान सूर्य है जो भूभागके दूसरी तरफ जाते हुए उत्तरदिशाके प्रदेशोंको अन्धकार युक्त करता जाता है । मेरे विचारमें यद्यपि यह सिद्धान्त 'हविर्दे' शब्दकी ठीक व्याख्या कर नहीं पाता, पर फिर भी इसको स्वीकार करनेके सिवाय और कोई दूसरा इलाज नहीं है ।

इस सिद्धान्तके लिए सबसे अधिक ठोस प्रमाण च्यवान और अश्विनौके सम्बन्धोंकी अभिन्नता है । वास्तवमें अश्विनौके बिना च्यवानका कुछ भी अस्तित्व नहीं है । अश्विनौ और च्यवानका पूर्ण सम्बन्ध—

विभिन्द्च्यवानमश्विना नि यायो अद्वयाविनम् ॥ ऋ. ५।७५।५

(हे अश्विनौ ! तुम जिस प्रकार कुटिलतासे रहित च्यवानके पास पक्षियोंसे जाते हो)

इस मंत्रमें दीख पडता है । इस पूरे सूक्तमें अश्विनौसे प्रार्थनाकी गई है कि वे प्रकट होकर ऋषियोंको यज्ञके लिए समर्थ बनावें । इस सूक्तके पांचवें मंत्रमें अश्विनौसे च्यवान के पास जानेके लिए कहा है । और स्पष्टतः जबतक च्यवान स्वयं उनके पास जानेका निश्चय नहीं करता तबतक अश्विनौ स्वयं ही ऋषियोंकी प्रार्थना किस तरह स्वीकार करेंगे । इस लिए तिलकके इस विचारसे कि च्यवान अस्त होता

हुआ सूर्य है, मैं पूर्णतया सहमत हूँ। अश्विनौंको देवोंका वैद्य बताया है। पर किसी मंत्रमें ऐसा नहीं आया है कि अश्विनौ मनुष्य थे और यदि अश्विनौ मनुष्य नहीं थे तो निश्चित रूपसे च्यवान भी मनुष्य नहीं हो सकता। ऋग्वेदके ऋषि आलंकारिक भाषा बोलनेके प्रेमी थे। इस तथ्यको ऋग्वेद की व्याख्या करते समय हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिए।

एक ऋग्वेदके विवेचकको पदपदे ऐसे स्थल मिलेंगे, जहां पर किसी कर्मको प्रकट करनेवाले कुछ निश्चित गुण ही देवताके रूपमें विकसित हो गए हैं। च्यवान भी इसका अपवाद नहीं है। निरुक्तमें "च्यवान" का निर्वचन किया है "च्यावयति इति च्यवानः" जो किसीको अपने स्थानसे च्युत कर दे, गिरादे। यह "च्यावयति" शब्द "च्यवति" का प्रेरणार्थक शब्द है इसमें सन्देह है। पर यदि यह ऐसा ही है तो यह शब्द प्रेरणार्थक अर्थमें "च्यु" (गिरना) धातुसे बना है अर्थात् गिरानेवाला।

अध च्यवान उत तवीत्यर्थं ॥ ऋ. १०।५९।१

इस मंत्रके "च्यवान" शब्दका अर्थ सायणने "जीवितात् प्रच्यवमानः (जीवनसे गिरनेवाला अथवा जीवनसे पृथक् होनेवाला किया है। यहां "च्यवान," शब्द "सुबन्धु" का विशेषण है।

दशास्यन्ता शवसे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना
सुमतिं भुरण्यू ॥ ऋ ६।६२।७

(हे अश्विनौ ! तुमने शयु ऋषिकी बांझ गायको दूध देनेवाली बनाया. इस प्रकार भक्तके पास जानेवाले तुम हमारा पोषण करो)। इसमें आये हुए "च्यवाना" पदका अर्थ "गच्छन्तौ" (भक्तोंकी ओर जानेवाला) किया है, यह अश्विनौका विशेषण वाचक पद है। इससे यह ज्ञात होता है कि शब्दोंकी निर्वचनात्मक व्याख्या सन्तुष्टात्मक नहीं होती। यदि च्यवान सूर्यका विशेषण है तो च्यवान डूबते सूर्यका अथवा उस सूर्यका वाचक है जो पूरी तरह डूब चुका है।

वैदिक सन्देश और विश्वशान्ति

(लेखक— डॉ. विश्वमित्र, सिद्धान्त-विशारद)

[गताङ्कसे आगे]

★

पूर्वाभास

[प्राचीन समयमें युद्धके चलते रहने पर भी देशके अन्दर शान्ति रहती थी। इसका कारण वह वैदिक प्रशिक्षण था, जो प्रजाओंको दिया जाता था। हमारे वेद सभी प्रकारके ज्ञानके सागर है। इन्हें परमात्माने लोक-कल्याणके लिए सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकाशित किया था। इन वेदोंकी पाश्चात्य विद्वानोंने भी सराहना की है। इसमें विश्व शान्तिका मार्ग बताया है। जो राजनीतिके साथ धर्मको संयुक्त करनेसे ही प्राप्त हो सकती है। यह संसार एक विश्व-राज्य है जिसे परमात्मा चला रहा है। इसमें किसी भी प्रकारकी अशान्ति पैदा नहीं होती। अतः आजके राजनीतिज्ञोंको इससे राज्य चलानेकी शिक्षा लेनी चाहिए]

विश्व-शान्तिके बारेमें वेदोंका उपदेश

इस प्रसंगोंमें मुझे ऋग्वेदके ही एक दूसरे मंत्रका स्मरण हो आया है। वह मंत्र इस प्रकार है—

विष्णोः कर्माणि पश्यतः यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ऋ १।२२।१९

'हे मनुष्य! अपने उत्तम मित्र रूप उस व्यापक परमात्माके कार्मोका निरीक्षण कर, तथा संसारमें अपनी उन्नतिके लिए उनसे शिक्षा ले''। पर इस महान् राजनीतिज्ञका अनुसरण किया कैसे जाए? उसको जानकर और उसकी प्रार्थनाके द्वारा। तब उसकी दयाका प्रकाश हमें आगे ले चलेगा। आजके राजनीतिज्ञ सम्भवतः लॉर्ड टेनीसनके इस कथनको भी बिल्कुल भूल चुके हैं जिसमें उसने कहा है कि ''प्रार्थनाके द्वारा इस संसार स्वप्नसे परेकी चीजें भी प्राप्त की जा सकती हैं''।

भारतीय विद्वानोंके समान पाश्चात्य विद्वानोंने भी इस बातका अनुभव किया कि ''वह मनुष्य, जो प्रार्थना नहीं करता, अन्धा या उद्देश्य रहित जीवन व्यतीत करनेवाले भेड़ व बकरेसे बढ़कर कुछ नहीं है''

इस कथनके पीछे एक प्रबल तर्क है। मनुष्य एक बिजलीकी बैटरी (Battery) के समान है। जिस प्रकार एक बैटरीकी कुछ सीमित शक्ति होती है, जो उपयोग करनेसे समाप्त हो जाती है। उसका पुनः प्रयोग करनेके लिए हमें डायनमाकी सहायतासे उसमें फिर शक्ति भरवानी पड़ती है, इसी प्रकार मनुष्य भी है। उसके पास भी सीमित शक्तियां ही हैं, और उसकी शक्ति उसके प्रतिदिनके कार्योंमें खर्च होती रहती है। और यदि वह अपनी शक्ति फिरसे पूरी नहीं कर लेता तो वह कमजोर और बेकाम हो जाता है। पर वह अपनी खर्च हुई शक्तिको दुबारा प्राप्त कहांसे करे? उस निस्सीम शक्तिके स्रोत परमात्मासे। किस प्रकार? प्रार्थना और ध्यानके द्वारा।

जिस प्रकार एक लोहेका गोला भट्टीमें डाल देनेसे थोड़ी देर बाद एक दम लाल हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य भी ध्यानपूर्वक प्रार्थनाके द्वारा शक्ति तथा शुद्ध विचारोंसे भर जाता है, जिससे कि वह किसी काममें लगनेके पहले उस कामके ऊंच-नीचको सोचकर फिर उस कामको उत्तमतासे कर सकता है। अन्य साधारण व्यक्तियोंकी तुलनामें एक राजनीतिज्ञको यह अत्यावश्यक है कि प्रतिदिन अपनी शक्तियोंकी कमीकी पूर्ति कर ले, क्योंकि राज्य, राष्ट्र अथवा संसारकी सुरक्षाकी जिम्मेदारियां उसीके कन्धों पर हैं।

यह ध्यान अथवा प्रार्थना उसका प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए। अपने समयमेंसे इसको भी समय अवश्य देना चाहिए। जब तक वह इस कर्त्तव्यको नहीं करेगा तब तक

वह संसारको सीधे रास्ते पर नहीं ले जा सकता। और इसका परिणाम यह होगा कि संसारमें अनेक प्रकारके उपद्रवोंका जन्म होगा, जैसा कि अब हो रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त साधन (प्रार्थना और ध्यान) से हम अपनी आत्माका विकास करते हैं अर्थात् अपनी वैयक्तिक शक्तियोंका विकास करते हैं, क्योंकि व्यक्ति विशेषकर आत्माके विकास पर आधारित रहता है। इस बातसे कोई भी विद्वान् इन्कार नहीं कर सकता कि जब मनुष्य अपनी वैयक्तिक शान्ति प्राप्त कर लेगा, तो वह एक शांतिपूर्ण समाजका भी निर्माण कर सकेगा, और फिर वह राष्ट्र अथवा संसारमें शान्ति स्थापनके लिए अग्रसर होगा।

हमें आर्य बनना है

दूसरे शब्दोंमें, 'इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः' इत्यादि मंत्र हमें यह बताता है कि 'प्रथम तुम आर्य बनो, फिर संसारको आर्य बनानेका प्रयत्न करो'।

यहां 'आर्य' शब्दसे पाठकोंको भ्रान्ति न हो। क्योंकि पाश्चात्य इतिहासज्ञोंके अनुसार आर्योंकी एक ऐसी जाति थी जो मध्य एशियामें रहती थी और विभिन्न देशोंका पर्यटन करती थी। इन आर्योंने अपने पशुओंके लिए चरागाहकी खोज करते करते भारतमें प्रवेश किया। परन्तु आर्यका अर्थ यह बिलकुल नहीं। आर्य शब्दका उत्पत्ति स्थान वेद है, और इसका अर्थ जाति नहीं है। वैदिक भाषा शास्त्रके अनुसार आर्य शब्दकी सिद्धि 'ऋ' (गति करना) धातुसे हुई है। अत. आर्य वह है जो ज्ञानके द्वारा उन्नति करके अपने उद्देश्यको प्राप्त करता है निरुक्तके अनुसार आर्यका अर्थ 'परमात्माका पुत्र' है।

इसलिए जब एक मनुष्य एक सच्चा आर्य बन जाता है, तब वह निरन्तर उन्नति करता हुआ अपने उद्देश्यकी तरफ प्रगति करता चला जाता है और तब वह 'ईश्वर-पुत्र' कहलानेके योग्य बनता है। महायोगी श्री अरविन्दने, जो 'आर्य' नामक पत्रिकाके सम्पादक भी थे, आर्य शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा था 'आर्य शब्द एक ऐसे आचारके तथा समाजके आदर्शका द्योतक है, जो आदर्श एक अनुशासित जीवन, दया, श्रेष्ठता, उत्साह, नम्रता, पवित्रता, मानवता, सहानुभूति, दुर्बलोंकी रक्षा, कर्त्तव्यपरायणता, ज्ञानपिपासा आदि सद्गुणोंसे भरपूर है। मानवके शब्दकोषमें इस 'आर्य' शब्दको छोडकर और कोई भी दूसरा शब्द नहीं है, जिसके पीछे इतना सुघड और श्रेष्ठ इतिहास हो।

'आर्य वह है जो अपने प्रगति पथमें अन्दरसे अथवा बाहरसे आनेवाली बाधाओं पर विजय प्राप्त कर ले'।

'प्रत्येक पदार्थमें वह सत्य और ऋतकी खोज करता है, तथा हर तरहसे उस परमात्माके राज्यमें घुसनेका प्रयत्न करता है।'

इस प्रकार 'आर्य' शब्दमें शुभ गुणोंका संक्षिप्त रूपमें संग्रह है। अतः सारे जगत्को 'आर्य' या श्रेष्ठ बनाना विश्वशान्तिके लिए अत्यावश्यक है।

स्वार्थ तथा संकुचित मनोवृत्तिकी समाप्ति

इस मंत्रका तीसरा भाग भी महत्त्वपूर्ण है। इस भागमें यह बताया है कि सारे संसारको आर्य किस तरह बनाया जाए। मंत्र कहता है—

'अपघ्नन्तो अराव्णः' अर्थात् स्वार्थ-परता तथा संकुचितताका विनाश। यह पहले ही कहा जा चुका है कि अपनी आत्माका विकास कर तथा स्वयंको आर्य बनाकर मनुष्य आर्य संस्कृतिका सब जगह प्रसार करता है। इस संस्कृतिमें सभी उत्तम गुणोंका समावेश है। इस प्रकार वह दूसरोंको भी अपनी तरह श्रेष्ठ बनाता है। और तब सब विशाल मनोवृत्ति अपना कर तथा यह समझ कर कि यह सारा संसार उस एक ही पिताकी सम्पत्ति होनेसे सभी मनुष्योंका है, रंगभेद, जातिभेद तथा देशभेदको समाप्त कर विश्वशान्तिके प्रयत्नोंमें लग जाते हैं +

सांसारिक सम्पत्ति पर सबका समानाधिकार

'अपघ्नन्तो अराव्णः' के द्वारा वेद इस पृथ्वीके विभिन्न स्थानों पर, परन्तु एक आकाशके नीचे रहनेवाले सब मानवोंके इस सांसारिक सम्पत्ति पर समानाधिकारकी शिक्षा दे रहा है। प्रथम मनुष्य आर्य बनें फिर इस विश्व-

---

+ यह वस्तुतः अकथनीय है कि एक आदमी, जो सृष्टिकर्त्ताको सारे मानवोंका पिता मानता है, किस प्रकार वर्णभेदकी भावना फैलाकर परस्पर विद्वेष और घृणाके बीज बो सकता है।

मैत्री-संघ (World Federation) के सदस्य बनें। इस मार्गसे विश्वशान्ति निश्चित है। आज भी एक तरहके विश्व-मैत्री-संघका संगठन हुआ है। जैसे आजका 'ब्रिटिश कॉमन-वेल्थ'। पर एक प्रश्न यहां उठता है कि यहां 'ब्रिटिश' शब्दकी पूंछ क्यों लगी हुई है? यही तो संकुचितवृत्ति तथा विचारोंकी सीमाका परिचायक है। संकुचितवृत्ति तथा विश्व-मैत्री दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। जैसे वह परमात्मा स्वतंत्र है, उसी प्रकार स्वतंत्रता का राज्य इस संगठनका होना चाहिए। संयुक्त-राष्ट्र-संघ (U. N. O.) को भी विश्व-मैत्री-संघ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसने भी संसारके सामने संकुचित मनोवृत्तिके कई उदाहरण पेश किए हैं। इन सब उपद्रवोंका, एक ही कारण है कि लोगोंने राजनीतिसे परमात्माको पृथक् कर दिया।

यदि संयुक्त-राष्ट्र-संघमें सभी सदस्य आर्य हों तो यह, आपसके झगडेकी नौबत ही न आये। गुण कभी विनाशकारी या गिरावटके कारण नहीं होते। पर जब गुण और दोष एक स्थान पर होते हैं तो उनमें एक प्रकारका द्वन्द्व शुरु होजाता है, और वे दोनों एक दूसरे पर विजय प्राप्त करनेका प्रयास करते हैं। वे मनुष्य जो काले और गोरेके भेदको बढावा देते हैं, क्या इस बातको भी सोचते हैं कि संसार उस एक ही पिताके सब पुत्रोंके लिए है और प्रत्येक मनुष्य अपने पिताके घर (विश्व) में कहीं पर भी रह सकता है, बशर्ते कि वह न्यायपर आधारित उस देशके नियमोंको न तोडे। कई उदाहरण ऐसे दिए जा सकते हैं जिसमें कि व्यक्तियोंको देश निकाला दे दिया गया है। आश्चर्य यह है कि ऐसी संकुचित मनोवृत्तियोंने उन्हीं देशोंमें अधिकतर जन्म लिया है, जो कि ईसामसीहके अनुयायी कहे जाते हैं।

अतः जबकि वर्तमान राजनीतिज्ञ सर्व साधारणके पिताको भूल रहे हों तो विश्व-शान्तिकी आशा कैसे की जा सकती है? सार्वभौमिक प्रेमकी बातें कहना सरल है, पर कठिनाई तब आती है जब मनुष्य उस सार्वभौमिक प्रेमके स्रोतको भूलकर अन्धकारमें मृगतृष्णाके पीछे भागने लगता है। इसीलिए वेदोंने कहा कि पहले आर्य बनो।

वेदोंके अन्य मंत्रोंमें भी सम्पत्तिके समानाधिकारका उल्लेख है।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥
यजु. ४०।१

\+ +

अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु
शवसे अपावृतम्। ऋ. १।५७।१

"लोभ मत करो, त्यागवृत्तिसे सब पदार्थोंका उपभोग करो, क्योंकि यह सारा धन उस सुखरूप परमात्माका ही है"।

मनुष्य अकेला आता है और अकेला जाता है। वह आते हुए अपने साथ कुछ नहीं लाता और जाते समय कुछ नहीं ले जाता। सारा पशु, पुत्र, सोना आदि धन उस सर्वशक्तिमान्‌का है, जिसका स्वरूप सुखमय है। वह व्यक्ति जो इस बातको जानेगा तथा व्यवहारमें लायेगा, स्वयं आनन्दमय होकर संसारमें आनन्द फैला सकेगा।

दूसरे मंत्रभागका अर्थ है "सृष्टि निर्माताका धन एक स्थान पर इकट्ठा करके रोका नहीं जा सकता। यह नदीके समान एक मनुष्यसे दूसरेके पास, एक राष्ट्रसे दूसरे राष्ट्रके पास बहता रहना चाहिए"। यदि पानीको एक जगह इकट्ठा कर दिया जाए तो वह सड जाएगा और नाना प्रकारके रोगोंको पैदा कर देगा, इसी प्रकार धन भी। यह रुकना नहीं चाहिए।

केवल वही व्यक्ति, जो वेद मन्त्रोंके उपरोक्त आशयको नहीं समझता, साम्यवादको एक हौव्वा समझता है। पर जो वेदोंके उपदेशोंका अनुसरण करता है वह कभी भी साम्यवादसे नहीं डर सकता। वैदिक धर्म आधुनिक साम्यवादके लिए अगम्य या अप्रवेशनीय है, क्योंकि वैदिक समाज वर्णाश्रम धर्मकी नींव पर टिका हुआ है, जो वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित होनेके कारण एक अभेद्य किला है। इसमें रहनेवाले मनुष्य परस्पर सहायता करके (१) अज्ञानान्धकारको हटाते हैं (२) न्यायको अक्षुण्ण बनाये रखकर दुर्बलोंका रक्षण करते हैं तथा (३) समाजसे निर्धनताको दूर करते हैं।

इसके अलावा जो साम्यवादका प्रचार करते हैं, उन्हें भी परमात्माको भूलना नहीं चाहिए। उन्हें सर्वप्रथम एक सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक शक्तिमें श्रद्धा रखनी चाहिए, तब सब ठीक हो जाएगा।

चक्रवर्ती राज्य

इस संपत्तिका समानाधिकार द्योतक एक और शब्द वैदिक भाषामें आया है "चक्रवर्ती राज्य"। यहां चक्रका तात्पर्य धर्म अथवा यज्ञके चक्रसे है। अतः वह राज्य या देश, जिसमें यह धर्मका चक्र निरन्तर घूमता रहता है, चक्रवर्ती राज्य कहाता है। महानतम चक्रवर्ती परमात्मा है, क्योंकि उसीमें सारे धर्म आश्रित रहते हैं, और उसका राज्य, जो सारा विश्व है, चक्रवर्ती राज्य है। क्योंकि सारा विश्व सत्य धर्म और यज्ञ पर टिका हुआ है। प्राचीन कालके बड़े बड़े सम्राट् इस चक्रवर्ती राज्यको अपने राज्यका आदर्श मानते थे। अशोक चक्र वस्तुतः धर्म अथवा सत्यका ही चक्र है, जिसे आज भी भारतने अपने देशका प्रतीक माना है, उसका अर्थ यह है कि भारतमें अब भी सत्य कर्म, सत्य ज्ञानकी जीवनमें मुख्यता है। इसका अर्थ बड़ा विस्तृत है, इसमें ईश्वरीय राज्यके सभी आदर्शोंका समावेश हो जाता है।

एक व्यक्ति भी चक्रवर्ती कहा जा सकता है, + जब तक कि वह धार्मिक है, क्योंकि शरीर भी जीवात्माका राज्य है। जब शरीरमें सारी इन्द्रियोंका आत्मा निग्रह कर लेता है, और उन्हें धर्मके मार्गमें प्रेरित करता है तब शरीरमें भी परमात्माका चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो जाता है।

इसी प्रकार धार्मिक होने पर एक देशको भी चक्रवर्ती कहा जा सकता है। इस प्रकार जब मनुष्य, देश अथवा देशमें धार्मिकताके कारण चक्रवर्ती राज्यकी स्थापना होगी, तो क्या विश्वमें शान्ति स्थापित नहीं होगी?

ऋषि दयानन्दका जन्म

ये सभी विचार काल्पनिक नहीं हैं। आदर्शोंकी प्राप्तिके लिए एक गंभीर प्रयत्न आवश्यक है। मैं यहां बताऊंगा कि किस प्रकार प्रयत्नोंद्वारा मनुष्य इस दिशामें प्रशिक्षित हुआ।

१८२४ सन्‌में पाश्चात्य देशोंके क्षितिजमें विश्व-शान्तिके विचारोंका प्रादुर्भाव हुआ। एक महापुरुषका भारतमें जन्म हुआ जिसने बादमें अपनी तपस्या और ज्ञानके द्वारा संसारके सामने वेदोंके सत्य विचारोंको रखा। वह महापुरुष बादमें ऋषि दयानन्द सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ×

उन्होंने आर्य समाज नामक एक संस्थाकी स्थापना की। इसमें उनका उद्देश्य था मनुष्योंको आर्य संस्कृतिके अनुसार प्रशिक्षण देना। उन्होंने इस संस्थाके लिए वेदोंके आधार पर १० नियम भी बनाये, जिनके अनुसार चलकर एक व्यक्ति सच्चे अर्थोंमें आर्य बन सकता है, । तथा एक आर्य समाज और आर्य-राष्ट्रका संगठन कर सकता है। उनका स्वप्न देशमें चक्रवर्ती राज्य लाना था। विश्व शान्तिके आधार भूत इन आर्य-समाजके सिद्धान्तोंका यहां उल्लेख करना कदाचित् अप्रासंगिक न होगा। नियम इस प्रकार हैं-

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टि-कर्त्ता है। उसीकी उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद ÷ सब सत्यविद्याओंका पुस्तक है। वेदका पढ़ना पढ़ाना, और सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।

(४) सत्यके ग्रहण करने और असत्यको छोड़नेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्यको विचार करके करने चाहिए।

(६) संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

+ यह रीति प्राचीन भारतमें थी, उदाहरणार्थ भारतके प्रथम गवर्नर-जनरल, भारत-रत्न चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य हैं। उनके पूर्वजोंको धार्मिक होनेके कारण यह उपाधि मिली थी। ये भी इसी कुलमें जन्म लेनेके कारण चक्रवर्ती हैं।

× जो पाठक इस महापुरुषके विषयमें और अधिक जानकारी चाहते हों, वे योगी अरविन्द-कृत "दयानन्द, दि मेन ऍन्ड हिज वर्क्स", "दयानन्द, फेमस आर्टीजन इन गॉड्स वर्कशॉप", तथा "सिक्रेट ऑफ दि वेदाज" रॉलेण्ड कृत "लाइफ ऑफ दयानन्द" हरबिलास शारदा कृत "लाइफ ऑफ महर्षि दयानन्द सरस्वती" आदि ग्रंथोंको पढ़ें।

÷ यहां वेदको साम्प्रदायिक नहीं मानना चाहिए। वेदका वास्तविक अर्थ और उनका स्वरूप सब पीछेके पृष्ठोंमें दिखाया जा चुका है। जो कोई इसके बारेमें और अधिक जानना चाहे, वह ऋषि दयानन्द-कृत "सत्यार्थ प्रकाश" और "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" को पढ़े।

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

(८) अविद्याका नाश और विद्याकी वृद्धि करनी चाहिए।

(९) प्रत्येकको अपनीही उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना चाहिए, अपितु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(१०) सब मनुष्योंको सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालनेमें परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियममें सब स्वतंत्र रहें।

यदि पाठक इन नियमों पर सूक्ष्म विचार करें तो उन्हें इन नियमोंकी सार्वभौमिकताका पता लग सकता है।

ऋषिने अपनी संस्थाको प्रजातंत्रात्मक प्रणालीके अनुसार चलानेके लिए इन नियमोंके अलावा कुछ उपनियम भी बनाये थे, और तब आर्य प्रजातंत्रका संविधान संग्रथित हुआ ।* मैं यहां प्रजातंत्रात्मक संविधानके विस्तारमें नहीं जाऊंगा।

ऋषि दयानन्दने अपनी दृष्टि सर्वदा वैदिक प्रजातंत्र पर आधारित चक्रवर्ती राज्य पर रखी, और उन्होंने अपने इन विचारोंका अपने ग्रंथों, अपने व्याख्यानोंमें कई बार उल्लेख भी किया। चक्रवर्ती राज्य और कुछ नहीं केवल विश्व-शान्तिके लिए आर्योंका एक मैत्री संघ था। सबीने 'अश्व-मेध' यज्ञके बारेमें सुना ही होगा, जिसे रामसे लेकर युधिष्ठिर तक अनेक सम्राटोंने किया। वह सब राष्ट्रोंके लिए निमंत्रण होता था कि वे विश्वमें शान्तिकी स्थापनाके लिए तथा विश्व-मैत्री-संघके संगठनके लिए अपने-अपने प्रतिनिधि भेजें। 'अश्व' का अर्थ है राष्ट्र और 'मेध' का अर्थ है एकता अर्थात् सब राष्ट्रोंको एक सूत्रमें बांधना ही 'अश्वमेध' है। ×

यहां एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि राष्ट्रोंका संगठन ही अश्वमेध है, तो आज कल संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य राष्ट्र जो विश्व शान्तिके लिए प्रयास कर रहे हैं, अश्वमेध कर ही रहे हैं, फिर इसकी व्याख्याकी क्या जरूरत? इसका उत्तर है कि यद्यपि यह कथन ठीक है, पर चूंकि इनका कार्यक्रम वैदिक नहीं है, इसलिए इन्हें अपने कार्यमें सफलता नहीं मिल पा रही। इनका आदर्श उत्तम हो सकता है पर इनका मार्ग इनको वहां तक नहीं पहुंचाता। राजनीति और धर्मका सह-गमन होना चाहिये। इनके सहयोगके बिना एक राजनीतिज्ञ बेपेंदीका लोटा हो जाता है, उसका कोई सिद्धान्त नहीं रह जाता और अन्ततः वह अपने देशको गर्तमें गिरा देता है। इतिहास ऐसे उदाहरणोंसे भरा पड़ा है।

दयानन्द भी प्राचीन कालके गौतम, कणाद, जैमिनी आदि ऋषियोंके समान थे, जिन्होंने यह देख लिया था कि जब तक मनुष्य वैदिक-पथ पर चलकर स्वयंको आर्य नहीं बना लेंगे, तब तक विश्वशान्तिका विचार एक मृगतृष्णा ही है। भारतने शान्तिकी रक्षा करते हुए समस्त संसारकी सेवा की। यह सेवा सृष्टिसे लेकर आजसे ५००० वर्ष पहले तक चलती रही, पर दुर्भाग्यसे महाभारतके संग्रामके कारण हमारे भारतके टुकडे हो गए और यह अपना उच्च स्थान खो बैठा। महान् सम्राट् मनु कहता है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

"विश्वके सब भागोंसे मनुष्य अपने चरित्र तथा व्यवहारकी शिक्षा लेनेके लिए भारतमें आया करते थे"। ऐसा महान् भारत, दो सम्राट् भाइयोंमें साम्राज्यके लिए होनेवाले महाभारत संग्रामके कारण, आज इस नीच स्थितिको पहुंच गया। यह केवल वैदिक मार्गका अनुसरण न करनेके कारण ही हुआ। जो कुछ भारतके विषयमें सत्य है, वही दूसरे राष्ट्रोंके विषयमें भी। पर भारत फिर दुबारा ऊंचा उठकर दूसरे देशोंको मार्ग दिखा सकता है बशर्ते कि वह धनको ही परमात्मा माननेवाले राष्ट्रोंके पीछे न चलकर वैदिक मार्ग पर चले। धन सम्पत्ति शाश्वत यश नहीं प्राप्त करा सकती, मनुष्य अपने श्रेष्ठ गुणोंके कारण ही संसारमें शाश्वत यश पा सकता है। (क्रमशः)

* वेदोंमें प्रजातंत्रके लिए भी हिदायतें हैं। प्राचीन भारतमें इस प्रणालीका प्रचलन था। देखो–मनुस्मृति, रामायण, कौटिल्य अर्थशास्त्र इत्यादि।

× मध्यकालके भाष्यकारोंने इस उत्तम शब्दका विकृत अर्थ कर दिया। उन्होंने 'अश्वमेध' का अर्थ किया 'यज्ञ में घोडा काटकर डालना'। यह उनका अर्थ वैदिक-भाषाशास्त्र तथा वैदिक-इतिहासके प्रति उनकी अज्ञानताका ही निदर्शक है

राष्ट्रीय एकताके वैदिक उपाय

(लेखक— श्री मनोहर विद्यालंकार)

★

" पराधीन सपनेहु सुख नाहीं " की गहन अनुभूतिके बाद, हम अपने नेताओंके आदेशानुसार, १९४७ से पूर्व " व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये " ऋ. ५।६६।६ वेदके अनुसार बहुजनों द्वारा रक्षणीय अत्यन्त विस्तृत स्वराज्यके लिये प्रयत्न कर रहे थे। उस समय हमारे राष्ट्रका एक मात्र लक्ष्य स्वराज्य प्राप्ति था। हम अपने शत्रुको निकालनेमें लगे थे, इस लिये हमें राष्ट्रीय एकताके महत्वकी वास्तविक अनुभूति नहीं हुई थी।

१५ अगस्त १९४७ के बाद स्वराज्य प्राप्तिके साथ ही हम पर बहुत बडा उत्तरदायित्व आ गया। अपने राष्ट्रकी रक्षा उसकी स्थिति तथा प्रतिष्ठाको बनानेकी समस्या थी। हमारे राष्ट्रके कर्णधारोंने अपनी समझके अनुसार ईमानदारीसे इसके लिये प्रयत्न किया।

राष्ट्रके शत्रु

इसी बीच बाह्य व आभ्यन्तर शत्रुओंका प्रादुर्भाव हुआ। बाह्य शत्रु हमारी सीमाओं पर उपद्रव तथा अतिक्रमण करने लगे। कुछ अनुचित रूपसे हमारे प्रदेश पर कब्जा किये बैठे रहे; और हमें कानूनी दांवपेंचकी उलझनमें फंसाए रहे।

आभ्यन्तर शत्रु दो प्रकारके हैं। एक वे जो इस देशको अपनी मातृभूमि नहीं मानते। अपने आदर्श व आदेश सुदूर देशोंसे प्राप्त करते हैं। दूसरे वे जो इस देशको (माता भूमिः) तो मानते हैं। किन्तु अपने तुच्छ स्वार्थोंके कारण राष्ट्र भावनाकी उपेक्षाकर प्रादेशिक, भाषायी, साम्प्रदायिक, कौटुम्बिक, वैयक्तिक उन्नतिके मोह जालमें फंस जाते हैं। वे (त्यजेदेकं कुलस्यार्थे) की भावनाके बिलकुल उलटी दिशामें चल पडे हैं। प्रदेशके लिये राष्ट्रकी और सम्प्रदायके लिये प्रदेशकी, तथा कुटुम्बके लिये सम्प्रदायकी और अपने लिये कुटुम्बकी भी परवाह नहीं करते।

राष्ट्रीय एकता

इन दोनों प्रकारके शत्रुओंको देखकर ही देशके विचारशील बुद्धिजीवी व्यक्तियोंमें राष्ट्रीय एकताको जागृत करनेकी भावना उत्पन्न हुई।

वेदमें स्वराज्यके दो विशेषण दिये हैं। एक बहुपाय्ये — बहुत जनों द्वारा रक्षणीय; किसी भी राष्ट्रकी थोडेसे चुने हुए लोग, सरकार या सैनिक रक्षा नहीं कर सकते। राष्ट्रकी स्वराज्यकी रक्षा तो सारा देश अर्थात् देशका प्रत्येक व्यक्ति देशभक्तिसे ओत प्रोत होकर ही कर सकता है।

स्वराज्य प्राप्त करनेके लिये, प्रत्येक व्यक्तिमें देशभक्तिकी भावना अनिवार्य नहीं है। हमारी स्वराज्य प्राप्ति इसका उदाहरण है। बहुतसे देशवासी द्रोह कर रहे थे, फिर भी कुछ सौ महापुरुषों और कुछ लाख देश भक्तोंके प्रयत्नसे परिस्थितिवश हमने स्वराज्य प्राप्त कर लिया।

किन्तु इस प्राप्त किये हुए स्वराज्यकी रक्षा, राष्ट्रकी प्रतिष्ठा और पुनः किसीके आधीन न होनेकी प्रतिज्ञा कुछ सौ महापुरुषों और कुछ लाख देश भक्तोंके बसकी बात नहीं। इनके लिये तो देशका प्रत्येक व्यक्ति देश भक्तिसे ओत प्रोत होना चाहिये। वेदमें इसी लिये स्वराज्यको बहुपाय्य कहा है। इसकी रक्षाके लिये प्रत्येकका सक्रिय सहयोग अपेक्षित है। यदि थोडेसे लोग भी देशद्रोह करनेवाले हों, और राष्ट्रके कर्णधार उनकी उपेक्षा कर दें; इतने प्रयत्न, परिश्रम और बलिदानके अनन्तर प्राप्त किया हुआ स्वराज्य, कुछ समयमें नष्ट व छिन्न भिन्न हो जाएगा।

इस लिये इस समय स्वराज्य प्राप्त करनेसे पूर्वकी अवस्थाकी अपेक्षा कहीं अधिक जागरूक होनेकी आवश्यकता है। देशके प्रत्येक व्यक्तिमें देशभक्तिकी, राष्ट्रीय एकताकी भावनाको कूट कूट कर भरनेकी जरूरत है।

यह वह अन्तरिम काल है, जिस कालमें एक विश्व मानव कल्याण, जैसे मोहक और मधुर शब्दोंके जालमें न फंसकर अपने देश, मातृभूमिकी रक्षाके लिये प्रत्येक देशवासीको कटिबद्ध रहना चाहिये।

इस समय अन्तः-राष्ट्रीय ख्याति या प्रतिष्ठाके मोह जालमें न फंसकर देशके आभ्यन्तरमें शक्ति और शुद्धि करनेकी जरूरत है। जो स्वयं शुद्ध और सशक्त नहीं, वह दूसरोंकी क्या भलाई कर सकता है?

वेदमें स्वराज्यका दूसरा विशेषण व्यचिष्ठ दिया है। इस शब्दका अर्थ है बहुत विस्तृत। विस्तृत शब्दको क्षेत्रकी दृष्टिसे लेकर विशाल प्रदेश अर्थ भी किया जा सकता है; किन्तु इसका वास्तविक अर्थ है बहुविध विस्तृत अर्थात् राजनैतिक आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक, भौगोलिक आदि नाना दृष्टियोंसे स्वात्मनिर्भर होना।

अभीतक हमने बड़ा संकुचित स्वराज्य प्राप्त किया है। विस्तृत स्वराज्य प्राप्त करनेके लिये हमें आत्मिक मानसिक, सांस्कृतिक व आर्थिक दृष्टियोंसे, विचारों और भाषाकी दृष्टिसे तथा वेशभूषा और रहन सहनकी दृष्टिसे भी स्वतन्त्र होनेकी आवश्यकता है। इसके साथ ही अन्न और वस्त्रकी दृष्टिसे आत्मनिर्भर हुए बिना भी हमारी स्वतन्त्रता अधूरी ही रहेगी।

इसलिये इस बहुपाय्य स्वराज्य को व्यचिष्ठ बनानेके लिये आवश्यक है कि हमारा सारा राष्ट्र, राष्ट्रीय एकताकी भावनासे ओत प्रोत हो।

वेद प्रतिपादित कर्तव्य

वेदके शब्दोंमें ' माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः ' अथर्व १२-१-१२ इस प्रतिज्ञाको राष्ट्रका प्रत्येक व्यक्ति घोषणा सहित, निम्न लिखित रूपमें ग्रहण करे—

यह भारत भूमि मेरी माता है। मैं इसका पुत्र हूं। इसके प्रति पुत्रवत् आस्था रखता हूं। यदि मेरे आचरण या वाणीसे इस प्रतिज्ञाके प्रतिकूल कोई बात सिद्ध होगी, तो मैं राष्ट्र द्वारा नियत प्रत्येक दण्ड ग्रहण करनेको उद्यत रहूंगा।

जो व्यक्ति इस प्रतिज्ञाको तोड़ता है, उसको देशका आभ्यन्तर शत्रु मानकर उसके साथ बिना रियायतके उचित व्यवहार किया जाए अर्थात् उसे मृत्युदण्ड या आजन्म कालकोठरी दी जाए। अथर्ववेदमें ' मामीषां मोचि कश्चन ' अथर्व ३-१९-८ कहा है कि अपने शत्रुओंमेंसे कोई भी बचने न पावे। किसी भी सिफारिश या लिहाजके कारण उसके साथ कोई रियायत या सहानुभूति पूर्ण व्यवहार नहीं किया जाना चाहिये। अन्यथा ऐसे एक भी उदाहरणसे जन साधारणका मन उद्विग्न एवं देशद्रोही बननेकी प्रवृत्तिवाला बन जाता है। इस विषयमें वेदका स्पष्ट निर्देश है कि बाह्य व आभ्यन्तर दोनों शत्रुओंके साथ किसी प्रकारकी रियायत नहीं होनी चाहिये। निम्न मन्त्रको देखिये—

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन। तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥ अथर्व १२-१-१४

वेदके अनुसार देशके सब शत्रु उपरोक्त विभाजनके अन्तर्गत आजाते हैं।

(१) पृतन्यात्— जो हम पर सेनाओं द्वारा आक्रमण करना चाहता है, इस श्रेणीमें चीन और पाकिस्तान आते हैं।

(२) अभिदासात्— जो हमें दास बनाना चाहते हैं; इस श्रेणीमें बड़े बड़े ऋण देनेवाले रूस व अमेरीकाका ग्रहण किया जा सकता है।

(३) द्वेषत्— जो हमसे मन ही मन द्वेष करके हमें नीचा दिखाना चाहते हैं। इस श्रेणीमें इंगलेण्ड जैसे देश आते हैं। तथा आभ्यन्तर द्रोही कम्यूनिस्ट तथा मुस्लिम सम्प्रदाय, जो विदेशको अपना तीर्थ या आदर्श मानकर उधर टकटकी लगाए रहते हैं, वे भी हमारे द्वेषी हैं।

(४) रन्धय पूर्व कृत्वरि— उपरोक्त प्रकारके शत्रुओंको तू रौंद दे- नष्ट कर दे क्योंकि तू पहिले भी ऐसा करती रही है। यह तो तेरा स्वभाव है। अभी अभी तूने पुर्तगालको दण्ड दिया है और पहिले हैदराबाद तथा जूनागढको उचित पाठ पढाया था।

उपरोक्त प्रकारसे दण्ड दिये बिना, बाह्य व आभ्यन्तर शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न किये बिना राष्ट्रीय एकताकी स्थापना संभव नहीं है।

इसलिये राष्ट्रीय सरकारका सबसे मुख्य व प्रथम कर्तव्य यह है कि वह केवल शान्ति, सह-अस्तित्व और पंचशील जैसे मोहक शब्दोंके जालमें न पड़े। राज्यका सुचारू रूपसे नियममें चलाने व राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको कायम रखनेके लिये- स्वार्थी देशद्रोहियोंको कठोर दण्ड तथा शत्रुओंका संहार अनिवार्य है। अन्यथा देशद्रोही व शत्रु प्रबल हो जाते हैं और राज्य व राष्ट्रकी रक्षाको खतरा पैदा हो जाता है।

राष्ट्रीय एकता

उपरोक्त बातें पृष्ठ भूमि मात्र हैं। यदि हम वास्तवमें राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करना चाहते हैं, अपने राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिको देशभक्त बनाना चाहते हैं, राष्ट्रमें व्याप्त दुराचार भ्रष्टाचार, स्वार्थ और संकुचित मनोवृत्तिको दूर करना चाहते हैं, तो आवश्यक है कि हम देशमें नैतिकताके स्तरको

ऊंचा करें। नैतिक स्तर सुधरे बिना राष्ट्रीय एकता असंभव है।

राष्ट्रीय एकताको लाने या नैतिक स्तरको ऊंचा करनेके लिये महान् त्याग आवश्यक है। इतना महान् त्याग जो स्वराज्य प्राप्तिके लिये किये गए त्यागसे भी ऊंचा है। क्योंकि वह त्याग आचारीका त्याग था। यह त्याग स्वेच्छासे त्याग होना चाहिये।

उपदेश या आदर्श आचरण

इस त्याग, एकता और नैतिकताकी भावनाको भरनेके लिये उपदेशों, व्याख्यानों, उद्घाटनों और चुनावोंकी जीतसे काम नहीं चलेगा। इसके लिये हमारे नेताओंको आदर्श पेश करना होगा।

वर्तमान समयमें हमारे नेता समझते हैं कि उन्हें केवल उपदेश देना है, त्याग तो दूसरोंको या जनताको करना है। जब तक इस स्थितिमें परिवर्तन नहीं होगा, तब तक राष्ट्रीय एकता और नैतिकताके ये सम्मेलन निरर्थक हैं।

जहां भी जो नेता है, वह आदर्श उपस्थित करे। व्याख्यान न दे अपने आचरणसे प्रेरणा दे। बोले नहीं, मौन रहे और अनुमान या अनुभव करें कि हमें प्रतिक्षण उपदेश दिया जा रहा है।

हमारे वर्तमान नेता आज तक उपदेश कर रहे हैं। आचरण नहीं कर रहे। आवश्यकता है कि इनमें परिवर्तन किया जाए। परिवर्तन दो प्रकार संभव है— इनको अपने आचरणमें परिवर्तन करनेके लिये बाध्य किया जाए; अन्यथा इन्हें ही बदल दिया जाए।

वेदके शब्दोंमें—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षातपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। अथर्व. १२।१

सत्य, उदारता, सरलता अथवा नियम पालन, दुष्टोंके प्रति उग्रता, ध्येयकी साधनामें मनोनियोगपूर्वक निरत रहना, सुख दुःख तथा शीतोष्ण द्वन्द्वोंको सहन करनेकी शक्ति, ज्ञान और (यज्ञ) सामूहिक कार्यकी सिद्धिके लिये स्वार्थोंका बलिदान— ये आठ गुण— मातृभूमि या राष्ट्रका धारण करते हैं। यदि हम राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करना चाहते हैं, तो हमें अपने नागरिकोंमें ये गुण उत्पन्न करने होंगे।

अपनी शिक्षा और अपने नेताओंके स्तर व आदर्शको बदलना होगा। दूसरे देशोंकी अनुचित नकलको छोडना होगा। अपने देशकी परिस्थितियों, वातावरण भौगोलिक परिस्थिति, तथा सदियोंसे जन मानसमें दृढ जमे हुए संस्कारोंको ध्यानमें रखते हुए अपनी संस्कृतिके अनुल भण्डारमेंसे ग्राह्यको ढूंढ कर उसे जनताके सामने रखने और प्रेरणाका स्रोत बनानेकी आवश्यकता है।

पंचवर्षीय योजनाएं उपयोगी हैं। इनसे लाभ होगा। इनके अनुसार कार्य लक्ष्यको पूरा किये बिना वर्तमान भौतिक युगकी दौडमें दूसरे देशोंके साथ कदमसे कदम मिलाकर चलना संभव नहीं होगा। लेकिन इससे भी पहिले इन योजनाओंको सुचारूरूपसे पूरा करनेके लिये भी चरित्रके निर्माणकी जरूरत है। इसके बिना राष्ट्रीय एकता अथवा राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको कायम रखना असंभव है।

मनोहर विद्यालंकार

२५-१२-६१

राष्ट्रीय एकता सम्मेलनमें पठित तथा उसके सभापति श्री नीहारेन्दुदत्त मजूमदार द्वारा प्रशंसित। ● ● ●

भूल सुधार

वैदिक धर्मके फरवरी अंकमें एक किसी सज्जनके पत्रके आधार पर एक सूचना प्रकाशित हुई थी, कि ' रूसमें गायों का बडा महत्त्व है। वहां गायें नहीं काटी जातीं इत्यादि '। पर जब हमने भारतस्थित रशियन दूतावाससे इस विषयमें पत्र व्यवहार किया तो दूतावाससे हमें निम्न लिखित पत्र प्राप्त हुआ—

' हमारे आदमी (रशियन्स) गायकी पूजा नहीं करते। सोवियत प्रजा गायका मांस खाना पसन्द करती है और इसे गायके मांस खानेमें कोई संकोच नहीं है। '

सूचना विभाग, रशियन दूतावास

अतः पाठक गण अपनी भूलें सुधार लें। [सम्पादक]

हरेक राष्ट्र इस संकीर्ण दृष्टि कोणसे परमात्माके अंश मात्रको अपनेमें देख उतना ही वैसा मानता है, परन्तु दूसरोंमें नहीं देखता। ब्राह्मण लोग इसे परब्रह्म कहते हैं, यूनानमें दूसरा नाम है, मिश्रमें कुछ और इसी प्रकार सर्वत्र परमात्मा भेद रूपसे जाना जाता है, उसके मूल रूप मूल तत्वको कोई नहीं देखता, जानता। लोग परमात्मासे डरने लगते हैं, उसे भयानक बदला लेनेवाला शत्रुके समान देखते हैं, तब वे दूसरे मनुष्योंको विशेष आभूषण पहना कर इसे पुजारी बनाते हैं, परमात्मासे प्रार्थना करो, हमारा कष्ट दूर कर दो, हम बलि भेंट पूजा देंगे।

जब मनुष्य परमात्माके साथ आत्म साम्य अनुभव कर लेता है तो इसे दलालकी क्या जरूरत? इसे किसी माध्यम पण्डे पण्डित पुजारीकी आवश्यकता नहीं होती। अतएव अपने अपने लिये तुम सब लोग स्वयं पुजारी हो।

इतना कह यीशु अलग हुए। सब कुछ सुनकर किसीने कहा यह अवतारी पुरुष मालूम होता है। किसीने कहा पागल है। किसीने कहा— भूत लगा है। यह तो प्रेतके समान नयी नयी बातें करता है, मनुष्यके शरीरमें आकर।

यीशु वहांसे एक मजदूरके साथ चल दिये और इसीके अतिथि रहे।

अजैनिन लाहौरका एक पुजारी था, सौदागरोंसे उसने यीशुकी प्रशंसा सुनी थी अतएव अजैनिन यीशुसे सत्संग करने बनारस आया था, किसी मन्दिरमें ठहरा हुआ था। महावैद्य उद्रकके महभोजमें यीशुने जो भाषण दिया था उससे बनारसके धर्माचार्य लोग खिन्न थे, वे यीशुके उपदेशों, सिद्धान्तोंसे सहमत न थे। वे यीशुसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे, अतएव यीशुको उन्होंने एक मन्दिरमें आमन्त्रित किया।

यीशुने कहला भेजा परमात्मा प्रेरित सन्देश और दिव्य ज्ञान तुम मुझसे सुनना चाहते हो तो मेरे ही पास आओ। जिन्हें प्रकाश चाहिये उन्हें प्रकाशमें आना चाहिये।

यह सुन पण्डित लोग अहंकार जान यीशुसे और भी क्रुद्ध हुए। अजैनिनमें क्रोध न हुआ, वह सत्यका जिज्ञासु था। उत्सुकता पूर्वक इसने अपने विशेष भृत्य द्वारा कुछ बहुमूल्य द्रव्य उपहार स्वरूप यीशुके पास इस किसान मजदूरके यहां भेजकर निम्न आशयका पत्र भेजा– 'महात्मन्! सादर निवेदन है कि ब्राह्मण विधानके अनुसार हम किसी निम्न श्रेणी (नीच जाति) के व्यक्तिके घर जानेमें वर्जित हैं, परंतु आप हमारे यहां पधार सकते हैं। मैं निश्चय पूर्वक कहता हूं कि पण्डित लोग यहां पर आपका प्रवचन सुनेंगे। मेरी प्रार्थना है कि आज आप पधार कर यहां भोजन करें।'

इस पर यीशुने उत्तर दिया– पवित्रात्माके लिए सब मनुष्य एक समान हैं। मैं जिनका अतिथि हूं इनका स्थान सबके लिए तीर्थवत् पवित्र है और प्रवचन सुनने योग्य है। यदि तुम उच्च जातिके होनेके कारण दूर भागते हो तो प्रकाशमें आनेके अधिकारी नहीं हो। मेरा परमपिता परमात्मा मनुष्यों द्वारा बनाये गये विधानकी परवाह नहीं करता। अतएव तुम्हारी भेजी हुई अमूल्य भेंटको मैं वापस करता हूं। इस बहुमूल्य उपहारसे तुम दिव्य ज्ञान नहीं खरीद सकते।

यीशुके इस उत्तरसे पण्डित लोग और भी भडके और यीशुको वहांसे भगानेका षड्यंत्र रचने लगे। अजैनिन षड्यंत्रियोंमें न सम्मिलित होकर रातको उस किसानके घर पहुंचा जहां यीशु अतिथि थे। तब यीशुने कहा इस समय तो रात है, तुमसे कोई गुप्त बातें तो करना नहीं है, न गुप्त साधन बताना है, जब दिन होगा तब सब बातें होंगी।

अजैनिनने निवेदन किया, मैं तो बहुत दूरसे, लाहौरसे आया हूं, आपका दिव्य उपदेश सुनने।

यीशु बोले– परन्तु परमात्मा तो दूर नहीं है, तुम्हारे ही भीतर, रोम रोममें है, पर तुम देखते नहीं। परमात्माको पृथ्वी पर सर्वत्र, सागरमें, आसमानमें यहां वहां खोजनेकी आवश्यकता नहीं। इस परमात्मराज्यमें तुम वैभव और वासनाएं लेकर प्रवेश नहीं कर सकते, नम्र होकर, विकारहीन होकर, अहंकारहीन होकर, अभेद प्रेम भावनासे प्रवेश करना होगा। वह विश्व प्रेमका महालोक है। तुम्हारा शरीर और मन पवित्र हो, अहंकारसे छूटकर तुम परमात्मामें तल्लीन हो जाओ। पुजारीका आडम्बरमय भेष उतार फेंको द्रव्यके लोभसे यह मत करो। अपना जीवन लोक सेवाके हित स्वेच्छासे अर्पण कर दो।

अजैनिन वापस हुआ, मान गया, श्रद्धा और विश्वबन्धुत्वका बीज मनमें जम गया, लाहौर लौट गया। यीशु बनारसमें ही रम रहे।

वहीं पर

एक दिन यीशु जब गंगा किनारे प्रवचन कर रहे थे, तो पश्चिमसे आनेवाले सौदागरोंमेंसे एक इन्हें ढूंढता हुआ वहां आया और उसने यीशुसे कहा–मैं तुम्हारे देशसे ही आ रहा हूं और तुम्हारे लिए दुःखकर समाचार लाया हूं। तुम्हारे पिताका देहावसान हो गया, इससे तुम्हारी माता दुःखी है कोई सान्त्वना देनेवाला नहीं है। वह यह भी नहीं जानती कि तुम जिन्दा हो या नहीं। वह तुम्हें देखनेको तडप रही है।

यह समाचार सुन यीशु सिर झुकाकर कुछ देरतक मौन रहे फिर एक पत्र लिखकर उस सौदागरको दे दिया, उस पत्रका आशय इस प्रकार है।

' नारी रत्न, मेरी माता! एक व्यक्ति हमारे देशसे अभी आया है उसने समाचार सुनाया है कि पिता जीका शरीर अब नहीं रहा, और तुम दुःखी हो। मेरी मां, जो कुछ हुआ सो ठीक ही है, उसे हम तुम या कोई रोक नहीं सकता पिताजीके लिए और तुम्हारे लिए वह ठीक ही हुआ। इस संसारमें उनका कर्त्तव्य उनने भलीभांति पूर्ण किया। जीवनके किसी भी क्षेत्रमें कोई भी व्यक्ति उनपर बेईमानी धोखा या किसी दुष्कर्मका आरोप नहीं लगा सकता। इह लोकका कार्य पूरा करके वे आत्मलोकमें चले गये, वहां परलोकमें उनकी आवश्यकता थी।

परमात्मा उनके साथ है, जैसे परमात्मा यहां, वैसे वहां भी है। तुम क्यों रोती हो? रोनेसे दुःखका अन्त नहीं होता रोनेसे फटा हुआ हृदय नहीं बन सकता। बेकार बैठे रहनेसे दुःख याद आता है। काम करनेवालेको दुःख कहां? उसे कामसे फुरसत नहीं, कब रोवे जब तुम पर दुःखका बादल आवे तो अनात्म हो जाओ, अहंकार छोड दो, प्रेममें डूब जाओ, दुःख नष्ट हो जायगा। तुम्हारा जीवन प्रेम मय है, संसारमें प्रेमकी सबसे अधिक मांग है। जो हो गया, बीत गया उसे भूल जाओ। मुर्दोंकी याद छोड दो, जो जीवित हैं उनकी सुध लो। यदि तुम इतना त्याग कर सको तो नित्य तुम्हारे जीवनमें प्रभात ही बना रहेगा। तुम पक्षियोंका सौन्दर्य गान सुनो, पुष्पोंका सौन्दर्य, तारोंकी सुंदर चमक देखो। इह लोककी संकीर्णताको चीर कर तुम्हारी आत्मा विशाल हो जायगी संसारमें तुम बडे काम कर सकोगी। धैर्य और सन्तोष रखो, मैं भी कुछ ही दिनोंमें तुम्हारे पास वापस आ जाऊंगा और स्वर्गसे भी बहु मूल्य सम्पत्ति साथ लाऊंगा। मुझे निश्चय है कि योहन तुम्हारी सुध लेता होगा और सहायता देता होगा। '

यह पत्र उन्होंने जेरुसलम जानेवाले सौदागरके साथ भेज दिया।

मुसीबत !

जन साधारणमें यीशुके दिव्य सम्यवादी उपदेशोंका खूब प्रभाव पडा, वे यीशुकी कद्र करते थे, परंतु पण्डितोंमें बडी अशांति फैली। शासक समुदायमें भी कुछ शंका हुई क्योंकि यीशुके अनुयायियोंका समाज संगठित होता जा रहा था। यीशु कहते थे– सब मनुष्य भाई भाई हैं, सबका अधिकार सम है, पण्डित पुजारी दलालोंकी कोई आवश्यता नहीं, और परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए जीवहत्या करके बलिदान भेंट पूजा करना व्यर्थ और पाप है। ब्राह्मणके प्रचलित स्वार्थी व्यवस्था और ढोंगका वे विरोध करते थे, जैसा कि जेरुसलममें।

यह सब देख सुन जानकर पण्डित वर्गने घोषित किया कि यदि यह यहूदी लडका इस देशमें अधिक काल तक रहेगा तो इसके संगठनसे संघर्ष होगा क्रांति होगी। इसके उपदेशोंसे जन साधारणका उत्कर्ष होगा तो वे पण्डित पुजारियोंको मारकर मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा भी नष्ट करेंगे। अतएव सब पण्डितोंने दूर देशोंके पण्डितों और आचार्योंको निमंत्रित कर एक बृहत् समारंभ किया। ऐसे अवसर पर ब्राह्मण पण्डितोंके हृदयमें ज्वाला भडक रही थी। लोमस ऋषीसे साथ था, यीशुके अन्तरंग जीवनसे खूब परिचित था, बीच बचाव किया करता था। उसने पण्डितोंका उद्वेग जान कर उन्हें संबोधित किया– भाइयों, सचेत हो जाओ, जो कुछ करो, सोच समझ कर करो, आजका दिन अग्नि परीक्षाका है, और ब्राह्मण विद्वान्की परीक्षा है, यदि तर्कान्ध होकर पक्षपात करते हो, पशु बलका प्रयोग करते हो अपने हाथ रक्तरंजित करते हो तो यह सब छोडकर ब्रह्मरूप होकर अपना हृदय निर्दोष और शुद्ध करो, अन्यथा इसका परिणाम उलटा होगा। पण्डित व्यवस्था मिट जायगी, हमारा विधान तथा मन्दिर टूट जायंगे।

परंतु पण्डितोंने कोमशकी बात न सुनी, उसे न बोलने दिया क्रोध कर उससे झगडने लगे। इसे देशद्रोही कहकर धक्के देकर सडक पर फेंक दिया, उस पर थूका, उसके शरीरसे रक्त बह रहा था। ब्राह्मण लोग एकत्रित हुए बलवेकी संभावना देख शासक वर्गने यीशुका पता लगाया तो वे एक बाजारमें उपदेश दे रहे थे। शासकोंने कहा, आप अपनी जान बचाना चाहते हैं तो यहांसे चले जाइये। परंतु यीशुने इन्कार कर दिया। पण्डितोंने यीशुको गिरफ्तार कराकर कारागार भिजवानेका उपाय खोजा परंतु यीशुके विरुद्ध कोई अपराध न सिद्ध हुआ। फिर उन पर झूठे आरोप लगाये, सैनिकोंको भेजा कि यीशुको पकड लाओ, जब सैनिक पकडने गये तो भयभीत हुए क्योंकि यीशुके पक्षमें जन समुदाय खडा था। यह देखकर पण्डितोंको विस्मय हुआ और उन्होंने चुपचाप यीशुकी हत्याका षडयन्त्र रचा। एक ऐसे आदमीकी खोज हुई जो धन लेकर दूसरोंकी हत्या करके जीवन निर्वाह करता था। इस व्यक्तिको रातको यीशु की हत्या करनेका आदेश दिया गया।

कोमशको यह सब षडयंत्र मालूम होगया और उसने यीशुके पास सन्देश भेजा कि अब यहांसे भागना चाहिए। रातको यीशुने बनारस छोड दिया। वे भाषण करते, किसानों मजदूरों, वैश्यों और शूद्रोंमें उपदेश करते हुए उत्तरकी ओर चलते बहुत दिनों बाद हिमालयकी तराईमें कपिलवस्तु पहुंचे। वहां बौद्ध पण्डितोंने उनका स्वागत किया और एक मन्दिरमें ठहराया।

कपिल वस्तुमें

बुद्ध पण्डितोंमें भरत एक व्यक्ति था जिससे यीशुकी मित्रता होगयी। दोनों मित्र यहूदियोंके काव्य, वेद, अवस्था और बुद्ध दर्शनका गंभीर अध्ययन करते। परस्पर अध्ययनके समय एक दिन भरतने कहा- मनुष्य इस लोकका रहस्यमय प्राणी है, परमात्माकी अमूत पूर्व रचना है इसका जीवन प्रत्येक क्षेत्रमें व्याप्त है, वह सर्वत्र गतिशील है। एक समय था जब मनुष्यका निर्माण नहीं हुआ था, वह सूक्ष्मके गर्भमें था, फिर वह कीटाणु बना, उसका विकास हुआ, वह कीट बना, सर्प इत्यादिके बाद वह पक्षी, पशुसे होते हुए क्रमशः मनुष्य बना। मनुष्य मन है, वह क्रमशः विकास करता जाता है, ऐसा समय आवेगा कि सभी प्राणी विकसित होकर पूर्ण मनुष्य बन जायंगे, जब मनुष्य मनुष्य बन जायगा तब आगे विकास करेगा, अन्य रूप धारण करेगा।

यीशुने यह सुनकर पूछा-भरत तुम्हें यह ज्ञान किसने दिया? भरतने कहा-हमारे प्राचीन विद्वानोंने ये बातें बतायी हैं। यीशुने कहा-मनुष्य दूसरोंसे सुनकर विश्वास करता है, स्वयं नहीं जानता, यदि मनुष्यको ज्ञान हो जाय तो वह ज्ञान स्वरूप हो जाय। बताओ क्या तुम्हें याद है कि तुम कब वानर पक्षी या कीटके रूपमें कहां थे? यदि तुम्हें नहीं मालूम, केवल प्राचीन पण्डितोंके आधार पर मानते हो तो तुम कुछ नहीं हो। दूसरोंकी बात मत मानो। मनुष्य सदैवसे है, ऐसा कोई समय न होगा कि वह न रहे। जिसका आदि होता है उसका अन्त भी होता है।

परमात्माके प्राण रूप तीन तत्वोंसे सात तत्व हुए और उन्हींसे सब रूप हुए सात तत्व सात रंगके प्रकाश हैं वे अपने अपने पृथक् पृथक् लोकोंमें पृथक् कार्य करते हैं। सक्षम प्राणियोंने दूसरोंका भक्षण कर निर्वाह करना आरंभ किया, तो मनुष्य भी बेशरम हो गया, वह अन्य जीवोंको मारकर खाने लगा। जिस प्रकार पशु घास वनस्पति खाते हैं, घास पृथ्वी तत्वका शोषण करती है आत्माके विकास क्रममें यह बात नहीं है। परमात्माका संकल्प नहीं बदलता, प्रत्येक रूप अपनी पूर्णताकी ओर विकसित हो रहा है। परमात्माका संकल्प अमर अविनाशी है, अतएव प्रत्येक प्राणी परमात्माका संकल्प है, अमर है।

भरत यह सुनकर चकित हुआ। विद्यापति कपिलवस्तु का महा साधु था, उसने यह वार्ता सुनी और कपिल वस्तुके नगर वासियोंसे बडी प्रशंसाकी।

यीशु एक दिन एक स्रोतके निकट मौन, आंख बंद किये बैठे थे। कोई पर्वका दिन था, वहां पर शूद्रोंका मेला था। यीशुने वहां जन समुदायको देखा, सबके कपाल पर परिश्रमकी रेखा थी। उनकी मुद्रा क्लान्त, मुर्झायी थी, कोई प्रसन्न न था। यीशुने एक मजदूरसे पूछा-तुम लोग इतने उदास क्यों? क्या तुम सुखी नहीं हो?

वह मजदूर बोला- सुख शब्दका अर्थ हम नहीं जानते सुख तो बहुत दूरकी बात है, हम केवल परिश्रम करनेके लिए ही जीते हैं, परिश्रमके अतिरिक्त हम कुछ भी नहीं

विचारते। परिश्रमके अतिरिक्त हम जीवनमें किसी अन्य बातकी आशा नहीं रखते। वह दिन धन्य होगा जब परिश्रमसे मुक्त होकर बुद्धके इस मृत्युलोकमें सदाके लिए चिरस्थायी अचेत हो जायंगे।

मजदूरका यह उत्तर सुन यीशुका हृदय करुणा और सहानुभूतिसे भर गया। वे बोले- परिश्रमसे दुःखी नहीं होना चाहिये। परिश्रम करते समय मन प्रसन्न रहना चाहिये, परिश्रमके साथ आशा, प्रसन्नता रहे तो जीवन आनन्दमय हो जाय, विचार और वृत्तिमें ही शांति सुख और स्वर्ग है। परिश्रम जो नरक है, आशा, उत्साहके विचारोंसे स्वर्ग बनता है।

मजदूर बोला- स्वर्गकी बात हमने सुनी है, वहां पहुंचनेके लिए हमें कई बार मरना जीना होगा, वह बहुत दूर है।

यीशुने समझाया- अरे भाई तुम्हारा विचार भ्रम पूर्ण है। स्वर्ग दूर नहीं है, कोई भिन्न प्रदेश या लोक नहीं है, केवल तुम्हारी मनोदशाकी अवस्था है। परमात्माने मनुष्यों के लिए स्वर्ग नरक अलग अलग नहीं बनाया है। अपने हृदयकी संकीर्णता और भ्रान्त विचारसे मुक्त हो जाओ फिर तुम्हारे हृदयमें स्वर्गीय प्रकाश और आनन्द भर जायगा फिर तुम परिश्रमसे कभी भी दुःखी नहीं होगे।

लोगोंने यीशुका उपदेश बड़े ध्यानसे सुना। इससे उनकी मनोवृत्तिमें परिवर्तन हुआ।

कपिल वस्तुमें कोई महान् बौद्ध पर्व था, बहुतसे बौद्ध आचार्यों, साधुओंकी भीड़ थी। बड़े आनन्दका समारोह था। भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे बड़े बड़े विद्वान् आये थे, प्रवचन करते थे, यीशुका भी प्रवचन हुआ। यीशुने परमात्माको परमपिता और सब मनुष्योंको परस्पर भाई, तथा प्राणियोंको आत्मबन्धु बताया, एक दृष्टान्त भी दिया। एक दिन यीशु और विद्यापतिमें वार्तालाप हुआ। वे किसी गुफाके द्वार पर बैठे थे। यीशुने कहा- भविष्यमें ऐसा युग आवेगा जब पण्डित पुजारियों, मन्दिरों, भेंट पूजा बलिदान की आवश्यकता न रह जायगी। जीव हत्या करके, अन्य जीवोंका बलिदान करके मनुष्यका आत्म विकास या कोई लाभ नहीं होता। इन कार्योंसे मनुष्यका जीवन पवित्र नहीं, दूषित बनता है। विद्यापतिने कहा- मनुष्यको जो कुछ करना हो, अपनी आत्मासे करे। मनुष्य दूसरोंकी सेवामें आत्म बलिदान करे, अपने भाईके लिए अपना त्याग करे। भविष्यके युगोंमें ऐसी व्यवस्थाएं टूट जावेंगी जिनमें भ्रम और आडम्बर है। पशु पक्षियोंको मारकर धार्मिक कृत्य करना क्रूरता है। लोगोंको यही समस्या सुलझानी है। धर्म कृत्यमें भी ईश्वरके नाम पर हत्या हो तो ऐसे धर्मका न होना ही अच्छा है। धर्मकी कल्पना दूषित है।

यीशुने कहा- लोग भड़कीले भेष बनाकर जनताके समक्ष पण्डित और पुजारी बनकर प्रतिष्ठित होते हैं, वे कहते हैं, हम परमात्माके सेवक हैं, और लोगों द्वारा प्रशंसा पूजा प्रतिष्ठा चाहते हैं, पक्षियोंके समान व्यर्थ बकवाद करते हैं, यह सब पाखण्ड है। परमात्माकी दृष्टिमें सभी लोग समान हैं, सभी राजा हैं, सभी पुजारी हैं। वह आदर्श युग तभी होगा जब सभी लोग समभावसे व्यवहार करेंगे, किसीको विशेष भेष धारण कर विज्ञापन करनेकी आवश्यकता न रहेगी।

तिब्बतमें

विद्यापतिने तिब्बतकी यात्रा की थी, वहां बहुतसे ग्रंथ देखे थे। विद्यापतिने सब यात्रा वर्णन और अनुभव यीशुको सुनाया तो यीशुकी तिब्बत जानेकी आकांक्षा हुई, अतएव विद्यापतिने तिब्बतमें लासाके विद्वान् और भोगी मठाधीश मेङ्स्तेको पत्र भेजा। यह पत्र उन्होंने उस व्यक्तिके हाथ दिया जिसे उन्होंने यीशुके साथ लासा भेजा। विद्यापतिने यीशुका परिचय लिखकर प्रार्थना की थी कि तिब्बतके मठमें जो हस्त लेख हों उनका अध्ययन यीशुको करनेकी आज्ञा दी जाय। तिब्बतका मार्ग बड़ा कठिन था फिर भी बड़े धैर्य और साहसके साथ यीशु वहां उस साथीके साथ पहुंचे।

लासामें यीशुने कोई उपदेश न दिया। प्रचार न किया। मठमें सब गुप्त विद्याओं और योग साधनों तथा हस्तलेखोंका अध्ययन किया, फिर पश्चिमकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें वे गांवोंमें रुकते ज्ञानोपदेश करते, बढ़ते रहे। वे लद्दाख, लेह पहुंचे, वहां साधुओंने सम्मान पूर्वक उनका स्वागत किया, वैश्यों और शूद्रोंने भी बड़ा आदर सत्कार किया। यीशु सब प्रकारके लोगोंमें प्रेम, सहानुभूति तथा समानता पूर्वक घुल मिलकर उपदेश देते थे। एक समय जब उनका प्रवचन हो रहा था, एक स्त्रीने उनकी प्रशंसा सुनकर गोदमें बालकको लाकर यीशुकी शरणमें डाल दिया।

यीशुने इस स्त्रीमें प्रगाढ श्रद्धा देख, परमात्मासे प्रार्थना की " परमपिता, परमात्मा, तेरा प्राण जिस प्रकार मेरे अन्दर व्याप्त है, इस अबोध बालकमें भी व्याप्त है, हम तेरी सर्व व्यापकता देखते हैं । " प्रार्थना करते हुए बालक पर हाथ फेरा, फिर बोले, देवि ! तेरी श्रद्धाके प्रतापसे ही तेरा बालक जीवित है ।

बालक चंगा हो गया । यह चमत्कार देख लोगोंको बडा आश्चर्य हुआ । पश्चात् बहुत रोगी आये । यीशुकी प्रार्थनासे रोग मुक्त हो, तथा सन्देह लेकर गये ।

लदाख लेह लाहौरमें

लद्दाखमें यीशु बहुत दिन रहे और लोगोंको आत्म-चिकित्सा करना सिखाया । जब वे वहांसे प्रस्थान करनेको हुए तो लोग उनके वियोगसे दुःखी हो विलाप करने लगे जैसे मांके विना बच्चे रोते हैं । चलते समय बहुतसे लोगोंने यीशुसे भेंटकी । वे चल दिये । रास्तेमें उन्हें सौदागर मिले जो काश्मीर होकर लाहौर जा रहे थे । सौदागरोंने यीशुका प्रवचन सुना था, वे उन्हें जानते थे । जानने पर कि यीशु पंजाब और फारस होकर पश्चिम जायगे, अतः लम्बे रास्तेका विचार कर इन्होंने यीशुको बढिया घोडा दिया, और उस पर सवार होकर सौदागरोंके साथ यीशु चलने लगे ।

यीशु जब लाहौर पहुंचे तो अजैनिन जो बनारसमें यीशुसे पहले मिला चुका था, बहुतसे पण्डितों सहित यीशुका स्वागत करने आया । यीशु अजैनिनके अतिथि रहे और उसे आत्मबलसे चिकित्सा करना सिखाया, पारलौकिक दुष्ट आत्माओंको भगाने, तथा दूसरोंको क्षमा करके अपने अपने अपकृत्योंका प्रायश्चित्त कर आत्मबलसे चिकित्सा करना बताया ।

भारतीय संगीत सम्मेलनमें यीशु एक दिन उपस्थित थे भारतीय संगीत कलासे वे बडे प्रभावित हुए, गायकोंकी प्रशंसामें उनने कहा—ये सब स्वर्गके दूत हैं, देखनेमें युवक मालूम होते हैं, उनके हजारों वर्षकी तपस्याका चमत्कार इनके दिव्य सौन्दर्यगानसे सिद्ध हो रहा है ।

कुछ दिन यीशु लाहौरमें रहे । रोगियोंकी चिकित्साके साथ ज्ञानोपदेश, सत्संग भी होता था । परस्पर प्रेम, त्याग, सेवा और सहयोगका उपदेश करते । वे कहते-तुम्हें यदि अपना, जीवन दिव्य और सफल करना है तो दूसरोंकी सेवाके लिए त्याग करो, विशेषकर उनके लिए जिन्हें तुम अपनेसे निम्न समझते हो ।

फिर उसी घोडे पर चढकर सिन्ध प्रान्तकी ओर चल दिये, इस प्रकार जब वे फारस पहुंचे तो चौबीस वर्षके हो गये थे । उनकी यात्राके प्रायः बारह वर्ष भारतमें व्यतीत हुए ।

फारसमें चिकित्सा व प्रचार करते हुए फारसी अध्यात्म वेत्ताओंसे मिलकर फारससे वे सीरिया गये । सीरियाके बहुतसे नगरों, गांवोंमें चिकित्सा व उपदेश करते हुए वे नाजरथ, अपने घर गये । अपनी माताको यात्राका सब वृत्तान्त सुनाया । उनकी माताने पुत्र यीशुके पुनरागमनके हर्षमें लोगोंको बडा भोज दिया, किन्तु यीशुके अन्य भाई बन्धु अप्रसन्न हो भोजमें न गये, यीशुकी यात्रा, चिकित्सा, सत्संग, ज्ञान, सम्मानका वृत्तान्त सुनके व्यंगपूर्वक हंसी उडाने लगे ।

पश्चात् यीशु यूनान गये, तत्ववेत्ताओंसे भेंटकी । उस समय यूनानमें मूर्तिपूजा होती थी जिसका उनने खण्डन किया । फिर वे " मंगल गृह " नामक जहाजमें बैठकर मिश्र देश गये । वहां एक मन्दिरमें शिष्य होकर पुनः रहने लगे । वहां शिक्षा व साधनाकी सप्त भूमिका-नम्रता, सत्यता, श्रद्धा, दान, शील, साहस, दिव्य प्रेम, इनमें परीक्षित और सफल पारंगत होकर ' मसीहा ' के पद पाकर वे सिद्ध Christ हुए ।

पश्चात् सिकन्दरियामें संसारके सात महा सिद्धोंका समागम हुआ । चीन-तिब्बतसे, मेङ्स्ते भारतसे विद्यापति, सीरियासे आशा विना, यूनानसे अपोलो, मिश्रसे मेथिनों, यहूदियोंके सिद्ध फिलो ये थे, फारससे कास्पर सिद्ध आया था, इनने यीशुका सिद्ध पद स्वीकार किया और आशीर्वाद दिया । पश्चात् तीन वर्ष यीशुने चिकित्सा व प्रचार कार्य किया उसीका बाइबिलके भिन्न भिन्न संग्राहकोंने लेखन किया है । पहलेका हाल किसीको नहीं मालूम हुआ ।

समालोचना

★

संस्कृत साहित्य विमर्शः

(लेखक— आचार्य द्विजेन्द्रनाथजी विद्या-मार्तण्ड; प्रकाशक- भारती प्रतिष्ठान, ३१ आनन्द पुरी, मेरठ (यू. पी.); पृष्ठ सं. ६८०; मूल्य—१६)

संस्कृत साहित्यका महासागर और उसमें डुबकी लगाकर मोती खोज निकालनेवाले साहित्यकार व समीक्षक दोनों ही प्रशंसनीय हैं। संस्कृत साहित्यकी रूप रेखा आज तक कई समीक्षकोंने प्रस्तुत की। प्रस्तुत विशालकाय ग्रंथ भी उन्हीं समीक्षाओंमें एक नया अध्याय जोडता है। इस पुस्तकमें तीन प्रकरण मुख्य हैं, (१) वैदिक प्रकरण, (२) दर्शन प्रकरण और (३) लौकिक साहित्य प्रकरण। हर प्रकरणमें करीब करीब सभी विद्वानों, भाष्यकारों और टीकाकारोंकी जीवनी तथा उनके कार्यकी समीक्षात्मक रूप रेखा प्रस्तुत है।

ग्रथ संस्कृत भाषामें है, पर संस्कृत भाषाका काठिन्य इसमें नहीं, लम्बे लम्बे सन्धियुक्त वाक्य नहीं, भाषाका एकदम सरल प्रवाह कि पाठकको अपने रसकी धारासे सरोबार तो कर देता है, पर डुबाता नहीं। संस्कृत भाषाके विद्यार्थीके लिए, जो थोडीसी भी संस्कृत जानता हो, यह ग्रथ महान् आनन्द दायक और ज्ञान दायक सिद्ध होगा। इसके साथ ही पाठक इसको पढते हुए इस बातका आसानीसे ही अनुमान कर सकता है कि लेखकका भाषा पर पूर्णतया अधिकार है।

इस ग्रंथकी भाषाकी एक और भी विशेषता है कि पाठक इस ग्रंथके साहित्य सम्बन्धी भागको पढते हुए यह सोचेगा कि लेखक एक महान् साहित्यकार है। दर्शन विषयक समीक्षाको पढते हुए यह सोचेगा कि लेखक एक महान् दार्शनिक भी है और काव्यकी समीक्षामें लेखक एक महान् कविके रूपमें पाठकके सामने उपस्थित होता है। साहित्य क्षेत्रमें साहित्यिक भाषा, दार्शनिक क्षेत्रमें दार्शनिक भाषा और काव्य क्षेत्र काव्यात्मक भाषा इस ग्रथकी विशेषता है। संस्कृत भाषामें ऐसे ग्रंथ नहींके बराबर हैं। यह ग्रंथ संस्कृत भाषाका एक नगीना है। इसे डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्ने भी मुक्तकण्ठसे सराहा है। उत्तर प्रदेश सरकारने इस कृतिके लिए लेखकको १५००) का पुरस्कार भी प्रदान किया है। कई विश्वविद्यालयोंने अपने संस्कृत ऍम. ए. के पाठ्यक्रममें भी इस ग्रंथको सम्मिलित किया है। पाठ्यक्रममें सम्मिलित होनेसे ग्रंथका महत्व नहीं बढा अपितु ग्रंथके सम्मिलित करनेसे पाठ्यक्रमका महत्व बढा है। ऐसा ग्रंथ संस्कृत भाषामें ही नहीं अपितु हिन्दी भाषामें भी कम ही दीखता है।

आशा है कि पाठकगण इसके योग्य ही इसे महत्व प्रदान करेंगे।

श्री नारायण आश्रम-रजत-जयन्ती स्मृति-ग्रंथ

प्रकाशक-मंत्री, श्री नारायण आश्रम व्यवस्थापक समिति बाजवाडा खत्रीपोल, बडौदा (गुजरात); पृष्ठ सं. ६५०

हिमालयके हिमशिखर विश्वके मानवोंके लिए सनातन कालसे प्रेरणाके स्रोत रहे हैं। आर्योंकी संस्कृति-भारतीय संस्कृतिका जन्म ही हिमालयकी गुफाओंमें हुआ। वेदके अनुसार तो बुद्धिमानोंका जन्म पर्वतोंकी उपत्यकामें होता है। यह अत्युन्नत हिमालय भारतीय संस्कृतिकी सर्वांगीण उन्नतिका भी प्रतीक है। श्री नारायण स्वामीजीने भी इसी हिमालयसे प्रेरणा ली और उस प्रेरणाको उन्होंने जन हितके काममें लगा दिया। एतदर्थ उन्होंने एक संस्थाकी भी स्थापनाकी। प्रसन्नताकी बात है कि आज उनकी यह संस्था फल फूल रही है। इस आश्रमने शिक्षा क्षेत्रमें भी प्रशंसनीय प्रयास किया है। पर्वतीय प्रदेशमें, जहां आज भी शिक्षाका अभाव सा ही है, महात्मा बापूके नामसे एक विद्यालय स्थापित किया है, जो उत्तम रीतिसे चल रहा है।

ऐसे आश्रमके सम्बन्धमें लोगोंको अधिकसे अधिक जानकारी रखनी चाहिए। इसी दृष्टिसे इस आश्रमकी व्यवस्थापक समितिने एक स्मृति ग्रंथका प्रकाशन किया। समितिने इस ग्रंथका प्रकाशन करके जनता पर बडा उपकार किया है। इसके द्वारा उन प्रातः स्मरणीय श्री स्वामीजीके महान् मानव हितकारी कार्योंका परिचय मिलता है। इसमें हिमालयका मनोहारी प्राकृतिक चित्रण बडे सजीव शब्दोंमें

किया है। स्वामीजीके अनेक उपदेशोंका भी संकलन है, अनेक उद्बोधक कथायें भी हैं। हिमालयके अनेक दृश्योंके चित्र भी हैं। कैलास शिखरका चित्र बडा भव्य और आकर्षक है।

ग्रंथकी छपाई और कागज दोनों सुन्दर और आकर्षक हैं। प्रत्येक व्यक्तिके लिए यह ग्रंथ उपयोगी है।

आशा है कि पाठक गण इसका हृदयसे स्वागत करेंगे।

कल्याण (संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क)

सम्पादक- श्री हनुमान् प्रसाद पोद्दार; प्रकाशक- गीता प्रेस, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश); पृष्ठ स. ७०४, मूल्य वार्षिक मूल्य ७. ५० न. पै.

पुस्तकोंके सस्तेसे सस्ते संस्करण निकाल कर सनातन वैदिक धर्मका प्रचार करनेमें गीता प्रेस अद्वितीय है। विगत ३५ वर्षोंसे " कल्याण " पत्रिका जिज्ञासुओंकी सेवा करती चली आ रही है। इस पत्रिकामें अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख कवितायें व कथायें प्रकाशित होती हैं, जो पाठकोंका मनोरंजन करती हुई उनके सामने भारतीय तत्वज्ञानके मुख्य रूपको भी प्रस्तुत करती हैं। इस पत्रिकाकी भाषा सरलतासे समझने योग्य होती है। यही कारण है कि आज छपनेवाली सभी हिन्दी पत्रिकाओंमें इसकी सबसे ज्यादा बिक्री है। इसे पाठकोंने अपनाया।

नव वर्षके उपलक्ष्यमें इस पत्रिकाका " शिवपुराण " विशेषाङ्क विशाल ग्रंथके रूपमें प्रकाशित हुआ है। इस अंकमें " शिवपुराण " को हिन्दीमें लोगोंके सामने प्रस्तुत किया है। इसी तरह अन्य पुराणोंको भी विशेषांकके रूपमें लानेका स्तुत्य प्रयास इस प्रकाशन संस्थाने किया है। विशेषाङ्क विशालकाय होनेके साथ साथ आकर्षक भी है। कई रंगीन चित्र हैं। इसमें भगवान् शंकरका महात्म्य बताया है।

हमें पूर्ण आशा है कि इस पत्रिकाको पाठक गण अवश्य अपनायेंगे।

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो?

लेखक— श्री. दा. सातवलेकर

★

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ऋ० १।७।३

(इन्द्रः) इन्द्रने (दीर्घाय चक्षसे) दीर्घ काल तक देखनेके लिए (दिवि सूर्यं आरोहयत्) द्युलोकमें सूर्यको ऊपर चढाया और (गोभिः) उसकी किरणोंसे (अद्रिं ऐरयत्) बादलोंको प्रेरित किया ॥ १ ॥

१ दीर्घ काल तक देखना- दीर्घायु प्राप्त करना।

२ चक्षुके आरोग्य संवर्धनके लिए सूर्य-दर्शन एक उत्तम साधन है। प्रथम एक निमेष देखना और बादमें क्रमशः अभ्यास बढाना चाहिये। " सूर्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत् " (ऐ. उ.) सूर्यका अंश आंखमें है। इसलिए सूर्य दर्शनसे नेत्रका आरोग्य बढता है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्यारुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥

ऋ० १।१०।४

हे (वसो इन्द्र) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (एहि) आ, (स्तोमान् अभि स्वर) स्तोत्रोंको प्रेरित कर, (अभि गृणीहि) उनको सुन और (आ रुव) उनकी प्रशंसा कर तथा (ब्रह्म यज्ञं च वर्धय) हमारे ज्ञान तथा जीवनकी वृद्धि कर ॥ २ ॥

१ ब्रह्म यज्ञं च वर्धय- लोग ज्ञान और जीवन यज्ञको बढावें। ज्ञान भौतिक और आध्यात्मिक दो प्रकारका होता है। ये दोनों प्रकारके ज्ञान जब बढते हैं, तब दीर्घायु प्राप्त होती है। आयु बढानेके ये दो साधन हैं।

२ यज्ञ- यह जीवन रूपी यज्ञ है। यह सात सांवत्सरिक यज्ञ है। हमें बढाना चाहिए। अपना जीवन यज्ञ रूप बनाना चाहिये। जीवन यज्ञरूप बनानेसे आयु बढती है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥

ऋ. १।१०।११

हे कौशिक इन्द्र ! तू (मन्दसानः) प्रसन्न होते हुए (सुतं आ पिब) तैय्यार किए गए सोमको पी तथा (नः नव्यं आयुः प्र सू तिर) हमारी नवीन आयुको दीर्घ कर और (सहस्रसां ऋषिं कृधि) हजारों ऐश्वर्यसे युक्त ऋषि पद मुझे दे ॥ ३ ॥

१ नः नव्यं आयुः प्र सू तिर- हमारी नई आयुको प्रकर्ष रूपसे उत्तम उपायोंके द्वारा दुःखोंसे पार करके अति-दीर्घ करो। आयु प्रतिदिन नवीन प्राप्त होती है। वह तारुण्यकी नवीन आयु मुझे प्राप्त हो रही है ऐसा विचार अपने मनमें स्थिर करके (प्र) प्रकर्षसे (सु) उत्तम आयु बढानेके साधनोंसे (तिर) दुःख सागरसे तैर जाओ जिससे आयु बढेगी। आयु बढानेका यह साधन है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

४ सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ऋ. १।९।७

हे इन्द्र ! (अस्मे गोमत् वाजवत्) हमें गायोंवाले, बल बढानेवाले (बृहत् पृथु अक्षितं श्रवः) बृहत्, विस्तृत, क्षय रहित अन्नको तथा (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयुको (सं धेहि) अच्छी प्रकार दे ॥ ४ ॥

१ अस्मे गोमत् वाजवत् बृहत् पृथु अक्षितं श्रवः विश्वायुः सं धेहि- हमें गायोंसे प्राप्त होनेवाले, बल बढानेवाले, क्षय न करनेवाले बहुत अन्न दो जिससे हमारी आयु बढे। गायके दूध, दही, मक्खन, छांछ आदिके सेवनसे आयु बढती है। इसके साथ बल बढानेवाला अन्न खाना चाहिये। शरीरके किसी भागको क्षय न हो ऐसा अन्न लेना चाहिए।

२ विश्व-आयु- पूर्ण आयु एक सौ बीस वर्षोंकी होती है, इस कारण ज्योतिर्गणितका नाम " विंशोत्तरी " गणित है। इस आयुको इससे अधिक बढाना और उसको धारण करना चाहिये।

मेधातिथिः काण्वः। आपः। प्रतिष्ठा।

५ आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ऋ. १।२३।२१

हे (आपः) जलो ! तुम (मम तन्वे) मेरे शरीरकी पुष्टिके लिए (ज्योक् च सूर्यं दृशे) दीर्घ काल तक सूर्यको देखनेके लिए (वरूथं भेषजं) रोगको हटानेवाली औषधिको (पृणीत) पूर्ण रूपसे दो ॥५॥

सूर्य किरणोंसे अंगोंकी पुष्टि होती है और देखनेकी शक्ति मिलती है। जलोंमें औषधिके गुण हैं। अतः जलोंका योग्य रीतिसे सेवन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। स्नान करना, कपडे स्वच्छ करना, पानी पीना आदि जलके बहुत उपयोग हैं। जलसे चिकित्सा भी होती है। इससे रोग दूर होते हैं और आयु दीर्घ होती है।

मेधातिथिः काण्वः आंगिरसः प्रियमेधश्च। इन्द्रः। गायत्री।

६ इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः।
अन्तर्देवान् मर्त्यांश्च ॥ ऋ. ८।२।४

(देवान् मर्त्यान् च अन्तः) देवों और मनुष्योंके मध्यमें (एकः इन्द्रः इत् सोमपाः) अकेला इन्द्र ही सोमको पीनेवाला है और (सुतपाः) निचोडे गए सोम रसोंको पीता है, इसलिए वही (विश्व आयुः) सम्पूर्ण आयुका उपभोग करता है ॥ ६ ॥

सोमरसके सेवन करनेसे आयु बढती है। हिमालयके ऊंचे शिखर पर सोमवल्ली उगती है। वह रातके अन्धेरेमें चमकती है। उसके १५ पत्ते आते हैं। उस सोमवल्लीका रस कूटकर निकालते हैं। वह रस अन्धेरेमें चमकता है। उसमें पानी मिलाकर छानते हैं और उसमें गायका दूध मिलाकर पीते हैं। यह सोमरस आयुको बढानेवाला है।

आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः।
वरुणः। गायत्री।

७ स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ऋ. १।२५।१२

(सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला (आदित्यः) आदित्य (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमें (सुपथा करत्) उत्तम मार्ग पर चढावे, और (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारे जीवनोंको बढावे ॥ ७ ॥

सूर्य आयुष्य बढाता है। उत्तम मार्गसे जानेसे आयुष्य बढता है।

१ सुपथा नः आयूंषि प्रतारिषत्- उत्तम मार्गसे जानेसे हमारे आयुष्य सुदीर्घ होते हैं।

(सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला अपनी आयु बढाता है। उत्तम कर्म करना और उत्तम मार्गसे जाना ये दो दीर्घायुके साधन हैं।

कण्वो घौरः। मरुतः। गायत्री।

८ अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ ऋ. १।३७।१५

(वः) तुम लोगोंके (मदाय) आनन्दके लिए (विश्वं चित्) समस्त पदार्थ (अस्ति हि स्म) हैं और (वयं) हम भी (आयुः जीवसे) दीर्घायुके जीवनके लिए (एषां स्मसि स्म) इनका उपयोग करते रहें ॥ ८ ॥

१ वः मदाय विश्वं अस्ति- तुम्हारे आनन्दके लिए सब विश्व है ।

२ वयं आयुः जीवसे एषां स्मसि- हम अपने दीर्घ जीवनके लिए इन विश्वके पदार्थोंका उपयोग योग्य रीतिसे करके दीर्घायु प्राप्त करें ।

विश्वमें उत्पन्न हुए पदार्थोंका योग्य रीतिसे उपयोग करनेसे दीर्घायु प्राप्त हो सकती है ।

प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

९ शं नो भव हृद आ पीत इन्दो
पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः
प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥ ऋ. ८।४८।४

हे सोम ! (सूनवे पिता इव सुशेवः) पुत्रके लिए जिस प्रकार पिता सुखदायक होता है, (सख्युः सखा इव) और जिस प्रकार मित्र मित्रके लिए कल्याणकारी होता है, उसी प्रकार (उरुशंसः धीरः) बहुतों द्वारा प्रशंसित धैर्यवाला तू (पीतः) पिया जाने पर (नः हृदि शं भव) हमारे हृदयोंमें सुखकर हो तथा (नः आयुः) हमारी आयुको (जीवसे) जीनेके लिए (प्रतारीः) बढा ॥ ९ ॥

पुत्रके लिये पिता आनंद देता है और मित्र मित्रका आनंद बढाता है । उस तरह सोमरस हमारे अन्तः करणको सुखदायक हो और अन्तः करणको शान्ति सुख मिले । इससे आयु दीर्घ होती है ।

हृदि शं नः आयुः प्रतारीः- हृदयकी शान्ति हमारी आयुको बढाती है । हृदयकी अशान्ति आयुको कम करती है ।

प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१० इषिरेण ते मनसा सुतस्य
भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारी-
रहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ऋ. ८।४८।७

(पित्र्यस्य रायः इव) पिताकी सम्पत्तिका जैसे पुत्र उपभोग करता है, उसी प्रकार (ते सुतस्य) तेरे निकाले रसको (इषिरेण मनसा) शक्तियुक्त मनसे (भक्षीमहि) हम पीते हैं, हे (राजन् सोम) चमकनेवाले सोम ! (सूर्यः वासराणि अहानि) जिस प्रकार सूर्य सबके निवासके हेतु दिनोंको बढाता है, उसी प्रकार (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुओंको बढा ॥ १० ॥

हे सोम ! नः आयूंषि प्रतारीः— हे सोम ! हमारी आयुको बढा । सोम रस आयुष्य बढाता है ।

पिताका धन जैसे पुत्रको जन्मके अधिकारसे मिलता है, वैसे सोमका आयु बढानेका गुण हमारी आयु बढावे । सूर्य जैसे दिनमें प्रकाशको बढाता है वैसे ही सूर्य हमारी आयु बढावे ।

प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

११ ऋदूदरेण सख्या सचेय
यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे
तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥ ऋ. ८।४८।१०

(उदरेण ऋत् उ) पेटके लिए सुखकारक सोमको (सख्या) मित्रताको मैं (सचेय) प्राप्त करता हूँ, हे (हर्यश्व) लाल घोडोंवाले इन्द्र ! (यः) जो यह सोम है, वह (पीतः) पिया जानेपर (नः मा रिष्येत्) हमें दुःखी न करे । (यः अयं सोमः) जो यह सोम (अस्मे निधायि) हममें स्थापित किया जाता है, (तस्मै) उसके लिए मैं (आयुः प्रतिरं) आयुको दीर्घ करता हूँ, और (इन्द्रं एमि) इन्द्रको प्राप्त करता हूँ ॥ ११ ॥

१ उदरेण ऋत् सख्या सचेय— जो पेटके लिये हितकारक है वही मैं स्वीकारता हूं ।

२ पीतः मा नः रिष्येत्— जो पीनेपर हमारा दुःख न बढावे, उसको मैं स्वीकार करता हूं ।

३ यः अस्मे निधायि तस्मै आयुः प्रतिर— जो हमारे अन्दर जाता है उससे हमारी आयु बढे ।

(१) पेटके लिये हितकारक हो, (२) खाने या पीने पर पेटमें दोष उत्पन्न न करे । वही हम पेटमें डालें जिससे हमारी आयु बढे ।

प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२ अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा
निरत्रसन् तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया
अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ऋ. ८।४८।११

जो हमें (निः अत्रसन् अभैषुः) कष्ट देते और डर दिखाते हैं, (त्याः तमिषीचीः) वे अन्धकारमें रहनेवाले तथा (अनिराः अमीवाः) सर्वदा रहनेवाले रोग (अप अस्थुः) दूर हों, (सोमः) सोम (विहाय) बहुत दूरसे (अस्मान् आरुहत्) हमारे पास आया है और हमने भी (यत्र) जिस सोमसे (आयुः प्रतिरन्तः) आयु बढाते हैं, उसे (अगन्म) प्राप्त किया है ॥ १२ ॥

' अमी-व ' पेटके अपचनसे होनेवाला आम बनानेवाला रोग ' अमीव ' कहलाता है । पेटमें आम अर्थात् अपचन न हो । अन्धकारमें भी हमें रहना न पडे । पेटकी पचन शक्ति अच्छी स्थितिमें रहे और हमें विपुल सूर्य प्रकाश मिले । इससे आयु दीर्घ होती है । सोमरस पीनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है क्योंकि इससे पेटमें आम नहीं होता और यह सोमरस स्वयं तेजस्वी है ।

प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः । प्रगाथः = विषमा
बृहती—समा सतो बृहती ।

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥
ऋ. १।४४।६

हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त तरुण अग्ने ! (मधुजिह्वः) मधुर भाषण करनेवाला (सु-आहुतः) अच्छी तरह हवन किया गया तू (गृणते सुशंसः बोधि) स्तुति करनेवाले मुझसे प्रसन्न हो । (जीवसे) दीर्घजीवन जीनेके लिए (प्रस्कण्वस्य आयुः प्रतिरत्) प्रस्कण्वकी आयुको बढा, ऐसे तू (दैव्य जनं) दिव्य मनुष्यका (नमस्य) सन्मान कर ॥ १३ ॥

सु-आहुतः अग्निः— जिसमें उत्तम हवनीय पदार्थोंकी आहुतियां डाली गई हैं, ऐसा अग्नि, यज्ञ करनेवाले पर प्रसन्न होता है और ' जीवसे आयुः प्रतिरत् ' दीर्घ जीवनके लिये आयु बढाता है । जो ऐसा हवन करता है वह दिव्यजन नमस्कारके लिये योग्य है । योग्य पदार्थोंके हवनसे याजककी दीर्घायु होती है और उसके साथवालोंको भी लाभ प्राप्त होता है ।

प्रस्कण्वः काण्वः । सूर्यः । अनुष्टुप् ।

१४ उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥
ऋ. १।५०।११

(मित्र-मह सूर्य) हे महान् ज्योतिवाले सूर्य ! (अद्य) आज (उद्यन्) उदय होते हुए और (उत्तरां दिवं आरोहन्) ऊंचे द्युलोक पर चढते हुए (मम हृद्रोगं हरिमाण च नाशय) मेरे हृदयके रोगको तथा शरीरको पीले करनेवाले रोगको नष्ट कर ॥ १४ ॥

' हृदयका रोग और कामिला-पीलक- रोग सूर्य किरणोंके स्नानसे दूर होते हैं । सूर्य किरणोंमें इन रोगोंको हटानेकी शक्ति है । ये रोगी प्रथम थोडा समय सूर्य किरणोंमें बैठें । पश्चात् अधिक देर तक बैठें । शरीर नंगा रहे और सब शरीर सूर्यके किरणोंके संपर्कमें आजाय ।

' सूर्य किरण चिकित्सा ' नामक एक उत्तम ग्रन्थ इस समय तैयार हुआ है । उससे लाभ लेना उचित है । दीर्घायु चाहनेवाले उस पुस्तकसे लाभ ले सकते हैं ।

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती ।

१५ चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं
द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं
तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ ऋ. १।६४।१४

हे मरुतो ! तुम (चर्कृत्यं) कर्ममें कुशल (पृत्सु दुस्तरं) युद्धोंमें पराजित न होनेवाले (द्युमन्तं शुष्मं) तेजस्वी और बलशाली (धन स्पृतं) धनसे पूर्ण (विश्व-चर्षणिं) सब लोगोंका हित करनेवाले तथा (तोकं तनयं) पुत्र पौत्रोंवाले मनुष्यको (मघवत्सु धत्तन) ऐश्वर्यवानोंमें रखो और हम भी उस (उक्थ्यं) प्रशंसनीय पुरुषको (शतंहिमाः) सौ वर्ष तक (पुष्येम) पुष्ट करें ॥ १५ ॥

मनुष्य कर्म करनेकी कुशलता प्राप्त करें, युद्धोंमें हार न होने योग्य शौर्य प्राप्त करें, तेजस्वी और ओजस्वी हों,

धनवान् हों, सार्वजनिक कल्याण करनेवाले हों, पुत्र पौत्र-वाले हों, धनवानोंके साथ रहे और पुष्ट होते हुए सौ वर्षकी आयु प्राप्त करें।

मनुष्यके दीर्घ जीवनका यह उद्देश्य है।

पराशरः शाक्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१६ वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युः
वि सूरयो ददतो विश्वमायुः।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो
भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ऋ १।७३।५

हे (अग्ने) अग्ने! (सूरयः मघवानः ददतः) विद्वान् तथा ऐश्वर्यवाले लोग दान देते हुए (पृक्षः विश्वं आयुः) अन्न तथा सम्पूर्ण आयुका (वि अश्युः) उपभोग करें। तथा (श्रवसे) अन्न अथवा यशकी प्राप्तिके लिए (देवेषु अर्यः भागं दधानाः) देवोंका उत्तम भाग देते हुए हम भी (समिथेषु) युद्धों वा यज्ञोंमें (वाजं सनेम) बल अथवा अन्नको प्राप्त करें ॥ १६ ॥

ज्ञानी तथा धनवान् लोग ज्ञानका तथा धनका दान करते रहें और दीर्घ आयुको प्राप्त करें। ज्ञानी लोग ज्ञानका दान करें और धनी धनका दान करें। इससे जनताका कल्याण होगा और इन दान करनेवालोंको मानसिक समाधान होनेसे दीर्घायु प्राप्त होगी। दान करनेसे मनका जो समाधान होता है, उससे आयु बढनेमें सहायता होती है।

पराशरः शाक्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१७ अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्
वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो
वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ऋ. १।७३।९

हे (अग्ने) अग्ने! (त्वा ऊताः) तेरे द्वारा रक्षित होकर हम युद्धोंमें (अर्वद्भिः अर्वतः) घोडोंसे घोडोंको (नृभिः नॄन्) मनुष्योंसे मनुष्योंको और (वीरैः वीरान्) वीरोंसे वीरोंको भिडाकर (वनुयाम) विजय प्राप्त करें, तथा (नः सूरयः) हमारे पुत्र विद्वान् होकर (पितृ-वित्तस्य रायः) पिताके ऐश्वर्यके (ईशानासः) स्वामी होकर (शतहिमाः) सौ वर्षोंका (अश्युः) उपभोग करें ॥ १७ ॥

जगत्के अन्दर जो स्पर्धा है, उस स्पर्धामें हम विजयी हों, तथा ज्ञानी, शूर और धनी बनकर, ऐश्वर्यके अधिकारी होकर, सौ वर्षकी आयु प्राप्त करके आनन्दमय अवस्थामें हम रहें। पिताके ऐश्वर्यका योग्य भाग प्राप्त करके उसका उपभोग पूर्ण आयु होने तक करते रहें।

गोतमो राहूगणः। इन्द्रः। त्रिष्टुप् (प्रागाथः)

१८ को अद्य युंक्ते धुरि गा ऋतस्य
शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्
य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥
ऋ. १।८४।१६

(अद्य) आज (कः) कौन (शिमीवतः) शूरवीरतासे युक्त (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हृणायून्) अतिशय क्रोधी वीर (इषून् आसन्) बाणोंको फेंक कर शत्रुओंके (हृत्सु असः) हृदयों पर मारनेवाले तथा (मयोभून्) कल्याणकारी वीरोंमें (गाः) बैलोंको अपने (ऋतस्य धुरि युंक्ते) रथकी धुरामें जोडता है? (यः एषां भृत्यां ऋणधत्) जो इन बैलोंकी सेवा करता है (सः जीवात्) वह जीवित रहता है ॥ १८ ॥

जो गायों और बैलोंकी सेवा करता है वह दीर्घजीवी होता है। शूरवीरोंमें कौन एसा वीर है कि जो इनकी सेवा करता है? बैल खेती करके अन्न उत्पन्न करता है। इनके उत्पन्न किये अन्नको खाकर हम मनुष्य पुष्ट और दीर्घजीवी होते हैं। इसलिये बैल संसेव्य हैं।

गोतमो राहूगणः। विश्वेदेवाः। जगती।

१९ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां
देवानां रातिरभि नो निवर्तताम्।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं
देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ ऋ. १।८९।२

(देवानां भद्रा सुमतिः) देवोंकी उत्तम कल्याण करनेवाली बुद्धि (ऋजूयतां) हमारे अनुकूल हो, (देवानां रातिः) देवोंके दान (नः अभि निवर्तताम्) हमारे चारों ओर रहें, (वयं) हम (देवानां सख्यं उपसेदिम) देवोंकी मित्रताको प्राप्त हों, तथा (देवाः) देवगण

(जीवसे) जीनेके लिए (नः आयुः प्रतिरन्तु) हमारी आयुको बढावें ॥ १९ ॥

अग्नि आदि देव हरएक प्रकारसे हमारी सहायता कर रहे हैं। उनकी सहायता प्राप्त करके हम यहां सुखसे रहते हैं। इन देवोंमेंसे प्रत्येक देवताके साथ हमारा मित्रताका संबंध रहे, जिससे हमारी आयु बढे और हम आनन्दसे दीर्घकाल तक जीवित रह सकें। अग्नि, जल, सूर्य आदि देवोंके साथ हम विरोध करेंगे, तो हमारी आयु कम होगी। इस कारण इन देवोंसे हम मित्रता बनाकर ही आनंदसे रह सकते हैं।

गोतमो राहूगणः। देवाः। त्रिष्टुप्।

२० भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः
व्यशेम देवहितं यदायुः॥ ऋ. १।८९।८

हे (यजत्राः देवाः) पूजनीय देवो ! हम (कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) कानोंसे कल्याणकारी भाषण सुनें, (अक्षभिः भद्रं पश्येम) आंखोंसे कल्याणकारी दृश्य ही देखें, तथा (तुष्टुवांसः) देवोंकी स्तुति करनेवाले हम लोग (स्थिरैः अंगैः तनूभिः) स्थिर और दृढ अंगवाले शरीरोंसे (देव-हितं यत् आयुः) देवोंके हित करनेवाली आयुको (वि अशेम) प्राप्त करें ॥ २० ॥

कानोंसे कल्याणकारी भाषण सुनें, आंखोंसे कल्याण कारक दृश्य देखें। देवोंकी स्तुति करते हुए हम अपने सुदृढ शरीरके साथ अपनी सम्पूर्ण आयु तक ज्ञानियोंका हित करते रहें, और इस तरह दीर्घ आयु प्राप्त करें।

कानोंसे बुरा भाषण कभी न सुनें, आंखोंसे खराब दृश्य कभी न देखें, कभी दुष्टोंकी प्रशंसा न करें, और अपने शरीरको सुदृढ रखकर जिस तरह दीर्घायु प्राप्त हो वैसा प्रयत्न करें।

गोतमो राहूगणः। देवाः। त्रिष्टुप्।

२१ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा
यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति
मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ ऋ. १।८९।९

(अन्ति देवाः) हे समर्थ देवो ! तुमने आयुकी मर्यादा (शतं इत् नु शरदः) सौ वर्षकी की है बादमें तुम (नः तनूनां जरसं चक्राः) हमारे शरीरोंको बूढा कर देते हो (यत्र) तब (पुत्रासः) पुत्र (पितरः भवन्ति) पिता हो जाते हैं इसलिये (नः आयुः) हमारी आयुको (मध्या) बीचमें ही (मा रीरिषत) समाप्त मत करो ॥ २१ ॥

सौ वर्ष तक कार्य करनेकी आयु है इसके पश्चात् मनुष्य बूढा हो जाता है। पुत्र जब पिता बन जायें अर्थात् जब पुत्रके पुत्र और पौत्र हों, तब तक हम जीवित रहें। बीचमें ही अर्थात् पुत्रोंके पुत्र, पौत्र होनेके पूर्व ही हमारी आयु समाप्त न हो। हम कमसे कम सौ वर्ष तक जीवित और कार्य क्षम रहें।

गोतमो राहूगणः। अग्निषोमौ। अनुष्टुप्।

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम्।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत्॥ ऋ. १।९३।३

हे (अग्नीषोमा) अग्ने तथा सोम ! (यः वां) जो तुम दोनोंको (हविष्कृतिं आहुतिं) हविर्द्रव्यकी आहुतिको (दाशात्) देवे, (सः) वह (प्रजया) उत्तम सन्तानसे युक्त होकर (सुवीर्यं विश्वं आयुः) उत्तम बलसे युक्त सम्पूर्ण आयुको (वि अश्नवत्) प्राप्त करे ॥ २२ ॥

जो यज्ञ करता है, वह सुप्रजासे युक्त होकर तथा उत्तम बलसे सम्पन्न होकर सम्पूर्ण आयुको प्राप्त कर सकता है। बलसे युक्त पूर्ण आयु प्राप्त करनी चाहिये। बलहीन आयु नहीं चाहिये। जब तक आयु हो तब तक शरीरमें बल रहे और कार्य करनेकी शक्ति भी रहे।

यज्ञमें उत्तम हविर्द्रव्य आहुतिसे अर्पण किया जाता है, उस हवनसे उत्तम वीर्य प्राप्त होता है और दीर्घ आयु भी मिलती है।

वीर्यवर्धक हविर्द्रव्य कौनसे हैं इसका संशोधन करके ठीक तरहसे पता लगाना चाहिये। और वैसे हविर्द्रव्य यज्ञमें बर्तने चाहिये। जिससे दीर्घायु प्राप्त हो सकती है।

कुत्स आंगिरसः। रुद्रः। जगती।

२३ मा नस्तोके तनये मा न आयौ
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः
सदमित् त्वा हवामहे॥ ऋ. १।११४।८

हे रुद्र ! (नः तोके तनये मा रीरिषः) हमारे पुत्र पौत्रोंको मत मार, (नः आयौ मा) हमारी आयुको मत घटा, (नः गोषु मा, नः अश्वेषु मा) हमारी गाय और घोडोंको न मार, हे रुद्र ! (भामितः) क्रुद्ध होकर (नः वीरान् मा वधीः) हमारे वीरोंका-पुत्र पौत्रोंका-वध मत कर। हम (हविष्मन्तः) हविसे युक्त होकर (त्वा) तुझे (सदं इत् हवामहे) हमेशा बुलाते हैं तेरे लिये हवन करते हैं ॥ २३ ॥

उत्तम हविसे जो यज्ञ करते हैं, वे स्वयं दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं और उनके पुत्र पौत्र और संबंधी जन भी लंबी आयु प्राप्त करते हैं। इसलिये उत्तम हविसे यज्ञ करना अत्यंत लाभदायक है।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

२४ जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं
प्रामुंचतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुः दस्रा
आदित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ ऋ. १।११६।१०

हे (नासत्या) अश्विदेवो ! तुमने (जुजुरुषः च्यवानात्) अत्यन्त वृद्ध च्यवन नामक ज्ञानी पुरुषके शरीरसे (वव्रिं) चमडी (द्रापिं इव) कवचके समान (प्र अमुंचतं) अलग कर दी, (दस्रा) हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! और (जहितस्य आयुः प्रतिरतं) इस बहिष्कृत पुरुषकी आयुको बढाया (आत् इत्) उसके बाद ही उसको (कनीनां) स्त्रियोंका (पतिं अकृणुतं) पति बना दिया ॥ २४ ॥

अश्विदेवोंने च्यवन ऋषिके शरीरसे कवच उतारनेके समान चमडी उतार दी और उसे दीर्घायु बनाया। स्त्रियोंका पति होने लायक उसे तरुण बनाया।

वृद्धको तरुण बनानेका उपाय यह है कि उस वृद्धके शरीर परसे पुरानी चमडी उतार कर, नई चमडी औषध प्रयोगसे लाना। इससे वृद्ध तरुण होता है।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

२५ प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचं
अस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुः
अस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ ऋ. १।११६।२५

हे (अश्विनौ) अश्विनौ ! मैंने (वां दंसांसि प्र अवोचम्) तुम्हारे कर्मोंका वर्णन किया है, इसलिए मैं (सुगवः सु-वीरः) उत्तम गाय और उत्तम वीर प्रजाओंवाला होकर (अस्य पतिः स्यां) इस राष्ट्रका स्वामी होऊं, (उत) और (पश्यन्) देखकर कार्य करता हुआ, (दीर्घं आयुः अश्नुवन्) लम्बी आयुको प्राप्त करता हुआ, (अस्तं इव इत्) घरके समान ही (जरिमाणं जगम्यां) बुढापेको प्राप्त होऊं ॥ २५ ॥

उत्तम गौवें घरमें हों। उत्तम सन्तति हों। अधिकार हाथमें हो। ऐसा मनुष्य (पश्यन्) देखकर, विचारपूर्वक, प्रत्येक कार्य करे। और दीर्घ आयु प्राप्त करे और दीर्घ आयुका उपभोग लेकर पश्चात् वह वृद्ध हो। अकालमें वृद्ध बनना योग्य नहीं।

कक्षीवान् दैर्घतमसः औशिजः । स्वनयस्य दानस्तुतिः । त्रिष्टुप् ।

२६ प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति
तं चिकित्वान् प्रति गृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू
रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ ऋ. १।१२५।१

(प्रातः इत्वा) प्रातः काल आकर वह (रत्नं) रत्नोंको (प्रातः दधाति) प्रातः काल ही देता है, (तं) इस धनको वह (चिकित्वान्) देखभाल करके तथा (प्रति गृह्य) उसे स्वीकार करके अपने पास (नि धत्ते) रख लेता है, (तेन) इस कारण वह (सु-वीरः) उत्तम वीर युक्त होकर (प्रजां आयुः वर्धयमानः) प्रजा और आयुको बढाता हुआ (रायस्पोषेण सचते) धन और पुष्टिसे संयुक्त होता है ॥ २६ ॥

प्रातःकाल उठकर धन प्राप्त करनेका उद्योग करना चाहिये। जो धन मिले वह लेकर उसकी देखभाल करके उसको ठीक स्थानपर रखना चाहिये। उत्तम वीर पुत्र पौत्रोंसे युक्त होकर, आयुको बढाकर, धन धान्य और पोषण प्राप्त करना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य ऐश्वर्य संपन्न होकर दीर्घ आयु प्राप्त करके उत्तम सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । स्वनयस्य दानस्तुतिः । त्रिष्टुप् ।

२७ दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा
दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते
दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥ ऋ. १।१२५।६

(दक्षिणावतां इत् इमानि चित्रा) दान देनेवालोंके लिए ही ये विलक्षण सम्पत्तियां हैं, (दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः) दान-शीलोंके लिए ही द्युलोकमें सूर्य चमकते हैं, (दक्षिणावन्तः अमृतं भजन्ते) दान देनेवाले ही अमरता प्राप्त करते हैं, और (दक्षिणावन्तः आयुः प्रतिरन्ते) दानशील ही आयु बढाते हैं ॥ २७ ॥

दान देनेवाले अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं। उनके दानकी चारों ओर प्रशंसा होती है और उनका नाम उस दानके कारण सर्वत्र प्रशंसनीय समझा जाता है। इससे उनको अन्तःकरणका समाधान मिलता है, इससे उनकी आयु बडी दीर्घ होती है। अर्थात् दान आयुको बढानेवाला है।

कक्षीवान् दैर्घतमसः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

२८ अधश्वेतं कलशं गोभिरक्तं
कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत् ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः
कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥ ऋ. ९।७४।८

(अध) इसके बाद (गोभिः अक्तं) गायके दूधसे युक्त (श्वेतं कलशं) श्वेत कलशमें (ससवान्) पिया जानेवाला सोम (वाजी कार्ष्मन् न) जिस प्रकार घोडा युद्धमें दौडता है उसी प्रकार (अक्रमीत्) दौडता है, (देवयन्तः मनसा आ हिन्विरे) देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले लोग मन लगाकर इसकी स्तुति करते हैं, यह सोम (कक्षीवते) कक्षीवान् ऋषिको (शतं हिमाय) सौ वर्षतक जीनेके लिए (गोनां) गायोंको देता है ॥२८॥

१ शतं हिमाय गोनां — सौ वर्ष जीनेके लिये गौओंका दान दिया। जिसको गौवें दानमें मिलती हैं वह गौओंका दूध, दही, मक्खन, घी आदि विपुल प्रमाणमें प्राप्त करता है, विपुल प्रमाणमें उन पदार्थोंका सेवन करता है और दीर्घ आयुष्य प्राप्त करता है।

परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः ।

२९ सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते
तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद् बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो
देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ऋ. १।१३२।५

(यत्) जब (शूरः) शूरवीर इन्द्र (क्रतुभिः) अपने बुद्धिसे (जनान् सं ईक्षयत्) मनुष्योंको अच्छी तरह देखता है, तब (श्रवस्यवः) अन्नकी इच्छा करनेवाले (धने हिते) संग्रामके शुरु हो जानेपर शत्रुओंको (तरुषन्त) मारते हैं, (श्रवस्यवः) अन्नके इच्छुक (प्र यक्षन्त) यज्ञ करते हैं। तथा (बाधे) संकट आनेपर (आयुः प्रजावत्) दीर्घायु और प्रजावाले लोग (ओजसा) अपनी शक्तिके अनुसार (तस्मै इत् अर्चन्ति) इसी इन्द्रकी पूजा करते हैं, (दिधिषन्तः धीतयः) धनको धारण करनेकी इच्छावाले बुद्धिमान् (इन्द्र ओक्यं) इन्द्रके घरको जाते हैं, (धीतयः) बुद्धिमान् भक्त (देवान् अच्छा न) देवलोकको सीधे जाते हैं ॥ २९ ॥

दीर्घ आयु और सुप्रजाको प्राप्त करके वे इस ईश्वरकी अर्चना करते हैं और उस ईश्वरके स्थानको प्राप्त करते हैं, और इस तरह मानव जन्म सार्थक बनाते हैं।

दीर्घतमा औचथ्यः । अश्विनौ । जगती ।

३० आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं
मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं
सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ऋ. १।१५७।४

हे अश्वि देवो ! (नः ऊर्जं वहतम्) हमें बल प्राप्त कराओ, (युवं) तुम दोनों (नः मधुमत्या कशया) मीठी चाबुकसे (मिमिक्षतम्) प्रेरणा दो, तथा (आयुः प्रतारिष्टं) आयुको बढाओ और (रपांसि मृक्षतं) पापोंको दूर करो, तथा (सचा-भुवा भवतं) साथ साथ रहनेवाले तुम दोनों (द्वेषः सेधतं) हमसे द्वेषको दूर करो ॥ ३० ॥

मनुष्योंको बल प्राप्त करना चाहिए, जीवन मिठाससे युक्त करना चाहिए। पापोंसे दूर रहना चाहिए और आयुष्य बढाना चाहिए। बलके साथ मीठा जीवन, निष्पापवृत्ति, और दीर्घ जीवन होना चाहिए। बल न हो, जीवनमें कटुता हो, पापी आचरण हो तो प्रथम तो दीर्घ जीवन प्राप्त ही नहीं होगा, और होगा भी तो जीवन सुखी नहीं हो सकता। इस कारण बल प्राप्त करना चाहिये, अपना जीवन आनंदी बनाना चाहिये, पापी आचरण नहीं करना चाहिये और दीर्घ आयु प्राप्त करनी चाहिये।

गृत्समदः (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः ।
अग्निः । जगती ।

३१ त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे
त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे
त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥ ऋ. २।१।११

हे अग्नि देव ! (त्वं दाशुषे अदितिः) तू दानशीलको अविनाशी करता है, (त्वं होत्रा भारती) तू परम बुलानेके योग्य पोषण करनेवाला है, तू (गिरा वर्धसे) वक्तृत्वसे प्रसिद्ध होता है (त्वं शतहिमा इळा असि) तू सौ वर्षकी आयु देनेवाला अन्न है, (त्वं दक्षसे) तू सामर्थ्य देनेवाला है, हे (वसुपते) धनके स्वामिन् ! तू (वृत्रहा सरस्वती) वृत्रको मारनेवाला शूरवीर तथा विद्या है ॥ ३१ ॥

१ अ-दिति— अविनाशी; २ अदिति— अन्न, गौ, ३ भारती— भरण पोषण करनेवाली, ४ इळा-इडा-इला— वाणी, भूमी, दान, उत्साह-वर्धक पेय, अन्न, गौ, दूध । ५ सरस्वती— विद्या । विद्या प्राप्त करके, ज्ञानी बनकर, भरण पोषण अच्छी तरह करना, बल प्राप्त करना, धनका स्वामी बनना, शत्रुको दूर करना और दीर्घ आयु प्राप्त करना ।

गृत्समदः (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः ।
रुद्रः । त्रिष्टुप् ।

३२ त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः
शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्य१स्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो
व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ ऋ. २।३३।२

हे रुद्र ! (त्वा दत्तेभिः) तेरे दिए गए (शंतमेभिः) अत्यन्त कल्याण कारक (भेषजेभिः) औषधियोंके द्वारा (शतं हिमाः अशीय) सौ वर्षोंका उपभोग करूं । (अस्मद्) हमसे (द्वेषः अंहः वि वि वितरं) द्वेष और पापको दूर कर तथा (विषूचीः अमीवाः) समस्त शरीरमें फैलनेवाले रोगोंको (विचातयस्व) बिल्कुल नष्ट कर ॥ ३२ ॥

औषध प्रयोग द्वारा द्वेष भाव, पापकी इच्छा और आमविकारको पूर्ण रीतिसे दूर करके सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करनी चाहिये । बुद्धि और मनकी शुद्धता द्वेष और पाप भाव दूर करनेसे होती है, शरीरकी शुद्धता आम विकार दूर करके की जाती है । इस तरह शरीर, मन और बुद्धि पवित्र करके दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है ।

जब तक शरीरमें आम है, मनमें द्वेष भाव है और बुद्धिमें पाप विचार है तब तक दीर्घ आयु नहीं हो सकती ।

गृत्समदः (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः ।
सरस्वती । अनुष्टुप् ।

३३ त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥
ऋ. २।४१।१७

हे सरस्वति ! (त्वे देव्यां) तुझ देवीमें (विश्वा आयूंषि श्रिता) सब आयु आश्रित हैं, तू (शुनहोत्रेषु मत्स्व) शुनहोत्रके यज्ञोंमें आनन्दित हो, हे देवि ! (नः प्रजां दिदिड्ढि) तू हमें सन्तान दे ॥ ३३ ॥

सरस्वतीमें दीर्घ आयु प्राप्त करनेके सब साधन हैं । सरस्वती विद्यादेवी-ज्ञानदेवी है । इस विद्यादेवीकी सहायतासे मनुष्यके समझमें आ सकता है कि इस भूमि पर मनुष्य किस तरह आचरण करे और बल तथा दीर्घ आयु किस रीतिसे अपनेमें बढावे और किस रीतिसे दीर्घ आयुका उपभोग सुखसे करे ।

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

३४ त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा
ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षे
अश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥ ऋ. २।२७।१०

हे वरुण ! हे (असुर) बलवान् ! तू (ये देवाः ये च मर्ताः) जितने देव और मनुष्य हैं उन (विश्वेषां) सभीका (राजा असि) राजा है, तू हमें (विचक्षे) देखनेके लिए (शतं शरदः रास्व) सौ वर्ष प्रदान कर, हम (सुधितानि) सुखसे युक्त (पूर्वा आयूंषि) पूर्ण आयुको (अश्याम) भोगें ॥ ३४ ॥

हे असुर वरुण ! तू सबका शासक है। इसलिये हमें पूर्ण रूपसे सौ वर्षकी दीर्घ आयु दे। यहां यह मांगनेवाला बीस पचीस वर्षका तरुण होगा। इसलिये इस आयुमें वह इच्छा करता है कि मैं पूर्ण सौ वर्ष जीवित रहूं। इसीलिये १२० वर्षोंकी आयु मनुष्यको प्राप्त होनी चाहिये। मनुष्यको ऐसी इच्छा २० वर्षके पश्चात् होती है। इसके पश्चात् वह सौ वर्षकी आयु भोगे।

गाथिनो विश्वामित्रः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३५ प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेः
आ मातरा विविशुः सप्त वाणीः।
परिक्षिता पितरा सं चरेते
प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ ऋ. ३।७।१

(शितिपृष्ठस्य धासेः) नाली पीठवाले सबको धारण करनेवाले अग्निकी (ये आरुः) जो किरणें या ज्वालायें निकलती हैं, वे (मातरा) द्युलोक और पृथ्वीलोकमें तथा (सप्तवाणी) सात प्रकारकी वाणियोंमें-सात छंदोंके मंत्रोंमें- (आ विविशुः) प्रविष्ट होती हैं, (पितरा) पालन करनेवाले दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक (परिक्षिता) चारों ओर देखते हुए (सं चरेते) सर्वत्र संचार करते हैं, तथा (प्रयक्षे) यज्ञ करनेवालेको (दीर्घं आयुः प्र सर्स्राते) दीर्घ आयु प्रदान करते हैं।

यज्ञ करके प्रज्वलित अग्निमें योग्य हवनसामग्रीका हवन करनेसे जो शुद्ध वायु बनता है, उसमें रहनेसे मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है।

गाथिनो विश्वामित्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

३६ इमे भोजा अंगिरसो विरूपा
दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विश्वामित्राय ददतो मघानि
सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ऋ. ३।५३।७

(इमे) ये (भोजाः विरूपाः अंगिरसाः) भोजन देनेवाले, विशेष सुन्दर रूपवाले आंगिरस तथा (असुरस्य दिवः वीराः पुत्रासः) प्राणोंके दाता रुद्रके दिव्य गुणवाले वीरपुत्र मरुत (सहस्रसावे) सहस्रों दान देनेवाले (विश्वामित्राय) विश्वामित्रको (मघानि ददतः) धनैश्वर्य देते हुए (आयुः प्रतिरन्ते) उसकी आयु बढाते हैं ॥ ३६ ॥

१ अंगिरसाः— अंगोंमें रहनेवाले जीवन रसकी विद्या जाननेवाले, इस अंग रस विद्याको जाननेसे मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

२ भोजाः— भोजन तैयार करनेमें प्रवीण।

३ असु-रः— प्राण शक्ति बढानेकी विद्या जाननेवाले।

४ दिवः वीराः— दिव्य गुणोंके वीर, वीर (वीरयति शत्रून्) दुष्टोंको दूर करनेवाले।

५ पुत्राः (पुनन्ति त्रायन्ते)— पवित्र करके रक्षण करते हैं।

६ विश्वामित्रः— सबका मित्र, द्वेष न करनेवाला।

७ सहस्रसावे— सहस्रों दान देनेवाले।

ये दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं।

वामदेवो गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३७ यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित्
पदि षिताममुंचता यजत्राः।
एवो ष्वस्मन्मुंचता व्यंहः
प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ऋ. ४।१२।६

हे (यजत्राः वसवः) पूजनीय तथा सबको बसानेवाले देवो ! (यथा ह) जिस प्रकार तुमने (त्यद् पदि सितां) उस पैरोंसे बांधी गई (गौर्यं) गायको (चित्) भी (अमुंचत) छुडाया था, (एव) उसी प्रकार (अंहः) पापोंको (अस्मद् सु वि मुंचत) हमसे अच्छी तरह छुडाओ, हे अग्ने ! (नः प्रतरं आयुः प्रतारी) हमारी बढी हुई आयुको और बढाओ ॥ ३७ ॥

जैसे बंधी गायको छोड देते हैं, उस तरह पापसे हमें मुक्त करो। पापके बंधनसे हमें छुडावो। (नः प्रतरं आयुः प्रतारी) हमारी दीर्घ आयुको और दीर्घ करो पापोंके दूर होनेसे दीर्घ आयु और अधिक लंबी होती है। (अंहः अस्मत् सु वि मुंचत) पापसे हमें उत्तम रीतिसे विशेष मुक्त करो, पापसे उत्तम रीतिसे मुक्त होनेका अर्थ शरीर, इंद्रियां, मन और बुद्धिसे पाप विचारको समूल हटाना है।

वामदेवो गौतमः । अश्विनौ । गायत्री ।

३८ एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः ।
दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ऋ. ४।१५।९

हे (अश्विना देवौ) अश्वि देवो ! (एष वां कुमारः) यह तुम्हारा पुत्र (साहदेव्यः सोमकः) दिव्य गुणोंसे युक्त तथा सोमयज्ञ करनेवाला होकर (दीर्घायुः अस्तु) दीर्घ आयुवाला हो ॥ ३८ ॥

१ कुमार— कुमार अवस्थाका मनवाला । जिसका मन कुमार अवस्थाके समान पवित्र शुद्ध होता है ।

२ साहदेव्यः— देवोंके साथ रहनेवाला । (देवैः सहितः) दिव्य भावोंके साथ रहनेवाला ।

ऐसा जो होता है वह दीर्घायु प्राप्त करता है ।

वामदेवो गौतमः । अश्विनौ । गायत्री ।

३९ तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् ।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥ ऋ. ४।१५।१०

हे (अश्विना देवौ) अश्वि देवो ! (युवं) तुम दोनों (तं कुमारं साहदेव्यं) उस कुमार सहदेवके पुत्रको (दीर्घायुषं कृणोतन) दीर्घायु वाला बनाओ ॥ ३९ ॥

वामदेवो गौतमः । दधिक्राः । अनुष्टुप् ।

४० दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥
ऋ. ४।३९।६

हमने (जिष्णोः) जय प्राप्त करानेवाले (वाजिनः) बलवान् तथा (अश्वस्य) वेगसे दौडनेवाले (दधिक्राव्णः) दधिक्रा नामक घोडेकी स्तुति (अकारिषं) की, वह (नः मुखा) हमारी मुखादि इन्द्रियोंको (सुरभिः करत्) उत्तम सुगन्धि युक्त करे, तथा (नः आयूंषि तारिषत्) हमारी आयुओंको बढावे ॥ ४० ॥

मुखकी रुचि उत्तम हो, तथा मुखमें दुर्गन्धी न हो तो आयु दीर्घ होती है । मुख अति स्वच्छ करना चाहिये । दो दांतोंके मध्यमें अन्नका अंश नहीं रहना चाहिये । यह अन्नका अंश दो दांतोंके मध्यमें रहता है और वहां सडता है जिससे मुखमें दुर्गन्धी आती है । यह दुर्गन्धी आयुको क्षीण करती है, इसलिये कहा है (नः मुखा सुरभिः करत् नः आयूंषि तारिषत्) हमारे मुख सुगंधी युक्त हों जिससे हमारी आयु बढे ।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

४१ स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोः
अग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषु
उषर्भुद् भूदतिथिर्जातवेदाः ॥ ऋ० ६।४।२

(वस्तोः चक्षणिः न) दिनमें जिस प्रकार सूर्य चमकता है, उसी प्रकार (विभावा) विशेष चमकनेवाला (वेद्यः) सबके द्वारा जानने योग्य (सः) वह अग्नि (नः वन्दारु चनः धात्) हमारे लिए प्रशंसनीय अन्नको देवे, (यः जात-वेदाः अतिथिः) जो सम्पूर्ण उत्पन्न हुओंको जाननेवाला, अतिथि अग्नि (मर्त्येषु विश्वायुः अमृतः) मर्त्योंमें सम्पूर्ण आयुको देनेवाला तथा अमर है, वह (उषर्भुद् भूत्) उषः कालमें प्रज्वलित होता है ॥ ४१ ॥

१ जात-वेदाः— उत्पन्न हुओंको जाननेवाला, अथवा वेदोंको जाननेवाला, या वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं ।

२ वन्दारु चनः नः धात्, मर्त्येषु विश्वायुः— प्रशंसनीय अन्न खानेसे पूर्ण आयु प्राप्त होती है । अप्रशस्त अन्न खानेसे आयु घटती है ।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

४२ द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं
भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावको
अश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ऋ ६।४।३

(न) अब (द्यावः) द्युलोक भी (यस्य अभ्वं पनयन्ति) जिसके कामकी प्रशंसा करते हैं, वह (सूर्यः न शुक्रः) सूर्यके समान तेजस्वी होकर (भासांसि वस्ते) अपने तेजोंको फैलाता है, (यः) जो यह अग्नि (पावकः) शुद्धता करनेवाला और (अजरः) जरामरण रहित है, वह (अश्नस्य चित्) बहुत खानेवाले शत्रुके (पूर्व्याणि) पुराने नगरोंको (शिश्नथत्) तोडता है ॥ ४२ ॥

पावकः अजरः— जो शुद्ध रहता है वह जरा रहित

होता है। वृद्धावस्था उसको जल्दी आती है कि जो अपवित्र आचरण करता है। शुद्ध आचरण करनेसे आयु बढ़ी होती है।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

४३ नू नो॑ अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति
वेर्षि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ऋ. ६।४।८

(अग्ने) अग्ने ! (नः नू) हमें शीघ्र ही (अ-वृकेभिः पथिभिः) क्रूर कर्मियोंसे रहित मार्गोंसे (रायः) धनैश्वर्य तक (स्वस्ति वेषि) कुशलता पूर्वक पहुंचा, और (अंहः पर्षि) पापसे पार करा, तू (सूरिभ्यः गृणते सुम्नं रासि) विद्वानों तथा स्तुति करनेवालेको सुख प्रदान करता है, हम (सु-वीराः) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त होकर (शतहिमाः मदेम) सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें ॥ ४३ ॥

१ अ-वृकेभिः पथिभिः रायः स्वस्ति नेषि— सरल मार्गोंसे ऐश्वर्य तक सुखसे पहुंचाओ।

२ अंहः पर्षि— पापसे हमें दूर रख।

३ सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम संतानोंके साथ हम सौ वर्ष जीवें।

सरल आचरण करना और निष्पाप रहना इनसे दीर्घायु होती है।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

४४ अश्याम तं काममग्ने तवोती
अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तो
अश्याम द्युम्नमजराजरं ते॥ ऋ. ६।५।७

हे अग्ने ! (तव ऊती) तेरे संरक्षणकी सहायतासे (तं कामं अश्यामः) उस अपनी अभिलाषाको प्राप्त करें, हे (रयिवः) धन-युक्त अग्ने ! (सुवीरं रयिं अश्याम) उत्तम सन्तानयुक्त धनैश्वर्यको प्राप्त करें, तथा (वाजयन्तः) अन्न तथा बलकी इच्छा करनेवाले हम (वाजं अभि अश्याम) अन्न तथा बलको प्राप्त करें, और (अ-जर) हे वृद्ध न होनेवाले अग्ने ! (ते अ-जरं द्युम्नं अश्याम) तेरे वृद्ध न बनानेवाले तेजको हम प्राप्त करें ॥ ४४ ॥

उत्तम सुरक्षित स्थितिमें रहना, उत्तम संतान प्राप्त करना, उत्तम ऐश्वर्य युक्त होना, उत्तम अन्न खाकर उत्तम बल प्राप्त करना इससे वृद्धावस्था दूर होती है अर्थात् दीर्घजीवन प्राप्त होता है।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। अग्निः। द्विपदा विराट्।

४५ वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ऋ. ६।१०।७

(द्वेषांसि वि इनुहि) द्वेषोंको हमसे दूर कर और (इळां वर्धय) हमारी बुद्धि तथा ज्ञानको बढा, हम (सु-वीराः) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त होकर (शतहिमाः मदेम) सौ वर्ष आनन्दसे रहें ॥ ४५ ॥

मनसे द्वेषभावको दूर करना, ज्ञानसे बुद्धिको बढाना और सुसंतानसे युक्त होना इससे सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त होती है। मनमें द्वेषभाव रहनेसे अपना रक्त दोषी होता है और आयु कम होती है। इळाका अर्थ है बुद्धिको ज्ञानसे शुद्ध करना भाषा शुद्ध रखनी। बोलनेमें द्वेषके शब्द न आयें। सुसंतान घरमें हो तो मन प्रसन्न रहता है। ये गुण आयु दीर्घ करते हैं।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। अग्निः। पुरस्ताज्ज्योतिः।

४६ स त्वं नो अर्वन्निदायाः
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ऋ. ६।१२।६

हे (अर्वन् अग्ने) बलशाली अग्ने ! (स त्वं) वह तू (विश्वेभिः अग्निभिः इधानः) अपनी सम्पूर्ण ज्वालाओंसे प्रज्वलित होता हुआ (निदायाः) निन्दनीय लोगोंसे (नः वेषि) हमें दूर रख, और (रायः) हमें धन दे, तथा (दुच्छुना वि यासि) बुरे आदमियोंका नाश कर, जिससे हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्र वाले होकर (शतहिमाः मदेम) सौ वर्ष तक आनन्द भोगें ॥ ४६ ॥

निन्दनीय दुराचारी लोगोंको हमसे दूर रखो। इससे हमारा मन शान्त रहेगा और हमें सौ वर्षकी आयु प्राप्त होगी।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

४७ वम्रा सूनो सहसो नो विहाया
अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ऋ. ६।१३।६

हे (वम्रा सहस सूनो अग्ने) चमकनेवाले बलके पुत्र अग्ने! (नः विहायाः) हमें बडा करके (तोकं तनय वाजि दाः) पुत्र पौत्र और घोडे दे। हम (विश्वाभिः गीर्भिः) सम्पूर्ण ज्ञानोंसे (पूर्तिं अभि अश्याम्) पूर्णताको प्राप्त करें, तथा (सु-वीराः) उत्तम पुत्रोंसे युक्त होकर (शत-हिमाः मदेम) सौ वर्ष तक आनन्दित रहें ॥ ४७ ॥

ज्ञानसे पूर्णताको प्राप्त करके उत्तम संतानोंसे युक्त होकर, सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो सकती है। (गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्यां) ज्ञानसे पूर्णताको प्राप्त करना। यह दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उत्तम साधन है।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। अग्निः। अनुष्टुप्।

४८ ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः॥
ऋ. ६।१६।२७

(त्वा ऊताः) तेरे द्वारा रक्षित होकर (ते ते अर्यः) वे सब वीर (अरातीः तरन्तः) शत्रुओंको पार करते हुए (अरातीः वन्वन्तः) शत्रुओंको मारते हुए तथा (इषयन्तः) अन्न प्राप्त करते हुए (विश्वं आयुः) सम्पूर्ण आयुका उपभोग करते हैं ॥ ४८ ॥

वीर सुरक्षित होकर, शत्रुओंको दूर करके, उत्तम अन्न प्राप्त करके उत्तम अन्न भक्षण करके, दीर्घ आयुको प्राप्त होते हैं।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रः। द्विपदा त्रिष्टुप्।

४९ अया वाजं देवहितं सनेम
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ऋ. ६।१७।१५

(अया) इस प्रकार हम (देव-हितं) देवोंके हितकारी (वाजं) अन्न और बलको (सनेम) प्राप्त करें तथा (सु-वीराः) उत्तम पुत्रवाले होकर हम (शतहिमाः मदेम) सौ वर्ष तक आनन्दका उपभोग करें ॥ ४९ ॥

देवहितं वाजं सनेम, सुवीराः शतहिमाः मदेम- श्रेष्ठ पुरुषोंका हित करनेवाला अन्न खाकर, उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर, सौ वर्षकी आयु आनन्दसे भोगें।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

५० न यं जरन्ति शरदो न मासा
न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः
स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ऋ. ६।२४।७

(यं) जिस इन्द्रको (शरदः मासाः द्यावः) वर्ष, मास और दिन (न न न अवकर्शयन्ति) कमजोर नहीं कर सकते, इस (वृद्धस्य) महान्‌की (तनूः) देह (स्तोमेभिः उक्थैः च शस्यमाना) स्तोत्रोंसे प्रशंसित होकर (वर्धताम्) बढे ॥ ५० ॥

वर्ष, महिने और दिन मनुष्यके पास आते हैं और मनुष्यकी उतनी आयु कम करते हैं। हम उन वर्षों, महिनों और दिनोंमें ईश्वरके स्तोत्र गायें और मन उन स्तोत्रोंमें लगायें, जिससे हमारी आयु कम न होकर, बढती ही रहे। ईश्वरके स्तोत्रोंमें मन लगानेसे आयु बढती है।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

५१ सचस्व नायमवसे अभीके
इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ऋ. ६।२४।१०

हे (इन्द्र) इन्द्र! (अभीके) संग्राममें (अवसे) संरक्षणके लिए हमारे (नायं सचस्व) नेताके साथ रह तथा (तं) उस नायकको (इतः वा) इधर और उधरके (रिषः) शत्रुओंसे (पाहि) रक्षा कर, (एनं) इसको (अमा अरण्ये च रिषः पाहि) घर और जंगलमें शत्रुओंसे रक्षा कर और हम भी (सु-वीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम सन्तानवाले होकर सौ वर्ष तक आनन्दित रहें ॥ ५१ ॥

शत्रुओंसे पूर्ण रीतिसे सुरक्षित होकर रहना यह दीर्घ जीवन प्राप्त करनेका उत्तम साधन है। इधरसे या उधरसे

शत्रु हम पर हमला करेगा ऐसा भय रहा तो आयु कम होगी। निर्भय होनेसे आयु बढती है।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

५२ वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं
वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोः
वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम्॥

ऋ. ६।३८।४

(यं इन्द्रं) जिस इन्द्रको (यज्ञः वर्धात्) यज्ञ बढाता है, (उत) और (सोमः वर्धात्) सोम बढाता है, (गिरः उक्था मन्म च) साम, स्तोत्र और प्रशंसायें बढाती हैं (अक्तोः यामन्) रात्रिके चले जानेपर (एनं उषसः) इसको उषायें बढाती हैं, उसे (शरदः मासाः द्यावः अह च वर्धात्) वर्ष, मास और चमकनेवाले दिन भी बढावें ॥ ५२ ॥

यज्ञकी मनःप्रवृत्ति, सोम, सामगायन, स्तोत्र, मननीय काव्य ये सब मनुष्यकी आयुको बढानेवाले हैं।

नरो भारद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

५३ असौ एतन्मह्याङ्गूषमस्मा
इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य
इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च॥ ऋ. ६।३।५

(यथा) जिस कारण यह (इन्द्रः) इन्द्र (महति वृत्रतूर्ये) महान् संग्राममें (अविता) रक्षा करनेवाला (वृधः च) बढानेवाला तथा (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयुको भोगनेवाला (असत्) हुआ है, इसलिये (असै) इसके लिए (एतत् महि आंगूषं) यह महान् स्तोत्र है, तथा (असै इन्द्राय मतिभिः स्तोत्रं अवाचि) इस इन्द्रके लिए बुद्धि पूर्वक स्तोत्र कहे जाते हैं ॥ ५३ ॥

जिस प्रकार इन्द्र अपने शौर्यसे अपने शत्रुको मारकर सबकी सुरक्षा करता है और पूर्ण आयुका उपभोग करता है, उस प्रकार मनुष्य वीरता धारण करे, शत्रुको पराभूत करके विजय प्राप्त करे और दीर्घ आयुका उपभोग करे।

शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः)। अग्निः। महा सतोबृहती।

५४ विश्वासां गृहपतिर्विशामसि
त्वमग्ने मानुषीणाम्।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः
समेद्धारं शतं हिमाः
स्तोतृभ्यो ये च ददति॥ ऋ. ६।४८।८

हे (अग्ने) अग्ने! (त्वं) तू (मानुषीणां विश्वासां विशां) मनुसे उत्पन्न हुई सब प्रजाओंके (गृहपतिः असि) घरका स्वामी है, हे (यविष्ठ) बलवान् अग्ने! (सं इद्धारं) तुझको अच्छी तरह प्रदीप्त करनेवाले मेरी (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक (शतं पूर्भिः) सैकडों पालनके साधनोंसे अंहसः पाहि) पापोंसे रक्षा कर, (ये च स्तोतृभ्यः ददति) और जो स्तोताओंके लिए दान देते हैं उनकी भी रक्षा कर ॥ ५४ ॥

जो अपने घरमें अग्नि रखते हैं और उसमें ऋतुके अनुसार हवन करते हैं वे पापसे बचते हैं तथा वे दान देते हैं और वे सौ वर्षकी आयु प्राप्त करते हैं।

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

५५ महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्
रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम्।
येन वयं सहसावन् मदेम
अविक्षितास आयुषा सुवीराः॥ ऋ. ७।१।२४

हे अग्ने! (सुवितस्य विद्वान्) उत्तम धनको जाननेवाला तू (नः सूरिभ्यः) हम विद्वानोंके लिए महः बृहन्तं रयिं आवह) महान् ऐश्वर्य दे, हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने! (येन वयं) जिस धनसे हम (अविक्षितासः) क्षीण न होते हुए (सु-वीराः) उत्तम पुत्रोंसे युक्त होकर (आयुषा मदेम) दीर्घ आयुसे युक्त होकर आनन्दित हों ॥ ५५ ॥

विद्वानोंको धन मिलना चाहिये, जिससे वे उत्तम अन्न खाकर बलवान् बनें, क्षीण न हों और उत्तम वीर संतान उत्पन्न करके दीर्घ आयुको प्राप्त करें।

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सूर्यः । पुर उष्णिक् ।

५६ तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥
ऋ. ७।६६।१६

(तत् देवहितं) वह देवोंका हितकारी (शुक्रं) तेजस्वी (चक्षुः) आंखरूपी सूर्य (उत् चरत्) उदय हो गया है, इसकी कृपासे हम (शतं शरदः पश्येम) सौ वर्ष तक देखें, (शतं शरदः जीवेम) सौ वर्ष तक जीवें ॥ ५६ ॥

सूर्य प्रकाशसे आयु दीर्घ होती है ।

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

५७ अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाहि
उषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे
गोमदश्वावद् रथवच्च राधः ॥ ऋ. ७।७७।५

हे (देवि उषः) देवी उषे ! (नः आयुः प्रतिरन्ती) हमारी आयुको बढाती हुई (नः इषं) हमारे लिए अन्न तथा (गोमत् अश्वावत् रथवत् च) गाय, घोडे तथा रथ युक्त (राधः) धनैश्वर्य को (दधती) धारण करती हुई (अस्मे) हमारे लिए (श्रेष्ठेभिः भानुभिः) उत्तम किरणोंसे युक्त होकर (विभाहि) अच्छी तरह चमक ॥ ५७ ॥

योग्य अन्न तथा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करके सूर्यकी किरणोंसे हम अपनी आयु दीर्घ करें ।

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मण्डूकाः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप् ।

५८ गोमायुरदादजमायुरदात्
पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः
शतानि सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥
ऋ. ७।१०३।१०

(नः) हमें (गोमायुः अदात्) गायें दीं, (अजमायुः अदात्) भेड बकरियां भी दीं, (पृश्निः अदात्) चितकबरी गायें भी दीं तथा (हरितः वसूनि) कांक सुनहरे रंगके धन भी दिए, ऐसे (मण्डूकाः) संतुष्ट लोग (सहस्रसावे) हजारों तरहके ऐश्वर्यके लिए (गवां शतानि ददतः) सैकडों गायें देते हुए (आयुः प्रतिरन्ते) हमारी आयुको बढाते हैं ॥ ५ ॥

गायोंसे प्राप्त होनेवाले दुग्ध आदिको खाकर आयु दीर्घ होती है । मण्डूकाः मदतेर्वा मोदतेः कर्मणः (निरु. ८।६)– जो आनन्दित रहते हैं उनको मण्डूक कहते हैं । यह आनन्द वृत्तिवालोंका सांकेतिक नाम है । वृष्टि होनेसे मण्डूक आनंदित होते हैं । आनन्दित वृत्ति रखनेसे आयुकी वृद्धि होती है ।

मनुर्वैवस्वतः । दम्पती । गायत्री ।

५९ पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभा हिरण्यपेशसा ॥ ऋ. ८।३१।८

(तौ) वे दोनों पति-पत्नी (कुमारिणा पुत्रिणा) कुंवारी पुत्रोंके साथ (हिरण्य-पेशसा) सोनेके अलंकारोंको धारण करके (विश्वं आयुः व्यश्नुतः) सम्पूर्ण आयुका उपभोग करें ॥ ५९ ॥

सुवर्णके अलंकार शरीर पर धारण करनेसे, सुवर्णका घर्षण शरीरके साथ होता है । इस घर्षणसे सुवर्णका अंश शरीरमें प्रविष्ट होता है । इस सुवर्णके शरीरमें प्रविष्ट अति सूक्ष्म अंशसे आयु दीर्घ होती है । सुवर्णभस्म सेवन करनेसे अथवा अन्य रीतिसे सुवर्णका अति सूक्ष्म अंश शरीरमें जानेसे भी आयुष्य वृद्ध होता है ।

सुपर्णः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

६० इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं
रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं
दीर्घायुत्वाय प्रतिरतं न आयुः ॥ ऋ. ८।५९।७

(इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण (सौमनसं अदृप्तं) उत्तम मनवाले तथा निरभिमानी हैं, वे दोनों (यजमानेषु) यजमानोंमें (रायस्पोषं धत्तं) धन और पुष्टिको रखते हैं, वे ही (अस्मासु) हममें (प्रजां पुष्टिं भूतिं) प्रजा, पुष्टि और ऐश्वर्यको रखें, और (दीर्घायुत्वाय नः आयुः प्र तिरतं) दीर्घायुके लिए हमारी आयुको बढावें ॥ ६० ॥

(सौमनसं) उत्तम परिशुद्ध मन रखनेसे तथा (अ-दृप्तं) घमंडकी भावना मनमें न रखनेसे धन, पोषण सुप्रजा और ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है और दीर्घ आयु अतिदीर्घ हो सकती है। उत्तम शुद्ध मन और घमंडका अभाव ये दो शुभगुण दीर्घायुके देनेवाले हैं।

त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

६१ ईशे यो विश्वस्या देववीतेः
ईशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नौ
अरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः॥ ऋ. १०।६।३

(यः विश्वस्य देववीतेः ईशे) जो सम्पूर्ण यज्ञोंका स्वामी है, तथा (उषसः व्युष्टौ ईशे) जो उषःकालमें यज्ञोंका स्वामी है, तथा (शूषैः अरिष्टरथः) शत्रुके बलोंसे अहिंसित रथवाला जो यजमान (यस्मिन् अग्नौ) जिस अग्निमें (मना हवींषि स्कभ्नाति) मननीय हवियोंको डालता है वह (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयुवाला होता है॥ ६१॥

शूषैः अरिष्टरथः— रोगरूपी शत्रुओंसे जिसका शरीररूपी रथ कमजोर नहीं किया गया है। आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च (कठोपनिषद्) आत्माको रथका स्वामी और शरीरको रथ जानो।

जो यज्ञमें मन.पूर्वक शुद्ध हवियोंका अर्पण करता है, वह पूर्ण आयुको प्राप्त करता है।

त्रितः आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

६२ स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्याः
विश्वायुर्धेहि यजथाय देव।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैः
उरुष्या णे उरुभिर्देव शंसैः। ऋ. १०।७।१

हे (अग्ने देव) अग्ने! (यजथाय) यज्ञ करनेसे (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथिवीलोकमें (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण हो, तथा (विश्वायुः धेहि) हमें सम्पूर्ण आयु प्रदान कर, हे (दस्म) सुन्दर अग्ने! हम (तव प्रकेतैः सचेमहि) तेरी किरणोंसे बढ़ें, (उरुष्या नः) संरक्षणकी इच्छावाले हम, हे देव! तुझे (उरुभिः शंसैः) बड़ी बड़ी स्तुतियोंसे बढाते हैं॥ ६२॥

यज्ञ करनेसे पृथिवीपर मनुष्योंका कल्याण होता है, और मनुष्यको पूर्ण आयु मिलती है।

वसुर्भारद्वाजः। पवमानः सोमः। जगती।

६३ यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषत
अयोहतं योनिमा रोहसि द्युमान्।
मघोनामायुः प्रतिरन् महि श्रवः
इन्द्राय सोमपवसे वृषा मदः॥ ऋ. ९।८०।२

हे (वाजिन्) बलवान् सोम! (अयोहतं यं त्वा) लोहेसे कूटे गए तुझे (अघ्न्याः) गायें (अभि अनूषत) चारों ओरसे घेरती हैं, ऐसा वह तू (द्युमान्) तेजस्वी होकर (योनिं आ रोहसि) बर्तनमें जाता है, तथा हे (सोम) सोम! (महि श्रवः वृषा, मदः) महान् यशवाला, बलवान् और आनन्द देनेवाला तू (मघोनां आयुः प्रतिरन्) यज्ञ करनेवालोंकी आयुको बढाता हुआ (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (पवसे) पवित्र होता है, छनता है॥ ६३॥

महान् यश, बल और आनंद प्राप्त होनेसे आयु दीर्घ होती है, इसलिये शुद्ध मार्गसे यश मिले, बल बढे और आनंद प्राप्त हो ऐसा प्रयत्न करना योग्य है।

दैवोदासिः प्रतर्दनः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्।

६४ वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व
सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः
समुस्रियाभिः प्रतिरन् न आयुः॥

ऋ. ९।९६।१४

हे सोम! (वाजयुः) बलवान् तू (सिन्धुभिः सं उस्रियाभिः सं) नदीके जलके तथा गायके दूधके साथ अच्छी तरह मिलकर (नः आयुः प्रतिरन्) हमारी आयुको बढाते हुए (देववीतौ) यज्ञमें (वृष्टिं) वृष्टिके समान (दिवः) ऊपरसे (शतधारः सहस्रसा) सैंकडों तथा हजारों धाराओंसे (कलशे पवस्व) कलशमें छनता जा॥ ६४॥

सोम रसमें जल तथा गायका दूध मिलाकर उसको योग्य प्रमाणमें पीनेसे आयु बढती है।

Regd. No. G. 71

जून १९६२



७० नये पैसे

वर्ष ४३

वैदिक धर्म

अंक ६

क्रमांक १६२ : जून १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

"वैदिक धर्म"

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आय धर्मोंको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा. व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	३)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता– (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत सहिता– (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता– (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

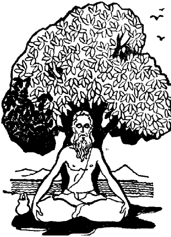
(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५७

वैदिकधर्म

स्वराज्यकी अर्चना

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि
न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो
हनो वृत्रं जया अपः अर्चन्ननु स्वराज्यम्॥
(ऋ. १।८०।३)



हे इन्द्र ! (प्र इहि) शत्रु पर चढता जा, (अभि इहि) चारों ओरसे शत्रु पर चढता जा और (धृष्णुहि) शत्रुओंको मार, (ते वज्रः न नियंसते) तेरे वज्रको कोई रोक नहीं सकता, (हि) क्योंकि (ते शवः) तेरा बल (नृम्णं) शत्रुओंको झुकानेवाला है और लोगोंका कल्याण करनेवाला हैं इसलिए तू (वृत्रं हनः) घेरनेवाले शत्रुओंको मार और (अपः जय) पानीको जीत कर अपने अधिकारमें रख तथा (स्वराज्यं अनु अर्चन्) स्वराज्यकी उपासना कर ।

वीरोंको हमेशा स्वराज्यकी उपासना करनी चाहिए । वे कभी भी पराधीन न हों, अतः उन्हें हमेशा सावधान रहना चाहिए । अपने देश पर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको मारना चाहिए । राष्ट्रमें वीर पुरुषोंका संगठन करके हमें दास बनानेके लिए आनेवाले शत्रुओंको जीतना चाहिए, तभी स्वराज्यकी उपासना अच्छी तरह हो सकेगी ।



स्वाध्याय-मंडल-वृत्त

इस महिने वेदमुद्रणनिधिमें आगेकी रकम इस प्रकार जमा हुई—

श्री. बालजीभाई दयाळजीभाई, दीव		२५
,, हरिलाल नगीनदास पटेल, पारडी		२०
,, कुमुदलाल एम गांधी, वापी		२०
,, नरेन्द्र मूळजी आणि दुलेराय मूळजी	माझगांव मुंबई १०	५
,, नरेन्द्र मूळजी आणि दुलेराय मूळजी,	माझगांव मुंबई १०	५

आशीर्वाद टीकीट

श्री. मधुकर राजाराम पेठे	नाशिक शहर	५
,, कन्हैयालाल बंकटलाल कोहाटी	,,	५
,, केशव विष्णु मुळे	,,	३
,, दातार	गोरेगांव मुंबई	१
,, दीपक मंडारकर	औरंगाबाद	५
,, विठ्ठलराव देशपान्डे	औरंगाबाद	५
,, फकीरचन्द गुलाबचंद	,,	२
	कुल रु.	१०१
	पूर्व प्रकाशित रु.	१,१९,४९३·५३
	कुल जमा रु.	१,१९,५९४·५३

इस प्रकार धन जमा हुआ। सामवेदकी 'मराठी अर्थ' और 'हिन्दी अर्थ' की दो भिन्न-भिन्न पुस्तकें छापी जा रही हैं। करीब-करीब ५०० मंत्र छप चुके हैं, आगेकी छपाई जारी है।

हिन्दीमें 'ब्रह्मविद्या' छप रही है। 'भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी' समाप्ति पर है। गुजरातीमें 'मेघाजनन' का भाग छप रहा है।

मंत्री— स्वाध्याय-मंडल, पारडी

मातृभूमिके उद्धारके लिये अपना समर्पण

(लेखक— श्री. दा. सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी जि. सूरत)

जनताने अपने प्रतिनिधि चुन कर दिये। अब ये भारत वर्षका राज्य चलायेंगे। इस राज्य चलानेके कार्यमें उन प्रतिनिधियोंकी दृष्टि कैसी रहनी चाहिये, इस विषयमें अथर्वा ऋषि अथर्ववेदमें अपने मातृभूमिकी उपासना करनेके सूक्तमें कहता है—

उपस्थाः ते अनमीवा अयक्ष्माः
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमानाः
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥

अथर्ववेद १२।१।६२

'हे भारत भूमे! तुम्हारी सेवा करनेके लिये तुम्हारे समीप हम उपस्थित हुए हैं, अतः हम नीरोग तथा आरोग्य संपन्न रहें। और तुम्हारेसे उत्पन्न हुए अन्नादि पदार्थ हमें प्राप्त हों, हम ज्ञान और विज्ञान संपन्न होकर दीर्घ आयुवाले बनें, और हम तुम्हारे उद्धारके लिये अपना बलिदान करनेवाले हों।'

मातृभूमिके उद्धार करनेके लिये आवश्यक हुआ तो, अपना बलिदान करनेकी तैयारी इन प्रतिनिधियोंकी होनी चाहिये, अर्थात् मंत्री अथवा उपमंत्री या अन्य अधिकारी बनकर अपना स्वार्थसाधन करनेवाले न बनें, परंतु अपनी मातृभूमिका उद्धार करनेके लिये जो स्वार्थ त्याग करना पडे, वह करनेकी तैयारी इन प्रतिनिधियोंमें होनी चाहिये। अर्थात् राज्यशासन शासन करनेवालोंका आर्थिक लाभ ही सिद्ध करनेवाला ही न बने, अपितु उस शासनपद्धतिसे मातृभूमिका सर्वांगीण उन्नति होनी चाहिये और इस सर्वांगीण अभ्युदयके लिये जो त्याग करना आवश्यक हो वह करनेकी तैयारी इन प्रतिनिधियोंकी होनी चाहिये। अब इस मंत्रमें राज्यशासनविषयक जो उपदेश दिया है वह देखिये—

१ ते उपस्थाः— हे मातृभूमि! तेरी सेवा करके तेरा उद्धार करनेके लिये हमें जनताने चुनकर दिया है और अपने अन्य कार्य छोडकर तुम्हारी सेवा करके तुम्हारी सर्वांगीण उन्नति करनेके लिये हम जनताके प्रतिनिधि तुम्हारे समीप आकर उपस्थित हुए हैं। प्रतिनिधि सभामें तुम्हारी उन्नतिके लिये कार्य करनेके अर्थ हम एकत्रित हुए हैं। तुम्हारी उन्नति करना ही हमारा कर्तव्य है।

२ अनमीवा अयक्ष्माः— हम नीरोग और पूर्णतया आरोग्य संपन्न रहें। किसी प्रकारकी बीमारीके कारण हमसे यह मातृभूमिकी सेवा करनेका कार्य न हो सके, ऐसा, कदापि न हो। अति खान पान करनेसे होनेवाले 'अमीव' अर्थात् आमवातादि पेटके रोग हमें बाधा न करें तथा 'यक्ष्मा' आदि संसर्गजन्य रोगोंसे भी हमें बाधा न पहुंचे। अर्थात् हम रोगरहित रहकर तुम्हारी सेवा सतत कर सकें और तुम्हारी उन्नतिमें हमारी बीमारीके कारण बाधा न उत्पन्न हो, यही हमारी हार्दिक इच्छा है।

३ हे पृथिवि! ते प्रसूताः अस्मभ्यं सन्तु— हे मातृभूमे! तेरे ऊपर जो अन्नादि भोग्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे सब तुम्हारे ऊपर रहनेवाले हम लोगोंको मिलें। हम उनसे वंचित रहकर वे दूसरोंको पहुंचें ऐसा कदापि न हो। हम सब उनका भोग करके तुम्हारी सेवा करनेके लिये सामर्थ्य युक्त हों। राज्यशासनकी नीति यही होनी चाहिये कि मातृभूमि पर उत्पन्न हुए धान्य आदि भोग्य पदार्थ मातृभूमिके पुत्रोंके भरण पोषणके लिये मिलते रहें। लालची लोग लाभकी आशासे उनको अन्य देशोंमें भेजें और धन कमावें और अपनी मातृभूमिके लोग भूखसे मरें ऐसा कभी राज्यशासन न हो।

४ नः दीर्घं आयुः— हम प्रजाजनोंकी दीर्घ आयु हो। हम जल्दी न मरें। स्वराज्य शासनसे जनसमुदायकी आयु

बढनी चाहिये। जनता दीर्घायु हो रही है, या अल्पायु हो रही है, इसका विचार करके जनताकी आयु बढती रहे, ऐसे उपाय करनेका कार्य आरोग्य मंत्रीका है। जनताके प्रतिनिधियोंका यह एक कर्तव्य है कि राष्ट्रमें रोग कम होते जांय, आरोग्य बढता जाय और लोग दीर्घायुषी होते जांय।

५ प्रतिबुध्यमानाः— बोध और प्रतिबोध यह ज्ञान प्रसारसे होता है। अतः लोग ज्ञानार्जन द्वारा बोध प्राप्त करें इतना ही नहीं अपितु सुविचार बढाकर प्रतिबोध प्राप्त करनेमें भी वे प्रगति करें। शिक्षणके प्रचारसे लोग बोध प्राप्त करके प्रतिबोधसे भी युक्त हो सकते हैं। अर्थात् राष्ट्र ज्ञान और विज्ञानमें प्रगति और उन्नति करता रहे। यह हो रहा है या नहीं यह देखना जनताके प्रतिनिधियोंका कर्तव्य है।

६ वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम— हे मातृभूमे ! हम तुम्हारे लिये अपना बलिदान करनेके लिये तैयार हैं। मातृभूमिकी उन्नति करनेके कार्य करनेकी अवस्थामें जो त्याग करनेकी आवश्यकता हो वह त्याग मातृभूमिके लिये करनेके लिये हम उद्यत हैं।

इस तरह जनताके प्रतिनिधियोंका कर्तव्य वेदमें कहा है। भारतके प्रतिनिधि विधान सभामें जाकर, मंत्री बनकर या केवल विधान सभाके सदस्य रहकर ये अपने कर्तव्य हैं ऐसा मानेंगे और इनको सिद्ध करनेके लिये यत्नवान् होंगे, तो भारत राष्ट्र निःसंदेह शीघ्र उन्नति कर सकेगा।

सुरभारत्याः प्रचारसाधनानि

✶

सर्वभाषाणां जनन्या गीर्वाणवाण्या गौरवं सर्वैर्विदितचरमिति विषयेऽस्मिन् विस्तृतलेखोऽनावश्यको विशिष्टतया संस्कृतभाषानुरागिणां पुरतः । तस्याः प्रचारसाधनेषु कतिपयविषयाणां निर्देश एवात्र पर्याप्तः ।

१ सर्वेषु नगरेषु ग्रामेषु च संस्कृतोत्साहिनीसभानां संस्कृतानुरागिसभानां वाऽऽयोजनं कर्तव्यं यत्र समवेताश्छात्रा अन्ये च संस्कृतानुरागिणः संस्कृतभाषायामालपेयुः, प्रस्तावान् निबन्धान् वा पठेयुः, अन्त्याक्षरीरूपेण श्लोकप्रतिस्पर्धां कुर्युः, कमपि धार्मिकं सामाजिकं शैक्षणिकं राजनैतिकं वा विषयमभिलक्ष्य चर्चां च कुर्युः ।

२ एतादृशसभासु वक्तृत्वप्रतियोगितायां निबन्धप्रतियोगितायां लघुछात्राणां श्लोकपाठप्रतियोगितायां च पुरस्कारयोजनापि कर्तव्या, येन छात्राणामन्येषां चोत्साहो वर्धेत । धनिकैः संस्कृतानुरागिभिर्महानुभावैरेतादृशप्रतियोगितायोजनार्थमुदारमार्थिकं साहाय्यं प्रदेयम् ।

३ ये संस्कृतभाषां न जानन्ति किन्तु जिज्ञासन्ति तेषां लाभार्थं संस्कृतज्ञैर्विपश्चिद्भिः संस्कृतकक्षायोजनं यावच्छक्यं निश्शुल्करूपेण सुरभारतीसेवाभावनया कर्तव्यम् । महिलार्थमपि तादृशसंस्कृतकक्षाऽऽयोजनं संस्कृतभाषाविशारदाभिर्महिलाभिरवश्यं करणीयम् । महिला यदि संस्कृतभाषाभ्यासं करिष्यन्ति तर्हि तेन न केवलं ता एव लाभान्विता भविष्यन्ति किन्तु तासां सन्तानान्यपि ।

४ समये समये संस्कृतकविसम्मेलनान्याप्यायोजनीयानि तत्र च पूर्ववत् पुरस्कारदिव्यवस्था करणीया ।

५ संस्कृतभाषां लोकप्रियां कर्तुं उद्गौरवविषये सार्वजनिकभाषणान्यपि विद्वद्भिर्देयानि येन संस्कृतभाषाध्ययनं धार्मिकसांस्कृतिकराष्ट्रियचरित्रनिर्माणादिदृष्ट्या कियदावश्यकमिति जनैर्ज्ञायेत तत्र च तेषां रुचिर्वर्धेत ।

६ अभिनयनाटकादिव्यवस्थापि सुरभारतीप्रचाराय जनताया मनोरञ्जनाय च संस्कृतानुरागिधनिकजनसाहाय्येन यथासमयं करणीया ।

७ अचिरेणसंस्कृतभाषा व्यावहारिकीभाषा सम्पद्येतेत्युद्दिश्य संस्कृतज्ञैर्विपश्चिद्भिः परस्परं संस्कृतभाषायामेवालपनीयं पत्रव्यवहारश्च कर्तव्यः । एतेन संस्कृतभाषा प्राक्तनकालदृष्ट्या महत्त्वपूर्णा सत्यपि मृतप्रायेतिजनापवादो दूरीभविष्यति न च सा भृशं कठिनाऽव्यावहारिकी वेति जनैर्ज्ञास्यते ।

८ संस्कृताध्यापनप्रणाल्यामप्युचितपरिवर्तनं वर्तमानपरिस्थितिं छात्राणां मनोवृत्तिं च मनस्सु निधाय शिक्षकमहाभागैः, करणीयम् । संवादसम्भाषणशैली विशिष्टतयावलम्बनीया येन विनैव विशिष्टमायासं छात्राः संस्कृतभाषायामालपितुं प्रावीण्यं च समधिगन्तुं शक्नुयुः ।

९ संस्कृतभाषां लोकप्रियां विधातुं तस्याः सारल्यसम्पादनाय किं कर्तुं शक्यत इति विषयोऽपि विपश्चिद्भिः सगाम्भीर्यं विचारणीयः । भाषणे लेखने च कठिनसमस्तपदानां प्रयोगो न क्रियेत, सुगमाः प्रादेशिकभाषासु च प्रायः प्रयुक्ताः संस्कृतशब्दाः कठिनं सन्धिप्रयोगं विना यदि प्रयुज्यन्ते तर्हि सामान्यशिक्षितजना अपि संस्कृतभाषणान्यवगन्तुं शक्नुवन्तीति मेऽनुभवः । भृशमावश्यकानां पञ्चलकाराणां प्रयोग एव पर्याप्त इति मन्तुं शक्यते दशलकारस्थाने, सामान्यजनतायाः पुरतः ।

१० संस्कृतज्ञाः परिवारेष्वपि यदि सामान्यव्यवहारोपयुक्तानां संस्कृतवाक्यानां प्रयोगं कर्तुं कारयितुं च प्रारभेरन्, तर्हि संस्कृतभाषाप्रसारे महत्साहाय्यं लप्स्यते ।

११ संस्कृतपाठ्यपुस्तकान्यपि सचित्राणि, संवादादिशैल्या लिखितानि मुद्रणावरणादिदृष्ट्या चाकर्षकाणि यदि भवेयुस्तर्हि तदध्ययनेऽधिका रुचिर्भविष्यतीत्यस्मिन् विषयेऽपि विद्वद्भिर्लेखकैः प्रकाशकैश्चाधिकमवधानं देयम् ।

१२ संस्कृतभाषाया दैनिकानि संस्कृति, प्रभृतीनि साप्ताहिकानि संस्कृतभवितव्यम् (नागपुरम्) संस्कृतम् (अयोध्या) संस्कृतसाकेतः (अयोध्या) इत्यादीनि,

पुण्यपत्तनीयपाक्षिकानि शारदादीनि, मासिकानि गुरुकुल-पत्रिका (कांगडी गुरुकुलम्), संस्कृत विश्वपरिषत् पत्रिका (मुम्बापुरी) भारतवाणी (पुण्यपत्तनम्) भारती (जयपुरम्) दिव्यज्योतिः (शिमला) संस्कृतरत्नाकरः (देहली) प्रमुखानि, षाणमासिकानि संस्कृतप्रतिभा [संस्कृत अकादमी नई देहली] प्रभृतीनि पत्राणि, पत्रिकाश्च भूयस्यः सन्त्यद्यत्वे तासां साहाय्येन सुरभारत्या अभ्यासः करणीयः संस्कृतानुरागिभिः । एतदतिरिक्तमन्यैरपि सर्वै-र्दैनिकसाप्ताहिकमासिक विविधभाषा पत्रसम्पादकैः स्वकीयपत्रेषु संस्कृतभाषा प्रचारे सहयोगं दातुं कतिपय-पृष्ठानि सरलसंस्कृतभाषायां लिखितलेखानां कवितानां च प्रकाशनार्थमवश्यं सुरक्षितीकर्तव्यानि, एतेन तेषां विवि-धप्रादेशिकभाषाणां पत्राणां पाठका अपि सुरभारत्याः सामान्यं ज्ञानं सम्पादयितुं तच्च क्रमेण वर्धयितुं शक्यन्ति।

एतैरन्यैश्च समुचितसाधनैः सुरभारतीप्रचाराय सर्वैः संस्कृतज्ञैर्विपश्चिद्भिः साम्प्रत बद्धपरिकरैर्भवितव्यं शासकै-रपि च संस्कृतभाषाप्रसाराय पुष्कलमार्थिकसाहाय्यमवश्यं देयम् ।

—धर्मदेवो विद्यामार्तण्ड, गुरुकुल पत्रिका सम्पादकः, गुरुकुक काङ्गडी विश्वविद्यालयः



ऋषि दयानन्द

★

विस्मृत हो गया था जब हिन्दू , भूल चुका निज गौरव ।
पड निंद्य रूढियोंके फन्देमें, भोग रहा था रौरव ॥
पाखण्डोंके भ्रम-जालकी, पडी हुई थी चादर ।
ज्ञान-सूर्यको ढांक चुके थे, अज्ञानोंके बादर ॥
तब आया एक ऋषि निराला, आर्य-तेज-व्रत-धारी ।
महातपस्वी, ज्योतिपुंज वह, वर अनिन्द्य ब्रह्मचारी ॥
भूली-भटकी हिन्दु जातिको, उसने बोध कराया ।
आर्य-मंत्रका नवस्वर फूंका, सारा देश जगाया ॥
तुम आर्य हो, आर्य धर्म है, आर्य तुम्हारी भाषा ।
पढो वेदको, उठो बढो अब, छोडो ढोंग-तमाशा ॥
परम प्रभुकी दिव्य वाणी यह, समझो पढो-पढाओ ।
वैदिक आर्य-धर्मकी ज्योति, जन-मनमें उकसाओ ॥
यह है सच्चा मार्ग तुम्हारा, इस पर बढो निरन्तर ।
आर्य धर्मकी जयति ध्वनिसे, गुंजित हुआ दिगन्तर ॥
आया वह दयानन्द हमको, सत्य मार्ग दिखलाने ।
नमन करें, ले आर्य पताका, चलें खमें फहराने ॥

— कवि मोहनलाल गुप्त ' करुणेश '

वैदिक सन्देश और विश्वशान्ति

(लेखक— डॉ. विश्वमित्र, सिद्धान्त-विशारद)

[गताङ्कसे आगे]

★

पूर्वाभास

[वैदिक प्रशिक्षणके कारण प्राचीन कालमें प्रजाओंमें सर्वत्र शान्ति थी। इसका एक दूसरा भी कारण था कि तब सारा साम्राज्य आर्योंका था। और इनके राज्यमें सर्वत्र धर्मका चक्र चलता रहता था। इसी कारण ऐसे शान्तिमय राज्यको चक्रवर्ती राज्य कहा गया है। यह चक्रवर्ती राज्य मनुष्यके देहमें भी हो सकता है। पर कालान्तरमें वैदिक शिक्षा नष्ट हो जानेसे सर्वत्र अशान्ति फैल गई। अतः पुनरपि वैदिक धर्मके प्रसारके लिए महर्षि दयानन्दने अपना जीवन दे दिया, और 'आर्यसमाज' नामक संस्थाकी स्थापना की। उसके लिए दस नियम बनाये गए। अतः आवश्यक है कि हम आज धनके पीछे दौड़ न लगाते हुए महर्षिके बताये मार्ग पर चलें।]

त्रिविध शान्तिकी स्थापनाके लिए तीन मार्ग

अब मैं वैयक्तिक, राष्ट्रीय और विश्वकी शान्तिके लिए उपयोगी तीन मार्गोंका विवेचन प्रस्तुत करूंगा। (१) आगे चलकर राष्ट्र शासनके भारको वहन करनेवाले आजके तरुणोंकी शिक्षा। (२) जनसंख्याकी न्यूनता व रोकथाम, (३) राष्ट्रके स्वास्थ्यकी सुरक्षा। इन तीनों महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान न देकर विश्वशान्तिकी चेष्टा करना एक असफलता ही होगी, जैसा कि आज हो रहा है।

शिक्षाके उद्देश्य

इस प्रसंगमें मैं ऋग्वेदके एक मंत्रको उद्धृत करना चाहता हूं, जिसमें बहुत सुन्दर रीतिसे शिक्षाके उद्देश्योंको बताया गया है। मंत्र इस प्रकार है—

पावका नः सरस्वती। वाजेभिः वाजिनीवति।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ऋ. १।३।१०

अर्थात् सरस्वती, विद्या अथवा शिक्षा इस प्रकारकी होनी चाहिए जो निम्न लिखित गुणोंवाली हो—

१- पावका- यह मनुष्यके मन, वाणी और कर्मको पवित्रको करनेवाली हो।

२- वाजेभिः- यह लोगोंको अन्न प्रदान करनेवाली हो। अर्थात् राज्यमें कोई भी शिक्षित होकर निर्धन व बेकार न रहे।

३- वाजिनीवति- यह विज्ञानको विकसित करनेवाली तो हो पर उत्तम मार्गमें।

४- यज्ञं वष्टु- यह शिक्षा विद्यार्थियोंके हृदयमें उस सर्वशक्तिमान्, विश्व कर्त्ताके प्रति श्रद्धा और ज्ञान पैदा करनेवाली हो।

५- धिया- यह बुद्धि तथा ज्ञानका विकास करनेवाली हो।

६- वसुः- यह शिक्षा देशमें उत्तम और धार्मिक समृद्धिका कारण बने अर्थात् देशमें उत्तम मार्गसे कमाये हुए धनका भण्डार हो और उसे देश अथवा समाजके हितके लिए ही खर्च किया जाए। +

इस प्रकारकी शिक्षा प्राचीन भारतके गुरुकुलोंमें दी जाती थी। इन गुरुकुलोंका प्रचलन सम्राट् चन्द्रगुप्तके काल तक रहा। श्री राम, श्री कृष्ण तथा अन्य महापुरुष इन्हीं गुरुकुलोंकी देन थे। श्री कृष्णकी भगवद्गीता, जो आज भी दार्शनिक क्षेत्रमें आदरणीय है, तथा जो वैयक्तिक और विश्वकी शान्तिकी स्थापना करनेमें सफलीभूत हो सकती

+ इस मंत्रका यह अर्थ मेरी कल्पना शक्तिका परिणाम नहीं है, अपितु इसका यह अर्थ भगवान् दयानन्दने अपनी पुस्तक 'आर्याभिविनय' में किया है —लेखक

है, इसी वैदिक मार्ग पर चलनेवाले गुरुकुलीय शिक्षणका परिणाम है। राजनीति तथा अर्थशास्त्रके महान् ग्रंथका, जो कौटिल्य अर्थशास्त्रके नामसे प्रसिद्ध है, कर्ता चाणक्य था, जो तक्षशिला गुरुकुलका महान् आचार्य था, और इस विज्ञानको संसार विजेता महान् सिकन्दरको हरानेवाले अपने शिष्य सम्राट् चन्द्रगुप्तको इसने दिया था। मेगास्थनीजके समान अन्य विदेशी इतिहासज्ञोंका वर्णन इस बातका निदर्शक है कि उस समय ये गुरुकुल किस प्रकार शान्ति स्थापनामें सहायक होते थे। इस शिक्षा प्रणालीकी अनेक कुंजियोंमेंसे एक कुंजी ब्रह्मचर्य थी। मन तथा इन्द्रियों पर अधिकार रखना, आत्माका विकास करना, परमात्माको साक्षात् करना तथा प्रकृति माताके खुले प्रांगणमें जिज्ञासुओंको विद्या दान करना ये ब्रह्मचर्यके प्रधान अंग थे।

उस समय शिक्षणालय आजकी तरह शहरोंमें न होकर बस्तीसे दूर होते थे। उस समयके शिक्षाशास्त्री जनताके धनको विशाल भवनोंके निर्माणमें व्यर्थ खर्च नहीं करते थे। उनका उद्देश्य था सादा जीवन उच्च विचार। वे जीवित रहनेके लिए भोगोंका उपभोग करते थे, न कि भोगोंके उपभोगके लिए जीवित रहते थे। पर आजकी पाश्चात्य देशोंकी शिक्षा प्रणाली, जो दुर्भाग्यसे पूर्वमें भी प्रचलित हो गई है, वैदिक प्रणालीके सर्वथा विरुद्ध है। तो फिर आज आधुनिक कामोत्तेजक चलचित्रोंके कारण, सह शिक्षाके कारण तथा विद्यार्थियों तथा तरुणोंमें बढती हुई नास्तिकताके कारण किसी प्रकारकी शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है? इसके बावजूद भी हम चाहते हैं कि हमारे बालक बालिकायें महान् आत्मायें बनकर विश्व शान्ति स्थापित करें। यह कैसे हो सकता है? अपने कथनकी पुष्टिमें मैं केवल मेरी कॉरेलिकको ही प्रस्तुत करता हूं, जिसका कथन है—

' आज हम सब पर कोहरा छाया हुआ है, और वह कोहरा है, नास्तिकताका, निठुरताका, बेईमानीका, अनुकरणीय सिद्धान्तोंकी ओरसे उदासीनताका, नैतिक पतनका, स्वार्थपरताका तथा धोखाधडीका ' (इव्यूजन ऑफ न्यू इण्डिया -प्राणनाथ बोस पृष्ठ-२५२)

जन संख्याकी रोकथाम

हम इस बात कि प्रायः शिकायत करते हैं कि आज विश्वकी जन संख्या बढती जा रही है, और इसके रोकथाममें भी लगे रहते हैं। पर किस प्रकार? प्राकृतिक साधनों द्वारा नहीं अपितु परिवार नियोजन (Family Planning) के कृत्रिम साधनों द्वारा। पर यह सभ्य देशोंके बिल्कुल अयोग्य है। क्या कृत्रिम साधनोंके निर्माताओंने उन दुष्परिणामों पर भी कभी विचार किया है, जो इनके कार्योंके कारण विश्वकी जन संख्या पर हो रहा है? सोचो, भविष्यमें यह सारा विश्व पागलों और बीमारोंसे भर जाएगा। स्नायविक दुर्बलता (Nervous debility) तो आज भी बढती पर है। अतः मनको वशमें करनेसे बेहतर इलाज इस रोगका क्या और कोई हो सकता है? निश्चयसे नहीं।

यह विचार हमें फिर गुरुकुल शिक्षा प्रणालीके मुख्य अंग ब्रह्मचर्य तक पहुंचाता है। किसी भी आयुमें सह शिक्षणकी व्यवस्था न हो, और प्रत्येक पुरुष और स्त्री ब्रह्मचर्यसे दीक्षित हों, और तब ऐसे स्त्री और पुरुष अपने विवाहित जीवनमें भी अपने मन पर शासन करनेमें कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे। वासनाओंको वशमें करना ही ब्रह्मचर्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सम्पूर्ण विवाहित जीवनमें चारसे ज्यादा सन्तानें उत्पन्न न करे। कठोर ब्रह्मचर्यका पालन यदि स्त्री पुरुष करें, तो वे अपनी इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति भी कर सकते हैं।

जो हम आज जनसंख्या वृद्धिसे डर रहे हैं, इसके निम्न कारण हैं—

१– जिसकी इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, ऐसे उस सर्वशक्तिमान्के लिए हमारे हृदयोंमें कोई श्रद्धा नहीं है। जो परमात्मा अपने पुत्रोंके हितके लिए ही सब कुछ करता है, तथा जो बच्चेके जन्मके पूर्व ही उसके भोजनका भी प्रबन्ध कर देता है। ऐसा वह परमपिता सर्वथा भुला दिया जाता है।

२– हम स्वार्थी हैं, तथा दूसरोंके मुंहसे भी हम रोटीका टुकडा छीन लेनेको तैयार रहते हैं। तथा हमारे जीवनमें ' सादगी तथा उच्च विचारोंको ' कोई भी स्थान नहीं है।

३– हमें इस बातका ज्ञान ही नहीं है कि जीवनके स्तरको कैसे ऊंचा उठाया जाए। तथा अपनी इस अज्ञानतामें हमने कृत्रिमताके द्वारा अपने जीवनका मूल्य इतना ऊंचा उठा दिया है कि आज दो रोटी कमाना ही जीवनकी एक बडी भारी समस्या बन गई है। यह बडे खेदकी बात है कि

नैतिक तथा आत्मिक स्तरको ऊंचा उठानेके बजाए बहुत सारा ध्यान जीवनके लिए आवश्यक पदार्थोंकी कीमतोंको बढानेमें लगाया जा रहा है।

४– हम सारे उद्योगोंका केन्द्रीकरण कर रहे हैं, तथा सारे धनको रोक बैठे हैं, हम उसे सारे देशमें बहने नहीं दे रहे।

५– हम मानवीय शक्तियोंसे अनभिज्ञ हैं। अतः यदि हम ईश्वरमें विश्वास रखते हुए तथा सुकर्म करते हुए वैदिक मार्गका अनुसरण करें तो दुःख या कष्टका कोई कारण ही नहीं रह जाएगा।

राष्ट्रके तरुणोंका स्वास्थ्य

यदि विद्यार्थीगण अपने विद्यार्थी जीवनमें शरीर तथा मनके स्वास्थ्य पर ध्यान दें, तो यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि सारा राष्ट्र स्वस्थ रहेगा। कोई भी मनुष्य किसी भी रोगसे पीडित नहीं हो सकता। शरीरमें किसी प्रकारकी विकृतिकी संभावना होनेपर स्वस्थ मन स्वयं उसे ठीक कर देता है। मनको स्वस्थ बनानेके लिए आवश्यक है प्राणायामका अभ्यास। तब अस्पतालों, दवाईयों तथा अन्य साधनों पर बहुत सा धन खर्च करनेकी कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। आजके आविष्कार इन्जेक्शनों पर, जो रोगोंको खत्म करनेके बजाए आगके समान उसे बढा रहे हैं, तथा मनुष्यकी रोग विरोधक शक्ति (Disease-resisting power) को सर्वथा नष्ट किए दे रहे हैं, बहुत कुछ लिखा जा सकता है। कोई भी आसानीसे यह समझ सकता है कि जब प्रकृति शरीरमें गए हुए थोडेसे विषको भी बाहर निकाल फेंकती है, तो डॉक्टर अनेकों बार इन्जेक्शनोंके द्वारा शरीरमें विष पहुंचाते हैं, तो उससे प्रकृतिकी शक्ति मारी न जाएगी तो और क्या होगा? सर्वत्र फैले हुए इन इन्जेक्शनोंके विरुद्ध कुछ बोलना 'नक्कारखानेमें तूतीके आवाज' के समान ही होगा। सारे पाश्चात्य देश पूर्व पर प्रभाव डाल रहे हैं। पर यह अन्धेको ले जानेवाले अन्धेके समान ही है। मैं यहां किसी भारतीय डॉक्टरका हवाला नहीं दूंगा। होम्योपैथीके आविष्कारक सुप्रसिद्ध जर्मन डॉ. हैनीमेनने 'ऑर्गेनन ऑफ मेडिसिन' नामक ग्रंथ लिखा है, तथा अमेरिकाके डॉ. केन्टने, जिनका ग्रन्थ 'लेक्चर्स ऑन होम्योपैथिक फिलॉसॉफी' (होम्योपैथीकी दार्शनिकता पर व्याख्यान) प्रसिद्ध है, इस विषयमें बहुत कुछ लिखा है।

मुझे आश्चर्य है कि विश्व स्वास्थ्य संघ (U. N. Federation for world health) का ध्यान अभी तक इन पुस्तकों पर क्यों नहीं गया? उन्होंने इन इन्जेक्शनोंके विरुद्ध लोगोंको चेतावनी दी। जो इलाज रोगोंको ठीक करनेके बजाए और अधिक फैला रहे हैं, क्या उन्हें वैज्ञानिक मानकर स्वास्थ्यकी नींव समझा जा सकता है? यदि नहीं, तो हमें ऐसे विज्ञानकी कोई जरूरत नहीं। वैदिक मार्ग ये नहीं थे। उनकी चिकित्साओंके द्वारा रोगीमें रोगोंको रोकनेकी शक्ति बढाई जाती थी। इस प्रसंगमें मैं एक बात बता दूं कि स्वास्थ्य वह है जो प्राणोंके द्वारा आत्मा तथा मनका प्रतिबिम्ब बाहरी शरीर पर पडता है। बाह्य स्थिति आन्तरिक स्थितिका प्रतिबिम्ब होता है। यह शरीर भी परमात्माका राज्य है। अतः वेदोंमें बार बार इसीका उपदेश है कि प्रत्येक नागरिक शिक्षाके माध्यमसे अपने मन और आत्माकी उन्नति करे।

आर्य समाजका प्रेरणा स्रोत

आगे बढनेसे पूर्व मैं यह बता देना चाहता हूं कि आर्यसमाज वेदोंके उपदेशोंके मुताबिक कार्य करनेवाली संस्था है।

यहां कुछ प्रश्न उठ सकते हैं (१) जैसे कि पहले बताया है कि महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज विश्वशान्तिकी स्थापनाकी दिशामें प्रयत्नशील है, तो उसने इस दिशामें अब तक क्या कुछ किया है? (२) यदि कुछ किया है, तो उसमें वह सफल क्यों नहीं हुआ?

इसका उत्तर इस प्रकार है— प्रत्येक यह जानता है कि किसी देशमें अशान्ति फैलानी हो तो सबसे पहले उस देश पर अधिकार कर लें। वह ही भारतकी भी अवस्था थी। अतः विदेशियोंके चुंगुलमें रहता हुआ भारत विश्वशान्तिके लिए किस प्रकार प्रयत्नशील हो सकता था। अतः स्वतंत्र होकर, स्वतंत्र राष्ट्रोंकी पंक्तिमें खडा होना उसका पहला काम था। तभी उसकी आवाज सुनी जा सकती थी। यदि कोई आर्य समाजका इतिहास पढे, तो उसे यह ज्ञात हो जाएगा कि स्वतंत्रताकी घोषणा आजसे ९० साल पहले ही, जबकी स्वायत्त-शासन अथवा कॉंग्रेसकी कल्पना भी नहीं थी, हो चुकी थी।

जब भारतवासियोंने स्वयको दुर्भाग्यके सामने समर्पित कर दिया था, तब महर्षि दयानन्दकी सिंह-गर्जनाने लोगों को सोतेसे उठाया। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे, अनेक भाषण दिए, तथा वेदोंके भाष्य किए,। इनके समयमें भारत विश्व शान्तिका मुख्य सहायक रहा। इन्होंने आर्य समाजकी स्थापना की, तथा स्वतंत्रताके विचारोंको भारतमें फैलाया साथ ही साथ समाजोंके विकासोंकी ओर भी ध्यान दिया और लोगोंके सामने परमात्माके चक्रवर्ती राज्यकी रूपरेखा प्रस्तुत की। आज भी प्रत्येक संस्थाके, चाहे वह कॉंग्रेस हो या और कोईके, कार्यके नीचे वेदोंकी ही लहरें दौड रही हैं। आर्य समाजने कई शिक्षण संस्थाओंकी भी स्थापना की। पर फिर भी विश्व शान्तिका महान् कार्य थोडेसे समयमें होना नामुमकिन है और जब कि इस मार्गमें रुकावटों पर रुकावटें आती हों। अतः यदि सभी राष्ट्र, विशेषकर भारत इन विचारों पर ध्यान दें, तथा दयानन्द द्वारा प्रदर्शित वैदिक मार्गका अनुसरण करें, तथा इन सिद्धान्तोंके प्रसारमें एक दूसरेकी सहायता करें, और विश्व शान्तिकी स्थापनाकी ओर कदम बढायें, और लोगोंको इस प्रकारकी शिक्षा दी जाए कि वे अपना उद्देश्य जान सकें तो युद्धकी लहर बिल्कुल समाप्त हो सकती है।

एकतामें अनेकता

यह कोई अतिशयोक्ति न होगी, यदि यह कहा जाए कि हर एक अच्छे विचारोंका, जो आज संस्थाओंके द्वारा फैलाये जा रहे हैं, आधार वेद ही हैं। उदाहरणार्थ- महात्माजीकी अहिंसात्मक विचारोंका आधार वेदका निम्न मंत्र है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति।

अर्थात् केवल वे ही कार्य जो अहिंसात्मक हैं, यज्ञ कहानेके योग्य हैं। यह उस सर्वशक्तिमान्‌के लिए सम्पादित होता है, (वस्तुतः वेदोंका यह कथन है कि वह सर्वव्यापक परमात्मा ही यज्ञ है ' यज्ञो वै विष्णुः), तथा जो विद्वान् और दयालुओंको सन्तुष्ट करता है।

एकेश्वरवाद, मनुष्योंका भ्रातृत्ववाद तथा ईश्वरके एक पितृत्वका विचार, जिसका दूसरे धर्म भी उपदेश करते हैं, वेदोंमें कई स्थानों पर और कई बार कहा गया है। ऋग्वेदमें एक मंत्र है ' एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति ' अर्थात् वह एक है, पर विद्वान् उसे विभिन्न नामोंसे पुकारते हैं। अथर्ववेदने यह कहकर कि ' वह दो नहीं, तीन नहीं ' इस प्रकार दस तक कहकर (दससे आगेकी सभी संख्यायें पिछली संख्याओंके ही रूप हैं) अन्तमें यह कहा है कि ' वह एक है केवल एक '। ऋग्वेदमें आया है ' शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः ' अर्थात् एक अमर पिताके पुत्रो ! तुम सुनो।

बाइबिलका ' सर्मन ऑन दि माऊन्ट ' (पर्वतपर उपदेश) पातंजल योगके यम नियमोंका दूसरा रूप है, जो पातंजल योग दर्शनका प्रारम्भ ही है।

भारतमें कुछ थोडे दिनों पूर्व ही प्रारम्भ हुआ हुआ भूदान-यज्ञ ऋग्वेदके मंत्र ' अहं भूमिमददामार्याय ' अर्थात् परमात्माने आर्योंके लिए भूमि प्रदान की, का क्रियात्मक रूप है। यहां ' आर्य ' शब्दका प्रयोग विस्तृत अर्थमें हुआ है। इसका अर्थ है, परमात्माके पुत्र।

आज अमेरिकाके राजनीतिज्ञ अपने ही कवि लॉगफेलोकी उस कविताको भूल गए हैं, जिसमें कविने आत्माकी अमरता बता कर यह कहा है कि मनुष्यका आदर्श इन सांसारिक सुखोंकी अपेक्षा कहीं अधिक ऊंचा है। कविता इस प्रकार है—

... ... And the grave is not its goal,
Dust thou art to dust returnest
was not spoken of the soul

अर्थात् मनुष्यका उद्देश्य केवल कब्र ही नहीं है। यह शरीर तो मिट्टी है और अन्तमें मिट्टीमें ही मिल जाएगा, पर आत्माके विषयमें यह बात नहीं।

उपसंहार

मैंने पूर्व ही यह बता दिया था कि वेदका अर्थ ज्ञान है, और परमात्मा सर्वज्ञ है। उसने इस ज्ञानमेंसे कुछ भाग मनुष्योंको भी दिया, जिससे कि वे इस संसारमें तथा दूसरे संसारमें भी आनन्दसे रह सकें। परमात्मा पूर्ण है, लिहाजा उससे जो पदार्थ पैदा होगा पूर्ण ही होगा। जितना ही ज्यादा यह ज्ञान हम प्राप्त करेंगे, उतने ही परमात्माके नजदीक हम होते चले जाएंगे, तथा उसके राज्यको फैलानेमें समर्थ होंगे।

आजके लोगोंमें प्रायः एक धारणा घर करती जा रही है। वह यह कि उनकी दृष्टिमें वेद साम्प्रदायिक हैं, और वेदके विषयमें कुछ भी कहना साम्प्रदायिकताका प्रसार करना है। उनका यह भी कथन है कि विश्वका कोई भी धर्म पूर्णांशमें सत्य और पूर्ण नहीं है, मानों कि इस संसारके एक ही स्वामी सर्व व्यापक परमात्माने सारी मानव-जातिके लिए एक धर्म न बनाते हुए, सत्यको अनेक धर्मोंमें विभक्त किया हो। तथा एक सत्य एक धर्ममें, तथा दूसरा सत्य दूसरे धर्ममें रखकर भिन्न-भिन्न धर्म बनाये हों, और मनुष्यको एक सार्वभौमिक धर्मका गठन करनेके लिए सभी धर्मोंकी जांच पड़ताल करनी पड़े।

मै पूर्ण विश्वासके साथ जोर देकर यह कह सकता हूं कि सब जगत्को धारण करनेवाला सर्वज्ञ ईश्वर एक है। उसने सब मानव जातिके लिए एक ही सार्वभौमिक धर्म बनाया जिसे संस्कृतमें 'वेद' कहा गया है। इस वेदमें मानव जातिके इह लौकिक और पारलौकिक हितकी दृष्टिसे सभी सत्योंका पूर्णतया समावेश है। मनुष्य इधर उधर सत्यको खोज करनेमें अपना समय नष्ट न करके यदि वैदिक धर्मका गहन अध्ययन करे तो विश्व शान्तिकी स्थापनामें महान् कार्य कर सकता है। बने हुए स्वादिष्ट भोजनको छोड़कर जो मनुष्य दूसरा भोजन तैयार करनेमें अपना समय नष्ट करे वह बुद्धिमान् नहीं कहलाया जा सकता।

इस लिए ये वेद साम्प्रदायिक नहीं हैं। वेद सत्यतासे भरपूर हैं, अतः जो कोई भी वेदोंसे सहायता लेगा, उसे अवश्य समृद्धि मिलेगी। अतः लोगोंको चाहिए कि वे वेदोंकी तरफ ध्यान दें और संसारको एक परिवार मानकर सबके साथ अपनासा व्यवहार करें। प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत शान्तिकी प्राप्तिका प्रयास करे। फिर देशमें शान्ति स्थापित करनेकी कोशिश करे और तब विश्व-शान्ति स्वयं स्थापित हो जाएगी। अन्तमें वेदका आदेश है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

'हे मनुष्यों! तुम सब एक साथ मिलकर चलो, एक साथ मिलकर बोलो, एक दूसरेके मनोंको जानो, तथा जिस प्रकार हमारे पूर्वजोंने किया, तथा सहयोग और सह अस्तित्वकी भावनासे विश्व शान्ति स्थापित की, वैसे ही तुम भी करो।'

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

आर्यसमाज और विचारोंमें मतभेद

(लेखक— श्री गंगाप्रसाद रिटा. चीफ जज)

बहुतसे लोगोंकी यह धारणा है कि मतभेद Differance of opinion अवांछनीय है। पर मेरा यह निश्चित मत है कि मतभेद अवश्यंभावी है और वह उपयोगी ही होता है।

इस सृष्टिमें मनुष्योंकी संख्या लगभग दो अरब मानी जाती है, पर कोई दो मनुष्य ऐसे नहीं मिलेंगे जिनकी आकृति बिलकुल एकसी हो, अथवा जिनकी बोली एकसी हो। मेरा यह भी निश्चित मत है कि कोई दो मनुष्य ऐसे नहीं मिलेंगे जिनका मत बिलकुल एकसा हो। कुछ न कुछ अन्तर हर एक मनुष्यकी मान्यतामें होता है। यह मतभेद अनिवार्य ही नहीं किन्तु उपयोगी भी है। इसी लिये परस्पर विचार विनिमय करके सब काम किये जाते हैं। एक नीतिकारका वचन है।

संमति श्रेयसी पुंसा सकलैरल्पकैरपि ।
असंमतिकृतं कार्यं दोषमुत्पादयेत् सदा ॥

अर्थ— सबकी सलाह लेना श्रेष्ठ है, छोटे मनुष्योंकी भी। बिना सलाह किये कार्योंमें सदा दोष पैदा हो जाते हैं। इसलिये विचार विनिमयके लिये सभा व सभायें बनाई जाती हैं।

राजनैतिक सभायें

राजनीतिमें हर गांवमें एक पंचायत बनाई जाती है, गांवके कुछ चुने हुए योग्य मनुष्य पंच नियत होते हैं, वे गांवकी भूमिका और सब अन्य वस्तुओंकी देखरेख करते हैं। गांवकी पाठशालाका भी। किन्हीं पंचायतोंको गांवके छोटे छोटे मुकदमे सुननेका और न्याय करनेका भी अधिकार दिया गया है। पंचायतोंके ऊपर समितियां नियत हैं। वे उनकी देखरेख करती हैं। इन समितियोंके ऊपर जिला परिषद् होती है उनको बहुत अधिकार होते हैं। इन सबके ऊपर राज्यकी विधान सभा होती है। उनको कानून बनानेका अधिकार है। उसके लिये नियमोंके अनुसार योग्य सभासद चुने जाते हैं। सब राज्य सभाओंके ऊपर पूरे भारत वर्षकी एक पार्लमिन्ट या संसद है जो संपूर्ण देशके लिये कानून बनाती है और उसका शासन करती है। इन विधान सभाओंका तीसरे या पांचवें वर्ष चुनाव होता है। अभी गत मास (फरवरी) में भारतकी सब विधान सभाओंके सभासदोंका और संसदके सदस्योंका चुनाव हुआ। सब नई विधान सभाएं बन गई और मार्चके माससे इनका कार्य आरंभ हो गया।

धार्मिक सभायें

धार्मिक कार्योंके लिये धार्मिक सभाएं बनाई जाती हैं, जैसी आर्य समाज है उसके नियम उपनियम हैं। उनके अनुसार समाजके साधारण अधिवेशन होते हैं नैमित्तिक अधिवेशन भी होते हैं। हर आर्य समाजकी अन्तरंग सभा होती है जो समाजके सब कार्योंका प्रबन्ध करनेके लिये चुनी जाती है। हर समाजका एक प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष व पुस्तकाध्यक्ष होता है अन्तरंग सभामें सब कार्योंके प्रबन्ध के लिये विचार होता है। वाद विवाद भी होता है।

मतभेदकी उपयोगिता

इन राजनैतिक व धार्मिक सभाओंमें जब किसी विषय पर विचार विनिमय होता है तो सभासदोंके बीच मतभेद भी होता है। कोई मतभेद छोटे होते हैं, दूर हो जाते हैं। कोई बड़े भी होते हैं जिनपर मतभेद बना रहता है। तब बहुमत जिस विचारके लिये है, वही उस सभाका मत या निश्चय माना जाता है, अल्प मतवालोंको उसका पालन करना ही होता है। यह लोकमत Democracy का माना हुआ सिद्धान्त है। मतभेद और विरोधमें अन्तर है। विरोधमें एक पक्ष सत्य दूसरा असत्य होगा मतभेदमें दोनों मत सत्य भी हो सकते हैं।

रूस व अमरीकाका मत विरोध

मतभेदका उदाहरण वर्तमान राजनीतिका लिखता हूं। कुछ समय हुआ अमरीकाका एक फौजी अफसर अपने विमानके साथ रूसके उत्तरीय विभाग Siberia साइबेरीयामें पकड़ा गया वह जासूसी espionage कार्यके लिये गया था। जहाजके अफसरने इस बातको स्वीकार किया, रूसकी सरकारने उस पर अपने न्यायालयमें इस अपराध

पर मुकदमा चलाया। रूसने राष्ट्र सभा की Security Counsil सुरक्षा परिषद्में अमरीका पर इस अपराधकी शिकायत की। सुरक्षा परिषद्ने रूसका दावा खारिज कर दिया। रूस अपनी शिकायतको राष्ट्र सभाकी साधारण सभामें ले जाना चाहता है। रूसका मत है कि किसी देशको दूसरे देशकी सीमाके भीतर जासूसीके अभिप्रायसे अपना जहाज भेजनेका अधिकार नहीं है। अमरीकाका मत है कि ऐसी जासूसी सब देश करते आये हैं और उसमें अगर कोई बदनीयती या आक्रमणका अभिप्राय न हो तो वह वैध है। यह एक भारी मत विरोध हो गया। इसका अन्तिम निर्णय क्या होगा अभी अनिश्चित है।

आर्य्य समाजमें मतभेद।

इस लेखको मैं आर्य समाजके हितकी दृष्टिसे ही लिख रहा हूं। आर्य समाजमें बहुधा मतभेद होते हैं। धार्मिक मतभेदके लिये यह नीति मानी हुई है कि यदि कोई आर्यसमाजी ऐसे विषय पर मतभेद करे जो सिद्धान्तका विषय Essential है, जैसे ईश्वर या वेदकी मान्यताका विषय, तो वह आर्य समाजी नहीं रह सकता। यदि किसी साधारण Non-essential विषय पर मतभेद है तो वह आपत्ति योग्य नहीं होगा। सिद्धान्ती वा साधारण विषयोंपर एक प्रकारसे सर्व सम्मति बनी हुई है। अर्थात् आर्यसमाजके १० नियमों और स्वामी दयानन्द सरस्वतीके स्वमन्तव्यामन्तव्यको जो सभासद मानता है वह सिद्धान्तका विरोधी नहीं समझा जायगा। मेरे व्यक्तिगत विचार इससे कुछ भिन्न हैं जैसा कि आगे प्रकट होगा। मैं हर सभासदको इससे भी अधिक विचार स्वतन्त्रता देनेका पक्षपाती हूं।

आर्य समाजमें कुछ बडे मतभेदोंका वृत्तान्त

मैं वर्तमान लेखमें कुछ मतभेदकी घटनाओंका वर्णन करूंगा। मतभेद होनेपर आर्य समाजमें समाजसे पृथक् करनेका प्रश्न उठता है। मैं पहले सबसे नवीन व छोटी घटनाका वर्णन करता हूं।

श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह

ये सज्जन १५ या २० वर्षसे अजमेरमें रहते हैं। वेद संस्थान नामक संस्थाके अध्यक्ष हैं, और सविता नामक मासिक पत्रके संपादक हैं। अब देहलीमें एक भवन बनवा लिया है उसकी तैयारी पर उनका मुख्य स्थान देहली हो जायगा। इनकी लिखी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। इनके लेखोंमें सिद्धान्तका प्रश्न उठा। सार्वदेशिक सभाने आर्य समाजोंमें उनका प्रचार बन्द कर दिया है उनकी लिखी पुस्तकोंका रखना भी वर्जित है। मैंने एक या दो लेख इनकी पुष्टिमें लिखे इस लिये मैं उनका समर्थक समझा जाता हूं। कुछ अन्य आर्य विद्वान् भी उनके समर्थक हैं। अनुशासन का महत्व मानते हुए भी मेरी संमतिमें उनके विरुद्ध जो आदेश दिये गये वे अनुचित हैं। सिद्धान्तका प्रश्न वास्तवमें उनमें नहीं है। श्री विदेहजीका कार्य साधारण रूपसे चल रहा है।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी, अध्यक्ष-स्वाध्याय मंडल और संपादक वैदिक धर्म, स्थान- पारडी (जिला सूरत)।

यह विचार भेदकी सबसे पुरानी और सबसे बडी घटना है। मैं ऋषि दयानन्दके पश्चात् श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीको वेदोंका व वैदिक धर्मका सबसे बडा व योग्य प्रचारक मानता हूं। उनका वैदिक धर्म पत्र ४० वर्ष हुए आरंभ हुआ था उनका स्वाध्याय मंडल सन् १९१८ से चल रहा है। जहां तक मैं जानता हूं किसी आर्य समाज या आर्य संस्थाका ऐसा निर्देश नहीं हुआ कि श्री पं. सातवलेकरजीके लेख और उनके लिखे ग्रन्थ आर्य समाजको मान्य नहीं है। श्री सातवलेकरजी स्वतन्त्र विचारके योग्य विद्वान हैं। वेदोंके ऋषि देवता संबन्धी किसी विषय पर उनके लेखोंमें कुछ आर्य विद्वानोंने कुछ त्रुटि समझी, समाचार पत्रोंमें कुछ लिख पढ चली। श्री सातवलेकरजीने स्वयं वैदिक धर्ममें यह लिखा कि वे और उनका स्वाध्याय मंडल किसी आर्य समाजका या उसकी किसी संस्थाके आधीन नहीं है। वे अपने स्वाध्याय और मननके अनुसार वेदोंका जो सत्य अर्थ समझते हैं, उसको स्वतन्त्रता पूर्वक अपने लेखों वा पुस्तकोंमें प्रकाशित करते हैं। इस पर जहांतक मैं जानता हू कोई आन्दोलन भी नहीं हुआ। आर्य विद्वानोंने स्थितिको ठीक समझ लिया। श्री सातवलेकरजीका स्वाध्याय व विचार कार्य वैसे ही चलता रहा। और अब तक चलता है। उनके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची बहुत बडी है, वैदिक धर्मके हर अंकमें छपती है। मैं आरंभ कालसे वैदिक धर्मका ग्राहक हूं उसके ग्राहकोंमें और श्रीमान्‌के

ग्रन्थोंके खरीदारोंमें मेरे अनुमानसे ८० प्रतिशतक आर्य समाज ही है। वास्तवमें ऐसा उत्तम साहित्य दूसरी जगह मिल ही नहीं सकता मेरे एक पत्रके उत्तरमें उनका एक ७।९।६१ का पत्र आया। उसमें लिखा है—

' मैं स्वयं आर्य समाजसे कभी पृथक नहीं रहा। और न आर्य समाजने मुझको बहिष्कृत किया। मैं स्वतन्त्र विचारसे वेदका संशोधन कर रहा हूं। कोई कट्टरपन्थी मुझको दूर करना चाहते हैं। पर बहुमती मेरे अनुकूल ही है।'

इस पत्रके साथ श्री सातवलेकरजीने अंगरेजीमें छपी एक ६ पृष्ठोंकी पुस्तिका भेजी है जिसका नाम A brief sketch of my life है। वेद प्रचार विषयकी व्याख्या करनेमें उनको जो कष्ट सहन करने पडे थे वे इस पुस्तिकामें लिखे हैं। भारत सरकारके पूछने पर यह पत्रक लिखा गया था।

मैं इस पुस्तिकाको ज्यों का त्यों इस लेखमें प्रकाशित करता हूं वह बहुत उपयोगी है

श्री पं. श्री. दा. सातवलेकरजीकी जीवनी

श्री पण्डितजीका जन्म कोलगांवमें तथा प्रारम्भिक शिक्षा सावन्तवाडीमें हुई। शुरुसे ही इनका झुकाव संस्कृतकी ओर था, और सिद्धान्त कौमुदी, मनोरमा, आदि संस्कृत शास्त्रोंमें थोडी गति भी इन्होंने प्राप्त कर ली थी। संस्कृतमें भाषण करनेकी इनकी बडी इच्छा थी। बम्बईमें चित्रकारी की शिक्षा प्राप्त कर वहीं ' सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स ' नामक संस्थामें अध्यापकका कार्य भी कुछ काल तक किया। सन् १९०० में ये हैदराबाद चले गए, जहां इन्होंने एक स्टूडियो खोला। यहां इन्हें अपने प्रिय विषय वेद और संस्कृतके अध्ययनका पूरा पूरा अवसर मिला। यहां रहते हुए इन्होंने वैदिक सभ्यता पर अनेक भाषण भी दिए। ब्रिटिश सरकारको इनके इन भाषणोंमें देशद्रोहिता या सरकार द्रोहिताकी झलक मिली, और तत्कालीन हैद्राबाद निजाम पर दबाव डालकर उन्हें वहांसे निर्वासित करा दिया। हैद्राबादमें रहते हुए इन्होंने ' वैदिक राष्ट्र गीत ' नामक एक पुस्तक मराठीमें लिखी। पर जैसे ही उसका प्रकाशन हुआ ब्रिटिश सरकारने उसकी सारी प्रतियां जब्त कर लीं इसीका एक हिन्दी अनुवाद उसी समय इलाहाबादसे भी प्रकट हुआ, पर उसकी भी वही हालत हुई।

हैद्राबादसे निर्वासित होकर ये गुरुकुल कांगडी हरिद्वार चले गए, जहां इन्होंने कई वर्ष तक विद्यार्थियोंको वेद पढाया। यहीं पर रहते हुए इन्होंने ' वैदिक प्रार्थनाओंकी तेजस्विता ' नामक एक लेख लिखा, जो कोल्हापुरसे प्रकाशित होनेवाले ' विश्व–वृत्त ' नामक एक मासिक पत्रमें छपा।

ब्रिटिश सरकार इस लेखसे झुंझला उठी, और उसने पहले बडौदाके महाराजको फिर कोल्हापुरके महाराजको लेखक, सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक इन चारों पर मुकदमा चलानेके लिए उकसाया। पर बडौदाके महाराजने इस बातके लिए इन्कार कर दिया। फिर महाराज कोल्हापुरके प्रयत्नोंसे इन पर मुकदमा चला और सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रकको चार वर्षकी सख्त कैदकी सजा दी गई। इधर श्री पण्डितजीको भी गुरुकुल कांगडीसे हथकडी और बेडियोंमें जकडकर बिजनौर जेलमें डाल दिया गया। और एक महीना बाद वहांसे पुलिसके संरक्षणमें कोल्हापुर ले जाए गए, और वहां एक भारतीय जजकी अदालत इन पर मुकदमा चला, पर वे बरी कर दिए गए। केवल एक छोटेसे लेखके कारण ये सब अड़चनें उठानी पडीं।

बरी होनेके बाद ये लाहौर पहुंचे। पर वहां भी इन्होंने अपने वैदिक प्रवचन जारी रखे। इनके प्रवचनोंसे ब्रिटिश सरकार फिर एक बार झुंझलायी और फिर एक बार लाहौरसे ये निर्वासित कर दिए गए।।

पंजाबसे ये सीधे महाराष्ट्रके औंध रियासत चले आए और वहां एक वैदिक संशोधन संस्था (Vedic Research Institute) खोला। ३० वर्ष तक वहां कार्य किया। पर १९४८ राज्योंके विलीनीकरणके कारण फिर इन्हें औंध छोडकर भटकना पडा। और अपने सारे मुद्रणालयके पारडी चले आए। तबसे अब तक पारडीमें वैदिक रिसर्चका काम सुचारु रूपसे चल रहा है।

यहां पर भी वेदोंके कामोंमें पदे पदे आपत्तियां रुकावटे आती हैं, पर वैदिक कार्यके करनेमें ये कभी हतोत्साह नहीं हुए। इनकी इस संक्षिप्त जीवनीसे पाठकको यह ज्ञान हो सकता है कि वेदोंके लिए इन्होंने कितने कष्ट सहे।

ऋग्वेदमें सोमका स्थान

मूल मराठी लेखक- श्री एच्. एच्. उर्सेकर अनुवादक- श्रुतिशील शर्मा, तर्कशिरोमणि

★

ऋग्वेद यदि सम्पूर्ण मानव जातिका नहीं तो आर्य जातिका अवश्य ही सबसे प्राचीन ग्रंथ है। वेदमें विभिन्न देवताओंकी स्तुति और स्तोत्र मिलते हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण सूर्य इत्यादि देवताओं पर ऋषियोंने सूक्त रचे हैं। उन देवताओंमें सोम भी एक मुख्य देवता है। उसकी प्रमुखताका कारण यह है कि ऋग्वेदके १०२८ सूक्तोंमें सबसे अधिक सूक्त २५० इन्द्रके हैं, २०० अग्निके हैं और इसके बाद १२० सूक्त सोमके हैं। सोमकी एक और असाधारण विशेषता यह है कि ११४ सूक्तोंका एक पूरा नवम मण्डल ही सोमका है। बहुत स्थानों पर सोम स्वतंत्र देवताके रूपमें वर्णित है और कई स्थानों पर इन्द्र, अग्नि आदि देवोंके साथ इसका वर्णन मिलता है।

इस सोमका ऋग्वेदमें निश्चित स्वरूप क्या है? जर्मन विद्वान् हिलेब्रांटके मतमें सोम चन्द्र है। पर इसकी विद्वत्ताके प्रति आदर भाव रखते हुए भी इसके इस मतके साथ सहमत होना मुझे कठिन ही लगता है। इसके विपरीत ऋग्वेदमें किए गए वर्णनोंके आधार पर यही पता लगता है कि सोम चन्द्र न होकर एक लता या बेल है।

सोम भूमि पर कहांसे लाया गया? इसे कौन लाया? इन प्रश्नोंका उत्तर ऋग्वेदके चौथे मण्डलके २६ वें और २७ वें सूक्तमें मिलता है। वरुणने सोमको स्वर्गमें स्थापित किया था। चंचल पंखवाला श्येन अथवा इसके समान और कोई पक्षी ही उसे स्वर्गसे इन्द्रके लिए लाया। भगीरथने आकाश गंगाको पृथ्वी पर लानेके लिए जितना प्रयास किया था उतने ही कष्ट श्येनको भी हुए, क्योंकि सोमको प्राप्त करनेके लिए इसे सौ लोहेके दुर्ग (किले) पार करने पड़े। यह प्रॉमीथीयसके स्वर्गसे पृथ्वी पर अग्नि लानेकी ग्रीक पौराणिक कथा बिल्कुल समान है। सोमको पृथ्वीपर लाकर बाजने उसे मनुके आधीन कर दिया। इसके बाद सोमवल्ली ऋग्वेद कालमें मौजवान् पर मिलती थी। यह नदीके किनारे पानीके पास मिलती थी। इस प्रकार सोमके द्विविध रूप हैं। एक अलौकिक और दूसरा लौकिक। अलौकिक स्वरूपमें सोम अन्तरिक्षमें अथवा स्वर्गमें रहता है, इसी लिए इसे दिवः शिशुः अर्थात् आकाशका बच्चा कहा गया है। इस लोकमें सोम केवल मौजवान् पर्वत पर नदीके किनारे मिलता था। उसे वेदमें अन्धस् भी कहा गया है। नारदके द्वारा स्वर्गलोकसे लाया गया पारिजात (एक प्रकारके फूलका पौधा) घर घरमें फूलता है, पर श्रेष्ठ सोम केवल इसी विशिष्ट पर्वत पर मिलता है। मौजवान् यह आजके किस पर्वतका पर्यायवाची है, यह कहना कठिन है।

सोमकी उत्पत्ति अलौकिक है और इसके रंग भी अनेक हैं। अरुण, भूरा, अथवा हरा रंग उसका होता है। उसकी बेलका डंठल पत्थरकी चरखीमें डालकर उसका रस निकाला जाता था। वह रस कुछ भूरे रंगका होता था। तथा यह मेढके बालोंकी बनी हुई छलनीसे छाना जाता था। छलनीसे वह रस नीचे रखे हुए लकडीके बर्तनमें गिरता था, जिसे वेदमें चम्बू अथवा द्रोण कहा गया है। उस समय सोम बादलके समान गर्जना करता था। बादमें उस सोम रसमें पानी, दूध, दही अथवा शहद मिलाया जाता था। इन मिश्रण पदार्थोंका वर्णन सोम देवताके राजवस्त्रोंके रूपमें किया है। इस प्रकार आर्य लोग सोमको सौन्दर्यसे युक्त करते थे। इसी लिए 'इन्दुः' अर्थात् चमकनेवाला भी उसका एक विशेषण है। सोमरस छाननेका कार्य मंत्रोच्चारके साथ-साथ होता था। इन मंत्रोंमें श्रद्धा और पवित्रताकी भावना होती थी।

इस प्रकार विधि पूर्वक सोमवल्लीसे तैयार किया गया सोमरस यज्ञमें देवोंको अर्पण किया जाता है। इसी लिए सोमको यज्ञकी आत्मा (आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः) कहा गया है। यज्ञमें आर्योंकी कल्पना ऐसी थी, कि मनुष्य देवोंको अच्छी लगनेवाली हविका भाग देवताओं तक यज्ञके द्वारा पहुंचाता है। और इस कारण देवता सन्तुष्ट होते हैं और यजमानके मनोरथोंको पूर्ण करते हैं। इन देवोंको हवि पहुंचानेवाला अग्नि है।

अग्निकी ज्वालायें व धुंआ ऊपर आकाशकी ओर जाता है, इस कारण स्वर्गलोकमें देवों तक अग्निका बेरोकटोक संचार होता है, ऐसा आर्य लोग मानते थे। उन देवताओंमें प्रमुख देव इन्द्रको सोम बहुत प्रिय है, इस लिए कभी कभी इन्द्र, अग्नि और सोम इन देवोंको लक्ष्य करके ऋषियोंने प्रारम्भमें कहे हुएके अनुसार अधिकसे अधिक ऋचायें बनाई। क्योंकि इन्द्र हविका भोग करनेवाला, अग्नि हविको पहुंचानेवाला, और सोम हवि है। सोमको स्तुति बहुत अच्छी लगती थी इस लिए उसे 'स्तुति प्रिय' कहा है।

इसी कारण पूरा नवम मण्डल सोम स्तुतिके सूक्तोंसे युक्त है इन्द्रके समान ही वायु आदि देवोंको भी सोमरस खूब पसन्द था। इसी लिए सोम यज्ञ अन्य यज्ञोंका आधार स्तम्भ था।

यज्ञमें सोम देवोंको दिए जानेके बाद यजमान तथा अन्य ऋत्विज भी बचे हुए सोमको यज्ञका प्रसाद मानकर पीते थे। सोम स्वादमें मीठा होता था। देवोंके अन्तः-करणमें उसे पीकर आनन्द होता था। सोम पीनेवालोंको उत्तेजना होती थी। सोम शक्तिदायक था। इससे रोग भी ठीक हो जाते थे। सभीका यह विश्वास था कि सोम पीनेसे अमर होते हैं। सोम देवको ऋषिगण बुलाते हैं और इससे कीर्ति, वैभव, बुद्धि और सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं।

सोमको वनस्पतियोंका स्वामी कहा गया है। क्योंकि औषधियोंमें सबसे अधिक महत्व सोमका ही है क्योंकि उसमें रोग नष्ट करनेकी शक्ति है।

इस प्रकार सोमका वर्णन करते हुए ऋग्वेदीय कवि काव्यमय उड़ान भरा करते थे। कविकी प्रतिभाको प्रेरणा देनेकी शक्ति सोममें होनेके कारण उसे 'कवियोंका राजा' कहा है। उसे 'रसराज' भी कहा है। वह बल युक्त है। वह मानवीय देहका रक्षक है। वह शरीरकी संधियों-जोडोंमें रहता है। रोग रूपी शत्रुओंको नष्ट करनेकी शक्ति भी सोममें है। सूर्य उसे आगे भेजता है। नवें मण्डलमें पत्ते सहित सोमका पिता मेघ-बादलको बताया है। इस लिए सोम मेघका पुत्र होनेके कारण उससे प्रार्थना की गई है कि 'वह वृष्टि कराये'। जलमें जैसे चन्द्रमा चमकता है, वैसे ही लकडीके बर्तन-द्रोण-में सोमराजा चमकता है।

सोम और इन्द्रका आपसमें आत्मीयताका सम्बन्ध है। देवोंमें यदि इन्द्र श्रेष्ठ है तो वनस्पतियोंमें सोम श्रेष्ठ है। सबसे पहले श्येन स्वर्गसे सोमको इन्द्रके उपभोगके लिए लाया था। इन्द्रके लिए यज्ञमें सोमकी आहुति दी जाती है। सोमरस पीकर ही इन्द्र लडाई पर जाता था और शत्रुओंको मारता था। सोमपानके कारण इन्द्रका सामर्थ्य इतना बढ गया कि उसने सूर्यको भी ऊपर चढा दिया। इन्द्र वस्तुतः आर्योंका नेता और महान् योद्धा था। उसने अनार्यों पर बडी भारी विजय प्राप्तकी और आर्यावर्तमें आर्योंका निवास निष्कण्टक किया ऐसा भी एक मत है।

कालान्तरमें विभूति पूजा शुरु होनेके कारण वह देवपद पाकर स्वर्गमें विराजमान हो गया। इन्द्रादि देव अमरता प्राप्त करनेके लिए सोमरस पीते थे, इस लिए इसे देवोंका अन्न भी कहा गया है। इन्द्रको सोम बहुत अच्छा लगता है, इस लिए ऋषि कहता है ' इन्द्राय इन्दुः परिस्रव ' हे सोम ! तू इन्द्रके लिए बह।

ऊपरके विवेचनसे सोम एक बेल ही प्रतीत होता है, चन्द्र नहीं। क्योंकि चन्द्रमाका उल्लेख ऋग्वेदमें मास अथवा चन्द्र इन स्पष्ट शब्दोंमें किया है। व्युत्पत्तिशास्त्रकी दृष्टिसे भी ' सु ' धातुका अर्थ निचोडना है। अवेस्तामें सोमके लिए ' हा ओम ' शब्द है। वह अवेस्ता शब्दशास्त्रके ' हु ' धातुसे निकला है। अवेस्तामें इस ' हुं ' का अर्थ भी, निचोडना ही है, अतः ' हा ओम ' का अर्थ है ' निचोडा गया रस '। आर्य भारतमें आनेके पहले ईरानमें रहते थे। इस काल खण्डको इण्डो-ईरानियन काल खण्ड कहते हैं। अवेस्ताका ' हा ओम ' ही ' इण्डो-आर्यन ' काल खण्डमें आकर ' सोम ' हो गया (' सोम ' का अर्थ भी निचोडा गया रस है) यह मानना क्या तर्क संगत नहीं है ? क्योंकि इण्डो-इरानियन वाङ्मयमें ' हा ओम ' का अर्थ है ' उत्साह युक्त रसवाली एक बेल '।

ऋग्वेदके पहले मण्डलमें कुल देवोंकी संख्या ३३ है। इनमें ११ स्वर्गमें, ११ अन्तरिक्षमें और ११ भूलोकमें रहनेवाले देव हैं। इन वर्गोंमें सोमको भी भूलोकके देवताओंमें गिना है। यदि सोमका अर्थ चन्द्रमा होता तो उसकी गणना अन्तरिक्षके देवोंमें होती। इन कारणोंसे ऋग्वेद पर भाष्य करनेवाले सायणादि भाष्यकारोंने सोमका अर्थ चन्द्रमा नहीं माना है।

अतः सोमका अर्थ है सोमवल्ली। ऋग्वेदोत्तर कालमें सोमका अर्थ चन्द्रमा भी हो गया। इन दोनोंके विशेषण और उपपद सभी समान हैं। उदाहरणार्थ दोनों ही पर्वत पर पैदा होते हैं, दोनों ही वनस्पतियोंके स्वामी हैं, दोनों द्युलोकके बच्चे हैं, दोनों ही चमकते हैं, दोनों ही देवोंके अन्न हैं, दोनोंके कारण अमरता प्राप्त होती है, और दोनों ही कवियोंके मनोंके स्वामी हैं।

*

भ्रान्ति-निवारण

अर्थात् प्राचीन आर्योंपर मद्यपान और मांसभक्षणके दोषारोपणका तथा ऋग्वेदमें सगोत्र विवाहके उल्लेखका उत्तर

(लेखक— श्री गङ्गाप्रसाद शर्मा, भूतपूर्व प्रधान, आर्यसमाज, बगदाद)

त्वं न सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा। ऋ. १।९१।८

खेदके साथ लिखना पड़ता है कि सम्प्रति जो विदेशीय तथा उनके अनुगामी भारतीय महानुभावोंके सम्पादित इतिहास उपलब्ध होते हैं उन सबमें ही प्राचीन आर्योंके इतिवृत्त चित्रण करनेमें भयानक भूलें हुई हैं। पक्षपात पूर्ण लेख लिखकर उन्हें असभ्य बर्बर, आचारहीन, दुर्व्यसनी बतलानेकी असफल चेष्टा की गई है। इन उल्लेखोंको पढ़कर प्राचीन आर्यों पर श्रद्धाका अभाव हो जाता है और हम नत मस्तक हो जाते हैं। असभ्य आचाररहित व्यक्ति अथवा समाज पर कौन श्रद्धा करेगा? क्या ऐसा व्यक्ति अथवा समाज कभी भी श्रद्धाका भाजन हो सकता है?

इन पक्षपात और दुराग्रह पूर्ण वर्णनोंसे भयंकर हानि हुई है। हममें अपने पूर्वजोंके प्रति आदर नहीं रहा, श्रद्धा नहीं रही। हमने समझा कि हमारे पूर्वजोंने कभी कोई गौरवमय कार्य नहीं किया। हम निरुत्साहित हो गए, हममें जातीय अभिमान नहीं रहा, हमारा जीवन नैराश्यमय हो गया, हम पर मुखापेक्षी बन गए और सर्वस्व खो बैठे। प्रत्येक देशका भविष्य उसके भूतसे अङ्कित है। जब हमारा भूत ही अन्धकारमय है, गौरवहीन है, तब वर्तमान क्या होगा और भविष्य क्या बनेगा?

प्राचीन आर्यों पर यह लाञ्छन लगाया जाता है कि वे सोम निर्मित मद्यपान करते थे। वैदिक समयमें मद्य-शराब -सबसे अधिक लोक प्रिय पेय था। सोम मादक-नशीला पदार्थ है।

खेदकी बात है कि सितम्बर १९६० की सरिता नामक पत्रिकामें भी 'प्राचीन भारतमें मद्यपान' शीर्षक लेखमें प्राचीन आर्योंके मद्यपान करनेका असफल प्रतिपादन किया गया है।

उत्तरमें हम कहना चाहते हैं कि सच्छास्त्रोंमें कहीं भी मदिरापानका विधान नहीं है महर्षि मनु कहते हैं—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥

अर्थात् ब्रह्म हत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुकी स्त्रीसे व्यभिचार उनको महापातक कहते हैं और इन महापातकियोंके साथ संसर्ग करना भी महापातकके समान है। जब आर्य ग्रन्थोंमें उक्त पापियोंके साथ संसर्ग करने तकका प्रायश्चित्त लिखा है तब यह कहना कि आर्य लोग मद्यपान करते थे प्रलाप है। मदिरापानके प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें महर्षि मनु कहते हैं—

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः॥

अर्थात् जिस द्विजने अज्ञान वश मदिरापान किया हो उसे (इस पापसे छूटनेके लिए) आगके समान गरम मदिरा पीनी चाहिए उस मद्यसे शरीर जलने पर वह (द्विज) पापसे मुक्त हो जाता है।

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा।
पयोघृतं वाऽऽमरणाद् गोशकृद्रसमेव वा॥

अर्थात् अथवा गोमूत्र अथवा जल अग्निवर्ण गरम करके पिए अथवा मरण पर्यन्त दुग्ध, घृत ही पीकर रहे वा गोबरका रस पिए।

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि।
सुरापानापनुत्त्यर्थं बालवासा जटी ध्वजी॥

अथवा चावलकी कुट्टी वा कुटे तिल एक समय रातको एक वर्ष तक भक्षण करें। सुरापानके पाप दूर करनेको कंबल का कपड़ा पहिने और शिरके बाल रखे तथा सुरापात्रके चिह्न युक्त होकर रहे।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥

अर्थात् सुरा अन्नका मल है और मलको पाप कहते हैं। इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मदिराको न पिएं।

इतना ही नहीं और भी देखिये—

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत्।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति॥

अर्थात् जिस ब्राह्मणके देहमें रहनेवाला वेदज्ञान एक बार भी मद्यसे डूब जाता है, उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है और वह शूद्रत्वको प्राप्त हो जाता है। उपर्युक्त प्रमाणोंके होते हुए भी क्या कोई यह कहनेका साहस कर सकेगा कि प्राचीन आर्य मद्यपान करते थे अथवा मद्य उनका साधारण पेय था?

सरितामें मद्यपानके समर्थनमें जो यह लिखा है कि 'ऋग्वेदमें शराबका उल्लेख है और प्राचीन भारतमें हरेक कालमें शराब अमृत तुल्य रही है। सोम वैदिक देवता नहीं वरन् भांग थी और वैदिक ऋषि इस नशीली वस्तुको देवता तुल्य मानते थे। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त ११६ के सातवें मंत्रमें स्पष्ट ही सुराका उल्लेख है।' इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि यह सब भ्रान्ति पूर्ण है सत्यसे बहुत दूर है। वेदोंमें कहीं भी मदिरापानका विधान नहीं है। यदि वेदोंमें मदिरापानका विधान होता तो महर्षि मनु उस मद्यपानका निषेध न करते। महर्षि मनुने मद्यपानको जैसा कि हम पूर्व दर्शा चुके हैं, महापातकोंमें गिना है। यह इस बातका प्रबल प्रमाण है कि प्राचीन आर्योंमें मद्यपानका प्रचलन नहीं था। मद्यपान गर्हित समझा जाता था और आर्य जातिने कभी भी मद्यपान नहीं किया। मद्यपान दुर्व्यसन है। मद्यपानादि दुर्व्यसनोंमें लिप्त न कोई व्यक्ति यथेष्ट उन्नति कर सकता है और न कोई राष्ट्र। बड़े बड़े राज्य मद्यपानादि दुर्व्यसनोंमें लिप्त होनेके कारण नष्ट हो गए! भूतल पर आज उनका चिह्न तक दृष्टिगोचर नहीं होता। आर्य जातिका सृष्ट्यारम्भसे लेकर महाभारत काल पर्यन्त चक्रवर्ती राज्यका होना इस बातका ऐतिहासिक प्रमाण है कि आर्य कभी भी दुर्व्यसनोंमें रत नहीं हुए। महाभारत युद्धसे लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व आर्य जातिमें मद्यपानादिके दुर्गुणोंका प्रवेश होने लगा था, इन सब दुर्गुणोंका भयङ्कर परिणाम महाभारत युद्ध हुआ और आर्य जाति तबसे पतनके गर्तमें ऐसी गिरी कि जिसे देखकर महान् संताप होता है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब आर्य जातिमें मद्यपानादिका प्रचलन नहीं था, इन्हें दुर्गुण महादुष्ट व्यसन गिना जाता था तो फिर मनुस्मृतिमें विधायक श्लोक क्यों हैं?

न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

अर्थात् मांस भक्षण, मद्यपान तथा मैथुनमें मनुष्योंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है इसलिए इनमें दोष नहीं और इनको छोड़ दे तो बड़ा पुण्य होता है।

इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि जब महर्षि मनु कहते हैं कि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' सम्पूर्ण वेद धर्म मूल है और 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति' अर्थात् धर्म जाननेवालोंको परम प्रमाण वेद है, अतः उक्त श्लोक जिसमें मांस मदिराका वर्णन है महर्षि मनु प्रोक्त नहीं है। जब एक सामान्यसे सामान्य पुरुष भी एक समयमें पूर्वापर विरुद्ध कथन, अपनी मान्यहानि समझ, नहीं करता तो महर्षि मनु जैसा धर्मात्मा वेदज्ञ वेद विरुद्ध कहे इसे कोई भी विद्वान् माननेके लिए उद्यत नहीं हो सकता। महाभारत युद्धके पश्चात् आर्य जातिका शोचनीय पतन हो गया। ऋषि, मुनि, ज्ञानी ध्यानी धर्मात्माओंका एकान्त अभाव हो गया, धर्मप्रिय क्षत्रिय वीरों एवं धर्म प्राण वैश्योंसे भारतीय वसुन्धरा रहित हो गई, कोई प्रबल प्रतापी शासक नहीं रहा। प्रतापी शासन और ऋषि श्रेणीके उपदेशकोंके अभावमें जो दशा हुआ करती है वही हुई!! सर्वत्र अन्धकार छा गया! स्वार्थी लोगोंने वैदिक मार्तण्ड अस्त हुआ जान, अपनी विलासिताकी तृप्तिके लिए, टिमटिमाते हुए दीपक रूपी मतमतान्तरोंकी सृष्टि करनी आरम्भ कर दी। वाममार्गका जन्म हुआ और इंद्रियोंके बेलगाम घोड़े सरपट दौड़ने लगे। वाममार्गका उद्देश्य ही इंद्रियोंकी तृप्ति है। खाओ, पियो और मौज करो यह नाद

है। विषय वासना लक्ष्य बन गई। ऐसे अवसरको धूर्त लोग कब हाथसे जाने देते। इन्होंने अभीष्ट सिद्ध्यर्थ मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें श्लोक मिलाने प्रारम्भ कर दिए। श्री कृष्णादि महापुरुषोंके सुनामसे मनगढन्त बातें प्रचलित कर दीं। तभीसे मांस मदिरादि कुकर्मोंकी प्रथा चल पडी। उक्त मत हमारा ही नहीं है प्रत्युत महर्षि दयानन्द सरस्वती, वेदव्याख्याता पं. भीमसेनशर्मा, इटावा, सामवेद भाष्यकार पं. तुलसीराम स्वामी, ऋग्वेद भाष्यकार पं. आर्यमुनि, सम्पादकाचार्य पं. रुद्रदत्तशर्मा, ऋग्वेद भाष्यकार पं. शिवशङ्करशर्मा, दार्शनिक प्रवर स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, प्रो. रामदेव प्रभृति महान् विद्वान् भी मनुस्मृतिमें प्रक्षिप्त श्लोकोंका होना स्वीकार करते हैं। सब ही ' न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ' को प्रक्षिप्त मानते हैं।

यह हम मानते हैं कि आर्य सोमरस पान करते थे, परन्तु सोम क्या है यह विचारणीय है। सोम लता जिसे मादक द्रव्य बतलाया गया है और यह कहा गया है कि सोम वैदिक देवता नहीं, वरन भांग थी और वैदिक ऋषि इस नशीली वस्तुको देवता तुल्य मानते थे। यह कहना भ्रम पूर्ण है। सोम लता मादक नहीं है। आयुर्वेद शास्त्रका ' मदन पाल ' निघण्टु एक प्रामाणिक ग्रन्थ है इसमें सोम लताके सम्बन्धमें लिखा है कि—

सोमवल्ली यज्ञनेता सोमक्षीरी द्विजप्रियः।
सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी ॥

अर्थात् सोमवल्ली, यज्ञनेता, सोमक्षीरी, द्विजप्रिय, त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) नाशक है और कडवी, चरपरी एवं रसायन है। सोम लताके नाम यज्ञ नेता, सोम क्षीरी और द्विजप्रिय भी हैं यह स्मरणीय है। और सोम शब्दके अर्थ चन्द्र, कर्पूर, अमृत, वायु और सोमलतौषधिके हैं।

सोमलता कदापि मादक नहीं है। सोमलताको मादक कहना भूल है। सोमलता बल, बुद्धिप्रद और आयुर्वर्द्धक पदार्थ है।

संस्कृत ' स ' जेन्दावस्थामें ' ह ' से प्रायः परिवर्तित हो जाता है। जिसे हम संस्कृतमें ' सोम ' कहते हैं उसे ही ' जेन्दावस्था ' में ' होम ' कहते हैं। जो गुण सोमके वर्णन किए गए हैं वही गुण होमके जेन्दावस्थामें वर्णित हैं। जेन्दावस्थामें ' सोम ' को king of healing plants आरोग्य दायक वनस्पतियोंका राजा कहा गया है। जेन्दावस्थामें सोमका गुणानुवाद इस प्रकार किया गया है—

This second blessing I beseech of thee, O homa, thou that drivest death a far! this body's health (before that blest life is attained). This third blessing I beseech of thee, O homa, thou that drivest death a far! the long vitality of life.

अर्थात् हे मृत्युको दूर भगानेवाले होम, इस मंत्र द्वारा द्वितीय वरदान आपसे यह मांगता हूं कि जब तक परमानन्दमय जीवनकी प्राप्ति न हो तब तक मेरा शरीर सदा स्वस्थ रहे। हे मृत्युको दूर भगानेवाले होम, मैं तुमसे तीसरा वरदान यह मांगता हूं कि मेरी जीवन शक्ति दीर्घ काल तक अक्षुण्ण रहे। डारमेस्टेटर (Darmesteter) महोदय कहते हैं—

It (Soma or Homa) comprises in it the power of life of all the vegetable kingdom

अर्थात् सोम अथवा होमके अन्तर्गत समस्त प्रकारकी वनस्पतियोंकी जीवन शक्तिका समावेश हो जाता है। श्रीमती ब्लेवट्स्की (Madame Blavatsky) कहती हैं—

Plainly speaking Soma is the fruit of the tree of knowledge forbidden by the jealous Elohim to Adam and Eve or yahvi lest man should become as one of us.

अर्थात् स्पष्टतया कहा जाय तो सोम उस ज्ञानके वृक्षका फल है जिसको द्वेषी इलोहिमने आदम और हव्वा अथवा यहवीको खानेसे रोका था कि कहीं ऐसा न हो कि मनुष्य हमारी समता कर ले। इन प्रमाणोंके होते हुए सोमको भांग समझना और यह लिखना कि ' वैदिक ऋषि इस नशीली वस्तुको देवता तुल्य मानते थे ' सरासर अन्याय और पक्षपात है।

सोमके अर्थ केवल सोमलताके ही नहीं हैं अपितु वायु, अमृत, जल, चन्द्र, कर्पूरादिके भी हैं। चन्द्रमा ओषधिराज

है। वनस्पतिकी जीवनी-शक्ति चन्द्रमाके आधीन है। वनस्पतियें शुक्लपक्षमें बढती हैं। उनका एक एक पत्ता बढता है। उनमें रसका सञ्चार होता है। चन्द्रमासे अमृत स्रवित होता है जो जीवनाधार है। माता पार्वती भी चन्द्रकिरण पानकर तपस्या करती रहीं। देखिए, कविकुलगुरु कालिदास कहते हैं—

अयाचितोपस्थितमम्बुकेवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः। बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः॥

अर्थात् वर्षाके दिनोंमें वे एक तो बिना मांगे अपने आप बरसे हुए जलको पीकर और दूसरे अमृतसे भरी चन्द्रमाकी किरणोंको पीकर ही रह जाती थीं। बस यह समझ लीजिए कि उन दिनों पार्वती जीका खानापीना वही था जो वृक्षोंका होता है। आजकल जिस प्रकार सूर्यरश्मि द्वारा चिकित्सा होती है उसी प्रकार चन्द्रकिरण द्वारा भी आरोग्यता प्राप्त होती है। चन्द्रकिरण आरोग्यप्रद हैं।

न तो सोमलता नशीका पदार्थ है और न सोम, चन्द्रमा अमृत कपूरादि ही मादक द्रव्य हैं। अतएव दोनों दशाओंमें, चाहे सोमका अर्थ सोम लतालें अथवा कर्पूर अमृतादि लें– सोम मादक द्रव्य नहीं ठहरता। सोमको मादक द्रव्य कहना सरासर भूल है !! पक्षपात है !!

अब हम सरिताके इस लेख पर कि 'ऋग्वेद प्रथम मण्डलके सूक्त ११६ के सातवें मंत्रमें स्पष्ट ही सुराका उल्लेख है' विचार करते हैं। उक्त सूक्तमें शिल्पविद्याका वर्णन है। इस सूक्तके कक्षीवान् ऋषि हैं और इसके देवता "अश्विनौ" हैं। भला इस सूक्तमें सुरापानका वर्णन कैसे हो सकता है ? मंत्रका प्रतिपाद्यविषय देवता होता है। महर्षि यास्क कहते हैं--

अथातो दैवतं तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्दैवतमित्याचक्षते। सैषा देवतोपपरीक्षा यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थापत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मंत्रोभवति। निरुक्त ७।१

इसका भावार्थ यह है कि दैवत एक साधारण संज्ञा है और उन पदार्थोंके लिए प्रयुक्त होती है जिनके गुणोंकी व्याख्या मंत्रमें की गई है।

उल्लिखित मंत्र यह है--

युवं नरास्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम्। कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भां असिञ्चतम् सुरायाः।

ऋ. म. १, सू- ११६ मंत्र ७

उक्त मंत्रका महर्षि दयानन्दकृत भाष्य यह है--

(युवम्) युवाम् (नरा) नेतारौ विनयं प्राप्तौ (स्तुवते) स्तुतिं कुर्वते (पज्रियाय) पज्रेषु पद्रेषु भवाय। अत्र पद धातोरौणादिको रक् वर्ण व्यत्ययेन दस्य जः। ततो भवार्थे घः (कक्षीवते) प्रशस्तशासनयुक्ताय (अरदतम्) सन्मार्गादिकं विज्ञापयताम् (पुरन्धिम्) पुरुं बहुविधां धियम्। पृषोदरादित्वादिष्टसिद्धिः (कारोतरात्) करान् व्यवहारान् कुर्वतः शिल्पिन उ इति वितर्के तरति येन (शफात्) खुरादिव जलसेकस्थानात् (अश्वस्य) तुरंगस्येवाग्निगृहस्य (वृष्णः) बलवतः (शतम्) शतसंख्याकान् (कुम्भान्) (असिञ्चतम्) सिञ्चतम् (सुरायाः) अभिषुतस्य रसस्य।

इसका भावार्थ यह है जो शास्त्रवेत्ता अध्यापक विद्वान् जिस शान्तिपूर्वक इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकने आदि गुणोंसे युक्त सज्जन विद्यार्थीके लिए शिल्पकार्य अर्थात् कारीगरी सिखानेको हाथकी चतुराई युक्त बुद्धि उत्पन्न कराते अर्थात् सिखाते हैं वह प्रशंसायुक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर होकर रथ आदिको बना सकता है शिल्पी जन जिस यान अर्थात् उत्तम विमान आदि रथमें जलघरसे जल सींच और नीचे आग जलाकर भाफोंसे उसे चलाते हैं उससे वे घोडोंसे जैसे वैसे बिजुली आदि पदार्थोंसे शीघ्र एक देशसे दूसरे देशको जा सकते हैं।

वेदोंमें प्रयुक्त सुरा शब्द मद्यवाची नहीं है अपितु उदक वाचक है। वैदिक कोष निघण्टुके अध्याय १ खण्ड १२ में जहां उदकके १०० नाम दिए हैं वहां सुरा भी है। सिरा, सुरा, सूरा ये सब उदक (जल) वाची हैं। फिर किस आधार पर कहा जा सकता है कि वेदोंमें मद्यपानका विधान है ? वेदोंमें कहीं भी न तो मद्यपानका विधान है और न मांस भक्षणका ही। देखिए महर्षि वेदव्यास कह रहे हैं--

सुरां मत्स्यान्मधु मांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥

अर्थात् सुरा (शराब) मछली, मधु (एक प्रकारकी शराब Liquor) मांस, आसव (शराब,intoxicating liquor) और कृशरोदन इनका खाना पीना धूर्तोंने प्रचलित किया है, वेदोंमें कहीं भी इनका वर्णन नहीं है।

सरितामें ' दि वैदिक एज ' के आधार पर जो यह लिखा गया है कि ' सभी इतिहासकार इस बातसे सहमत हैं कि वैदिक आर्य अधिक मात्रामें शराबके भक्त थे और शराब वैदिक कालका सब अधिक प्रिय पेय था ' और यह कि ' वैदिक कालमें शराबकी इतनी अधिक लोक प्रियता प्राप्त थी कि सभामें पीनेके लिए शराब दी जाती थी इत्यादि '। इन बातोंका उत्तर हम सप्रमाण पूर्व दे चुके हैं। हम बल पूर्वक कहते हैं कि यह सब निराधार है, पक्षपात पूर्ण है। सच्छास्त्रोंमें कहीं भी मदिरापानका विधान नहीं है। आर्योंने कभी भी मदिरापान नहीं किया। उन पर वृथा ही दोषारोपण किया जाता है।

खेदके साथ कहना पडता है कि इन इतिहास लेखकोंने सच्छास्त्रोंके समझनेका यथावत् प्रयास नहीं किया इस कारण उनसे भयङ्कर भूलें हुई हैं। यदि उन्होंने समझा होता कि वेदोंमें ' सुरा ' उदकवाची है और सोमलता मादक द्रव्य नहीं है तो वे कदापि ऐसी भयङ्कर भूलें न करते। इतना ही नहीं इन इतिहास लेखकोंने बहुतसे वैदिक शब्दोंका अनर्थ कर दिया है। अन्धानुसरण भी इसका एक कारण है। यदि ये इतिहास लेखक वेदादि सच्छास्त्रोंको सम्यक् समझते होते और निष्पक्षपात होते तो इनके लिखित इतिहास भी श्री प्रो. रामदेवजी तथा श्री पं. भगवद्दत्तजी लिखित इतिहासोंके समान निष्पक्ष होते।

सरितामें जो यह लिखा है कि ' ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त १९१ के दसवें मंत्रमें घरोंमें चमडेके सुरापात्र होनेका उल्लेख है। यह मंत्र भी वैदिक युगमें सुरापानकी अधिकता दर्शाता है। इसी प्रकार ऋग्वेदके अष्टम मण्डल सूक्त २ के बारहवें मंत्रमें सुरापानका उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि, शराब पेटमें जानेके बाद अन्तःकरणसे युद्ध कर मस्तता लाती है इत्यादि।

इसके उत्तरमें हम कहना चाहते हैं कि ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त १९१ में विष नाश करनेका वर्णन है। इस सूक्तके अगस्त्य ऋषि हैं और इसके देवता अबोषधि सूर्या हैं। इसमें सुरापानकी खोज करना आकाश कुसुमके समान है। उक्त मंत्र यह है—

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे। सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार।

श्री पं. जयदेवशर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ उक्त मंत्रका यह अर्थ करते हैं—

(सुरावतः) सुरा अर्थात् आसव बनानेवालेके घरमें (दृतिं) पात्र जिस प्रकार रखा रहता है और उसमें भाप बना आसव बूंद बूंद टपकता है, उसीमें सब समाता जाता है उसी प्रकार मैं भी (विषम्) विषको (सूर्ये) सूर्यमें (आसजामि) विलीन करता जाऊं (सोचित्) वह जिस प्रकार (न मराति) नहीं नष्ट होता और (नो वयं मराम) न हम ही प्राण त्यागते हैं। (अस्य योजनं) इसका लगाना विषको (आरे) दूर करता है। (हरिष्ठा) विष हरनेके कार्यमें यह पदार्थ बडा उपयोगी होकर हे पुरुष ! या हे विष ! (त्वा) तुझको भी (मधु चकार) मधुर रस्य कर देता है। इसी प्रकार हे मनुष्य रोगिन् ! (मधुला) यह मधु देनेवाली ओषधिका यह विषवैद्य भी तुझे सुख दे।

इससे पूर्व मंत्रमें यह बतलाया गया है कि जिस प्रकार सूर्य बहुत प्रकारके विष और अन्धकारका नाश करता हुआ ऊपर उठता है उसी प्रकार पर्वतोंसे नाना प्रकारकी रस ओषधियोंका संग्रह करनेवाला विष वैद्य सब प्रकारके जन्तुओं और ओषधियोंके गुण दोषोंको प्रत्यक्ष परीक्षणसे देखनेवाला होकर न देखे हुए विषों और रोगोंको नाश करनेमें समर्थ होता है।

अब ऋग्वेद अष्टम मण्डल सूक्त २ मंत्र १२ के सम्बन्धमें निवेदन है कि इसके मंत्र १ से ४० तकके ऋषि मेध्यातिथि काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः हैं और इसके देवता इन्द्र हैं। इस मंत्रमें कहीं भी सुरापानका उल्लेख नहीं है। इसमें राज्यको दृढ करनेका वर्णन है। देखिए श्री पं. जयदेवशर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ उक्त मंत्रका यह अर्थ करते हैं—

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते।

(दुर्मदासः न) दुष्ट मदसे युक्त पुरुष जिस प्रकार (हृत्सु पीतासः) हृदयों तक पीकर बेसुध होकर (युध्य-

न्ते) परस्पर लड़ते हैं इसी प्रकार (सुरायाम्) सुख देनेवाली राज्य लक्ष्मीवत् सुखसे रमण करने योग्य आनन्दकी दशामें भी (हृत्सु पीतासः) हृदयोंमें आनन्द रस पान, अनुभव कर लेनेवाले विद्वान् जन (युध्यन्ते) अपने अन्तः शत्रु काम क्रोधादिसे युद्ध करते हैं वा शत्रुओं पर प्रहार करते हैं और (नग्ना) वेद वाणियोंका त्याग न करनेवाले विद्वान् या (नग्ना) स्त्री आदिके संगसे रहित ब्रह्मचारी वा मूक भावसे मन ही मन मुग्ध हो (ऊधः न) मातृ स्तनवत् वा मेघवत् सुखवर्षी इस सर्वोपरि प्रभुकी (जरन्ते) स्तुति किया करते हैं।

सरितामें मद्यपानके समर्थनमें वाल्मीकीय रामायणके जिन श्लोकोंको उद्धृत किया है वे सबके सब प्रक्षिप्त हैं। वाल्मीकी रामायणमें ही लिखा है—

कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम्।
विद्धि प्राणहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥ अयो.

अर्थात् मैं कुशीचीर तथा अजिन ही पहने हुए तापस भेष और मुनियोंके धर्ममें स्थित होकर केवल फल मूल ही खाकर रहता हूं।

श्री लक्ष्मणजी भी कहते हैं—

आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि फलानि च।
वन्यानि च तथान्यपि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्॥

अर्थात् मैं तुम्हारे लिए मूलफल एवं वन्यपदार्थ जो तापसोंके भोज्य हैं तथा हवनके लिए काष्ठादि पदार्थ प्रस्तुत करूंगा।

भगवती सीताजी भी कहती हैं—

फलमूलाशना नित्या भविष्यामि न संशयः।
अर्थात् मैं फल मूल ही खाकर रहूंगी।

श्री हनुमान्जी भगवती सीतासे कहते हैं—

न राघवो मांसं भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते।
सु. का.

अर्थात् न राम मांस खाते हैं और न मद्य पीते हैं।

इन वचनोंको पढ़कर कौन विचारशील कह सकता है कि महाराजा श्री रामचन्द्रजी एवं श्रीमती भगवती सीताजी ने मद्य एवं मांसका सेवन किया था ! उन पर मद्य पान और मांसभक्षणका आरोप लगाना निराधार है और अपनी कुत्सित बुद्धिका परिचय देना है। वाल्मीकि रामायणमें धूर्त लोगोंने अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिए मद्य मांस सेवनपरक श्लोक मिला दिए हैं। वाल्मीकि रामायणके टीकाकार राम, कतक तीर्थादि भी रामायणमें अनेक सर्गोंको प्रक्षिप्त मानते हैं। इन टीकाकारोंके अतिरिक्त सामवेदभाष्यकार श्री पं. तुलसीराम स्वामी, ऋग्वेदभाष्यकार श्री पं. आर्यमुनि, अथर्ववेद भाष्यकार श्री पं. राजाराम तथा श्री प्रो. रामदेव प्रभृति विद्वान् वाल्मीकि रामायणमें प्रक्षिप्त श्लोकोंका होना मानते हैं।

वाल्मीकि रामायणके श्लोकोंकी संख्याके सम्बन्धमें यह श्लोक कहा जाता है—

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतान्पञ्च षट्काण्डानि सहोत्तरम् ॥

अर्थात् (वाल्मीकि) ऋषिने २४००० श्लोक तथा ५०० सर्ग तथा उत्तरकाण्ड सहित छे काण्ड कहे थे।

सम्प्रति वाल्मीकि रामायणकी जितनी प्रतियां प्राप्त होती हैं उन सबकी आधार दो प्रतिए हैं- एक बङ्गदेशकी और दूसरी बम्बईकी। बङ्गप्रतिके अनुसार ६ काण्ड ५५७ सर्ग और १९७९३ श्लोक हैं और बम्बई प्रतिके अनुसार ७ काण्ड, ६५० सर्ग और २४५२८ श्लोक हैं। अतः सिद्ध होता है कि वाल्मीकि रामायणमें श्लोक न्यूनाधिक होते आए हैं। श्री प्रो. रामदेवजी 'भारतवर्षका इतिहास' वैदिक तथा आर्ष पर्वके पृष्ठ ६२० पर कहते हैं कि 'रामायणमें जितने वचन श्रीरामके सम्बन्ध में पशुमारने तथा मांस खानेके विषयमें हैं वे सब प्रक्षिप्त हैं और वाममार्गियोंके मिलाए हुए हैं।'

श्री महाराजा रामचन्द्रजी धर्मधुरंधर थे, मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं, उन्होंने अपने जीवनमें कभी भी मांस अथवा मद्यका सेवन नहीं किया था जैसा कि हम पूर्व प्रतिपादन कर चुके हैं- 'न राघवो मांसं भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते'।

अब उक्त पत्रिकामें प्राचीन आर्यों पर मांस भक्षणका जो दोषारोपण किया गया है उसके उत्तरमें हम अति संक्षेपमें यह बल पूर्वक कहना चाहते हैं कि प्राचीन आर्यों ने, जैसा कि हम पूर्व दर्शा चुके हैं न तो कभी मद्यपान किया और न कभी मांस भक्षण ही किया। वेदादि सच्छास्त्रोंमें कहीं भी मांस भक्षणका विधान नहीं है। देखिए महर्षि मनु कहते हैं—

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ।
नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥

अर्थात् गृहस्थाश्रम वा ब्रह्मचर्याश्रम वा वानप्रस्थाश्रममें रहता हुआ जितेन्द्रिय द्विज, अशास्त्रोक्त हिंसा आपत्कालमें भी न करे ।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥

अर्थात् जो अहिंसक प्राणियोंको अपने सुखकी इच्छासे मारता है वह पुरुष इस लोकमें जीता हुआ और परलोकमें मरकर सुख नहीं पाता ।

समुत्पत्तिं च मांसस्य वध बन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥

अर्थात् मांसकी उत्पत्ति और प्राणियोंके वध और बन्धन को देखकर सब प्रकारके मांस भक्षणसे बचे।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥

अर्थात् इन्द्रियोंके रोकने रागद्वेषके नाश तथा प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे (मनुष्य) मोक्षके योग्य होता है ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

अर्थात् हिंसा न करना, सत्य भाषण, दूसरेका धन अन्यायसे न लेना, पवित्र रहना, और इंद्रियोंका निग्रह करना, यह संक्षेपसे चारों वर्णोंका धर्म (मुख्य) मनुने कहा है । महर्षि मनु तो न केवल मांस भक्षीको ही पातकी गिनते हैं अपितु पशुमारनेकी सम्मति देनेवाले इत्यादिको भी समान पातकी गिनते हैं—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

अर्थात् सम्मति देनेवाला, अंग प्रत्यङ्गोंको काटनेवाला, मारनेवाला, खरीदनेवाला, बेचनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला तथा खानेवाला ये सब घातक हैं ।

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

अहिंसा परमो धर्मः मांसहिंसन् वर्जयेत् ।

अर्थात् अहिंसा परम धर्म है मांसाशन तथा हिंसाका त्याग करो ।

उपनिषद्में भी ऐसा ही कहा है—

आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः । मांसं रूक्षाहारं मद्यापिपानञ्च वर्जय ॥

अर्थात् शुद्ध आहार करनेसे सत्व (बुद्धि) निर्मल और स्मृति शक्ति बढती और दृढ होती है । अतएव मांस रूक्षाहार मद्यादि पान न करे ।

महर्षि व्यास कहते हैं—

नहि मांसं तृणात्काष्ठादुपलाद्वापि जायते ।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥

अर्थात् तृण, काष्ठ, उपल आदिसे मांस नहीं मिलता जीव हिंसासे प्राप्त होता है अतएव इसके भक्षणमें दोष है ।

इतना ही नहीं महाभारतके अनुशासन पर्वमें ही ११४ अध्यायसे लेकर ११६ अध्याय तकके १४५ श्लोक मांस भक्षणके खण्डनमें विद्यमान हैं ।

अब हम अन्तमें अपने कथनके प्रमाणमें वेद मंत्र प्रस्तुत करते हैं । देखिए—

इमं मा हिं॰ सीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु । गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु । यजु. १३।४८

इसका भावार्थ यह है कि मनुष्योंको उचित है कि एक खुरवाले घोडे आदि पशुओं और वनके पशुओंको भी कभी न मारे जिनके मारनेसे जगत्की हानि और न मारनेसे सबका उपकार होता है उनका सदैव पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उनको मारें ।

इसी अध्यायमें उक्त मंत्रसे अगले मंत्रोंमें सुखकारी पशुओंको मारनेवालेको दण्डका विधान है । और भी देखिए—

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति । ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ।

ऋ. म. १ सू. १६२ मं. १२.

इसका भावार्थ यह है कि ' जो लोग अन्न और जलको शुद्ध करना पकाना उसका भोजन करना जानते और मांसको छोडकर भोजन करते वे उद्यमी होते हैं । ' मांस भिक्षामुपासते ' इन शब्दोंमें मांस भक्षणका स्पष्ट निषेध है ।

यं आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥
अथर्व का. ८, सू. ६ मं. २३

अर्थात् जो कच्चे अथवा घरमें पके हुए मांसको खाता है जो किसी पुरुषसे मोललेकर या बनवाकर मांस खाता है और जो अण्डोंको खाता है राजा उनको यहांसे दूर कर दे। ऋग्वेदमें अनेक मंत्र हैं, जिन्हें हम लेख विस्तार भयसे यहां उद्धृत नहीं कर सकते, जिनमें मांसभक्षकको कठोर दण्ड देनेका विधान है।

उक्त प्रमाणोंकी विद्यमानतामें प्राचीन आर्यों पर मांसभक्षणका दोषारोपण करना सरासर अन्याय एवं द्वेषपूर्ण है।

अब हम सरितामें यम यमीको 'सगे भाई बहन मान' उनके- सगे भाई बहनके- समागमके घृणित निन्दनीय कथानकका ऋग्वेदमें बीजारोपणकर ज्ञाननिधि पवित्रतम ग्रन्थ वेद-को कलङ्कित करनेकी जो गर्हित चेष्टाकी गई है उस पर विचार करना चाहते हैं। सरितामें लिखा है 'सगे-भाई बहनका सम्बन्ध आदिकालसे ही पवित्र माना गया है...... मुसलमानोंमें भी चचेरी आदि बहनोंसे संबंध स्थापित होसकता है, सगी बहनसे कदापि नहीं: किन्तु ऋग्वेदकी रचना करनेवाले ऋषियोंसे सगे भाई बहन संभोगके दलदलसे दूर रहें यह न देखा गया। यम और यमी सगे भाई बहन हैं, यमी यमसे कहती है विस्तृत समुद्रके मध्य द्वीपमें जाकर इस निर्जन प्रदेशमें मैं तुम्हारा सहवास व मिलन चाहती हूं क्योंकि (माताकी) गर्भावस्था से ही तुम मेरे साथी हो, यद्यपि मनुष्यके लिए ऐसा संसर्ग निषिद्ध है, तो भी देवता लोग इच्छा पूर्वक ऐसा संसर्ग करते हैं इस लिए मेरी जैसी इच्छा होती है वैसा ही तुम भी करो। पुत्रके जन्मदाता पतिके समान मेरे शरीरमें पैठो मेरा संभोग करो। वह कैसा भ्राता है जिसके रहते भगिनी अनाथा हो जाए और वह भगिनी ही क्या है, जिसके रहते भ्राताका दुःख न दूर हो? मैं काम मूर्च्छिता होकर नाना प्रकारसे बोल रही हूं, यह विचार करके मुझे भलीभांति भोगो' उत्तरमें हम कहना चाहते हैं कि आदि सृष्टि अमैथुनी होती है उसमें न तो 'भाई-बहन' का सम्बन्ध होता है और न सगोत्रत्व ही। गोत्र होता है मैथुनी सृष्टिमें जैसा कि—

व्याकरणशास्त्रके प्रधान प्रणेता महर्षि पाणिनि कहते हैं-
अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्।
अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्।

आर्य्य जातिमें विवाह सर्वदा असमान गोत्र और अनिकट-दूर-रहनेवालोंमें ही हुआ है। वेदादि आर्षग्रन्थोंमें कहीं भी 'सगोत्रविवाह' का विधान नहीं है। देखिए वेद क्या आदेश देते हैं—

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः। अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा। यजु. १४.२

हे (स्योने) सुख करनेहारी जिस (त्वा) तुझको (वसवः) प्रथम कोटिके विद्वान् और (रुद्राः) मध्यम कक्षाके विद्वान् (इमा) इन (ब्रह्म) विद्याधनोंके देनेवाले गृहस्थोंकी (अभि) अभिमुख होकर (गृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (सौभगाय) सुन्दर सम्पत्ति होनेके लिए इन विद्याधनको (पीपिहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (घृतवती) बहुत जल और (पुरन्धिः) बहुत सुख धारण करनेवाली (कुलायिनी) प्रशंसित कुलकी प्राप्तिसे युक्त हुई (पृथिव्याः) अपनी भूमिके (सदने) घरमें (सीद) स्थित हो (अध्वर्यू) अपने लिए रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहनेवाले (अश्विना) सब विद्याओंमें व्यापक और उपदेशक पुरुष (त्वा) तुझको (इह) इस गृहाश्रममें (सादयताम्) स्थापित करें।

इस मंत्रमें 'कुलायिनी' शब्द आया हुआ है जिससे प्रस्फुट होता है कि 'पति' का कुल 'पत्नी' के कुलसे पृथक् होता है। और भी देखिए।

परस्या अधि संवतोऽवरां२ अभ्यातर।
यत्राहमस्मितां२ अव॥ यजु. ११ मं. ६१

हे कन्ये! जिस (परस्याः) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) स्वामी हुआ चाहता हूं सो तू (सम्वतः) संविभागको प्राप्त हुए (अवरान्) नीच स्वभावोंको (अभ्यातर) उल्लंघन और (यत्र) जिस कुलमें (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (तान्) उन उत्तम मनुष्योंकी (अव)

रक्षा कर। इस मंत्रमें ' यत्र ' शब्द दर्शा रहा है कि पतिका कुल स्त्रीके कुलसे पृथक् होता है।

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्।

यह भी दर्शा रहा है कि ' पतिकुल ' ' स्त्रीकुल ' से पृथक् होता है। महर्षि मनु कहते हैं—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥

अर्थात् जो कन्या माताकी ६ पीढी, क्योंकि ' सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ' अर्थात् सपिण्डताका सम्बन्ध तो ७ वीं पीढीमें भलीभांति छूट जाता है, और पिताके गोत्रकी न हो वही द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) के लिए विवाह करनेमें उत्तम है। और भी

असगोत्रम्। मातुरसपिण्डात्॥ गोभि.

अर्थात् पिताके गोत्रकी और माताकी ६ पीढीकी लडकीको छोडकर विवाह करना चाहिए।

निम्नाङ्कित मंत्र दर्शा रहा है कि मनुष्योंको अपनी सन्तानका सम्बन्ध दूर देशमें करना श्रेयस्कर है—

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहा गहि।
पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः॥ यजु. ११।७२

हे (अग्ने) पावकके समान तेजस्विन् विज्ञान युक्त पते! (रोहिदश्वः) अग्नि आदि पदार्थोंसे युक्त, वाहनोंसे युक्त (पुरीष्यः) पालनमें श्रेष्ठ (पुरुप्रियः) बहुत मनुष्योंकी प्रीति रखनेवाले (त्वम्) आप (इह) इस गृहाश्रममें (परावतः) दूर देशसे (परमस्याः) अति उत्तम गुण रूप और स्वभाववाली कन्याकी कीर्ति सुनके (आगहि) आइये और उसके साथ (मृधः) दूसरेके पदार्थोंकी आकांक्षा करनेहारे शत्रुओंका (तर) तिरस्कार कीजिए।

यह मंत्र न केवल दूर देशमें विवाह करनेका विधान ही करता है अपितु यह भी दर्शा रहा है कि दूर देशके विवाहमें सुख होता है धन धान्यादिकी अभिवृद्धि होती है, समीपके विवाहोंमें नहीं। तभी तो निरुक्तमें- ' दुहिता दूरे हिता भवतीति ' कहा है।

यद्यपि इस सम्बन्धमें शतशः प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं तथापि लेख विस्तार भयसे इतने ही प्रमाणोंका लिखना अलं समझते है। विज्ञ पाठक इतने ही से समझ लेंगे। इन प्रमाणोंके होते हुए सगे ' भाई बहन ' के विवाहका आक्षेप वन्ध्याके पुत्रके समान सर्वथा निर्मूल है।

अब हम विवस्वत्के पुत्र पुत्री-यम यमी-जिनके मध्य यह कुत्सित संवाद होता हुआ बतलाया गया है, वे वास्तवमें क्या हैं इसका निरूपण करना चाहते हैं। बिना यह निश्चय किए मंत्रोंका सत्यार्थ प्रस्फुट नहीं हो सकता।

वेदादि आर्ष ग्रन्थोंमें ' यम ' शब्द प्रकरणानुसार ईश्वर वायु, ऋतु सूर्यादि अर्थोंमें व्यवहृत हुआ है। देखिए—

षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति। ऋ. मं. १ सू. १६४ मं. १५ यहां ऋतुओंका नाम यम है।

शकेम वाजिनो यमम्। ऋ. मं. २, सू. ५, मं. १ यहां परमेश्वरका नाम यम है।

यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्नि दूतो अरंकृतः। ऋ. मं. १०, सू. १४, मं. १ यहां अग्निका नाम यम है।

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः। यजु. अ. ८ मं. ५७ यहां वायु विद्युत् सूर्यके नाम यम है।

अब विवस्वत् क्या है इसका विचार करते हैं। महाभारत आदि पर्वमें लिखा है कि

धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा।
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा।
पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादशस्मृताः।

अर्थात् धाता, अर्यमा, मित्र वरुणांश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता, पर्जन्य, और विष्णु ये बारह आदित्यके नाम हैं।

निरुक्तकार महर्षि यास्क कहते हैं कि ' विवस्वत् आदित्याद्विवस्वान्विवासनवान् प्रेरितवतः परागताद्वा '। अब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि ' विवस्वत् ' सूर्यका नाम है और यही कारण है कि ' विवस्वत् ' नाम सूर्यके पुत्रको वैवस्वत यम माना गया है। और निघण्टु अ. १ ख. ७ में ' यम्या ' नाम रात्रिका है—

निघण्टु अ. ५ ख. ५ में ' यमी ' पद नाम है। जिसका उदाहरण इसी यमयमी सूक्तका ' अन्यमूषुत्वं यम्यन्य त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।

मन्त्र निरुक्त ११। ३४ में दिया है।

अब यदि हम विचार करें तो प्रतीत होगा कि आकाङ्क्षा-

रिक रीतिसे ' यम यमी ' विवस्वत्की सन्तान आरोपित किए गए हैं । सूर्यकी सन्तान दिवस और रात्रिके अतिरिक्त और क्या हो सकती है ? दिन और रात्रिकी सत्ताका विभाग सूर्यसे ही होता है, जहां सूर्यका प्रकाश पहुंचता है वह ' दिन ' और जहां नहीं पहुंचता वह ' रात्रि ' होती है यही इनमें सम्बन्ध है ।

केवल भगिनी (बहिन) का ही नाम स्वसा नहीं है, वेदमें साथ रहनेवाले व गमन करनेवाले पदार्थका भी नाम स्वसा है । वेदमें शब्द यौगिक होते हैं ।

इस सूक्तमें यम और यमी-दिवस और रात्रि-प्रकाश और अन्धकार अथवा सम और विषम, उत्तम और निकृष्ट नर-नारीका सम्वाद आलङ्कारिक रूपमें वर्णित है । यह सूक्त यह सिखाता है कि जिस प्रकार ' दिवस ' और ' रात्रि ' या ' प्रकाश ' और ' अन्धकार ' का कभी मेल नहीं होता और यदि दैवात् हो जाय जैसा कि कभी कभी भयङ्कर मेघ और आंधीके समय प्रकाशके अन्धकारसे आच्छादित हो जानेपर हो जाता है तो अव्यवस्था हो जाती है, इसी प्रकार सगोत्रियोंका-भाई बहिनका-सम और विषम गुणवाले नरनारीका कभी भी सयोग-विवाह-नहीं होना चाहिए; और यदि कभी वेदाज्ञाविरुद्ध कामातिशयातुरता वश होगा तो एक न एक दिन कुलका, जातिका, मूलोच्छेद अवश्य हो जायगा ।

अब हम वेद ऋषिकृत ग्रन्थ हैं इस मन्तव्यकी समीक्षा करते हुए लेखको समाप्त करना चाहते हैं । वेदोंको ऋषिकृत मानना भारी भूल है । वेद ऋषिकृत नहीं हैं, वेद अपौरुषेय हैं । वेदनित्य हैं । प्रति सृष्टिकी आदिमें वेदोंका प्रादुर्भाव होता है-सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । वेद ज्ञान मय हैं-सत्यविद्याओंके ग्रन्थ हैं । संसारमें जितना भी ज्ञान फैला है सब वेदसे ही प्रसारित हुआ है । अब प्रश्न यह होता है कि ज्ञान क्या है ? इसके उत्तरमें वक्तव्य है कि ज्ञान शब्दार्थके सम्बन्धका नाम है । जहां शब्द है वहां ज्ञान है । अब फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह ज्ञान कहांसे आया ? पूर्व इसके कि इस सम्बन्धमें कुछ कहा जाय यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विचार किया जाय कि ज्ञान कृत्रिम है अथवा अकृत्रिम ? यदि यह कृत्रिम है तो इसका जन्मदाता मनुष्य होगा और यदि अकृत्रिम है तो यह ईश्वर प्रदत्त होगा ।

' संस्कृत--साकेत पाक्षिक '

अयोध्या अखिल भारतीय विद्वत्समिति परीक्षा परिषद् द्वारा संस्कृत-साकेत पत्र पाक्षिक रूपमें १९२० ई. से ही प्रकाशित हो रहा है । यह संस्था सुरभारती देवभाषा संस्कृतका अपनी परीक्षा और पत्र द्वारा भारतके कोने-कोनेमें प्रचार कर रही है । विशेष विवरणके लिये परीक्षा मन्त्री- ' विद्वत्समिति, अयोध्या ' इस पतेपर पत्रव्यवहार करें ।

सब शास्त्रकार इस बातको मानते हैं कि ज्ञान-शब्द और अर्थका सम्बन्ध-कृत्रिम नहीं । प्रो. मेक्समूलरने साइन्स आफ लैंग्वेज (The Science of Language) नामक पुस्तकके प्रथम भागमें यह स्वीकार किया है कि शब्द और अर्थ अथवा ज्ञान कृत्रिम नहीं । जब ज्ञान-शब्द और अर्थ-कृत्रिम नहीं-मनुष्य कृत नहीं तो इसका सीधा और स्पष्ट उत्तर यह है कि यह-ज्ञान-ईश्वरसे प्राप्त हुआ है । यह ईश्वर प्रदत्त है और निर्भ्रान्त है । कारुणिक परमेश्वरने कृपा कर हमारे उपकारार्थ यह प्रदान किया है ।

प्रत्येक बुद्धिमान् जानता है कि बिना मातपिता अथवा गुरुसे सीखे ज्ञान कभी नहीं प्राप्त होता । बच्चे बिना सिखाए बोल भी नहीं सकते । आज तक कोई भी उदाहरण ऐसा नहीं मिला जहां बच्चा बिना पढ़ाए स्वयं पढ़ गया हो, चाहे उसके माता पिता कितने ही विज्ञ रहें हों । हम अपने माता पिता अथवा गुरुसे सीखते हैं और इन्होंने अपने पूर्वजोंसे सीखा और इनके पूर्वजोंने अपने पूर्वजोंसे इसी क्रमसे पूर्वज लोगोंने आदिसृष्टिके ऋषियोंसे सीखा । और आदि सृष्टिके ऋषियोंने निस्सन्देह ईश्वरसे सीखा- स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

इस बीसवीं शताब्दिमें, जिसे उन्नतिका युग कहा जाता है, शिक्षणालयोंका स्थापन करना इस बातका प्रबल प्रमाण है कि बिना सिखाए कुछ भी नहीं आता, फिर विचारिए कि सृष्टिकी आदिमें बिना सिखाए मनुष्य कैसे सीख सकते

हैं ? यदि हम भाषा विज्ञान (Philology) की दृष्टिसे विचार करें तो हम इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि संसारकी समस्त भाषाएं किसी एक भाषासे उत्पन्न हुई हैं और वह भाषा है वैदिक संस्कृत। वेदभाषा वैज्ञानिक है, इसका एक एक शब्द वैज्ञानिक है इसका एक एक अक्षर विज्ञान पूर्ण है। जितनी भी भाषाएं हैं सब वैदिक संस्कृतसे निकली हैं। वैदिक संस्कृत सब भाषाओंकी जननी है। अंगरेजी, फ्रेञ्च, जर्मन, अरबी, फारसी आदि जितनी भी भाषाएं हैं सब कोड (Code) भाषाएं हैं।

देखिए ज्ञान प्रदाता ईश्वर है—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत

यजु. ३१, मं. ७

अर्थात् सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वरसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए।

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसित-
मेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।

श. का. १४, अ. ५, ब्रा. ४, सू.१०

अर्थात् हे मैत्रेयि! जो आकाशादिसे भी बड़ा परमेश्वर है उससे ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए हैं।

महर्षि मनु कहते हैं—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥

अर्थात् ब्रह्माजीने यज्ञकी सिद्धिके लिए अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरासे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ग्रहण किया।

यह अति संक्षेपसे उत्तर है। अब लेखको अधिक विस्तार न देते हुए लेखनीको यहीं विश्राम देते हैं। किमधिकं बहुना। इत्यलंबुद्धिमत्सु।

ऋषि दयानन्द और आचार्य सायणके

वेद और विज्ञान विषयक विचार

[लेखक— श्री पं. भवानीलाल भारतीय, एम्. ए., सरदारपुरा जोधपुर, (राजस्थान)]

★

महर्षि दयानन्दकी सम्मतिमें वेद संसारकी समस्त आध्यात्मिक और भौतिक विद्याओंका मूल उत्स है। उन्होंने आर्यसमाजके नियमोंका विधान करते समय वेदोंके सम्बन्धमें जो नियम बताया था, वह भी वेदको सब सत्य विद्याओं की पुस्तक घोषित करता है। महर्षिके इस मन्तव्यका अभिप्राय यह है कि वेद जहां एक ओर धर्मकी व्याख्या और विवेचना प्रस्तुत करता है वहां उसमें भौतिक विज्ञानके बीज भी मूल रूपसे विद्यमान हैं। महर्षिके इस सिद्धान्तमें यों तो कोई नवीनता नहीं थी क्योंकि मनु आदि प्राचीन शास्त्रकारोंने भी वेदोंको सभी धर्मों और कर्तव्योंका मूल तथा ज्ञानका आदिस्रोत स्वीकार किया था। परन्तु महर्षिकी इस सिद्धान्त विषयक अभिव्यक्तता कुछ ऐसी मौलिक थी, कि लोगोंको यह संदेह होने लगा कि वे वेदोंके विषयमें एक नवीन मतवादकी स्थापना कर रहे हैं।

वस्तुतः महर्षिने अपनी वेदभाष्य भूमिकामें जहां वेदानुमोदित अन्य सिद्धान्तोंका प्रमाणिक रूपसे प्रतिपादन किया था वहां उन्होंने कुछ ऐसे १ विषयोंका भी निर्देशन किया जो मूलतः भौतिकवादी विज्ञानोंसे सम्बन्ध रखते हैं। ऋषिने विज्ञानकी जिन शाखाओंको मूल वेदमंत्रोंमें खोज निकाला था उनमें प्रमुख ये हैं- (१) पृथिव्यादि लोकभ्रमण (२) धारणाकर्षण विषय (३) प्रकाश्यप्रकाश विषय (४) गणित विद्या (५) नौ विमानादि विद्या (६) तारविद्या (६) वैद्यक शास्त्र। इन सात विषयोंमें प्रथम तीन तो स्पष्ट ही भूगोल और ज्योतिष सम्बन्धी विषय हैं। वेदांगोंमें ज्योतिषका कितना महत्व है यह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। 'आकृष्णेन रजसा' जैसे मंत्रोंकी उपस्थितिमें यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि वेदमें इस विद्याका मूल अवश्य है। गणित तथा वैद्यक विषयक उल्लेख भी वेदोंमें यत्र तत्र आये हैं। अथर्ववेदमें आयुर्वेद शास्त्रका मूल देखा जा सकता है। अब केवल दो विद्यायें शेष रहजाती हैं जिनके आधारपर विपक्षी लोग यह आक्षेप करते हैं कि स्वामी दयान्दने व्यर्थ ही वेदमें विज्ञानके सिद्धांन्तोंकी कल्पनाकी। ये विद्यायें हैं नौविमानादि तथा तारविद्या।

नौकाओं और विमानोंका उल्लेख वेदमंत्रोंमें इतना स्पष्ट है कि कोई दुराग्रही व्यक्ति ही इस बात पर हठ करेगा कि वेद कालीन मनुष्य इन यंत्रोंसे वंचित थे। यही बात तारविद्याके सम्बन्धमें कही जा सकती है। तारीफ यह है कि स्वामी दयानन्दके विज्ञानवाद पर आक्षेप सब कोई करते हैं, परन्तु किसीने उनके दिये हुये प्रमाणोंका खण्डन आजतक नहीं किया।

आक्षेपकर्ता एक बात यह भी भूल जाते हैं कि स्वामी दयानन्दने जहां वेदमें विज्ञानके मूल तत्वोंकी विद्यमानताकी धारणाकी है वहां उनका अभिप्राय क्या है? ग्रन्थकारके अभिप्रायको समझे बिना यों ही आक्षेप कर बैठना अनुचित है। स्वामी दयानन्दने वेदोंमें जहां विज्ञानका मूल बताया है वहां उनके कथनका अभिप्राय इतना ही है कि सृष्टिके प्रारम्भमें ईश्वर प्रदत्त ज्ञान होनेके कारण वेदोंमें सभी ऐहिक और आमुष्मिक विषयोंका समावेश मानना समीचीन है। परन्तु इन विषयोंका वेदोंमें सर्वत्र विस्तार किया हुआ नहीं मिलेगा। ये विद्यायें बीज रूपमें हैं और पश्चात्‌वर्ती ऋषियों विद्वानों और मनीषियोंने वहांसे लेकर ही इस बीज रूपी विद्याको महावृक्षका रूप दे दिया है जो आज हमारे समक्ष विद्यमान हैं। मनुने जब वेदोंके महत्वका कीर्तन करते हुए कहा था कि 'चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति' और 'सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च। सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥' तो उसका भी अभिप्राय यही था कि वेदोंमें सब विद्याओं, समस्त सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाओं और विधानोंका मूल है। आक्षेपकर्ता महर्षिके मूल भावको न समझ कर मनमाने आक्षेप करते हैं। कोई कहता है क्या वेदमें एटम-

१ 'वेदोऽखिलो धर्ममूलं' तथा 'सर्व ज्ञानमयो हि सः'

बम भी है ? कोई कहता है अब एटमबम के आविष्कृत हो जानेपर दयानन्दके अनुयायी वेदोंमें एटमबमकी सत्ताको भी सिद्ध करने लग जायेंगे। अथवा यह कहा जाता है कि महर्षिके दयानन्दके युगमें तार आदि जिन वैज्ञानिक आविष्कारोंका चलन हो गया था, उन्होंने उन उन आविष्कारोंकी सत्ता ही वेद मंत्रोंसे सिद्ध कर दी यदि वे आजके युगमें होते तो आज भी यही करते और अणुबम आदि विज्ञानके नूतनतम आश्चर्योंको मूल वेदमें खोज निकालते।

जो व्यक्ति ऐसा कहते हैं वे महर्षिके मन्तव्यसे अनभिज्ञ हैं, परन्तु खेदके साथ लिखना पडता है कि अधिकांश आक्षेपकर्ता इसी कोटिके हैं। उनका कथन है कि ' स्वामीजीने देशमें एक नूतन अंधविश्वासको जन्म दिया है। उनके पूर्व भी वेद हिन्दुओंके पूज्य ग्रन्थ थे और वे आज भी हैं। किन्तु, पूज्य होनेके मानी यह तो नहीं है कि वेदमें त्रिकालका ज्ञान समाहित है। स्वामीजीने कहा है कि वेदमें केवल धर्मकी ही बातें नहीं हैं, उसमें विज्ञानकी भी सारी बातें प्रच्छन्न हैं। .... वेदोंको सभी ज्ञानोंका कोष मान लेनेसे लोगोंके ज्ञानोन्मेषमें बाधा भी पडी ''। हमारा निवेदन है कि ऋषि दयानन्दका वेदोंमें विज्ञानका मूल माननेका सिद्धान्त ज्ञानकी वृद्धि या ज्ञानोन्मेषका बाधक नहीं है। यदि उनका यही मत होता तो वे स्पष्ट लिख देते कि वेदोंके अतिरिक्त और किसी ज्ञान विज्ञानके ग्रन्थके अध्ययनकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु हम देखते हैं कि उन्होंने ऐसा नहीं किया, उसके विपरीत उन्होंने तो अपनी पठन पाठन प्रणालीमें वेदोंके अतिरिक्त भी अन्यान्य लौकिक विद्याओंके पठन पाठनकी व्यवस्था की है। उन्होंने अपने जीवन कालमें अनेक युवकोंको जर्मनी आदि यूरोपके भौतिक समृद्धि और कला कौशल प्रधान देशोंमें ज्ञान विज्ञानके सीखनेके लिये भेजनेकी योजना बनाई थी यह उनकी जीवनीसे स्पष्ट सिद्ध होता है। यदि उनका यही विचार होता कि वेदोंके अध्ययनके अतिरिक्त और किसी विज्ञानको सीखनेकी आवश्यकता ही नहीं है तो वे ऐसा कदापि नहीं करते। अतः इस आक्षेपमें कुछ भी तथ्य नहीं है कि स्वामी दयानन्द वेदोंको सर्व विद्याओंका मूल बताकर अंधविश्वासके जनक और विज्ञानकी प्रगतिमें बाधक थे।

लगभग ऐसा ही आक्षेप सायणाचार्यके प्रशंसक और उद्घोषक पं. बलदेव उपाध्यायने भी किया है। सायण लिखित वेद भाष्य भूमिकाओंके संग्रहकी प्रस्तावनामें आप लिखते हैं- ' अपरं चामी वेदेषु नवीनानामपि आधुनिकैः पाश्चात्यविज्ञानवेदिभिः प्राकाश्यं नीतानामाविष्काराणां धूम्रयान–वायुयान तडिच्छकटस्वनग्राहादीनां नैव कल्पितां सम्भावनां, अपितु वास्तविकीं सत्तां वेदे मन्यन्ते। सर्वेषामाविष्कृतानां आविष्करिष्यमाणानां च विज्ञानतत्वानामाकरो वेद एवेति तेषामभिमतं मतमिवावलोक्यते। परन्तु एषोऽपि सिद्धान्तो नैव विद्वज्जनमनोरमः ' अर्थात् ये लोग वेदोंमें आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान यथा धूम्रयान, वायुयान, बिजलीकी रेल आदिकी सत्ताको वेदोंमें केवल कल्पना ही नहीं करते अपितु उसे सत्य मानते हैं। इनका मत है कि वेद उन सब विज्ञानके तत्वोंका भण्डार है जो आविष्कृत हो चुके हैं या होनेवाले हैं। परन्तु यह सिद्धान्त विद्वानोंको पसन्द नहीं। अपने अन्य ग्रन्थ ' आचार्य सायण और माधव ' में भी आपने यही बात लिखी है– ' स्वामीजी (के अनुयायी वैदिक पण्डितों) की सम्मतिमें वेदोंमें विज्ञानके द्वारा आविष्कृत समस्त पदार्थ (रेल, तार वायुयान आदि) की सत्ता बतलाई जाती है। तब क्या वेदकी महिमा इसीमें है कि विज्ञानकी समग्र वस्तुओंका वर्णन उसमें उपलब्ध हो। वेद आध्यात्मिक ज्ञानके निधि हैं। भौतिक विज्ञानकी वस्तुओंका वर्णन करना उनका वास्तविक उद्देश्य नहीं है। ऐसी दशामें यौगिक प्रक्रियाके अनुसार इन चीजोंको वेदोंके भीतर बतलाना उचित नहीं जान पडता। इस प्रकार स्वामीजीकी पद्धतिको हम सर्वांगमें स्वीकार नहीं कर सकते। '

' वैदिक सम्पत्ति ' नामक वेद विषयक प्रसिद्ध ग्रन्थके लेखक पं. रघुनन्दशर्माकी भी यही सम्मति थी कि जो लोग वेदों और अन्य आर्य साहित्यसे रेल, मोटर, बिजलीकी रोशनीका वर्णन निकाल कर यूरोपकी वर्तमान भौतिक उन्नतिके साथ मेल मिलाते हैं वे गलती करते हैं वह संक्षेपमें उन लोगोंका मत है जो स्वामी दयानन्दके इस मतसे असहमत हैं कि वेदमें विज्ञानका मूल बीज रूपमें ही विद्यमान है।

सायणके प्रति अनुचित पक्षपातके कारण पं. बलदेव उपाध्यायने स्वामी दयानन्द पर यह आक्षेप तो किया परन्तु वे इस बातको स्वयं भूल गये कि सायणने स्वयं

अपने अथर्ववेद भाष्यकी भूमिकामें कौशिक सूत्रादिके आधार पर वेदोंमें उन अनेक विद्याओंका अस्तित्व स्वीकार किया है जो स्पष्ट रूपसे आध्यात्मिक न होकर भौतिक हैं। सायण लिखते हैं कि अथर्ववेदमें निम्न कर्मोंका प्रतिपादन है 'सेनापत्यादि प्रधानपुरुषजयकर्माणि, शत्रूत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशकानि, राज्याभिषेकः, कृषिपुष्टिकराणि, शस्त्राद्यभिघातजरुधिरप्रवाहनिरोधकानि, वातपित्तश्लेष्मभैषज्यानि, शिरोक्षिकर्णजिह्वाग्रीवादिरोगभैषज्यानि, सुखप्रसवकर्माणि, जनानामैकमत्यसम्पादकानि सांमनस्यानि।' इस सूचीको और भी बढ़ाया जा सकता है। अब आप देखेंगे कि सायणने राजनीति, कृषि, वैद्यक तथा चिकित्सा आदि सभी विद्याओंको वेदमें स्वीकार किया है। क्या उपाध्यायजी यह कह सकते हैं कि ये विद्यायें आध्यात्मिक हैं? यदि नहीं तो फिर महर्षि दयानन्दके विज्ञानवाद पर ही उनका आक्रोश क्यों है? यदि वेदमें समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और शरीरशास्त्रका उल्लेख हो सकता है तो उसमें भौतिक रसायन आदि अन्य विद्याओं का मूल माननेमें किसीको क्यों आपत्ति होनी चाहिए? जब कि राजनीति और समाजशास्त्र भी विज्ञान कहलानेके उतने ही अधिकारी हैं जितने भौतिक या रसायन विज्ञान।

चारों वेदोंके जो चार उपवेद हैं वे भी यही सूचित करते हैं कि वेदमें विज्ञानका मूल अवश्य है तभी तो ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद (Science of Medicine & Surgery) यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद (Military science) सामवेदका उपवेद गांधर्ववेद (Music) तथा अथर्ववेदका उपवेद अर्थवेद (Science of Economics) माना जाता है।

महर्षि दयानन्दके इस मतका समर्थन आज सभी विद्वान् कर रहे हैं कि वेदोंमें विज्ञान्का अस्तित्व बीज रूपमें विद्यमान है। योगी अरविंद ने तो जो कुछ लिखा है वह मानो आक्षेप कर्ताओंके उत्तररूपमें ही लिखा है। उन्होंने अपने Dayanand & Veda शीर्षक विद्वत्तापूर्ण निबंधमें लिखा है—

There is nothing fantastic in Dayanand's idea that the Veda contains truths of science as well as truth of religion. I will even add my own conviction that the Veda contains other truths of a science, the modern world does not at all possess, and in that case Dayanand has rather understated than overstated the depth and range of the Vedic wisdom.

अर्थात् स्वामी दयानन्दके इस विचारमें कि वेदमें न केवल धर्मके किन्तु विज्ञानके सत्यका भी मूल है, कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है। मेरा अपना तो यह भी विश्वास है कि वेदमें एक ऐसे विज्ञानकी सत्यताका प्रतिपादन है जिससे वर्तमान जगत् सर्वथा अनभिज्ञ है और उस अवस्था में स्वामी दयानन्दने वैदिक ज्ञानकी गम्भीरता तथा विस्तार को जतानेमें न्यूनोक्ति ही की है, अत्युक्ति नहीं। दयानन्द और अरविंदके अभिप्रायको न समझ कर 'संस्कृतिके चार अध्याय' नामक पुस्तकके लेखक श्री दिनकरने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि श्री अरविंदने दयानन्दका समर्थन कैसे किया?

बात यह है कि वैदिक विज्ञानके जिस सिद्धान्त पर दयानन्द पहुंचे थे, उनके पश्चात् वैदिक अनुसंधानमें लगने वाले अन्य यूरोपीय तथा भारतीय विद्वान् भी उन्हीं निष्कर्षों पर पहुंचे और उन्होंने मुक्त कण्ठसे इस बातको स्वीकार किया कि वेदोंमें विज्ञानका मूल स्पष्ट रूपसे उपलब्ध होता है। जैकालियट नामक सुप्रसिद्ध विद्वान्ने अपनी Bible in India नामक पुस्तकमें लिखा—

'Astonishing fact! the Hindu Revelation (veda) is of all revelations the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science as it proclaims the slow and gradnal formation of the world'

अर्थात् यह एक बड़ी ही आश्चर्यजनक बात है कि ईश्वरीय धर्मग्रन्थोंमें केवल वेद ही ऐसे हैं, जिसके विचार वर्तमान विज्ञानके साथ सम्पूर्णतया संगत हैं, क्योंकि उनमें भी विज्ञानके अनुसार ही जगत्की क्रमिक रचनाका प्रतिपादन है।

एक अन्य अमेरिकन विदुषी श्रीमती व्हीलर विलोक्सने लिखा है—

'We have all heard and read about the ancient religion of India, it is the land

of the great Vedas, the most remarkable works, containing not only religious ideas on perfect life, but also facts which all the science has since proved true. Electricity, Radium, Electrons, Air ships, all seem to be known to the sires who found the Vedas.'

अर्थात् हम सबने भारतके प्राचीन धर्मके विषयमें सुना है और पढा है। यह भारत उन महान् वेदोंकी भूमि है जिनके अन्दर केवल पूर्ण आदर्शमय जीवनके लिये धार्मिक तत्वोंका ही निरूपण नहीं है अपितु उन सच्चाइयोंका भी निर्देश है जिनको विज्ञानने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियोंको विद्युत्, रेडियम, एलेक्ट्रॉन्स, हवाईजहाज आदि सब बातोंका ज्ञान था, यह सम्भव प्रतीत होता है।

यह तो हुई पाश्चात्य विद्वानोंकी बात। बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् सत्यव्रत सामश्रमी ने भी महर्षि दयानन्दके इस सिद्धान्तसे पूर्णतया सहमति प्रदर्शित की है और यह लिखा है कि उस समय (उनका तात्पर्य सायणके युगसे है ले०) जब कि फोटोग्राफी, फोनोग्राफी, गैसलाइट, टैलीग्राफ, टैलीफोन, रेलवे और हवाईजहाजोंका प्रचार भारतमें नहीं था, किस प्रकार हमारे देशके लोग (अभिप्राय भाष्यकर्ताओंसे है ले०) उन मंत्रोंके यथार्थ रहस्यको समझ सकते थे, जिनमें कि इन वस्तुओंकी ओर संकेत है ? अतः वेदभाष्य कर्ताकी योग्यताका विचार करते हुये सामश्रमी महाशय लिखते हैं ' इसलिये यह स्पष्ट है कि वही मनुष्य वेदोंका योग्य भाष्यकार हो सकता है जिसे कि कृषि शास्त्र, व्यापार, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिष, जल, स्थिति, विद्यां अग्निविद्या, वनस्पतिशास्त्र, जीवशास्त्र, शरीरशास्त्र, तथा युद्ध विद्याका पूर्ण ज्ञान हो। ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखा गया भाष्य ही केवल पूर्ण संतोष दे सकता है और सब प्रकारके संशयोंको मिटा सकता है।'

सम्मतियोंका अधिक विस्तार न करते हुये हम इतना ही लिखना पर्याप्त समझते हैं कि महर्षि दयानन्दने जिन मंत्रोंसे भौतिक विज्ञानको विविध आविष्कारोंकी ओर संकेत किया है। उनके अर्थोंको लेकर हमारा मतभेद हो सकता है, परन्तु हम उस सिद्धान्तको ही इस आधारपर पूर्णतया बहिष्कृत नहीं कर सकते कि वेद आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं अतः उनमें भौतिक विद्याओंका उल्लेख मिल ही नहीं सकता। सामश्रमी जी की सम्मतिको यदि महत्व दिया जाय, और अवश्य देना भी चाहिये, तो उस दृष्टिसे सायण तो वेदभाष्य जैसे महत्वपूर्ण कार्यके लिये सर्वथा अयोग्य ही प्रमाणित होगा।

समालोचना

★

साइंटिफिक ऍण्ड एफिशियेण्ट ब्रीदिंग— लेखक— ना. वा. गुणाजी; प्रकाशक— ना. वा. गुणाजी. बी. ए. एल् एल् बी; २७७ तलकवाडी गार्डन, बेलगांव (मैसूर स्टेट ; पृष्ठ सं. ८०; मूल्य २) ।

भारतीय चिकित्साविधियोंमें जहां औषधियों द्वारा रोगको नष्ट करनेकी पद्धति थी, वहां एक दूसरे प्रकारकी भी पद्धति प्रचलित थी, वह थी शरीरमें रोगविरोधी कीटाणुओंको शक्तिशाली बना कर शरीरको सशक्त बनानेकी । इसका परिणाम यह होता था कि अव्वल तो रोग पैदा ही नहीं होते थे और यदि होते भी थे तो शरीर स्वयं उसका प्रबन्ध करके उसे आगे बढ़ने न देकर वहीं पर समाप्त कर देता था । वह पद्धति थी योगासन और प्राणायामकी । योगासनोंसे शरीरके प्रत्येक अंगको बल मिलता था, और प्राणायामसे श्वासोच्छ्वास दीर्घ होकर प्राणोंको बल मिलता था और उससे फेफड़ोंमें अधिक कार्यक्षमता पैदा होती थी, परिणामस्वरूप रक्तकी परिशुद्धता होकर रोग विरोधक और विनाशक शक्ति शरीरमें उत्पन्न होती थी । इस प्रकार इस पद्धतिका भारतीय चिकित्सा विधिमें प्रमुख स्थान था । इसके ऊपर अनुभवियोंका लिखा हुआ विशाल साहित्य आज भी उपलब्ध है । महर्षि पतंजलिका "योग दर्शन" इस विषय पर अधिकार ग्रंथ है ।

प्रस्तुत पुस्तक भी, जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, इसी भारतीय चिकित्सा विधि पर लिखी गई है । इसमें विशेष कर प्राणायाम विधि पर लिखा गया है । लेखक भी अनुभवी है । इसमें यौगिक क्रियाओं पर भी थोड़ी बहुत विवेचना की गई है । इसमें अनुभवोंके अलावा जगह जगह अन्य योग ग्रंथोंके प्रमाण भी प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे पाठकोंको सहायता मिल सकती है । लेखकने ग्रंथ यद्यपि अंग्रेजीमें लिखी है, पर अंग्रेजी बड़ी सरल है । विषयका प्रतिपादन सुन्दर है । यदि विदेशोंमें इसका प्रचार होतो विदेशोंमें जो इस विधिके प्रेमी हैं, उन्हें सहायता मिल सकती है । इसमें चित्रों द्वारा भी विषयको स्पष्ट किया गया है । पुस्तक उपादेय है ।

श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक और आंग्लभाषानुवाद सहित ले. ना. वा. गुणाजी, प्रकाशक— फोनिक्स पब्लिकेशन्स, कर्नाटक हाउस, चीर बाजर, बम्बई २, पृष्ठ सं. ३६८; मूल्य ३) ।

महात्मागांधीने एक बार 'यंग इण्डिया' में लिखा था कि 'जब संशयका मैं शिकार होजाता हूँ, और निराशा मुझ पर सवार होजाती है तथा क्षितिज पर मुझे आशाकी एक भी किरण दिखलाई नहीं पड़ती तो मैं गीताके अध्ययनमें व्यस्त होजाता हूँ और मैं तत्क्षण ही अपार दुःखोंमें भी मुस्कराने लगता हूँ' ।

यह अनुभव केवल महात्माजीका ही हो ऐसी बात नहीं अपितु सैकड़ों ही ऐसे हैं, जो दुःख या पीड़ाके समय गीताकी शरणमें जाकर शान्ति प्राप्त करते हैं ।

गीताका सन्मान भारतीय तथा भारतीयेतर समाजमें इतना है कि कहीं कहीं तो गीता वेदोंसे भी अधिक पूज्य होगई है । इस ग्रंथ पर कमसे कम नहीं तो सैकड़ों स्वतंत्र ग्रंथ लिखे जा चुके होंगे, पर फिर भी लोगोंको कम ही प्रतीत ही प्रतीत होता है । इतना ज्ञान इस नन्हेंसे ग्रंथमें भरा पड़ा है ।

उपरोक्त पुस्तक भी उस ज्ञान सागरका एक अंश है । इसमें यों तो के केवल श्लोकोंका अर्थ ही है, कोई विस्तृत व्याख्या नहीं, पर जो कुछ भी बन पड़ा है, वह सुन्दर और आकर्षक है । श्लोकोंका अर्थ अत्यन्त सरल रूपमें दिया गया है । फलतः पाठक सरलतासे ही भावोंको हृदयंगम कर सकता है । ४८ पृष्ठोंकी विशाल भूमिका खोज पूर्ण होनेके कारण इस ग्रंथकी उपादेयता और भी अधिक बढ़ गई है ।

संक्षेपमें, पुस्तक नित्य अ ययनके योग्य होनेके कारण संग्रहणीय है ।

मूलं संस्कृतं एवं वैदिकभाषोत्पत्तिविज्ञानम्— लेखक— श्री प. श्यामकुमार आचार्य; प्राप्ति स्थान— ८।८१ आर्यनगर कानपुर, (उ. प्र.); पृष्ठ संख्या २८८; मू. ४) ।

कुछ लोगोंकी धारणा यह है कि संस्कृत भाषा अत्यन्त कठिन और दुरूह है । जल्दीसे समझमें नहीं आती । पर यह उनकी धारणा निर्मूल है । जो भाषा कभी सर्व साधा-

रण जन भाषा रही हो, एक दुरूह और कठिन भाषा कैसे हो सकती है? भाषाका काठिन्य और सारल्य तो उन भाषाओंके पण्डितों पर निर्भर है। इंगलिशमें भी यदि ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया जाए कि पाठकको पदे पदे शब्द कोषका सहारा लेना पडे तो फिर वही भाषा कठिन हो जाएगी। इसी प्रकार संस्कृत पहले अत्यन्त सरल थी, पर बादमें पण्डितोंके पाण्डित्यके चक्करमें आकर अत्यन्त कठिन हो गई। बाण आदि संस्कृत साहित्यकारोंने समस्तपद तथा सन्धिपद रख कर दो दो पृष्ठोंके एक एक वाक्य बनाने शुरू कर दिए तो स्वभाविक था कि संस्कृत लोगोंको कठिन लगने लग जाए।

पर अब कुछ दिनोंसे ऐसा आन्दोलन शुरू हुआ है, जिसका उद्देश है संस्कृतके पदोंको संधि न बनाकर अलग अलग रखना, और जहां तक हो सके वहां तक समास और संधियोंका उपयोग न किया जाए और पृथक् पृथक् पदोंका ही व्यवहार किया जाए। इस प्रकारके आन्दोलन कर्ताओंमें पण्डित प्रवर श्री श्यामकुमारजी आचार्यका नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने इस दिशामें महान् प्रयास किया है। इन्होंने अभी तक "कीदृशं संस्कृतम्" आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। उन सबमें इसी बात पर जोर दिया है कि संस्कृत भाषाका सरलीकरण किया जाए। इन्होंने अपनी पुस्तकों, पत्रों व लेखोंमें समास व संधि न करनेका प्रण किया हुआ है। लेखक महोदय गत कई वर्षोंसे संस्कृत भाषा प्रचारके कार्यमें संलग्न हैं। इनका प्रयत्न सराहनीय है। उपरोक्त ग्रंथ भी इन्हींके प्रयत्न परिणाम है। ग्रंथकी भाषा सरल होनेसे रोचक भी है। विषय प्रतिपादनकी सुन्दरता ग्रंथके महत्वको द्विगुणित करती है। ग्रंथ पठनीय व मननीय है।

पर ग्रंथके अन्तिम अध्याय वेद भागमें लेखकने यह भी सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि वेद मंत्रोंका जो स्वरूप आज है, वह पूर्व नहीं था। पहले वेदोंके पद संधिविरहित और पृथक् पृथक् थे, अर्थात् पहले वेदोंके मंत्र 'अग्निमीळे' इस रूपमें न होकर 'अग्निं ईळे' इस रूपमें थे। पर उनका यह कथन कुछ संदिग्ध सा ही है। क्योंकि वेदके सब मंत्र छन्दसे नियंत्रित हैं, उनमें किसी प्रकारको मात्रा या अक्षरका व्यत्यय संपूर्ण छन्दका विनाशक हो जाएगा। अतः वेदोंका जो स्वरूप आज है वही पहले भी था। आशा है कि लेखक इस विषय पर विचार करके अगले संस्करणमें सुधारनेका प्रयास करेंगे।

कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । पंक्तिः ।

६५ यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित ॥
ऋ. ९।११३।७

(यत्र अजस्रं ज्योतिः) जहां शाश्वत प्रकाश है, (यस्मिन् लोके स्वः हितम्) जिस लोकमें सुख निहित है, (तस्मिन् अ-क्षिते अमृते लोके) उस अविनाशी अमृतलोकमें, हे पवमान । (मां धेहि) मुझे स्थापित कर ॥ ६५ ॥

अमृत लोकमें स्थापित करनेका अर्थ दीर्घायु प्राप्त करना है । तेजस्वी सोमरस छाननीसे छान कर पीनेसे आयु दीर्घ होती है । यही अमरलोकमें स्थान प्राप्त करना है ।

कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । पंक्तिः ।

६६ यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधि ॥
ऋ. ९।११३।९

(यत्र अनुकामं चरणं) जहां इच्छानुसार विचरण किया जा सकता है (यत्र त्रि-नाके त्रि-दिवे) जिस तीनों प्रकारके सुख और तीनों तरहके प्रकाशसे युक्त द्युलोकमें (दिवः ज्योतिष्मन्तः लोकाः) सुख तथा प्रकाशवाले लोक हैं (तत्र) उन लोकोंमें (मां अमृतं कृधि) मुझे अमर कर ॥ ६६ ॥

सोमरस अमर करता है, इसका अर्थ दीर्घायु करता है ।

कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । पंक्तिः ।

६७ यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधि ॥
ऋ. ९।११३।११

(यत्र आनन्दाः च मोदाः च) जहां आनन्द और सुख हैं (मुदः प्रमुदः आसते) तथा ऐश्वर्य और अतिशय आनन्द है (कामस्य यत्र कामाः आप्ताः) कामनावालेकी जहां कामनायें तृप्त हो जाती हैं, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां मुझे अमर कर ॥ ६७ ॥

जहां मनमें आनन्द रहता है वहां अमरत्व अर्थात् दीर्घायुकी प्राप्ति होती है । मनको आनंदप्रसन्न रखना दीर्घायु करनेवाला है ।

२

वैवस्वतो यमः । यमः । अनुष्टुप् ।

६८ यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥
ऋ. १०।१४।१४

(यमाय) यमके लिए (घृतवत् हविः जुहोत) घीवाली हविकी आहुति दो, (च) और (प्र तिष्ठत) और स्थिर रहो, (सः) वह यम (देवेषु) देवोंमें (नः) हमें (प्रजीवसे) दीर्घजीवनके लिए (दीर्घं आयुः यमत्) लम्बी आयु प्रदान करे ॥ ६८ ॥

अग्निमें गौके घीकी आहुतियां देनी चाहिये और उस अग्निके पास थोडी देर तक स्थिर बैठना चाहिये । जिससे इन आहुतियोंके द्वारा शुद्ध हुई हवा हवनकर्ताके अन्दर जा सके । इससे आयु दीर्घ होती है ।

संकुसुको यामायनः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

६९ मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन
शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ ऋ. १०।१८।२

हे (यज्ञियासः) यज्ञ करनेवाले मनुष्यो ! तुम (मृत्योः पदं योपयन्तः) मृत्युके पैरको दूर करते हुए, (यत् आ एत) जब आगे बढोगे, तब (द्राघीयः प्रतरं) दीर्घ तथा विशेष लम्बी (आयुः दधानाः) आयुको धारण करते हुए (प्रजया धनेन आप्यायमानाः) प्रजा और धनसे युक्त होते हुए (शुद्धाः पूताः भवत) शुद्ध और पवित्र होओ ॥ ६९ ॥

यज्ञ करनेसे मृत्युके अपने ऊपर रखे पांवको दूर किया जा सकता है, और पहिली प्राप्त लंबी आयु अधिक दीर्घ करके धारण की जा सकती है । शुद्ध और पवित्र बननेसे भी आयु दीर्घ की जा सकती है ।

संकुसुको यामायनः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

७० इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्
अभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ऋ. १०।१८।३

(इमे जीवाः मृतैः आववृत्रन्) ये जीवित मनुष्य मृतकोंसे घिरे हुए हैं (अद्य) आज (नः देव-हूतिः) हमारे द्वारा किया गया देवोंका यज्ञ (भद्रा अभूत्) कल्याणकारी होवे, हम (नृतये हसाय) नाचने और हंसनेके लिए (द्राघीयः प्रतरं आयुः दधानाः) लम्बी और उत्तम आयुको धारण करते हुए (प्रांचः अगाम) आगे बढें ॥ ७० ॥

भूमिपरके जीवित मनुष्य मरे हुओंसे घिरे हुए हैं। चारों ओर लोग मर रहे हैं। इसलिये जीवित मनुष्योंको यज्ञ करना चाहिये। मनुष्य यहां इस जगत्‌में आनंदसे नाचते और हंसते रहें। यज्ञसे दीर्घ आयु और अधिक दीर्घ करके धारण की जा सकती है। इस तरह मनुष्य प्रगति करके आनन्द प्राप्त करें।

संकुसुको यामायनः। मृत्युः। त्रिष्टुप्।

७१ इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि
मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीः
अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥

ऋ. १०।१८।४; यजु. ३५।१५

मैंने (जीवेभ्यः) जीवित मनुष्योंके लिए (इमं परिधिं दधामि) इस वयोमर्यादाको बनाया है (एषां) इन मानवोंमें कोई भी (अ-परः) नीच होकर (एतं अर्थं मा गात्) इस आयुरूपी धनका त्याग न करे, सभी मनुष्य (शतं शरदः) सौ वर्ष या (पुरूचीः) उससे भी अधिक (जीवन्तु) जीवें तथा (मृत्युं) मृत्युको (पर्वतेन अन्तः दधतां) पर्वतके अन्दर स्थापित कर दें ॥ ७१ ॥

मानवोंकी आयुष्य मर्यादा १२० वर्षोंकी परमेश्वरने की है। मनुष्य नीच बनकर इस आयुष्य रूपी धनको खो न बैठे। नीच आचरण करनेसे आयु कम होती है। सौ वर्ष या अधिक आयु तक मनुष्य जीवित रहें। मृत्युको पृष्ठवंश रूपी पर्वतके नीचे दबा कर रखें। पृष्ठवंश सीधा रखना चाहिये और उसमें जो चक्र स्वाधिष्ठान, मणिपूरक आदि हैं उनमें आत्म-शक्तिको ध्यानसे स्थिर करें। इससे आयु बढती है। 'प्रब्रवाम शरदः शतं'— सौ वर्ष प्रवचन करते रहें। इस तरह सौ वर्ष प्रवचन करनेके लिये १२० वर्षोंकी आयु चाहिये।

संकुसुको यामायनः। धाता। त्रिष्टुप्।

७२ यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति
यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहाति
एवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्॥ ऋ. १०।१८।५

(यथा अहानि) जिस प्रकार दिन (अनु पूर्वं भवन्ति) एक दूसरेके पीछे चलते हैं। (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) तथा जिस प्रकार ऋतुएं एक दूसरेके पीछे चलती हैं, (यथा पूर्वं अपरः न जहाति) जिस प्रकार पहले अर्थात् पिताको बादमें होनेवाला अर्थात् पुत्र नहीं छोडता है, उसी प्रकार (धातः) हे विधाता ! (एषां आयूंषि कल्पय) इन जीवोंकी आयु दीर्घ कर ॥ ७२ ॥

दिन और ऋतु एकके पीछे दूसरा आता है, इस तरह पिताके पीछे पुत्र आता है। वह पुत्र पिताके पूर्व न मरे। हे परमेश्वर ! मानवोंकी आयु तू ऐसी बना कि जिससे पिताके पूर्व पुत्र न चल बसे।

संकुसुको यामायनः। पितृमेधः। त्रिष्टुप्।

७३ आरोहतायुर्जरसं वृणाना
अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा
दीर्घमायुः करति जीवसे वः॥ ऋ. १०।१८।६

हे मनुष्यो ! (अनु-पूर्वं) पूर्वजोंके अनुकूल (यतमानाः) प्रयत्न करते हुए (यतिस्थ) बढते जाओ, तथा (जरसं वृणानाः) बुढापे को स्वीकार करते हुए (आयुः आरोहत) आयुको प्राप्त करो। (त्वष्टा) त्वष्टा देव (इह) इस संसारमें (सजोषाः) समान प्रीति युक्त रहनेके लिए तथा (सु-जनिमा) उत्तम जन्मके लिए और (जीवसे) दीर्घजीवनके लिए (वः आयुः दीर्घं करति) तुम्हारी आयु लम्बी करे ॥ ७३ ॥

जीवनमें उत्तम आचरण करनेसे आयु दीर्घ होती है। 'आयुः आरोहत' आयु पर चढना चाहिये। उतरना

नहीं चाहिये। गिरना नहीं, चढना है। मनुष्य विचार करें कि हम अपने जीवनमें चढ रहे हैं, या गिर रहे हैं। चढनेसे आयु बढती है, गिरनेसे कम होती है।

कुशो धानाकः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्।

७४ सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात्
सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं
सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥
ऋ. १०।३६।१४

(सविता) सविता देव (नः) हमें (पश्चात्तात्, पुरस्तात्, उत्तरातात् अधरात्तात्) पीछेसे, आगेसे, ऊपरसे, नीचेसे (सर्वतातिं सुवतु) सब अभिलषित सुखोंको प्रदान करे, तथा (सविता) सबको उत्पन्न करनेवाला देव (नः दीर्घं आयुः रासतां) हमें दीर्घायु देवे॥ ७४॥

सूर्य आयुको दीर्घ करता है। इसलिये सूर्य प्रकाशसे दूर नहीं होना चाहिये।

सौर्योऽभितपाः। सूर्यः। जगती।

७५ विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः
प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवे दिवे
ज्योग्जीवाः प्रतिपश्येम सूर्य॥ ऋ. १०।३७।७

हे (सूर्य) सूर्य! (सुमनसः सुचक्षसः) उत्तम मनवाले, उत्तम दृष्टिवाले (प्रजावन्तः अनमीवाः अनागसः) सन्तानवाले, रोग रहित तथा पाप रहित होकर हम (विश्वाहा) सब दिन (त्वा) तेरे आश्रयमें ही रहें, तथा हे (मित्र महः) सबसे महान् मित्र! (उद्यन्तं त्वा) उदय होते हुए तुझे (ज्योग् जीवाः) चिरकालतक जीनेवाले हम (दिवे दिवे प्रति पश्येम) प्रतिदिन देखें॥ ७५॥

मनुष्य प्रतिदिन सूर्य प्रकाशका सेवन करे, जिससे मनुष्यकी आयु बढती है।

सौचीकोऽग्निः। देवाः। त्रिष्टुप्।

७६ प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलान्
ऊर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम्।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनां
अग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः॥ ऋ. १०।५१।८

हे (देवाः) देवो! (मे) मुझे (केवलान् प्रयाजान् अनुयाजान् च) केवल प्रयाजों और अनुयाजोंको तथा (हविषः ऊर्जस्वन्तं भागं दत्त) हविके उत्तम भागको दो, (अपां च घृतं) पानी तथा घी (औषधीनां पुरुषं) औषधियोंसे उत्पन्न होनेवाले पुरुषत्वको मुझे दो तथा (अग्नेः दीर्घायुः अस्तु) अग्निसे दीर्घायु मेरे लिए प्राप्त हो॥ ७६॥

यज्ञ करना, उत्तम हवि समर्पण करना, घीका हवन करना इससे पुरुषत्व बढता है। ऐसी औषधियां हवनमें डालनी चाहिये कि जिनसे पौरुषकी शक्ति बढ सकती है। यह यज्ञाग्नि मनुष्यकी आयु दीर्घ करता है।

सौचीकोऽग्निः। देवाः। त्रिष्टुप्।

७७ अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम्।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानः॥ ऋ. १०।५३।३

'हमने (अद्य) आज (यज्ञस्य गुह्यां जिह्वां अविदाम) यज्ञकी गुप्त विद्याको जान लिया है (सः) वह यज्ञ देव (सुरभिः) सुगंधित होकर तथा (आयुः वसानः) दीर्घ आयुको धारण करता हुआ (आगात्) हमारे पास आता है॥ ७७॥

यज्ञकी गुह्य विद्या यह है कि अग्नि वायुको सुगंधित करता है, शुद्ध करता है, जिससे यज्ञ कर्ता लोग दीर्घ आयुको प्राप्त करते हैं।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। मन-आवर्तनम्। अनुष्टुप्।

७८ यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥
ऋ. १०।५८।२

(ते) तेरा (यत् मनः) जो मन (दिवं पृथिवीं दूरकं जगाम) द्युलोक अथवा पृथ्वीलोकमें दूर चला गया है, (ते तत्) तेरे उस मनको (इह क्षयाय जीवसे)

इस संसारमें रहने एवं जीनेके लिए (आवर्तयामसि) लौटाते हैं ॥ ७८ ॥ (१०।५८ का पूरा सूक्त)

मन संसारमें जिधर चाहे उधर न भटकता रहे। यहां इस जीवनमें दीर्घ काल तक जीनेके लिये इस मनको लौटा-कर लाना चाहिये और एक अच्छे कार्यमें लगाना चाहिये। इससे आयु दीर्घ होती है।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायना । निर्ऋतिः । त्रिष्टुप् ।

७९ प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः
स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत् तवीत्यर्थं
परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ ऋ. १०।५९।१

(स्थातारा क्रतुमता रथस्य इव) रथ पर बैठने-वाले जिस प्रकार अपनी कर्म शक्तिसे रथकी आयु बढाते हैं, उसी प्रकार हमारी (नवीयं आयुः) नई आयु (प्रतरं प्रतारि) बहुत अधिक बढे। (अध) इसके बाद (च्यवानः अर्थं उत् तवीति) वृद्ध भी इस आयु रूपी धनको प्राप्त करे। (निर्ऋतिः) बुरी दशा या अधोगति (परातरं सु जिहीताम्) बहुत दूर चली जावे ॥ ७९ ॥

तरुण अपनी आयुको बढावें जैसे रथ पर बैठनेवाले रथको सुरक्षित रखते हैं, वैसे देह रूपी रथको देहधारी सुरक्षित रखें। वृद्ध लोग भी अपनी आयुको बढानेका प्रयत्न करें। अपनी अधोगति कोई न करे। अधोगतिको सब लोग दूर करें।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायना.। असुनीतिः। त्रिष्टुप्।

८० असुनीते मनो अस्मासु धारय
जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः।
रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ ऋ. १०।५९।५

हे (असु-नीते) प्राण विद्याके ज्ञाता! (अस्मासु मनः धारय) हम सबमें मननकी शक्ति रखो (जीवातवे नः आयुः सु प्रतिर) जीनेके लिए हमारी आयु दीर्घ करो तथा (नः सूर्यस्य सन्दृशि रारन्धि) हमें सूर्यके उत्तम प्रकाशमें आनंदित रखो तथा (त्वं घृतेन तन्वं वर्धयस्व) तुम घीसे अपने शरीरको पुष्ट करो ॥ ८० ॥

प्राणको शरीरमें सुरक्षित रखनेकी विद्या जाननेवाले विद्वान् हमारेमें मनन शक्ति सुरक्षित रहे ऐसी शिक्षा हमें दें। दीर्घ जीवन प्राप्त करनेके लिये हमारी आयु सुदीर्घ करें। सूर्य प्रकाशमें रहनेमें हमें आनंद प्राप्त हो। गायका घी खाकर शरीरको पुष्ट करें।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। असुनीतिः। त्रिष्टुप्।

८१ असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः
पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तं
अनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥ ऋ. १०।५९।६

हे (असु-नीते) प्राण विद्याको जाननेवाले! (अस्मासु) हमें (इह) इस संसारमें (चक्षुः प्राणं पुनः धेहि) इन्द्रियोंकी शक्ति और प्राण फिरसे दो और (नः भोगं धेहि) हमें भोग प्रदान करो। (उत् चरन्तं) उदय होते हुए (सूर्यं) सूर्यको (ज्योक् पश्येम) दीर्घ काल तक देखें। हे (अनु-मते) अनुकूल बुद्धि देनेवाले विद्वान्! (नः स्वस्ति मृळय) हमें कल्याण तथा सुख प्रदान कर ॥ ८१ ॥

हमें इंद्रियोंकी शक्ति और प्राण शक्ति उत्तर आयुमें भी पुनः अच्छी तरहसे प्राप्त हो। हम इंद्रियोंसे भोग भोगनेकी शक्ति प्राप्त करें। भोग भोगते रहें ऐसा नहीं कहा, पर भोग भोगनेकी शक्ति शरीरमें रहे अर्थात् तारुण्यकी शक्ति शरी-रमें रहे ऐसा कहा है। इस शक्तिके शरीरमें रहनेके अनुकूल जो बुद्धि है वह हमें प्राप्त हो। इस तरह हमारा जीवन सुखदायी होकर हमें दीर्घ आयु प्राप्त हो। सूर्यका दर्शन हम करते रहें।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। जीवः। पंक्तिः।

८२ यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम्।
एवा दाधार ते मनो
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥
ऋ. १०।६०।८

(यथा धरुणाय) जिस प्रकार ढोनेके लिए (युगं) रथके जुएको (वरत्रया नह्यन्ति) रस्सियोंसे बांधते हैं, (एवा) उसी प्रकार (ते मनः) तेरे मनको (जीवा-तवे) दीर्घ जीवनके लिए तथा (अरिष्टतातये) अना-

रोग्य दूर करनेके लिए (दाधार) धारण करता हूँ, (न मृत्यवे) मृत्युके लिए नहीं ॥ ८२ ॥

मनमें दीर्घ जीवन प्राप्त करने और अनारोग्य दूर करनेका विचार सुस्थिर करना चाहिये । मरनेका विचार मनमें नहीं धरना चाहिये । इससे मन बलवान् बनता है और ऐसा बलवान् बना मन दीर्घायु प्राप्त करता है । 'मैं मरूंगा' ऐसा विचार मनमें रखनेसे मन निर्बल बनता है और आयुको कम कर देता है ।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । जीव । पंक्तिः ।

८३ यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥

ऋ. १०।६०।९

(यथा इयं मही पृथिवी) जिस प्रकार इस विशाल पृथ्वीने (इमान् वनस्पतीन् दाधार) इन वनस्पतियोंको धारण किया है, (एव) इसी प्रकार (ते मनः) तेरे मनको मैं (जीवातवे अथो अरिष्टतातये दाधार) जीनेके लिए और रोगोंके नाशके लिए धारण करता हूं (न मृत्यवे) न कि मृत्युके लिए ॥ ८३ ॥

दीर्घ जीवनके और विनाशको दूर करनेके विचार मनमें धारण करके मनमें सुस्थिर करने चाहिये । मरनेके विचार मनसे दूर हटाने चाहिये ।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । जीवः । अनुष्टुप् ।

८४ यमादहं वैवस्वतात् सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥

ऋ. १०।६०।१०

(वैवस्वतात् यमाद्) विवस्वान्के पुत्र यमसे (अहं) मैं (सुबन्धोः मनः) सुबन्धुके मनको (जीवातवे अथो अरिष्टतातये आभरम्) जीनेके विचारोंसे तथा निरोग रहनेके विचारोंसे भरपूर भर दिया है । (न मृत्यवे) मृत्युके विचारोंसे नहीं ॥ ८४ ॥

मनको दीर्घ जीवनके विचारोंसे तथा नीरोगिताके विचारोंसे भरपूर भर कर रखना चाहिये । इससे दीर्घ जीवन प्राप्त होगा । मरनेके विचार मनमें नहीं भरने चाहिये । क्योंकि इससे आयु क्षीण होती है ।

नाभानेदिष्ठो-मानवः । सावर्णेर्दानम् । त्रिष्टुप् ।

८५ सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः
सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायु-
र्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥

ऋ. १०।६२।११

(सहस्रदा ग्रामणीः मनुः) हजारों दान देनेवाला तथा गांवका नेता मनु (मा रिषत्) न मरे (अस्य दक्षिणा सूर्येण यतमान एतु) इसके दान सूर्यके प्रकाशके समान सर्वत्र फैले, (अ-श्रान्ताः) कार्य करके भी न थकनेवाले हम (यस्मिन्) जिस मनुके यज्ञमें (वाजं असनाम) अन्नको प्राप्त करते हैं, उस (सावर्णेः आयुः) सवर्णिके पुत्र मनुकी आयुको (देवाः प्रतिरन्तु) देवता बढावें ॥ ८५ ॥

मनु.— मननशील, विचारशील । सहस्रों प्रकारके दान देनेवाला यज्ञ कर्ता मनु अपनी आयु कम न करे, परंतु बढावे । यज्ञसे आयु बढती है । यज्ञ करनेवाले मनुकी आयुको देव दीर्घ करें ।

गयः प्लातः । विश्वे देवाः । जगती ।

८६ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा
बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो
दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ ऋ. १०।६३।४

(नृ-चक्षसः, अ-निमिषन्तः) मनुष्योंके कार्योंको देखनेवाले, आंखें न मूंदनेवाले अर्थात् आलस्य रहित (ज्योतीरथाः अहिमायाः अनागसः) तेजस्वी रथवाले, असुरोंके कपटोंको जाननेवाले, स्वयं निष्पाप (देवासः) देवोंने (अर्हणा) उपासनाके द्वारा (बृहत् अमृतत्वं आनशुः) बडे अमरपनको प्राप्त किया, तथा (स्वस्तये) अपने कल्याणके लिए (दिवः वर्ष्माणं वसते) द्युलोकके ऊंचे भाग पर निवास किया ॥ ८६ ॥

कर्मोंका अच्छी तरह निरीक्षण करना अर्थात् कर्ममें दोष रहने न देना, आलस्य न करना, प्रकाशमें रहना, शत्रुके कपटोंको जानना, स्वयं निष्पाप रहना, उपासना करना आदिसे ज्ञानियोंने बडी दीर्घ आयु प्राप्त की थी। दीर्घ आयु प्राप्त करनेके ये उपाय हैं।

सावित्री सूर्या ऋषिका। चन्द्रमाः। त्रिष्टुप्।

८७ नवोनवो भवति जायमानो
अह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्
प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः॥ ऋ. १०।८५।१९

(जायमानः नवः नवः भवति) प्रकट होता हुआ नया नया होता है, (अह्नां केतुः) एक दिनोंका बतानेवाला है, (उषसां अग्रं एति) उषाओंके आगे चलता है (आयन् देवेभ्यः भागं विदधाति) वह आता हुआ देवोंके लिए भाग समर्पित करता है। तथा (चन्द्रमाः दीर्घं आयुः प्रतिरते) चन्द्रमा दीर्घायु प्रदान करता है॥ ८७॥

शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन नया जीवन प्राप्त करनेसे चन्द्रमा बढता है। और कृष्ण पक्षमें वही जीवनकी ओर ध्यान न देनेसे घटता है। नया जीवन प्रतिदिन प्रयत्न करने पर ही प्राप्त होता है। वैसे ही जो लोग प्रतिदिन दीर्घ जीवन प्राप्तिका प्रयत्न करते रहेंगे वे दीर्घायु होंगे।

सावित्री सूर्या ऋषिका। सूर्या सावित्री। अनुष्टुप्।

८८ पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥
ऋ. १०।८५।३९

(अग्निः) अग्निदेव (आयुषा वर्चसा सह) आयु और वर्चस्के साथ (पत्नीं) पत्नीको (पुनः अदात्) फिर देवे, और (अस्याः यः पतिः) इसका जो पति है, वह (दीर्घायुः) दीर्घ आयुवाला होकर (शतं शरदः जीवाति) सौ वर्ष जीवे॥ ८८॥

पति और पत्नी दीर्घ जीवनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करें। एक दूसरेको इस प्रयत्नमें सहायता दें और दोनों दीर्घायु हों।

ऐलः पुरूरवाः। उर्वशी। त्रिष्टुप्।

८९ विद्युन्न या पतन्ती दविद्योत्
भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः
प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः॥ ऋ. १०।९५।१०

(या) जो उर्वशी (विद्युत् न) बिजलीके समान (पतन्ती) चलती हुई (दविद्योत्) प्रकाशित होती है, तथा (मे अप्या काम्यानि) मेरी अभिलाषाओंको (उद्भरन्ती) पूर्ण करती है, यदि वह मेरे लिए (अपः नर्यः) कर्मशील, मनुष्योंके हित करनेवाले (सुजातः) उत्तम पुत्रको (जनिष्ट) जन्म देवे तो वह (उर्वशी दीर्घं आयुः प्रतिरत) उर्वशी मेरी आयुको दीर्घ करे॥ ८९॥

पुत्र कर्म करनेवाला उद्योगी, मानवोंके हितका कार्य करनेवाला हो और दीर्घ आयु प्राप्त हो।

अष्टको वैश्वामित्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

९० अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चो
अजागरास्वधि देव एकः।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ
ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः॥ ऋ. १०।१०४।९

हे (इन्द्र) इन्द्र! तू जिन (महीः अपः) महान् जलोंको (अभिशस्तेः अमुंचः) शत्रुसे छुडाता है, (आसु अधि) उन पर (एकः देवः) तू अकेला देव ही (अजागः) अधिकार करता है, (याः) जिन जलोंको (त्वं) तू (वृत्रतूर्ये) संग्राममें (चकर्थ) प्राप्त करता है, (ताभिः) उनसे तू (तन्वं पुपुष्याः) अपने शरीरको पुष्ट कर तथा (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयुका उपभोग कर॥ ९०॥

जलका उत्तम प्रयोग करनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। जलचिकित्साके प्रयोग प्रसिद्ध हैं।

भूतांश काश्यपः। अश्विनौ। त्रिष्टुप्।

९१ सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू
नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू
ता मे जराय्वजरं मरायु॥ ऋ. १०।१०६।६

(सृण्या इव) जिस प्रकार हाथीको अंकुशसे अधि-

कारमें रखा जाता है, उसी प्रकार (जर्भरी) सबको पुष्ट करनेवाले (तुर्फरीतू) रोगोंको मारनेवाले (नैतोशा इव तुर्फरी पर्फरीका) घातकको मारनेके समान मारने और फाडनेवाले (उदन्यजा इव) पानीमें होनेवालेके समान निर्मल (जेमना) जयशील (मदेरू) आनन्द देनेवाले (ता) वे दोनों अश्विनौ (जरायु मरायु मे) अत्यधिक वृद्ध और मरणशील मुझे (अ-जरं) बुढापेसे रहित करें ॥ ९१ ॥

वैद्य वृद्धोंको आयुर्वेदकी उपाय योजनासे तरुण बनावें। पुष्टीकारक, रोग दूर करनेवाले, घात करनेवालोंको दूर करनेवाले, मनको आनंदमें रखनेवाले प्रयोग किये जांय और दीर्घ आयुकी सिद्धि प्राप्त की जाय।

दिव्य आंगिरसः; दक्षिणा वा प्राजापत्या।
दक्षिणा दक्षिणादातारो वा। त्रिष्टुप्।

९२ उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः
ये अश्वदाः सह ते सूर्येण।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते
वासोदाः सोम प्रतिरन्त आयुः॥

ऋ. १०।१०७।२

(दक्षिणावन्तः) धन देनेवाले (उच्चा दिवि अस्थुः) ऊंचे द्युलोक में बैठते हैं, (अश्व-दाः) जो घोडा देनेवाले हैं (ते) वे (सूर्येण सह) सूर्यके साथ बैठते हैं (हिरण्यदाः) सोना देनेवाले (अमृतत्वं भजन्ते) अमरताको प्राप्त होते हैं, तथा हे (सोम) सोम ! (वासो-दाः) आश्रय देनेवालोंकी (आयुः प्रतिरन्ते) आयु बढती है ॥ ९२ ॥

दान देनेसे, सूर्य प्रकाशके सेवनसे आयु बढती है।

वार्ष्टिहव्य उपस्तुतः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

९३ ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वा
उपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक्।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः॥ ऋ. १०।११५।८

हे (ऊर्जः नपात् सहसावन्) बलके पुत्र तथा स्वयं बलवाली अग्ने ! (उपस्तुतस्य) मुझ उपस्तुत ऋषिकी (वृषा वाक्) बलयुक्त वाणी (त्वा इति) तेरी ही (वन्दते) स्तुति करती है। हम (त्वां स्तोषाम) तुझे ही सन्तुष्ट करते हैं, (त्वया) तेरी कृपासे हम (सु-वीराः) उत्तम सन्तानवाले होकर (प्रतरं द्राघीयः आयु दधानाः) अत्यन्त दीर्घ आयुको धारण करनेवाले हों ॥ ९३ ॥

प्रभुकी स्तुति करनेसे आयु दीर्घ होती है। इस स्तुतिमें मन लगा रहना चाहिये अर्थात् उसमें तल्लीन होना चाहिये।

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः। कः (प्रजापतिः)। त्रिष्टुप्।

९४ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ऋ. १०।१२१।२

(यः आत्मदा बलदा) जो आत्मशक्ति और शारीरिक शक्तिका देनेवाला है, (यस्य विश्व उपासते) जिसकी सब उपासना करते हैं, (देवाः यस्य प्रशिषं) देव गण जिसकी आज्ञाका पालन करते हैं, (यस्य छाया अमृतं) जिसकी छायामें रहनेसे अमरपन प्राप्त होता है (यस्य मृत्युः) जिसका त्याग करनेसे मृत्यु होती है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) इस सुखरूप देवको छोडकर हम किस दूसरेकी उपासना करें ? ॥ ९४ ॥

प्रभुकी एक निष्ठासे उपासना करनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

भरद्वाजः। विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्।

९५ उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥

ऋ. १०।१३७।१

हे देवो ! (अवहितं) नीचे गिरे हुए मनुष्यको (पुनः उत् नयथ) फिर ऊपर उठाओ (आगः चक्रुषं उत) पाप करनेवालेको भी उठाओ, तथा (पुनः जीवयथा) उसे फिर दीर्घ जीवन प्रदान करो ॥ ९५ ॥

यदि पापमें प्रवृत्ति हुई तो उससे निवृत्त हो जाओ। यदि गिरावट हुई तो फिर ऊपर उठो और पुनः दीर्घ जीवन प्राप्त करनेकी साधना करो।

तार्क्ष्यः सुपर्णः, यामायनः ऊर्ध्वकृशनो वा। इन्द्रः। गायत्री।

९६ अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते।
दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥ ऋ. १०।१४४।१

हे इन्द्र ! (ते) तेरा (अयं अ-मर्त्यः दक्षः इन्दुः) यह अमर, तथा बल प्रदान करनेवाला सोम (विश्वायुः) मनुष्योंको सम्पूर्ण आयुका प्रदान करनेवाला है ॥ ९६ ॥

सोम रस पीनेवालेको दीर्घायु करता है।

तार्क्ष्यः सुपर्णो यामायनः ऊर्ध्वकृशनो वा। इन्द्रः। सतोबृहती।

९७ यं ते श्येनश्चारुमवृकं
पदाभरदरुणं मानमन्धसः।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस
एना जागार बन्धुता ॥ ऋ. १०।१४४।५

हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (श्यनः) श्येन पक्षी (यं चारुं अ-वृकं) जिस सुन्दर, कुटिलता रहित (अरुणं) लाल रंगके (अन्धसः मानं) अन्नके तुल्य सोमको (पदा) पैरोंसे चलकर ही (आभरत्) ले आया (एना , इस सोमके द्वारा (जीवसे) जीनेके लिए (वयः आयुः वि तारी) अन्न तथा आयुको बढा, (एना) इसी सोमके कारण (बन्धुता जागार) तुम दोनोंमें भाईचारा है ॥ ९७ ॥

सोमरस आयुको बढाता है।

तार्क्ष्यः सुपर्णः यामायनः ऊर्ध्वकृशनो वा। इन्द्रः। विष्टारपंक्तिः।

९८ एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु
चिद्धारयाते महि त्यजः।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः
सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥ ऋ. १०।१४४।६

(एव) इस प्रकार (इन्द्रः) इन्द्र (इन्दुना) सोमसे तृप्त होकर (देवेषु) सब देवोंमें (महि चित् त्यजः) सबसे अधिक तेजको (धारयाते) धारण करता है, हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (क्रत्वा) यज्ञकी सहायतासे (अयं) यह सोम (अस्माभिःसुतः) हमारे द्वारा निचोडा गया है, अतः हमारे इस (क्रत्वा) कामसे सन्तुष्ट होकर (वयः आयुः वि तारी) अन्न और आयुको बढा ॥ ९८ ॥

सोम उत्तम अन्न है और आयु बढानेवाला है।

प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः। इन्द्राग्नी, राजयक्ष्मघ्नं वा। त्रिष्टुप्।

९९ मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कं
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं
तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥
ऋ. १०।१६१।१

हे मनुष्य ! (कं जीवनाय त्वा) सुखपूर्वक जीनेके लिए तुझे मैं (राजयक्ष्मात् उत अज्ञात-यक्ष्मात्) राजयक्ष्मा और अज्ञात रोगसे (हविषा) यज्ञ द्वारा (मुंचामि) छुडाता हूं। (यदि वा ग्राहिः जग्राह) अथवा शरीरको जकडनेवाले रोगने तुझे पकड लिया है तो (तस्याः) उस रोगसे भी (एनं) इस रोगीको (इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तं) इन्द्र और अग्नि छुडावें ॥ ९९ ॥

यज्ञाग्निमें योग्य औषधियोंका हवन करनेसे, और उस यज्ञाग्निके समीप बैठे रहनेसे रोगीके राजयक्ष्मा तथा अन्य रोग दूर होते हैं। और अन्य जकडनेवाले रोग भी दूर होते हैं और दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः। इन्द्राग्नी, राजयक्ष्मघ्नं वा। त्रिष्टुप्।

१०० यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो
यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्था
दस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ ऋ. १०।१६१।२

(यदि क्षितायुः) यदि मनुष्यकी आयु क्षीण हो जाए (यदि वा परेतः) अथवा यदि रोगी वशसे बाहर चला जाए (यदि मृत्योः अन्तिकं एव नीतः) यदि मृत्युके बिलकुल समीप भी पहुंच जाए तो भी (निर्ऋतेः उपस्थात्) बुरी अवस्थासे (तं आ हरामि) उसे बाहर खींच लाऊं और (एनं शतशारदाय अस्पार्षम्) इसे सौ वर्षके लिए बल युक्त करूं ॥ १०० ॥

यदि रोगी बिलकुल मरनेकी अवस्था तक पहुंचा हो, तो भी उसको आरोग्य प्राप्त हो सकता है और वह दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है।

प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः । इन्द्राग्नी राजयक्ष्मघ्नं वा । त्रिष्टुप् ।

१०१ सहस्राक्षेण शतशारदेन
शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयाति
इन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥

ऋ. १०।१६१।३

मैं (एनं) इस मनुष्यको (हविषा) यज्ञके द्वारा (शतशारदेन) सौ बरससे युक्त (शत-आयुषा) सौ वर्षकी आयुसे युक्त, (सहस्राक्षेण) सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे युक्त करके (आ हार्षम्) जीवनमें लाता हूं । (यथा इन्द्रः) जिससे इन्द्र भी (इमं) इस मनुष्यको (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (विश्वस्य दुरितस्य पारं) सम्पूर्ण दुःखोंसे परे (नयाति) ले जावे ॥ १०१ ॥

योग्य हवनसे मनुष्य रोगोंसे मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है ।

प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः । इन्द्राग्नी राजयक्ष्मघ्न वा । त्रिष्टुप् ।

१०२ शतं जीव शरदो वर्धमानः
शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः
शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥ ऋ. १०।१६१।४

यह मनुष्य (वर्धमानः) समृद्ध होता हुआ (शतं शरदः शतं हेमन्तान्, शतं वसन्तान्) सौ शरद, हेमन्त और वसन्त (जीव) जीवे । तथा (शतायुषा हविषा) सौ वर्षकी आयु प्रदान करनेवाले यज्ञके द्वारा (इन्द्राग्नी, सविता, बृहस्पतिः) इन्द्र, अग्नि, सविता और बृहस्पति भी (इमं) इसे (शतं पुनः दुः) सौ वर्षकी आयु दें ॥ १०२ ॥

योग्य पदार्थोंके हवनसे मनुष्य शतायुषी होता है ।

प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः । इन्द्राग्नी, राजयक्ष्मघ्नं वा । अनुष्टुप् ।

१०३ आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वाङ्गसर्व ते चक्षुः सर्वमायुश्च ते विदम् ॥

ऋ. १०।१६१।५

हे मनुष्य ! (त्वा आहार्षं) तुझे मैं रोगसे मुक्त करता हूं, (त्वा आविदं) तुझे बल प्राप्त कराता हूं, तू (पुनः आगाः) फिर समर्थ हो जा, हे (पुनः नव) फिरसे नये हो जानेवाले मनुष्य ! (ते) तुझे (सर्वाङ्गसर्व चक्षुः) सब अंग और सब इन्द्रियें तथा (सर्व आयुः) सम्पूर्ण आयु (विदं) प्राप्त कराता हूं ॥ १०३ ॥

रोगीका रोग दूर करके उसको पूर्ण आयु प्राप्त कराई जा सकती है ।

वातायन उल. । वायुः । गायत्री ।

१०४ वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ऋ. १०।१८६।१

वह (वातः) वायु (भेजषं) औषधि रूप होकर (शं-भु) कल्याण कारक एवं (मयः भु) सुखकारक होकर (नः आवातु) हमें प्राप्त हो तथा (नः आयूंषि प्र तारिषत्) हमारी आयुको बढावे ॥ १०४ ॥

वायु शुद्ध रहा तो उसके सेवनसे आयु दीर्घ हो सकती है ।

वातायन उलः । वायुः । गायत्री

१०५ उत वात पितासि नः
उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥ ऋ. १०।१८६।२

हे (वात) वायुदेव ! तू (नः पिता असि) हमारा पिता है, (उत नः भ्राता उत सखा) और हमारा भाई तथा मित्र है, (सः) वह तू (नः जीवातवे कृधि) हमारी आयुको दीर्घ कर ॥ १०५ ॥

वायु सबका माता, पिता, भाई और मित्र है । वह दीर्घ. जीवन देता है । योग्य रीतिसे मनुष्य वायुका सेवन करें ।

वातायन उलः । वायुः । गायत्री ।

१०६ यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ॥ ऋ. १०।१८६।३

हे (वात) वायुदेव ! (ते गृहे) तेरे घरमें (यत् अदः अमृतस्य निधिः हितः) जो यह अमृतका खजाना रखा हुआ है, (ततः जीवसे नः देहि) उसमेंसे दीर्घ जीवनके लिए हमें दे ॥ १०६ ॥

वायुमें अमरत्वका खजाना है । वायुके सेवनसे वह अमृत मनुष्यको प्राप्त होता है । प्राणायामसे प्राप्त होता है । दीर्घायु चाहनेवाले वायुका योग्य रीतिसे सेवन करें और वह अमृत प्राप्त करें ।

यजुर्वेद मंत्र

परमेष्ठी प्राजापत्यः, देवाः प्राजापत्यः,
प्रजापतिर्वा ऋषिः । गौः । निचृत् पंक्तिः ।

१०७ सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा
सा विश्वधायाः ॥ यजु. १।४

(सा विश्वायुः) वह सम्पूर्ण आयुको प्रदान करनेवाली है, (सा विश्वकर्मा) वह सम्पूर्ण शुभ कर्मोंको करनेवाली है, तथा (सा विश्वधायाः) वह सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाली है ॥ १०७ ॥

पूर्ण आयु, पूर्ण पुरुषार्थ करनेकी शक्ति और पूर्ण रीतिसे कार्य भार धारण करनेकी शक्ति मनुष्यको अपनेमें प्राप्त करनी चाहिये ।

परमेष्ठी प्राजापत्यः, देवाः प्राजापत्या,
प्रजापतिर्वा ऋषिः । अग्निः । निचृत् पंक्तिः ।

१०८ अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतं हिमाः।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ यजु २।२७

हे अग्ने ! (नौ गार्हपत्यानि) हमारे गृहस्थीके कर्त्तव्य (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक (अस्थूरि) निर्विघ्न चलते रहें, मैं (सूर्यस्य आवृतं अनु आवर्त्ते) सूर्यके व्रतका अनुसरण करता हूँ ॥ १०८ ॥

मेरे गृहस्थ धर्मके कर्तव्य निर्विघ्न रीतिसे चलते रहें। सूर्यके समान मैं तेजस्वी बनकर नियम पूर्वक प्रकाशता रहूं और सौ वर्षको आयु प्राप्त करके आनन्दसे गृहस्थके कर्तव्य करता रहूं ।

प्रजापतिः । अग्निः । गायत्री ।

१०९ अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥

यजु १९।३८; ३५।१६

हे अग्ने ! (नः आयूंषि पवसे) हमें दीर्घायु प्रदान करनेके लिए (ऊर्जं इषं च आसुव) बल तथा अन्न प्रदान कर, और (दुत्-शुनां आरे बाधस्व) दुष्ट पुरुषोंको दूर पर ही रोक दे ॥ १०९ ॥

उत्तम अन्न, पौरुष प्रयत्न करते रहनेका सामर्थ्य और दीर्घ आयु हमें प्राप्त हो और हम दुष्टोंको दूर करके आनन्दसे इस जगत्में अपने कर्तव्य करते रहें ।

प्रजापतिः । श्रीः । अनुष्टुप् ।

११० ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतं समाः॥

यजु. १९।४६

(जीवेषु) मानव समाजमें (समानाः समनसः) समान मन व समान ज्ञानवाले (ये मामकाः जीवाः) जो मेरे सम्बन्धी जीवित हैं (तेषां श्रीः) उनको तेजस्विता व सम्पत्ति प्राप्त हो (मयि) और मेरे पास भी ऐश्वर्य हो तथा (अस्मिन् लोके) इस संसारमें (शतं समाः) सौ वर्ष तक (कल्पताम्) हम सब जीवित रहें ॥ ११० ॥

मानव समाजमें समान विचार करनेवाले और समान ज्ञानवाले मनुष्योंका संगठन हो, उनकी तेजस्विता फैले और उनको ऐश्वर्य प्राप्त हो । वैसी सम्पत्ति मुझे भी प्राप्त हो और मैं भी वैसा ही तेजस्वी बनू और इस संसारमें सौ वर्षतक जीवित रह कर अपने ज्ञानके तेजको फैलाता रहू ।

प्रजापतिः । अश्विसरस्वतीन्द्राः । जगती ।

१११ अंगान्यात्मन् भिषजा तदश्विना
आत्मानमंगैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुः
चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥ यजु. १९।९३

(तद् भिषजा अश्विना) वे वैद्य अश्विनौ (अंगानि आत्मन् सं अधात्) अगोंको आत्माके साथ जोडते हैं, तथा (सरस्वती) विद्या (आत्मानं अंगैः सं अधात्) आत्माको अगोंके साथ जोडती है, ये (ज्योतिः अमृतं दधानाः) तेजस्विता और अमरताको धारण करते हुए (चन्द्रेण) मनके द्वारा (इन्द्रस्य रूपं आयुः) जीवात्माके रूप और आयुको (शतमानं) सौ गुना बढाते हैं ॥ १११ ॥

आत्माका इंद्रियोंके साथ और इन्द्रियोंका आत्माके साथका संबंध आत्मविद्यासे समझना और अपनी तेजस्विता बढाकर दीर्घ आयुको प्राप्त करना चाहिये । चन्द्रमासे मन और इन्द्रसे जीवात्मा यहां बोधित होता है । मनसे आत्माका ज्ञान प्राप्त करके, दीर्घ आयु प्राप्त करनेका अनुष्ठान करना यह मानवका कर्तव्य है ।

प्रजापतिः । वरुणः । आर्ची उष्णिक् ।

११२ निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः ।
मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥ यजु. २०।२

(धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः) जिसने व्रतको धारण किया है ऐसा उत्तम कर्म करनेवाला वरुण (साम्राज्याय) राज्य करनेके लिए (पस्त्यासु आ निषसाद) प्रजाओंमें आकर बैठ गया है । हे वरुण ! तू हमारी (मृत्योः पाहि) मृत्युसे रक्षा कर, हमें (विद्योत्पाहि) विनाशकारी शस्त्रोंसे बचा ॥ ११२ ॥

धर्मानुष्ठानके व्रतोंका पालन करना, उत्तम कर्तव्य कर्म करना इससे मनुष्य श्रेष्ठ बनता है । यह श्रेष्ठ बन कर प्रजाजनोंकी विधान सभामें जाकर सन्मानके स्थानपर बैठता है और साम्राज्य चलाता है। यह मृत्युसे अपने आपको बचावे और विनाशक वस्तुओंसे अपना संरक्षण करे और दीर्घ आयु प्राप्त करे ।

प्रजापतिः । निष्कं । प्राजापत्यानुष्टुप् ।

११३ तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा
आयुर्मे पाहि ॥ यजु. २२।१

हे सविता देव ! तू (तेजः, शुक्रं, अमृतं असि) तेज, बल और अमृत है, तथा (आयुष्पाः) सबके आयुओंका पालक है, अतः (मे आयुः पाहि) मुझे दीर्घ जीवन प्रदान कर ॥ ११३ ॥

मनुष्य तेजस्वी और वीर्यवान् बनकर अपनी आयुको बढावे । दीर्घजीवी बनकर रहे । यही मनुष्यका अमर बनना है ।

प्रजापतिः । अग्निः । विराट् त्रिष्टुप् ।

११४ क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सं रभस्व
मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था एधि
राज्ञामग्ने विहव्यो दिदीहीह ॥ यजु. २७।५

हे अग्ने ! (क्षत्रेण स्व-आयुः संरभस्व) क्षात्रतेजसे अपनी आयुको तेजस्वी कर । (मित्रेण मित्रधेये यतस्व) मित्रके साथ मित्रता बनाये रखनेका प्रयत्न कर, (सजातानां मध्यमस्थाः एधि) अपनी जातिवालोंमें मध्यस्थ होकर बल तथा (राज्ञां विहव्यः इह दिदीहि) राजाओं द्वारा सम्मान करने योग्य होकर यहां प्रकाशित होकर रह ॥ ११४ ॥

क्षात्र तेजसे शूरवीर होकर अपनी आयुको बढाओ, मित्रोंके साथ मित्र बनकर रहनेका यत्न करो, स्वजातीयोंमें अध्यक्ष होकर रहो और राज पुरुषोंसे सन्मान प्राप्त करके तेजस्वी बनकर रहो ।

विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् ।

११५ आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि
सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परिवृङ्धि हरसा माभि मंस्थाः
शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ यजु. १३।४१

(गर्भं) गर्भको (सहस्रस्य प्रतिमां) हजारोंकी प्रतिमा मानकर (विश्व-रूपं आदित्यं) सबका रूप देनेवाले आदित्य रूप गर्भको (पयसा समङ्धि) दूधसे सींचो । हे अग्ने ! (हरसा परिवृङ्धि) मुझे अपने तेजसे बढा (मा अभि मंस्थाः) मुझे मत मार, तथा (चीयमानः शतायुषं कृणुहि) मेरी रक्षा करते हुए मुझे सौ वर्षकी आयुवाला बना ॥ ११५ ॥

गर्भं पयसा समंग्धि— गर्भको दूधसे सींचो । गर्भवती स्त्रीको गायका दूध खूब पीना चाहिये, इससे उसका बच्चा दीर्घायुवाला होता है ।

गर्भ हजारोंकी प्रतिमा है, हजारों जन्मोंके संस्कार लेकर गर्भमें बालक आता है, इस कारण वह विश्व रूप आदित्य है । अनेक रूपोंके संस्कार उसमें हैं । इसलिये वह गर्भ तेजस्वी होना चाहिये । निर्बल नहीं होना चाहिये । वह सौ वर्ष जीवित रहे इसलिये उसकी माताको दूध देकर पुष्ट बनाना चाहिये ।

देवश्रवा देववातश्च भारतौ । अग्निः । अनुष्टुप् ।

११६ ये अग्नयः पांचजन्या अस्यां पृथिव्यामधि ।
तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो
जीवातवे सुव ॥ यजु. १८।६७

हे अग्ने ! (अस्यां पृथिव्यां अधि) इस पृथ्वी पर (ये पांचजन्याः अग्नयः) जो पंचजनोंका हितकरनेवाली अग्नियां हैं (तेषां त्वं उत्तमः असि) उनमें तुम

उत्तम हो, अतः (नः जीवातवे) हमारे दीर्घ जीवनके लिए (प्रसुव) प्रदीप्त हो ॥ ११६ ॥

हवनका यज्ञाग्नि पंचजनोंका लाभ करानेवाला है । इस-लिये वह हमारी आयु लंबी करे ।

अवत्सारः । अग्निः । निचृद्ब्राह्मी पंक्तिः ।

११७ इन्धानास्त्वा शतं हिमा
द्युमन्तं समिधीमहि ।
वयस्वन्तो वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम्॥

यजु. ३।१८

हे अग्ने ! (वयस्कृतं सहस्कृतं) अन्न तथा बलको देनेवाले (त्वा) तुझे (वयस्वन्तः सहस्वन्तः) अन्न तथा बलकी इच्छा करनेवाले हम (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक (इन्धानाः) प्रदीप्त करते हुए (सं इधीमहि) प्रज्वलित करते रहें ॥ ११७ ॥

हम सौ वर्ष तक जीवित रहें और यज्ञाग्निको प्रदीप्त करके उसमें ऋतुके अनुसार हवन सामग्रीका हवन करते रहें । इससे हमारी आयु बढती रहे ।

याज्ञवल्क्यः । अनुमतिः । अनुष्टुप् ।

११८ अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण
आयूंषि तारिषः ॥ यजु. ३४।८

हे अनुमते ! (त्वं इत् अनु मन्यासै) तू ही हमें अनुकूल बुद्धिवाला बना तथा (नः शं च कृधि) हमारा कल्याण कर, (क्रत्वे दक्षाय नः हिनु) उत्तम बुद्धि तथा बलकी प्राप्तिके लिए हमें प्रेरित कर तथा (नः आयूंषि प्रतारिषः) हमारी आयुओंको खूब बढा ॥ ११८ ॥

अपने मन और बुद्धिको धर्मानुकूल बनाओ और अपना कल्याण करो । कर्म करनेकी और बल बढानेकी प्रेरणा हमें दो और हमारी आयुको दीर्घ करो ।

बन्धुः । मनः । विराड् गायत्री ।

११९ आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ यजु. ३।५४

(ज्योक् क्रत्वे, दक्षाय, जीवसे) चिरकाल तक यज्ञ करने, बल प्राप्त करने तथा जीनेके लिए और (सूर्यं दृशे) सूर्यको देखनेके लिए (मनः) मन (पुनः नः आ एतु) फिर हमारे पास आ जावे ॥ ११९ ॥

दीर्घ जीवन जीनेके लिये, यज्ञ करनेके लिये, बल प्राप्त करनेके लिये तथा सूर्य प्रकाशको देखनेके लिये मनकी प्रवृत्ति पुनः पुनः करते रहो ।

बंधुः । वनस्पतयः । विराड् बृहती ।

१२० दीर्घायुस्त औषधे खनिता
यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा
शतवल्शा वि रोहतात् ॥ यजु. १२।१००

हे (औषधे) औषधे ! (ते खनिता) तुझे खोदने-वाला मैं तथा (यस्मै त्वा अहं खनामि) जिसके लिए तुझे मैं खोद रहा हूं, हम दोनों ही (दीर्घायुः) दीर्घायु-वाले हों, (अथो) और (त्वं) तू भी (दीर्घायुः भूत्वा) दीर्घायुवाली होकर (शतवल्शा वि रोहतात्) सैकडों अंकुरोंके रूपमें उग ॥ १२० ॥

औषधि, रोगी और औषधिको खोदकर या काटकर निकालनेवाला वैद्य ये तीनों दीर्घायु हों । औषधिसे रोगी रोग-मुक्त होकर दीर्घ आयु प्राप्त करे, वैद्य सदाचारसे रहकर दीर्घ आयु प्राप्त करे और औषधि पुनः उगकर दीर्घायु बने । किसीका नाश जल्दी न हो ।

वसिष्ठः ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् ।

१२१ यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा
सो अष्टधा दिवमन्वाततान ।
स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायां
रायस्पोषं विश्वमायुरशीय ॥ यजु. ८।६२

(यज्ञस्य पुरुत्रा दोहः विततः) यज्ञका सबकी रक्षा करनेवाला दुहनेका पात्र विशाल है, (सः अष्टधा दिवं अनु आततान) वह आठ प्रकारका होकर द्युलोक तक फैला हुआ है, हे (यज्ञ) यज्ञ ! (सः) वह तू (मे प्रजायां) मेरी प्रजा-सन्तानके लिए (महि रायस्पोषं धुक्ष्व) महान् ऐश्वर्य तथा पुष्टिको दुह, और मैं भी (विश्वं आयुः अशीय) सम्पूर्ण आयुका उपभोग करूं ॥ १२१ ॥

यज्ञसे पुष्टि, ऐश्वर्य और दीर्घ आयु प्राप्त होती है । यज्ञकर्ता दीर्घायु होता है ।

वसिष्ठः ऋषिः । प्रजापतिः । प्राजापत्या गायत्री।

१२२ आयुर्यज्ञेन कल्पतां,
प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन
कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् ॥ यजु. ९।२१

(यज्ञेन आयुः, प्राणः, चक्षुः, श्रोत्रं कल्पतां) यज्ञके द्वारा आयु, प्राण, चक्षु और श्रोत्रादि इन्द्रियें भी सामर्थ्य युक्त हों । ॥ १२२ ॥

यज्ञसे आयु, जीवनकी प्राणशक्ति, चक्षु श्रोत्र आदि सब इंद्रिय सामर्थ्य युक्त होते हैं ।

नारायणः । रुद्रः । उष्णिक् ।

१२३ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥
यजु. ३।६२

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) जमदग्निकी तिगुनी आयु (कश्यपस्य त्र्यायुषं) कश्यपकी तिगुनी आयु तथा (यत् देवेषु त्र्यायुषं) जो देवोंमें तिगुनी आयु है, (तत् त्र्यायुषं नः अस्तु) वह तिगुनी आयु हमारी भी हो ॥ १२३ ॥

' जमदग्निः '— अग्निको प्रदीप्त करनेवाला यज्ञकर्ता, ' कश्यपः-पश्यकः '— द्रष्टा, योग्य रीतिसे सब कार्यको देखनेवाला, सच्चा ज्ञानी, तथा देव— दिव्य तेजस्वी विद्वान् ये तीनों तीन गुनी आयु प्राप्त करें । विशेष दीर्घ आयु प्राप्त करें । ' विद्वाँसो हि देवाः ' (श. प. ब्रा.)

नारायणः । क्षुरः । भुरिग् जगती ।

१२४ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता
नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।
निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय
रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ॥
यजु. ३।६३

हे क्षुर ! तू (शिवः नाम असि) कल्याणकारी नामवाला है, (स्वधितिः ते पिता) तलवार या फरसा तेरा पिता है, (ते नमः अस्तु) तुझे नमस्कार हो, (मा मा हिंसीः) मुझे मत मार, मैं (आयुषे अन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सु-प्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय) आयु, अन्न, सन्तानोत्पत्ति, ऐश्वर्य तथा पुष्टि, उत्तम प्रजा आदिके लिए तथा उत्तम बलकी प्राप्तिके लिए तुझे (निवर्त्तयामि) प्रयुक्त करता हूं ॥ १२४ ॥

उस्तरा हजामत करे, पर किसीकी हिंसा न करे । उस्तरेसे हजामत की जाती है और मुख सुंदर दीखता है । वह आयु, अन्न, सन्तान, ऐश्वर्य, पुष्टि आदि हमें देवे अर्थात् इनको प्राप्त करनेका सामर्थ्य हमें प्राप्त हो ।

वत्सः । गौः । आस्तार पंक्तिः ।

१२५ समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा ।
मा म आयुःप्रमोषीर्मो अहं तव
वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ यजु. ४।२३

(दक्षिणया उरुचक्षसा) बलवाली विशालदृष्टिसे युक्त होकर (देव्या धिया) अपनी दिव्य बुद्धिसे (सं अख्ये) तेरा वर्णन करूं, हे (देवि) देवि ! (तव सन्दृशि) तेरे निरीक्षणमें रहनेवाले (मे) मेरी (आयुः मा प्रमोषीः) आयु कम न हो (मा अहं तव) न मैं तेरी आयु कम करूं तथा (वीरं विदेय) वीर पुत्रको प्राप्त करूँ ॥ १२५ ॥

दिव्य बुद्धिसे आयु दीर्घ की जा सकती है । उसी शुभ बुद्धिसे वीर पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है ।

वत्सः । अग्निः । साम्न्युष्णिक् ।

१२६ परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्व
आ मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु ॥
यजु. ४।२८

हे अग्ने ! (मा परि) मुझे चारों ओरसे (दुश्चरितात् बाधस्व) बुरे चारित्रसे रोक और (मा सुचरिते भज) मुझे उत्तम चारित्रमें स्थापित कर । मैं (अमृतां अनु) दीर्घजीवी, अमर पुरुषोंका अनुसरण करता हुआ (सु-आयुषा आयुषा) उत्तम तथा दीर्घ आयुसे युक्त होकर (उत् अस्थाम्) हमेशा उन्नत रहूँ ॥ १२६ ॥

दुश्चरित्र अर्थात् दुराचारमें मेरी प्रवृत्ति न हो । मेरी मनः प्रवृत्ति सदाचारमें ही हो । दीर्घ जीवनवाले सदाचारी ज्ञानी पुरुषोंके अनुसार मैं अपना आचरण करूं और मैं दीर्घ जीवनसे युक्त बनूं ।

औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । औदुम्बरी । आसुरी गायत्री ।

१२७ ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंह
आयुर्दृंह प्रजां दृंह ॥ यजु. ५।२७

हे ज्ञान ! मेरे (ब्रह्म, क्षत्रं, आयुः, प्रजां) ज्ञान, बल, आयु और प्रजाको (दृंह) बढा व स्थिर कर ॥ १२७॥

ज्ञानसे ज्ञान, वीर्य, आयु और सुप्रजा प्राप्त होती है और बढती है।

मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। निचृदार्षी गायत्री।

१२८ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ यजु. ६।५

(सूरयः) विद्वान् लोग (विष्णोः) विष्णुके (दिवि चक्षुः आततम्) द्युलोकमें फैले हुए सूर्यके प्रकाशके समान (तत् परमं पदं) उस उत्तम स्थानको (सदा पश्यन्ति) हमेशा देखते हैं ॥ १२८ ॥

ज्ञानी दीर्घ आयु प्राप्त करके, परम पदका ध्यान करते हुए आनंदमें रहते हैं।

कुत्सः। रुद्रः। निचृत् आर्षी जगती।

१२९ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीः
हविष्मन्त सदमित् त्वा हवामहे ॥
यजु. १६।१६

हे रुद्र ! (नः तोके तनये मा रीरिषः) हमारे पुत्रों पौत्रों पर क्रोधित मत हो, (नः आयुषि मा) हमारी आयुको कम मत करो (नः गोषु अश्वेषु मा मा रीरिषः) हमारे गाय घोडों पर क्रोध मत करो, (नः भामिनः वीरान् मा वधीः) हमारे तेजस्वी वीर पुत्रोंको मत मारो हम (सद्) हमेशा (हविष्मन्तः) हविको लेकर (त्वा इत् हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं ॥ १२९ ॥

हमारे पुत्र पौत्र दीर्घायु प्राप्त करके आनन्दसे रहें। हमारी दीर्घ आयु हो। हम आपकी संतुष्टिके लिये सदा हवनसे यज्ञ करते हैं।

विश्वेदेवाः ऋषयः। प्राणाः देवता। निचृत् अनुष्टुप्।

१३० आयुषे त्वा वर्चसे त्वा
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ यजु. १४।२१

हे प्राण ! (आयुषे) दीर्घायुके लिए (वर्चसे) सामर्थ्यके लिए (कृष्यै) अन्नादि प्राप्तिके लिए तथा (क्षेमाय) सुख व कल्याणके लिए (त्वा) तुझे बलवान् करता हूँ ॥ १३० ॥

अपने प्राणकी शक्ति बढा कर दीर्घ आयु, अन्न सामर्थ्य, और सुख प्राप्त करना चाहिये।

देवाः। अग्निः। भुरिकछक्वरी।

१३१ ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे
तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मे
अङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे
परूंऽषि च मे शरीराणि च मे
आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥
यजु. १८।३

(मे ओजः, सहः, आत्मा, तनूः, शर्म, वर्म, अंगानि, अस्थीनि, परूंषि शरीराणि, आयुः, जरा च) मेरे सामर्थ्य, महनशक्ति, आत्मा, देह, सुख, कवच, अंग, हड्डी, सन्धियां, शरीर, आयु और वृद्धावस्था (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञसे सामर्थ्ययुक्त हों ॥ १३१ ॥

मुझे दीर्घ आयु और सामर्थ्य प्राप्त हो। शरीर, इंद्रियां शरीरके अंग और अवयव यह सब सामर्थ्य युक्त, नीरोगी तथा उत्तम कार्यक्षम रहें।

देवा। अग्निः। भुरिगतिशक्वरी।

१३२ जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं
च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। यजु. १८।६

(मे जीवातुः दीर्घायुत्वं च यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरा जीवन और आयु यज्ञके द्वारा दीर्घ हों ॥ १३२ ॥

यज्ञमें उत्तम आयुष्य-वर्धक द्रव्योंका हवन करनेसे यज्ञकर्ताकी आयु दीर्घ होती है और जीवन सुखमय होता है।

देवाः। अग्निः। स्वराड् विकृतिः।

१३३ आयुर्यज्ञेन कल्पताम् ॥ यजु १८।२९

(यज्ञेन) यज्ञके द्वारा (आयुः कल्पताम्) आयु, दीर्घजीवन (कल्पताम्) फलप्रद हों ॥ १३३ ॥

शुनःशेपः। अग्निः। परोष्णिक्।

१३४ दिवो मूर्धाऽसि पृथिव्या
नाभिरूर्गपामोषधीनाम्।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥
यजु. १८।५४

हे अग्ने! तुम (दिवः मूर्धा असि) द्युलोकके सिर हो (पृथिव्याः नाभिः) पृथ्वीकी नाभि हो, (अपां ओषधीनां ऊर्क्) जल और औषधियोंमें रस हो, तुम (शर्म, स-प्रथा) सुख देनेवाले, सर्वत्र विख्यात तथा (विश्व-आयुः) सम्पूर्ण आयुको प्रदान करनेवाले हो, (पथे) मार्ग दर्शन करनेवाले तुमको हम (नमः) नमस्कार करते हैं ॥ १३४ ॥

पूर्ण आयु प्राप्त करनेका उत्तम मार्ग जो बताता है उसको प्रणाम करना योग्य है।

शुनःशेपः। वरुणः। त्रिष्टुप्।

१३५ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः
तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोधि
उरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः॥ यजु. १८।४९

हे (वरुण) वरुण! मैं (ब्रह्मणा वन्दमानः) स्तोत्रोंके द्वारा वन्दन करता हुआ (त्वा तत् यामि) तेरे पास आता हूं। (यजमानः हविर्भिः तत् आशास्ते) यजमान भी हवियोंके द्वारा उसीकी आशा करता है, अतः हे (उरुशंस) बहुतों द्वारा प्रशंसित वरुण! (अहेळमानः इह बोधि) क्रोधित न होते हुए इस यज्ञमें हमारी इच्छाको जान और (नः आयुः मा प्रमोषीः) हमारी आयुको मत कम कर ॥ १३५ ॥

वेद मंत्रोंकी स्तुति करनेसे तथा योग्य रीतिसे हवन यज्ञ करनेसे आयु बढती है। ईश्वर उपासना आयु बढानेवाला है।

हैमवर्चिः। पितर.। अनुष्टुप्।

१३६ पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः।
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥
यजु. १९।३७

(पितामहाः प्रपितामहाः) दादा (मा) मुझे (पवित्रेण शतायुषा) पवित्र सौ वर्षकी आयुसे (पुनन्तु) पवित्र करें। मैं (विश्वं आयुः व्यश्नवै) सम्पूर्ण आयुका उपभोग करूं ॥ १३६ ॥

सौ वर्षकी आयुमें पवित्र कार्य करते रहना चाहिये और पूर्ण आयुका योग्य उपयोग सत्कार्य करनेमें करना चाहिये।

गौतमो राहूगणः। विश्वेदेवाः। जगती।

१३७ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो
अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे
असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥
यजु. २५।१४

(उद्भिदः) सर्वदा उन्नति करनेवाले, (अपरीतासः) शक्तिमान्, (अदब्धासः) किसीसे न दबनेवाले, (क्रतवः) पुरुषार्थ करनेवाले तथा (भद्राः) कल्याण करनेवाले (देवाः) ज्ञानी जन (नः विश्वतः आयन्तु) हमारे पास चारों ओरसे आवें। (यथा) जिससे वे (नः रक्षितारः) हमारी रक्षा करनेवाले होकर तथा (अप्रायुवे) दीर्घायु देनेवाले व अप्रमादी होकर (वृधे) हमें बढानेके लिए (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदं इत् असन्) हमारे पास ही बैठें ॥ १३७ ॥

प्रयत्नशील विद्वान् हमारे पास आवें, वे हमारा संरक्षण करें और हमें दीर्घायु प्राप्तिका साधन बतावें।

गौतमो राहूगणः। देवाः। त्रिष्टुप्।

१३८ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः
व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ यजु. २५।२१

हे (देवाः) देवो! हम (कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) कानोंसे अच्छा उपदेश ही सुनें, तथा (यजत्राः) हे यज्ञ करनेवालो! हम (अक्षभिः भद्रं पश्येम) आंखोंसे अच्छा दृश्य ही देखें, हम (स्थिरैः अंगैः तुष्टुवांसः) अपने सुदृढ अंगोंसे परमात्माकी स्तुति करते हुए (तनूभिः) अपने शरीरोंसे (यद् आयुः) जब तक आयु है तब तक (देवहितं) ज्ञानियोंका हित करते रहें और (व्यशेमहि) आयुका अच्छा उपभोग करते रहें ॥ १३८ ॥

हम कानोंसे अच्छा उपदेश सुनें, आंखोंसे अच्छा दृश्य देखें और अपने शरीरावयवोंसे जब तक हमारी आयु हो तब तक ज्ञानियोंका हित करते रहें। और अपनी सुदीर्घ आयुका अच्छी तरह उपभोग लेते रहें।

गोतमो राहूगणः। देवाः। त्रिष्टुप्।

१३९ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा
यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति
मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥

यजु. २५।२२

हे (देवाः) देवो ! (शतं शरदः अन्ति इत्) सौ वर्षके पास ही (नः तनूनां जरसं चक्र) हमारे शरीरोंको वृद्ध बनाना। (यत्र) जब (पुत्रासः पितरः भवन्ति) पुत्र भी पिता बन जाते हैं। तब तक (गन्तोः नः आयुः) चलनेवाले हमारी आयुको (मध्या मा रीरिषत) बीचमें ही समाप्त मत कर देना॥ १३९॥

सौ वर्षोंके पश्चात् हमारे शरीर वृद्ध हों, तब तक हमारे पास वृद्ध अवस्था न आवे। जब पुत्रोंके पुत्र होते हैं, तब तक हम वृद्ध न हों, हम तरुण जैसे सामर्थ्यवान् रहें।

दक्षः। हिरण्यं। शक्वरी।

१४० यो बिभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं
स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः। यजु. ३४।५१

(यः दाक्षायणं हिरण्यं बिभर्ति) जो बल प्रदान करनेवाले स्वर्णको धारण करता है (सः देवेषु दीर्घं आयुः कृणुते) वह देवोंमें दीर्घ आयुवाला होता है, (सः मनुष्येषु दीर्घं आयु कृणुते) वह मनुष्योंमें दीर्घ आयु-वाला होता है॥ १४०॥

शरीर पर सुवर्ण धारण करनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। इसलिये स्त्रियोंको तथा पुरुषोंको उचित है कि वे सुवर्णके अलंकार शरीर पर धारण करें।

अथर्वा (आयुष्कामः)। हिरण्यम्। जगती।

१४१ यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं
शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म आबध्नामि शतशारदाय
आयुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥ यजु. ३४।५२

(यत् हिरण्यं) जिस सोनेको (सु-मनस्यमानाः) उत्तम मनवाले (दाक्षायणाः) बलशाली मनुष्य (शतानीकाय) सैकडों शत्रुओंको मारनेके लिए (अबध्नन्) बांधते हैं, (तत्) उस सोनेको (मे शतशारदाय आबध्नामि) अपने सौ वर्ष जीनेके लिए बांधता हू, (यथा) जिससे (आयुष्मान्) दीर्घायु युक्त होकर (जरदष्टिः आसम्) बुढापेका उपभोग करनेवाला बनूं॥ १४१॥

शरीर पर सुवर्ण धारण करनेसे वृद्ध अवस्थामें भी अच्छी शक्ति शरीरमें रहती है और उसको उत्तम दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है।

संकुसुको यामायनः। मृत्युः। त्रिष्टुप्।

१४२ परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां
यस्ते अन्य इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि
मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥

यजु. ३५।७

हे (मृत्यो) मृत्यो ! (यः ते) जो तेरा (देवयानात् इतरः अन्यः) देवयानसे भिन्न दूसरा मार्ग है उस (पन्थां) मार्गसे (परं परा इहि) बहुत दूर चला जा (चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि) आंखोंवाले तथा सुननेवाले तुझे मैं कहता हू कि (नः प्रजां उत वीरान् मा रीरिषः) हमारी प्रजा तथा वीर सन्तानोंकी हिंसा मत कर॥ १४२॥

हमारी संतानोंको दीर्घायु प्राप्त हो। वे जल्दी न मरें। ऐसा प्रबंध राष्ट्रमें होना चाहिये।

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। सूर्यः। पुरउष्णिक्।

१४३ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं,
शृणुयाम शरदः शतं, प्र ब्रवाम शरदः शतं,
अदीनाः स्याम शरदः शतं,
भूयश्च शरदः शतात्॥ यजु. ३६।२४

(देवहितं) देवोंका हितकारक (शुक्रं) तेजस्वी (तत् चक्षुः) वह नेत्र रूपी सूर्य (पुरस्तात्) सबके समक्ष (उत् चरत्) उदय हो रहा है, उसकी कृपासे हम (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम, जीवेम, शृणुयाम, प्रब्रवाम, अदीनाः स्याम) देखें, जियें, सुनें, बोलें

वैदिक धर्म

जुलाई १९६२



स्वामी विवेकानन्द

५० नये पैसे

वर्ष ४३

वैदिक धर्म

अंक ७

क्रमांक १६३ : जुलाई १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

" वैदिक धर्म "

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा ।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.–' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आय धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	१)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये **देवता-मंत्र-संग्रह** मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिकधर्म

मातृभूमिकी अर्चना

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥

अथर्व १२।१।६२

(पृथिवि) हे पृथिवि ! (ते प्रसूताः) तुझमें उत्पन्न हुए सब लोग (अनमीवाः) रोगरहित (अयक्ष्माः) क्षय रोगरहित (अस्मभ्यं उपस्थाः) हमारे पास रहनेवाले (सन्तु) हों, (नः आयुः दीर्घं) हमारी उमर लम्बी हो, हम बहुत दिन जीवें, (वयं प्रतिबुध्यमानाः) हम ज्ञान विज्ञान युक्त हों, हम (तुभ्यं बलिहृतः स्याम) तुझे बलि-दान देनेवाले हों ।



मातृभूमिके लिए हर तरहका बलिदान देना उसकी हर तरहसे सेवा करना प्रत्येक नागरिकका कर्त्तव्य है । मातृ-भूमिकी सेवा करते हुए यदि बीचमें स्वार्थ की बाधा पडे तो स्वार्थको भी बलि देनी चाहिए । इस प्रकार अपने स्वार्थकी और यदि आवश्यकता पडे तो अपनी भी बलि देकर मातृभूमिकी सेवा करनी चाहिए । अपनी भूमिको इतनी उपजाऊ और शक्तियुक्त बनाना चाहिए, जिससे कि देशकी प्रजायें शक्तियुक्त और रोगरहित हों ।

वैदिक--विश्वकोश

वैदिक अनुसन्धान कार्यकी महत्त्वपूर्ण योजना

(लेखक-- श्री पं. वीरसेनजी वेदश्रमी, वेदसदन महारानी रोड, इन्दौर)

हमारी मान्यता एवं दृष्टिकोणसे वेद सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक है। वेद समस्त ज्ञानका भंडार है। सृष्टिके प्रारम्भमें ही अनेक ऋषि, मुनि, ब्रह्मनिष्ठ योगी एवं विद्वानोंने इसके लिये अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण किया इसके रहस्योंका पता लगानेका प्रयत्न किया तथा अपने सामर्थ्यानुसार वेदसे ज्ञान प्राप्त करके भूमण्डल पर विद्या एवं विज्ञानका प्रचार किया। वेद अगाध ज्ञान राशि है। उसका दोहन होते ही रहना चाहिये अर्थात् उससे ज्ञान प्राप्तिके लिये प्रयत्न निरन्तर होते ही रहने चाहिये। इस परमधर्मके लिये हमें अपना जीवन अर्पण करना चाहिये। जितना ही अधिक वेदोंका मन्थन होगा उतना ही अधिक नवनीत भी इससे प्राप्त होगा।

महर्षि दयानन्दने इस युगमें वेदोंका उद्धार किया। उन्होंने बताया कि वेद सब सत्य विद्याओंके भंडार हैं। महान् ज्ञान राशि हैं। महर्षि दयानन्दके पश्चात् योगिवर अरविन्दने अनुभव किया कि वेद उच्चतम ज्ञान-विज्ञानके भंडार हैं। वास्तवमें वेदोंका अवलोकन और उससे परोक्ष अर्थकी प्राप्ति केवल विद्वत्ताके आधार पर ही नहीं हो सकती है, अपितु विद्वत्ताके साथ योग साधनादि अन्य योग्यताओंकी भी आवश्यकता है। महर्षि दयानन्दजीने वेदार्थको समझनेके लिये १२ योग्यतायें होना माना है। आजके विद्वान् चाहे वे पाश्चात्य देशीय हों या एतद्देशीय जब तक उन योग्यताओंको प्राप्त नहीं करेंगे तब तक यथार्थमें वे वेदार्थको समझ नहीं सकेंगे और न समझा ही सकेंगे।

अभी मार्च मासमें श्री प्रो. पं. देवप्रकाशजी पातंजल शास्त्री M. A. के साथ बड़ौदा विश्वविद्यालयके प्रोफेसर श्री भावे महोदयसे भेंट करनेका अवसर प्राप्त हुआ। आप माने हुए वेदोंके विद्वान् हैं। आपने कहा कि अब ऐसा अनुभव होता है कि जो कुछ अर्थ हमने वेदोंका समझा और किया है, वास्तविक अर्थ और ज्ञान तो उससे परे ही है, और वह ज्ञान बहुत उत्कृष्ट है। इन बातोंसे ज्ञात होता है कि वेदार्थकी प्राप्ति एवं वेदकी विद्याओंके अनुसन्धानके लिये अनेक प्रकारसे प्रयत्न निरन्तर होना चाहिये। वेदका ज्ञान हमारी दृष्टिसे अगाध है, अनन्त है अतः यह कार्य बड़ी तत्परता उत्साह एवं वेगसे अनेक विद्वानों द्वारा अनेक स्थानों पर करना अत्यावश्यक एवं अनिवार्य है।

वेदोंसे यदि हम आज विद्या, विज्ञान, सभ्यता, कला, साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि नहीं सीख सकते और न सिखा सकते हैं तो वेदोंका पठन पाठन तथा प्रचार हममें भी नहीं रहेगा। इस प्रकार वेदोंका हममेंसे व्यवहारतः लोप हो जायगा और व्यवहार रूपमें हम भी कुछ और ही बन जावेंगे तथा बन भी गये हैं। केवल मात्र नामके लिये ही हम अपनेको वैदिक धर्मी कहकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। वर्तमानमें हमारी स्थिति वास्तवमें यही सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। वेदका हममें कोई स्थान नहीं। वेदकी हममें कोई प्रतिष्ठा नहीं। पूर्ण उपेक्षा ही है।

लोग वेद नहीं पढते। उनको वेदोंके प्रति श्रद्धा नहीं। श्रद्धा क्यों होवे? उनको उससे कुछ प्राप्त नहीं होता। जिससे लोगोंको प्राप्ति होवे, जो उनके व्यवहारका साथी हो उसके प्रति श्रद्धा होगी। अब तक वेदोंको अपना सर्वस्व माननेवाले लोग ही वेदोंको नहीं पढते, नहीं सुनते और उसके अन्तर्गत विद्यमान विद्याओं एवं विज्ञानकी रूप रेखा एवं नाम भी प्रकट नहीं करते तथा वेदोंको सर्व

साधारणके समझने-समझानेके लिये अथवा वेदोंमें उपयोगी ग्रन्थोंका निर्माण भी नहीं करते तब तक वेदोंके प्रति श्रद्धा और इसके प्रति अध्ययनकी रुचि जागृत भी नहीं हो सकती है, जो श्रद्धावश वेदोंको पढते भी हैं, इसे वे शीघ्र ही छोड देते हैं। कहते हैं समझमें नहीं आता है या इससे हमें कुछ प्राप्त नहीं होता। शिक्षणालयोंमें जो वेदोंको पढते हैं वे पाश्चात्य विद्वानोंके अभिमतोंको ग्रहण कर वेदोंको केवल ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थ ही मानने लगते हैं।

ऐसी स्थितिमें वेदोंके यथार्थ स्वरूपको प्रकट करनेके लिये और उसको अनेक विद्याओंका मूल प्रकट करनेके लिये विशाल 'वैदिक विश्वकोश' के निर्माणकी अत्यन्त आवश्यकता है जिसके आश्रयसे सर्व साधारणको तथा विद्वानोंको एवं अनुसन्धान करनेवालोंको वेदके अध्ययनमें महान् सुविधा हो सके। यह कार्य अत्यन्त महत्व पूर्ण है एवं महान् भी है। एक ही नहीं अनेक विद्वानोंके स्वेच्छासे तथा त्याग भावके सहयोगसे एवं ऋषिऋणसे यत्किंचित् उऋण होनेके लिये उस कार्यके लिये अपना जीवन देने अथवा यथावकाश समय देनेसे ही यह कार्य पूर्ण हो सकेगा।

१४ जनवरी १९६२ की मकर संक्रान्तिसे मैंने इस कार्य-को यजुर्वेदसे प्रारंभ कर भी दिया है। मैंने अभी इस वैदिक विश्वकोशकी रूपरेखा निम्न प्रकार निर्धारित की है। विद्वानोंके परामर्शसे इसमें परिवर्तन तथा परिवर्धन भी हो सकेगा।

(१) वेदके ६ अंग हैं। उनमें प्रथम अंग शिक्षा है। शिक्षाकी रीतिसे यजुर्वेद संहिताके मन्त्रोंका मुद्रण अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभावसे आज सर्व साधारणमें मन्त्रोंके उच्चारणमें इतने दोष बढ गये हैं कि वेदका स्वरूप ही विकृत होने लगा है। अतः शिक्षाकी पद्धतिके अनुसार यजुः संहिताका सस्वर मुद्रण और प्रचलन आवश्यक है इसमें अध्यायान्तर्गत अनुवाक भी हों। ऋषि देवता छन्द स्वर भी हों। इस प्रकारका ग्रन्थ प्रत्येकके गृहमें होना ही चाहिये। इसीसे सर्वप्रथम मन्त्रोंके उच्चारण, पाठ एवं अभ्यास कराये जायें जिससे दोष रहित उच्चारणपूर्वक मन्त्रोंका शुद्ध एवं स्वर सहित उच्चारणका अभ्यास वृद्धिको प्राप्त हो तथा प्रचलित हो सके।

(२) दूसरा वेदांग कल्प है, जिसके द्वारा कर्मकांड, यज्ञादि होते हैं। हमारे यहां पारायण यज्ञका स्वाहाकार पाठ यज्ञके रूपमें प्रचलित हो गया है। इसके भी विधिवत् प्रयोगके लिये महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीके कर्मकाण्ड ग्रन्थोंका तथा अन्य कर्म काण्डके ग्रन्थोंका अवलोकन करके यजुर्वेद पारायण स्वाहाकार संहिताके पृथक् मुद्रणकी आवश्यकता है जिससे सर्व साधारण यजुर्वेद पारायण यज्ञोंको व्यवस्थित एवं शुद्ध रीतिसे कर सकें। इसीके अन्तर्गत अनेक ऐसे यज्ञोंका भी उल्लेख हो सकेगा जो मन्त्रोंमें अपने प्रकरणानुसार अथवा देवता या कर्मानुसार भी प्रकट हैं। पारायण यज्ञके कर्ममें अनभिज्ञतासे केवल मात्र यजु संहिता ग्रन्थसे यज्ञ करनेमें अनेक अपूर्णतायें रह जाती हैं, वे इस प्रकारके ग्रन्थ मुद्रणसे पूर्ण हो सकेंगी।

इसके अतिरिक्त इसमें निम्न विभागोंका भी समावेश किया जा सकता है—

(अ) विविध यज्ञोंके नाम और इन यज्ञोंमें प्रयोजनीय मन्त्रोंका निदर्शन। विविध कर्मांगोंके लिये मन्त्रोंका विनियोग तथा प्राचीन यज्ञोंकी विधियोंका निरूपण।

(आ) वेदमें आये यज्ञ निमित्त द्रव्य एवं पात्रोंके नामोंकी सूची।

(इ) विविध वस्तुओं एवं प्राणियोंके यज्ञ तथा अन्य कार्योंमें उपयोगके विविध वाक्य।

(ई) विविध देवताओंके मन्त्रोंका दैवत क्रमानुसार स्थल निदर्शन।

(उ) यज्ञसे सम्पादनीय तत्व एवं कर्मोंकी सूची।

(ऊ) देवता, ऋषि, छन्द एवं मन्त्र स्वरकी सूची स्थल निर्देश सहित।

(ए) दिशा, दिशाधिपति, मन, अध्यात्म, परमेश्वर आदि शब्दोंकी सूची।

(३) तीसरा वेदांग व्याकरण है। आजकलकी उपलब्ध यजुः संहितायें एक प्रकारसे पाणिनि व्याकरणको लक्ष्यमें रखकर, प्रातिशाख्यादिकी उपेक्षा तथा शिक्षा ग्रन्थोंकी अनभिज्ञतासे प्रकाशित हो रही हैं। इनमें व्याकरणानुसार सन्धियुक्त पदोंको मिलाकर तथा सन्धि रहित पदोंको पृथक् पृथक् करके खंडित रूपसे पाठ छापा गया है। अर्थ विचारनेकी सुगमता और लौकिक रीतिसे मन्त्रोंके

उच्चारणमें इससे बहुत सहायता प्राप्त हुई है। इससे सर्व साधारणको बिना शिक्षककी सहायतासे वेदाभ्यासमें प्रवृत्ति हुई है और वेदोंका घर-घर प्रचार भी हुआ है। तथापि वास्तविक रीतिसे न तो वह संहिता पाठ ही है और पद पाठ ही है। इस खंडित पाठकी नवीन प्रणालीसे शिक्षाकी विधिसे जिस प्रकार मन्त्रका उच्चारण होना चाहिये उसका सर्वथा लोप हो गया है। अतः उच्चारणके लिये शिक्षाकी रीतिसे ही मन्त्रोंका मुद्रण हो और अर्थ ज्ञानकी सहायताके लिये तथा पदों एवं उनके स्वरोंके ज्ञानके लिये 'पदपाठ' ग्रन्थका मुद्रण होना चाहिये और पदोंके सन्धिपूर्वक उच्चारण अभ्यासके लिये, उदात्तानुदात्तादि स्वरोंकी संधि ज्ञानके लिये तथा मन्त्रोंके विरामादि ज्ञानके लिये 'क्रम-पाठ' का भी मुद्रण होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त व्याकरण दृष्टिसे निम्न प्रकारके और भी कार्य होने चाहिये—

(अ) अकारादि क्रमसे पद सूचीका निर्माण स्थल निर्देश सहित।

(आ) अकारादि क्रमसे स्वरानुक्रम विभाजन सहित निम्न प्रकार भी पदोंका संग्रह हो जिसमें सर्वोदात्त, आद्युदात्त, मध्योदात्त, अन्तोदात्त, द्व्युदात्त त्र्युदात्त, आद्यस्वरित, जात्यस्वरित, न्युब्जस्वरित सर्वानुदात्त इन स्वर क्रमोंसे स्वरसहित शब्दोंका चयन हो।

(इ) सेतिकार सावग्रह पद, सेतिकार निरवग्रह पद तथा अन्य समास पदोंका संग्रह।

(ई) वेदमें प्रयुक्त पदोंका नाम आख्यात, उपसर्ग, निपात रूपसे वर्गीकरण। एक ही मूल शब्दके अन्तर्गत उसके अन्य रूपोंका भी ग्रथन इसमें होगा।

(३) विभक्ति प्रत्यय प्रक्रिया एवं लकारादिके अनुसार शब्दोंका संकलन।

(ऊ) पदोंके यौगिक, योगरूढ, और रूढ अर्थोंका विवेचन, जिसमें व्याकरण, कल्प, निरुक्त एवं ज्योतिषादि वेदांगोंकी दृष्टिसे व्युत्पत्तिगत अर्थ होंगे तथा स्वरभेदसे अर्थ भेद निरूपण होगा।

(ए) पदोंके ब्राह्मणग्रन्थानुसार [illegible] पूर्व भाष्यकर्ताओं तथा महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित अर्थोंका निरूपण।

(ऐ) एक ही मूल शब्दसे बने रूपोंका रूप, विभक्ति पुरुष, वचन, लकार, प्रत्यय आदिका उल्लेख।

(ओ) विशेष्यविशेषणयुक्तपद, उपमाउपमेयपद, अनुप्रास, श्लेष, पदोंका संग्रह।

(औ) वेदमें उपलब्ध वर्णमालाके अक्षर।

(४) निरुक्त वेदांगके अनुसार यजुर्वेदके जो शब्द निघंटु एवं निरुक्तमें आये हैं उनकी वर्णानुक्रमसे सूची और उनकी निरुक्ति या निर्वचन।

(अ) समानार्थ वाची शब्दोंका संग्रह।

(इ) भूगर्भशास्त्र सम्बन्धी नाम, पार्थिव तत्वोंके नाम धातुओंके नामादि।

(ई) वनस्पतिशास्त्र सम्बन्धी नाम-यथा-वृक्षोंके अंग प्रत्यंगोंके नाम, अन्न, फल, ओषधि, वनस्पति तथा कृषि सम्बन्धी नामोंका संग्रह।

(उ) जल विद्या सम्बन्धी नाम-यथा-जलोंकी विविध स्थितियाँ और उनके गुणादि।

(ऊ) तीनों प्रकारकी अग्नियोंके नाम इनकी ज्योति एवं गुणादि।

(ए) वायु विद्या सम्बन्धी नाम अनेक प्रकारकी वायुओंके नाम संग्रह प्राणविद्यान्तर्गत नाम संग्रह।

(ऐ) आकाशीय तत्वोंके नाम।

(ओ) प्राणिशास्त्र सम्बन्धी नाम, पशुओं, पक्षियों, जलचरों, सर्पणशील जन्तुओंके नाम, आरण्य एवं ग्राम्य पशुओंके नाम।

(औ) शरीरशास्त्र सम्बन्धी नाम तथा इन्द्रियव्यापार-शास्त्र सम्बन्धी नाम।

(अं) समाजशास्त्र, वास्तुकला, आरोग्य, राजनीति भूगोल, नाट्य, संगीत, वाद्य युद्ध, पारिवारिक सम्बन्धनाम, वाणिज्य, नौका, विमान, यान विज्ञान सम्बन्धी योग्य वस्तु रंगोंके नाम आदि विविध विद्या विज्ञानके उपयोगी शब्दोंका पृथक् पृथक् वर्गीकरण।

(अः) चिकित्साशास्त्र, जीवन रसायनशास्त्र, शासन, राजनीति, युद्ध, मन्त्रकला, योगादि विद्याओंके प्रतिपादक मन्त्र या मन्त्रांशोंका स्थल निर्देश।

(५) छंद अंगकी दृष्टिसे उसके लक्षण एवं गणनाको स्पष्ट प्रदर्शन पूर्वक मन्त्रोंका मुद्रण।

(अ) मन्त्रोंके विरामादि ज्ञानके लिये कितनी और कौनसी ऋचायें बिना विरामकी हैं और किनमें

मध्यमें ही विराम है, कितने अन्तमें है, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच या इससे भी अधिक विरामवाले कौनसे मन्त्र है इसका ज्ञापन होगा।

(इ) छन्दोंकी सूची एवं उनका रचनाक्रम तथा उनके स्वर।

(ई) छन्दोंकी ब्रह्माण्डमें स्थितिका क्रम और विश्व रचनामें उसका महत्व।

(उ) छन्दोंके क्रमसे व्याप्त देवत्व स्वरूप।

(ऊ) छन्द क्रमसे तथा दैवत क्रमसे ऋषियोंका सम्बन्ध।

(ए) वेदकी पुनरुक्त और प्रतीक ऋचाओंका निर्देश।

(६) ज्योतिष वेदांगको लक्ष्यमें रखकर संख्या वाची शब्द, गणित, खगोल, ग्रह, नक्षत्र, ऋतु, काल, सृष्टि, विद्या, अन्तरिक्ष एवं द्युस्थानीय तत्वों या देवताओंके संयोग प्रदर्शक पद उनके अधिष्ठातृत्व आदि विषय सम्बन्धी मन्त्र पदों तथा उनके उपयोगके प्रदर्शक मन्त्र पादोंका निदर्शन इसके अन्तर्गत हो सकेगा।

(७) वेदमें आये शब्द जो ऐतिहासिक एवं भौगोलिक प्रतीत होते हैं उनका परोक्ष अर्थ प्रतिपादन।

(८) वेदके शब्दोंका भूमण्डलमें प्रचार एवं उनके विविध भाषाओंके विकृत रूप।

(९) यजुर्वेदमें प्रतिपादित विद्याओंकी नामावलि तथा उन विद्याओंका लाभ।

(१०) यजुर्वेदके सूक्तोंकी सूची, उनका स्थल तथा मन्त्र संख्या निर्देश।

(११) ऋषि एवं देवता नामोंकी व्याख्या।

(१२) वैदिक स्वरोंका परिचय एवं स्वर सम्बन्धी सामान्य नियम।

(१३) प्रत्येक विभागके पूर्व उसके उपयोगके ज्ञापनार्थ भूमिका।

इत्यादि अनेक उपयोगी प्रकारोंसे इस वैदिक विश्वकोशका निर्माण होना अत्यन्त आवश्यक है जिनसे वेदका निकट रूपसे अध्ययन करनेवालोंको सुविधा हो सके और वेदसे उपयोगी तत्वों एवं रहस्योंका ज्ञान प्राप्त करनेमें सुगमता हो सके। यह कार्य मैंने अभी यजुर्वेदसे प्रारंभ किया है। एक वेदका कार्य होने पर दूसरे वेदका भी कोशग्रन्थ बननेका कार्य हो और उसका अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेन्च, रशियन, चीनी, जापानी आदि भाषाओंमें भी यथाक्रम अनुवाद हो। यह कार्य अनेक विद्वानोंके सहयोगसे हो सकता है। अतः जबतक आर्यजन, आर्यसंस्थायें एवं हमारे अनुसन्धान ट्रस्ट ऐसे कार्योंमें सहयोग नहीं देंगे या इस कार्यको उपयोगी समझ कर अपने यहां नहीं करेंगे तब तक इस महान् वैदिक विश्वकोशका कार्य सम्पन्न होना और उसका मुद्रण होना संभव नहीं।

इस वैदिक विश्व कोशके कार्यका प्रकाशन प्रति तीन मासमें पत्रिकाके रूपमें नियमित होता रहे। इसके ग्राहक सहायक, संरक्षक, पोषक आदि बनने पर ही नियमित प्रकाशनकी व्यवस्था होगी। प्रति तीन मासमें जो अंक प्रकाशित हो वह न्यूनसे न्यून २५० पृष्ठोंका हो और एक प्रतिका मूल्य ७) तथा वार्षिक मूल्य २५) न्यूनसे न्यून हो यह कार्य थोडेसे ही व्यय और परिश्रमसे सफल नहीं हो सकेगा अतः वेद प्रेमीजन जब तक मुक्त हस्तसे इस कार्यमें सहयोग नहीं प्रदान करेंगे और हमारी विद्वन्मण्डली जब तक इसके लिये जीवनदान या अवकाशके समयका दान न करेगी तब तक यह कार्य संभव नहीं होगा। मैं तो इस कार्यके लिये अपनी सामर्थ्यानुसार प्रयत्न कर ही रहा हूं और आशा करता हूं कि परमात्माकी महान् कृपासे आप सब भी इसमें सहयोग प्रदान करेंगे। ● ● ●

स्वात्मरूप

(कु. सविताबाई रामानन्द बगदाळकर, आत्मानन्द भवन बगदल, जि. बिदर)

सुख दुःखका मुझको स्पर्श नहीं।
स्वयमेव अजन्मा शाश्वत मैं।

हर्ष स्फूर्ती सदा मुझ अव्याकृतमें।
निर्लेप सदा मैं रह मुझमें।
नहीं दृश्य कभी निज रूप ही मैं।
स्वयमेव अजन्मा शाश्वत मैं॥ ॥ १ ॥

श्रुति शास्त्र सभी यही कहते।
निज स्वात्मरूप पंथ दिखलाते।
नर देही जाग निजको स्मरते।
इस दर्शन दृश्यका चेतक मैं।
स्वयमेव अजन्मा शाश्वत मैं॥ ॥ २ ॥

सत संगतसे मन न मोडो।
निज विस्मृतिसे तनु न जोडो।
तनु अहंकृतीका भन्डा फोडो।
यही स्फूर्ती सदासे राखूं मैं।
स्वयमेव अजन्मा शाश्वत मैं॥ ॥ ३ ॥

नहीं जन्म मरण कभी मुझको।
पा के रहूँ मग्न स्वसुखताको।
लौटा दूं आनद ही मैं जगको।
लय भजन कालसे निर्लिप्त हो मैं।
स्वयमेव अजन्मा शाश्वत मैं॥ ॥ ४ ॥

इस मंजिल पर जो आवेगा।
तब स्वात्मरूपको पावेगा।
भव विस्मृतिका भय ना होगा।
इस मंजिलका पद चारी मैं।
स्वयमेव अजन्मा शाश्वत मैं॥ ॥ ५ ॥

यही भाव सभीमें आ जाये।
यह जनन मरण सभी मिट जाये।
स्वरूपामृत मानव अपनाये।
यही आस " सविता " जानूं मैं।
स्वयमेव अजन्मा शाश्वत मैं॥ ॥ ६ ॥

वैदिक विज्ञानके अनुसन्धानकी आवश्यकता

(लेखक— श्री वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी रोड, इन्दौर नगर)

' वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है '— यदि यह सत्य है तो इस बातकी भी नितान्त आवश्यकता है कि वेदमेंसे उन सब सत्यविद्याओंको या उनमेंसे कतिपय सत्य विद्याओंको संसारके सम्मुख प्रस्तुत किया जावे, उन विद्याओंसे संसारको लाभान्वित किया जावे और उन विद्याओंको व्यवहारोपयोगी बनाकर विश्वके जीवनके इतने निकट स्थापित कर दिया जावे कि मानव मात्र वेदको अपना सके और अपने ज्ञान एवं प्रेरणाके स्रोतके लिये उसे अंगीकार कर ले।

' सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उनका आदिमूल परमेश्वर है'— यदि यह सत्य है तो हम वेदकी विद्या और उसको व्यवहारोपयोगी बनाकर मानवमात्रको आदिमूल परमेश्वरके निकट लानेका जो प्रयत्न करेंगे वह निःसन्देह चतुर्विध फल-धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको सिद्ध करनेवाला होगा। अतः यह सर्वोत्कृष्ट प्रयत्न हमें अवश्य करना चाहिये।

क्या वर्तमान वैज्ञानिक युगमें वेदकी विद्या और विज्ञान उपयोगी हो सकेंगे ? क्या उनके द्वारा कोई ऐसे भी कार्य किये जा सकते हैं जिससे उनका प्रभाव आजके मानवके हृदय पटल पर पड सके ? क्या वेदके विज्ञानके उपयोगसे ऐसे भी कार्य हो सकते हैं जिनको वर्तमान विज्ञान अभी तक नहीं कर सका है ? यदि इसका उत्तर हां में दिया जा सकता है तो उसके लिये हमें प्रयत्न करना चाहिये और उसके लिये सर्वप्रकारका सहयोग देना चाहिए।

वेदके विज्ञानके अनुसन्धान कार्यके लिये हमें अपने जीवनको अर्पण करना होगा और अपने बल एवं धनको भी इसी वेदके लिये अर्पण करना होगा। वेद ब्रह्म है, वेद ब्रह्मका परम पवित्र ज्ञान है, वेद परमात्माकी परम पवित्र-वाणी है। वेद ज्योति है, परम ज्योति है। वेदका पठन पाठन, श्रवण एवं श्रावण, उसमें ज्ञान एवं कर्मकी समाधि परम धर्म है। उस परम धर्मकी साधनासे, हमें अनेक विद्या एवं विज्ञानोंकी प्राप्ति हो सकेगी और उससे विश्वको लाभान्वित किया जा सकता है।

वेदके स्वाध्यायके आधार पर तथा अब तकके अपने प्रयत्नोंके आधार पर अनेक कार्योंको हम अपने अनुसन्धानका क्षेत्र बनाकर विश्वको आशातीत सफलताके क्षेत्रमें प्रवेश करा सकते हैं और इस वैदिक विज्ञानके द्वारा विश्वको हम वेदके अति निकट भी स्थापित कर सकेंगे। यदि वैदिक विज्ञानकी सफलतासे हम विश्वको लाभान्वित कर सकेंगे तो वेद, शिक्षाके क्षेत्रमें और विज्ञानके क्षेत्रमें भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान विश्वमें ग्रहण कर सकेगा।

वेद विद्या एवं विज्ञानसे पूर्ण हैं और उस विद्या एवं विज्ञानकी सबसे उत्कृष्ट प्रयोगशाला-यज्ञवेदी-यह मानव देह ही है। जब इस देहरूपी प्रयोगशालासे विश्वमें प्रयोग किये जाते हैं तो उसका प्रभाव विश्व पर पडता है। जब तक ये प्रयोग पंचतन्मात्राओंसे ऊपरकी शक्तियों द्वारा किये जाते हैं अर्थात् मानसिक शक्तियों या चितिशक्तियों अथवा महत्तत्व आदिके आश्रयसे किये जाते हैं तब तक संकल्प शक्तिके आश्रित सफल होते हैं। वह वैदिक विज्ञानकी सूक्ष्म एवं उच्चस्थिति है। परन्तु वैदिक विज्ञानका स्थूल रूप स्थूल जगत्के आश्रयसे जब सम्पन्न किया जाता है तो उसकी प्रयोगशाला बाह्य यज्ञवेदी ही बनानी पडती है और उसमें सर्वक्रियाककार्योंकी सिद्धिके लिये अग्नि स्थापन करके द्रव्योंकी आहुतियों द्वारा उनको सूक्ष्म करके संयोग एवं वियोग क्रिया द्वारा विश्वमें यथास्थान, यथाशक्ति तत्त्वोंकी वृद्धि एवं ह्रास द्वारा इच्छित क्रिया की जाती है जो कि इष्ट प्राप्ति कराती है। यदि इसके साथ मानसिक शक्तियोंका भी प्रयोग किया जाता है तो और भी शीघ्र सफलता प्राप्त होती है।

वैदिक विज्ञानकी इस क्रियाको यज्ञ कहते हैं। इसीलिए

वेद एवं गीताने यज्ञको 'कामधुक्'– कहा है। अर्थात् सर्वकामनाओंका दोहन–प्राप्ति यज्ञ द्वारा हो सकती है। कामनानुकूल इष्ट प्राप्तिके लिये जो विविध प्रकारके प्रयत्न एवं क्रिया समूह हैं वे ही पृथक् पृथक् यज्ञके रूपमें विभक्त हो जाते हैं। इस प्रक्रियाको समझ कर यज्ञ द्वारा अनुसन्धानका कार्य बडी सफलतासे सम्पन्न हो जाता है। इसी विज्ञानके आधार पर—

(१) यज्ञों द्वारा असमयमें आकाशमें सोम भरा जा सकता है और उससे मेघोंका निर्माण हो सकता है तथा उन मेघोंको यथेच्छ स्थानों पर वर्षाया जा सकता है। आज राष्ट्रमें बडे बडे बांध बन रहे हैं। यदि वर्षा न हो तो वे सब निष्फल हैं। अतः वर्षाने की विद्या और वह भी सुलभ विद्या वेदोंके द्वारा विश्वको प्राप्त हो सकती है।

(२) अतिवृष्टिको रोकनेके प्रयत्न वर्तमान विज्ञान नहीं कर सका। परन्तु अवर्षण निमित्त या अतिवृष्टिको रोकनेकी भी क्रिया यज्ञ द्वारा सम्पन्न होती है और उसमें सफलता प्राप्त होती है। इस क्रिया द्वारा देशकी नदियोंकी बाढ समस्याको नियंत्रित किया जा सकता है और देशको जन धनकी हानिसे मुक्त कर समृद्ध किया जा सकता है।

(३) यज्ञ द्वारा मरू भूमिको उर्वरा भूमिमें परिवर्तित करनेकी क्रिया भी की जा सकती है। मरूपन पृथ्वीका क्षय है और इस क्षयकी चिकित्सा यज्ञ द्वारा हो सकती है। यदि नियत क्षेत्रमें ५ वर्ष परीक्षणका अवसर प्राप्त हो तो इसमें सफलता हो सकेगी। पृथ्वीके तत्वोंमें जो विघटनकी विपरीत क्रिया प्रारम्भ हो गई है उस क्रियाको विपरीत करनेसे मरूभूमिमें अनुकूल परिवर्तन होने लगेंगे। इस दिशामें वैज्ञानिक जगत्ने अभी तक सफलता प्राप्त नहीं की है। यह कार्य राष्ट्रके लिये अत्यन्त हितकर है। यदि राजस्थान व कच्छकी मरूभूमि उर्वरा हो जाती है और उसके साथ यज्ञके द्वारा वर्षाकी समस्याको सुधारा जावे तो भारतमें खाद्यान्नकी कमी न रहे और बकरे, मुर्गे, मछली तथा पशुओंको भोज्य बनानेकी आवश्यकता भी न रहे।

(४) यज्ञ द्वारा राष्ट्रकी खनिज सम्पदाकी वृद्धि हो सकती है। आज भूमण्डलका सारा व्यापार, व्यवसाय एवं व्यवहार सुवर्णके आश्रयसे चल रहा है। जिस राष्ट्रके पास सुवर्ण अधिक है उसका आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक प्रभुत्व अन्य देशों पर भी स्थापित हो जाता है। जिस प्रकारसे अन्नादिकी अधिक उत्पत्तिके लिये खादोंके उपयोगकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार सुवर्णादिकी विशेष उत्पत्ति एवं वृद्धिके लिये यज्ञों द्वारा इस प्रकारके तत्वोंको अन्तरिक्षमें फैला दिया जाता है जो कालान्तरमें प्रकृतिके विविध द्रव्योंके साथ स्वर्णकी खदानोंकी विशेष समृद्धिके कारण बन जाते हैं। यज्ञ द्वारा ५ वर्षमें इसका परिणाम देखा जा सकता है। इसी प्रकार अन्य द्रव्योंकी समृद्धिके लिये भी यज्ञकी विधियोंका अनुसन्धान हो सकता है।

(५) यज्ञ द्वारा ऋतुओंके तापमानमें न्यूनता एवं वृद्धि हो सकती है। शीत ऋतुमें यदि आवश्यकतासे अधिक शीतकी लहरें वातावरणको अतिशीतल बना दें अथवा ग्रीष्म ऋतुमें गर्मीकी प्रचण्डतासे लू आदिसे जनहानि होने लगे तो दोनों अवस्थाओंमें अपने अनुकूल वातावरणमें परिवर्तन यज्ञके द्वारा संभव है। वर्तमान वैज्ञानिकोंके साधन इस दिशामें जो हो रहे हैं वे व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही सीमित हैं और उनका लाभ एक छोटेसे स्थानमें ही कुछ धनी मानी व्यक्ति ही ले सकते हैं, अन्य नहीं। अतः वैदिक विज्ञान द्वारा ऋतुके वातावरणमें इच्छित प्रयत्न वर्तमान विज्ञानके प्रयत्नोंसे भी बढ कर प्रयत्न होगा।

यज्ञके वैज्ञानिक उपयोग द्वारा जहां इस प्रकारसे स्थूल जगत्में परिवर्तन किये जा सकते हैं वहां विश्वके मानसिक एवं बौद्धिक क्षेत्रमें भी परिवर्तन किये जा सकते हैं।

(६) यज्ञ द्वारा विश्वके मानस क्षेत्रमें शान्ति, प्रेम, आस्तिकता, अभ्युदय आदि भावनाओंका जागरण हो सकता है।

(७) राष्ट्रमें बौद्धिक, क्षात्र एवं विजय शक्तिका भी वर्धन हो सकता है।

इत्यादि अनेक प्रकारके कार्य वैदिक विज्ञानसे सम्पन्न हो सकते हैं। हमने इनपर अनुशीलन किया है और कतिपय अनुसन्धान मार्ग निर्धारित किये हैं तथा कतिपय परीक्षण भी किये हैं। परन्तु अभी हमें इन सब तथा अन्य वैदिक कार्योंके परीक्षण करने हैं और वैदिक विज्ञानको व्यावहारिक स्तर पर लाकर जन सम्पर्क योग्य, एवं दैनिक जीवनका अंग बनाना है। इसके लिये मुक्तहस्तसे आप सहयोग प्रदान करेंगे तभी सफलता प्राप्त हो सकेगी।

स्वप्नलोककी समस्या पर विचार

(लेखक— पं. जगन्नाथ शास्त्री, सारस्वत, न्यायभूषण, विद्याभूषण, वेदगीतादिग्रंथ लेखक, झज्जर [जि. रोहतक])

प्रिय पाठक वृन्द ! वैदिक धर्म वर्ष ४२ अंक १२ क्रमांक १५६ दिसम्बर १९६१ में श्री विश्वामित्र वर्मा, विषहर बंगला झमोरा (रीवां) मध्य प्रदेशके स्वप्नलोककी समस्या पर ३ प्रश्न हैं, जिनका उत्तर यथामति देने पर उद्यत हुआ हूं। आशा है, त्रुटि होनेपर कृपया सूचित करेंगे।

(प्र. १) जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों दशाओंमें शरीर और मनकी दशाओंमें क्या अन्तर है ? प्रश्न २ रा भी इसीके साथ संबंधित है तीनों दशाओंमें आत्मतत्व एकसा रहता है या भिन्न ? क्यों ?

(उ.) सचेतन शरीरकी एक ही आत्मतत्वके होनेपर ३ दशाएं हो जाती है १ जाग्रत २ स्वप्न ३ सुषुप्ति दशा। जाग्रत अवस्थामें मनका स्थूल इन्द्रियोंके साथ संबन्ध रहता है आत्मतत्व अनुभव करता है, यथा—

आत्मा मनसा युज्यते, मन इन्द्रियेण, इन्द्रियं
अर्थेन, ततः प्रत्यक्षम्। अथापि—
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥

म. गी. १५।९

यह आत्मा मन पर स्थित होकर पांचों इंद्रियोंके विषयोंका सेवन करता है।

स्वप्नाऽवस्थामें आत्मा मनद्वारा सूक्ष्मेन्द्रियोंसे संबंधित होकर स्वाप्निक पदार्थोंका अनुभव करता है, उस समय इंद्रियें सूक्ष्माऽवस्थामें होती है, विषय भी सूक्ष्म होते हैं, अतः स्वप्नमें किया हुआ भोजन स्वप्नाऽवस्थामें खिलानेवालेको कह देता है, मैं प्रसन्न हो गया हूं भूख उतर गई है, परन्तु जागृत होनेपर उदर खाली होता है। भूख वैसे चमकती है। क्योंकि स्वाप्निक खाद्यपदार्थ सूक्ष्म होते हैं, शरीरेन्द्रियादि भी सूक्ष्म होते हैं, सूक्ष्मसे सूक्ष्म पूर्ण हो जाता है, स्थूल शरीरका पेट नहीं भरता, क्योंकि उसके लिये स्थूल पदार्थ होने चाहिये,

स्वप्नाऽवस्थाकी केवल एक बात (जैसे मैथुन) वीर्यपातवाली अर्थात् स्वप्नदोष सत्य हो जाती है, उसका भी कारण मसानेकी निर्बलता या विकृति दोष है। स्वप्नाऽवस्थामें भी आत्मा या मनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। आत्मतत्व वैसेका वैसा रहता है सुषुप्ति अवस्थामें मनका प्रवेश पुरीतति नाडीमें हो जाता है, स्थूल अथवा सूक्ष्मेन्द्रियोंके साथ उसका कोई सबंध नहीं रहता, अतः बाह्याभ्यान्तरिक विषय ज्ञानसे रहित हो जाता है, इसीका नाम महानिद्रा, अथवा मुक्ताऽवस्था मानी जाती है, इस अवस्थामें आत्मा और मन तो मिले हुए हैं, परन्तु विषयोंसे उनका कोई संबन्ध नहीं है, अतः वह अवस्था संसार विमुक्ताऽवस्था कही है। जैसे क्लोराफार्मके सूंघनेपर आत्मा, मन और इन्द्रियोंके होनेपर श्वासनिःश्वास लेनेपर भी देह, मन, और आत्मा वैसेके वैसे रहते हैं। क्लोराफार्मके नशाके दूर होनेपर, या मनका पुरीतति नाडीसे पृथक् होनेपर देहाऽध्यास हो जाता है, इस अवस्थामें भी आत्मामें कोई अन्तर नहीं आता।

(प्र. २) स्वप्न क्यों होते हैं अधूरे क्यों होते हैं।

(उ.) स्वप्न ४ प्रकारके होते है। १ दृष्ट २ श्रुत ३ अनुभूत ४ पूर्वजन्मसंस्कारजन्य। सोनेसे पहले किसी वस्तुके देखनेसे सोजाने पर मनोवृत्ति दृष्ट वस्तु पर चली जाती है, उस जैसी अवस्था स्वप्नमें देखी जाती है और उसका अनुभव होता है। श्रुतस्वप्न व्याख्यान कथादि या भयानक चोर डाकू आदिकी बातोंके सुननेसे निद्रा आनेपर चोर डाकू या कथादिके सुननेका अनुभव करता है।

अनुभूतस्वप्न– दिनमें अध्यापन कार्य, अथवा व्यापारादि कार्योंके अनुभव हो जानेपर रातको स्वप्नमें तराजु आदिका हाथमें लेकर पदार्थ तोलना, या स्वर्ण रौप्यादि क्रय विक्रय करना या पाठशालादिमें जाकर अपनी उपस्थिति लगानी और छात्रोंको पढानादिका काम करता है।

पूर्वजन्मसंस्कार– पूर्व जन्ममें सत्संगी, परोपकारी होनेसे स्वप्नमें भी सत्संगका अनुभव और उपकृति कार्यके स्वप्नोंको देखता है।

*

(प्र. ४) स्वस्थ अथवा अस्वस्थ दशामें अनेक प्रकारके स्वप्नोंमें अन्तर क्यों होता है ?

(उ.) स्वस्थाऽवस्थामें स्वास्थ्य कारक स्वप्न आते हैं। और अस्वस्थाऽवस्थामें औषधोपचार, मृत्युका भय शारीरिक दुःखानुभवी होनेसे स्वप्नोंमें सदा अन्तर पड जाता है, जैसे स्वस्थाऽवस्थामें जाग्रत समयमें घरेलु कई विचार गृहसुधार के लिये उपस्थित हो जाते हैं और अस्वस्थतामें रोगके कारण कई अनिष्ट विचार मृत्यु प्रभृतिके उपस्थित हो जानेसे दोनों विचारोंमें अन्तर होता है, ऐसे स्वप्नाऽवस्थामें स्वप्नोंका अन्तर हो जाता है।

(प्र. ५) स्वप्न शारीरिक अथवा मानसिक कारणोंसे होता है ?

(उ.) प्रायः स्वप्न मानसिकाऽवस्थासे आते हैं शरीर तो अधिष्ठान रूप है जैसा कि ' चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् (न्या. द.) यदि केवल शरीर स्वप्नाश्रय होता, तो शवाऽवस्थामें भी स्वप्नादि होने चाहिये या सुषुप्त्यवस्थामें भी स्वप्न होने चाहिये परंतु नहीं होते अतः शरीर स्वप्नोंका कारण नहीं बन सकता।

(प्र. ६) क्या स्वप्न किसी अलौकिक कारणोंसे भी होता है ? वे कौनसे है ?

(उ.) स्वप्न अलौकिक कारणोंसे अलौकिक होते हैं। जैसे योगारूढ योगाभ्यासी, और युक्त योगियोंके अलौकिक भावनाओंसे अलौकिक स्वप्न आते हैं, और यथार्थ रूपमें वही हो जाता है योगारूढ और योगाऽभ्यासियोंको स्वप्नमें योगगुरुओंका दर्शन होता है, स्वप्नमें गुरुद्वारा उपदिष्ट मार्गका अनुसरण करते है युक्तयोगी स्वप्नमें ही परमात्मा ज्योतिका दर्शन करता है जिससे उसे दिन तो रात्रिमय प्रतीत होता है, और रात्रि दिनमयी प्रतीत होती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥
म. गी.

पूर्व जन्ममें अपरिपूर्ण योगियोंको भी स्वप्नमें अलौकिक दर्शन होते है। क्योंकि पूर्णज्ञान प्राप्तिके लिये उनका जन्म मर्त्यलोकमें योगियोंके घर अथवा धनियोंके घरमें होता है, जिससे उन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्तिके लिये सर्व प्रकारकी सुलभता मिलती है।

यथा च- शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्.
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन
पूर्वाऽभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः
भग. गी. ६।४१,४२, ४३

पूर्वजन्ममें भ्रष्ट योगी योगिकुलमें अथवा शुद्ध मनवाले धनियोंके घरमें जन्म लेता है, वह ब्रह्मप्राप्तिके साधनमें पूर्ण यत्न करता हुआ भी पूर्वजन्माऽभ्यासके कारण स्वप्नमें उसे अलौकिक दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

(प्र. ७) क्या अपनी इच्छासे इष्ट स्वप्न देखे जा सकते हैं ? अथवा अनिष्ट रोके जा सकते हैं ?

(उ.) हां ' अपनी इच्छासे इष्ट स्वप्न देखे जा सकते हैं ' यदि मनुष्य सोते समय मनमें परमात्मचिंतन करता हुआ सांसारिक वासनाओंको छोडकर निश्चिन्त रूपसे सोये, तो उसे स्वप्न आते ही नहीं, क्योंकि वह सुषुप्ति अवस्थामें चला जाता है, यदि आते हैं, तो तीर्थों, या कथा वार्तामें सत्संगियोंका दर्शन या परोपकारके स्वप्न देखे जाते हैं, उसे यह स्मरण रखना चाहिये, शय्या पर जानेसे पहिले पांव धोकर भगवन्नाम स्मरण करके ३ आचमन लेने चाहिये, तदनन्तर सोना चाहिये। ऐसा करनेसे शुभ स्वप्न आते हैं, और अनिष्ट स्वप्न अपने आप रुक जाते हैं। यथा—

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात्स्वप्नादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥ १ ॥
यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्व तदस्तु मे शिवं न हि तद् दृश्यते दिवा ॥ २
अथर्व. कां· ७ सू. १००

अर्थ— मैं पापात्मक बुरे स्वप्नसे दूर हटता हूं। क्योंकि अनैश्वर्यसे धनाभावदुःखसे यह स्वप्न उत्पन्न हुआ है। मैं (दुःस्वप्न रोकनेवाला मनुष्य) परमात्माको अपने मनमें लाता हूं अर्थात् परमात्माका ध्यान करता हूं। मैं दुःस्वप्नादि शोकजनक विचारोंको दूर करता हूं। १ क्योंकि स्वप्नमें मैं जो अन्न खाता हूं, सबेरे उस अन्नसे भरे हुए उदरको नहीं प्राप्त होता। अतः स्वप्नसे भिन्न पदार्थ अर्थात् जाग्रदवस्थाका वह अन्नादि पदार्थ मेरे लिये कल्याणकारी हो,

वह स्वाप्निक पदार्थ दिनमें दृष्टिगोचर नहीं होता ॥ २ ॥ पापसे शारीरिक अवनति, ऐश्वर्यनाशसे बुरे बुरे विचार 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' इस उक्तिको चरितार्थ करता हुआ मनुष्य पापात्मक विचारोंके कारण शोकात्मक स्वभाव हो जाता है। शारीरिक, ऐन्द्रिय, मानसिक, वाचिक बौद्धिक मलोंसे पाप होता है। या पापसे शरीर, मन, वाणी और बुद्धिमें पाप संचित हो जाता है, अतः इन पापोंकी निवृत्ति करनेपर अन्तःकरणकी शुद्धि होती है जिससे बुरे बुरे स्वप्न रुक जाते हैं। स्वप्नाऽवस्था न तो जीवनकी और न मृतकी, वह केवल सूक्ष्म इन्द्रियोंमें विचरनेवाली शक्ति है। इसी बातको अथर्ववेद कां. ६ सू. ४६ मं. १-३ में दिखाया है।

यो न जीवोसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न। वरुणानी ते माता यमः पिता ररुर्नामासि ॥ १ ॥ विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा संविद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥ २ ॥ यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति। एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते संनयामसि ॥ ३ ॥ देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न। स मम यः पापस्तद् द्विषते प्रहिण्मः। मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम्। अथर्व. १९।५७।३

ऐसे दुःस्वप्नपरक अथर्ववेद १६।५।१।१९ मंत्र तक है वहां देखिये

(प्र.) क्या स्वप्नसे भूतकालके समाचार, भविष्यकी सूचना अथवा वर्तमान कालके दूरस्थ वृत्त जाने जा सकते हैं? किस प्रकार?

(उ.) स्वप्नमें भूतकालके समाचार, धारणा शक्ति रखनेवाला मनुष्य तो समझ सकता है, परन्तु जो विक्षिप्त मनवाला मनुष्य प्रातः किया कर्म सायंका स्मरण नहीं कर सकता, वह अपने द्वारा किये हुए भी कर्मोंको स्वप्नद्वारा कैसे स्मरण कर सकता है।

भविष्य सूचना स्वप्नमें हो जाती है, जैसे मैंने स्वयं अनुभव किया है। सन् १९२१ में मैं हरिद्वारमें गंगातट (ब्रह्मघाट) पर बैठा था, मनमें विचार हुआ, आज अमावस्याके दिन इस समय सायंकाल मेरी धर्मपत्नी प्रसव पीडासे दुःखी हो रही है, परमात्मा भला करे मुझे दूसरी रात स्वप्नमें दृश्य हुआ, मेरा पुत्र उत्पन्न हुआ है वस्तुतः मुझे पत्र द्वारा ज्ञात हुआ, प्रतिपदाके दिन पुत्र हुआ तथा सन् १९२८ दिसम्बर मासमें मैं ढ. गा. खाननगरसे शीततुंके अवकाशपर अपने ग्राममें आकर १ दिन रहा, दूसरे दिन मैं वहांसे ६ मील दूर देहातमें चला गया। वहां, मुझे रात्रिमें स्वप्न आया, मेरा पुत्र उत्पन्न हुआ है, भाई बंधुओंने मिलकर उसका नाम वेदप्रकाश रखा। जब सवेरा हुआ ग्रामसे मुझे बुलानेके लिये दूत आया, तेरा लडका उत्पन्न हुआ है, तुझे बुला रहे हैं मैं वहां गया, भाई बंधु इकट्ठे हुए तिथि पञ्चाङ्गाऽनुसार उसका नाम वेदप्रकाश रखा गया।

वर्तमान कालके स्वप्न भी कभी कभी सत्य हो जाते हैं, आर्य समाज दिल्लीके पुरोहितने वैदिक धर्ममें अपनी मृत पत्नीके संबंधमें उस मृत पत्नीका पुनर्जन्म प्राप्त आयु प्रभृतिका स्वप्न देखा उसने तदनुसार उस गांवमें पहुंचकर पूर्व पत्नीको पहिचाना और मृत पत्नीने उसे पहचाना जिसके संबंधमें शास्त्रीजीने वैदिक धर्ममें स्वप्न संबंधी कई प्रश्न लिखे, जिसका उत्तर मैंने वै. धर्ममें मुद्रित करा दिया था।

(प्र. ९) स्वप्नमें लौकिक दृश्य देखनेके अतिरिक्त, अलौकिक दृश्य क्यों दीखते हैं?

(उ.) इस प्रश्नका उत्तर (प्र. ६) के उत्तरमें संक्षिप्तरूपसे दिया गया है।

(प्र. १०) स्वप्नमें देखे जानेवाले दृश्यों और हमारे स्वप्न शरीरके चित्र लिये जा सकते हैं क्या? कैसे?

(उ.) स्वप्नमें सूक्ष्मेन्द्रिय और मानसिक दृश्य होते हैं, शरीर तो स्वप्नमें पूर्वाऽवस्थामें ही स्थिर रहता है, शरीरका चित्र तो खेंचा जा सकता है, परन्तु मानसिक विचारोंका चित्र खींचा जाना कठिन है, हां यदि नूतन एक्सरेयंत्र कोई बन जाए, उससे चित्र खींचा जा सके, तो विज्ञान (साईंस) का अद्भुत आविष्कार होगा।

(प्र. ११) स्वप्न देख चुकने पर उनकी स्मृति शेष रहती है? परंतु जाग्रत संसार व्यवहारकी स्मृति स्वप्नमें नहीं रहती क्यों?

(उ.) जाग्रत होनेपर स्वप्न देखनेकी स्मृति रहती है, क्योंकि मन उस समय जाग्रतावस्थामें आ जाता है, संस्कार जन्य स्मृति होती है, उस समय स्वप्नके संस्कार प्रमुख

रहते हैं, संस्कार द्वारा स्मृति रहती है। स्वप्नाऽवस्थामें जाग्रत संसार व्यवहारकी स्मृति नहीं हो सकती, क्योंकि मन एक ही समयमें २-३ ज्ञान नहीं के सकता, क्योंकि कहा है ' युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ' (न्या. दर्शन) मनका संयोग जिस इन्द्रियके साथ होता है, उसे वह अपनाता है स्वप्नाऽवस्थामें मनका संबन्ध स्वाप्निक सृष्टिके साथ होता है। अतः उस समय जाग्रत संसार व्यवहारका संबंध नहीं हो सकता,

(प्र. १२) निःस्वप्ननिद्रामें स्वप्नद्रष्टाकी क्या दशा होती है ? वह स्वप्न क्यों नहीं देखता ?

(उ.) निःस्वप्न निद्रामें मन पुरीतति नाडीमें चला जाता है, उस समयकी दशा मनुष्यकी मुक्ताऽवस्था कीसी हो जाती है, अतः मनके अभावमें इन्द्रिय और शरीर निःस्पन्द रह जाते हैं, इसका विशेष विचार (प्र. १) के उत्तरमें देखिये।

(प्र. १३) स्वप्न कभी होते हैं, कभी नहीं होते, ऐसा क्यों ?

(उ.) जब मन पापात्मक सांसारिक चिन्ताग्रस्त होता है, तब स्वप्न आते है जब भगवन्नामस्मरणद्वारा निश्चिन्त शान्तमन होकर शयन करता है। तब स्वप्न नहीं आते।

(प्र. १४) स्वप्न कभी न हों, अथवा लगातार हों, ऐसा साधन कौनसा है।

(उ.) जब मनुष्य युक्त योगी हो जाता है, तब उसे स्वप्न कभी नहीं आते। यथा—

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवाऽवतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥
यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥

भ. गी. ६।१७-१८

अर्थ— जिस समय योगाभ्यास द्वारा अत्यन्त वशमें किया हुआ मन परमात्मामें ही भली प्रकार स्थित हो जाता है, उस समय संपूर्ण कामनाओंसे निरिच्छित हो जाता है, तब युक्तयोगी कहा जाता है॥ १७॥

जैसे वायुरहित स्थानमें स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, पूर्णतया स्थिर रहता है। वही उपमा परमात्माके ध्यानमें लगे हुए योगीके जीते हुए चित्तकी कही जाती है, ऐसी अवस्थावाले मनुष्यको स्वप्न कभी नहीं आते।

अमजन्त अस्वप्नेन सुकृतः प्रण्यमायुः।

अथर्व. १९।५६।५

उस मनुष्यको लगातार स्वप्न आ सकते हैं, जो तामसी वृत्ति, तामसी धृति रखता हो, जैसे—

यथा स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥

भ. गी. १८।३५

अर्थ— दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धारणाके द्वारा, स्वप्न, भय, चिन्ता, दुःख और उन्मत्तताको भी नहीं छोडता, अर्थात् सदा स्वप्नादिको धारण करता रहता है, वह तामसी धारणा है, अतः तामसी धारणावालेको सदा लगातार स्वप्न आते रहते हैं, इसका विशेष विचार अथर्ववेद कां. १९ सू. ५६, ५७ में प्रतिपादन किया है।

अतः दुष्ट स्वप्नकी निवृत्तिके लिये अथर्ववेद कां. ६ सू. ४५, मंत्र १,

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर
गृहेषु गोषु मे मनः॥ १

इत्यादि यहां गृहका अर्थ देह, गोषुका अर्थ इन्द्रियोंमें है।

(प्र. १५) स्वप्नकी दशामें मन क्या शरीरसे भिन्न होता है ? कि वह स्वप्न लोककी रचना करता है, अथवा शरीर छोड किन्हीं दूरस्थ लोकोंकी यात्रा और व्यवहार करता है, अथवा द्रष्टा बनता फिर शरीरमें वापस आ जाता है मनका स्वरूप कैसा कैसा और ऐसा करनेमें समर्थ है क्या ?

(उ.) स्वप्नाऽवस्थामें मन शरीरमें अपने स्थानमें रहता है, शरीरसे भिन्न नहीं होता। यदि शरीरसे भिन्न हो जावे, तो शरीर मृताऽवस्थामें हो जाएगा। मनके चलने पर शरीर कार्य कर सकता है, मनके रुक जानेपर (हार्ट-फेल) होनेपर शरीर मुर्दा हो जाता है। पुरीततिमें प्रवेश करनेपर सुषुप्त्यवस्थामें होता है, तदभावमें स्वप्नलोककी रचनामें वहा जाग्रतावस्थामें सांसारिक व्यवहारमें मग्न रहता है। स्वप्नमें अथवा जाग्रतावस्थामें मन शरीरको न

छोडकर दूरस्थ लोकोंकी यात्रा करता है। मन अभौतिक, अणु है, मन स्वयं शरीर छोडकर दूसरे लोकोंमें नहीं जाता, प्रत्युत उसकी ज्योति जाती है। जैसे नेत्र कहीं नहीं जाता, बल्कि, नेत्ररश्मि दूर दूर तक जाती है, वैसे मनकी भी ज्योति जाती है, यथा—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति। दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु॥ यजु. ३४।१

अर्थ— जो मन जाग्रत अवस्थामें दूरसे दूर अपनी ज्योति (रश्मि द्वारा) द्वारा जाता है अर्थात् जब जाग्रत अवस्थामें मन बम्बई, कलकत्तादि नगरोंमें जाकर दृश्य देखता हुआ विचरता है, और तत्रस्थ मित्रोंको मिलता और बातचीत करता है उसे जाग्रत अवस्थाका स्वप्न कहते हैं। जैसे नेत्ररश्मि दूरस्थ पदार्थको देख लेती है, नेत्र वहीं स्थिर रहता है, वैसे मन तो शरीरको छोडकर कहीं न जाता है उसकी रश्मि दूर दूर देशमें जाती है, क्योंकि 'ज्योतिषां ज्योतिरेकं' यह मनका विशेषण है, अतः मनकी रश्मि दूर दूर जाती है, न कि मन, जैसे त्वक्, घ्राण, रसना श्रोत्र, इनके पास स्पर्श गंधादि विषय आते है, न कि त्वग्घ्राणादीन्द्रिय अपने स्थानको छोडकर विषयके पास जाते हैं, परन्तु चक्षु और मन ऐसे नहीं है, इनकी रश्मियें विषयोंके पास जाती है, शयनावस्थामें भी मनकी वैसी दशा होती है, अर्थात् सुप्ताऽवस्थामें भी उसकी रश्मि दूर दूर तक चली है। अतः मन शरीरको छोडकर कहीं नहीं जाता, यदि मन देहमें न रहे, तो देहकी मृताऽवस्था हो जाएगी,

मनका क्या स्वरूप है, इसपर विचार किया जाता है।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्। न्या. द. १।१।१६

स्मृत्यादियोंके इन्द्रिय साधन नहीं हो सकते, और घ्राणादि इन्द्रियोंके गंधादि गुणोंके संनिकर्ष होनेपर भी युगपद् प्रतीत नहीं होते, इससे अनुमान किया जाता है, इन इन इन्द्रियोंसे संयुक्त होनेवाला सहकारी अव्यापक (अणु) कोई और साधन है, जिसके सन्निकर्ष न होनेपर ज्ञान (विषयोपलब्धि) नहीं होता जिसके संयोग होनेपर विषय ज्ञान उपलब्ध होता है, अतः मन इन पांचों इन्द्रियोंसे भिन्न ज्ञानोपलब्धिका विशेष साधन है।

मन अणु है, न कि विभु यथा- 'यथोक्त हेतुत्वाच्चाणु' न्या द. ३।२।६१ मन अणु है, एक समयमें बहुत ज्ञान नहीं होते, महत् (विभु) मन होता तो सब इन्द्रियोंके साथ संबंध होनेसे युगपत् ही विषयोंका अनुभव हो जाता, परंतु ऐसा नहीं होता तथा प्रत्येक शरीरमें मन एक ही रहता है न कि बहुत। यथा-ज्ञानाऽयौगपद्यादेकं मनः न्या. द. ३।२ ५८, बहुत मनोंके होने पर इन्द्रिय और मनका संयोग सब इन्द्रियोंके साथ रहेगा, तो सब इन्द्रियोंका ज्ञान एक ही समयमें रहेगा, ऐसा नहीं है अतः प्रति शरीरमें मन एक ही है और वह अणु है। अन्यत्र भी कहा है।

साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते।
अयौगपद्यज्ञानानां तस्याऽणुत्वमिहोच्यते॥

मनका वासस्थान कौन है? इस पर विचार किया जाता है।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठम् यजु. ३४।६

मन हृदय स्थानमें रहता है जो मन जरा रहित है, और अत्यन्त वेगवान् है, क्षणमें कहींका कहीं पहुंच जाता है, पहुंचनेवाली इसकी रश्मि नेत्ररश्मिकी तरह कहींसे कहीं पहुंच जाती है तथा च—

चन्द्रमाः मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत् ऐत. उप.

चन्द्रमा मन होकर हृदयमें रहने लगा।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।

(प्र. १६) निःस्वप्नाऽवस्थामें मनकी क्या दशा होती है?

(प्र. उ,) नि स्वप्नाऽवस्था (सुषुप्ति काल) में मन पुरीतति नाडीमें रहता है त्वगिन्द्रियसे उसका कोई संबंध नहीं होता अतः किसी विषयका ज्ञान और स्मृत्यादि कुछ नहीं उत्पन्न होती, मन पुरीतति आनंदाऽवस्थामें रहता है।

(प्र. १७) स्वप्नकाल कितने समय तकका होता है? इसका निर्णय कैसे और प्रमाण क्या?

(उ.) स्वप्नकालके समय विधिका कोई निश्चय नहीं हो सकता, जितने काल तक मनमें विक्षेपता रहती है, उतने काल तक स्वप्न और भयादि रहते हैं।

(प्र. १८) स्वप्न कभी एक, कभी दो तीन, या अनेक और भिन्न दृश्यवाले कोई आनन्ददायी, कोई भयानक एवं कष्टप्रद होते हैं, एक ही निद्रामें ऐसा क्यों?

(उ.) जितने काल तक भिन्न भिन्न सांसारिक वासना लेकर मनुष्य सोता है, उतने काल तक एक ही निद्रामें भिन्न भिन्न स्वप्न देखता है, शुभ विचार हों तो आनन्द-दायक स्वप्न आते है, भयप्रद वस्तुओंकी स्मृत्यवस्थामें शयन करनेपर भयप्रद स्वप्न आते हैं, इन बातों पर विशेष विचार देखना हो, तो बृहज्ज्योतिषार्णवके स्वप्नाऽध्यायको देखें।

(प्र १९) क्या मनुष्येतर प्राणी, पशु, पक्षी मछलियों चीटियों, को स्वप्न आते हैं कैसे जाना ?

(उ.) मनुष्येतर प्राणी पशु, पक्षी वृक्षोंमें जीवात्मा वास करता है चेतन सत्ताके साथ मन और इन्द्रियोंका होना अनिवार्य है। कई प्राणियोंमें दशेन्द्रियें हैं, और कई किसी प्राणीमें एक इन्द्रिय ही दो इन्द्रियोंका काम देती है। जैसे सर्पका नेत्र, रूप और शब्दको ग्रहण करता है। अतः सर्पका नाम चक्षुश्रवा है। उसकी पीठकी हड्डियें पांव और हस्तका काम देती है इत्यादि

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशु-भिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामाधिको विशेषो धर्मेण हीनः पशुभिः समानः।

अर्थ— मनुष्यों और पशुओंकी भोजन, सोना, भय, स्त्री संगमें तो समानता है, पशुओंकी अपेक्षा मनुष्योंमें धर्मकी विशेषता है, जो मनुष्य धर्ममें लगन नहीं रखता, वह पशुके समान है।

जब हम गौ, बैल, ऊंटादि पशुओं और पक्षियोंकी ओर देखते हैं गौ आदि पशु घोर निद्रामें नासिका और मुखसे घुर घुरके खर्राटे लगाते हैं, तब उनकी निद्राकी सुषुप्ति अवस्था होती है, ढोलादिके बजने पर भी उनकी नींद नहीं खुलती, जब स्वप्नाऽवस्थामें होते हैं, थोडासा शब्द होने पर भी डर खडे होते हैं, अतः उन्हें अपने मनकी व्यवस्था-ऽनुसार स्वप्न भी अवश्य आते होंगे। संभव हो सकता है, स्वप्नाऽवस्थासे जाग्रत होने पर एक दूसरेको अपने स्व-प्नोंको सुनाते हों। उनकी भाषाका ज्ञान सर्वसाधारण मनुष्यको नहीं हो सकता। उनकी भाषाका ज्ञान योगा-ऽभ्यासी योगीको हो सकता है, जिसने योग दर्शनके अनुसार

सर्वरुत ज्ञानम् यो. द.

इस योगकी सिद्धि की हुई हो। वृक्षोंमें भी जीवात्मा, मन, और इन्द्रियें रहती हैं, यथा—

अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नाः। अथर्व. कां. ६ सू. ४४ मं १

खडे खडे सोनेवाले वृक्ष भी ठहरे हैं, अर्थात् जब नहीं सोते, उस समय जागते हैं, यदि सोना और जागना वृक्षोंका धर्म है, तो डरना और आनन्दित होना भी उनके लिये संभव है, इस मंत्रसे प्रतीत होता है वृक्षोंमें मनुष्य-वत् जीवन होनेपर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों दशाएं हो सकती हैं, वृक्षोंमें जीवनशक्ति अतः मानी है, वृक्षके किसी भागसे कुछ टूट जाए, तो आध्यात्मिक वायुसंबन्धसे वह मग्न हुए हुए क्षतमें पुन. संरोहण हो जाता है। वृक्ष और वनस्पतियोंमें चेतन सत्ता, मन और इन्द्रियें हैं, इस बातको श्री जगदीशचन्द्र वसु बंगाली वैज्ञानिकने अपने यंत्रों द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

वृक्ष वृक्षोंसे अपने स्वप्नों और सुखदुःखका वर्णन करते हों जिन्हें हम नहीं समझ सकते। लज्जावन्ती लतिका स्पष्ट बताती है कि पुरुषके स्पर्श करने पर मूर्छित हो जाती है, और स्त्रीके स्पर्श करने पर विकसित (आनन्दित) हो जाती हैं, अतः वृक्षोंमें भी आहार, निद्रा, भय, संगम यह चारों वस्तुएं उपस्थित हैं।

(प्र. २०) सत्य हरिश्चंद्र राजाने विश्वामित्र मुनिको स्वप्नमें राज्य दे दिया, विश्वामित्रके मांगने पर राज्य सौंप स्वयं देशसे निकल गये। यदि यह सत्य है, तो अपनी इच्छाऽनुसार दूसरे व्यक्तिमें स्वप्न प्रेरित करनेका कौनसा साधन है ? क्या राजा हरिश्चंद्रकी कथा सत्य है ? या कोरा कल्पित दृष्टान्त ?

(उ.) सत्य हरिश्चंद्रकी कथा सत्य है, कल्पित दृष्टान्त नहीं है। जो प्राणी मनको पूर्णतया अपने वशमें करके योगसमाधि द्वारा मनकी शक्तिके द्वारा अन्य मनुष्यके मन पर पूर्ण प्रभाव जमा सकता है, केवल स्वप्नाऽवस्थामें नहीं जाग्रत अवस्थामें भी परपुरुषको अपना अनुयायी बना सकता है। मैस्मरिज्म, हिप्नोटिज्मवाले कुछ पुरुषके मन पर अपने वचनोंका प्रभाव जमा सकते हैं, तो क्या युक्त योगी नहीं जमा सकते ? युक्त योगी दूसरेके मन पर पूर्ण

प्रभाव बना सकते हैं। विश्वामित्र तो पूर्ण युक्त योगी थे; यह पता रामायणसे लगता है।

(प्र. ११) जाग्रत संसार और स्वप्न लोकमें किसीकी सत्ता स्थायी और सत्य है ?

(उ.) स्वप्नलोक अस्थायी और असत्य है, जाग्रत अवस्थामें वह स्वप्न सामग्री नहीं रहती, दुःस्वप्न अथवा सुखस्वप्नका फल प्रत्यक्ष हो जाता है। जाग्रत संसार दृष्टिगोचर होनेसे स्थायी और सत्य है, जाग्रत अवस्थाके नाम रूप नाशवान् हैं, जगत् परमार्थरूपाऽवस्थामें स्थायी और सत्य है।

(प्र. १२) जाग्रत शरीर चेतना, स्वप्न चेतनाके शरीर तत्वोंमें क्या अन्तर है ?

(उ.) जाग्रत शरीर चेतनामें मन द्वारा स्थूलेन्द्रिय और स्थूल देहके साथ संबंध रहता है। स्वप्न चेतनाके शरीरका मन द्वारा सूक्ष्मेन्द्रिय और सूक्ष्म शरीरके साथ संबंध रहता है अर्थात् स्वप्नाऽवस्थामें केवल वासनाजनित वासनामय कार्य होते हैं यही परस्पर अन्तर है। दोनों अवस्थाओंमें चेतना (आत्मतत्व) एक जैसा रहता है, उसमें कोई विकार नहीं होता, केवल स्वप्नाऽवस्थामें देह लेटा रहता है।

(प्र. १३) पाश्चात्य मनोविज्ञानके अनुसार आज कल स्वप्नोंको वासनामूलक प्रतिबिम्ब मानकर भी स्वप्नमें इह लौकिक बिना सोचा बिना देखा दृश्य क्यों दीखते हैं ?

(उ.) स्वप्नमें वासनामूलक प्रतिबिम्ब होते हैं, यह तो आप मानते हैं। बिना सोचा बिना देखा स्वप्निक दृश्य तब प्रतीत है, जब कि दृश्यके संबंधमें किसीके कथन द्वारा कुछ सुना हो, या पूर्व जन्माऽनुभूत दृश्य दृष्टिगोचर होता है।

(प्र. १४) स्वप्नमें अलौकिक विचित्र दृश्य जो दीखते हैं, उनका मूल स्रोत कहां है ?

(उ.) स्वाप्निक अलौकिक विचित्र दृश्योंका मूलस्रोत मन और मानसिक वासनाएं हैं। यदि सोते समय किसी प्रकारकी वासनासे रहित मन हो तो कोई भी स्वप्न नहीं आएगा और नहीं स्वाप्निक दृश्य दृष्टि गोचर होंगे।

(प्र. १५) क्या उन दृश्यों, लोकों, घटनाओं, वस्तु एवं व्यक्तियोंकी कोई सत्ता है ?

(उ.) देहलीके बिरला मन्दिर, अथवा काल दुर्गादि देखे हुए स्थानोंका दृश्य स्वप्नमें देखा जाता, है, अथवा नगरमें कई पुरुषोंको लडते देखा उसी घटनाका दृश्य स्वप्नमें देखा, दिनमें देखे हुए सुन्दर वस्त्रको स्वप्नमें देखा, अथवा दिनमें या कई दिन जिस व्यक्तिसे लेनदेनका वार्तालाप किया, उसी व्यक्तिके साथ स्वप्नमें बातचीत हुई हो, तो वह सब वस्तुएं अपनी अपनी सत्तामें अपने स्थान पर स्थित हैं। केवल उनके स्वाप्निक दृश्य स्वप्नाऽवस्थामें वासनात्मक हैं। क्योंकि स्वप्नमें तो केवल मानसिक कल्पना होती है।

(प्र. १६) क्या ऐसे स्वप्नोंकी रचना अन्तर्गत स्वतंत्र करता है, अथवा किसी अज्ञात लोककी सत्तासे प्रेरित होकर ?

(उ.) स्वाप्निक रचना अपनी वासनाओंके होनेपर मन द्वारा होती है, इसमें केवल मन और मानसिक वासनाओंकी प्रधानता है ? अज्ञातलोककी सत्तासे सब स्वप्न नहीं होते, पूर्वजन्माऽनुभवजन्य पूर्वजन्माऽनुभूत संस्कारोंसे होते हैं, स्वतंत्र कर्ता होता है, स्वप्नके दृश्योंमें मनोवृत्ति और वासनाएं मुख्य हैं।

(प्र. १७) मानसिक कमजोरी, उद्वेग, मूढाऽवस्था, मृगी, अपस्मार, मूर्छा अथवा अन्य मानसिक अव्यवस्थित विकृतिकी दशामें जो लोग बातें या बक बक करते हैं, उस चेतनामें और स्वप्नकी चेतनामें क्या अन्तर है ?

(उ.) मानसिक निर्बलतादि रोग हैं, इन रोगाऽवस्थामें आत्मिक चेतनता तो समतामें रहती है, केवल मनकी रश्मि विकृत मस्तिष्कके साथ संबन्ध रखती है, मस्तिष्क विकृत होनेसे मनोरश्मि भी विकृत रूप होकर यथावत् इन्द्रियज्ञान धारण नहीं कर सकती, अतः मूढाऽवस्थादि दोष रहते हैं, चेतनतामें विकार नहीं होता।

स्वप्न चेतना- स्वाप्निक अवस्थाऽनुसार मनोवृत्ति पर आश्रित रहती है।

(प्र. १८) जीवनकी विभिन्न आयु, और शारीरिक, मानसिक, दशाओंके अनुसार स्वप्नोंमें भिन्नता रहती है, ऐसा क्यों ?

(उ.) शिशु अवस्था अथवा अध्ययनाऽवस्थामें बचपनकी क्रीडा, और अध्ययनादि कर्मकी वृत्ति होनेसे पाठ स्मरण और अध्यापकके स्वप्न आते हैं, यौवनाऽवस्था विवा-

हित हो जाने पर गृहस्थाश्रम और तदुपयोगी व्यवहारके स्वप्न आते हैं। मध्याऽवस्था होने पर बहुसन्तत्यवस्थामें ' बहुतोकः निर्वेदमापद्यते ' इस वैदिकोक्तिके अनुसार स्वप्न दृश्य देखता है, वृद्ध होने पर सत्संगी होनेसे यज्ञादि और सन्तसमाज और परोपकारवाले स्वप्न देखता है यद्वा शराबी और व्यसनी होनेसे भयानक स्वप्नोंको देखता है शरीर और मन यदि दोनों दुर्बल हैं तो दुर्बलताके स्वप्न होंगे। यदि शुद्ध मन होकर भगवत्स्मारक वार्ता करनेवालेको पढ़के तो स्वप्न न आएंगे, यदि आवें, तो भगवन्महिमा स्मारक वार्ताएं यद्वा साधु संग, भगवत्कथा वार्ताके आएंगे।

(प्र. २९) क्या स्वप्नलोक भी कहीं है ?

(उ.) स्वप्नलोक प्रत्येक प्राणीके देहके अन्दर है, इसके अनुसार अनन्त प्राणियोंके होनेसे अनन्त स्वप्नलोक हो जाते हैं, इस अवस्थाके विना और कोई स्वप्नलोक भिन्न नहीं है।

(प्र. ३०) स्वप्न विषय पर अपने अनुभव और खोज लिखें।

(उ.) मेरा स्वप्न विषय पर अपना अनुभव और शब्द प्रमाण पर निर्भर है। रावणको अपने युद्धसे पूर्व दुःस्वप्न आये, और कंसने भी मृत्युसे पूर्वरात्रिमें तैलाभ्यंग गर्दभ वाहन, दक्षिण दिशादि यात्राको स्वप्नमें देखा स्वप्नफलाऽनुसार उनकी मृत्यु हुई। ईसा मसीह (यीशु) का स्वप्न वैदि. ध. मार्च १९६२ पृ. ११२ पर देखें इस पर भी यदि विश्वास न हो, तो कायिक, वाचिक, मानसिक पापोंका परित्याग करना, और मनको ईश्वरोपासना, परोपकार, परहिंसादि दुष्कर्मोंसे बचे रहना परम कर्तव्य होना चाहिये, यथा—

मैतां पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ
तं ब्रवीमि। तम एतत् पुरुष मा प्रपत्था भयं
परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ अथ. कां. ८ सू. १ मं. १०

अर्थ-- (एतां पंथा अनु मा गाः) इस बुरे मार्गका अनुसरण मत कर अर्थात् पापी मार्गको छोड दे, (भीमः एषः) यह पापी मार्ग भयंकर है। (येन पूर्वं न ईयथ) जिस बुरे पापी मार्गसे पहिले पुरुष नहीं जाते (तं ब्रवीमि) उस मार्गके विषयमें मैं कहता हूं। (हे पुरुष !) (एतत् तमः) यह पापी मार्ग अन्धकार अथवा अज्ञान स्वरूप है। (मा प्रपत्थाः) उस पापी मार्ग पर मत जा (ते परस्तात् भयं) तेरे लिये आगे भय उपस्थित होगा (अर्वाक् ते अभयं) पाप मार्गसे दूर रहने पर इधर तुझे भय न रहेगा अतः तू अपने मनको पापीकर्मोंसे हटाकर अपने वशमें करके परमात्मध्यानमें लग जा, फिर तुझे दुःस्वप्नादिका कोई भय नहीं है। जैसे कठोपनिषद् ३ में कहा है।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सह।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥५॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सह।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥६॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८ ॥

दुःस्वप्नों और सामान्य स्वप्नोंको दूर करनेके लिये गाढ निद्राका आना आवश्यक है, गाढ निद्रा (सुषुप्ति) अवस्थामें स्वप्न नहीं आते। जैसे

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम्।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र
इवारिष्टो अक्षितः ॥ अथ. कां. ४ सू. ५ मं. ७

अर्थ-- (स्वप्न) हे निद्रे (स्वप्नाभिकरणेन) निद्रावृत्तिके संमुख होनेके कारण (सर्वं जनं नि-स्वापय) सब मनुष्योंकी इन्द्रिय वृत्तियोंको सर्वथा सुला दे। (आ उत् सूर्यं आवि उषं) उषः फटने और सूर्योदय होने तक (स्वापय) सुला दे। (अहं) मैं जीवात्मा (इन्द्रः इव) ऐश्वर्यवान् परमात्माका अंश होता हुआ (आरिष्टः) अग्निजलादि किसी भी पदार्थसे पीडित न होनेवाला (अक्षितः) अविनाशी (जागृतात्) जागता रहूं। इस सारे सूक्तमें गाढ निद्रित होनेके लिये प्रार्थना की गई है।

इस सूक्तमें मनकी दृढ भावनासे गाढ निद्रा (सुषुप्ति)

प्राप्त करनेका उपाय बताया है। तरुण स्त्री पुरुषोंको भी प्रयत्नसे अपनी वृत्तियों (कामनायें) को शान्त करके सुखसे निद्रा आने योग्य मनकी शान्तिको बढाना चाहिये। वे जिससे सुखपूर्वक सो सकेंगे, इस अवस्थाके होने पर स्वप्न न होंगे।

दुःस्वप्नमें क्या क्या दृश्य दीखते हैं, और उनका परिणाम क्या होता है।

> स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृग· सृतिं याति धावादजुष्टाम्। परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते। अथ. कां. १ सू. ३ मं. ६

अर्थ— हे प्राणिन्! (यदि) यदि (सुप्तौ) स्वप्नमें निद्राके समय (पापं) पापके दृश्य अर्थात् अत्याचार अपने ऊपर होनेवाले भयंकर वध आदिके (स्वप्नं) स्वप्नमय दृश्यको (पश्यसि) देखता है। (यदि) यदि (मृगः) कोई शेरादि जंगली पशु (अजुष्टां सृतिं) अप्रिय, अथवा अनिष्ट किसीसे न सेवन करने योग्य मार्ग पर (धावत्) दौडे। (शुकनेः परिक्षवात्) उलूकादि दुष्ट पक्षीके दुष्ट शब्दसे (पापवादात्) पापात्मक निन्दाके शब्दसे (अयं) यह (वरणो मणिः) सबसे वरने योग्य शुद्ध मनवाला शिरोमणि रूप जीवात्मा (वारयिष्यते) दुःस्वप्न जनित दुष्ट फलको दूर करेगा। अतः अथर्व. कां. ७ सू. १०० मं.1

> पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात्।

इस मंत्र द्वारा दुष्टस्वप्न न आनेके लिये उपाय बताया है। सिद्धान्त यह है

> यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम।
>
> अथ. कां. ६ सू. ४५ मं. २

जो कार्य हम जागते हुए या सोते हुए करते हैं, वही स्वप्नमें परिणत होते हैं। अतः जाग्रत अवस्थाके हमारे सब व्यवहार उत्तम होने पर स्वप्न निःसंदेह ठीक आते हैं और किसी प्रकार बुरे स्वप्न नहीं आते, और मनमें कभी अशुभ संस्कार उत्पन्न न होंगे। यदि मनुष्य असत्यको छोडकर सत्य परमात्माका आश्रय लेंगे, तो निःसंशय पापात्मक बुराईसे बच सकेंगे। अन्यथा नहीं।

वेदके सम्बन्धमें कुछ एक बातें

(लेखक— श्री भगवानराव आर्य भोसीकर, B. Sc., आर्यनिवास कन्धार, [नान्देड, महाराष्ट्र])

वेदको अपौरुषेय कहा जाता है। अर्थात् वेद मानवकृत नहीं। आज वेदके सिवा जितना भी साहित्य उपलब्ध होता है वह मानव कृत है। यदि लेख हो तो लेखकका नाम, काव्य हो तो कविका नाम उस उस रचनाके प्रारम्भ अथवा अन्तमें लगाया जाता है। वेदके प्रारम्भ अथवा अन्तमें ऐसा कोई भी नाम लगाया नहीं गया। परिपाटीसे भी ऐसा कोई नाम प्रचलित नहीं कि जिससे अमुक नामके मनुष्य अथवा मानव संघकी यह रचना है ऐसा कहा जा सके। वेद परमात्माके निःश्वास हैं और अनादि हैं यही परिपाटी प्रचलित है। ठीक ही कहा है महर्षि दयानन्दने 'सब सत्य विद्या (वेद) और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, इन सबका आदिमूल परमेश्वर है'।

'वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है'। वेदमें ऐसी एक भी बात नहीं जो असत्य सिद्ध हो सकती हो। प्रयोग और व्यवहारकी कसौटी पर कसा जाये तो यही परिणाम निकलेगा कि वेद प्रतिपादित नियम सत्य हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि वेदका मन्थन करनेकी क्षमता रखनेवाला कोई समर्थ पुरुषार्थ करे। नियमोंका सत्य सिद्ध होना वेदकी निजी विशेषता है। और इसका कारण उसका अपौरुषेय होना है।

परमात्मा सर्वज्ञ है और मनुष्य अल्पज्ञ। सर्वज्ञकी बात पूर्ण होती है और सत्य भी। अल्पज्ञकी बात अपूर्ण होती है और कोई मर्यादा पर्यन्त सत्य। यदि वेद मानव कृत होते तो मानवी दोषका आरोप उसपर सिद्ध किया जा सकता। और वेदमें प्रतिपादित नियम किसी मर्यादा पर्यन्त सत्य सिद्ध होते। पर, जैसे कि ऊपर दर्शाया है कि वेद अपौरुषेय हैं, इसी लिये उसमें प्रतिपादित नियम, प्रयोग और व्यवहारकी कसौटीपर त्रिकालाबाधित सत्य सिद्ध होते हैं।

यह सत्य है कि जो अपना घर बनाता है वह अपने घर के सम्बन्धमें अधिकृत जानकारी देसकता है। यह जिस प्रकार विश्वसनीय और सत्य बात सविशेष बता सकता है उतनी एक अतिथि नहीं बता सकता। इसी अनुसार ईश्वर जो 'सृष्टि कर्ता' है वह जितनी अधिकृत, विशेष, विश्वसनीय और सत्य जानकारी दे सकता है, कोई एक अल्पजीवी, अल्पज्ञ नहीं दे सकता। और दे भी तो वह लगभग सत्य होगी। पूर्ण सत्य नहीं हो सकती।

वेदकी उत्पत्ति सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ हुई। यह विधान किया जाये तो अत्युक्ति न होगी कि वेदकी उत्पत्ति सृष्टिकी उत्पत्तिसे भी पूर्व हुई '... यथा पूर्वमकल्पयत्'। इसका सरल अर्थ यही हुआ कि सृष्टिके नियम पूर्व बने और सृष्टि की उत्पत्ति पश्चात्। यदि सृष्टि प्रथम बनती और पश्चात् नियम तो सृष्टिमें सुव्यवस्था, सुरक्षा, नियमितता, क्रमबद्धता नियन्त्रण आदि न आते। पहले कर्म पश्चात् नियम बाली बात होती। जो सर्वथा अस्वीकार ही है। भला ऐसा भी कोई सुज्ञ व्यक्ति होगा जो बिना पूर्व नियोजन, नियम प्रबन्धादिके किसी कार्यके लिये उद्यत हो। यदि नहीं तो जो 'सर्वज्ञ' और 'सृष्टिकर्ता' है उससे भला हम कैसे अपेक्षा कर सकते हैं कि वह यूंही सृष्टिकी रचना करता गया जिसका न कोई नियोजन न नियम नाही प्रबन्ध। अतः इसपर यदि अधिक विचार करें तो पाठकवृन्द इस निर्णय पर आयेंगे कि सृष्टिके पूर्व नियोजन बना, नियम बने और प्रबन्ध हुआ और पश्चात् 'सृष्टि'। और इसी लिये व्यवहारमें हम कह सकते हैं कि 'वेदकी उत्पत्ति सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ हुई'। नियमोंका प्राकट्य सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ है।

ऊपर दर्शाये अनुसार कारण कि सृष्ट्योत्पत्ति प्रवाह से अनादि है, वेद अर्थात् वेदमें प्रतिपादित नियम अनादि हैं।

यह पृथक् बात है कि परमात्माकी अनुपम, निःसीम कृपासे 'अग्नि' आदि ऋषि चतुष्टय पर वेदका प्राकट्य हुआ। ये शुद्ध, पवित्र और पूर्ण नियम उन्हींके योग्य इस ऋषि चतुष्टय पर प्रकट हुये जो ज्ञान, भक्ति और कर्मसे शुद्ध, पवित्र और पूर्ण हो गये थे। उन्हींके प्रचार (उच्चार) और पाठान्तरके परिणाम स्वरूप वेद 'श्रुति' होगये और जिन्होंने इनकी उत्तम व्याख्याकी वे इनके 'ऋषि'।

मान भी लिया जाये कि इसको काव्यबद्ध, गद्यबद्ध और छन्दबद्ध, सातहजार, दसहजार, बीसहजार वर्ष पूर्व किया गया फिर भी इस विधानमें कोई बाधा नहीं आती कि वेदका प्रकटीकरण सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ हुआ। क्रिया अथवा कार्यके पूर्व, नियम अप्रकट रहते हैं और इसके साथ ही वे प्रकट होने लगते हैं।

इन नियमोंके (वेदके) द्रष्टाका आश्रय कालान्तर बाद होना यह स्वयम् परमात्माके एक नियमका गूढ पर अर्थपूर्ण नियमका अद्भुत अङ्ग है।

इसी लिये, सब सत्य विद्या (अर्थात वेद) अर्थात् नियम और जो पदार्थ विद्यासे अर्थात् नियमसे (नियमोंके आधारपर) जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। कारण कि परमात्मा ' अनादि ' है, नियम और पदार्थ स्वयमेव अनादि सिद्ध होते हैं। इस प्रकार वेद और 'सृष्टि' दोनों अनादि हैं। और सृष्टिके नियमोंके प्रतिपादन होनेसे ' सत्य '। नाहि वेदका कोई काल है नाहि इसका कर्ता कोई मानव है। वेद अनादि हैं और अपौरुषेय हैं। इसी लिये सब सत्य विद्याके प्रतिपादक हैं।

'वैदिक धर्म' प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वतीका विधान है कि जो ' परमात्माके नियमोंके विरुद्ध जायेगा उसे पाप लगेगा, उसे कष्ट होंगे। सरल अर्थ यही हुआ कि जो सृष्टि नियमानुकूल वर्तन रखेगा उसका जीवन सुख और शान्तिसे बीतेगा। उसपर परमात्माकी विशेष कृपा होगी। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्माका विशेष कृपा पात्र, प्रेम पात्र बनेगा। कौन ऐसा पिता होगा जो अपनी आज्ञाके पालनहार पुत्र पर प्रेम भरी दृष्टि फिराकर सन्तुष्ट होनेका भाग्य न लेगा। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा हम सबका पिता है। उसकी आज्ञाका पालन हम पर सुख व शान्तिकी वर्षाका कारण है। उसके प्रेम पात्र होनेका सीधा और सरल यही उपाय है। इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

वेदमें व्यक्ति, समाज और राष्ट्र (विश्व) के लिये नियम दिये हैं। जिससे व्यक्ति, समाज, और विश्वमें ' शान्ति ' स्थापित रहे। बीजरूप वैज्ञानिक नियम दिये है और आविष्कारके सांकेतिक पदार्थ (यान, उपकरणादि) जिससे हम उन्नत हों। यज्ञादिका विधान किया है जिससे सृष्टिके व्यवहारको अपने अनुकूल बनाया जा सके। उपासना और प्रार्थनायें हैं जिसके द्वारा हम उस परमपिता परमात्माके समीप जाकर आत्मिक शान्ति प्राप्त कर सकें। इससे हमें और अधिक क्या चाहिये जहां ' सुख और शान्ति ' की वर्षा होती है। दुर्दैव है कि मानव अपने पिताके नियमोंका यथोचित परिपालन नहीं कर रहा है।

सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ सृष्टिके व्यवहारके नियम भी उत्पन्न हुये। अखिल जीव जातिके लिये उस उस जातिके नियम भी बने। आज विज्ञान सृष्टिके इन अप्रकट नियमोंको खोज रहा है। इनसे व्यावहारिक लाभ उठा रहा है। मानव अपनी जातिके नियम खोज रहा है जिससे समाज (विश्व) सुसंगठित रह सके। सर्व हितकारी नियमोंका शोध चल रहा है।

यदि मानव सृष्टिके आरोग्य विषयक नियमोंको तोडेगा तो अस्वस्थ हो जायेगा। अनेक रोग और पीडाओंसे ग्रस्त हो जायेगा। सामाजिक सर्व हितकारी नियमोंका यथोचित परिपालन नहीं करेगा, तो समाज विसंघटित हो जायेगा। सामाजिक असन्तोष प्रसृत होगा। वैज्ञानिक संशोधन और नियमोंसे अपरिचित रहेगा तो वह अवनत बन जायेगा, अज्ञानी, मूढ बन जायेगा। सृष्टिके विकासके नियमसे विरुद्ध जाना, अपने मस्तिष्कको अविकसित रखना है, अज्ञानी, मूढ बन जाना है। वैज्ञानिक संशोधन, सृष्टिके अप्रकट नियमोंको मानवके लिये प्रकट करा देता है। हम इससे वञ्चित नहीं रह सकते।

संक्षेपसे यह कि जहां भी अज्ञान, दुःख और अशान्ति है वहां सृष्टिके नियमोंका विरोध हो रहा है। अवैदिक व्यवहार चल रहा है जहां मानव अप्रगत, असंघटित और अस्वस्थ है वहां वह वेदके विरुद्ध चल रहा है। सृष्टिके नियमों से अपरिचित होनेसे अपने परमपिताके प्रेमका अपात्र बन रहा है। पिताका स्नेह उसे नहीं मिल रहा है। सुख शान्ति और ज्ञानके लिये सृष्टिके नियमोंसे परिचित होना आवश्यक है। इसी लिये वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना और तदनुसार व्यवहार रखना मानव जातिका परम कर्तव्य है।

आपकी स्थिति कुछ आश्चर्यजनक है। विज्ञान और राजनीतिमें इतना तथा कथित आगे आता हुआ भी यह मानव बहुत ही पीछे है ऐसा अनुभव होता है। इसका सरल अर्थ यही कि वह वेदके अनुसार अपना व्यवहार नहीं रख पाया। कष्ट उठाता चल रहा है। स्वार्थ और अनात्मियतासे ग्रस्त मनुष्य भला इन वैदिक नियमोंको कैसे व्यावहारिक रूप दे सकता है। उसने विश्वव्यापी आत्माका ज्ञान कहां प्राप्त किया है। वेदका वेदान्त अभी उसे नहीं सूझा। सच्ची शान्तिका और सच्चे सुखका यही तो अप्रतिम उपाय है। जिसे अभी व्यावहारिक रूप प्राप्त नहीं हुआ है।

संक्षेपसे यह कि वेदानुकूल व्यवहार सृष्टि नियमानुकूल व्यवहार है। इसे व्यवहारमें जानेसे सुख और शान्तिकी वर्षा होसकती है। व्यक्ति, समाज, विश्व विकसित प्रगत और उन्नत होसकता है।

वेदानुयायियों अर्थात् सृष्टि नियमानुकूल चलनेवालों, पिताकी आज्ञा पालन करनेवालोंका कर्तव्य यही हो कि ' विश्वको इन नियमोंसे यथोचित ज्ञान करा उन्हें भी सुख और शान्तिके भागी बननेका अवसर दें '। ' कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ' को क्रियात्मक रूप दें। ● ● ●

एक प्रश्न ? एक उत्तर !

(लेखक— श्री प्र. ग. यावलकर, धार)

★

अभी अभी पूनाके एक शिक्षा संबंधी पत्रिकामें, जिसका नाम शायद ' शिक्षक ' था, एक अध्यापककी कुछ समस्याओंको पढा । अध्यापककी पूर्ण योग्यता तो उसमें नहीं थी परतु मैं समझता हू अध्यापक स्वयं अत्यंत समझदार होना चाहिये ।

प्रश्न सरल था । अध्यापकने पाठकोंके सामने समस्यात्मक प्रश्न रखा था । छात्रोंको रामायण महाभारतकी कहानियां पढानी चाहिये ऐसा आग्रह किया जाता है । परंतु कहानियां जब पढाई जाती हैं तो कतिपय समस्यायें स्वयं अध्यापकके मनमें उपस्थित हो जाती हैं । (अध्यापकका कथन था कि छात्रोंके मनमें उपस्थित होती हैं) और ऐसी स्थितिमें छात्रोंका शंका समाधान करना दुरापास्त हो जाता है ।

इन्होंने उदाहरणके लिये श्री ज. स. करंदीकरजी द्वारा लिखित महाभारतकी कहानियां एक मराठी किताबका पृष्ठ २८ छात्रोंके समक्ष पढने समय जो विचार उत्पन्न हुए उस पर आधारित समस्या लिखी थी । इनके प्रश्न यह थे, कि ऋषि मुनी लोग जिनको हम महान् तपस्वी त्यागी मानते हैं, वे इतने संयम हीन कैसे थे । वे इतने शीघ्र काम विव्हल कैसे हो जाते थे । इसी प्रकार कुंतीका नियोग द्वारा संतान उत्पन्न करना यह भी अत्यंत आश्चर्य जनक कथन है । अतः ऐसी कथाएँ छात्रोंके मनोंमें कौनसे भाव जागृत करेंगी । और उनके अध्ययन अध्यापनसे क्या लाभ हो सकते हैं ?

लेखक इन्हीं अध्यापक महोदयकी यह समस्या है ऐसी बात नहीं है, परंतु आजके युगमें कतिपय लोग ऐसे दिखाई देंगे जो आपको इस प्रकारकी विचार धारा प्रस्तुत करते हुए दिखेंगे आजके विज्ञ तथा सुज्ञ समाजमें एक फैशन सी चल पडी है कि जैसे भी हो वैदिक साहित्यको, रामायणको महाभारतको नीचे दिखाना । उसमें जितनी भी त्रुटियां दिखनेमें आवें देखना और येन केन प्रकारेण जनताके मनमें उनके प्रति अश्रद्धाके भाव निर्माण करना । रामका अंतर्द्वंद्व, जैसी कवितामें रामचंद्रजीके प्रति जो भाव व्यक्त किये गये है वे क्या बताते हैं । अभी अभी पूनाके ही एक मराठी पत्रिकामें सत्यवती या मत्स्यगंधाके चरित्रका चित्रण करते समय विद्वान् लेखकने जो कि प्राध्यापक भी हैं अपनी कलमसे महाभारतका तथा उसके ऋषि मुनियोंके चरित्रका छीछालेदर किया है । कम्युनिस्टोंकी विचारधारासे प्रेरित बहुतसे लेखक इसी प्रकारकी कथाओंको अत्यंत बीभत्स रूपसे समाजके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं ।

यह एक अत्यंत घातक विचार धाराका देशमें प्रचार हो रहा है । एक लेखक महोदय बाबा भगवानदीनने एक शोध निबंध लिखकर यह बात सत्य सिद्ध करनेका प्रयास किया कि महात्मा तुलसीदासने वेद, वेदांग श्रुति स्मृति आदिका अध्ययन कतई नहीं किया था । नहीं किया होगा तुम्हें उससे क्या ? इन्होंने इन बातोंका अध्ययन किये बगैर ही जो काव्य रचना, जो ग्रंथ रचना की है वह आज भारतके कोटि कोटि जन मानसका हृदय स्थान प्राप्त कर चुकी है और आप जैसे लाखों लोगोंने भी यदि उनका निरादर कर उसे जनताके हृदयसे हटानेकी चेष्टाकी तो यह कदापि संभव नहीं होगा ।

दुःख तो मुझे इस बातका है कि एक अध्यापक इस गुत्थीको सुलझा नहीं सका । और आजके अध्यापकसे यह आशा करना अधिक श्रेयस्कर भी नहीं है । वास्तविक देखा जाय तो अध्यापकको ही ऐसे टेढे मेढे समय पर मार्ग दर्शन करना चाहिये । प्राचीन भारतमें अध्यापकको सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति माना जाता था । विपत्तिके समय राजे महाराजे उनके चरणोंमें गिर गिर कर उनसे आशीर्वाद मांगते थे और उनका मार्गदर्शन प्राप्त कर कार्य करते थे । क्या आजके अध्यापकसे राजा नहीं तो साधारण बालक भी मार्गदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता ? क्या इन बालोंका समाधान कर

छात्रोंको सही बात या सही मार्गदर्शन करना अध्यापकके लिये असंभव है ?

असंभव तो नहीं है परंतु असाध्य जरूर है। कारण उस समयके अध्यापकमें और आजके अध्यापकमें अंतर आगया है। उस समयकी विचारधारा और आजकी विचार धाराका अंतर हम समझते नहीं है। हम स्वयं किसी भी बात पर श्रद्धा रखनेको तैय्यार नहीं है। और पर्यायी रूप से हमारे ऊपर भी किसी की श्रद्धा नहीं रहती। अस्तु

उपरोक्त बातोंका एकमात्र कारण है श्रद्धाकी कमी। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथोंके प्रति हमारे मनमें जो श्रद्धा रहनी चाहिये वह नहीं है। दूसरे हमारी प्रवृत्ति कुछ ऐसी ही होगई कि हम किसी चीजमें विद्यमान बुराईको देखनेकी बहुत ज्यादा कोशिश करते हैं। परंतु उसमेंकी अच्छाईयोंको आत्मसात करनेका प्रयत्न नहीं करते हैं।

अब यही उदाहरण हम आगे बढाना चाहें तो बता सकते है कि छात्रके समक्ष महाभारतकी कथा पढते समय जब उसमें काम वासनाका प्रसंग आया तो आपको बुरा लगा। आप उन्हें छात्रोंको समझानेमें असमर्थ रहे, परंतु आजकल सिनेमाओंके द्वारा जो नग्न प्रचार हो रहा है, जिस प्रकारके उभाडनेवाले चित्र प्रदर्शित किये जा रहे हैं, उसे देखकर आपके छात्रों पर क्या प्रभाव होता होगा, इस बातपर कभी आपने सोचा भी है। आप यदि यह सोचें कि महाभारतकी कथाएँ छात्रोंको बिगाडती हैं, तो आपके सिनेमा उससे १००० गुणा अधिक बिगाडनेवाले हैं यह बात निश्चित समझिये।

रहा सवाल ऐसी कथाएँ छात्रोंका पढकर बताना या नहीं। वैसे तो आजके छात्र सिनेमा देखते हैं, जासूसी उपन्यासको पढते हैं। स्त्री, किर्लोस्कर, माया, मनोहर सभीका वाचन करते है। ऐसी स्थितिमें अनेकों बार अनेक प्रकारके प्रसंग वे पढ तथा देख चुकते हैं। ऐसी स्थितिमें इन प्रसंगोंका धोखा कम ही रहता है।

परंतु इसके अलावा भी मैं यह सोचता हू कि यह तो अध्यापकका दृष्टिकोण है कि छात्रोंको कौनसी कहानियां पढकर सुनाई जावें और कौनसी नहीं सुनाई जावें। रामायण महाभारत यह पौराणिक ग्रंथ हैं और यह खास तौरसे प्रौढ वयस्कोंके ही लिये लिखे गये हैं। वानप्रस्थाश्रमी सज्जनोंको पढनेके लिये इनका वास्तविक निर्माण किया है। ऐसी स्थितिमें यदि उनमेंसे बालकोंके लिये यदि कोई कथाएँ निकालनी हैं तो उन्हें बोधप्रद स्फूर्ति प्रद, ज्ञानप्रद ऐसी जो कुछ बातें हों। उन्हींको प्रकाशमें लाकर उन्हें पढकर बताना चाहिये।

भगवान् रामचंद्रजीके बाल्यकालकी कथाएँ। उनकी पितृभक्ति, उनका भ्रातृप्रेम, उनकी गुरुभक्ति उसी प्रकार महाभारतमें अभिमन्युका कथा, भरतकी कथा। श्रीकृष्णजीके बाल्यकालकी कथाएँ। ऐसी अनेकों कथाएँ हैं जो बालकोंको अत्यंत उपयुक्त होसकती हैं और जिन्हें पढकर या सुनकर बालक कुछ सीख सकते हैं।

आशा है हमलोग इस प्रकारसे विचारकर अपने धार्मिक ग्रंथोंके बारेमें उपस्त हो रही अश्रद्धाको रोकेंगे तथा छात्रों तथा कम पढे लिखे समाजका योग्य मार्गदर्शन करेंगे।

क्षयरोग और उसकी प्राकृतिक चिकित्सा

[लेखक— डॉ. अग्निहोत्री स्वामी (भूतपूर्व डा. कुन्दनलाल अग्निहोत्री, मेडिकल आफिसर टी. बी. सेनेटोरियम)
द्वारा स्वास्थ्य भंडार १९, शिवाजी मार्ग, लखनऊ]

अब से ९ वर्ष पूर्व कलकत्तेमें एक कामनवेल्थ कान्फ्रेंस हुई थी, जिसका विवरण 'जॉरनल ऑफ द इंडियन मेडिकल असोसिएशन कलकत्ता' के मई, १९५२ के अङ्कमें छपा था। इसमें डॉ. श्री बेंजामिन साहबने, जो सरकारके क्षयरोग परामर्शदाता हैं, क्षय रोगपर बोलते हुए बताया था कि पाँच लाख व्यक्ति हमारे देशमें इस रोगसे हर वर्ष मर जाते हैं। साथ ही यह भी कहा था कि सरकारी ऑकड़े अपूर्ण हैं। वास्तवमें, इनके अपूर्ण होनेका मुख्य कारण यह है कि साधारणतया लोग घरपर मरनेवाले क्षय रोगीकी मृत्युका कारण केवल ज्वर लिखाते हैं। यह सब ही अनुभव करते हैं कि इस समय क्षय रोग बड़े वेगसे हमारे देशमें बढ़ रहा है। बड़े बड़े नगर तो उसके केन्द्र ही बन गए हैं। बी. सी. जी. के टीकेके विशेषज्ञ डॉ. एण्डरसनने कुछ समय पूर्व बरेलीमें भाषण देते हुए कहा था कि भारतमें प्रति एक हजारमें ४३० मौतें अकेले राज्य यक्ष्मा (T. B) से होती हैं। कानपुरमें इसी टीकेके संबंधमें कुछ बच्चोंकी परीक्षा की गई थी जिससे ज्ञात हुआ कि ६५% बच्चोंमें क्षय रोगके कीटाणु विद्यमान हैं अर्थात् हमारी भावी पीढ़ीका केवल ३५% क्षय ग्रस्त नहीं है। वह भी आगे चलकर क्षय ग्रस्त नहीं होगा, इसकी क्या गारण्टी! सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि नवीन वैज्ञानिक अभीतक न तो इसकी अचूक सफल चिकित्सा ही खोज पाए हैं और न इसके सब कारणोंपर ही एकमत हो पाए हैं। रोकथाम और चिकित्साके साधनोंमें स्वयं सरकार अपने लिए असमर्थ पाती है। पहले इसकी रोकथामकी एक स्कीम अरबों रुपयोंकी बनाई गई थी जिसे हमने तो उसी समय असंभव बताया था, लेख भी लिखे थे। श्रीमती अमृत कौर, तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्राणीका, तथा राष्ट्रपति महोदयका ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया था। पर हमारी अंग्रेजियतकी दासताकी मनोवृत्तिमें सरकार किसी भारतीय विद्वान्की बात सुनना उस समयतक अपनी शानके विरुद्ध समझती है जबतक किसी विदेशीकी छाप उसपर अंकित न की जावे। अस्तु! श्री बेंजामिन साहबने अपने उक्त भाषणमें स्वयं बताया कि धनाभावादि कारणोंसे वह स्कीम कार्यरूपमें परिणत नहीं हो सकी। श्रीमती अमृत कौरने भी यही कहा था कि धनाभावके कारण हम क्षय रोगियोंकी चिकित्साका पूर्ण प्रबंध नहीं कर सकते। एक ओर सरकार आर्थिक समस्याको नहीं सुलझा पाती दूसरी ओर आधुनिक वैज्ञानिक इस रोगकी अचूक चिकित्सा नहीं खोज पाए। एलोपैथीके उच्चकोटिके प्रायः सब ही वैज्ञानिकोंका कहना है कि क्षयरोग यदि एक बार अपना पंजा जमा लेता है तो जान लेकर ही पीछा छोड़ता है। श्री मोलर साहब जो अंग्रेजी कालमें क्षय निवारक सभाके कमिश्नर थे, कहते हैं कि अभीतक एलोपैथीमें किसी ऐसी औषधिका आविष्कार नहीं हुआ जो शरीरके भीतर टी. बी. के कीटाणुओंको मार सके, और रोगीके शरीरको कोई हानि न पहुंचाए। प्रसिद्ध सरकारी संस्था भुवाली सेनेटोरियमके सुपरिन्टेण्डेण्ट डॉ. वज्रेश्वर गोपालने जून, १९४३ की माधुरी पत्रिकामें अपने लेखमें लिखा है—

(१) 'यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि क्षय रोगको अच्छा करनेका कोई भी उपाय अभीतक नहीं निकाला गया है।'

(२) 'आधुनिक विज्ञानके विचारसे रोगीका पूर्ण रूपसे अच्छा होना असंभव है।'

इसी प्रकार एलोपैथीके अन्य प्रामाणिक डाक्टर भी क्षय रोगको लाइलाज बताते हैं। हम अपने अनुभव तथा जो थोड़ी बहुत योग्यता एलोपैथीके विषयमें रखते हैं उसके आधारपर इन डाक्टरोंसे पूर्ण सहमत हैं। इसी कारण हमने सन् १९०४ ई. में टी. बी. की अचूक चिकित्सा खोजनेका प्रण किया था जो प्रभुकी असीम कृपासे सन् १९२९ में

पूरा हुआ जब हम बलपूर्वक जनताको बता सके कि टी. बी. की चिकित्सा और उसकी रोकथाम दोनों ही का वास्तविक उपाय यदि कोई है तो वह विधि-पूर्वक वैदिक हवन यज्ञ है। २५ वर्षके रिसर्च कालमें हमने बिना किसी पक्षपातके अनेकों चिकित्सा विधियोंके परीक्षण इस रोगके संबंधमें किए और अब इन ३२ वर्षोंमें हजारों रोगियोंकी चिकित्सा और जबलपुरके सेनेटोरियममें ८०% रोगियोंको ईश्वर कृपासे लाभ पहुँचानेके पश्चात् भी हमारे मतकी पुष्टि हुई है। जो लोग वेद शास्त्रपर विश्वास और श्रद्धा रखते हैं उन्हें तो हमारी लिखी 'यज्ञ-चिकित्सा' पुस्तकमें दिए वेद शास्त्रके प्रमाणसे ही पूर्ण विश्वास आ जावेगा; और यदि कोई टी. बी. का दुःखी रोगी उनकी जानकारीमें हो तो उसी पुस्तक द्वारा उसकी चिकित्सा करके वह रोगीको जीवनदान देनेका पुण्य और यश कमा सकते हैं। जो भाई प्राचीन सभ्यताकी बातोंपर कोई श्रद्धा नहीं रखते उनसे हम निवेदन करेंगे कि वे हमारी उक्त पुस्तककी समालोचना देहलीके 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसे पत्रमें पढ़ें। वह अपने १३ अप्रेल, १९५३ के अङ्कमें लिखता है।

'इस युगमें जब कि यज्ञादि क्रियाओं परसे विश्वास उठता जा रहा है यज्ञ-चिकित्साको 'क्षय रोगकी प्राकृतिक अचूक चिकित्सा' माननेके लिए संभवतः दस बीस व्यक्ति भी सहमत न हों, किन्तु लेखक द्वारा उपस्थित तथ्यों तथा युक्तियोंमें इतना बल है कि वे शंकाशील तथा अन्यमनस्क पाठकको भी अपनी ओर आकर्षित किए बिना नहीं रह सकती ···' इत्यादि। जो सज्जन इस विषयका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहें वे तो पुस्तक द्वारा ही कर सकते हैं, पर पाठकोंको जानकारीके लिए कुछ वैज्ञानिक विचार यहां भी उपस्थित करते हैं।

(१) सब विद्वान् जानते हैं कि स्थूलकी अपेक्षा सूक्ष्म अधिक शक्तिशाली है तथा सूक्ष्म, स्थूलमें प्रवेश कर सकता है; स्थूल, सूक्ष्ममें नहीं। आटेमें मिली हुई शकरके सूक्ष्म परमाणु पृथक् करनेसे मनुष्यकी स्थूल उँगुलियाँ असमर्थ हैं, पर चींटीका सूक्ष्म मुँह उसे सुगमतासे पृथक् कर सकता है। स्वर्णका एक छोटा टुकड़ा मनुष्य खा ले तो उसपर कोई प्रभाव न होगा; पर उसी टुकड़ेको सूक्ष्म करके वर्क बनाकर खावें तो कुछ शक्ति आवेगी और यदि बहुत सूक्ष्म करके अर्थात् भस्म बनाकर खावें तो पहले ही दिनसे उसकी गर्मी अनुभव होगी और कुछ समयमें चेहरेपर सुर्खी और शरीरमें शक्तिका संचार हो जायगा।

अब विचार कीजिये कि क्षय कीटाणुकी लम्बाई १।१५,००० इंच, और चौड़ाई १।१,५०,००० इंच होती है। इतनी सूक्ष्म चीज पर बड़े कणवाली ओषधियोंकी पँहुच ही दुस्तर है, कीटाणुओंको मारकर उन पर विजय पाना तो दूरकी बात है। जो यज्ञ अग्नि द्वारा छिन्न-भिन्न किया हुआ ओषधियोंका सूक्ष्म भाग क्षय कीटाणुओंको सुगमतासे मार कर रोग दूर कर सकता है।

(२) किसी वस्तुको सूक्ष्म करनेका सबसे बड़ा साधन अग्नि है। परीक्षाके लिए एक लाल मिर्च लीजिए। स्थूल रूपमें उसे एक व्यक्ति सुगमतापूर्वक खा सकता है। खरल-में घोटकर सूक्ष्म करने पर पास बैठे हुए कई व्यक्ति उसके प्रभावको न सह सकेंगे; और यदि उसे आगमें जला दें तो दूर-दूर बैठे लोग भी खाँसने लगेंगे अर्थात् अग्नि द्वारा सूक्ष्म करने पर वस्तुकी शक्ति सबसे अधिक बढ़ जाती है। अतः हवन यज्ञमें प्रयुक्त ओषधियोंके सूक्ष्म कणों द्वारा ही सूक्ष्म कीड़ोंवाला क्षय रोग आरोग्य हो सकता है।

(३) पदार्थ विद्यासे सिद्ध हो चुका है कि किसी वस्तुका नाश नहीं होता, अपितु रूप बदल जाता है। जो ओषधि मुँहसे खाई जाती है वह रस, रक्त बननेके पश्चात् क्षय रोगी-के फेफड़ों तक पँहुचती है; पर अग्निमें जलाई हुई ओषधि श्वास द्वारा सीधी फेफड़ों पर पँहुच कर तत्काल प्रभाव करेगी और बहुत सूक्ष्म होनेके कारण स्थायी प्रभाव करेगी। एक गूगलको ही लीजिए। आयुर्वेदमें इसे अन्य गुणोंके साथ रसायन, बलकारक, टूटेको जोड़नेवाला और कृमि-नाशक बतलाया है। यज्ञसे इसके सूक्ष्म परमाणु श्वास द्वारा सीधे रन्ध्रवाले फेफड़ों पर पँहुचेंगे और अपने गुणके अनु-सार उनको भरेंगे तथा पुष्टि देवेंगे जिससे धीरे-धीरे रोग दूर हो जायगा। घृत और कपूरको क्षत भरनेवाले गुणोंके कारण अनेक मरहमोंमें उनका उपयोग हम नित्य देखते ही हैं। घी कृमिनाशक भी है। इसके अतिरिक्त ये ऐसे विष-युक्त पदार्थ नहीं हैं जो शरीरके बाहर तो कृमियोंका नाश करते हों और भीतर बिना शरीरको हानि पँहुचाए कृमि-

योंको न मार सकते हों; जैसाकि एलोपैथी की सब कृमिनाशक ओषधियोंके संबंधमें डाक्टरोंका मत है कि वे शरीरको हानि पँहुचाए बिना क्षय कृमियोंका नाश नहीं कर सकतीं।

४ पदार्थ विद्यासे सिद्ध हो चुका है कि जो कृमि हमारे शरीरको रोग ग्रस्त करनेकी शक्ति रखते हैं, उन्हें धुंआ नाश कर देता है। इस बातको देखकर कि सब मजातियोंमें रोगोंको दूर करनेका मोटा तरीका लकडी जलाना है, उसमें साइंस द्वारा सत्य देखनेका निश्चय डाक्टर त्रिलेने किया और परीक्षणसे मालूम किया कि लकडी जलानेसे 'फार्मिक आलडीहाइड' नामी एक गैस निकलता है जिसका गुण सब प्रकारके कृमियोंको मार डालना है। यह वस्तु रसायनमें बहुत प्रसिद्ध है। जलके सौ परिमाणोंमें ४० परिमाण इस वायुके मिलाकर 'फार्मेलिन' के नामसे बाजारमें बिकती है। कृमिनाशक होनेके कारण इसका प्रयोग फिनायलकी भाँति मकानोंकी शुद्धि आदिके लिए होता हैं।

पर इसमें उपर्युक्त गुण होने पर भी एक बडा दोष यह है कि बडी बदबूदार होती है। हवनमें समिधा जलानेसे भी धुआँ होता है अतः उसमें भी यह गैस होती है; पर सुगन्धित पदार्थ जलानेसे इसका यह दोष दूर हो जाता है। साथ ही ऐसी ओषधियां जलानेसे जो स्वयं कृमिनाशक और पुष्टिकारक है, उसमें अन्य गुण भी उत्पन्न हो जाते हैं और कृमिनाशक गुण खूब बढ जाता है।

५ परीक्षण करनेके पश्चात् केमिकल सोसाइटीजकी सम्मति इस विषयमें निम्नलिखित प्रकार है—

जायफल, जावित्री, बडी इलायची, सूखा चन्दन इत्यादि अग्निमें जलानेसे इनके उपयोगी भाग ज्योंके त्यों रहते हैं या सूक्ष्म हो जाते हैं। पहले-पहल इनसे सुगन्धित तेल गैस बन कर निकलते हैं। . हवन गैसमें ये चीजें अपने असली रूपसे मिलती हैं।) अग्नि इन चीजोंको गैस बना देती है। उडनेवाले तेलोंके परमाणु १।१०,००० से लेकर १।१०,००,००,००० सेंटीमीटर व्यासवाले तक देखे गए हैं।

अतः हवनमें इन चीजोंके गुण बहुत बढ जाते हैं और वे आसानीसे उन सूक्ष्म क्षय कीटाणुओंका नाश करती हैं जिनकी सूक्ष्मताका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं।

अब तो इस चिकित्साके सिद्धान्तका अनुमोदन सैकडों वर्षोंकी खोज और परीक्षणके पश्चात् आज अमेरिका भी करता है और वहांके प्रसिद्ध डाक्टर इसको क्षयरोगकी सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा बताते हैं। (देखो The Leader, Allahabad, Dated 6 4. 1955, Page 3, Column 5, Heading ' New cure for T. B. of Lungs.')

हम अत्यन्त नम्रभावसे परन्तु बहुत बलपूर्वक अपनी जनताकी सरकारसे निवेदन करते हैं कि जब वह एलोपैथी के अधूरे साधनोंकी पूर्ति करनेमें भी असमर्थ है और दूसरी ओर उसके अपने देशमें ही अपने देशकी ऐसी विधि विद्यमान है जिसके प्रभावसे सब रोगोंके साथ क्षय रोगसे भी हमारा देश बचा रहे तो वह क्यों न रोग रक्षाकी इस अचूक विधिको अपनावें। प्रथम किसी एक सेनेटोरियममें इसके परीक्षण अपनी देखरेखमें विधिपूर्वक कराके अपना विश्वास कर ले।

जनतासे हमारा निवेदन

मेरे जीवनका बडा भाग आयुर्वेदिक प्राकृतिक यज्ञ चिकित्साकी खोज और उसके द्वारा रोगियोंकी सेवामें बीता है। मैं प्रभुको इस देनपर गौरव करता हूँ और अपने जीवनको सफल समझता हूँ। अब मैं अपने जीवनके शेष समय में सन्यासी बनकर यज्ञ और उसका साधन गऊ कृषिके प्रचारमें लगाना चाहता हूँ। कठिन रोगोंके रोगी अपने रोग विषयमें, परोपकारी धनवान यज्ञ चिकित्सालय खुलवा कर अपने चिकित्सकको इस चिकित्सा विधिके लिए ट्रेंड करानेमें और धनवान वैद्य सेनेटोरियम द्वारा धन और पुण्य दोनों कमानेमें, जो सेवा लेना चाहें, ले सकते हैं। वृद्धावस्थाके कारण शरीर क्षीण हो चुका है। साधनोंकी कमीके कारण कार्य भी अधिक है। लोग लंबे पत्र लिख कर स्वयं अपना और मेरा समय नष्ट करते हैं। बहुतसे सज्जन तो पोस्टकार्ड लिखकर लंबे-चौडे प्रश्न कर देते हैं। रोगियोंका इतिहास बारीक कलमसे लिख देते हैं। ऐसे सब सज्जनोंसे निवेदन है कि मैं ऐसा संन्यासी नहीं हूँ जो विश्रामका जीवन बिताने अथवा धनवानोंके यहां बढिया माल खानेको सन्यास लेते हैं। मेरे पास बहुत काम है, फिर भी जिसको मुझसे लाभ पँहुच सकता है; और जो मुझ पर पूर्ण श्रद्धा रखता है उसके लिए मेरे पास पर्याप्त समय और शक्ति है। वह निस्संकोच भावसे मुझसे सेवा ले सकता है। पत्रोत्तरके लिए पतेका लिफाफा साथ भेजें अन्यथा पत्रोत्तरकी प्रतीक्षा न करें।

वेदमें अग्निविज्ञान

(लेखक- श्री अरुणकुमार शर्मा, हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी १ [उ. प्र.])

★

प्राचीन धर्म ग्रन्थोंमें वेद ही सबसे प्रामाणिक समस्त विश्वकी विद्याओंका मूलाधार तथा नाना भ्रान्तियोंका निराकरण करनेवाला है। वेदमें श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठान, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, तथा राजनीतिक विषयोंका सुंदर विवेचन भी शोधसे उपलब्ध होता है। वेदका यथार्थ ज्ञान सम्पादन करनेके पूर्व इसके अंगोंको भली-भांति जान लेना जरूरी है। इसे 'षडङ्ग' कहते हैं। वे हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। इन्हींकी सहायतासे हम वेदार्थको अच्छी तरह समझ सकेंगे।

सम्प्रति हम वेदमें अग्निका महत्व कहां, कैसे, किस प्रकार हैं- उसे देखेंगे? व्यवहारमें पुराणोंके आधार पर जिसे 'विष्णु' कहते हैं- वही 'विष्णु' वेदमें अग्नि नामसे प्रसिद्ध है। यथा-

> ऐतरेय ब्राह्मणमें अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः

इस उदाहरणसे स्पष्ट होता है। इस प्रकार हम देखते हैं वैदिक विष्णु (अग्नि) प्रत्यक्ष खाता, पीता, चमकता, हुआ दृष्टि गोचर होता है। +

विष्णु और अग्निकी व्युत्पत्तियां

हमने 'विष्णु' और 'अग्नि' शब्दोंकी व्युत्पत्तियोंके विषयमें अपने नवीन खोज पूर्ण ग्रन्थ 'वेदोंके शब्द विज्ञान' नामक ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक किया है। यहां हम केवल उक्त दो शब्दों पर किञ्चित् विचार (स्थानाभावके कारण) करेंगे। अस्तु, वैदिक 'विष्णु' (अग्नि) 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'ष्णु' प्रस्रवणार्थमें है। अर्थात् विष्णु (अग्नि) विश्वको चेतना द्वारा उत्पन्न करता है। 'अंगनयति' अर्थात् 'सर्वानुखाङ्गं भावयति'। समस्त पदार्थोंमें अग्नि अंग रूपसे रहता है।

हम देखते हैं कि अग्निको भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाने लगा। लोगोंने उसे नाना रूपोंसे सजाया। समस्त वेदका प्रारम्भ भी 'अग्नि' शब्दसे ही हुआ है। जैसे वेदोंमें मुख्य ऋग्वेदकी प्रथम ऋचा 'अग्निमीळे पुरोहितम्', से प्रारम्भ होती है। पुराणोंमें जो विष्णु है, वह वास्तवमें 'अग्नि' ही है। जिसे लोग 'वराह' 'आदि वाराह' 'यज्ञ वाराह' आदि नामोंसे पुकारते हैं। जिसका वर्णन विष्णु पुराण, वाराह पुराण तथा भागवतके तृतीय स्कन्धमें है। ● अस्तु

भौतिक दृष्टिसे भी यदि देखा जाय तो वराहके मुखमें एक स्वाभाविक अग्निकी विशेषता झलकती है। कभी-कभी ग्रीष्म ऋतुमें वराह जिस घास पुञ्जको सूंघता है, वहां पर अग्नि उत्पन्न हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है, कि इसके मुखमें अग्नि, प्रचुर मात्रामें विद्यमान है। इसकी पुष्टि 'मुखादग्निरजायत' इस वेद वाक्यसे हो जाती है।

वाराहावतारने अपने मुखमें स्थित अग्नि द्वारा जलका शोषण करके धराको ऊपर उठाया, जिस पर सृष्टिका विस्तार हुआ। अतः अग्नि ही सृष्टिका उत्पादक एवं संरक्षक सिद्ध हुआ। 'त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा-- ऋ. वेद. १,३१,१ के अनुसार सृष्टि रचना कालमें पहले अग्नि ही अंगार रूपमें हुआ। यही समस्त प्रजाका कल्याणकारी सत्ता है।

इसीके नियन्त्रणमें जल, कण रूपमें परिवर्तित होकर प्रकाश विस्तारके लिये साधन भूत होता है। अर्थात् विद्युत् शक्ति उत्पन्न होती है। यह बात वैज्ञानिकोंसे भी छिपी नहीं है।

'अग्निर्हि देवानां सेनानी' अर्थात् अग्नि ही देवताओंका सेनापति है। 'अग्रणी' होनेसे 'अग्र' इस नामसे भी प्रसिद्ध है। इसका प्रमाण श. ब्रा. में- स यस्य सर्वस्याग्रेऽसृज्यत इस प्रकार है।

+ भारतीय ज्ञानका मूल स्रोत, लेखक अरुणकुमार शर्मा प्रकाशक ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट) में देखें— पृ. सं. २४२

● विस्तार पूर्वक अवलोकनके लिये— 'वैदिक तत्वज्ञान विमर्श' पृ. ३४२ ले. ए. के. शर्मा

*

ऋग्वेद ५, ११,६, के अनुसार हृदगुहामें स्थित अग्निको अग्नि विद्या विशारद विविध वनस्पतियोंमें प्राप्त करते हैं। वही अग्नि, काष्ठ पाषाणादिकोंमें घर्षणसे उत्पन्न होती है। अद्भुत तेज युक्त इस अग्निको 'तेजस' पुत्र नामसे भी पुकारते हैं। ऋ. वे. १०,४५,१, के अनुसार अग्निकी तीन शाखायें बडी रोचक मालूम पडती है।

पहले अग्नि सूर्य रूपसे आकाशमें प्रादुर्भूत हुआ द्वितीय पार्थिव रूपसे जातवेदस नामसे प्रसिद्ध हुआ जो पृथ्वी पर विद्यमान है। तृतीय जलमें, मानव प्रयोगके लिये विद्युत रूपसे विद्यमान है। इसी अग्निको विविध प्रयोग जन्य शक्तियां वैज्ञानिकोंसे भलीभांति अनुभूत है। कृ. य. वे. तै. ब्रा. के अनुसार सृष्टि विस्तारके लिये तपमें लीन ब्रह्म देवने तीन ज्योतियां उत्पन्न कीं, जिनमें पहली ज्योति अग्नि ही थी। इस दृष्टिसे अग्निका ही महत्व होता है। 'अग्नि मुखा वै देवाः पाणिमुखाः पितर इति ब्राह्मणम्' – अ. पृ. सू. २७।

इसी प्रकार महाभारत, उद्योग पर्वमें– 'मुख त्वमसि देवानाम्' इन दोनों वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि अग्नि ही समस्त देवताओंका मुख है। अर्थात् देवताओंको आहुति (भाग) पहुंचाता है। इसीसे संबंधित पुराणोंमें एक रोचक कथा है– एक समय देवताओंने अग्निको हविर्भाग पहुंचाने वाला सेवक समझ कर उसका उपहास किया। इससे अग्नि देव रुष्ट हो गये। और पूर्णाशसे जलमें छिप गये। उनके छिपते ही संसार अन्धकारमय हो गया। देवताओंमें खल-बली मच गयी। लगे खोजने। आखिर जलसे खोज निकाल लाये उनको।

\+ + +

आजकल इस महत्वपूर्ण अग्निका दुरुपयोग हो रहा है। उपयुक्त प्रकारसे अग्निकी उपासना तथा उपयोग लुप्त प्राय हो रहा है। अग्नि प्रयोग उचित ढंगसे नहीं हो रहा है। जिससे बादल बनते है– वह भाप अशुद्ध इंधनोंसे तैयार हो रही है। वेद तथा पुराणके सिद्धान्तसे यज्ञात्मक अग्निके अतिरिक्त दूषित धुआँ (गैस) प्रकाशमें प्रविष्ट होकर तथा उससे होनेवाले जलकण विशुद्ध सतत्त्व वनस्पतियोंका निर्माण नहीं कर सकते। * परिणामतः तत्त्व रहित वनस्पतियोंके (अन्नादिक) सेवनसे विभिन्न और अज्ञात भयंकर व्याधियोंकी उत्पत्ति हो रही है। जो किसीसे छिपी नहीं है। आज पवित्रतासे गृहस्थों द्वारा किये जानेवाले श्रौतात्मक दर्श, पूर्ण-माससे लेकर वाजपेयादि यज्ञोंका अभाव सा प्रतीत हो रहा है। साथ-साथ गृहकार्योंमें निर्दोष इंधनोंसे उत्पन्न अग्निका भी अभाव है। मशीनोंका युग आगया है। यह भी विशुद्धताका घातक है। एवमेव विज्ञानका विध्वंसात्मक रूप ही मुख्यतः सामने आ रहा है। अग्नि पूजा विमुखों का सम्पर्क दोषास्पद बतलाया गया है। हम आर्योंका प्राचीन संबंध विशेषतः अग्नि पूजकोंसे ही सुदृढ हुआ हुआ है। आर्य संस्कृतियोंने भी अग्निका महत्त्व मान-कर उसकी पूजा स्वीकारकी, यह इतिहास प्रसिद्ध है। आर्य संस्कृतिमें यज्ञोपवीतादि संस्कारोंमें अग्निका ही सर्वो-त्कृष्ट महत्त्व दृष्टिगोचार होता है। ब्रह्मचारी बटुक प्रतिदिन सायं एवं प्रातः हवन करके उपस्थान द्वारा अग्नि देवसे 'मयि मेधाम्' इत्यादि वाक्योंसे अग्निकी प्रार्थना करता था। तथा उसमें तेज, बल, बुद्धिकी याचना करता था। प्रातः सायं आँखोंमें घृत तण्डुलादि आहुतियोंके धुएँके लगनेसे तेजकी वृद्धि होती थी। विवादमें भी अत्यन्त वित्र चिर-स्थायी पतिपत्नीके संबंधक साक्षी अग्नि ही है। विशेषतः सुवर्णादि धातुओंकी परीक्षा भी अग्निमें ही होती है।

अग्नि ही अज्ञान तथा अन्धकार नष्ट कर, तेज सुख, प्रकाश, तथा श्वेतत्वादि गुणोंको प्रकाशित करता है। आर्यों के परम इष्ट देव अग्नि संबंधी जानकारी तथा इनका उप-योग जानना नितान्त आवश्यक है।

इसी प्रकार जातवेद तथा वैश्वानर अग्नि कलाओं तथा ज्वालाओंका रूप-रंग तथा उनका गुण धर्म जो बडे वैज्ञा-निक ढंगसे वेदमें विस्तार पूर्वक वर्णित है। वह बहुजन हिताय बहुजनसुखाय है। अग्नि कणोंसे प्रलय तथा शान्ति दोनों सम्भव है। अस्तु विस्तार भयसे हम अपने लेखको यहीं समाप्त कर रहे हैं। तथापि इन वेद विज्ञान पर आज कल हम गम्भीरता पूर्वक खोज एवं शोध कार्य कर रहे हैं सम्भव है इसी प्रकार अपने पाठकोंके समक्ष अतीतमें विलीन भारतीय प्राचीन विद्याओंको रखनेका प्रयत्न करें।

---

* अग्नि विद्या रहस्य पृ. १२. लेखक– अरुण कुमार शर्मा O. E. R. Unit.

और दीनतासे रहित हों, तथा (भूयश्च शरदः शतात्) सौ वर्षसे अधिक भी देखें, जिएं, सुनें, बोलें और दीनतासे रहित रहें ॥ १४३ ॥

सौ वर्षोंसे अधिक भी आयु हो और उस दीर्घ आयुमें हमारे सब इन्द्रिय अच्छो प्रकार कार्य करते रहें। किसी अवयवमें किसी तरहकी न्यूनता उत्पन्न न हो।

दधीच. । महावीरः । आर्षी उष्णिक् ।

१४४ दृते दृ꣡ꣳह मा꣡ ।
ज्योक्ते꣡ सन्दृशि꣡ जीव्यासं ।
ज्योक्ते꣡ सन्दृशि꣡ जीव्यासम् । यजु. ३६।१९

हे (दृते) पापनाशक ईश्वर ! (मा दृंह) मुझे दृढ कर । मैं (ते सन्दृशि) तेरे निरीक्षणमें (ज्योक् जीव्यासं) चिरकाल तक जीवित रहूं ॥ १४४ ॥

शरीर सुदृढ रहा तो दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकता है ।

दधीचः । पृथिवी । भुरिक्प्राजापत्यानुष्टुप् ।

१४५ अना꣡धृष्टा पु꣡रस्ता꣡दग्नेरा꣡धिपत्य꣡ आयु꣡र्मे दाः ॥
यजु. ३७।१२

हे पृथिवी ! तू (अनाधृष्टा) किसीके द्वारा हिंसित नहीं की जा सकती, तू (आधिपत्ये मे) तेरे स्वामित्वमें रहनेवाले मुझे (पुरस्तात्) आगेकी दिशासे (आयुः दाः) दीर्घायु प्रदान कर ॥ १४५ ॥

इस पृथिवी परके जीवनमें मुझे दीर्घ आयु प्राप्त हो ।

दधीचः । धर्मः । महाबृहती ।

१४६ च꣡तुःस्रक्ति꣡र्नाभि꣡र्ऋ꣡तस्य꣡ स꣡प्रथाः꣡ स नो꣡
वि꣡श्वायुः꣡ स꣡प्रथाः꣡ स नः꣡ स꣡र्वायुः꣡ स꣡प्रथाः꣡ ॥
यजु. ३८।२०

(चतुःस्रक्तिः सप्रथाः ऋतस्य नाभिः) चारों दिशाओंमें विख्यात यशवाला तथा यज्ञका केन्द्र (सः) वह धर्म (नः) हमें (विश्वायुः सर्वायुः सप्रथाः) सम्पूर्ण आयुवाला तथा विस्तृत यशवाला करे ॥ १४६ ॥

हम यज्ञ प्राप्त करें, यज्ञ करते रहें और पूर्ण आयुका उपभोग करें ।

अथर्ववेद- मंत्राः

अथर्वा । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

१४७ न꣡म꣡स्ते राजन्वरुणास्तु म꣡न्यवे꣡
वि꣡श्वं꣡ ह्युग्र नि꣡चि꣡केषि꣡ द्रुग्धम् ।
स꣡हस्र꣡म꣡न्यान्प्र꣡ सुवामि꣡ सा꣡कं
श꣡तं जीवाति꣡ श꣡रद꣡स्तवा꣡यम् ॥
अथर्व १।१०।२

हे राजन् वरुण ! (ते मन्यवे नमः अस्तु) तेरे उत्साहको नमस्कार होवे, हे (उग्र) प्रचण्ड ईश्वर ! तू (विश्वं द्रुग्धं) सब द्रोहादि पापोंको (निचिकेषि) ठीक प्रकार जानता है। (सहस्रं अन्यान्) हजारों अन्योंको (साकं) साथ साथ मैं (प्रसुवामि) प्रेरणा करता हूं, (अयं) यह मनुष्य (तव) तेरा बनकर ही (शतं शरदः) सौ वर्ष (जीवाति) जीता रह सकता है ॥ १४७ ॥

१ मन्युः— क्रोध, उत्साह, धैर्य । ते मन्यवे नमः— तेरे उत्साहको मेरा प्रणाम है ।

२ अयं तव— यह मनुष्य तेरा बनकर रहे । परमेश्वरका मित्र बनकर रहे और (शरदः शतं जीवाति) सौ वर्ष जीवित रहे । ईश्वरकी उपासना करनेसे आयु बढती है ।

अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१४८ शा꣡स इ꣡त्था म꣡हाँ अ꣡स्यमित्रसा꣡हो अ꣡स्तृतः ।
न य꣡स्य꣡ ह꣡न्यते꣡ स꣡खा न जी꣡यते꣡ क꣡दाच꣡न ॥
अथर्व १।२०।४

(इत्था महान् शासः) इस प्रकार सत्य और महान् शासक ईश्वर (अ-मित्र-साहः अ-स्तृतः असि) शत्रुका पराजय करनेवाला और कभी न हारनेवाला है। (यस्य सखा कदाचन न हन्यते) जिसका मित्र कभी भी नहीं मारा जाता और (न जीयते) न पराजित होता है ॥ १४८ ॥

परमेश्वरका मित्र बनकर रहनेका अर्थ निष्पाप होकर रहना है । इस तरह निष्पाप बनकर रहनेसे जल्दी मृत्यु नहीं होती अर्थात् दीर्घ आयु होती है और उसका पराभव भी नहीं होता । अर्थात् उसको जीवनमें विजय मिलता रहता है ।

अथर्वा (आयुष्कामः) । वसवः आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

१४९ विश्वे देवा वसवो रक्षतेमं
उतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिः
मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥

अथर्व. १।३०।१

हे (विश्वे-देवाः) सब देवो, हे ! (वसवः) वसु-देवो ! (इमं रक्षत) इसकी रक्षा करो, (उत) और (आदित्याः) हे आदित्यो ! (यूयं अस्मिन् जागृत) तुम इसमें जागते रहो, (इमं) इस पुरुष पर (सनाभिः) अपने बन्धुका (उत वा अन्यनाभिः) अथवा किसी दूसरेका (वधः मा प्रापत्) शस्त्र न प्रहार करे तथा (यः पौरुषेयः वधः) जो पुरुषके प्रयत्नसे होनेवाला वध है, वह भी (इमं मा प्रापत्) इसको प्राप्त न हो ॥ १४९ ॥

इस पुरुषका किसीके शस्त्रसे वध न हो । सब देव इसके शरीरमें जाग्रत रहें । मानव शरीरमें देव रहते हैं वे सदा जाग्रत रहें और इसकी सुरक्षा करें । आंखमें सूर्य, नाकमें वायु, मुखमें अग्नि, हृदयमें चन्द्रमा ऐसे सब देव मानव शरीरमें अंश रूपसे रहते हैं । वे सदा जाग्रत रहकर इस मनुष्यको दीर्घायु करें ।

अथर्वा (आयुष्कामः) । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१५० ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः
सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं
स्वस्त्येनं जरसे वहाथ ॥ अथर्व १।३०।२

हे (देवाः) देवो ! (ये वः पितरः) जो आपके पिता हैं, तथा (च ये पुत्राः) जो पुत्र हैं, वे सब (स-चेतसः) सावधान होकर (मे इदं उक्तं शृणुत) मेरा यह कथन श्रवण करें, (सर्वेभ्यो वः एतं परि ददामि) सब आपकी निगरानीमें इसको मैं रखता हूं, (एनं जरसे स्वस्ति वहाथ) इसको वृद्ध आयु तक सुखपूर्वक पहुंचा दो ॥ १५० ॥

इस मनुष्यको वृद्धावस्था तक आरोग्यके साथ पहुंचाओ। यह रोगरहित रहे और वृद्धावस्थाको प्राप्त करे ।

अथर्वा । विश्वेदेवाः । शाक्वरगर्भा विराड् जगती ।

१५१ ये देवा दिविष्ठ ये पृथिव्यां
ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै
शतमन्यान्परि वृणक्तु मृत्यून् ॥

अथर्व १।३०।३

(ये देवाः दिवि स्थ) जो देव द्युलोकमें हैं, (ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्षे) जो पृथ्वीमें और अन्तरिक्षमें हैं, और जो (ओषधीषु पशुषु अप्सु अन्तः) औषधि, पशु और जलोंके अन्दर हैं (ते अस्मै जरसं आयुः कृणुत) वे इसके लिए वृद्धावस्थावाली दीर्घायु करें । यह पुरुष (शतं अन्यान् मृत्यून् परिवृणक्तु) सैंकडों अन्य अप मृत्युओंको हटा देवे ॥ १५१ ॥

अपमृत्युको हटाना, दीर्घ आयुको प्राप्त करना यह यहां करना चाहिये, इस कार्यके लिये द्युलोकमें सूर्य आदि हैं, पृथिवी पर जल, अन्न, वायु आदि हैं और औषधियां हैं । इनका योग्य रीतिसे उपयोग करना चाहिये । इससे मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है । इसीके लिये सूर्य किरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, औषधि चिकित्सा आदि अनेक साधन हैं, जिनके योग्य उपयोगसे मनुष्य अपमृत्युको हटा-कर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है ।

अथर्वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

१५२ येषां प्रयाजा उत वानुयाजा
हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्ताः
तान्वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि

अथर्व. १।३०।४

(येषां) जिन तुम्हारे अन्दर (प्रयाजाः) विशेष यजन करनेवाले (उत वा अनुयाजाः) अथवा अनुकूल यजन करनेवाले तथा (हुत-भागाः अहुतादः च देवाः) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन न किया हुआ खानेवाले जो देव हैं (येषां वः पंचः प्रदिशः विभक्ताः) जिन आपकी ही पांच दिशाएं विभक्त की गई हैं, (तान् वः) उन तुमको (अस्मै) इस पुरुषकी दीर्घायुके लिए (सत्र-सदः कृणोमि) सदस्य करता हूं ॥ १५२ ॥

विशेष यजन करनेवाले, अनुकूल यजन करनेवाले, हवनका भाग लेनेवाले जो देव हैं, वे सब देव मनुष्यकी आयु बढावें।

अथर्वा। हिरण्यम्। जगती।

१५३ यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं
शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ अथर्व. १।३५।१

(सुमनस्यमानाः दाक्षायाणाः) शुभ मनवाले और बलकी वृद्धि करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष (शत-अनीकाय) सेनाके सौ विभागोंके संचालकके लिए (यत् हिरण्यं अबध्नन्) जो सुवर्ण बांधते रहे, (तत्) वह सुवर्ण (आयुषे वर्चसे) आयु तेज (बलाय) बल और (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिए (ते बध्नामि) तेरे ऊपर बांधता हूं ॥ १५३ ॥

तेजस्विता, बल, नीरोगिता और सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करनेकी इच्छा हो, तो शरीर पर सुवर्ण धारण करना चाहिये।

अथर्वा। हिरण्यम्। जगती।

१५४ नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते
देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं
स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥
अथर्व. १।३५।२

(न रक्षांसि न पिशाचाः) न राक्षस और न पिशाच (एनं सहन्ते) इस सुवर्णको सह सकते हैं, (हि) क्योंकि (एतत् देवानां प्रथमजं ओजः) यह सुवर्ण देवोंका उत्तमसे उत्तम सामर्थ्य है, (यः दाक्षायणं हिरण्यं बिभर्ति) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है, (सः जीवेषु दीर्घं आयुः कृणुते) वह जीवोंमें अपनी आयु दीर्घ करता है ॥ १५४ ॥

सुवर्णको शरीर पर धारण करनेसे मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है।

अथर्वा। चन्द्रमा। (जंगिडः)। विराट् प्रस्तारपंक्तिः।

१५५ दीर्घायुत्वाय बृहते रणाय
अरिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥
अथर्व. २।४।१

(दीर्घायुत्वाय) दीर्घायु प्राप्तिके लिए तथा (बृहते रणाय) बडे आनन्दके लिए (वि-स्कन्ध-दूषणं) शोषक रोगको दूर करनेवाले (जंगिडं मणिं) जंगिड मणिको (अ-रिष्यन्तः दक्षमाणाः वयं) न सडनेवाले अपितु बलको बढानेवाले हम सब (बिभृमः) धारण करते हैं ॥ १५५ ॥

अथर्वा। जंगिडः। अनुष्टुप्।

१५६ कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।
अथो सहस्वान् जंगिडः
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ अथर्व. २।४।६

(अयं मणिः) यह मणि (कृत्या-दूषिः) हिंसासे बचानेवाला (अथो) और (अ-राति-दूषिः) शत्रुभूत रोगोंको दूर करनेवाला है, (अथो) ऐसा यह (सहस्वान् जंगिडः) बलवान् जंगिडमणि (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुको बढावे।

औषधियोंके रसोंसे यह गुटिका बनायी जाती है। यह शरीर पर धारण करनेसे अनेक रोग दूर होते हैं ॥ १५६ ॥

अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१५७ आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो
घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं
पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥
अथर्व. २।१३।१

हे (अग्ने अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! तू (आयुः दा) जीवनका दाता (जरसं वृणानः) स्तुतिको स्वीकार करनेवाला, (घृत-प्रतीकः) घृतके समान तेजस्वी और (घृत-पृष्ठः) घीका सेवन करनेवाला है, अतः (मधु चारु गव्यं घृतं पीत्वा) मीठा सुन्दर गायका घी पीकर (पिता पुत्रान्) पिता पुत्रोंकी रक्षा करनेके समान तू (इमं अभिरक्षतात्) इसकी सब ओरसे रक्षा कर ॥ १५७ ॥

अग्निमें गायका घी हवन करनेसे वह यजन दीर्घ जीवन देनेवाला होता है।

अथर्वा। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।

१५८ परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं
जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्
सोमाय राज्ञे परिधातवा उ॥

अथर्व. २।१३।२

(नः इमं) हमारे इस पुरुषको (परिधत्त) चारों ओरसे धारण कराओ, (वर्चसा धत्त) तेजसे युक्त करो, इसकी (दीर्घ आयुः जरामृत्युं कृणुत) दीर्घ आयु तथा वृद्धावस्थाके पश्चात् मृत्यु हो, (बृहस्पतिः एतत् वासः) बृहस्पतिने यह कपडा (सोमाय राज्ञे परिधातवै) सोम राजाको पहननेके लिए (उ प्रायच्छत्) निश्चयसे दिया है॥ १५८॥

मनुष्य तेजस्वी बने, अच्छे कपडे धारण करे। दीर्घायु प्राप्त करे और जरावस्थाके पश्चात् मृत्यु आ जाय, इसके लिये यत्न करे। वृद्धावस्थासे पूर्व मृत्यु न आ जाय इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

अथर्वा। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।

१५९ परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये
अभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूची
रायश्च पोषमुप संव्ययस्व॥ अथर्व. २।१३।३

(इदं वासः स्वस्तये परि अधिथाः) यह वस्त्र अपने कल्याणके लिए धारण कर, (गृष्टीनां अभि शस्तिपाः उ अभूः) तू मनुष्योंको विनाशसे बचानेवाला निश्चयसे हुआ है, इस प्रकार (पुरुचीः शरदः शतं च जीव) पूर्ण सौ वर्ष तक जी, और (रायस्पोषं च उप सं व्ययस्व) धन और पोषण प्राप्त कर॥ १५९॥

मानवोंके कल्याणका कार्य करते रहना चाहिये। उत्तम कपडे पहनने चाहिये। पूर्ण सौ वर्ष जीवित रहनेका यत्न करना चाहिये। धन प्राप्त करके अपना उत्तम पोषण करना चाहिये।

अथर्वा। विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्।

१६० एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्॥

अथर्व. २।१३।४

(एहि अश्मानं आ तिष्ठ) आ शिला पर चढ (ते तनूः अश्मा भवतु) तेरा शरीर पत्थर जैसा दृढ बने, (विश्वे देवाः) सब देव (ते आयुः शरदः शतं कृण्वन्तु) तेरी आयु सौ वर्षकी करें॥ १६०॥

पत्थरके समान सुदृढ शरीर बनाना चाहिये। कमजोरीको दूर करना चाहिये और सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त करनी चाहिये। व्यायाम करनेसे शरीर सुदृढ होता है।

अथर्वा। अग्निः सूर्यः बृहस्पतिः। अनुष्टुप्।

१६१ पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो बले।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो
वर्च आ धाद् बृहस्पतिः॥ अथर्व. २।२९।१

हे (देवाः) देवो! अग्नि, सूर्य और बृहस्पति (अस्मै) इस मनुष्यको (पार्थिवस्य तन्वः भगस्य) पार्थिव शरीरके ऐश्वर्य सम्बन्धी (रसे बले) रस और बलको प्राप्त कराके (आयुष्यं वर्चः) दीर्घायुष्य और तेज (आ धात्) देवें॥ १६१॥

इस पार्थिव शरीरके ऐश्वर्यको प्राप्त करके तथा रस सेवनसे बल प्राप्त करके तेजस्वी दीर्घायुष्य प्राप्त करना योग्य है।

अथर्वा। जातवेदाः, सविता। त्रिष्टुप्।

१६२ आयुरस्मै धेहि जातवेदः
प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै
शतं जीवाति शरदस्तवायम्॥ अथ. २।२९।२

हे (जातवेदः) हे ज्ञान देनेवाले देव! (अस्मै आयुः धेहि) इसको दीर्घ आयु दो, हे (त्वष्टः) रचना करनेवाले देव! (अस्मै प्रजां अधि नि धेहि) इसको प्रजा दो, हे (सवितः) प्रेरक देव! (अस्मै रायः पोषं आसुव) इसके लिए धन और पुष्टि दो, (तव अयं शतं शरदः जीवाति) तेरा बनकर यह सौ वर्ष जीवित रहे॥ १६२॥

दीर्घ आयु, सुप्रजा, धन और पोषण प्राप्त करके सौ वर्ष जीवित रहना योग्य है ।

अथर्वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१६३ इन्द्रं एतां संसृजे विद्धो अग्रं
ऊर्जां स्वधामजरां सा तं एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा
मा त आ सुस्रोद्भिषजस्ते अक्रन् ॥

अथ. २।२९।७

(विद्धः इन्द्रः) भक्ति किया हुआ प्रभु (एतां अजरां ऊर्जां स्वधां अग्रं ससृजे) इस अक्षीण अन्न युक्त सुधाको उत्पन्न करता है, देता है, (सा एषा ते) वह यह सब तेरे लिए ही है, (तया त्वं सुवर्चाः शरदः जीव) इसके द्वारा तू उत्तम तेजस्वी बनकर बहुत वर्ष जीवित रह (ते मा आसुस्रोत्) तेरे लिए ऐश्वर्य न घटे, (ते भिषजः अक्रन्) तेरे लिए वैद्योंने उत्तम योग्य रस बनाए हैं ॥ १६३ ॥

वृद्धावस्था जल्दी न करनेवाला और तेजस्विता बढानेवाला सुधा रस वैद्य तैयार करते हैं, इसके सेवनसे शरीर उत्तम तेजस्वी होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। मनुष्य इसका सेवन करें और दीर्घायु हों ।

अथर्वा । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१६४ सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्
इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ अथ. ३।५।४

(इन्द्रेण दत्तः) इन्द्रके द्वारा दिया हुआ, (वरुणेन शिष्टः) वरुण द्वारा अच्छी तरह बनाया गया (सोमस्य पर्णः) सोमका यह पर्णमणि (उग्रं सह आ आगन्) उग्र बलसे युक्त होकर प्राप्त हुआ है, (तं) उस मणिके लिए (बहु रोचमानः) बहुत तेजस्वी मैं (दीर्घायुत्वाय शतशारदाय) दीर्घ आयुके लिए और सौ वर्ष जीनेके लिए (प्रियासं) प्रिय करूं ॥ १६४ ॥

सोमके पत्तोंका यह पर्ण मणि बनाया जाता है । इसके धारण करनेसे सौ वर्षकी आयु आनंदसे प्राप्त होती है ।

अथर्वा । शंखमणिः । अनुष्टुप् ।

१६५ दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख
आयुष्प्रतरणो मणिः ॥ अथ. ४।१०।४

(दिवि जातः) द्युलोकमें हुआ (समुद्रजः) समुद्रसे जन्मा अथवा (सिन्धुतः परि आभृतः) नदियोंसे इकट्ठा किया हुआ यह (हिरण्यजाः शंखः) सोनेके समान चमकनेवाला शंख है, (सः मणिः नः आयुः प्रतरणः) वह मणि हमारी आयुको बढानेवाला हो ॥ १६५

शंखका मणि धारण करनेसे आयुकी वृद्धि होती है ।

अथर्वा । कृशनः । पंचपदा परानुष्टुप् शक्वरी ।

१६६ देवानामस्थि कृशनं बभूव
तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे
बलाय दीर्घायुत्वाय
शतशारदाय कार्शनस्त्वाभिरक्षतु ॥

अथ. ४।१०।७

(देवानां अस्थि कृशनं बभूव) देवोंका अस्थिरूप श्वेत तेज ही सुवर्ण या मोतीके सदृश बना है । (तत् आत्मन्वत् अप्सु अन्तः चरति) वह आत्माकी सत्तासे युक्त होता हुआ जलोंमें विचरता है, (तत् ते) वह तेरे ऊपर (वर्चसे, बलाय, आयुषे, दीर्घायुत्वाय, शतशारदाय) तेज, बल, आयुष्य, दीर्घायुष्य, सौ वर्षोंवाला दीर्घायुष्य प्राप्त होनेके लिए (बध्नामि) बांधता हूं, (अयं कार्शनः त्वा अभि रक्षतु) यह शंखमणि तेरा पूर्ण रक्षण करे ॥ १६६ ॥

कृशन मणि सुवर्ण या मोतीके सदृश है । इसके धारण करनेसे तेज, बल, और आयु बढती है ।

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः । त्रिष्टुप् ।

१६७ नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीणि
अयसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥

अथ. ५।२८।१

(शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षवाले दीर्घ जीवनके लिए (नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते) नौ प्राणोंको नौ इन्द्रियोंके साथ समानतासे मिलाता है, (हरिते त्रीणि, रजते त्रीणि, अयसि त्रीणि सोनेके तीन, चांदीके तीन, लोहेके तीन (तपसा आविष्ठितानि) तपसे विशेष प्रकारसे स्थित हैं ॥ १६७ ॥

सुवर्णके तीन, चांदीके तीन, और लोहेके तीन ऐसे नौ मणि करके धारण करनेसे सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः । पंचपदातिशक्वरी ।

१६८ त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यं
अग्नेरेकं प्रियतमं बभूव
सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुः
स्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥

अथ. ५।२८।६

(इदं हिरण्यं जन्मना त्रेधा जातं) यह सोना जन्मसे ही तीन प्रकारसे उत्पन्न हुआ, इनमेंसे (एकं अग्नेः प्रियतमं बभूव) एक अग्निको अति प्रिय हुआ, (एकं हिंसितस्य सोमस्य परापतत्) दूसरा निचोडे सोमसे बाहर निकलता है, (एकं वधसां अपां रेतः आहुः) तीसरा सारभूत जलका वीर्य है, ऐसा कहते हैं, (तत् त्रिवृत् हिरण्यं) वह तिहरा सुवर्ण (ते आयुषे अस्तु) तेरी दीर्घ आयुके लिए होवे ॥ १६८ ॥

अग्निमें तपाया सुवर्ण मणि, सोमरससे सिद्ध किया सुवर्ण मणि और तीसरा जलसे सिद्ध किया सुवर्ण मणि, ये तीन मणि धारण करनेसे आयु बढती है । सोमरसमें उबालनेसे एक प्रकारका विशेष गुण सुवर्णमें आता है। इस प्रकार जलोंमें तप्त सुवर्ण डुबानेसे सुवर्ण सिद्ध होता है। इनके धारण करनेसे दीर्घायु मिलती है।

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः । ककुम्मत्यनुष्टुप् ।

१६९ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥

अथ. ५।२८।७

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) जमदग्निकी तिहरी आयु (कश्यपस्य त्र्यायुषं) कश्यपकी तिगुनी आयु, यह (अमृतस्य त्रेधा चक्षणं) अमृतका तीन प्रकारका दर्शन है । इससे (ते त्रीणि आयूंषि अकरं) तेरे लिए तीन आयुष्योंको करता हूं ॥ १६९ ॥

भावार्थ— जमदग्नि और कश्यपकी बाल, तरुण और वृद्ध अवस्थामें व्यापनेवाली तिगुनी आयु मानों अमृतका साक्षात्कार करनेवाली है, यह तीन प्रकारकी आयु हमें प्राप्त होवे।

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः । त्रिष्टुप् ।

१७० त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्
एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकं
अन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥

अथ. ५।२८।८

(यत् शक्राः त्रयः सु-पर्णाः) जब सामर्थ्य बढानेवाले तीन सुपर्ण (त्रिवृता एकाक्षरं अभि संभूय आयन्) तिहरे होकर एक अक्षरमें सब प्रकार मिलकर रह रहे हैं, वे (अमृतेन साकं विश्वा दुरितानि अन्तर्दधानाः) अमृतके साथ सब अनिष्टोंको मिटाकर (मृत्युं प्रति औहन्) मौतको दूर करते हैं ॥ १७० ॥

' सुपर्ण ' उत्तम पत्तोंवाला कमल है। ' अमृत ' वाराही कंद है। ' अक्षर ' अपामार्ग है। इनका पाक तैयार करके खानेसे आयु दीर्घ होती है। वैद्योंको इसका संशोधन करके निश्चय करना चाहिये कि इन पदोंसे किन वस्तुओंका बोध होता है और इसके बनानेकी विधि क्या है।

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः । पुरउष्णिक् ।

१७१ ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥

अथ. ५।२८।१३

(आयुषे वर्चसे त्वा) आयुष्य और तेजके लिए तुझे (ऋतुभिः आर्तवैः) ऋतुओं और ऋतु विभागोंसे और (संवत्सरस्य तेन तेजसा) संवत्सरके उस तेजसे (संहनु कृण्मसि) संयुक्त करता हूं ॥ १७१ ॥

दीर्घायु और तेजस्विताके लिये ऋतुओंके अनुकूल जैसा जिस ऋतुमें योग्य हो, वैसा उस ऋतुमें आचरण करना चाहिये और संवत्सरको अपने अनुकूल करना चाहिये ।

अथर्वा । इन्द्रः । भुरिक् ।

१७२ इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद्वशी ।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥

अथ. ६।५।२

हे इन्द्र (इमं प्रतरं कृधि) इस मनुष्यको ऊंचा कर, यह मनुष्य (सजातानां वशी असत्) स्वजातिके मनुष्योंके बीच सबको वशमें करनेवाला होवे, (रायस्पोषेण संसृज) इसे धन और पुष्टि उत्तम प्रकारसे प्राप्त हो, और (जीवातवे जरसे नय) दीर्घ जीवनके लिए बुढापे तक सुखपूर्वक ले जा ॥ १७२ ॥

आचरण उच्च श्रेणीका होना चाहिये। स्वजातियोंमें सबको वशमें रखनेवाला हो, धन और पोषण प्राप्त करे सुख पूर्वक दीर्घ जीवन प्राप्त करके वृद्ध अवस्था तक पहुंचे।

अथर्वा । वैश्वानरः । त्रिष्टुप् ।

१७३ वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं
शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ।

अथ. ६।६२।३

(शुचयः शुद्धाः पावकाः भवन्तः) शुद्ध पवित्र तथा दूसरोंको पवित्र करनेवाले होकर (वैश्वानरीं वर्चसे आ रभध्वं) सब मनुष्योंकी ईश्वरस्तुति रूप वाणीको तेजस्विताके लिए बोलना आरम्भ करो, (इह इडया सधमादं मदन्तः) यहां स्तुतिरूप वाणीसे साथ साथ आनन्दित होते हुए हम (ज्योक् उच्चरन्तं सूर्यं पश्येम) चिरकाल तक उदय होते हुए सूर्यको देखते रहें ॥ १७३ ॥

हम अन्तर्बाह्य शुद्ध हों, साथ वालोंको पवित्र बनावें, शुभ वाणी बोलें, और सब मिलकर आनन्दित होते हुए दीर्घायुष्यको प्राप्त करें ।

अथर्वा । प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

१७४ चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ।

अथ. ६।६८।२

(दीर्घायुत्वाय चक्षसे) दीर्घायु और उत्तम दृष्टिके लिए (प्रजापतिः चिकित्सतु) प्रजापालक इसकी चिकित्सा करे ॥ १७४ ॥

'प्रजापति' राजा है, और वैद्य भी है। दीर्घ आयुके लिये राजा राष्ट्रमें उत्तम प्रबंध करे और वैद्य सहयोग दे। ये दोनों प्रजाको दीर्घायु प्राप्त होने योग्य प्रबंध करें ।

अथर्वा । शंखमणिः । पथ्यापंक्तिः ।

१७५ हिरण्यानामेकोऽसि सोमात्त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनः
त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥

अथर्व. ४।१०।६

(हिरण्यानां एकः असि) तू सोने जैसे चमकनेवालोंमें एक है, (त्वं सोमात् अधि जज्ञिषे) तू सोमसे उत्पन्न हुआ है, (त्वं रथे दर्शतः) तू रथमें दिखाई देता है, (त्वं इषुधौ रोचनः) तू तूणीरमें चमकता है, (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओंको बढा ॥ १७५ ॥

अथर्वा । त्वष्टा । अनुष्टुप् ।

१७६ त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥

अथर्व. ६।७८।३

(त्वष्टा जायां अजनयत्) जगद्रचयिता देवने स्त्रीको उत्पन्न किया, और (त्वष्टा अस्यै त्वां पतिं) उसी ईश्वरने इसके लिए तुझ पतिको उत्पन्न किया, (त्वष्टा वां सहस्रं आयूंषि) रचयिता ईश्वर तुम दोनोंको हजारों सुखोंको देनेवाली (दीर्घं आयुः कृणोतु) दीर्घ आयु प्रदान करे ॥ १७६ ॥

परमेश्वर उपासकोंको दीर्घ आयु प्रदान करे ।

अथर्वा । पिप्पली । अनुष्टुप् ।

१७७ पिप्पली क्षिप्तभेषज्यु३तातिविद्धभेषजी ।
तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥

अथर्व. ६।१०९।१

(पिप्पली क्षिप्त-भेषजी) पिप्पली उन्माद रोगकी औषधि है, (उत अतिविद्ध-भेषजी) और महाव्याधिकी औषधि है (देवाः तां समकल्पयन्) देवोंने उसको

समर्थ बनाया है कि (इयं जीवितवै अलम्) यह दीर्घ जीवनके लिए पर्याप्त है ॥ १७७ ॥

पिप्पलीके सेवन करनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

अथर्वा । पिप्पली । अनुष्टुप् ।

१७८ पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥
अथर्व ६।१०९।२

(जननात् अधि आयतीः) जन्मसे आती हुई (पिप्पल्यः समवदन्त) पिप्पली औषधियां बोलती हैं कि हमको (यं जीवं अश्नवामहै) जिस जीवको खिलाया जावे, (सः पुरुषः न रिष्याति) वह दुःख मरता नहीं ॥ १७८ ॥

पिप्पली खानेसे मनुष्य दीर्घ जीवन प्राप्त करता है।

अथर्वा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

१७९ यदग्ने तपसा तप उप तप्यामहे तपः ।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥
अथ. ७।६१।१

हे अग्ने ! (तपसा यत् तपः) तपसे जो तप किया जाता है उस (तपः उप तप्यामहे) तपको हम करते हैं, उससे हम (श्रुतस्य प्रियाः) ज्ञानके प्रिय (आयुष्मन्तः सुमेधसः) दीर्घायुषी और उत्तम बुद्धिमान् (भूयास्म) होवें ॥ १७९ ॥

तप करनेसे मनुष्य दीर्घ आयु और उत्तम बुद्धिमान् हो सकता है । शीतोष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहना तप है।

अथर्वा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

१८० अग्ने तपस्तप्यामहे उप तप्यामहे तपः ।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥
अथर्व. ७।६१।२

हे अग्ने ! (तपः तप्यामहे) हम तप करते हैं, और (तपः उप तप्यामहे) तप विशेष रीतिसे करते हैं, (वयं श्रुतानि शृण्वन्तः) हम ज्ञानोपदेश सुनते हुए (आयुष्मन्तः सुमेधसः) दीर्घायुवाले और उत्तम बुद्धिवाले हों ॥ १८० ॥

अथर्वा । वरणमणिः । अनुष्टुप् ।

१८१ इमं बिभर्मि वरणमायुष्मांच्छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ।
अथर्व १०।३।१२

(इमं वरणं बिभर्मि) इस वरण मणिको मैं धारण करता हूँ, जिससे मैं (आयुष्मान् शतशारदः) दीर्घायु और शतायु होऊँ (सः मे राष्ट्रं क्षत्रं च) वह मेरे राष्ट्र और क्षात्र शक्तिको तथा (मे पशून् ओजः च दधत्) मेरे पशुओं और ओजको धारण करे अर्थात् बढावे ॥१८१॥

वरण मणिको शरीरपर धारण करनेसे आयु दीर्घ होती है । वरण मणि कैसे निर्माण करते हैं इसका संशोधन होना चाहिये।

अथर्वा । भूमिः । पराविराट् ।

१८२ उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ अथर्व. १२।१।६२

हे पृथिवि ! (ते प्रसूताः) तुम्हारेसे उत्पन्न सब लोग (अनमीवाः) रोगरहित (अयक्ष्माः) क्षय रोग रहित, (अस्मभ्यं उपस्थाः) हमारे पास रहनेवाले (सन्तु) हों, (नः आयुः दीर्घं) हमारी उमर बडी हो, हम बहुत दिन जीवें, (वयं प्रतिबुध्यमानाः) हम ज्ञान विज्ञान युक्त हों, (तुभ्यं बलिहृतः स्याम) तुम्हें बलि देनेवाले हों ॥ १८२ ॥

रोग रहित रहनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

अथर्वा । यमः । अनुष्टुप् ।

१८३ यमाय घृतवत्पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥
अथर्व. १८।२।३

(यमाय राज्ञे) यम राजाके लिए (घृतवत् पयः) घीसे मिश्रित दूध तथा (हविः) हवि (जुहोतन) अर्पण करो, (सः) वह यम (प्रजीवसे) प्रकृष्टतया जीनेके लिए (जीवेषु) मनुष्योंमें (नः दीर्घं आयुः आ यमेत्) हमें दीर्घ जीवन देवे ॥ १८३ ॥

प्रदीप्त अग्निमें घीसे युक्त तूधका हवन करनेसे मनुष्यों को दीर्घ आयु मिलती है।

अथर्वा । पितरः । त्रिष्टुप् ।

१८४ सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः
स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा
ज्योग्जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥

अथर्व. १८।२।२९

(इह) इस यज्ञमें (न स्वाः पितरः) हमारी जातिके वृद्धगण (स्योनं कृण्वन्तः) सुख प्रत्यक्ष करते हुए (सं विशन्तु) बैठें और (आयुः प्रतिरन्तः) आयुको दीर्घ करें। उसके बदलेमें (नक्षमाणाः) सर्वदा कार्य तत्पर हम (ज्योक् पुरूचीः शरदः) निरन्तर बहुत वर्षोंतक (जीवन्तः) जीवन धारण करते हुए (तेभ्यः) उन पितरोंकी (हविषा) हवि द्वारा (शकेम) पूजा करनेमें समर्थ बने रहें ॥ १८४ ॥

अथर्वा । यमः । त्रिष्टुप् ।

१८५ विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु
परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो
मो ष्वेषामसवो यमं गुः ॥ अथर्व. १८।३।६२

(विवस्वान्) सूर्य (नः अमृतत्वे दधातु) हमें अमरतामें स्थापित करे, (मृत्युः परा एतु) मृत्यु परे भाग जावे, (नः अमृतं एतु) हमें अमरता प्राप्त हो, वह विवस्वान् (इमान् पुरुषान्) इन पुरुषोंकी (आ जरिम्णः) वृद्धावस्था पर्यन्त (रक्षतु) रक्षा करे, (एषां असवः) इन पुरुषोंके प्राण (मा यमं गुः) यमको न प्राप्त हों ॥ १८५ ॥

सूर्य प्रकाशसे आयु दीर्घ होती है।

अथर्वा । यमः । पुरो विराट् सतः पंक्तिः ।

१८६ पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद्
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥

अथर्व १८।४।५३

(पर्णः राजा) पालक राजा (चरूणां अपिधानं) चरुओंका ढक्कन है, (ऊर्जः) अन्न, (बलं) बल (सहः) शत्रुको नष्ट करनेका सामर्थ्य (ओजः) ओज ये सब (नः आगन्) हमें प्राप्त हों, (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिए (जीवेभ्यः) जीवितोंके लिए (आयुः विदधत्) आयु करे ॥ १८६ ॥

अन्न, बल, सामर्थ्य और ओज प्राप्त करके दीर्घ जीवन प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

अथर्वा । पितरः । आस्तार पंक्तिः ।

१८७ आ यात पितरः सोम्यासो
गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च
रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥

अथर्व. १८।४।६२

(सोम्यासः पितरः) हे सोमपान करनेवाले पितरो! (गंभीरैः) गंभीर (पितृयाणैः पथिभिः) पितृयाण मार्गोंसे (आयात) आओ, (अस्मभ्यं आयुः, प्रजां च रायः च दधतः) हमारे लिए आयुष्य, प्रजा तथा धन सम्पत्ति दो, (पोषैः) अन्य पुष्टियोंसे (नः) हमें (अभि सचध्वम्) चारों ओरसे युक्त करो ॥ १८७ ॥

दीर्घ आयु, धन, पोषण और सुप्रजा हमको प्राप्त करना चाहिये।

अथर्वा । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

१८८ परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं
जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्
सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ अथर्व. १९।२४।४

(परि धत्त) वस्त्र पहनाओ, (नः इमं वर्चसा धत्त) हमारे इसको तेजके साथ धारण करो, (जरामृत्युं दीर्घं आयुः कृणुत) वृद्धावस्थाके पश्चात् इसको मृत्यु आवे, और दीर्घ आयु प्राप्त हो, बृहस्पतिने (राज्ञे सोमाय परिधातवै उ) राजा सोमके पहननेके लिए (एतत् वासः प्रायच्छत्) यह वस्त्र दिया है ॥ १८८ ॥

जीर्ण वृद्धावस्थाके पश्चात् मृत्यु आवे । इसके पूर्व नहीं । ऐसी दीर्घ आयु प्राप्त करनी चाहिये ।

अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

१८९ जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो
भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची
रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ अथर्व. १९।२४।५

(जरां सु गच्छ) बुढापेको भली प्रकार प्राप्त हो, (वासः परि धत्स्व) वस्त्र पहनो, (गृष्टीनां अभिशस्ति-पा उ भव) प्रजाओंका विनाशसे बचानेवाला हो, (शतं च जीव शरदः पुरूचीः) दीर्घ सौ वर्ष जीवित रह (रायः च पोषं उपसंव्ययस्व) धन और पुष्टिको प्राप्त हो ॥ १८९ ॥

धन और पोषणके साथ दीर्घ आयु प्राप्त करनी चाहिये । लोगोंका विनाशसे बचाव करना चाहिये ।

अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

१९० परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये
अभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीः
वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥
अथर्व. १९।२४।६

(स्वस्तये इदं वासः परि अधिथाः) अपने कल्याणके लिए यह वस्त्र तूने पहना है, (वापीनां अभिशस्तिपा उ भव) कुओंका विनाशसे बचाव करनेवाला तू हो गया है, (पुरूचीः शरदः शतं च जीव) दीर्घ सौ वर्ष तक तू जीवित रह (जीवन् चारु वसूनि वि भजासि) जीवित रह कर सुन्दर धनोंको अपने मित्रोंमें बांट ॥ १९० ॥

अथर्वा । अग्निः हिरण्यं च । त्रिष्टुप् ।

१९१ अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यं
अमृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद्वेद स इदेनमर्हति
जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥
अथर्व. १९।२६।१

(अग्नेः प्रजातं) अग्निसे उत्पन्न हुआ (यत् हिरण्यं) जो सोना है वह (मर्त्येषु अमृतं परि दध्रे) मानवोंमें अमृत रखता है, (यः एनत् वेद) जो यह जानता है, (सः इत् एनं अर्हति) वही इसे धारण कर सकता है, (यः बिभर्ति जरामृत्युः भवति) जो इसे धारण करता है, वह वृद्धावस्थाके पश्चात् मरता है ॥ १९१ ॥

शरीर पर सुवर्ण धारण करनेसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है ।

अथर्वा । अग्निः हिरण्यं च । त्रिष्टुप् ।

१९२ यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं
प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत्त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजति
आयुष्मान्भवति यो बिभर्ति ॥
अथर्व. १९।२६।२

(यत् हिरण्यं सुवर्णं) जिस उत्तम रंगवाले सोनेको (प्रजावन्तः पूर्वे मनवः सूर्येण ईषिरे) प्रजाओंके समेत पहले मनुष्योंने सूर्यसे पाया (तत् त्वा) वह तुझे (चन्द्रं वर्चसा सं सृजति) चमकता हुआ तेजसे युक्त करता है, (यः बिभर्ति आयुष्मान् भवति) जो इसे धारण करता है वह दीर्घायुवाला होता है ॥ १९२ ॥

अथर्वा । हिरण्यं । अनुष्टुप् ।

१९३ आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु॥
अथर्व. १९।२६।३

(आयुषे त्वा) आयुष्यके लिए तुझे (वर्चसे त्वा) तेजके लिए तुझे (ओजसे च बलाय च) शक्ति और बलके लिए तुझे मैं पहनता हूँ (यथा) इसे धारण करके (जनां अनु) लोगोंमें (हिरण्य तेजसा विभासासि) सोनेके तेजसे तू चमकता रह ॥ १९३ ॥

शरीर पर सुवर्ण धारण करनेसे दीर्घ आयु, तेज, ओज और बल प्राप्त होता है ।

अथर्वा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

१९४ इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥
अथर्व. १९।२८।१

(दीर्घायुत्वाय तेजसे) दीर्घायुकी प्राप्ति और तेजस्विताके लिए (इमं मणिं ते बध्नामि) इस मणिको तेरे शरीरपर बांधता हूँ, (दर्भ सपत्नदम्भनं) यह दर्भमणि शत्रुका नाश करती है, और (द्विषतः हृदः तपनं) द्वेषीके हृदयमें सन्ताप उत्पन्न करनेवाला है॥१९४॥

दर्भमणिको शरीरपर धारण करनेसे दीर्घायु तथा तेजस्विता प्राप्त होती है । इससे सब शत्रु दूर होते हैं । दर्भमणि तैयार करनेकी विधि संशोधन करके निश्चित करनी चाहिये ।

अथर्वा । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१९५ वर्च आ धेहि मे तन्वां३
सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय
प्रतिगृह्णामि शतशारदाय ॥ अथर्व. १९।३७।२

(मे तन्वां) मेरे शरीरमें (वर्चः सह:) तेज और साहस (ओजः, वयः, बलं) ओज, शक्ति और बल (आ धेहि) स्थापन कर, (इन्द्रियाय) इन्द्रिय सामर्थ्यके लिए (कर्मणे वीर्याय) कर्म शक्ति और वीर्यके लिए (शत शारदाय) सौ वर्षकी आयुके लिए (त्वा प्रति गृह्णामि) तुझे मैं धारण करता हूँ ॥ १९५ ॥

अग्नि— चित्रक औषधि, निम्ब, भल्लातक, अग्नि। यहां भल्लातक अभीष्ट होगा । वैद्य इसका विचार करें । शतभल्लातक, सहस्रभल्लातक ऐसे प्रयोग दीर्घ आयुके लिये वैद्यक ग्रंथोंमें कहे हैं । इनसे साहस, ओज, बल आदि प्राप्त होकर दीर्घ आयु प्राप्त होती है ।

अथर्वा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

१९६ ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय
पर्यूहामि शतशारदाय ॥ अथर्व. १९।३७।३

(ऊर्जे त्वा बलाय त्वा) सत्वके लिए बलके लिए (ओजसे सहसे त्वा) सामर्थ्य और साहसके लिये (अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय) शत्रुको हराने और राष्ट्र सेवा करनेके लिए तथा (शतशारदाय) सौ वर्षकी आयुके लिए तुझे मैं (पर्यूहामि) पहनता हूँ ॥ १९६ ॥

सिन्धुद्वीपः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

१९७ सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो
विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ अथर्व. ७।८९।२

हे अग्ने ! (मा वर्चसा प्रजया आयुषा) मुझे तेज, सन्तति और आयुसे (सं सृज) संयुक्त कर (देवाः अस्य मे विद्युः) देव यह मेरा हेतु जानें, तथा (ऋषिभिः सह इन्द्रः विद्यात्) ऋषियोंके साथ इन्द्र मुझे जाने ॥ १९७ ॥

सिन्धुद्वीपः । आपः । गायत्री ।

१९८ आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम ।
ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ अथर्व. १।६।३

हे (आपः) जलो ! (भेषजं पृणीत) औषध दो और (मम तन्वे) मेरे शरीरके लिए (वरूथं) संरक्षण दो जिससे मैं (ज्योक् सूर्यं दृशे) दीर्घ कालतक सूर्यको देखता रहूं ॥ १९८ ॥

जल चिकित्सा करनेसे रोग दूर होते हैं और दीर्घ आयु मिलती है ।

सूर्यगिराः । चन्द्रमा । अनुष्टुप् ।

१९९ आयुषायुष्कृतां जीवायुष्मान्जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुद्गा वशम् ॥
अथर्व १९।२७।८

(आयुष्कृतां आयुषा जीव) आयु बनानेवालोंकी आयुसे तू जीवित रह, तू (आयुष्मान् जीव) दीर्घायुवाला होकर जीवित रह (मा मृथाः) मर मत, (आत्मन्वतां प्राणेन जीव) आत्मावालोंके प्राणोंसे जीवित रह (मृत्योः वशं मा उद्गाः) मृत्युके वशमें न जा ॥१९९॥

ब्रह्मा । सूर्य । अनुष्टुप् ।

२०० परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि ।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥
अथर्व १।२२।२

(रोहितैः वर्णैः) लाल रंगोंसे (त्वा दीर्घायुत्वाय परिदध्मसि) तुझे दीर्घायुके लिए घेरते हैं, (यथा अयं अ-रपः) जिससे यह नीरोग हो जाए और (अ-हरितः भुवत्) पीलिया रोगसे मुक्त हो जाए ॥ २०० ॥

यह वर्ण चिकित्साका उपदेश देनेवाला मंत्र है। पीलक रोगकी चिकित्सा लाल रंगसे होती है और वह रोगी नीरोग हो दीर्घ आयुको प्राप्त करता है।

ब्रह्मा । आशापालाः (वास्तोष्पतिः) । परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

२०१ स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ अथर्व १।३१।४

(नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हमारे माता तथा पिताके लिए कल्याण हो, तथा (गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः स्वस्ति) गौवोंके लिए, चलने फिरनेवालोंके लिए और पुरुषोंके लिए सुख हो, (नः विश्वं सुभूतं सुविदत्रं अस्तु) हम सबके लिए सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हो, और हम (सूर्यं ज्योक् एव दृशेम) सूर्यको बहुत काल तक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायुषी हों ॥ २०१ ॥

ब्रह्मा । प्राणापानायूंषि । एक पादासुरी त्रिष्टुप् ।

२०२ प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥
अथर्व. २।१६।१

(प्राणापानौ मृत्योः मा पातं) प्राण और अपान मृत्युसे मेरी रक्षा करें, (स्वा-हा) मैं आत्म समर्पण करता हूं ॥ २०२ ॥

ब्रह्मा । प्राणापानायूंषि । एकपादासुरी त्रिष्टुप् ।

२०३ आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥ अथर्व. २।१७।४

(आयुः असि) तू आयु अर्थात् जीवनशक्ति है, (आयुः मे दाः) मुझे जीवनशक्ति दे ॥ २०३ ॥

ब्रह्मा सूर्यगिराश्च । आयुष्यम् । अनुष्टुप् ।

२०४ प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥
अथर्व. ३।११।५

हे (प्राणापाना) प्राण और अपान ! (प्र विशतं) प्रवेश करो, जिस प्रकार (अनड्वाहौ व्रजं इव) बैल गोशालामें प्रवेश करते हैं, (अन्ये मृत्यवः वि यन्तु) दूसरे अनेक अपमृत्यु दूर हो जावें, (यान् इतरान् शतं आहुः) जिनको इतर सौ प्रकारके कहा जाता है ॥२०४॥

प्राणायामके अभ्यास करनेसे प्राण और अपानकी शक्ति बढती है और प्राण तथा अपानकी शक्ति बढनेसे सब रोग दूर होते हैं और दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

ब्रह्मा सूर्यगिराः । आयुष्यम् । अनुष्टुप् ।

२०५ इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥
अथर्व. ३।११।६

हे (प्राणापानौ) प्राण और अपान ! (युवं इह एव स्तं) तुम दोनों यहीं पर रहो, (इतः मा अप गातं) यहांसे दूर मत जाओ, (अस्य शरीरं) इसका शरीर और (अंगानि) सब अवयव (जरसे पुनः वहतं) वृद्धावस्थाके लिए फिर ले चलो ॥ २०५ ॥

ब्रह्मा भृग्वंगिराः । आयुष्यम् । उष्णिक्बृहतीगर्भा पथ्यापंक्तिः ।

२०६ जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो
यानाहुरितराञ्छतम् ।

अथर्व. ३।११।७

(त्वा जरायै परि ददामि) तुझे वृद्धावस्थाके लिए अर्पण करता हूं. (त्वा जरायै नि धुवामि) तुझको वृद्धावस्थाके लिए पहुंचाता हूं। (त्वा जरा भद्रा नेष्ट) तुझे वृद्धावस्था सुख देवे, (अन्ये मृत्यवः वि यन्तु) अन्य अपमृत्यु दूर हो जावें, (यान् इतरान् शतं आहुः) जिनको इतर सौ प्रकारके कहा जाता है ॥ २०६ ॥

त्वा जरा भद्रा नेष्ट — तुझे वृद्ध अवस्था सुखकारक प्राप्त हो। प्रयत्न इसलिये करने चाहिये कि वृद्धावस्था सुखकारक हो। शरीरके किसी अंगमें वृद्धावस्थामें कोई कष्ट न हो। तारुण्यमें सब अंगोंको योग्य व्यायाम देनेसे यह अवस्था प्राप्त होती है। वृद्ध अवस्थामें मालीश भी करवानी चाहिये।

ब्रह्मा भृग्वंगिराश्च। आयुष्यम्। त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती।

२०७ अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सु पाशया।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुंचद् बृहस्पतिः॥

अथर्व. ३।११।८

(उक्षणं गां इव रज्ज्वा) जैसे बैलको अथवा गौको रस्सीसे बांध देते हैं, इस प्रकार (जरिमा त्वा अभि आहित) बुढापेने तुझको बांधा है, (यः मृत्युं जायमानं त्वा सुपाशया अभ्यधत्त) जिस मृत्युने उत्पन्न होते हुए ही तुझको उत्तम पाशसे बांध रखा है, (ते तं) तेरे इस मृत्युको (सत्यस्य हस्ताभ्यां बृहस्पतिः उदमुंचत्) सत्यके दोनों हाथोंसे बृहस्पति छुडा देता है ॥ २०७ ॥

प्रत्येक मनुष्यके साथ मृत्यु बंधा रहता है। बृहस्पति अर्थात् ज्ञानपति अपने प्रयत्नसे इस मृत्युके संबंधको ढीला करके मृत्युको दूर कर सकता है। ज्ञानसे यह बन सकता है।

ब्रह्मा। शाला। शक्वरीगर्भा जगती।

२०८ ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो
विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून्।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां
शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥

अथर्व. ३।१२।६

हे (वंश) बांस! तू (ऋतेन स्थूणां अधिरोह) अपने सीधेपनसे अपने आधार पर चढ और (उग्रः विराजन् शत्रून् अपवृङ्क्ष्व) उग्र बनकर प्रकाशता हुआ शत्रुओंको हटा दे। (ते गृहाणां उप-सत्तारः मा रिषन्) तेरे घरोंके आश्रयसे रहनेवाले हिंसित न हों, हे शाले! हम (सर्ववीराः शतं शरदः जीवेम) सब वीरोंसे युक्त होकर सौ वर्ष तक जीवें ॥ २०८ ॥

'वंश' बांसका नाम है। मानव शरीरमें 'पृष्ठ-वंश' पीठमें एक बांस है। इस पृष्ठ वंशको सरल सीधा रखनेसे मृत्यु दूर हो सकती है। बैठते, चलते, फिरते, सोते आदि सब व्यवहार करते समय इस पीठके बांसको सीधा रखना चाहिये और टेढा होने नहीं देना चाहिये।

ब्रह्मा। अग्निः। अनुष्टुप्।

२०९ वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अराल्या।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥

अथर्व. ३।३१।१

(देवाः जरसा वि अवृतन्) देव वृद्धावस्थासे दूर रहते हैं। (अग्ने! त्वं अ-राल्या वि) हे अग्ने! तू कंजूसीसे तथा शत्रुसे दूर रह, (अहं सर्वेण पाप्मना वि) मैं सब पापोंसे दूर रहूं, और (आयुषा सं) दीर्घ आयुसे संयुक्त होऊं ॥ २०९ ॥

वृद्धावस्थाको दूर करना यह देवत्वका लक्षण है। कंजूसीको और सब प्रकारके शत्रुओंको तथा सब पापोंको दूर करना चाहिये। इससे देवत्व प्राप्त होता है और दीर्घजीवन प्राप्त होता है।

ब्रह्मा । शक्रः । अनुष्टुप् ।

२१० व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥
अथर्व. ३।३१।२

(पवमानः आर्त्या वि) शुद्धता करनेवाला पुरुष पीडासे दूर रहता है, (शक्रः पाप-कृत्यया वि) समर्थ मनुष्य पाप कर्मसे दूर रहता है, उसी प्रकार सब पापोंसे और सब रोगोंसे मैं दूर रहूं और (आयुषा सं) दीर्घायुसे सम्पन्न होऊँ ॥ २१० ॥

पीडा और पाप कर्मोंसे दूर रहनेसे, सब रोग दूर होते हैं और दीर्घायुष्य प्राप्त होता है।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२११ आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥
अथर्व. ३।३१।८

(आयुष्मतां आयुष्कृतां प्राणेन जीव) दीर्घायु बढानेवाले और आयुष्य बढानेवाले जो होते हैं उनके प्राणके साथ तू जीता रह, (मा मृथाः) मत मर, मैं भी उसी प्रकार सब पापोंको और रोगोंको दूर करके (आयुषा सं) दीर्घायुवाला बनूं ॥ २११ ॥

अपनी आयु बढानेवाले जो पुरुषार्थी वीर हैं, उनके अन्दर जो उत्साहमयी जीवन शक्ति होती है वैसी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये और जलदी न मरनेकी इच्छा शक्तिको प्रबल करनी चाहिये। इस प्रकार करनेसे मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२१२ प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥
अथर्व. ३।३१।९

(प्राणतां प्राणेन प्राण) जीवित रहनेवालोंके प्राणसे तू जीवित रह (इह एव भव) यहीं प्रभावशाली हो, और (मा मृथाः) मत मर, उसी प्रकार मैं सब पापों और रोगोंको दूर करके (आयुषा सं) दीर्घायु बनूं ॥ २१२ ॥

इसी पृथिवीपर प्रभावशाली बनकर रहना चाहिये। अपनी जीवनशक्तिको जो प्रभावी बनाते हैं, उनके समान अपनी प्राण शक्तिको प्रभावी बनानी चाहिये। जिससे शीघ्र मृत्यु आ जाय ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२१३ उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥
अथर्व ३।३१।१०

(आयुषा उत्) आयुष्यसे उन्नति प्राप्त कर, (आयुषा सं) दीर्घायुसे युक्त हो, (ओषधीनां रसेन उत्) औषधियोंके रससे उन्नति प्राप्त कर, इसी रीतिसे मैं भी सब पापों और रोगोंसे दूर होकर दीर्घायुवाला बनूं ॥ २१३ ॥

औषधियोंके रसोंका सेवन करो। ये औषधियां आयुष्य की वृद्धि करनेवाली हैं। इन औषधियोंके रसके सेवनसे आयुष्यकी वृद्धि निःसंदेह होगी।

ब्रह्मा । पर्जन्यः । अनुष्टुप् ।

२१४ आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥
अथर्व. ३।३१।११

(वयं पर्जन्यस्य वृष्ट्या) हम पर्जन्यकी वृष्टिसे (आ उत् अस्थाम) उन्नतिको प्राप्त करें और (अमृताः) अमर हों, (अहं सर्वेण पाप्मना वि) मैं सब पापोंसे दूर रहूँ, (यक्ष्मेण वि) यक्ष्मादि रोगोंसे दूर रहूँ, (आयुषा सं) और दीर्घायुसे युक्त होऊँ ॥ २१४ ॥

हमें पापोंसे बचना चाहिये। इससे रोग दूर होते हैं। पर्जन्यसे उत्पन्न हुए धान्य खाकर पुष्ट होना चाहिये और आयुष्य बढानेका उपाय करना चाहिये।

ब्रह्मा । आत्मा । विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पंचपदा जगती ।

२१५ सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽ-
न्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि
स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां
गोपीथाय ॥ अथर्व. ५।९।७

(सूर्यः मे चक्षुः) सूर्य मेरी आंख है, (वातः प्राणः) वायु प्राण है, (अन्तरिक्षं आत्मा) अन्तरिक्ष आत्मा है, और (पृथिवी शरीरं) पृथ्वी मेरा शरीर है, (अ-स्तृतः नाम अयं अहं अस्मि) अमर नामवाला यह मैं हूं (द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय) द्यावापृथिवी द्वारा सुरक्षित होनेके लिए (सः आत्मानं निदधे) वह मैं अपने आपको निःशेष देता हूं ॥ २१५ ॥

सूर्यसे आंख बनी है, वायुसे प्राण बना है, पृथिवीसे स्थूल शरीर बना है, इस तरह सब अंग अन्य देवताओंसे बने हैं। इस शरीरमें आत्मा अमर है और वह इस शरीरका शासक है। मैं आत्मा हूं यह जानकर, इस शरीरका संचालन करनेवाला मैं हूं यह समझकर इस शरीरको दीर्घजीवी बनाना चाहिये।

ब्रह्मा । आत्मा । पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भा चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती ।

२१६ उदायुरुद्बलमुत्कृत-
कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ
गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥
अथर्व. ५।९।८

मेरी (आयुः उत्) आयु उत्तम (बलं उत्) बल उत्तम (कृतं उत्) किया हुआ कर्म उत्तम (कृत्यां उत्) काटनेकी शक्ति उत्तम (मनीषां उत्) बुद्धि उत्तम (इन्द्रियं उत्) इन्द्रियें उत्तम होवें। (आयुष्कृत् आयुष्पत्नी) आयुकी वृद्धि करनेवाले और जीवनका पालन करनेवाले तथा (स्वधावन्तौ) अपनी धारक शक्ति बढानेवाले तुम दोनों द्यावापृथिवी (मे गोपास्तं) मेरे रक्षक होवो, (मा गोपायतं) मेरी रक्षा करो, (मे आत्मसदौ स्तं) मेरेमें रहनेवाले होवो और (मा मा हिंसिष्टं) मेरा विनाश कभी न करो ॥ २१६ ॥

मेरी आयु, बल, कर्म, कर्मशक्ति, बुद्धि, इंद्रिय ये सब उत्तम अवस्थामें रहें। ये सब आयुकी वृद्धि करें। किसी भी कारण मेरी आयु कम न हो।

ब्रह्मा । दैव्या ऋषयः । त्रिष्टुप् ।

२१७ मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये
तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्याँ अभि नः सचध्व-
मायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ अथर्व. ६।४१।३

(ये तनूपाः) जो शरीरकी रक्षा करनेवाले हैं, (ये नः तन्वः तनूजाः) जो हमारे शरीरमें उत्पन्न हुए हैं, वे (दैव्याः ऋषयः) दिव्य ऋषि (नः मा हासिषुः) हमें न छोडें। ये (अमर्त्यः मर्त्यान् नः अभि सचध्वं) अमर देव हम मरनेवालोंसे मिलकर रहें, (नः प्रतरं आयुः जीवसे धत्त) हमें उत्कृष्ट आयु दीर्घ जीवनके लिए देवें ॥ २१७ ॥

शरीरमें शरीरके रक्षक ये दिव्य सप्त ऋषि-सात इंद्रियां हैं। वे ऋषि दिव्य शक्तिसे युक्त हैं। वे प्रयत्न करके हमारी आयु बढावें।

कबन्धः सान्तपनाग्निः । अनुष्टुप् ।

२१८ अग्नेः सान्तपनस्याहमायुषे पदमा रभे ।
अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥
अथर्व. ६।७६।२

(सान्तपनस्य अग्नेः पदं) तपनेवाले अग्निके पदको मैं (आयुषे आरभे) आयुष्यके लिए प्राप्त करता हूं। (यस्य आस्यतः) जिसके मुखसे (उद्यन्तं धूमं अद्धातिः पश्यति) निकलनेवाले धुंएको सत्यज्ञानी देखता है ॥ २१८ ॥

अग्निकी उष्णता शरीरको धारण करती है। वह शरीरमें रहे और शरीरको दीर्घजीवी बनावे।

कबन्धः । सान्तपनोऽग्निः । अनुष्टुप् ।

२१९ नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णाति आयुषे ॥
अथर्व. ६।७६।४

(यः विद्वान् क्षत्रियः) जो ज्ञानी क्षत्रिय (अग्नेः नाम आयुषे गृण्हाति) अग्निका नाम आयुके लिए लेता है, (एनं) इस मनुष्यको (पर्यायिणः न घ्नन्ति) घेरनेवाले शत्रु मार नहीं सकते, और (सन्नान् न अव-गच्छति) समीप बैठनेवाले इसको जानते भी नहीं। ॥ २१९ ॥

अथर्वा । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२२० ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य
मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥
अथर्व. ६।११०।२

(ज्येष्ठ-घ्न्यां जातः) ज्येष्ठका नाश करनेवालीमें यह उत्पन्न हुआ (विचृतोः यमस्य मूल बर्हणात्) विशेष हिंसक यमके मूल छेदनसे (एनं परि पाहि) इसकी रक्षा कर । (विश्वा दुरितानि एनं अति नेषत्) सब दुःखोंसे इसे पार कर और (दीर्घायुत्वाय शत-शारदाय) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिए इसको पहुंचाओ ॥ २२० ॥

कोई पाप मनुष्यके पास न आवे । अर्थात मनुष्य कभी पाप न करे । और दीर्घायु प्राप्त करे ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२२१ उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे॥
अथर्व. ७,३२.१

(प्रियं पनिप्नतं) प्रिय स्तुतिके योग्य (युवानं आहुतीवृधं) तरुण और आहुतियोंसे बढनेवाले अग्निके समीप (नमः बिभ्रतः उप अगन्म) अन्न धारण करते हुए हम प्राप्त होते हैं । वह (मे दीर्घं आयुः कृणोतु) मेरी दीर्घ आयु करे ॥ २२१ ॥

यज्ञका अग्नि जिसमें उत्तम हविका अर्पण होता है वह यज्ञाग्नि हमारी आयु दीर्घ करे ।

ब्रह्मा । मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः । अनुष्टुप् ।

२२२ सं मा सिंचन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः।
सं मायमग्निः सिंचतु प्रजया च
धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥
अथर्व. ७।३३।१

(मरुतः मा सं सिंचन्तु) मरुत मेरे ऊपर प्रजा और धनका सिंचन करें, (पूषा बृहस्पतिः सं स) पूषा और बृहस्पति मेरे ऊपर इसीका उत्तम रीतिसे सिंचन करें, (अयं अग्निः प्रजया च धनेन च मा सं सिंचतु) यह अग्नि मेरे ऊपर प्रजा और धनका उत्तम सिंचन करे, और (मे दीर्घं आयुः कृणोतु) मेरी आयु दीर्घ करे ॥ २२२ ॥

सब देव मेरी आयु दीर्घ करनेमें मुझे सहायता देवें ।

ब्रह्मा । आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

२२३ अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य
बृहस्पतेरभिशस्तेरमुंचः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्
देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥
अथर्व. ७।५३।१

हे बृहस्पते ! हे अग्ने ! तू (यत् अमुत्र-भूयात्) जो परलोकमें होनेवाले (यमस्य अभिशस्तेः अमुंचः) यमकी यातनाओंसे मुक्त करता है, हे (देवानां भिषजौ अश्विनौ) देवोंके वैद्य अश्विनी देवो ! (शचीभिः मृत्युं अस्मत् प्रति औहतां) शक्तियोंसे मृत्युको हमसे दूर करो ॥ २२३ ॥

वैद्य अपनी औषधियोंकी शक्तियोंसे मृत्युको दूर करें और हमारी आयु दीर्घ करें ।

Regd No. G. 71

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोन।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≈) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. ।॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- वे. श्री. दा. सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

वैदिक धर्म

अगस्त १९६२

*

५० नये पैसे

अरविन्द विशेषांक

*

युग के महान लेखक — श्री अरविन्द घोष



वर्ष ४३
वैदिक धर्म
अंक ८

क्रमांक १६४ : अगस्त १९६२

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

"वैदिक धर्म"

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०
डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो.-'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये **देवता-मंत्र-संग्रह** मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत सहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१९
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५७

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिक धर्म

अमृतत्व हमें प्राप्त हो

विवस्वान्नो अमृतत्वे दधातु
परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान्रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो
मो ष्वेषामसवो यमं गुः ॥

अथर्व. १८।३।६२



(विवस्वान्) सूर्य (नः अमृतत्वे दधातु) हमें अमरतामें स्थापित करे, (मृत्युः परा एतु) हमसे मृत्यु दूर जावे, (नः अमृतं एतु) हमारे पास अमरता आ जावे । वही विवस्वान् (इमान् पुरुषान्) इन पुरुषोंकी (आ जरिम्णः) वृद्धावस्था पर्यंत (रक्षतु) सुरक्षा करे । (एषां असवः) इनके प्राण (मा यमं गुः) यमके पास शीघ्र न जांय ॥

सूर्य हमें दीर्घजीवन देवे । सूर्य प्रकाशसे मृत्यु दूर हो जावे । अर्थात् हमारे पास अमरत्व आ जाय । वही सूर्य इन सब मनुष्योंकी सुरक्षा करे । वृद्ध अवस्था तक ये लोग जीवित रहें । इनके प्राण जल्दी न दूर हो जांय ।



स्वाध्याय-मंडल-वृत्त

स्वाध्याय मण्डल वृत्त— इस मासमें वेदमुद्रण-निधिमें नीचे लिखे अनुसार रकम मिली है।

श्री. अनुभाई परागजी देसाई, हरीया	२१
,, अमृतलाल व्रजभूखणदास पटेल, धरमपूर	२०
,, ठाकुरलाल मिलापचन्द शाह, सूरत	५१
,, नरेन्द्र मुल्जी, मुंबई	१०१
,, ज. शा. देशपांडे, दादर-मुंबई १४	४५
,, देवजीभाई रामबीभाई टंडेल, कोलक (सूरत)	२१·२५
,, पद्मनाभ पालयेशास्त्री, दादर-मुंबई १४	१०
,, कल्याणजी बेचरभाई, जीयोर कुंभेश्वर	५०
,, भाऊराव भिकाजी नाईक, उमराळे	१·२५
,, पद्मनाथशास्त्री, दादर-मुंबई १४	१०
,, कंचनलाल वरजदास, जोगेश्वरी	१५

आशीर्वाद टीकीट

श्री. दामाजी जिवन वर्तक, माहिम	३
,, काशिनाथ केशव संखे ,,	३
,, नाना पिका राऊत ,,	३
,, पद्मण माधव वर्तक ,,	३
,, शंकर शिणवार म्हात्रे ,,	३
,, कुसुमानंद बाळकृष्ण चौधरी ,,	३
,, हरी रामजी म्हात्रे ,,	३
,, पांडु जीवन वर्तक ,,	३
,, जनार्दन नाना म्हात्रे, केळवेबंदर पाखाडी (ता. पालघर)	१
,, जनार्दन नाना घरत ,, ,,	१
,, बळीराम तुकाराम भोई, मायखोष	१
,, गणपत दादू भोईर ,,	१
,, भालचंद्र गोविंद पाटील ,,	१
,, चिंतामण विठोबा महाले ,,	१
,, यशवंत शिणवार किणी ,,	१
,, विष्णू दामोदर उबाले, पालघर	१
,, देविलाल खेमजी, केळवारोड	१
,, अनंत रामचंद्र इनामदार ,,	१
,, रामचंद्र रामदयाल शुक्ल, पालघर	१
,, लक्ष्मण अनाजी घरत, नवली	१
,, माणकू रडकू पाटील, काटाळे	१
श्री. तुकाराम बु. माळी, तारापुर	१
,, दामोदर रामचंद्र पाटील, पालघर	१
,, भगिरथ गोविंद तुमडे, पालघर	१
,, सखाराम विठ्ठल पाटील, नवली	१
,, कृष्णा कोरगा शेट्टी, पालघर	१
,, शिवशंकर तेवारी ,,	१
,, शंकर आनु पाटील, बेवुर	१
,, जिवाभाई एफ्. पटेल, कमारे	१
,, गणपत बाळा पुरव ,,	१
,, दशरथ गणपत पुरव ,,	१
,, जेठालाल खुशालदास पटेल, पालघर	१
,, अच्युत तुकाराम आजगांवकर ,,	१
,, पुरुषोत्तम तुकाराम आजगांवकर ,,	१
,, बी. टी. आजगांवकर ,,	१
,, य. वि. दांडेकर ,,	१
,, श्यामकरण बचु डुबे ,,	१
,, काशिनाथ शिणवर पाटील, नवली ,,	१
,, तोलाराम जिवनराम टौरानी, पालघर	१
सौ. रुखमीणि तुकाराम माळी, तारापूर	१
श्री. नाना नारायण पाटील, उमरोळी	१
,, गोविंद महादेव राऊत ,,	१
,, चिंतामण शंकर राऊत, कमोर	१
कुल रु.	४०४·५०
पूर्व प्रकाशित रु.	१,१९,५९४·५३
कुल जमा रु.	१,१९,९९९·०३

स्वाध्यायमंडलका वेद प्रकाशनका कार्य चल रहा है। इसके लिये धनकी आवश्यकता है। पाठक दानके रूपसे अथवा पुस्तकोंके खरीदनेसे सहायता कर सकते है। धनकी सहायता मिलनेसे यह कार्य सत्वर हो सकेगा। पाठक इसका विचार करें और जो हो सकता है करें।

यहां वेदका अनुवाद प्रकाशन हिंदी, गुजराती और मराठी ऐसे तीन भाषाओंमें हो रहा है। इसको शीघ्र समाप्त करनेकी हमारी इच्छा है।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, पारडी

अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन

मुझे विश्वास है कि आप अपनी भाषाको अत्यधिक प्रेम करते हैं। सन् १९४७ में स्वतन्त्र होने पर हम सबने आशा की थी कि स्वतन्त्र भारतमें जनसामान्यकी भाषाएं ही शिक्षा, न्याय, व्यापार, शासन आदिके क्षेत्रमें प्रयोग की जाएंगी।

आज हमें स्वतन्त्र हुए १५ वर्ष हो चुके हैं, भारतमें एक भाषा-भाषी राज्योंका निर्माण भी हो चुका है किन्तु फिर भी हमारी भाषाओंको उनका उचित स्थान न मिल सका है।

आज अभी तक अंग्रेजी इस स्थानको अनधिकृत रूपसे ग्रहण किए हुए है जो स्थान वास्तवमें हमारी मातृभाषाओंका है। आज राज्योंमें विधान राज्यकी भाषामें नहीं बनाए जाते। राज्योंके शासनमें राज्योंकी भाषाओंका कोई आदर नहीं। यहां तक कि लोगोंको अपनी मातृभाषाओंमें पढ़नेके लिए यथेष्ट पुस्तकें भी उपलब्ध नहीं। केन्द्र एवं राज्यों दोनों ही स्थानों पर अंग्रेजी अपना आधिपत्य जमाए हुए है।

स्वतन्त्र भारतके संविधानमें यह व्यवस्था की गई थी कि १९६५ के पश्चात् प्रशासन एवं न्यायालयोंमें अंग्रेजीका प्रयोग बन्द कर दिया जाएगा। यदि आज शासन इस व्यवस्थाके अनुसार चलनेको तैयार हो जाए तो प्रत्येक भारतीय भाषाको अपने-अपने क्षेत्रमें उचित स्थान मिल सकता है। तभी आप जैसे देशभक्त भी अपनी भाषाओंकी पूर्ण रूपसे सेवा कर सकते हैं।

आपको यह भी विदित ही है कि लोकसभाके पिछले सत्रमें गृहमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्रीजीने घोषणा की थी कि लोकसभाके ६ अगस्तसे आरम्भ होनेवाले सत्रमें वे अंग्रेजीको अनिश्चित काल तक भारतकी राष्ट्रभाषा बनानेके लिए एक विधेयक प्रस्तुत करेंगे। इस विधेयकमें अंग्रेजीके प्रयोगके लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं की जाएगी जिसका अर्थ होगा कि वह सदैव-सदैव तक उन सारे कार्योंमें प्रयोग होती रहेगी जिनमें वह आंग्ल शासन-काल से लेकर अब तक प्रयोग होती रही है। यह विचारणीय प्रश्न है कि तब हमारी भाषाओंका भविष्य कितना अंधकारमय हो जाएगा। छात्रवर्गकी रुचि अपनी मातृभाषाओंसे समाप्त होती जा रही है क्योंकि आज उनकी उन्नतिका मार्ग केवल अंग्रेजीके माध्यमसे ही खुला छोड़ा गया है। अनिश्चित काल तक भारतीय भाषाओंकी यह दीन स्थिति वास्तवमें सारे भारतीय वाङ्मयकी दीन स्थितिकी प्रवर्तक होगी। तब कोई अपनी भाषाका साहित्य पढ़ेगा ही क्यों ?

इस बातसे तो आप भी सहमत होंगे कि कोई भी देशभक्त व्यक्ति इसे न चाहेगा, किन्तु शासनने जनसामान्यकी मनोवृत्ति इतनी दूषित कर दी है कि अधिकांश व्यक्तियोंने इस सम्बन्धमें विचार करना ही छोड़ दिया है। आज वे अपनी विचारशक्तिको सर्वथा तिलांजलि देकर प्रत्येक स्थितिको अपरिहार्य कहनेके अभ्यस्त हो गए हैं। हमारे शासनके कुछ गिने-चुने व्यक्ति एवं अंग्रेजी जाननेवाले कतिपय व्यक्ति जिनकी संख्या भारतकी समग्र जनसंख्याकी २ प्रतिशत भी नहीं है, अपने निहित स्वार्थोंके लिए सारी भारतीय जनताकी भावनाओंकी बलि देने पर तुले हुए हैं।

ऐसे समयमें आप जैसे व्यक्तियोंका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे स्वयं सामने आकर राष्ट्रको सच्चा नेतृत्व प्रदान करें तथा राष्ट्रकी जनताको सच्चे कर्तव्यका बोध कराएं।

हमारा देश लोकतंत्र राष्ट्र कहलाता है किन्तु सच्चा जनतंत्र तभी स्थापित हो सकता है जब उसमें लोगोंकी भाषाको सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो। अतः हम सबको अंग्रेजीको भारतके सिंहासन पर अधिष्ठित करनेके लिए प्रस्तुत किए जानेवाले इस विधेयकका पूर्ण शक्तिसे विरोध करनेके लिए सन्नद्ध हो जाना चाहिए।

अभी पिछले दिनों उत्तर तथा दक्षिण भारतकी भाषाओंके जाननेवाले दिल्लीमें सम्मिलित हुए थे तथा उन्होंने यह निश्चय किया कि इस विधेयकके प्रस्तुत किए जानेके

(शेष पृष्ठ २९० पर)

समालोचना

*

१ कालिदास-चरितम्

ले. श्री. श्री. भि. वेलणकर; प्रकाशक श्री ग. का. रायकर; गीर्वाण सुधा प्रकाशनम्, झावबा वाडी, मुम्बई २ पृष्ठ सं. १०७; मूल्य ३)

ऐसा कौन साहित्य प्रेमी होगा, जो महाकवि कालिदासके नामसे अपरिचित हो ? कालिदासके विषयमें अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। पर उनके चरित्रका अधिकांश भाग अभी तक संदिग्धावस्थामें ही है। उनके चरित्र पर अनेक विद्वानोंने खोजें की और अभी भी बहुत कुछ शेष है।

उपर्युक्त ग्रंथ भी, जैसा कि शीर्षकसे ही स्पष्ट है, महाकविके चरित्र पर प्रकाश डालता है। प्रस्तुत ग्रंथ एक संस्कृत नाटिका है। ग्रंथकार श्री वेलणकर संस्कृत वाङ्मयके जाने माने विद्वान् हैं। उनके अनेक ग्रंथ रत्नोंसे संस्कृत साहित्यकी भी वृद्धि हुई है। 'कालिदास-चरितम्' भी उनकी साहित्यिक प्रतिभाका परिचायक है। ग्रन्थकी भाषा अतिशय सरल है। इसी कारण यह नाटिका रंगमंचके लिए अत्यन्त उपयोगी है। प्रतीत होता है कि यह नाटिका पूर्व भी रंगमंचके द्वारा नाटक प्रेमियोंका मनोरंजन कर चुकी है। ग्रन्थमें काव्य सौष्ठव है, भावगांभीर्य है और इन सबके साथ भाषाका सारल्य है। ऐसे ग्रंथोंकी आज अत्यन्त आवश्यकता है, जो लोगोंके मस्तिष्क पर छाये हुए संस्कृत भाषाकी दुरूहताके भावोंको हटाकर उसके प्रति प्रेम और आकर्षण पैदा करें।

नाटिकाके लिए लेखक व प्रकाशक बधाईके योग्य हैं।

२ हमारा धर्म और उसकी वैज्ञानिक रूपरेखा

ले. श्री नारायणसिंह, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; पृष्ठ, २४६; मूल्य ३)

आजका भारतीय युवक समाज या कहिए नई पीढी धर्मके नाम पर ही नाक भौं सिकोडती है। इनके विचारमें धर्मकी इसके अलावा और कोई उपयोगिता नहीं है कि कुछ गिने-चुने पाखण्डी इसके नाम पर अपनी जीविका चलावें। पर इस प्रकारके विचारके लिए हम तरुणोंको ही दोषी ठहरायें यह अनुचित होगा। क्योंकि धर्मका बाह्य कलेवर आज इतना विकृत हो चुका है, कि इसके सम्पर्कमें आनेवाला हर कोई इसी तरहके विचारोंको अपनायेगा। इसका इलाज केवल यही है कि हम धर्मके बाह्य विकृत रूपको नष्ट करके उसके वास्तविक रूपको लोगोंके सामने रखें। अभीतक अवैज्ञानिक माने जानेवाले धर्मके वैज्ञानिक रूपको हम प्रकाशमें लाएं।

प्रसन्नताका विषय है कि श्री नारायणसिंहजीका इस दिशामें किया हुआ प्रथम प्रयास पुस्तकके रूपमें साहित्य सम्मेलन प्रयागने लोगोंके सामने रखा है। वस्तुतः धर्म किसी व्यक्ति, समाज व राष्ट्रकी बपौती नहीं है, वह तो सार्वजनीन है, हरएक उसका लाभ उठा सकता है। हरएक धार्मिक बनाया जा सकता है बशर्ते कि उसमें धर्मके प्रति आकर्षण उत्पन्न किया जाए। प्रस्तुत ग्रंथके लेखकने भरसक यत्न किया है, और धर्मके वैज्ञानिक स्वरूपको लोगोंके सामने रखनेकी यथासाध्य कोशिश की है। मुझे पुस्तकका विषय, उसकी प्रतिपादन-शैली बडी आकर्षक लगी।

मेरा अनुरोध है, कि वे, जो धर्मको ढकोसला समझते हैं, इस पुस्तकको अवश्य पढें। ● ● ●

(पृष्ठ २८९ का शेष)

समय ११ एवं १२ अगस्तको दिल्लीमें एक अखिल भारतीय भाषा सम्मेलनका आयोजन हो जिसमें विधेयकका व्यापक विरोध करनेके लिए विस्तृत कार्यक्रम बनाया जाए।

इस विधेयकके आनेसे सारी ही भारतीय भाषाएं अवनतिके गर्तमें जाएंगी। यह समझना कि अंग्रेजी केवल हिन्दीका ही स्थान लेगी, भयंकर भूल होगी। यह ऐतिहासिक महत्वका विषय है। अंग्रेजी एक शक्तिशालिनी धारा है जो हमारी भाषाओं एवं उनके साहित्यको पूर्णतया ध्वस्त कर देगी। तब हमारी संस्कृति कहां रह जाएगी। आज भारतका व्यक्तित्व ही संकटमें पड गया है।

आचार्य डाक्टर रघुवीर संयोजक,
अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन
जे. २२, हौज खास इन्क्लेव, नई दिल्ली—१६

सम्पादकीय

*

१५ अगस्त श्री अरविन्द तथा नवीन भारतका जन्मदिन है। आज हम बडे आनन्दके साथ प्राचीन भारतीके पाठकोंके सामने यह श्री अरविन्दाङ्क रख रहे हैं। आशा है यह विशेषाङ्क उन्हें श्री अरविन्दके महान कार्योंकी एक झांकी दे सकेगा तथा भारतके सच्चे उत्थानका मार्ग दिखाएगा।

पाठक देखेंगे कि हमने इस अङ्कमें श्री अरविन्दके व्यक्तित्वके बारेमें बहुत ही कम सामग्री रखी है। अधिकतर लेख स्वयं श्री अरविन्द तथा माताजीके है। इसका कारण है। श्री अरविन्दने कहा है कि उनका जीवन बाह्य तल पर नहीं रहा है। उनके जीवनमें जो मुख्य तत्व थे वे सब अन्दर थे और अन्दरकी बातें जान ही कौन सकता है ! परन्तु श्री अरविन्दने हमारे पथ-प्रदर्शनके लिए जो साहित्य रचा था उसमें जरासा चंचुपात ही हमें बहुत दूर तक पहुचा सकता है।

श्री अरविन्दने अनेक विषयों पर लिखा है। शायद मानव जीवनमें आनेवाली कोई समस्या ऐसी नहीं है जिस पर श्री अरविन्दकी लेखनीसे कुछ न कुछ न निकला हो। आदिम मानवकी सामाजिक स्थितिसे लेकर भविष्यके विश्वराज्य तक पर प्रकाश डाला है। Ideal of human unity तथा human cycle पढनेसे ऐसा प्रतीत होता है मानों इनके अनेक प्रसंग अद्यतन समस्याओंका अध्ययन करनेके बाद लिखे गये हैं, भारत सम्बन्धी लेखोंमें भाषागत विभाजन तथा चीनकी समस्या पर भी बहुत कुछ कहा गया है।

भारतीय संस्कृतिको लें तो वेद उपनिषद आदिसे लेकर आधुनिक काल तककी सांस्कृतिक चीजोंको एक नयी दृष्टिसे दिखाया गया है।

वेदके बारेमें

(श्री अरविन्द)

★

वैदिक मन्त्र उस ऋषिके लिये जिसने उसकी रचना की थी, स्वयं अपने लिये तथा दूसरोंके लिये आध्यात्मिक प्रगतिका साधन था। वह उसकी आत्मामेंसे उठा था ...।

पूर्णताकी प्राप्तिके लिए संघर्ष करनेवाले आर्यके हाथमें वह (वेदमन्त्र) एक शस्त्रका काम देता था।

वे (वेद) असभ्य, जंगली और आदिम कारीगरोंकी कृति नहीं है बल्कि वे एक परम कला और सचेतन कलाके सजीव निःश्वास हैं।

(वेद) जैसे की अपनी भाषामें और अपने छन्दोंमें वैसे ही अपनी विचार रचनामें भी आश्चर्यजनक हैं।

(वेदका सायण भाष्य) एक ऐसी चाबी है जिसने वेदके आन्तरिक आशय पर दोहरा ताला लगा दिया है, तो भी वह वैदिक शिक्षाकी प्रारंभिक कोठरियोंको खोलनेके लिये अत्यन्त अनिवार्य है...... प्रत्येक पग पर हम उसके साथ मतभेद रखनेके लिये बाध्य हैं, पर प्रत्येक पग पर इसका प्रयोग करनेके लिये भी बाध्य हैं।

वेदकी प्राचीन पुस्तक इस (योरोपियन) पंडितयके हाथमें आयी जो परिश्रमी, विचारमें साहसी...... किन्तु फिर भी प्राचीन रहस्यवादी कवियोंकी प्रणालीको समझनेके अयोग्य था।

दयानन्दने ऋषियोंके भाषा संबंधी रहस्यका मूल सूत्र हमें पकडा दिया है और वैदिक धर्मके एक केंद्र भूत विचार (अनेक देव एक परम देवमें आ जाते हैं) पर फिरसे बल दिया है।

मैंने यह देखा कि वेदके मंत्र, एक स्पष्ट और ठीक प्रकाशके साथ, मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियोंको प्रकाशित करते हैं।

वे (वेद) न केवल संसारके कुछ सर्वोत्कृष्ट और गभीरतम धर्मोंके अपितु उनके कुछ सूक्ष्मतम पराभौतिक दर्शनोंके भी सुविख्यात आदि स्रोतके रूपमें माने जाते रहे हैं।

'वेद' यह उस सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्यके लिये माना हुआ नाम है जहांतक कि मनुष्यके मनकी गति हो सकती है।

स्वयं ऋग्वेद मानव विचारके उस प्रारम्भ कालसे आया एक बडा भारी विविध उपदेशोंका ग्रंथ है जिस विचारके ही टूटे-फूटे अवशेष वे ऐतिहासिक एलूसिनियन तथा ऑर्फिक रहस्य वचन थे।

और इस (वेद) की भाषाको ऐसे शब्दों और अलंकारोंमें आवृत कर दिया था जो कि एक ही साथ विशिष्ट लोगोंके लिये आध्यात्मिक अर्थ तथा साधारण पूजार्थियोंके समुदायके लिये एक स्थूल अर्थ प्रकट करती थी।

ऋषि सूक्तका वैयक्तिक रूपसे स्वयं निर्माता नहीं था, वह तो द्रष्टा था एक सनातन सत्यका और एक अपौरुषेय ज्ञानका।

(वेद) दिव्य वाणी है जो कंपन करती हुई असीममेंसे निकल कर उस मनुष्यके अन्तः श्रवणमें पहुंची जिसने पहिलेसे ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञानका पात्र बना रखा था।

अपने गूढ अर्थमें भी जैसे कि अपने साधारण अर्थमें, यह (वेद) कर्मोंकी पुस्तक है; आभ्यन्तर और बाह्य यज्ञकी पुस्तक है; यह है आत्माकी संग्राम और विजयकी सूक्ति जब कि वह विचार और अनुभूतिके उन स्तरोंको खोजकर पा लेता है और उनमें आरोहण करता है जो कि भौतिक अथवा पाशविक मनुष्यसे दुष्प्राप्य है।

यह (वेद) हैं मनुष्यकी तरफसे उन दिव्य ज्योति, दिव्य शक्ति और दिव्य कृपाओंकी स्तुति जो मर्त्यमें कार्य करती हैं।

वैदिकवादका सिंहावलोकन

(श्री अरविन्द)

★

वेद एक ऐसे युगकी रचना है जो हमारे बौद्धिक दर्शनोंसे प्राचीन था। उस प्रारम्भिक युगमें विचार हमारे तर्कशास्त्रकी युक्ति प्रणालीकी अपेक्षा भिन्न प्रणालियोंसे प्रारम्भ होता था। और भाषाकी अभिव्यक्तिके प्रकार ऐसे होते थे जो हमारी वर्त्तमान आदतोंमें बिल्कुल अनुपादेय ठहरते। उस समय बुद्धिमान्से बुद्धिमान् मनुष्य अपने सामान्य व्यवहारिक बोधों तथा दैनिक क्रियाकलापोंसे परेके बाकी सब ज्ञानके लिये आभ्यन्तर अनुभूति पर और अन्तःज्ञान युक्त मनकी सूझों पर निर्भर करता था। उनका लक्ष्य था ज्ञानीलोक, न कि तर्क सम्मत निर्णय, उनका आदर्श था अन्तःप्रेरित द्रष्टा, न कि यथार्थ तार्किक। भारतीय परम्पराने वेदोंके उद्भवके इस तत्वको बडी सच्चाईके साथ संभाल कर रखा है। ऋषि सूक्तका वैयक्तिक रूपसे स्वयं निर्माता नहीं था, वह तो द्रष्टा था एक सनातन सत्यका और एक अपौरुषेय ज्ञानका। वेदकी भाषा स्वयं 'श्रुति' है, एक छन्द है जिसका बुद्धि द्वारा निर्माण नहीं हुआ बल्कि जो श्रुतिगोचर हुआ, एक दिव्य वाणी है जो कंपन करती हुई असीमसे निकल कर उस मनुष्यके अन्तःश्रवणमें पहुंची जिसने पहिलेसे ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञानका पात्र बना रखा था। 'दृष्टि' और 'श्रुति' दर्शन और श्रवण, ये शब्द स्वय वैदिक मुहावरे हैं, ये और इनके सजातीय शब्द, मन्त्रोंके गूढ परिभाषाशास्त्रके अनुसार, स्वतः प्रकाश ज्ञानको और दिव्य अंतः श्रवणके विषयोंको हैं। बताते है।

स्वतः प्रकाश ज्ञान (इलहाम या ईश्वरीय ज्ञान) की वैदिक कल्पनामें किसी चमत्कार या अलौकिकताका निर्देश नहीं मिलता। जिस ऋषिने इन शक्तियोंका उपयोग किया उसने एक उत्तरोत्तर वृद्धिशील आत्मसाधनाके द्वारा इन्हे पाया था। ज्ञान स्वयं एक यात्रा और लक्ष्य प्राप्ति थी, एक अन्वेषण और एक विजय थी; स्वतः प्रकाशकी अवस्था केवल अंतमें आई; यह प्रकाश एक आन्तिम विजयका पुरस्कार था। वेदमें यात्राका यह अलंकार, सत्यके पथ पर आत्माका प्रयाण, सतत रूपसे मिलता है। उस पथ पर जैसे यह अग्रसर होता है, वैसे ही आरोहण भी करता है; शक्ति और प्रकाशके नवीन क्षेत्र इसकी अभीप्साओंके लिये खुल जाते हैं, यह एक वीरतामय प्रयत्नके द्वारा अपने विस्तृत आध्यात्मिक ऐश्वर्योंको जीत लेता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे ऋग्वेदके बारेमें यह समझा जा सकता है कि यह उस महान् उत्कर्षका लेखा है जिसे मानवीयताने अपनी सामूहिक प्रगतिके किसी एक कालमें विशेष उपायोंके द्वारा प्राप्त किया था। अपने गूढ अर्थमें भी जैसे कि अपने साधारण अर्थमें, यह कर्मोंकी पुस्तक है; आभ्यन्तर और बाह्य यज्ञकी पुस्तक है; यह है आत्माकी संग्राम और विजयकी सूक्ति जब कि वह विचार और अनुभूतिके उन स्तरोंको खोज कर पा लेता है और उनमें आरोहण करता है जो कि भौतिक अथवा पाशविक मनुष्यके लिये दुष्प्राप्य है, यह है मनुष्यकी ओरसे उन दिव्य ज्योति, दिव्य शक्ति और दिव्य कृपाओंकी स्तुति जो मर्त्यमें काम आती है, इसलिये इस बातसे यह बहुत दूर है कि यह कोई ऐसा प्रयास हो जिसमें बौद्धिक या कल्पनात्मक विचारोंके परिणाम प्रतिपादित किये गये हों; ना ही यह किसी आदिम धर्मके विधि नियमोंको बतलानेवाली पुस्तक है। केवल अनुभवकी एकरूपतामेंसे प्राप्त हुये ज्ञानकी नैर्व्यक्तिकतामेंसे विचारोंका एक नियत समुदाय निरन्तर दोहराया जाता हुआ उद्गत होता है। और एक नियत प्रतीकमय भाषा उद्गत होती है, जो संभवतः उस आदिम मानवीय बोलीमें इन विचारोंका अनिवार्य रूप थी। क्योंकि यही केवल अपनी मूर्त्त रूपताके और अपथी रहस्यमय संकेतकी शक्तिके– इन दोनोंके– एकत्रित होनेके द्वारा इस योग्य थी कि इस चीजको अभिव्यक्त कर सके, जिसका व्यक्त करना जातिके साधारण मनके लिये अशक्य था। हम एकसे विचारोंको सूक्त–सूक्तमें दुहराया हुआ पाते हैं, एक ही

नियत परिभाषाओं और अलंकारोंके साथ और बहुधा एकसे ही वाक्यांशोंमें और किसी कवितात्मक मौलिकताकी खोजके प्रति या विचारोंकी अपूर्वता और भाषाकी नवीनताके मनके प्रति सर्वथा उदासीनताके साथ। सौन्दर्यमय सौष्ठव आडम्बर या लालित्यका किसी प्रकारका भी अनुसरण इन रहस्यवादी कवियोंको इसके लिये नहीं उकसाता कि वे इन पवित्र प्रतिष्ठापित रूपोंको बदल दें जो उनके लिये, ज्ञानके सनातन सूत्रोंको दीक्षितोंकी सतत परम्परामें पहुंचाने आनेवाले एक प्रकारके दिव्य बीजगणितसे बन गये थे।

वैदिक मंत्र वस्तुतः ही एक पूर्ण छन्दोबद्ध रूप रखते है, उनकी पद्धतिमें एक सतत सूक्ष्मता और चातुर्य है, उनमें शैलीकी तथा काव्यमय व्यक्तित्वकी महान् विविधतायें हैं; वे असभ्य, जंगली और आदिम कारीगरोंकी कृति नहीं हैं बल्कि वे एक परम कला तथा सचेतन कलाके सजीव निःश्वास हैं जो कला अपनी रचनाओंको आत्मदर्शिका अंतः प्रेरणाकी सबल किन्तु सुनियंत्रित गतिमें उत्पन्न करती है। फिर भी ये सब उच्च उपहार जान बूझ कर एक ही अपरिवर्तनीय ढांचेके बीचमें और सर्वदा एक ही प्रकारकी सामग्रीसे रचे गये हैं, क्योंकि व्यक्त करनेकी कला ऋषियोंके लिये केवल एक साधन मात्र थी न कि लक्ष्य भूत; उनका मुख्य प्रयोजन अनिरत रूपसे व्यवहारिक था, बल्कि उपयोगिताके उच्चतम अर्थमें लगभग उपयोगितावादी था।

वैदिक मंत्र उस ऋषिके लिये जिसने उसकी रचना की थी स्वयं अपने लिये तथा दूसरोंके लिये आध्यात्मिक प्रगतिका साधन था। यह उसकी आत्मामेंसे उठा था, यह उसके मनकी एक शक्ति बन गया था, यह उसके जीवनके आंतरिक इतिहासमें कुछ महत्त्वपूर्ण क्षणोंमें अपना संकट तकके क्षणमें उसकी आत्माभिव्यक्तिका माध्यम था। यह उसे अपने अंदर देवको अभिव्यक्त करनेमें, भक्षकको पापके अभिव्यंजकको विनष्ट करनेमें सहायक था; पूर्णताकी प्राप्तिके लिये संघर्ष करनेवाले आर्यके हाथमें यह एक अस्त्रका काम देता था; इन्द्रके वज्रके समान यह आध्यात्मिक मार्गमें आनेवाले प्रवणभूमिके आच्छादक पर, रास्तेके भेडिये पर, नदी-किनारेके लुटेरों पर चमकता था।

वैदिक विचारकी अपरिवर्तनीय नियमितताको जब हम इसकी गंभीरता समृद्धता और सूक्ष्मताके साथ लेते हैं तो इससे कुछ रोचक विचार निकलते हैं, क्योंकि हम युक्तियुक्त रूपसे यह तर्क कर सकते हैं उस कालमें जो कि विचार तथा आध्यात्मिक अनुभवका आदि काल था, अथवा उस कालमें भी जब कि उनका आरम्भिक उत्कर्ष और विस्तार हो रहा था एक ऐसा नियत रूप और विषय उस कालमें आसानीसे संभव नहीं हो सकता था। इसलिये हम यह अनुमान कर सकते हैं कि हमारी वास्तविक संहिता एक युगकी समाप्तिको सूचित करती है, न कि इसके प्रारम्भको और न ही इसकी क्रमिक अवस्थाओंमेंसे किसी कालको। यह भी संभव है कि इसके प्राचीनतम सूक्तको उनसे भी अधिक प्राचीन * गीतिमय छंदोंके अपेक्षाकृत नवीन विकसित रूप हो अथवा पाठान्तर हों जो और भी पहलेकी मानवीय भाषाके अधिक स्वच्छंद और सुखनम्य रूपोंमें ग्रंथित थे। अथवा यह भी हो सकता है कि इसकी प्रार्थनाओंका संपूर्ण विशाल समुदाय आर्योंके अधिक विविधतया समृद्ध भूतकालीन वाङ्मयमेंसे वेदव्यासके द्वारा किया गया केवल एक संग्रह हो। प्रचलित विश्वासके अनुसार जो द्वैपायन कृष्ण है, उस महान् परम्परागत मुनि, महान् संग्रहीता (व्यास) के द्वारा आयस युगके आरम्भकी ओर बढती हुई संध्याकी तथा उत्तरवर्ती अंधकारकी शताब्दियों की ओर मुंह मोड कर बनाया हुआ यह संग्रह शायद दिव्य अंतर्ज्ञानके युगकी, पूर्वजोंकी ज्योतिर्मयी उषाओंकी केवल अन्तिम ही वसीयत है जो अपने वंशजोंको दी गई है, इस मानव जातिको दी गई है जो पहिलेसे ही आत्मामें निम्नतर स्तरोंकी ओर तथा भौतिक जीवनकी, बुद्धि और तर्कशास्त्रकी युक्तियोंकी अधिक सुगम और सुरक्षित प्राप्तियों –सुरक्षित शायद केवल प्रतीतिमें ही– की ओर मुख मोड रही थी।

परन्तु ये केवल कल्पनायें और अनुमान ही हैं। निश्चित

* वेदमें स्वयं सतत रूपसे 'प्राचीन' और 'नवीन' ऋषियों (पूर्व...नूतन) का वर्णन आया है, इनमेंसे प्राचीन इतने अधिक पर्याप्त दूर हैं कि इन्हें एक प्रकारके अर्ध देवता, ज्ञानके प्रथम संस्थापक समझना चाहिये।

तो इतना ही है कि मानव चक्रके नियमके अनुसार जो यह माना जाता है कि वेद उत्तरोत्तर अंधकारमें आते गये और उनका विलोप होता गया, यह बात घटनाओंसे पूरी तौर पर प्रमाणित होती हैं। वेदोंका अंधकारमें आना पहिलेसे प्रारम्भ हो चुका था, उससे बहुत पहिले जबकि भारतीय आध्यात्मिकताका अगला महान् युग वेदांतिक युग आरम्भ हुआ, जिसने इस पुरातन ज्ञानको सुरक्षित या पुनरुज्जीवित करनेके लिये जितना वह उस समय कर सकता था, उतना संघर्ष किया। और तब कुछ और हो सकना प्रायः असंभव ही था क्योंकि वैदिक रहस्यवादियोंका सिद्धान्त अनुभूतियां पर आश्रित था। जो अनुभूतियां साधारण मनुष्यके लिये बडी कठिन होती है और वे उन्हें उन शक्तियोंकी सहायतासे प्राप्त होती थी, जो शक्तियाँ हममेंसे बहुतोंके अन्दर केवल प्रारम्भिक अवस्थामें होती हैं और अभी अधूरी विकसित हैं और ये शक्तियां यदि कभी हमारे अंदर सक्रिय होती भी हैं तो मिले जुले रूपमें ही अतएव ये अपने व्यापारमें अनियमित होती हैं। ' एवं एक बार जब सत्यके अन्वेषणकी प्रथम तीव्रता समाप्त हो चुकी, तो उसके बाद थकावट और शिथिलताका काल बीचमें आना अनिवार्य था, जिस कालमें पुरातन सत्य आंशिक रूपमें लुप्त हो जाने ही थे। एक बार लुप्त हो जाने पर फिर वे प्राचीन सूक्तोंके आशयकी छानबीन करके आसानीसे पुनरुज्जीवित नहीं किये जा सकते थे क्योंकि वे सूक्त एसी भाषामें ग्रथित थे जो जान बूझ कर संदिग्धार्थक रखी गई थी।

एक भाषा जो हमारी समझके बाहर है, वह भी ठीक ठीक समझमें आ सकती है यदि एक बार उसका मूल सूत्र पता लग जाय, पर एक भाषा जो जान बूझ कर संदिग्धार्थक रखी गई है अपने रहस्यको अपेक्षाकृत अधिक हटती और सफलताके साथ छिपाये रख सकती हैं, क्योंकि यह उन प्रलोभनों एव निर्देशोंसे भरी रहती है जो भटका देते हैं। इसलिये जब भारतीय मन फिरसे वेदके आशयके अनुसंधानकी ओर मुडा तो यह कार्य दुस्तर था और इसमें जो कुछ सफलता मिली वह केवल आंशिक थी। प्रकाशका एक स्रोत अब भी विद्यमान था वह परम्परागत ज्ञान जो उनके हाथमें था, जिन्होंने मूल वेदको कंठस्थ किया था और उसकी व्याख्या करते थे, अथवा जिनके उत्तरदायित्वमें वैदिक कर्मकाण्ड था ये दोनों कार्य प्रारम्भमें एक ही थे, क्योंकि पुराने समय जो पुरोहित होता था वही शिक्षक और द्रष्टा भी होता था। परन्तु इस प्रकाशकी स्पष्टता पहिलेसे ही धुंधली हो चुकी थी। बडी ख्याति पाये हुये पुरोहित भी जिन शब्दोंका वे बार बार पाठ करते थे उन पवित्र शब्दोंकी शक्ति और उनके अर्थका बहुत ही अधूरा ज्ञान रखते हुये याज्ञिक क्रियाये करते थे। क्योंकि वैदिक पूजाके भौतिक रूप बढ कर आंतरिक ज्ञानके ऊपर एक मोटी तहके रूपमें चढ गये थे और वे उसीका गला घोंट रहे थे, जिसकी किसी समय वे रक्षा करनेका काम करते थे। वेद पहिले ही गाथाओं और यज्ञविधियोंका एक समुदाय बन चुका था। इसकी शक्ति प्रतीकात्मक विधियोंके पीछेसे ओझल होने लग गई थी; रहस्यमय अंलकारोंमें जो प्रकाश था, वह उनसे पृथक हो चुका था और केवल एक प्रत्यक्ष असंबद्धता और कलारहित सरलताका ऊपरी स्तर ही अवशिष्ट रह गया था।

ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषदें लेखचिन्ह हैं उस एक जबरदस्त पुनरुज्जीवनके जो मूलवेद तथा कर्मकाण्डको आधार रस कर आरम्भ हुआ और जो आध्यात्मिक आधार तथा अनुभवको एक नवीन रूपमें लेखबद्ध करनेके लिये था। इस पुनरुज्जीवनके ये दो परस्परपूरक रूप थे, एक था कर्मकाण्ड संबंधी विधियोंकी रक्षा और दूसरा वेदकी आत्माका पुनः प्रकाश–पहिलेके द्योतक हैं ब्राह्मणग्रंथ + दूसरेकी उपनिषदें।

ब्राह्मणग्रंथ प्रयत्न करते हैं वैदिक कर्मकाण्डकी सूक्ष्म विधियोंको, उनकी भौतिक फलोत्पादकताकी शर्तोंको उनके विविध अंगों, क्रियाओं व उपकरणोंके प्रतीकात्मक अर्थ और प्रयोजनको, यज्ञके लिये जो महत्वपूर्ण मूल मंत्र हैं उनके तात्पर्यको, धुधले संकेतोंके आशयको तथा पुरातन गाथाओं तथा परिपाटियोंकी स्मृतिको नियत करने और सुरक्षित करनेका। उनमें आनेवाले कथानकोंमेंसे बहुतसे तो स्पष्ट ही मंत्रोंकी अपेक्षा उत्तरकालके हैं जिनका आविष्कार

+ निश्चय ही ये तथा इस अध्यायमें किये दूसरे विवेचन कुछ मुख्य प्रवृत्तियोंके सारभूत और संक्षिप्त आलोचन ही हैं। उदाहरणत: ब्राह्मण ग्रंथोंमें हम दार्शनिक संदर्भ भी पाते हैं।

इन संदर्भोंका स्पष्टीकरण करनेके लिये किया गया है जो अब समझमें नहीं आते थे, दूसरे कथानक संभवतः मूल-गाथा और अलंकारकी इस सामग्रीके अंग हैं जो प्राचीन प्रतीकवादियोंके द्वारा प्रयुक्त की गई थी अथवा इन वास्तविक ऐतिहासिक परिस्थियोंकी स्मृतियाँ हैं जिनके बीचमें सूक्तोंका निर्माण हुआ था।

मौखिक रूपसे चली आ रही परम्परा सदा एक ऐसा प्रकाश होता है जो वस्तुको धुंधला दिखाता है, जब तक नया प्रतीकवाद जो उस प्राचीन प्रतीकवाद पर कार्य करता है, जो कि आधा लुप्त हो चुका है, तो संभवतः वह उसके ऊपर उग कर उसे अधिक आच्छादित ही कर देता है, अपेक्षा इसके कि वह उसे प्रकाशमें लाये। इसलिये ब्राह्मण-ग्रंथ यद्यपि बहुतसे मनोरंजक संकेतोंसे भरे हुये हैं, फिर भी हमारे अनुसंधानमें वे हमें बहुतसी थोडी सहायता पहुंचाते हैं, न ही वे पृथक् सूक्तमंत्रोंके अर्थके लिये एक सुरक्षित पथ-प्रदर्शक होते हैं जब कि वे मंत्रोंकी एक यथातथ्य और शाब्दिक व्याख्या करनेका प्रयत्न करते हैं।

उपनिषदोंके ऋषियोंने एक दूसरी प्रणालीका अनुसरण किया। उन्होंने विलुप्त हुये या क्षीण होते हुये ज्ञानको ध्यान-समाधि तथा आध्यात्मिक अनुभूतिके द्वारा पुनरुज्जीवित करनेका यत्न किया और उन्होंने प्राचीन मंत्रोंके मूल ग्रंथ (मूलवेद) को अपने निजी अन्तर्ज्ञान तथा अनुभवोंके लिये आधार या प्रमाणरूपमें प्रयुक्त किया। अथवा यूं कहें कि वेदवचन उनके विचार और दर्शनके लिये एक बीज था, जिससे कि उन्होंने पुरातन सत्योंको नवीन रूपोंमें पुनरुज्जीवित किया।

जो कुछ उन्होंने पाया उसे उन्होंने ऐसी दूसरी भाषाओंमें व्यक्त कर दिया जो उस युगके लिये जिसमें वे रहते थे अपेक्षाकृत अधिक समझमें आने योग्य थी। एक अर्थमें इनका वेद मंत्रोंको हाथ लेना बिलकुल निःस्वार्थ नहीं था, इसमें विद्वान् ऋषिकी वह सतर्क सूक्ष्मदर्शिनी इच्छा नियंत्रण नहीं कर रही थी जिससे कि वे अवश्य शब्दोंके यथार्थ भाव तक और अपने वास्तविक रूपमें वाक्योंके ठीक-ठीक विचार तक पहुंचे। वे शाब्दिक सत्यकी अपेक्षा एक उच्चतर सत्यके अन्वेषक थे और शब्दोंका प्रयोग केवल उस प्रकाशके संकेतक रूपमें करते थे जिसकी ओर वे जानेका प्रयत्न कर रहे थे। वे शब्दोंके उनकी व्युत्पत्तिसे बने अर्थोंको या तो जानते ही नहीं थे या उसकी उपेक्षा कर देते थे और बहुधा वे शब्दोंकी घटक अक्षर ध्वनियोंको लेकर प्रतीकात्मक व्याख्या करनेकी सरणिका ही प्रयोग करते थे जिसमें इन्हें समझना बडा कठिन पड जाता है।

इस कारण उपनिषदें जहां अमूल्य वस्तु हैं, उस प्रकाशके लिये जो वे प्रधान विचारों पर तथा प्राचीन ऋषियोंकी आध्यात्मिक पद्धति पर डालती हैं, वहां वे जिन वेदमंत्रोंको उद्धृत करती हैं उनके यथार्थ आशयका निश्चय करनेमें हमारे लिये इतनी ही कम सहायक हैं जितने कि ब्राह्मण ग्रंथ। इनका असली कार्य वेदांतकी स्थापना करना था, न कि वेदकी व्याख्या करना।

इस महान् आन्दोलनका फल हुआ। विचार और आध्यात्मिकताकी एक नवीन तथा अपेक्षाकृत अधिक स्थिर शक्तिशाली स्थापना वेदकी वेदांतमें परिसमाप्ति। और इसके अंदर दो ऐसी प्रबल प्रवृत्तियां विद्यमान थी जिन्होंने पुरातन वैदिक विचार तथा संस्कृतिकी संहतिको भंग करनेकी दिशामें कार्य किया। प्रथम यह कि इसकी प्रवृत्ति बाह्य-कर्मकाण्डको अधिकाधिक गौण करनेकी मंत्र और यज्ञकी भौतिक उपयोगिता कम करके उसके स्थान पर अधिक विशुद्ध रूपसे आध्यात्मिक लक्ष्य और अभिप्रायको देनेकी थी। प्राचीन रहस्यवादियोंने बाह्य और आभ्यन्तर, भौतिक और आत्मिक जीवनमें जो सन्तुलन, जो समन्वय कर रखा था, उसे स्थानच्युत और अस्त-व्यस्त कर दिया गया। एक नवीन संतुलन, एक नवीन समन्वय स्थापित किया गया जो अन्ततोगत्वा सन्यास और त्यागकी ओर झुक गया और इसने अपने आपको तब तक कायम रखा, जब तक कि यह समय आने पर बौद्धधर्ममें आई हुई इसकी अपनी ही प्रवृत्तियोंकी अतिके द्वारा स्थानच्युत और अस्त-व्यस्त नहीं कर दिया गया।

यज्ञ, प्रतीकात्मक कर्मकाण्ड, अधिकाधिक निरर्थकता अवशेष— यहां तक कि सारभूत हो गया तो भी जैसा कि प्रायः हुआ करता है, यंत्रवत् और निष्फल हो जानेका परिणाम यह हुआ कि इनकी प्रत्येक बाह्यसे बाह्य वस्तुकी भी महत्ताको बढा चढा कर कहा जाने लगा और इनकी

सूक्ष्म विधियोंको ब्राह्मनके उस भाग द्वारा जो अब तक उनसे चिपटा हुआ था, बिना युक्तिके ही बलपूर्वक थोपा जाने लगा। वेद और वेदान्तके बीच एक तीव्र व्यावहारिक भेद अस्तित्वमें आया, जो क्रियामें था यद्यपि पूर्वतः सिद्धान्त रूपसे कभी भी स्वीकार नहीं किया गया, जिसे इस सूत्रमें व्यक्त किया जा सकता है, 'वेद पुरोहितोंके लिये, वेदान्त संतोंके लिये।'

वैदान्तिक हलचलकी दूसरी प्रवृत्ति थी अपने आपको प्रतीकात्मक भाषाके भारसे क्रमशः मुक्त करना, अपने ऊपरसे उपचित गाथाओं और कवितात्मक अलंकारोंके पर्दोंको हटाना जिसमें कि रहस्यवादियोंने अपने विचारको छिपा रखा था और उसके स्थान पर एक अधिक स्पष्ट प्रतिपादनको और अपेक्षया अधिक दार्शनिक भाषाको रखना। इस प्रवृत्तिके पूर्ण विकासने न केवल वैदिक कर्मकाण्डको, बल्कि मूल वेदकी भी उपयोगिताको अप्रचलित कर दिया। उपनिषदें जिनकी भाषा बहुत ही स्पष्ट और सीधी-सादी थी सर्वोच्च भारतीय विचारका मुख्य स्रोत हो गईं और उन्होंने वसिष्ठ और विश्वामित्रकी अन्तः श्रुत ऋचाओंका स्थान ले लिया। *

वेदोंकी शिक्षाके अनिवार्य आधारके रूपमें क्रमशः कम और कम करते जानेके कारण अब वे वैसे उत्साह और बुद्धि चातुर्यके साथ पढे जाने बंद हो गये थे, उनकी प्रतीकमय भाषाने, प्रयोगमें न आनेसे, नयी संततिके आगे अपने आंतरिक आशयके अवबोधको भी खो दिया, जिस संततिकी सारी ही विचारप्रणाली वैदिक पूर्वजोंकी प्रणालीसे भिन्न थी। दिव्य अन्तर्ज्ञानके युग बीत रहे थे और स्थान पर तर्कके युगकी प्रथम उषाका आविर्भाव हो रहा था।

बौद्धधर्मने इस क्रान्तिको पूर्ण किया और प्राचीन युगकी बाह्य परिपाटियोंमेंसे केवल कुछ अत्यादृत आडम्बर और कुछ यंत्रवत् चलती हुई रूढ़ियां ही अवशिष्ट रह गईं। इसने वैदिक यज्ञको लुप्त कर देना चाहा और साहित्यिक भाषाके स्थान पर प्रचलित लोकभाषाको प्रयोगमें लानेका यत्न किया। और यद्यपि इसके कार्यको पूर्णता, पौराणिक सम्प्रदायोंमें हिन्दुधर्मके पुनरुज्जीवनके कारण, कई शताब्दियों तक रुकी रही, तो भी वेदने स्वयं इस अवकाशसे न के बराबर ही लाभ उठाया। नये धर्मके प्रचारका विरोध करनेके लिये यह आवश्यक था कि पूज्य किन्तु दुर्बोध मूल वेदके स्थानपर ऐसी धर्म-पुस्तकें लाई जावें जो अपेक्षाकृत अधिक अर्वाचीन संस्कृतमें सरल रूपमें लिखी गई हों। इस प्रकार देशके सर्वसाधारण लोगोंके लिये पुराणोंने वेदोंको एक तरफ धकेल दिया और नवीन धार्मिक पूजा-पाठके उपायोंने पुरातन विधियोंका स्थान ले लिया। जैसे वेद ऋषियोंके हाथसे निकल कर पण्डितोंके हाथमें जाना शुरु हो गया और उस रक्षणमें इसने अपने अर्थोंके अन्तिम अंग-छेदनको और अपनी सच्ची ज्ञान और पवित्रताकी अन्तिम हानिको सहा।

यह बात नहीं कि वेदोंका पण्डितोंके हाथमें जाना और भारतीय पण्डितका वेदमंत्रोंके साथ व्यवहार जो ईसाके पूर्वकी शताब्दियोंसे प्रारम्भ हो गया था, सर्वथा एक घाटेका ही लेखा हो। इसकी अपेक्षा ठीक तो यह है कि पण्डितोंके सतर्क अध्यवसाय तथा उनकी प्राचीनताको रक्षित रखने और नवीनतामें अप्रीतिकी परिपाटीके हम ऋणी हैं कि उन्होंने वेदोंको सुरक्षाकी, बावजूद इसके कि इसका रहस्य लुप्त हो चुका था और वेदमंत्र स्वयं क्रियात्मक रूपमें एक सजीव धर्मशास्त्र समझे जाने बंद हो गये थे। और साथ ही लुप्त रहस्यके पुनरुज्जीवनके लिये भी पाण्डित्यपूर्ण कट्टरताके ये दो सहस्र वर्ष हमारे लिये कुछ अमूल्य सहायतायें छोड गये हैं अर्थात् मूल वेदोंके संहिता आदि पाठ जिनके ठीक ठीक स्वरचिन्ह बडी सतर्कताके साथ निश्चित किये हुये हैं, यास्कका महत्वपूर्ण कोष और सायणका यह विस्तृत भाष्य जो अनेक और प्रायः चौंका देनेवाली अपूर्णताओंके होते हुये भी अन्वेषक विद्वान्के लिये गंभीर वैदिक शिक्षाके निर्माणकी ओर एक अनिवार्य पहला कदम है।

* यहां फिर इससे मुख्य प्रवृत्ति ही सूचित होती है और इसे कुछ शर्तोंकी अपेक्षा है। वेदोंका प्रमाण रूपसे भी उद्धृत किया गया है पर सर्वांग रूपसे कहें तो उपनिषदें ही हैं जो कि ज्ञानकी पुस्तक होती हैं, वेद अपेक्षाकृत कर्मकाण्डकी पुस्तक है।

वैदिक साहित्य

श्री. अरविन्द

★

राष्ट्रके गौरवमय यौवन-कालमें जब कि एक अगाध आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि कार्य कर रही थी, एक सूक्ष्म अंतर्ज्ञानात्मक दृष्टि और एक महान् रूपमें निर्धारित, गंभीर एवं विशद बौद्धिक और नैतिक विचार श्रृंखला तथा साहसिक कार्य-धारा एवं सृजन प्रवृति क्रियाशील थीं जिन्होंने उसकी अनुपम संस्कृति एवं सभ्यताकी योजना खोज निकाली एवं निर्धारित की और इसकी स्थायी इमारत खड़ी की,—ऐसे युगमें हमें भारतका प्राचीन मानस उसकी प्रतिभाकी चार परमोच्च कृतियों, वेद, उपनिषदों और दो बृहत महाकाव्यों के द्वारा प्रस्तुत मिलता है, और इसमेंसे प्रत्येक एक ऐसी कोटि एवं शैलीको तथा ऐसी भावनासे सम्पन्न रचना है जिसकी बराबरी करनेवाली रचना किसी अन्य साहित्यमें आसानीसे नहीं मिल सकती। इनमेंसे पहली दो उसके आध्यात्मिक और धार्मिक स्वरूपका प्रत्यक्ष आधार हैं, शेष दो उसके जीवनके महत्तम युगकी, इसे अनुप्राणित करनेवाले विचारों एवं परिचालित करनेवाले आदर्शों तथा इन प्रतीकोंकी विशाल सर्जनक्षम व्याख्या हैं जिनके रूपमें उसने मनुष्य, प्रकृति और परमेश्वरको तथा जगत्‌की शक्तियोंको देखा था।

वेदने हमें इन चीजोंके प्रथम प्रतिरूप और आकार प्रदान किए जैसे कि वे रूपात्मक आध्यात्मिक अंतर्ज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक और धार्मिक अनुभवके द्वारा देखे और गढे गए थे ? उपनिषदें आकार, प्रतीक और रूपकको निरंतर भेद कर तथा इनके परे जा कर पर इनका पूर्ण रूपसे त्याग किए बिना—क्यों कि ये चीजें एक सहचारी तत्व या गौण वस्तु के रूपमें सदा ही आ घुसती हैं,— एक अद्वितीय कोटिके काव्यमें आत्मा, परमात्मा और मनुष्य तथा जगत् और इसके मूलतत्वों एवं इसकी शक्तियोंके— इन (मूलतत्वों और शक्तियों) के अत्यंत सारभूत, गभीरतम, अंतरंगतम एवं विस्तृततम वास्तविक रूपोंके— चरम परम सत्योंको प्रकाशित करती हैं,— ये वास्तविक रूप परमोच्च रहस्य और विशद आलोक हैं जिन्हें एक ऐसी दुर्निवार एवं निर्बाध अनुभूतिके रूपमें स्पष्टतया देखा गया है जो अंतर्ज्ञानात्मक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिके द्वारा विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि तक पहुंच चुकी है।

और उपनिषदोंके बाद हम उस बुद्धि एवं जीवनकी तथा आदर्शभूत नैतिक, सौन्दर्यात्मक एवं चैत्य एवं भाविक ऐंद्रिय तथा भौतिक ज्ञान, विचार, दृष्टि और अनुभवकी ओजस्वी और सुन्दर प्रगतियोंको देखते हैं जिनका कि हमारे महाकाव्य प्राचीन अभिलेख हैं और जिन्हें शेष सारा साहित्य अविच्छिन्न रूपसे विस्तारित करता है; परंतु आधार बराबर ही वही रहता है और जो भी नए एवं प्रायः व्यापकतर प्रतिरूप तथा अर्थपूर्ण आकार पुरानोंके स्थानों पर आते हैं या सम्पूर्ण समष्टिमें कुछ वृद्धि, संशोधन और परिवर्तन करनेके लिए हस्तक्षेप करते हैं वे अपने मूल गठन और प्रकृतिमें आदि दृष्टि और प्रथम आध्यात्मिक अनुभवके रूपांतर और विस्तार ही होते हैं, वे ऐसे व्यतिक्रम कदापि नहीं होते जो उससे संबंध ही न रखते हों। साहित्यिक सृजनमें, महान् परिवर्तनोंके होते हुए भी, भारतीय मनकी दृढ लगन एवं अविच्छिन्न परंपरा कायम रही है जो वैसी ही सुसंगत है जैसी हम चित्रकला और मूर्तिकलामें देखते हैं।

वेद उस आदिकालीन और अंतर्ज्ञानात्मक और प्रतीकात्मक मनोशक्तिकी रचना है जो मनुष्यके परवर्ती मनके लिए एक सर्वथा अपरिचित वस्तु बन गयी है क्योंकि वह प्रबल रूपमें बौद्धिक बन गया है तथा एक ओर तो तर्कशील विचार तथा अमूर्त परिकल्पनाके द्वारा और दूसरी ओर जीवन और जड तथ्योंको द्वारा परिचालित होता है, जिन तथ्योंको उसी रूपमें स्वीकार कर लिया जाता है जैसे कि वे इन्द्रियों तथा प्रत्यक्षवादी बुद्धिके सम्मुख उपस्थित होते हैं और उनमें किसी भी दिव्य या गुह्य अर्थकी खोज नहीं की जाती, और क्योंकि वह कल्पनाको सत्यके द्वारोंको खोलनेवाली कुंजी नहीं वरंच सौन्दर्यात्मक मौजकी एक क्रीडा मानकर उसमें संलग्न रहता है और केवल उसीके

सुझाओं पर विश्वास करता है जब कि वे तार्किक युक्ति या स्थूल अनुभूतिके द्वारा पुष्ट होते हैं, और चूंकि वह उन्हीं अन्तःस्फुरणाओंसे अभिज्ञ है जिन्हें सावधानताके साथ बौद्धिक रूप दे दिया गया है और सभी स्फुरणाओंका अधिकांशमें विरोध ही करता है।

अत एव इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि वेद अपने भाषाके अत्यंत बाहरी आवरणको छोडकर हमारे मनके लिए दुर्बोध हो गया हो, और वह बाह्य आवरण भी एक प्राचीन तथा अच्छी तरह समझमें न आनेवाली शैलीकी बाधाके कारण अत्यंत अपूर्ण रूपमें ही बोधगम्य हो, और कि इसकी अत्यंत अनुपयुक्त व्याख्याएं की गयी हों जो मानव जातिकी तरुण और तेजस्वी मनकी इस महत् कृतिको घटा कर एक दूषित और कुरूप लेख बना डालतीं हैं, एक आदिम कल्पनाकी मूर्खता पूर्ण बातोंका एक ऐसा असंगत मिश्रण बना देती हैं जिसके कारण वह चीज भी जटिल हो उठती है जो वैसे इस प्रकृतिवादी धर्मका बिलकुल सीधा-सादा स्पष्ट और सर्वसामान्य अभिलेख होती जो बर्बर प्राण प्रधान मनकी स्थूल और जडवादीय कामनाओंको ही प्रतिबिंबि करता था और उन्हींकी सेवा कर सकता था। भारतीय पुरोहितों और पण्डितोंकी परवर्ती पांडित्य पूर्ण और कर्मकाण्डीय भावनाके लिए वेद गाथाविज्ञान और याज्ञिक क्रिया-कलापोंकी पुस्तक मात्र रह गया, इससे अच्छी कोई चीज नहीं, यूरोपीय विद्वानोंने वेदमें केवल अपनी बौद्धिक रुचिके विषयों अर्थात् इतिहास, गाथाओं, और आदिम जातिके प्रचलित धार्मिक विचारोंकी ही खोज की और इस प्रकार वेदके साथ और भी बडा अन्याय किया गया है और एक सर्वथा बाह्य व्याख्या पर बल देकर उसे उसके आध्यात्मिक आशय और उसकी काव्यात्मक महत्ता एवं सुन्दरतासे और भी अधिक वंचित कर दिया गया है।

परंतु स्वयं वैदिक ऋषियों या उनके बाद आनेवाले इन महान् द्रष्टाओं मनीषियोंके लिए वेद यह चीज नहीं था, जिन्होंने कि उनकी अर्थगर्भित और प्रकाश पूर्ण अन्तःस्फुरणाओंसे विचार और वाणीकी अपनी अद्भुत रचनाए विकसित की जो एक अश्रुतपूर्व आध्यात्मिक साक्षात्कार और अनुभव पर प्रतिष्ठित थी। इन प्राचीन द्रष्टाओंके लिए वेद वह शब्द-ब्रह्म था जिसने सत्यको आविष्कृत किया और जीवनके रहस्यमय अर्थोंको रूपक एवं प्रतीकका परिधान पहनाया। वह शब्दकी अंतर्निहित शक्तियोंका, उसकी रहस्यमय सत्योद्भासी और संवर्धनशील क्षमताका दिव्य आविष्कार और प्राकट्य था, पर वह शब्द नैयायिक और तार्किक या सौंदर्यात्मक बुद्धिका शब्द नहीं था, बल्कि एक बोधि-जन्य और अंतः प्रेरित छंदोबद्ध वचन 'मंत्र' था। उसमें रूपक और आख्यानको प्रयोग स्वच्छंदताके साथ किया गया था, पर वह कल्पनाकी उडानके रूपमें नहीं बल्कि उन चीजोंके जीवंत दृष्टांतों और प्रतीकोंके रूपमें किया गया था जो उनका वर्णन करनेवालोंके लिए अत्यंत वास्तविक थी तथा जो और किसी प्रकारसे वाणीमें अपना आभ्यंतरिक एवं स्वभाविक रूप नहीं प्राप्त कर सकती थी और स्वयं कल्पना उनसे अधिक महान् सद्वस्तुओंकी पुरोहित थी जो जीवनके बाह्य सुझाओं तथा भौतिक सत्तासे आवद्ध आंख और मनके संमुख आती हैं और इन्हें वशमें किए रहती हैं।

पवित्रात्मा कविके संबंधमें इनकी धारणा यह थी कि वह एक ऐसी मनीषी होता है जिसे अपने मनमें किसी उच्चतम प्रकाश तथा इसके विचारात्मक और शब्दात्मक रूपोंका साक्षात्कार हुआ होता है, वह सत्यका द्रष्टा और श्रोता होता है, 'कवयः सत्यश्रुतयः।' निश्चय ही वैदिक मंत्रोंके कवि अपने कार्यको उस रूपमें नहीं देखते थे जिस रूपमें आधुनिक विद्वानोंने इसका निरूपण किया है। वे अपनेको एक बहिष्ट और बर्बर जातिके लिए एक प्रकारके तंत्र-मंत्र एवं जादू-टोनेका निर्माण करनेवाले नहीं, बल्कि 'ऋषि' और 'धीर'+ समझते थे। इन गायकोंका विश्वास था कि इन्हें एक उच्च रहस्यमय और गुप्त सत्य प्राप्त है, इनका दावा था कि ये एक ऐसी वाणीको धारण करते हैं जो दिव्य ज्ञानको स्वीकार्य है, और अपने वचनोंके बारेमें ये स्पष्ट रूपसे ऐसी बात कहते भी हैं कि वे रहस्यमय शब्द हैं जो अपना सम्पूर्ण तात्पर्य केवल ऋषिके समक्ष ही प्रकाशित करते हैं, 'कवये निवचनानि निण्या वचांसि।' और जो द्रष्टा इनके बाद आये उनके लिए वेद ज्ञानका, और यहांतक कि एक परम ज्ञानका ग्रंथ था, एक ईश्वरीय ज्ञानका, एक सनातन और निर्व्यक्तिक सत्यका, जैसा कि

+ धीर = धी+र, अर्थात् धी या विचारमें रत रहनेवाले। अनु०

वह अन्तःप्रेरित और भगवत्तुल्य मनीषियों (धीरों) के आंतरीय अनुभवमें देखा और सुना गया था, महान् प्रकाश था।

यज्ञकी जिन छोटीसे छोटी क्रियाओंके विषयमें मंत्र लिखे गए थे उनका प्रयोजन अर्थकी एक प्रतीकात्मक तथा मनोवैज्ञानिक शक्तिको वहन करना था, जैसा कि प्राचीन ब्राह्मण ग्रंथोंके लेखकोंको भलीभांति विदित था। पवित्र मंत्रोंको, जिनमेंसे प्रत्येक अपने- आपमें दिव्य अर्थसे पूर्ण समझा जाता था, उपनिषदोंके विचारक अपने अन्वेषणीय सत्यके गंभीर और अर्थगर्भित बीजरूप शब्द मानते थे और अपने उदात्त उद्‌गारोंके लिए वे जो सर्वोच्च प्रमाण दे सकते थे वह था अपने पूर्णगामी ऋषियोंके ग्रंथसे उद्धृत कोई समर्थक वचन जिसके साथ वे ' तदेषा ऋचाभ्युक्ता ' अर्थात् ' यह वह वाणी है जो ऋग्वेदने उच्चारित की थी।' इस सूत्रका प्रयोग करते थे। पश्चिमी विद्वान् यह कल्पना करना पसंद करते हैं कि वैदिक ऋषियोंके उत्तराधिकारियोंने भूल की है, कुछेक बादके मंत्रोंको छोडकर अन्य पुराने मंत्रोंमें उन्होंने एक मिथ्या और असत् अर्थ भर दिया है और केवल युगोंके द्वारा ही नहीं बल्कि बौद्धिकतामें रंगी ' मनोवृत्तिकी अनेक खाइयों और विभाजक समुद्रोंके द्वारा भी उन ऋषियोंसे पृथक् हुए हुए वे स्वयं उनसे अनंतगुना उत्तम ज्ञान रखते हैं। परंतु केवल साधारण बुद्धिसे भी हमें यह पता लग जाना चाहिए कि जो लोग दोनों तरहसे मूल कवियोंके इतना अधिक निकट थे उनके लिए कम-से कम इस विषयका सारभूत सत्य अधिकृत करनेकी अधिक अच्छी संभावना थी और साधारण बुद्धि ही, कम-से कम, इस प्रबल संभावनाका संकेत देती है कि वेद वस्तुतः वही चीज था जो कुछ होनेका वह दावा करता है, अर्थात् वह एक गुह्य ज्ञानकी खोज था, भारतीय मनके उस अनवरत प्रयत्नका,— भारतीय मन अपने इस प्रयत्नके प्रति सदैव सच्चा रहा है— प्रथम रूपसे या जो उसने स्थूल जगत्‌को प्रतीतियोंसे परे देखने और अपने आंतरिक अनुभवोंके द्वारा उस एकमेव देवताओं, उसकी शक्तियों और स्वयंभू-सत्ताको देखनेके लिए किया था जिसके विषयमें ज्ञानी लोग नाना प्रकारसे चर्चा करते हैं— यह वह प्रसिद्ध पदावलि है जिसमें वेद अपना केन्द्रिय रहस्य प्रकट करता है, ' एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। '

यदि हम वेदको कोई भी स्थल लेकर इसके अपने ही पदों और रूपकोंके अनुसार सीधे-सरल रूपमें इसकी व्याख्या करें तो इसका असली स्वरूप बहुत अच्छी तरह समझमें आ सकता है। एक प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् अपनी श्रेष्ठ बुद्धिके ऊंचे आसनसे उन मूर्ख लोगोंको जिन्हें वेदमें उदात्तता दिखाई देती है भर्त्सना करता हुआ हमें बताता है कि यह बालिश, मूर्खतापूर्ण, यहां तक कि बीभत्स कल्पनाओंसे भरा हुआ है, एक क्लिष्ट, हीन और तुच्छ रचना है और मानव प्रकृतिके स्वार्थ एवं लौकिकतावाले निम्न स्तरका प्रतिनिधित्व करता है और केवल कहीं कहीं कुछेक ऐसी विरली भावनाएं हैं जो अंतरात्मनकी गहराइयोंसे आती हैं। वेदको ऐसा रूप दिया जा सकता है यदि हम ऋषियोंके वचनोंमें अपनी मानसिक कल्पनाएं भर दें, परंतु यदि हम उन्हें उसी रूपमें पढें जैसे कि वे हैं और हमारी समझमें उन प्राचीन बर्बरोंको जैसी बातें कहनी और सोचनी चाहिए थीं वैसी बातोंमें उनका इस प्रकार कोई मिथ्या रूपांतर न करें तो इसके स्थान पर हमें वहां एक पवित्र काव्यके दर्शन होंगे जो अपने शब्दों और रूपकोंमें उदात्त और ओजस्वी हैं यद्यपि भाषा और कल्पना उनसे भिन्न प्रकारकी हैं जिन्हें हम आज अधिक पसंद करते और सराहते हैं, और साथ ही, अपने मनोवैज्ञानिक अनुभवमें गंभीर और सूक्ष्म है तथा अंतर्दर्शन और वाणीकी द्रवित आत्माद्वारा स्पंदित है। स्वयं वेदकी कुछ वाणी सुन लीजिये।

भूमिकाओं पर भूमिकाएं उदित होती हैं, आवरण पर आवरण × ज्ञानकी ओर जाग उठता है। मांकी गोदमें वह सब कुछ पूर्ण रूपसे देखता है। उन्होंने उसे पुकारा है, विशाल ज्ञान लाभ करके वे विनिर्माण भावसे शक्तिकी रक्षा करते हैं, उन्होंने दृढ पुरीमें प्रवेश पा लिया है। इस भूतल पर उत्पन्न हुए मनुष्य शुभ्रवर्णा माता (श्वित्रा) के पुत्रकी ज्योतिर्मय (शक्ति) को बढाते हैं, वह अपनी ग्रीवामें स्वर्ण धारण किए हैं, उसकी वाक्शक्ति विशाल है, वह मानो इस मधुके वह अपनी ग्रीवामें स्वर्ण धारण किए है, उसकी वाक्शक्ति विशाल है, वह मानो इस मधुके (इसकी शक्तिके) द्वारा भूमाकी कामना करनेवाला है। वह प्रिय और काम्य दुग्धकी तरह है, वह एक अकेली वस्तु है और दोके

× अथवा, ' आवरणका आवरण। '

साथ विद्यमान है जो (परस्पर) सहचर है, वह एक ऐसे तापके समान है जो भूमाका उदर है, वह अजेय है और अनेकोंका विजेता है। अपनी क्रीडा कर, ओ रश्मि, और प्रकट हो। ● (ऋग्वेद ५, १९) या फिर अगले सूक्त में,—

तुझ शक्तिमय (देव) की वे (उषाएं) जो अचल, प्रवृद्ध और बलशाली हैं, (तुझसे) भिन्न नियमवालेके द्वेष और कुटिलताका संग छोड देती हैं। हे अग्ने ! हम तुझे पुरोहित, तथा अपने बलको क्रियान्वित करनेके साधन के रूपमें वरते हैं और यज्ञोंमें तेरे लिए प्रसन्नताकारक हवि लाते हुए तुझे (अपनी) वाणीसे पुकारते हैं— हे पूर्ण कर्मोंके देवता ! (हे सुक्रतु) कृपा कर कि हम आनंद और सत्यके भागी हों, किरणोंके साथ आनंद मनायें, वीरों के साथ आनंद मनायें।

और अंतमें हम इसके बादके, तीसरे सूक्तका एक बडा भाग लें जिसमें भावका प्रकाशन यज्ञके साधारण प्रतीकोंमें किया गया है,—

' मनुके रूपमें हम तुझे तेरे स्थान पर स्थापित करते हैं, मनुके रूपमें तुझे प्रदीप्त करते हैं ' हे अग्ने ! हे अंगिरः ! मनुके रूपमें तू देवोंकी कामना करनेवालोंके लिए देवोंका यजन कर। हे अग्ने ! सुप्रसन्न होकर तू मनुष्यमें प्रदीप्त होता है और स्रुवाएं निरंतर तेरी ओर जाती हैं— तुझे सब देवोंने, (तुझ ही में) एक मात्र आनंद लेते हुए, अपना दूत बनाया और तेरी सेवा-सपर्या करते हुए, हे क्रांत-दर्शिन् (कवे), (मनुष्य) यज्ञोंमें देवताकी स्तुति करते हैं। देवोंके यजनके द्वारा मर्त्य दिव्य अग्निकी स्तुति करे। प्रदीप्त होकर, आज्वल्यमान हो, हे दीप्तिमान् (शुक्र) ! सत्यके आसनपर आसीन हो, शांतिके आसन पर विराज-मान हो।

इसके रूपकोंकी हम चाहे जो भी व्याख्या करना पसंद करें पर यह एक गुह्य और प्रतीकात्मक काव्य है और यही है वास्तविक वेद।

इन विशिष्ट मंत्रोंसे वैदिक काव्यका जो स्वरूप हमारे सामने प्रकट होता है उससे हैरान या परेशान होनेकी कोई जरूरत नहीं जब कि हम यह देखते हैं,— और यह बात एशियाई साहित्यके तुलनात्मक अध्ययनसे स्पष्ट हो जायगी, कि यद्यपि वैदिक काव्य ईश्वरीयवाणी--विषयक अपने सिद्धांत और निरूपण, रूपकोंकी अपनी अनोखी प्रणाली तथा अपने विचार और प्रतीकोंमें वर्णित अपने अनुभवकी जटिलताके कारण, औरोंसे भिन्न है, फिर भी वास्तवमें यह आध्यात्मिक अनुभवकी काव्यमय अभिव्यक्तिके लिये प्रतीकात्मक या आलंकारिक कल्पना सृष्टिके एक रूपका आरंभ है जो बादके भारतीय ग्रंथोंमें, तंत्रों और पुराणोंके रूपकों और वैष्णव कवियोंके अलंकारोंमें, यहां तक कि हम रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आधुनिक काव्यके कुछ अंशको भी यहां जोड सकते हैं, पुनः पुनः प्रकट होता है और जिससे मिलती-जुलती चेष्टाएं कुछेक चीनी कवियोंमें तथा सूफियोंमें भी पायी जाती हैं। कविको एक आध्यात्मिक और आंतरात्मिक ज्ञान एवं अनुभवकी अभिव्यक्ति करनी होती है और यह कार्य वह, पूर्णतया या मुख्य रूपसे, दार्शनिक विचारककी अधिक गूढ भाषामें नहीं कर सकता, क्योंकि उसे केवल इसके कोरे विचारको ही नहीं बल्कि इसके साक्षात् जीवन और अत्यंत घनिष्ट स्पर्शोंको भी यथासंभव स्पष्ट रूपमें व्यक्त करना होता है।

उसे किसी-न-किसी प्रकार अपने अंदरके एक संपूर्ण जगत्को तथा अपने चारों ओरके जगत्के सर्वथा आंतरिक और आध्यात्मिक अर्थों और साथ ही, यह भी खूब संभव है कि, चेतनाके जिस स्तरसे हारे सामान्य मन परिचित हैं उससे भिन्न स्तरोंके देवताओं, शक्तियों, अंतर्दर्शनों और अनुभवोंको प्रकाशित करना होता है। वह अपने सामान्य और बाह्य जीवन तथा मानवजातिके जीवन और दृश्यमान प्रकृतिसे लिए हुए रूपकोंको प्रयुक्त करता है या उन्हींको लेकर चलता है, और यद्यपि वे वस्तुतः आध्यात्मिक और आंतरात्मिक विचार एवं अनुभवको अपने आप तो प्रकट नहीं करते तथापि वह उन्हें इसे व्यंजनाके द्वारा या आलं-

● ऋतद्युत, हमारी ओर अभिमुख हो।

* इन स्थानोंका अनुवादमें ने मूलके इतने निकट, शाब्दिक रूपमें किया है जितना कि अंग्रेजी भाषामें करना संभव है। पाठक मूलसे मिलाकर स्वयं निर्णय करें कि क्या इन मंत्रोंका आशय यही है या नहीं।

कारिक रूपमें प्रकट करनेके लिये बाध्य करता है।

वह अपनी अंतर्दृष्टि या कल्पनाके अनुसार रूपकोंमेंकी अपनी संकेतमालाका स्वतंत्रतापूर्वक चुनाव करता हुआ उन्हें अपनाता है और उन्हें एक अन्य अर्थके द्योतक साधनोंके रूपमें परिणत कर देता है और साथ ही प्रकृति और जीवनमें, जिनके साथ कि वे संबंध रखते हैं, एक प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अर्थ डाल देता है, आंतरिक वस्तुओंपर बाह्य अलंकारोंका प्रयोग करता है और उनके प्रसुप्त एवं अंतरीय आध्यात्मिक या चैत्य अर्थको जीवनके बाह्य रूपकों और घटनाओंके रूपमें व्यक्त कर देता है। अथवा एक बाह्य रूपकको ही जो आंतरिक अनुभवके निकटतम एवं उसकी एक स्थूल प्रतिलिपि होता है, सर्वत्र अपनाया जाता है और उसका प्रयोग ऐसे यथार्थवाद और संगतिके साथ किया जाता है कि जहां वह उसका ज्ञान रखनेवालोंके लिए आध्यात्मिक अनुभवको सूचित करता है, वहां दूसरोंके लिए वह केवल बाह्य वस्तुका ही द्योतक होता है, ठीक वैसे ही जैसे बंगालका वैष्णव काव्य भक्तिप्रवण मनके लिए मानव आत्माके ईश्वर प्रेमका भौतिक और भावमय रूपक या संकेत प्रस्तुत करता है, किंतु सांसारिक लोगोंके लिए वह एक ऐसे ऐन्द्रिय और उत्तेजक प्रेम-काव्यके सिवा कुछ नहीं होता जो रूढिबद्ध रूपसे कृष्ण और राधाके परंपरागत मानव-दिव्य व्यक्तित्वोंकी धुरीपर ही अवलंबित रहता है। दोनों पद्धतियां एक साथ मिलकर कार्य कर सकती हैं, अर्थात् बाह्य रूपकोंकी नियत प्रणालीको काव्यके शरीरके रूपमें प्रयुक्त किया जाय जब कि उनकी पहली सीमाओंको पार करने, उन्हें केवल आरंभिक सुझावोंके रूपमें बरतने और सूक्ष्मताके साथ रूपांतरित करने अथवा यहांतक कि उन्हें त्याग देने या किसी गौण स्वरके रूपमें दबा देने या फिर उन्हें अतिक्रम कर जानेकी स्वतंत्रता प्रायः ही बरती जाय ताकि (सत्यकी झांकीके लिए) वे हमारे मनोंके संमुख तो पारदर्शक-सा पर्दा प्रस्तुत करते हैं वह उठ जाय या एक खुले सत्यदर्शनमें परिणत हो जाय। इनमेंसे अंतिम वेदकी पद्धति है और वह कविके अंदर होनेवाले दृष्टिके संवेग और दबावके तथा उसके उद्गारकी उदात्तताके अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।

वेदके कवियोंकी मनोवृत्ति हमारी मनोवृत्तिसे भिन्न थी, उनका अपने रूपकोंका प्रयोग निराले प्रकारका है और एक प्राचीन ढगकी अंतर्दृष्टि इन (रूपकों) की विषय-वस्तुको एक अद्भुत रूप-रेखा प्रदान करती है। भौतिक और आंतरात्मिक लोक उनकी दृष्टिमें वैश्व देवताओंकी एक एक अभिव्यक्ति और एक द्विविध एवं विभिन्न पर फिर भी संबद्ध और सजातीय प्रतिमूर्ति थे, मनुष्यका आंतरिक और बाह्य जीवन देवताओंके साथ एक दिव्य आदान-प्रदान था, और इनके पीछे था एकमेव आत्मा या एकं सत् जिसके कि नाम, व्यक्तित्व और शक्तियां ये देवता थे। ये देवता भौतिक प्रकृतिके स्वामी थे और साथ ही इसके मूलतत्व और रूप भी थे, इनके देवता थे और साथ ही इनके शरीर तथा इनकी ऐसी आंतरिक दिव्य शक्तियां भी थे जिनसे मिलती जुलती अवस्थाएं और शक्तियां हमारी चैत्य सत्तामें उत्पन्न हुई हैं क्योंकि ये विश्वकी अंतरात्म-शक्तियां हैं, सत्य और अमरताके संरक्षक तथा 'अनंत' (अदिति) के पुत्र हैं, और इनमेंसे प्रत्येक ही अपने उद्गम और अपने अंतिम सत्य-स्वरूपमें वह परम आत्मा है जिसने अपने अनेक रूपोंमेंसे एकको सामनेकी ओर कर रखा है।

इन क्रांतदर्शियोंके लिये मनुष्यका जीवन सत्य और असत्यके मिश्रणसे बनी हुई एक वस्तु था, मर्त्यतासे अमरताकी ओर, इस मिश्रित प्रकाश और अंधकारसे एक ऐसे दिव्य सत्यके महातेजकी ओर गति था जिसका घर ऊपर अनंतमें है पर जिसका निर्माण यहां मनुष्यकी अंतरात्मा और जीवनमें भी किया जा सकता है, साथ ही मनुष्यका जीवन प्रकाशकी संतानों और अंधकारके पुत्रोंके बीच एक संग्राम था, एक खजानेको, देवताओंके द्वारा मानव योद्धाको दिये गये ऐश्वर्य एवं जीतके मालको प्राप्त करना था, और साथ ही वह एक यात्रा एवं यज्ञ था। और इन चीजोंका वर्णन वे ऐसे रूपकोंकी एक नियत पद्धतिके द्वारा करते थे जो प्रकृतिसे तथा युद्धप्रिय, पशुपालक और कृषि-जीवी आर्य जातियोंके पारिपार्श्विक जीवनसे लिए गये थे और अग्नि-उपासनाकी प्रणाली, सजीव प्रकृतिकी शक्तियोंकी पूजा और यज्ञकी प्रथाके चारों ओर केंद्रित थे। बाह्य अस्तित्व और यज्ञकी छोटी-मोटी क्रियाएं उनके जीवन तथा आचरणमें आंतरिक वस्तुओंके प्रतीक थीं, और उनके काव्यमें ये क्रियाएं उन वस्तुओंके निर्जीव प्रतीक या कृत्रिम

उपमाएं नहीं बल्कि जीवंत और शक्तिशाली संकेत और प्रतिलिपियां थीं। और अपने भावोंके प्रकाशनके लिये वे अन्य रूपकोंके एक सुनिश्चित पर फिर भी परिवर्तनीय आकारका और गाथा एवं दृष्टांतके उज्ज्वल ताने-बानेका भी प्रयोग करते थे, ऐसे रूपकोंके जो दृष्टांत बन जाते थे, ऐसे दृष्टांतोंको जो गाथाएं बन जाती थीं और ऐसी गाथाओंका जो सदा रूपक ही रहती थीं, और फिर भी ये सब चीजें उनके लिये, एक ऐसे प्रकारसे जिसे केवल वही समझ सकते हैं जो एक विशेष श्रेणीके आंतरात्मिक अनुभवमें प्रवेश पा चुके हैं, यथार्थ सद्वस्तुएं थीं।

भौतिक वस्तु अपनी छायाओंको आंतरात्मिक वस्तुकी प्रभाओंमें विलीन कर देती थी, आंतरात्मिक गहरी होकर 'आध्यात्मिक' के प्रकाशमें परिणत हो जाती थी और इस संक्रमणमें कोई तीव्र विभाजक रेखा नहीं होती थी, होता था केवल उनके संकेतों और रंगोंका स्वाभाविक संमिश्रण और परस्पर प्रभाव। यह प्रत्यक्ष ही है कि इस प्रकारकी दृष्टि या कल्पनावाले व्यक्तियों द्वारा लिखा हुआ इस प्रकारका काव्य केवल भौतिक सत्ताके नियमोंका ही ध्यान रखनेवाली तर्कबुद्धि और रुचिके मानदंडोंके द्वारा समझा या समझाया नहीं जा सकता और न वह इनके द्वारा परखा ही जा सकता है। 'क्रीडा करते हो रश्मि, हमारी ओर अभिमुख हो' यह आवाहन एक साथ ही भौतिक वेदीपर प्रज्वलित शक्तिशाली याज्ञिय ज्वालाओंके भभक उठने एवं प्रकाशपूर्ण क्रीडा करने तथा एक इसी प्रकारकी आंतरात्मिक क्रियाका अर्थात् हमारे अंदर एक दिव्य शक्ति और ज्योतिकी उद्धारकारी ज्वालाके प्रकट होनेका संकेत है।

पश्चिमी आलोचक इस साहसपूर्ण तथा विवेकशून्य रूपकपर — जो उसे भयानक भी प्रतीत होता है- नाक-भौं सिकोड़ता है जिसमें कहा गया है कि द्यावापृथिवीका पुत्र इन्द्र अपने ही पिता और माताको जन्म देता है, पर यदि हम बात स्मरण रखें कि इंद्र परम आत्मा ही है जो अपने एक अन्यतम नित्य-जाग्रत रूपमें विद्यमान है, पृथिवी और द्यौका स्रष्टा है, मनोमय और भौतिक लोकोंके बीच एक वैश्व देवताके रूपमें उत्पन्न हुआ है और उन लोकोंकी शक्तियोंको मनुष्यमें फिरसे उत्पन्न करता है, तो हम देखेंगे कि यह रूपक केवल शक्तिशाली ही नहीं अपितु सचमुचमें एक यथार्थ और सत्यप्रकाशक अलंकार है, और वैदिक परिभाषामें इस बातका कोई महत्व नहीं कि यह भौतिक कल्पनाकी मर्यादाको भंग करता है, क्योंकि यह एक महत्तर काव्य-शक्तिके साथ न कर सकता। वेदके वृषभ और गौ, सूर्यके चमकीले 'गोयूथ' जो गुफामें छुपे पड़े हैं स्थूल मनके लिए काफी विचित्र प्राणी हैं, पर वे इस पृथिवीकी चीजें नहीं हैं, और अपने स्तरमें वे एक ही साथ रूपक और यथार्थ वस्तुएं दोनों हैं और जीवन तथा अर्थसे पूर्ण हैं। वैदिक काव्यकी व्याख्या और सराहना हमें आद्योपांत इसी ढंगसे, इसकी अपनी मूलभावना और दृष्टि, तथा इसके विचारों और अलंकारोंके सत्यके अनुसार ही करनी चाहिये जो हमारे लिए भले ही विचित्र और अतिप्राकृतिक हो पर आंतरात्मिक दृष्टिसे तो बिलकुल स्वाभाविक है।

वेदको जब इस प्रकार समझ लिया जाता है तो वह एक अद्भुत, उदात्त और शक्तिशाली काव्य-रचना ठहरता है, साथ ही उसका यह आकर्षक तो है ही कि वह संसारका सबसे पहला, फिर भी अबतक उपलब्ध धार्मिक ग्रंथ है और मनुष्य, परमेश्वर तथा विश्वकी सबसे प्राचीन व्याख्या है। वह अपने रूप और भाषामें कोई बर्बर कृति नहीं है। वेदके कवि उत्कृष्ट काव्य-कलाके विशारद हैं, उनके स्वर-ताल देवताओंके रथोंके समान अलंकृत हैं और ध्वनिके दिव्य तथा विशाल पंखोंपर सवार हैं, एक साथ ही केंद्रित तथा सुदूरव्यापी हैं, गतिच्छंदमें महान् और स्वरलहरीमें सूक्ष्म हैं, उनकी वाणी गहराईके कारण भावोत्तेजक और ऊंचाईके कारण वीररसमयी होती हुई एक महान् शक्तिका उद्गार है, अपनी रूपरेखामें विशुद्ध, साहसपूर्ण और विराट् है एक ऐसी वाणी है जो हृदय पर सीधे और संघट्ट रूपमें प्रभाव डालती है तथा जो अर्थ और संकेतसे इस तरह लबालब भरी हुई है कि प्रत्येक मंत्र अपने-आपमें एक सशक्त और पर्याप्त वस्तुके रूपमें अपना अस्तित्व रखता है और साथ ही जो कुछ पहले आ चुका है और जो बादमें आता है उन दोनोंके बीचके एक बड़े पगके रूपमें भी अपना स्थान रखता है।

निष्ठापूर्वक अनुसरण की हुई एक पवित्र और पुरोहितीय परंपरा ही उन्हें अपने विषयका बाह्य रूप और सारतत्व

दोनों प्रदान करती थी, परंतु यह सारतत्व उन गहरेसे गहरे आंतरात्मिक एवं आध्यात्मिक अनुभवोंसे गठित होता था जिनतक मानव आत्माकी पहुच हो सकती है और वे रूप ह्रासको प्राप्त होकर कदाचित् ही कभी रूढिमें परिणत होते हैं या कभी भी नहीं होते, क्योंकि जिस वस्तुको द्योतित करनेके लिए वे अभिप्रेत हैं उसे प्रत्येक कवि अपने जीवनमें उतारता था और अपने वैयक्तिक अंतर्दर्शनकी सूक्ष्म या उदात्त अवस्थाओंके द्वारा वह उन्हें अपने मनके लिए अभिव्यक्तिका नया रूप प्रदान करता था। विश्वामित्र वामदेव, दीर्घतमस् तथा अन्य बहुतसे अतिमहान् ऋषियोंके वचन एक उदात्त और रहस्यमय काव्यकी अत्यंत असाधारण उच्चताओं एवं विशालताओंको स्पर्श करते हैं और कुछ एक सृष्टि-सूक्त जैसी कविताएं भी हैं जो ओजस्वी और प्रसादपूर्ण रूपमें विचारके उन शिखरोंपर विचरण करती हैं जिनपर उपनिषदें अधिक स्थिरतापूर्वक श्वास लेती हुई निरंतर विचरण करती थीं। प्राचीन भारतके मनने कोई भूल नहीं की जब कि उसने अपने समस्त दर्शन और धर्मका तथा अपनी संस्कृतिकी सभी प्रधान बातोंका मूल इन ऋषि-कवियोंकी वाणीमें जा ढूंढा, क्योंकि भारतवासियोंकी समस्त भावी आध्यात्मिकता बीज या प्रथम आविर्भावके रूपमें वहीं (उनकी वाणीमें ही) निहित है।

पवित्र साहित्यके रूपमें वैदिक सूक्तोंको ठीक तरहसे समझनेका एक बडा महत्व यह है कि यह हमें भारतीय मन पर शासन करनेवाले प्रधान विचारोंका ही नहीं अपितु उसके आध्यात्मिक अनुभवके विशिष्ट प्रकारों, उसकी कल्पनाके झुकाव, उसके सर्जन शील स्वभाव तथा उसके उन विशेष प्रकारके अर्थपूर्ण रूपोंका भी मूल स्वरूप देखनेमें सहायता पहुंचाता है जिनमें वह आत्मा और पदार्थों तथा जगत् और जीवनके संबंधमें अपनी दृष्टिको दृढतापूर्वक व्याख्या करता था। भारतीय साहित्यके एक बडे भागमें हमें अंतःप्रेरणा और आत्म-अभिव्यंजनाका वही झुकाव देखनेमें आता है जिसे हम अपने स्थापत्य, चित्रकला और मूर्तिकलामें पाते हैं।

इसकी पहली विशेषता यह है कि इसे सतत रूपसे अनंत एवं वैश्व सत्ताका बोध होता है, और वस्तुओंका भी उस रूपमें भान होता है जैसी कि वे वैश्व दृष्टिमें या उसके द्वारा प्रभावित होनेपर दीखती हैं, अथवा जैसी वे एकमेव और अनंतकी विशालताके भीतर या संमुख रखनेपर दिखायी हैं, इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह अपने आध्यात्मिक अनुभवको आभ्यंतर चैत्य स्तरसे लिये गये रूपकोंके परमैश्वर्यके रूपमें अथवा भौतिक रूपकोंके रूपमें देखने और व्यक्त करनेमें प्रवृत्त होता है जो चैत्य अर्थ, प्रभाव, रेखा और विचार-छटाके दबावके द्वारा रूपांतरित हो चुके होते हैं, और इसकी तीसरी प्रवृत्ति पार्थिव जीवनको प्रायः परिवर्द्धित रूपमें चित्रित करनेकी है, जैसा कि हम महाभारत और रामायणमें देखते हैं, अथवा उसे एक विशालतर वातावरणकी शुभ्रताओंमें सूक्ष्म रूप प्रदान कर तथा पार्थिव अर्थको अपेक्षा किसी महत्तर अर्थसे संयुक्त करके चित्रित करने या, कमसे कम उसे केवल इसके अपने पृथक् रूपमें ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक और आंतरात्मिक लोकोंकी पृष्ठभूमिमें प्रस्तुत करनेकी है।

आध्यात्मिक एवं अनंत सत्ता निकटस्थ और वास्तविक है तथा देवता भी वास्तविक हैं और (हमसे) परेके लोक हमारी सत्तासे परे होनेकी अपेक्षा कहीं अधिक इसके भीतर अवस्थित हैं। जो चीज पश्चिमी मनके लिये एक गाथा और तंतु, जो चीज वहां एक सुन्दर काव्यमय परिकल्पना और दार्शनिक विचारणा है वह यहां एक ऐसी वस्तु है जो अनुभवके लिये सर्वदा उपलब्ध और विद्यमान है। भारतीय मनकी यह प्रवृत्ति, उसकी आध्यात्मिक सद्-हृदयता एवं आंतरात्मिक प्रत्यक्षवादिता ही वेद और उपनिषदोंको तथा पीछेके धार्मिक एवं धर्म-दार्शनिक काव्यको अंतःप्रेरणाकी दृष्टिसे इतना शक्तिशाली और अभिव्यंजना तथा रूपककी दृष्टिसे इतन अंत रंग और सजीव रूप प्रदान करती है, साथ ही अधिक लौकिक साहित्यमें भी काव्यमय भावना और कल्पनाकी क्रियापर इसका प्रभाव कुछ कम अभिभूतकारी होनेपर भी अत्यंत प्रत्यक्ष रूपमें दृष्टिगोचर होता है।

कुछ वैदिक प्रतीक

(श्री अरविन्द)

★

वैदिक ऋषियोंके इस आधारभूत विचारको हम 'सृष्टि-सूक्त' (१०।१२९) में प्रतिपादित किया हुआ पाते हैं, जहां कि अवचेतनका इस प्रकार वर्णन किया गया है, 'अंधकारसे घिरा हुआ अंधकार, यही सब कुछ था जो कि प्रारम्भमें था, एक समुद्र था जो कि बिना मानसिक चेतनाके था... इसमेंसे एक पैदा हुआ, अपनी शक्तिकी महत्ताके द्वारा। (३)। पहले पहल इसके अन्दर इसने इच्छा (काम) के रूपमें गति की, जो इच्छा कि मनका प्रथम बीज था। उन्होंने जो कि बुद्धिके स्वामी थे असत्‌मेंसे उसे पा लिया जो कि सत्‌का निर्माण करता है, हृदयके अन्दर उन्होंने इसे सोद्देश्य अन्तःप्रवृत्तिके द्वारा और विचारात्मक मन द्वारा पाया। (४)। उनकी किरण दिगन्तसम रूपसे फैली हुई थी, उसके ऊपर भी कुछ था, उसके नीचे भी कुछ था *। (५)।' इस संदर्भमें वे ही विचार प्रतिपादित हैं जो कि वामदेवके सूक्तमें, परन्तु रूपकोंका आवरण यहां नहीं है। अचेतनके समुद्रमेंसे 'एक तत्त्व' हृदयमें उठता है जो सर्वप्रथम इच्छा (काम) के रूपमें आता है; वहां हृदय-समुद्रमें वह सत्ताके आनन्दकी एक अव्यक्त इच्छाके रूपमें गति करता है और यह इच्छा उसका प्रथम बीज है जो कि बादमें इन्द्रियाश्रित मनके रूपमें प्रकट होता है। इस प्रकार देवताओंको अवचेतनके अन्धकारमेंसे सत्‌को सचेतन सत्ताको, निर्मित कर लेनेका एक साधन मिल जाता है, वे इसे हृदयमें पाते हैं और विचारके तथा सोद्देश्य प्रवृत्तिके विकासके द्वारा बाहर निकाल लाते हैं, 'प्रतीष्या' जिस शब्दसे मनोमय इच्छाका ग्रहण करना अभिप्रेत है, जो कि उस पहली अस्पष्ट इच्छासे भिन्न है जो कि अवचेतनमेंसे प्रकृतिकी केवल प्राणमय गतियोंमें उठती है। सचेतन सत्ता, जिसे कि वे इस प्रकार रचते हैं, इस प्रकार विस्तृत होती है मानो कि वह अन्य दो विस्तारोंके बीचमें दिगन्तसम रूपमें हो; नीचे अवचेतनकी अन्धकारमय निद्रा होती है, ऊपर होती है अतिचेतनकी प्रकाशपूर्ण रहस्यमयता। ये ही ऊपरले और निचले समुद्र हैं।

यह वैदिक अलंकार पुराणोंके इसी प्रकारके प्रतीकात्मक अलंकारोंपर भी एक स्पष्ट प्रकाश डालता है, विशेषकर 'विष्णु' के इस प्रसिद्ध प्रतीकपर कि वह प्रलयके बाद क्षीरसागरमें 'अनंत' सांपकी कुण्डलीमें शयन करता है। यहां यह आक्षेप किया जा सकता है कि पुराण तो उन अन्धविश्वासी हिंदू पुरोहितों या कवियों द्वारा लिखे गये थे जो यह विश्वास रखते थे कि ग्रहणोंका कारण यह है कि एक दैत्य सूर्य और चन्द्रमाको ग्रसता (खा जाता) है और वे आसानीसे ही इसपर भी विश्वास कर सकते थे कि प्रलयके समय परमात्मा भौतिक शरीरमें सचमुचके दूधके भौतिक समुद्रमें एक भौतिक सांपके ऊपर सोने जाता है और इसलिये यह व्यर्थका बुद्धिकौशल दिखाना है कि इन कहानियोंका कोई आध्यात्मिक अर्थ खोजा जाए। मेरा उत्तर यह होगा कि वस्तुतः उनमें ऐसे अभिप्राय खोजनेकी, ढूंढनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इन्हीं 'अन्धविश्वासी' कवियोंने ही वहां स्पष्ट रूपसे कहानियोंके उपरिपृष्ठपर ही

---

* तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
(तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्) तपसस्तन्महिनाऽजायतैकम् ॥ ३ ॥
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ॥ ५ ॥

इन अभिप्रायोंको रख दिया है जिससे कि इन्हें प्रत्येक व्यक्ति, जो कि जान बूझकर अन्धा नहीं बनता, देख सकता है। क्योंकि उन्होंने विष्णुके सांपका एक नाम भी रखा है, वह नाम है 'अनंत', जिसका अर्थ है असीम; इसलिये उन्होंने हमें पर्याप्त स्पष्ट रूपमें कह दिया है कि यह कल्पना एक अलंकार ही है और विष्णु, अर्थात् सर्वव्यापक देवता, प्रलयकालमें अनंतकी अर्थात् असीमकी कुण्डलियोंके अन्दर शयन करता है। बाकी क्षीरसमुद्रके विषयमें यह कि वैदिक अलंकार हमें यह दर्शाता है कि यह असीम सत्ताका समुद्र होना चाहिये और असीम सत्ताका समुद्र है नितान्त मधुरताका, दूसरे शब्दोंमें विशुद्ध सुखका एक समुद्र। क्योंकि क्षीर या मधुर दूध (जो कि स्वयं भी एक वैदिक प्रतीत है) स्पष्ट ही एक ऐसा अर्थ रखता है जो कि वामदेवके सूक्तके 'मधु' शब्द या मधुरतासे सारतः भिन्न नहीं है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि वेद और पुराण दोनों एक ही प्रतीकात्मक अलंकारोंका प्रयोग करते हैं; समुद्र उनके लिये असीम और शाश्वत सत्ताका प्रतीक है। हम यह भी पाते हैं कि नदी या बहनेवाली धाराके रूपकको सचेतन सत्ताके प्रवाहका प्रतीकात्मक वर्णन करनेके लिये प्रयुक्त किया गया है। हम देखते हैं कि सरस्वती, जो कि सात नदियोंमेंसे एक है, अन्तः प्रेरणाकी नदी है जो कि सत्य चेतनासे निकलकर बहती है। तो हमें यह कल्पना करनेका अधिकार है कि अन्य छः नदियां भी आध्यात्मिक प्रतीक होनी चाहिये।

यज्ञ यह है कि मनुष्यके पास अपनी सत्तामें जो कुछ है उसे वह उच्चतर या दिव्य स्वभावको अर्पित कर दे और इस यज्ञका फल यह होता है कि उसका मनुष्यत्व देवोंके मुक्त हस्त दानके द्वारा और अधिक समृद्ध हो जाता है। दौलत जो इस प्रकार यज्ञ करनेसे प्राप्त होती है आध्यात्मिक ऐश्वर्य, समृद्धि, आनन्दकी अवस्थासे निर्मित होती है और यह अवस्था स्वयं यात्रामें सहायक होनेवाली एक शक्ति है और युद्धकी एक शक्ति है। क्योंकि यज्ञ एक यात्रा है, एक प्रगति है, यज्ञ स्वयं यात्रा करता है जो इसकी यात्रा 'अग्नि' को नेता बनाकर दिव्य मार्गसे देवोंके प्रति होती है और 'स्वः' के दिव्य लोकके प्रति अंगिरस पितरोंका आरोहण इसी यात्राका आदर्श रूप (नमूना) है। अंगिरस पितरोंकी यह आदर्श यज्ञ यात्रा एक युद्ध भी है, क्योंकि पणि, वृत्र तथा पाप और अनृतकी अन्य शक्तियां इस यात्राका विरोध करती हैं और इस युद्धका इन्द्र तथा अंगिरस ऋषियोंकी पणियोंके साथ लडाई एक मुख्य कथांश है।

यज्ञके प्रधान अंग हैं ज्वालाको प्रज्वलित करना, 'घृत' की तथा सोमरसकी हवि देना और पवित्र शब्दका गान करना। स्तुति तथा हविके द्वारा देव प्रवृद्ध होते हैं, उनके लिये कहा गया है कि वे मनुष्यके अंदर उत्पन्न होते हैं, रचे जाते हैं या अभिव्यक्त होते हैं, तथा यहां अपनी वृद्धि और महत्तासे वे पृथिवी और द्यौ को अर्थात् भौतिक और मानसिक सत्ताको इनका अधिकसे अधिक जितना ग्रहण सामर्थ्य होता है उतना बढा देते हैं और फिर, इन्हें अतिक्रान्त करके, अवसर आने पर उच्चतर लोकों या स्तरोंकी रचना बना देते हैं। उच्चतर सत्ता दिव्य है, असीम है, जिसकी चमकीली गौ, असीम माता, अदिति प्रतीक है; निम्न सत्ता उसके अन्धकारमय रूप दितिके अधीन है।

यज्ञका लक्ष्य है उच्च या दिव्य सत्ताको जीतना, और निम्न या मानवीय सत्ताको हम दिव्य सत्तासे युक्त कर देना तथा इसके नियम और सत्यके अधीन कर देना। यज्ञ का 'घृत' चमकीली गौ की देन है, यह 'घृत' मानवीय मनोवृत्तिके अन्दर और प्रकाशकी निर्मलता या चमक है। 'सोमरस' है सत्ताका अमृतरूप आनन्द जो कि जलोंमें और सोम नामक पौधे (लता) में निगूढ रहता है और देवों तथा मनुष्यों द्वारा पान करनेके लिये निचोडा जाता है। शब्द है अन्तः प्रेरित वाणी जो कि सत्यके उस विचार प्रकाशको अभिव्यक्त करती है जो आत्मामेंसे उठता है, हृदयमें निर्मित होता है और मन द्वारा आकृतियुक्त होता है। 'अग्नि' घृतसे प्रवृद्ध होकर और 'इन्द्र' सोमकी प्रकाशमय शक्तिसे तथा आनन्दसे सबल और शब्द द्वारा प्रवृद्ध होकर, सूर्यकी गौओंको फिरसे पा लेनेमें अंगिरसोंकी सहायता करता है।

बृहस्पति सर्जनकारी शब्दका अधिपति है। यदि अग्नि प्रथम अंगिरा है, वह ज्वाला है जिससे कि अंगिरस ऋषि पैदा हुए हैं तो बृहस्पति वह एक अंगिरा है जो सात मुख

वाला अर्थात् प्रकाशकारी विचारकी सात किरणोंवाला और इस विचारको अभिव्यक्त करनेवाले सात शब्दोंवाला (एक अंगिरा) है, जिसकी ये सात ऋषि (अंगिरस्) उच्चारण शक्तियां बने हैं। यह सत्यका सात सिरोंवाला अर्थात् पूर्ण विचार है जो कि मनुष्यके लिये यज्ञकी लक्ष्यभूत पूर्ण आध्यात्मिक दौलतको जीतकर उसके लिये चौथे या दिव्य लोकको जीत लाता है। इसलिये, अग्नि, इन्द्र, बृहस्पति, सोम सभी इस रूपमें वर्णित किये गये हैं कि ये सूर्यकी गौओंको जीत लानेवाले हैं और उन दस्युओंके विनाशक हैं जो कि इन गौओंको छिपा लेते हैं और मनुष्यके पास आनेसे रोकते हैं। सरस्वती भी, जो कि दिव्य शब्दकी धारा या सत्यकी अन्तः प्रेरणा है, दस्युओंका वध करनेवाली और चमकीली गौओंको जीतनेवाली है, इन गौओंको ढूंढा है इन्द्रकी अग्रदूती सरमाने जो कि सूर्यकी या उषाकी एक देवी है और सत्यकी अन्तर्ज्ञानमयी शक्तिकी प्रतीक मालूम होती है। उषा एक साथ दोनों है, स्वयं वह इस महान् विजयमें एक कार्यकर्त्री भी है और पूर्ण रूपमें उसका आगमन इस विजयका उज्ज्वल परिणाम है।

उषा दिव्य अरुणोदय है, क्योंकि सूर्य जो कि उसके आगमनके बाद प्रकट होता है पराचेतन सत्यका सूर्य है; दिन जिसको वह सूर्य लाता है सत्यमय ज्ञानके अन्दर होने वाला सत्यमय जीवनका दिन है, रात्रि जिसे वह विध्वस्त करता है अज्ञानकी रात्री है जो कि उषाको अपने अन्दर छिपाये रखती है। उषा स्वयं सत्य है, सुनृता है और सत्योंकी माता है। दिव्य उषाके इन सत्योंको उषाकी गौएं, उषाके चमकीले पशु कहा गया है, जबकि सत्यके वेगवान् बैलोंको जो कि इन गौओंके साथ रहते हैं और जीवनको अधिष्ठित करते हैं उषाके घोड़े कहा गया है। गौओं और घोड़ोंके इस प्रतीकके चारों ओर वैदिक प्रतीकवादका अधिकांश घूम रहा है, क्योंकि ये ही उन सम्पत्तियोंके मुख्य अंग है जिनको मनुष्यने देवोंसे पाना चाहा है। उषाकी गौओंको अन्धकारके अधिपति दानवोंने चुरा लिया है और ले जाकर गूढ अवचेतनाकी अपनी निम्नतर गुफामें छिपा दिया है। वे गौएं ज्ञानकी ज्योतियां हैं, सत्यके विचार हैं (गावो मतयः) जिन्हें उनकी इस कैदसे छुटकारा दिलाना है। उनके छुटकारेका अभिप्राय है दिव्य उषाकी शक्तियोंका वेगसे ऊर्ध्वगमन होने लगना।

साथ ही इस छुटकारेका अभिप्राय उस सूर्यकी पुनः प्राप्ति भी है जो कि अन्धकारमें छिपा पड़ा था, क्योंकि यह कहा गया है कि सूर्य अर्थात् दिव्य सत्य, 'सत्यं तत्', वही वह वस्तु थी जिसे इन्द्र और अंगिरसोंने पणियोंकी गुफामें पाया था। उस गुफाके विदीर्ण हो जानेपर दिव्य उषाकी गौएं जो कि सत्यके सूर्यकी किरणें हैं आरोहण करके सत्ताकी पहाड़ीके ऊपर जा पहुंचती हैं और सूर्य स्वयं दिव्य सत्ताके प्रकाशमान ऊर्ध्व समुद्रमें ऊपर चढ़ता है, जो विचारक हैं वे जलमें जहाजकी तरह इस ऊर्ध्व समुद्रमें इस सूर्यको आगे आगे ले जाते हैं जबतक कि वह इसके दूरवर्ती परले तटपर नहीं पहुंच जाता।

पणि जो कि गौओंको कैद करनेवाले हैं, जो निम्न गुफाके अधिपति हैं, दस्युओंमेंकी एक श्रेणीके हैं; जो दस्यु वैदिक प्रतीकवादमें आर्य देवों और आर्य द्रष्टाओं तथा कार्यकर्ताओंके विरोधमें रखे गये हैं। आर्य वह है जो यज्ञ के कार्यको करता है, प्रकाशके पवित्र शब्दको प्राप्त करता है, देवोंको चाहता और उन्हें बढ़ाता है तथा स्वयं उनसे बढ़ाया जाकर सच्चे अस्तित्वकी विशालताको प्राप्त करता है; वह प्रकाशका योद्धा है और सत्यका यात्री है। 'दस्यु' है अदिव्य सत्ता जो किसी प्रकारका यज्ञ नहीं करती, दौलतको बटोर-बटोरकर जमा तो कर लेती है पर उसका ठीक प्रकार उपयोग नहीं कर सकती, क्योंकि वह शब्दको नहीं बोल सकती या पराचेतन सत्यको मनोगत नहीं कर सकती, शब्दसे, देवोंसे और यज्ञसे द्वेष करती है और अपनेआपसे कोई वस्तु उच्च सत्ताओंको नहीं देती, बल्कि आर्यकी उसकी अपनी दौलतको उससे लूट लेती है और अपने पास रोक रखती है। वह चोर है, शत्रु है, भेड़िया है, भक्षक है, विभाजक है, बाधक है, अवरोधक है। दस्यु अन्धकार और अज्ञानकी शक्तियां हैं जो सत्यके तथा अमरत्वके अन्वेष्टाका विरोध करती हैं। देव हैं प्रकाशकी शक्तियां असीमता (अदिति) के पुत्र, एक परम देवके रूप और व्यक्तित्व जो अपनी सहायताके द्वारा तथा मनुष्यके अन्दर अपनी वृद्धि और मानुष व्यापारोंके द्वारा मनुष्यको ऊंचा उठाकर सत्य और अमरतातक पहुंचा देते हैं।

आध्यात्मिकवादके आधार

श्री अरविन्द

★

वेदोंके अर्थके विषयमें कोई वाद निश्चित और युक्तियुक्त हो सके, इसके लिये यह आवश्यक है कि वह ऐसे आधार पर टिका हो जो स्पष्ट तौर पर स्वयं वेदकी ही भाषामें विद्यमान हो। चाहे वेदमें जो सामग्री है उसका अधिक भाग प्रतीकों और अलंकारोंका एक समुदाय है, जिसका आशय खोजकर पता लगानेकी आवश्यकता है, तो भी मंत्रोंकी स्पष्ट भाषामें ही हमें साफ साफ निर्देश मिलने चाहियें जो वेदका आशय समझनेमें हमारा पथ-प्रदर्शन करें। नहीं तो, क्योंकि प्रतीक स्वयं संदिग्ध अर्थको देनेवाले हैं, यह खतरा है कि ऋषियोंने जिन अलंकारोंको चुना है उनके वास्तविक अर्थको ढूढ निकालनेके बजाय कहीं हम अपनी स्वतंत्र कल्पनाओं और पसन्दगीके बलपर कुछ और ही वस्तु न गढ डालें। उस अवस्थामें, हमारा सिद्धान्त चाहे कितना ही बुद्धिपूर्वक और पूर्ण क्यों न हो, यह हवाई किले बनानेके समान होगा जो शानदार भले हो पर उसमें कोई वास्तविकता या सार नहीं होगा।

इसलिये हमारा सबसे पहिला कर्त्तव्य यह है कि हम इस बातका निश्चय करें कि अलंकारों और प्रतीकोंके अतिरिक्त, वेदमन्त्रोंकी स्पष्ट भाषामें आध्यात्मिक विचारोंका पर्याप्त बीज विद्यमान है या नहीं जो हमारी इस कल्पनाको न्यायोचित सिद्ध कर सके कि वेदका जंगली और असंबद्ध अर्थकी जगह एक उच्चतर अर्थ है। और इसके बाद हमें, जहांतक हो सके स्वयं सूक्तोंकी अन्त: साक्षीके ही द्वारा प्रत्येक प्रतीक और अलंकारका वास्तविक अभिप्राय क्या है तथा वैदिक देवताओंमेंसे प्रत्येकका अलग अलग ठीक ठीक आध्यात्मिक व्यापार क्या है यह मालूम करना होगा। वेदकी प्रत्येक नियत परिभाषाका एक स्थिर, न कि इच्छानुसार बदलते रहनेवाला, अर्थ पता लगाना होगा जिसकी प्रामाणिकता ठीक ठीक भाषाविज्ञानसे पुष्ट होती हो और जो उस प्रकरणमें जहां वह शब्द आता है स्वभावतः ही बिल्कुल उपयुक्त बैठता हो।

क्योंकि जैसा पहले हो कहा जा चुका है, वेदमंत्रोंकी भाषा एक नियत तथा अपरिवर्तनीय भाषा है, यह सावधानीके साथ सुरक्षित तथा निर्दोष रूपसे आदर पाई हुई वाणी है, जो या तो एक विधि-विधान संबंधी सम्प्रदाय और याज्ञिक कर्मकाण्डको अथवा एक परम्परागत सिद्धान्त और सतत अनुभूतिको संगतिपूर्वक अभिव्यक्त करती है। यदि वैदिक ऋषियोंकी भाषा स्वच्छन्द तथा परिवर्तनीय होती, यदि उनके विचार स्पष्ट तौरसे तरल अवस्थामें, अस्थिर और अनियत होते, तब हम कह सकते कि उनकी परिभाषाओंमें जैसा चाहो वैसा अर्थ कर लेनेकी सुलभ छूट है तथा असंगति है, यह बात एवं उनके विचारोंमें हम जो कुछ संबंध निकालते हैं, वह सब न्याय्य अथवा अथवा सह्य हो सकता।

परन्तु वेदमंत्र प्रत्यक्ष ही इसके विरुद्ध साक्षी देते हैं। इसलिये हमें यह मांग करनेका अधिकार है कि व्याख्याकारको अपनी व्याख्या करते हुए वैसी ही सचाई और सतर्कता रखनी चाहिये, जैसी उस मूलमें रखी गई है जिसकी वह व्याख्या करना चाहता है। वैदिक धर्मके विभिन्न विचारों और उसकी अपनी परिभाषाओंमें स्पष्ट ही एक अविच्छिन्न संबंध है। उनकी व्याख्यामें यदि असंगति और अनिश्चितता होगी, तो उससे केवल यही सिद्ध होगा कि व्याख्याकार ठीक ठीक संबंधको पता लगानेमें असफल रहा है, न कि वेदकी प्रत्यक्ष साक्षी भ्रान्तिजनक है।

इस प्रारम्भिक प्रयासको सतर्कता तथा सावधानीके साथ कर चुकनेके पश्चात् यदि मंत्रोंके अनुवादके द्वारा यह दिखाया जा सके कि जो अर्थ हमने निश्चित किये थे वे स्वाभाविकतया और आसानीके साथ किसी भी प्रकरणमें ठीक बैठते हैं, यदि उन अर्थोंको हम ऐसा पायें कि उनसे धुंधले दीखनेवाले प्रकरण स्पष्ट हो जाते हैं और जहां पहले केवल असंगति और अव्यवस्था मालूम होती थी वहां उनसे समझमें आने योग्य और स्पष्ट स्पष्ट संगति दीखने

लगती है; यदि पूरेके पूरे सूक्त इस प्रकार एक स्पष्ट और सुसम्बद्ध अभिप्रायको देने लग जायें और क्रमबद्ध मंत्र सम्बद्ध विचारोंकी एक युक्तियुक्त शृंखलाको दिखाने लगें, और कुल मिला कर जो परिणाम निकले वह यदि सिद्धान्तोंका एक गम्भीर, संगत तथा पूर्ण समुदाय हो, तो हमारी कल्पनाको यह आधार होगा कि वह दूसरी कल्पनाओंके मुकाबलेमें खड़ी हो और जहां वे इसके विरोधमें जाती हों वहां उन्हें ललकारे या जहां वे इसके परिणामोंसे संगति रखती हों वहां उन्हें पूर्ण बनाये।

न ही उस अवस्थामें हमारी स्थापनाकी संभवनीयता अपेक्षाकृत कम होगी, बल्कि इसके विपरीत इसकी प्रामाणिकता पुष्ट ही होगी, यदि यह पता लगे कि इस प्रकार वेदमें जो विचारों और सिद्धान्तोंका समुदाय प्रकट हुआ है वह उन उत्तरवर्ती भारतीय विचार और धार्मिक अनुभूतिका एक अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन रूप है, जो कि स्वभावतः वेदान्त और पुराणके जनक हुए हैं।

ऐसा बड़ा और सूक्ष्म प्रयास इस छोटीसी और संक्षिप्त लेखमालाके क्षेत्रसे बाहरकी बात है। इन अध्यायोंको लिखनेका मेरा प्रयोजन केवल यह है कि उनके लिये जो कि उस सूत्रका अनुकरण करना चाहते हैं जिसे कि मैंने पाया है, उस मार्गका और उसमें आनेवाले मुख्य-मुख्य मोड़ोंका दिग्दर्शन कराएं- उन परिणामोंका दिग्दर्शन कराएं जिनपर कि मैं पहुंचा हूं और उन मुख्य निर्देशोंका जिनके द्वारा कि वेद स्वयंमेव उन परिणामों तक पहुंचनेमें हमारी सहायता करता है।

और सबसे पहिले, यह मुझे उचित प्रतीत होता है कि, मैं यह स्पष्ट कर दूं कि यह कल्पना मेरे अपने मनमें किस प्रकार उदय हुई, जिससे कि पाठक जिस दिशाको मैंने अपनाया है उसे अधिक अच्छी प्रकार समझ सकें, अथवा हो सकता है कि, मेरे कोई पूर्व पक्षपात या मेरी अपनी वैयक्तिक अभिरुचियोंसे जिन्होंने कि इस कठिन प्रश्नपर होनेवाली युक्ति शृंखलाके यथोचित प्रयोगको सीमित कर दिया हो या उसे प्रभावित किया हो तो उसको, यदि पाठक चाहें, निवारण कर सकें।

जैसा कि अधिकांश शिक्षित भारतीय करते हैं, मैंने भी स्वयं वेदको पढ़नेसे पहिले ही बिना परीक्षा किये योरोपियन विद्वानोंके परिणामोंको कुछ भी प्रतिकार किये बगैर वैसाका वैसा ही स्वीकार लिया था, जो परिणाम कि प्राचीन मंत्रोंकी धार्मिक दृष्टि तथा ऐतिहासिक व जाति-विज्ञान संबंधी दृष्टि दोनोंके विषयमें थे। इसके फल स्वरूप, फिर आधुनिक रंगमें रंगे हिन्दु मतसे स्वीकृत सामान्य दिशाका ही अनुसरण करते हुए, मैंने उपनिषदोंको ही भारतीय विचार और धर्मका प्राचीन स्रोत, सच्चा वेद, ज्ञानकी आदि पुस्तक समझ लिया था। ऋग्वेदके जो आधुनिक अनुवाद प्राप्त हैं, केवल मात्र वही सब कुछ था जो कि मैं इस गम्भीर धर्मपुस्तकके विषयमें जानता था और इस ऋग्वेदको मैं यही समझता था कि यह हमारे राष्ट्रीय इतिहासका एक महत्त्वपूर्ण लेख्य है, परन्तु विचारके इतिहासके रूपमें या एक सजीव आत्मिक अनुभूतिके रूपमें मुझे इसका मूल्य या इसकी महत्ता बहुत थोड़ी प्रतीत होती थी।

वैदिक विचारके साथ मेरा प्रथम परिचय अप्रत्यक्ष रूपसे उस समय हुआ जब कि मैं भारतीय योगकी विधिके अनुसार आत्मविकासकी किन्हीं दिशाओंमें अभ्यास कर रहा था। आत्मविकासकी ये दिशाएं स्वतः ही हमारे पूर्व पितरोंसे अनुसृत, प्राचीन और अब अनभ्यस्त मार्गोंकी ओर मेरे अनजाने ही प्रवृत्ति रखती थीं। इस समय मेरे मनमें प्रतीक रूप नामोंकी एक शृंखला उठनी शुरु हुई, जो प्रतीक किन्हीं ऐसी आध्यात्मिक अनुभूतियोंसे सम्बद्ध थे, जो अनुभूतियां नियमित रूपसे होनी आरम्भ हो चुकी थीं, और उनके बीचमें तीन स्त्रीलिंगी शक्तियों इळा, सरस्वती, सरमाके प्रतीक आये, जो कि अन्तर्ज्ञानमय बुद्धिकी चार शक्तियोंमेंसे तीनकी-क्रमशः स्वतः प्रकाश (Revelation) अन्तः प्रेरणा (Inspiration) और अन्तर्ज्ञान (Intuition) की द्योतक थीं। इन नामोंमेंसे दो मुझे इस रूपमें सुपरिचित नहीं थे कि ये वैदिक देवियोंके नाम हैं, बल्कि इससे कहीं अधिक इनको मैं यह समझता था कि ये प्रचलित हिन्दुधर्म या प्राचीन पौराणिक कथानकोंके साथ संबंध रखती हैं अर्थात् 'सरस्वती' विद्याकी देवी है और 'इळा' चन्द्रवंशकी माता है। परन्तु तीसरी 'सरमा' से मैं पर्याप्त रूपसे परिचित था।

तथापि इसकी जो आकृति मेरे अन्दर उठी थी, उसमें

और स्वर्गकी कुतिया ' सरमा ' में मैं कोई संबंध निश्चित नहीं कर सका, जो कि ' सरमा ' मेरी स्मृतिमें आर्गिव हेलेन + (Argive Helen) के साथ जुडी हुई थी और केवल उस भौतिक उषाके रूपककी द्योतक थी, जो खोयी हुई प्रकाशकी गौओंको खोजते-खोजते अन्धकारकी शक्तियोंकी गुफामें घुस जाती है। एक बार यदि मूल सूत्र मिल जाता, इस बातका सूत्र कि भौतिक प्रकाश मानसिक प्रकाशको निरूपित करता है, तो यह समझ जाना आसान था कि स्वर्गकी कुतिया ' सरमा ' अन्तर्ज्ञान हो सकता है, जो कि अवचेतन मन (Subconscious mind) की अन्धेरी गुफाओंके अन्दर प्रवेश करता है, ताकि उन गुफाओंमें पडे हुए ज्ञानके चमकीले प्रकाशोंको छुटकारा दिलानेकी और छूटकर उनके जगमगानेकी तैयारी करे। परन्तु वह सूत्र नहीं मिला, और मैं प्रतीकके किसी सादृश्यके बिना, केवल नामके सादृश्यको कल्पित करनेके लिये बाध्य हुआ।

पहिले पहल गंभीरतापूर्वक मेरे विचार वेदकी ओर तब आकृष्ट हुए जब कि मैं दक्षिण भारतमें रह रहा था। दो बातोंने जो कि बलात् मेरे मन पर आकर पडीं, उत्तरीय आर्य और दक्षिणीय द्रविडियोंके बीच जातीय विभागके मेरे विश्वास पर, जिस विश्वासको मैंने दूसरोंसे लिया था, एक भारी आघात पहुंचाया। मेरा यह जातीय विभागका विश्वास पूर्णतः निर्भर करता था उस कल्पित भेद पर, जो कि आर्यों तथा द्रविडियोंके भौतिक रूपोंमें किया गया है, तथा उस अपेक्षाकृत अधिक निश्चित विसंवादिता पर जो कि उत्तरीय संस्कृतजन्य तथा दक्षिणीय संस्कृतभिन्न भाषाओंके बीचमें पायी जाती है।

मैं उन नये मतोंसे तो अवश्य परिचित था, जिनके अनुसार भारतके प्रायद्वीप पर एक ही सवर्ण जाति, द्रविड जाति या भारत-अफगान (Indo-Afghan) जाति, निवास करती है, परन्तु अब तक मैंने इनको कभी अधिक महत्व नहीं दिया था। पर दक्षिण भारतमें मुझ पर यह छाप पडनेमें बहुत समय नहीं लगा कि तामिल जातिमें उत्तरीय या ' आर्यन ' रूप विद्यमान है। जिधर भी मैं मुडा, एक चकित कर देनेवाली स्पष्टताके साथ मुझे यह प्रतीत हुआ कि मैं न केवल ब्राह्मणोंमें किन्तु सभी जातियों और श्रेणियोंमें महाराष्ट्र, गुजरात, हिन्दुस्थानके अपने मित्रोंके उन्हीं पुराने परिचित चेहरों, रूपों, आकृतियोंको पहिचान रहा हूं, बल्कि अपने प्रान्त बंगालके भी यद्यपि यह बंगालकी समानता अपेक्षाकृत कम व्यापक रूपमें फैली हुई थी।

जो छाप मुझ पर पडी, वह यह थी कि मानों उत्तरकी सभी जातियों, उपजातियोंकी एक सेना दक्षिणमें उतर कर आयी हो और आकर जो कोई भी लोग यहां पहिलेसे बसे हुए हों, उनमें हिल-मिल गयी हो। दक्षिणीय रूप (Type) की एक सामान्य छाप बची रही, परन्तु व्यक्तियोंकी मुखाकृतियोंका अध्ययन करते हुए उस रूपको दृढताके साथ स्थापित कर सकना असंभव था। और अन्तमें यह धारणा बनाये बिना मैं नहीं रह सका कि जो कुछ भी संकर हो गये हों, चाहे जो भी प्रादेशिक भेद विकसित हो गये हों, सब विभेदोंके पीछे सारे भारतमें एक भौतिक- जैसे कि एक सांस्कृतिक- रूप (Type)× की एकता अवश्य है। शेषतः, यह है परिणाम जिसकी ओर पहुंचने की स्वयं जाति विज्ञान ※ संबंधी विचार भी अधिक प्रवृत्ति रखता है।

परन्तु तो फिर इस तीव्र भेदका क्या होगा जो कि

+ ग्रीक गाथा शास्त्रकी एक देवी।

× मैंने यह पसन्द किया है कि यहां जाति (Race) शब्दका प्रयोग न करूं क्योंकि जाति एक ऐसी चीज है जो जैसा कि इसके विषयमें साधारणतया समझा जाता है, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक अस्पष्ट है और इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। ' जाति ' के विषयमें सोचते हुए सर्वसाधारण मनमें जो तीव्र भेद प्रचलित हैं, वे यहां कुछ प्रयोजनके नहीं हैं।

※ यह, यह मानकर कहा है कि जाति विज्ञान संबंधी कल्पनाएं सर्वथा किसी प्रमाण पर आश्रित हैं। पर जाति विज्ञानका एकमात्र दृढ आधार यह मत है कि मनुष्यका कपाल वंशपरंपरासे अपरिवर्तनीय है जिस मतको कि अब ललकारा जाने लगा है। यदि यह असिद्ध हो जाता है तो इसके साथ यह सारा-का-सारा विज्ञान ही असिद्ध हो जाता है।

भाषाविज्ञानियोंने आर्य तथा द्राविड जातियोंके बीचमें बना रखा है ? यह समाप्त हो जाता है। यदि किसी तरह आर्य जातिके आक्रमणको मान ही लिया जाय, तो हमें या तो यह मानना होगा कि इसने भारतको आर्योंसे भर दिया और इस तरह बहुत थोड़ेसे अन्य परिवर्तनोंके साथ इसीने यहांके लोगोंके भौतिक रूपको निश्चित किया, अथवा यह मानना पड़ेगा कि एक कम सभ्य जातिके छोटे छोटे दल ही यहां आ घुसे थे, जो कि बदल कर धीरे-धीरे आदिम निवासियों जैसे हो गये। तो फिर आगे हमें यह कल्पना करनी पड़ती है कि, ऐसे विशाल प्रायद्वीपमें आकर भी जहां कि सभ्य लोग रहते थे, जो कि बड़े बड़े नगरोंको बनानेवाले थे, दूर-दूर तक व्यापार करनेवाले थे, जो मानसिक तथा आत्मिक संस्कृतिसे भी शून्य नहीं थे, इन पर वे आक्रान्ता अपनी भाषा, धर्म, विचारों और रीतिरिवाजोंको थोप देनेमें समर्थ हो सके। ऐसा कोई चमत्कार तभी संभव हो सकता था, यदि आक्रान्ताओंकी बहुत ही अधिक संगठित अपनी भाषा होती, रचनात्मक मनकी अधिक बड़ी शक्ति होती और अपेक्षया अधिक प्रबल धार्मिक विधि और भावना होती।

और दो जातियोंके मिलानेकी कल्पनाको पुष्ट करनेके लिये भाषाके भेदकी बात तो सदा विद्यमान थी ही। परन्तु इस विषयमें भी मेरे पहिलेके बने हुए विचार गड़बड़ और भ्रान्त निकले। क्योंकि तामिल शब्दोंकी परीक्षा करनेपर, जो कि यद्यपि देखनेमें संस्कृतके रूप और ढंगसे बहुत अधिक भिन्न प्रतीत होते थे, मैंने यह पाया कि वे शब्द या शब्द-परिवार जो कि विशुद्ध रूपसे तामिल ही समझे जाते थे, संस्कृत तथा इसकी दूरवर्ती बहिन लैटिनके बीचमें और कभी-कभी ग्रीक तथा संस्कृतके बीचमें नये संबंधोंकी स्थापना करनेमें मेरा पथप्रदर्शन करते थे।

कभी-कभी तामिल शब्द न केवल शब्दोंके परस्पर संबंधका पता देते थे बल्कि संबद्ध शब्दोंके परिवारमें किसी ऐसी कड़ीको भी सिद्ध कर देते थे जो कि मिल नहीं रही होती थी। और इस द्राविड भाषाके द्वारा ही मुझे पहिले-पहल आर्यन भाषाओंके नियमका जो कि मुझे अब सत्य नियम प्रतीत होता है, आर्यन भाषाओंके उत्पत्ति-बीजोंका, या यों कहना चाहिये कि, मानो इनकी गर्भविद्याका पता मिला था। मैं अपनी जांचको पर्याप्त दूर तक नहीं ले जा सका जिससे कि कोई निश्चित परिणाम स्थापित कर सकता परन्तु यह मुझे निश्चित रूपसे प्रतीत होता है कि वे एक ही लुप्त आदिम भाषासे निकले हुए दो विभिन्न परिवार हों। यदि ऐसा हो, तो द्राविड भारतमें आर्यन आक्रमण होनेके विषयमें एकमात्र अवशिष्ट साक्षी यही रह जाती है कि वैदिक सूक्तोंमें इसके निर्देश पाये जाते हों।

इसलिये मेरी दोहरी दिलचस्पी थी, जिससे कि प्रेरित होकर मैंने पहिले-पहल मूल वेदको अपने हाथमें लिया, यद्यपि उस समय मेरा कोई ऐसा इरादा नहीं था कि मैं वेदका सूक्ष्म या गम्भीर अध्ययन करूंगा। मुझे यह देखनेमें अधिक समय नहीं लगा कि वेदमें कहे जानेवाले आर्यों और दस्युओंके बीचमें जातीय विभाग सूचक निर्देश तथा यह बतानेवाले निर्देश कि दस्यु और आदिम भारतनिवासी एक ही थे, जितनी कि मैंने कल्पना की हुई थी, उससे भी कहीं अधिक निःसार हैं।

परन्तु इससे भी अधिक दिलचस्पीका विषय मेरे लिये यह था कि इन प्राचीन सूक्तोंके अन्दर उपेक्षित पड़े हुए जो गंभीर आध्यात्मिक विचारोंका बड़ा भारी समुदाय है और जो अनुभूति है, उसका पता लगाना। और इस अंगकी महत्ता तब मेरी दृष्टिमें और भी बढ़ गयी जबकि पहिले तो, मैंने यह देखा कि वेदके मंत्र एक स्पष्ट और ठीक प्रकाशके साथ मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियोंको प्रकाशित करते हैं, जिनके लिये न तो योरोपियन अध्यात्म-विज्ञानमें, न ही योगकी या वेदान्तकी शिक्षाओंमें जहांतक मैं इनसे परिचित था, मुझे कोई पर्याप्त स्पष्टीकरण मिलता था। और दूसरे यह कि वे उपनिषदोंके उन धुंधले संदर्भों और विचारों पर प्रकाश डालते थे जिनका कि पहिले मैं कोई ठीक ठीक अर्थ नहीं कर पाता था, और इसके साथ ही इनसे पुराणोंके भी बहुतसे भागका एक नया अभिप्राय पता लगता था।

इस परिणामपर पहुंचनेमें, सौभाग्यवश मैंने जो सायणके भाष्यको पहिले नहीं पढ़ा था, इसने मेरी बहुत मदद की। क्योंकि मैं स्वतंत्र था कि वेदके बहुतसे सामान्य और बार बार आनेवाले शब्दोंको उनका जो स्वाभाविक आध्यात्मिक अर्थ है वह उन्हें दे सकूं, जैसे कि 'धी' का अर्थ

विचार या समझ, 'मनस्' का अर्थ मन, 'मति' का अर्थ विचार, अनुभव या मानसिक अवस्था, 'मनीषा' का अर्थ बुद्धि, 'ऋतम्' का अर्थ सत्य; और मैं स्वतन्त्र था कि शब्दोंको उनके अर्थकी वास्तविक प्रतिच्छाया दे सकूं, 'कवि' को द्रष्टा की, 'मनीषी' को विचारक की, 'विप्र विपश्चित्' को प्रकाशित-मनस्क की, इसी प्रकारके और भी कई शब्दोंको, और मैं स्वतन्त्र था कि ऐसे शब्दोंका एक आध्यात्मिक अर्थ- जिसे कि मेरे अधिक व्यापक अध्ययनने भी युक्तियुक्त ही प्रमाणित किया था- प्रस्तुत करनेका साहस करूं जैसे कि 'दक्ष' का जिसका कि सायणके अनुसार 'बल' अर्थ है और 'श्रवस्' का जिसका सायणने धन, दौलत, अन्न या कीर्ति यह अर्थ किया है। वेदके विषयमें आध्यात्मिक अर्थका सिद्धान्त इन शब्दोंका स्वाभाविक अर्थ ही स्वीकार करनेके हमारे अधिकार पर आधार रखता है।

सायणने 'धी' 'ऋतम्' आदि शब्दोंके बहुत ही परिवर्तनशील अर्थ किये हैं। 'ऋतम्' शब्दका, जिसे कि हम मनोवैज्ञानिक या आध्यात्मिक व्याख्याकी लगभग कुञ्जी कह सकते हैं, सायणने कभी कभी 'सत्य', अधिकतर 'यज्ञ' और किसी किसी जगह 'जल' अर्थ किया है। आध्यात्मिक व्याख्याके अनुसार निश्चित रूपसे इसका अर्थ सत्य होता है। 'धी' के सायणने 'विचार', 'स्तुति', 'कर्म' 'भोजन' आदि अनेक अर्थ किये हैं। आध्यात्मिक व्याख्याके अनुसार नियत रूपसे इसका अर्थ विचार या समझ है। और यही बात वेदकी अन्य नियत संज्ञाओंके संबंधमें है।

इसके अतिरिक्त, सायणकी प्रवृत्ति यह है कि वह शब्दोंके अर्थोंकी छायाओंको और उनमें जो सूक्ष्म अन्तर होता है उसे बिल्कुल मिटा देता है और उनका अधिकसे अधिक स्थूल जो सामान्य अर्थ होता है वही कर देता है। सारेके सारे विशेषण जो कि किसी मानसिक क्रियाके द्योतक हैं, उसके लिये एकमात्र 'बुद्धि' अर्थको देते हैं, सारेके सारे शब्द जो कि शक्तिके विभिन्न विचारोंके सूचक हैं- और वेद उनसे भरा पड़ा है- बलके स्थूल अर्थमें परिणत कर दिये गये हैं।

इसके विपरीत, वेदाध्ययनसे मुझपर तो इस बातकी छाप पड़ी कि वेदके अर्थोंकी ठीक ठीक छायाको नियत करने तथा उन्हें सुरक्षित रखनेकी और विभिन्न शब्दोंके अपने ठीक ठीक सहचारी संबंध क्या हैं उन्हें निश्चित करनेकी बड़ी भारी महत्ता है, चाहे वे शब्द अपने सामान्य अभिप्रायमें परस्पर कितना ही निकट संबंध क्यों न रखते हों। सचमुच मैं नहीं समझ पाता कि हमें यह क्यों कल्पना कर लेनी चाहिये कि वैदिक ऋषि, काव्यात्मक शैलीमें सिद्धहस्त अन्य रचयिताओंके विसदृश, शब्दोंको अव्यवस्थित रूपसे और अविवेकपूर्वताके साथ प्रयुक्त करते थे, उनके ठीक ठीक सहचारी संबंधोंको बिना अनुभव किये ही और शब्दोंकी शृङ्खलामें उन्हें उनका ठीक ठीक और यथोचित बल बिना प्रदान किये ही।

इस नियमका अनुसरण करते-करते मैंने पाया कि शब्दों और वाक्य खंडोंके सरल, स्वाभाविक और सीधे अभिप्राय को बिना छोड़े ही, न केवल पृथक्-पृथक् ऋचाओंका बल्कि सम्पूर्ण संदर्भोंका एक असाधारण विशाल समुदाय तुरन्त ही बुद्धिगोचर हो गया, जिसने कि पूर्ण रूपसे वेदके सारे स्वरूपको ही बदल दिया।

क्योंकि तब यह धर्म पुस्तक वेद ऐसी प्रतीत होने लग गयी कि यह अत्यन्त बहुमूल्य विचार-रूपी सुवर्णकी एक स्थिर रेखाको अपने अंदर रखती है और आध्यात्मिक अनुभूति इसके अंश अंशमें चमकती हुई प्रवाहित हो रही है, जो कि कहीं छोटी-छोटी रेखाओंमें, कहीं बड़े-बड़े समूहोंमें, इसके अधिकांश सूक्तोंमें दिखाई देती हैं। साथ ही उन शब्दोंके अतिरिक्त जो कि अपने स्पष्ट और सामान्य अर्थसे तुरन्त ही अपने प्रकरणोंको आध्यात्मिक अर्थकी सुवर्णीय रंगत दे देते हैं, वेद अन्य भी ऐसे शब्दोंसे भरा पड़ा है जिनके लिये यह सम्भव है कि, वेदके सामान्य अभिप्रायके विषयमें हमारी जो भी धारणा हो उसीके अनुसार, चाहे तो उन्हें बाह्य और प्रकृतिवादी अर्थ दिया जा सके, चाहे एक आभ्यन्तर और आध्यात्मिक अर्थ। उदाहरणार्थ, इस प्रकारके शब्द जैसे कि 'राये, रयि, राधस्, रत्न' केवल मात्र भौतिक समृद्धि या धनदौलतके वाचक भी हो सकते हैं और आन्तरिक ऐश्वर्य तथा समृद्धिके भी।

क्योंकि वे मानसिक जगत् और बाह्य जगत् दोनोंके लिये एकसे प्रयुक्त हो सकते हैं। 'धन, वाज, पोष' का

अर्थ बाह्य धनदौलत, समृद्धि और पुष्टि भी हो सकता है अथवा सभी प्रकारकी सम्पत्तियां चाहे वे आन्तरिक हों चाहे बाह्य, व्यक्तिके जीवनमें उनका बाहुल्य और उनकी वृद्धि । उपनिषद्में ऋग्वेदके एक उद्धरणकी व्याख्या करते हुए 'राये' को आध्यात्मिक सम्पत्तिके अर्थमें प्रयुक्त किया है, तो फिर मूल वेदमें इसका यह अर्थ क्यों नहीं हो सकता? 'वाज' बहुधा ऐसे सन्दर्भमें आता है जिसमें कि अन्य प्रत्येक शब्द आध्यात्मिक अभिप्राय रखता है, जहां कि भौतिक समृद्धिका उल्लेख समस्त एकरस विचारके अन्दर असंगतिका एक तीव्र बेसुरापन ला देगा। इसलिये सामान्य बुद्धिकी मांग है कि वेदमें इन शब्दोंके प्रयोगको आध्यात्मिक अभिप्राय देनेवाला ही स्वीकार करना चाहिये।

परन्तु यदि यह संगतिपूर्वक किया जा सके, तो इससे न केवल सम्पूर्ण ऋचाएं और संदर्भ, बल्कि सारेके सारे सूक्त तुरन्त आध्यात्मिक रंगतसे रंग जाते हैं । एक शर्तपर वेदोंका यह आध्यात्मिक रंगमें रंगा जाना प्रायः पूर्ण होगा, एक भी शब्द या एक भी वाक्यखण्ड इससे प्रभावित हुए बिना नहीं बचेगा; वह शर्त यह है कि हमें वैदिक 'यज्ञ' को प्रतीक रूपमें स्वीकार करना चाहिये।

गीतामें हम पाते हैं कि 'यज्ञ' का प्रयोग उन सभी कर्मोंके प्रतीकके रूपमें किया गया है, चाहे वे अन्तर हों चाहे बाह्य, जो देवोंको या ब्रह्मको समर्पित किये जाते हैं। इस शब्दका यह प्रतीकात्मक प्रयोग क्या उत्तरकालीन दार्शनिक बुद्धिका पैदा किया हुआ है, अथवा यह यज्ञके वैदिक विचारमें पहिले अन्तर्निहित था? मैंने देखा कि स्वयं वेदमें ही ऐसे सूक्त हैं जिनमें कि 'यज्ञ' का अथवा बलिका विचार खुले तौर पर प्रतीकात्मक है, और दूसरे कुछ सूक्तोंमें यह प्रतीकात्मकता अपने ऊपर पड़े आवरणमेंसे स्पष्ट दिखाई देती है। तब यह प्रश्न उठा कि क्या ये बादकी रचनाएं थीं जो कि पुराने अंधविश्वासपूर्ण विधिविधानोंमेंसे एक प्रारम्भिक प्रतीकवादको विकसित करती थीं अथवा इसके विपरीत यह अवसर पाकर कहीं-कहीं किया गया स्पष्टतर कथन था, उस अर्थका जो कि अधिकांश सूक्तोंमें कम-अधिक सावधानीके साथ अलंकारके पर्देसे ढका हुआ रखा है।

यदि वेदमें आध्यात्मिक संदर्भ सतत रूपसे न पाये जाते तो निःसन्देह पहिले स्पष्टीकरणको ही स्वीकार किया जाता। परन्तु इसके विपरीत, सारे सूक्त स्वभावतः एक आध्यात्मिक अर्थको लिये हुए हैं जिनमें कि एकसे दूसरे मन्त्रमें एक पूर्ण और प्रकाशमय संगति है, अस्पष्टता केवल वहां आती है जहां कि यज्ञका उल्लेख है या हविका अथवा कहीं-कहीं यज्ञ-संचालक पुरोहितका, जो कि या तो मनुष्य हो सकता था या देवता। यदि इन शब्दोंको प्रतीक मानकर व्याख्या की जाती थी तो मैं हमेशा यह देखता था कि विचारकी शृंखला अधिक पूर्ण, अधिक प्रकाशमय, अधिक संगत हो जाती है और पूरेके पूरे सूक्तका आशय उज्ज्वल रूपसे पूर्ण हो जाता है। इसलिये स्वस्थ समालोचनाके प्रत्येक नियमके द्वारा मैंने इसे न्यायोचित अनुभव किया कि मैं अपनी कल्पनाके अनुसार आगे चलता चलूं और इसमें वैदिक यज्ञके प्रतीकात्मक अभिप्रायको भी सम्मिलित कर दूं।

तो भी यहींपर आध्यात्मिक व्याख्याकी सर्वप्रथम वास्तविक कठिनाई आकर उपस्थित हो जाती है। अबतक तो मैं एक पूर्ण रूपसे सीधी और स्वाभाविक व्याख्या पद्धतिसे चल रहा था जो कि शब्दों और वाक्योंके ऊपरी अर्थपर निर्भर थी। पर अब मैं एक ऐसे तत्त्वपर आ गया जिसमें कि, एक दृष्टिसे ऊपरी अर्थको अतिक्रमण कर जाना पड़ता था, और यह ऐसी पद्धति थी जिसमें कि प्रत्येक समालोचक और बिलकुल निर्दोषता चाहनेवाला मन अवश्य अपने आपको निरन्तर सन्देहोंसे आक्रान्त पावेगा। न ही कोई, चाहे वह कितनी भी सावधानी रखे, इस तरह सदा इस बातमें निश्चित हो सकता है कि उसने ठीक सूत्रको ही पकड़ा है और उसे ठीक व्याख्या ही सूझी है।

वैदिक यज्ञके अन्तर्गत-एक क्षणके लिये देवता और मन्त्रको छोड़ दें तो-तीन अंग हैं, हवि देनेवाले, हवि और हविके फल। यदि 'यज्ञ' एक कर्म है जो कि देवताओंको समर्पित किया जाता है तो 'यजमान' को, हवि देनेवालेको मैं यह समझे बिना नहीं रह सकता कि वह उस कर्मका कर्ता है। 'यज्ञ' का अभिप्राय है कर्म, वे कर्म आन्तरिक हों या बाह्य, इसलिये यजमान होना चाहिये आत्मा अथवा वह व्यक्तित्व जो कि कर्ता है। परन्तु साथ ही यज्ञ-संचालक, पुरोहित भी होते थे, होता, ऋत्विज, पुरोहित, ब्रह्मा अध्वर्यु आदि।

इस प्रतीकवादमें उनका कौनसा भाग था ? क्योंकि एक बार यदि यज्ञके लिये हम प्रतीकात्मक अभिप्रायकी कल्पना कर लेते हैं तो इस यज्ञ-विधिके प्रत्येक अंगका हमें प्रतीकात्मक मूल्य कल्पित करना चाहिये। मैंने पाया कि देवताओंके विषयमें सतत रूपसे यह कहा गया है कि वे यज्ञके पुरोहित हैं और बहुतसे सन्दर्भोंमें तो प्रकट रूपसे यह एक अमानुषी सत्ता या शक्ति है जो कि यज्ञका अधिष्ठान करती है।

मैंने यह भी देखा कि सारे वेदमें हमारे व्यक्तित्वको बनानेवाले तत्त्व स्वयं सतत रूपसे सजीव शरीरधारी मान कर वर्णन किये गये हैं। मुझे इस नियमको केवल व्यत्याससे प्रयुक्त करना था और यह कल्पना करनी थी कि बाह्य अलकारमें जो पुरोहितका व्यक्ति है वह आभ्यन्तर क्रियाओंमें आलंकारिक रूपसे एक अमानुषी सत्ता या शक्तिको अथवा हमारे व्यक्तित्वके किसी तत्त्वको सूचित करता है। फिर अवशिष्ट रह गया पुरोहित संबंधी भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये आध्यात्मिक अभिप्राय नियत करना। यहां मैंने पाया कि वेद स्वयं अपने भाषा संबंधी निर्देशों और दृढ उक्तियोंके द्वारा मूलसूत्रको पकडा रहा है, जैसे कि 'पुरोहित' शब्दका प्रतिनिधिके भावके साथ अपने असमस्त रूपमें, पुरो-हित 'आगे रखा हुआ' इस अर्थमें प्रयुक्त होना और प्रायः इससे अग्नि देवताका संकेत किया जाना, जो अग्निकी मानवतामें उस 'दिव्य संकल्प' या 'दिव्य शक्ति' का प्रतीक है जो यज्ञ रूपसे किये जानेवाले सब पवित्र कर्मोंमें क्रियाको ग्रहण करनेवाला होता है।

हवियोंको समझ सकना और भी कठिन था। चाहे सोम-सुरा भी जिन प्रकरणोंमें इसका वर्णन है उनके द्वारा, अपने वर्णित उपयोग और प्रभावके द्वारा और अपने पर्यायवाची शब्दोंसे मिलनेवाले भाषा-विज्ञान संबंधी निर्देशके द्वारा स्वयं अपनी व्याख्या कर सकती थी पर यज्ञके घी, 'घृतम्' का क्या अभिप्राय लिया जाना सम्भव था ? और तो भी वेदमें यह शब्द जिस रूपमें प्रयुक्त हुआ है वह इसी पर बल देता था कि इसकी प्रतीकात्मक व्याख्या ही होनी चाहिये।

उदाहरणार्थ- अंतरिक्षसे बूंद रूपमें गिरनेवाले घृतका या इन्द्रके घोडोंमेंसे क्षरित होनेवाले अथवा मनसे क्षरित होनेवाले घृतका क्या अर्थ हो सकता था ? स्पष्ट ही एक बिल्कुल असंगत और व्यर्थकी बात होती, यदि घी अर्थको देनेवाले 'घृत' शब्दका इसके अतिरिक्त कोई और अभिप्राय होता कि यह किसी बातके लिये एक ऐसा प्रतीक है जिसका कि प्रयोग बहुत शिथिलताके साथ किया गया है। यहां तक कि विचारकको बहुधा अपने मनमें इसके बाह्य अर्थको सर्वांशमें या आंशिक रूपसे अलग रख देना चाहिये। निःसन्देह यह भी सम्भव था कि आसानीके साथ इन शब्दोंके अर्थको प्रसंगानुसार बदल दिया जाय, 'घृत' को कहीं घी और पानीके अर्थमें ले लिया जाय तथा 'मनस्' का अर्थ कहीं मन कहीं अन्न या अपूप कर लिया जाय।

परन्तु मुझे पता लगा कि 'घृत' सतत रूपसे विचार या मनके साथ प्रयुक्त हुआ है, कि वेदमें 'द्यौ' मनका प्रतीक है, कि 'इन्द्र' प्रकाशयुक्त मनोवृत्तिका प्रतिनिधि है और उसके दो घोडे उस मनोवृत्तिकी द्विविध शक्तियां हैं और मैंने यहां तक देखा कि वेद कहीं कहीं साफ तौरसे बुद्धि (धिषणा) की शोधित घृतके रूपमें देवोंके लिये हवि देनेको कहता है, "घृतं न पूतं धिषणा" (३।२।१) 'घृत' शब्दकी भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे जो व्याख्याएं की जाती हैं, उनमें भी इसका एक अर्थ अत्यधिक या उष्ण चमक है। इन सब निर्देशोंकी अनुकूलताके आधार पर ही मैंने अनुभव किया कि 'घृत' के प्रतीकको यदि मैं कोई आध्यात्मिक व्याख्या करता हू, तो मैं ठीक रास्ते पर हूं। और इसी नियम तथा इसी प्रणालीको मैंने यज्ञके दूसरे अंगोंमें भी प्रयुक्त करने योग्य पाया।

हविके फल देखनेमें विशुद्ध रूपसे भौतिक प्रतीत होते थे- गौएं, घोडे, सोना, अपत्य, मनुष्य, शारीरिक बल, युद्धमें विजय। यहां कठिनाई और भी दुस्तर हो गई। पर यह मुझे पहिले ही दीख चुका था कि वेदका 'गौ' बहुत ही पहेलीदार प्राणी है, यह किसी पार्थिव गोशालासे नहीं आया है। 'गौ' शब्दके दोनों अर्थ हैं, गाय और प्रकाश और कुछ एक संदर्भोंमें तो, चाहे हम गायके अर्थको अपने सामने रखें भी तो भी स्पष्ट ही इसका अर्थ प्रकाश ही होता है। यह पर्याप्त स्पष्ट हो जाता है, जब कि हम सूर्यकी गौओं-होमर (Homer)

कविकी हीलियस की गौओं-और उषाकी गौओं पर विचार करते हैं।

आध्यात्मिक रूपमें, भौतिक प्रकाश ज्ञानके विशेषकर दिव्य ज्ञानके-प्रतीकके रूपमें अच्छी तरह प्रयुक्त किया जा सकता है। परन्तु यह तो केवल सभावना मात्र थी, इसकी परीक्षा और प्रमाणसे स्थापना कैसे होती ? मैंने पाया कि ऐसे सन्दर्भ आते हैं, जिनमें कि आस-पासका सारा ही प्रकरण अध्यात्मपरक है और केवल 'गौ' का प्रतीक ही है जो कि अपने अड़ियल भौतिक अर्थके साथ बीचमें आकर बाधा डालता है। इन्द्रका आह्वान सुन्दर (पूर्ण) रूपोंके निर्माता 'सुरूपकृत्नु' के तौर पर किया गया है कि वह आकर सोमरसको पिये; इसे पीकर वह आनन्दमें भर जाता है और गौओंको देनेवाला (गोदा) हो जाता है, तब हम उसके समीपतम या चरम सुविचारोंको प्राप्त कर सकते हैं, तब हम उनसे प्रश्न करते हैं और उसका स्पष्ट विवेक हमें हमारे सर्वोच्च कल्याणको प्राप्त कराता है। ●

यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके सन्दर्भोंमें गौएं भौतिक गायें नहीं हो सकती, ना ही 'भौतिक प्रकाशको देनेवाला' यह अर्थ प्रकरणमें किसी अभिप्रायको लाता है। कमसे कम एक उदाहरण मेरे सामने ऐसा आया जिसने मेरे मनमें यह निश्चित रूपसे स्थापित कर दिया कि वहां वैदिक गौ आध्यात्मिक प्रतीक ही है। तब मैंने इसे उन दूसरे सन्दर्भोंमें प्रयुक्त किया जहां कि 'गौ' शब्द आता था और सर्वदा मैंने यही पाया कि परिणाम यह होता था कि इससे प्रकरणका अर्थ अच्छेसे अच्छा हो जाता था और उसमें अधिकसे अधिक संभवनीय संगति आ जाती थी।

गाय और घोड़ा, 'गौ' और 'अश्व' निरन्तर इकट्ठे आते हैं। उषाका वर्णन इस रूपमें हुआ है कि वह 'गोमती अश्वावती' है, उषा यज्ञकर्ता (यजमान) को घोड़े और गौएं देती हैं। प्राकृतिक उषाको लें, तो 'गोमती' का अर्थ है प्रकाशकी किरणोंसे युक्त या प्रकाशकी किरणोंको लाती हुई और यह मानवीय मनमें होनेवाली प्रकाशकी उषाके लिये एक रूपक है। इसलिये 'अश्वावती' विशेषण भी एक मात्र भौतिक घोड़ोंका निर्देश करनेवाला नहीं हो सकता, साथमें इसका कोई आध्यात्मिक अर्थ भी अवश्य होना चाहिये। वैदिक 'अश्व' का अध्ययन करने पर मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि 'गौ' और 'अश्व' वहां प्रकाश और शक्तिके, ज्ञान और बलके दो सहचर विचारोंके प्रतिनिधि हैं, जो कि वैदिक और वैदान्तिक मनके लिये सत्ताकी सभी प्रगतियोंके द्विविध या युगलरूप होते थे।

इसलिये यह स्पष्ट हो गया कि वैदिक यज्ञके दो मुख्य फल गौओंकी संपत्ति और घोड़ोंकी संपत्ति, क्रमशः मानसिक प्रकाशकी समृद्धि और जीवन शक्तिकी बहुलताके प्रतीक हैं। इससे परिणाम निकला कि वैदिक कर्म (यज्ञ) के इन दो मुख्य फलोंके साथ निरन्तर संबद्ध जो दूसरे फल हैं उनकी भी अवश्यमेव आध्यात्मिक व्याख्या हो सकनी चाहिये। अवशिष्ट केवल यह रह गया कि उन सबका ठीक-ठीक अभिप्राय नियत किया जाय।

वैदिक प्रतीकवादका एक दूसरा अत्यावश्यक अंग हैं लोगोंका संस्थान और देवताओंके व्यापार। लोकोंके प्रतीकवादका सूत्र मुझे 'व्याहृतियों' के वैदिक विचारमें "ओइम् भूर्भुवः स्वः" इस मंत्रके तीन प्रतीकात्मक शब्दोंमें और चौथी व्याहृति 'महः' का आध्यात्मिक अर्थ रखनेवाले 'ऋतम्' शब्दका जो संबंध है, उसमें मिल गया। ऋषि विश्वके तीन विभागोंका वर्णन करते हैं, पृथिवी, अंतरिक्ष या मध्यस्थान और द्यौ, परन्तु साथ ही एक आध्यात्मिक बड़ा द्यौ (बृहत् द्यौ) भी है, जिसे विस्तृत लोक (बृहत्) भी कहा गया है और कहीं कहीं जिसे महान् जल, 'महो अर्णः' के रूपमें भी वर्णित किया है।

फिर इस 'बृहत्' का 'ऋतम् बृहत्' इस रूपमें अथवा "सत्यं ऋतम् बृहत्" ÷ इन तीन शब्दोंकी परिभाषाके रूपमें वर्णन मिलता है और क्योंकि तीन लोक प्रारंभिक तीन व्याहृतियोंसे सूचित होते हैं, इसलिये 'बृहत्' के और 'ऋत' के इस चौथे लोकका संबंध उपनिषदोंमें उल्लिखित चौथी व्याहृति 'महः' से होना चाहिये। पौराणिक सूत्रमें ये चार तीन अन्य-'जनः तपः'

● यह ऋक् मण्डल १ सूक्त ४ के आधार पर है। —अनुवादक।

÷ सत्यम् बृहद् ऋतम्। अथर्व १२।१।१

'सत्यम्' से मिलकर पूर्ण होते हैं, जो तीन कि हिन्दु विश्व विज्ञानके तीन उच्च लोक हैं। वेदमें भी हमें तीन सर्वोच्च लोकोंका उल्लेख मिलता है, यद्यपि उनके नाम नहीं दिये गये हैं।

परन्तु वैदान्तिक और पौराणिक सम्प्रदायमें ये सात लोक सात आध्यात्मिक तत्वों या सत्ताके सात रूपों-सत्, चित्, आनन्द, विज्ञान, मनः, प्राण, अन्न-को सूचित करते हैं। अब यह मध्यका लोक विज्ञान, जो कि 'महः' का लोक है, महान् लोक है, वस्तुओंका सत्य है और यह तथा वैदिक 'ऋतम्' जो कि 'बृहत्' का लोक है, दोनों एक ही हैं, और जहां कि पौराणिक सम्प्रदायमें 'महः' के बाद यदि नीचेसे ऊपरका क्रम लें तो, 'जनः' (जो कि 'आनन्द' का दिव्य सुखका लोक है) आता है, वहां वेदमें भी 'ऋतम्' अर्थात् सत्य ऊपरकी ओर 'मयः' तक, सुख तक ले जाता है।

इसलिये हम उचित रूपसे इस निश्चय पर पहुंच सकते हैं कि (पौराणिक तथा वैदिक) ये दोनों सम्प्रदाय इस विषयमें एक हैं और दोनोंका आधार इस एक विचार पर है कि अन्दर अपनी चेतनाके सात तत्व हैं जो कि बाहर सात लोकोंके रूपमें अपने आपको प्रकट करते हैं। इस सिद्धान्त पर मैं वैदिक लोकोंकी तदनुसारी चेतनाके आध्यात्मिक स्तरोंके साथ एकता स्थापित कर सका और तब सारा ही वैदिक संस्थान मेरे मनमें स्पष्ट हो गया।

अब इतना सिद्ध हो चुका, तो जो बाकी था वह स्वभावतः और अनिवार्य रूपसे होने लगा। मैं यह पहिले ही देख चुका था कि वैदिक ऋषियोंका केन्द्रीभूत विचार था कि मिथ्याका सत्यसे, विभक्त तथा सीमाबद्ध जीवनका सम्पूर्णता तथा असीमतासे परिवर्तन करके, मानवीय आत्माको मृत्युकी अवस्थासे निकाल कर अमरताकी अवस्था तक पहुंचा देना। मृत्यु है मन और प्राणसहित शरीरकी मर्त्य अवस्था और अमरता है असीम सत्ता, चेतना और आनन्दकी अवस्था। मनुष्य द्यौ और पृथ्वी, मन और शरीर इन दो लोकों, 'रोदसी' से ऊपर उठ कर सत्यकी असीमतामें 'महः' में और इस प्रकार दिव्य सुखमें पहुंच जाता है। यही वह 'महा-पथ' है जिसे ऋषियोंने खोजा था।

देवोंके विषयमें मैंने यह वर्णन पाया कि वे प्रकाशसे उत्पन्न हुए हैं, 'अदिति' के अनन्तताके पुत्र हैं, और बिना अपवादके उनका इस प्रकार वर्णन आता है कि वे मनुष्यकी उन्नति करते हैं, इसे प्रकाश देते हैं, इस पर पूर्ण जलोंकी, द्यौके ऐश्वर्यकी वर्षा करते हैं, इसके अन्दर सत्यकी वृद्धि करते हैं, दिव्य लोकोंका निर्माण करते हैं, सब आक्रमणोंसे बचाकर इसे महान् लक्ष्य तक, अखण्ड समृद्धि तक, पूर्ण सुख तक पहुंचाते हैं। उनके पृथक्-पृथक् व्यापार उनकी क्रियाओंसे, उनके विशेषणोंसे, उनसे सम्बद्ध कथानकोंका जो अध्यात्मपरक आशय होता था उससे उपनिषदों और पुराणोंके निर्देशोंसे तथा ग्रीक गाथाओं द्वारा कभी-कभी पडनेवाले आंशिक प्रकाशोंसे निकल आते थे।

दूसरी ओर दैत्य जो कि उनके विरोधी हैं, सबके सब विभाग तथा सीमाकी शक्तियां हैं, वे जैसा कि उनके नाम सूचित करते हैं, आच्छादक हैं, विदारक हैं, हडप लेनेवाले हैं, घेरनेवाले हैं, द्वेष पैदा करनेवाले हैं, प्रतिबन्धक हैं, वे ऐसी शक्तियां हैं जो कि जीवनकी स्वतंत्र तथा एकीभूत सम्पूर्णताके विरुद्ध कार्य करती हैं। ये वृत्र, पणि, अत्रि, राक्षस, शम्बर, बल, नमुचि कोई द्राविड राजा और देवता नहीं है, जैसा कि आधुनिक मन अपनी अतिको पहुंची हुई ऐतिहासिक दृष्टिसे चाहता है कि वे हों, वे एक अधिक प्राचीन भावके द्योतक हैं, जो कि धार्मिक तथा नैतिक ही विचारों कृत्योंमें मुख्यतया व्याप्त रहनेवाले हमारे पूर्व पितरोंके लिये अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त था।

वे उच्चतर भद्रकी तथा निम्नतर इच्छाकी शक्तियोंके बीचमें होनेवाले संघर्षके द्योतक हैं और ऋग्वेदका यह विचार तथा पुण्य और पापका इसी प्रकारका विरोध जो कि अपेक्षाकृत कम आध्यात्मिक सूक्ष्मताके साथ तथा अधिक नैतिक स्पष्टताके साथ पारसियोंके-हमारे इन प्राचीन पडोसियों और सजातीय बन्धुओंके-धर्म शास्त्रोंमें दूसरे प्रकारसे प्रकट किया गया है। सम्भवतः एक ही आर्य-संस्कृतिके मौलिक शिक्षणसे प्रादुर्भूत हुआ था।

अन्तमें मैंने देखा कि वेदका नियमित प्रतीकवाद बढकर कथानकोंमें भी पहुंचा हुआ है जिनमें कि देवोंका तथा उन देवोंके प्राचीन ऋषियोंके साथ संबंधका वर्णन है। इन

गाथाओंमेंसे यदि सबका नहीं तो कुछका मूल तो, इसकी पूर्ण संभावना है कि, प्रकृतिवादी तथा नक्षत्र विद्या संबंधी रहा हो, पर यदि ऐसा रहा हो तो उनके प्रारम्भिक अर्थकी आध्यात्मिक प्रतीकवादके द्वारा पूर्ति की गयी थी।

एक बार यदि वैदिक प्रतीकोंका अभिप्राय ज्ञात हो जाय तो इन कथानकोंका आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट तथा अनिवार्य हो जाता है। वेदका प्रत्येक तत्व उसके दूसरे तत्वके साथ अपृथक्करणीय रूपसे गुंथा हुआ है और इन रचनाओंका स्वरूप ही हमें इसके लिये बाध्य करता है कि हमने एक बार व्याख्याके जिस नियमको स्वीकार कर लिया है उसे हम अधिकसे अधिक युक्तिसंगत दूरीतक ले जांय। उनकी सामग्रियां बडी चतुराईके साथ दृढ हाथोंके द्वारा मिलाकर ठीक की गई हैं और उन पर हमारे काम करनेमें यदि कोई असंगति बर्ती जाती है तो उससे उनके अभिप्रायका और उनकी सुसम्बद्ध विचार श्रृंखलाका सारा ताना-बाना ही टूट जाता है।

इस प्रकार वेद, मानों अपनी प्राचीन ऋचाओंमेंसे अपने आपको प्रकट करता हुआ, मेरे मनके सामने इस रूपमें निकल आया कि यह साराका सारा ही एक महान् और प्राचीन धर्मकी जो कि पहिलेसे ही एक गम्भीर आध्यात्मिक शिक्षणसे सुसज्जित था, धर्म पुस्तक है, ऐसी धर्म पुस्तक नहीं जो कि गडबड विचारोंसे भरी हो या इसकी प्रतिपाद्य सामग्री आदिम हो, यह भी नहीं कि वह कोई परस्पर विरुद्ध तथा जंगली तत्वोंकी खिचडी हो, बल्कि ऐसी धर्म पुस्तक है जो अपने लक्ष्य और अपने अभिप्रायमें पूर्ण है तथा अपने आपसे अभिज्ञ है; यह अवश्य है कि यह एक दूसरे और भौतिक अर्थके आवरणसे ढकी हुई है, जो आवरण कि कहीं घना है और कहीं स्पष्ट है, परन्तु तो भी यह क्षण भरके लिये भी अपने उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य तथा प्रवृत्तिकी दृष्टिको ओझल नहीं होने देती है।

वैदिक अग्नि

श्री अरविन्द

★

अग्नि वेदमें हमेशा शक्ति और प्रकाशके द्विविध रूपमें आता है। यह वह दिव्य शक्ति है जो लोकोंका निर्माण करती है, एक शक्ति है जो सर्वदा पूर्ण ज्ञानके साथ क्रिया करती है, क्योंकि यह 'जातवेदस्' है, सब जन्मोंको जाननेवाली है, 'विश्वानि वयुनानि विद्वान्' यह सब व्यक्त रूपों या घटनाओंको जानती है अथवा दिव्य बुद्धिके सब रूपों या घटनाओंको जानती है अथवा दिव्य बुद्धिसे सब रूपों और व्यापारोंसे वह युक्त है। इसके अतिरिक्त, यह बार-बार कहा गया है कि अग्निको देवोंने मर्त्योंमें अमृत रूपसे स्थापित किया है, मनुष्यमें दिव्य शक्तिके रूपमें उस पूर्ण करनेवाली, सिद्ध करनेवाली शक्तिके रूपमें रखा है जिसके द्वारा वे देवता उस मनुष्यके अंदर अपना कार्य करते हैं। यह कार्य है जिसका कि प्रतीक यज्ञको बनाया गया है।

तो आध्यात्मिक रूपसे अग्निका अर्थ हम दिव्य संकल्प ले सकते हैं, वह दिव्य संकल्प जो पूर्ण रूपसे दिव्य बुद्धिके द्वारा प्रेरित होता है और असलमें जो इस बुद्धिके साथ एक है, जो वह शक्ति है जिसके द्वारा सत्य चेतना क्रिया करती है या प्रभाव डालती है। 'कविक्रतु' शब्दका स्पष्ट आशय है, वह जिसका क्रियाशील संकल्प या प्रभावक शक्ति द्रष्टाकी है, अर्थात् जो उस ज्ञानके साथ कार्य करता है जो सत्य चेतनासे आनेवाला ज्ञान है और जिसमें कोई भ्रान्ति या गलती नहीं है। आगे जो विशेषण आये हैं वे इस व्याख्याको और भी पुष्ट करते हैं। अग्नि, सत्य है, अपनी सत्तामें सच्चा है; अपने निजी सत्य पर और वस्तुओंके सारभूत सत्य पर जो इसका पूर्ण अधिकार है इसके कारणसे इसमें यह सामर्थ्य है वह इस सत्यका शक्तिकी सब क्रियाओं और गतियोंमें पूर्णताके साथ उपयोग कर सकता है। इसके पास दोनों हैं, 'सत्यम्' और 'ऋतम्'

इसके अतिरिक्त वह 'चित्रश्रवस्तमः' है; 'ऋतम्' से उसमें अत्यधिक प्रकाशमय और विविध अन्तःप्रेरणाओंकी पूर्णता आती है, जो उसे पूर्ण कार्य करनेकी क्षमता प्रदान करती है। क्योंकि ये सब विशेषण उस अग्निके हैं जो 'होता' है, यज्ञका पुरोहित है, वह है जो हविः प्रदानका कर्त्ता है। इसलिये यज्ञके प्रतीकसे सूचित होनेवाले कार्य (कर्म या अपस्) में सत्यका प्रयोग करनेकी उसकी शक्ति ही है जो कि अग्निको मनुष्य द्वारा यज्ञमें आहुत किये जानेका पात्र बनाती है। बाह्य यज्ञोंमें यज्ञीय अग्निकी जो महत्ता है तदनुरूप ही आभ्यंतर यज्ञमें इस एकीभूत ज्योति और शक्तिके आंतरिक बलकी महत्ता है, उस आभ्यंतर यज्ञमें जिसके द्वारा मर्त्य और अमर्त्यमें परस्पर संसर्ग और मर्त्य और अमर्त्यमें एक दूसरेके साथ आदान-प्रदान होता है। अन्य स्थलोंमें ऐसा वर्णन बहुतायतके साथ पाया जाता है कि 'अग्नि' दूत है। उस संसर्ग और आदान-प्रदानका माध्यम है।

तो हम देखते हैं कि किस योग्यतावाले अग्निको यज्ञके लिये पुकारा गया है, 'वह देव अन्य देवोंके साथ आये'। 'देवो देवेभिः' इस पुनरुक्तिके द्वारा जो दिव्यताके विचार पर विशेष बल दिया गया है वह बिल्कुल साफ समझमें आने लगता है जब कि हम अग्निके इस नियत वर्णनको स्मरण करते हैं कि, अग्नि जो मनुष्योंमें रहनेवाला देव है, मर्त्योंमें अमर्त्य है, दिव्य अतिथि है। इसे हम पूर्ण आध्यात्मिक रंग दे सकते हैं, यदि यह अनुवाद करें, 'वह दिव्य शक्ति दिव्य शक्तियोंके साथ आये,।' क्योंकि वेदार्थकी बाह्य दृष्टिमें देवताएं भौतिक प्रकृतिकी सार्वत्रिक शक्तियां हैं जिन्हें अपना पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व प्राप्त है,

तो किसी भी आन्तरिक दृष्टिमें ये देवताएं अवश्य ही प्रकृतिकी वे सार्वत्रिक शक्तियां, संकल्प, मन आदि होनी चाहिये जिन द्वारा प्रकृति हमारे अन्दरकी हलचलोंमें काम करती है।

परन्तु वेदमें इन शक्तियोंकी साधारण मनः सीमित या मानवीय क्रिया, 'मनुष्यवत्' में और इनकी दिव्य क्रियामें सर्वदा भेद किया गया है। यह कल्पना की गयी है कि मनुष्य देवताओंके प्रति अपने आन्तरिक यज्ञमें अपनी मानसिक क्रियाओंका सही उपयोग करे तो उन्हें वह उनके सच्चे अर्थात् दिव्य रूपमें रूपान्तरित कर सकता है, मर्त्य अमर बन सकता है। इस प्रकार ऋभुगण जो कि पहले मानव सत्ताएं थीं या जो मानव शक्तियोंके द्योतक थे, कर्मकी पूर्णताके द्वारा– 'सुकृत्यया' 'स्वपस्यया' दिव्य और अमर शक्तियां बन गए। यह मानवका दिव्यको सतत आत्म–समर्पण और दिव्यका मानवके अंदर सतत अवतरण है जो कि यज्ञके प्रतीकसे प्रकट किया गया प्रतीत होता है।

इस अमरताकी अवस्थाको जो इस प्रकार प्राप्त होती है आनन्द और परम सुखकी अवस्था समझा गया है जिसका आधार एक पूर्ण सत्यानुभव और सत्याचरण, 'सत्यम्' और 'ऋतम्' है। मैं समझता हूं इससे अगली ऋचाको हमें अवश्य इसी अर्थमें लेना चाहिये। 'वह भलाई (सुख) जो तू हवि देनेवालेके लिये करेगा, वही तेरा वह सत्य है, हे अग्ने।' दूसरे शब्दोंमें, इस सत्यका (जो इस अग्निका स्वभाव है) सार है अभद्रसे मुक्ति, पूर्ण भद्र और सुखकी अवस्था जो 'ऋतम्' के अंदर रहती है और जिसका मर्त्यमें सृजन होना निश्चित है, जब कि वह मर्त्य अग्निको दिव्य होता बनाकर उसकी क्रिया द्वारा यज्ञमें हवि देता है। 'भद्रम्' का अर्थ है कोई वस्तु जो भली, शिव, सुखमय हो, और इस शब्दको अपने आपमें कोई गम्भीर अर्थ देनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु वेदमें हम इसे 'ऋतम्' की तरह एक विशेष अर्थमें प्रयुक्त हुआ पाते हैं।

एक सूक्त (५–८२) में इसका इस रूपमें वर्णन किया गया है कि, यह बुरे स्वप्न (दुःस्वप्न्यम्) का 'अनृतम्' की मिथ्या चेतनाका और 'दुरितम्' का, मिथ्या आचरण का विरोधी है, + जिसका अभिप्राय होता है कि यह सब प्रकारके पाप और कष्टका विरोधी है। 'भद्रम्' × इसलिये 'सुवितम्' का, सत्य आचरणका समानार्थक है, जिसका अर्थ है वह सब भलाई और सुख कल्याण जो सत्यकी, 'ऋतम्' की अवस्थासे संबंध रखता है। यह 'मयस्' है, सुख कल्याण है, और देवताओंको जो कि सत्य चेतनाका प्रतिनिधित्व करते हैं, 'मयोभुवः' कहा गया है अर्थात् वे जो सुख कल्याण लाते हैं या जो अपनी सत्तामें सुख कल्याण रखते हैं। इस प्रकार वेदका प्रत्येक भाग यदि यह अच्छी तरहसे समझमें आ गया है, तो प्रत्येक दूसरे भाग पर प्रकाश डालता है। इसमें परस्पर असंगति हमें तभी दीखती है जब इन पर पड़े हुए आवरणके कारण हम भटक जाते हैं।

अगली ऋचामें यह प्रतीत होता है कि फलोत्पादक यज्ञकी शर्त बतायी गयी है। वह है दिन–प्रतिदिन, रातमें प्रकाशमें, मानवके अंदर उसके विचारका सतत रहना, उस दिव्य संकल्प और बुद्धिके प्रति अधीनता, पूजा और आत्म-

+ प्रजावत् सावीः सौभगम्। परा दुष्वप्न्यं सुव॥ (ऋ, ५।१२।४)

× दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥ (ऋ. ५।८२।५)

समर्पणके साथ जिसका कि प्रतिनिधि अग्नि है। रात और दिन, 'नक्तोषसा,' भी वेदके अन्य सब देवोंकी तरह प्रतीकरूप ही हैं और आशय यह प्रतीत होता है कि चेतनाकी सभी अवस्थाओंमें, चाहे वे प्रकाशमय हों चाहे धुंधली समस्त क्रियाओंकी दिव्य निमन्त्रणके प्रति सतत वशवर्तिता और अनुरूपता होनी चाहिये।

क्योंकि चाहे दिन हो चाहे रात, अग्नि यज्ञोंमें प्रदीप्त होता है, वह मनुष्यके अंदर सत्यका, 'ऋतम्' का रक्षक है और अंधकारकी शक्तियोंसे इसकी रक्षा करता है, वह इस सत्यका सतत प्रकाश है जो मनकी धुंधली और पर्याक्रान्त दशाओंमें भी प्रदीप्त रहता है। ये विचार जो इस प्रकार आठवीं ऋचामें संक्षेपसे दर्शाये गये हैं, ऋग्वेदमें अग्निके जितने सूक्त है उन सबमें स्थिर रूपसे पाये जाते हैं।

अन्तमें अग्निके विषयमें यह कहा गया है कि वह अपने घरमें वृद्धिको प्राप्त होता है। अब हम अधिक देर तक इस व्याख्यासे सन्तुष्ट नहीं रह सकते कि अग्निका अपना घर वैदिक गृहस्थाश्रमी 'अग्नि-गृह' है। हमें स्वयं वेदमें ही इसकी कोई दूसरी व्याख्या ढूंढनी चाहिये, और वह हमें प्रथम मण्डलके ७५ वें सूक्तमें मिल भी जाती है।

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्।
अग्ने यक्षि स्वं दमम्। ऋ. १।७५।५

'यज्ञ कर हमारे लिये मित्र और वरुणके प्रति, यज्ञ कर देवोंके प्रति, सत्यके, बृहत्के प्रति, हे अग्ने! स्वकीय घरके प्रति यज्ञ कर।'

यहां 'ऋतं, बृहत्' और 'स्वं दमम्' यज्ञके लक्ष्यको प्रकट करते हुए प्रतीत होते हैं और ये पूर्णतया वेदके उस अलंकारके अनुरूप है जिसमें यह कहा गया है कि यज्ञ देवोंकी ओर यात्रा है और मनुष्य स्वयं एक यात्री है जो सत्य, ज्योति या आनन्दकी ओर अग्रसर हो रहा है। इसलिये यह स्पष्ट है कि 'सत्यं,' 'बृहत्' और 'अग्निका स्वकीय घर' एक ही है। अग्नि और अन्य देवताओंके बारेमें यह कहा गया है कि वे सत्यमें उत्पन्न होते हैं, 'ऋतजात' विस्तार या बृहत्के अन्दर रहते हैं। तो हमारे इस संदर्भका आशय यह होगा कि अग्नि जो मनुष्यके अंदर दिव्य संकल्प और दिव्य शक्ति रूप है, सत्य चेतनामें जो कि इसका अपना वास्तविक क्षेत्र है, बढता है, जहां मिथ्या बन्धन 'उरौ अनिबाधे,' विस्तृत और असीममें टूट कर गिर जाते हैं।

वेदोंके गुह्यार्थक होनेकी परंपरा

(श्री अरविन्द)

★

भारतमें यह परंपरा प्राचीनतम कालसे चली आ रही है कि वेदके ऋषि, कवि-द्रष्टा, उपर्युक्त प्रकारके थे, ऐसे थे जो कि महान् आध्यात्मिक और गुह्य ज्ञानसे युक्त थे, जहां तक कि साधारण मान-प्राणियोंकी गति नहीं होती ऐसे थे जिन्होंने अपने इस ज्ञानको और अपनी शक्तिको एक गुप्त दीक्षाके द्वारा अपने वंशजों तथा अपने चुने हुए शिष्योंको पहुंचाया था। यह मान लेना निरी कपोल-कल्पना होगी कि भारतमें चली आ रही यह उपर्युक्त परंपरा सर्वथा निराधार है, एवं अन्धविश्वास है जो एकदम या धीरे-धीरे एक शून्यमेंसे, बिना कुछ भी आधारके, बन गया है। इस परंपराका कुछ न कुछ आधार अवश्य होना चाहिये, वह चाहे कितना थोडा क्यों न हो या वह गाथा द्वारा तथा शताब्दियोंके उपचय द्वारा चाहे कितना बढा-चढा दिया गया क्यों न हो। और यदि वह ठीक है तो इन कविद्रष्टाओंने अवश्य ही वेदमें अपने गुह्य ज्ञानकी, अपनी रहस्यमय विद्याकी कुछ-न कुछ बातें व्यक्तकी होंगी और वेदमंत्रोंमें ऐसी कुछ वस्तु अवश्य विद्यमान होगी, वह चाहे गुह्य भाषाके द्वारा या प्रतीकोंके कौशलके पीछे चाहें कितनी सुगुप्त रखी हुई हो और यदि वह वहां विद्यमान है तो यह कुछ हदतक उपलभ्य भी होनी चाहिये।

यह ठीक है कि बहुत पुरानी भाषा, लुप्तप्राय शब्द (यास्कने चार सौसे ऊपर शब्द गिनाये हैं जिनके कि अर्थ उसे ज्ञात नहीं थे) तथा एक कठिन और अप्रचलित भाषा-शैलीके कारण वेदका अभिप्राय अंधकारमें पड गया है, वैदिक प्रतीकोंके अर्थोंके (जिनके कि कोष व कुंजी उन्हींके पास रहती थी) खोये जानेसे ये आनेवाली संततियोंके लिये दुर्बोध हो गये, जब कि उपनिषदोंके कालमें भी उस युगके आध्यात्मिक जिज्ञासुओंको वेदके गुप्त ज्ञानमें प्रवेश पानेके लिए दीक्षा तथा ध्यान (योगाभ्यास) की शरण लेनी पडती थी तो बादके विद्वान् तो किंकर्तव्य विमूढ ही हो गये और उन्हें शरण लेनी पडी अटकलकी तथा वेदोंकी बौद्धिक व्याख्या की जानेपर ही अपना ध्यान केंद्रित करनेकी या इन्हें गाथाओं तथा ब्राह्मण-ग्रंथोंके कथानकों (जो कि स्वयं प्रायः प्रतीकात्मक तथा अस्पष्ट थे) द्वारा समझने-समझानेकी। किंतु फिर भी वेदके उस रहस्यको उपलब्ध करना ही एक मात्र उपाय है जिससे कि हम वेदके सच्चे अर्थ और मूल्यको पा सकेंगे।

हमें यास्क मुनिके दिये संकेतको गंभीरता पूर्वक ग्रहण करना चाहिये, वेदके अंदर क्या है इस विषयमें हमें ऋषिके वर्णन किये ' द्रष्टाका ज्ञान हैं, कविद्रष्टाके वचन हैं, ' स्वीकार करना चाहिये और इस प्राचीन धर्म-ग्रंथके अर्थोंमें प्रवेश पानेके लिये जो कोई भी सूत्र प्राप्त कर सकें उसे खोजकर पकडना चाहिये। यदि ऐसा न करेंगे तो वेद सदाके लिये मुहरबंद पुस्तक ही बने रहेंगे; व्याकरण-विशारद, व्युत्पत्ति-शास्त्री या विद्वानोंकी अटकलें हमारे लिए इन मुहरबंद कमरोंको कभी खोल नहीं सकेंगी।

क्योंकि यह एक तथ्य है कि वेद विषयक यह परंपरा कि प्राचीन वेदकी ऋचाओंमें एक गुह्य अर्थ और एक रहस्यमय ज्ञान निहित है इतनी पुरानी है जितने कि स्वयं वेद पुराने हैं। वैदिक ऋषियोंका यह विश्वास था कि उनके मंत्र चेतनाके उच्चतर गुप्त स्तरोंसे अंतः प्रेरित हुए आये हैं और वे इस गुह्य ज्ञानको रखते हैं। वेदके वचन उनके सच्चे अर्थोंमें केवल उसीके द्वारा जाने जा सकते हैं जो कि स्वयं ऋषि या रहस्यवेत्ता (योगी) हो, अन्योंके प्रति मंत्र अपने गुह्य ज्ञानको नहीं खोलते।

अपने चतुर्थ मंडलके एक मंत्र (४, ३, १६) में वामदेव ऋषि अपने-आपको इस रूपमें वर्णन करता है कि मैं अन्तःप्रकाशसे युक्त (विप्र), अपने विचार (मतिभिः)

तथा शब्दों (उक्थैः) के द्वारा व्यक्त कर रहा हूं पथ-प्रदर्शक या आगे ले जानेवाले (नीथानि), और गुह्य वचनोंको (निण्या वचांसि), ये द्रष्टृज्ञानके शब्द (काव्यानि) हैं जो कि द्रष्टा या ऋषिके लिये अपने आंतर अर्थको बोलनेवाले (कवये निवचना) हैं। ऋषि दीर्घतमा ऋचाओंके, वेद-मंत्रोंके, विषयमें कहता है कि ' ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः अर्थात् ऋचाएं रहती हैं उस परम आकाशमें, जो कि अविनाशय व अपरिवर्तनीय है जिसमें कि सबके सब देव स्थित हैं और फिर कहता है कि ' यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति ' अर्थात् वह जो कि उसको (उस आकाशको) नहीं जानता वह ऋचासे क्या करेगा ? (ऋग्वेद १, १६४ ३९)।

वह ऋषि आगे चार स्तरोंका उल्लेख करता है जहांसे वाणी निकलती है, जिनमेंसे तीन तो गुह्यतामें छिपे हुए हैं और चौथा स्तर मानवीय है, और वहींसे मनुष्योंके साधारण शब्द आते हैं, परंतु वेदके शब्द और विचार उन उच्चतर तीन स्तरोंसे संबंध रखते हैं (१,१६४,४५)। इसी तरह अन्यत्र वेद (१०, मंडल ७१ सूक्त) में वेद-वाणीको परम (प्रथम), वाणीका उच्चतम शिखर (वाचो अग्रं), श्रेष्ठ तथा परम निर्दोष (अरिप्रं) वर्णित किया गया है। यह (वेदवाणी) कुछ ऐसी वस्तु है जो कि गुह्यतामें छिपी हुई है और वहांसे निकलती है और अभिव्यक्त होती है (प्रथम मंत्र)। यह सत्यद्रष्टाओं, ऋषियोंमें, प्रविष्ट हुई है और इसे प्राप्त किया जाता है इनकी वाणीकी पद्धति (पदचिन्हों) का अनुसरण करनेके द्वारा (तीसरा मंत्र)। परंतु सब कोई इसके गुह्य अर्थमें प्रवेश नहीं पा सकते।

वे लोग जो आंतरिक अभिप्रायको नहीं जानते ऐसे हैं जो देखते हुए भी नहीं देखते, सुनते हुए भी नहीं सुनते, कोई विरला ही होता है जिसे कि वाणी चाहती हुई अपने आपको प्रकट कर देती है, जैसे कि सुन्दर वस्त्र पहने हुई पत्नी अपने पतिको (चौथा मंत्र)। अन्य लोग जो कि ' वाणी ' के ... वेद— रूपी गौके— दूधको स्थिरतया पीनेमें असमर्थ होते हैं यूं ही साथ-साथ फिरते हैं मानों वह गौ दूध देनेवाली है ही नहीं, उनके लिये वाणी ऐसे वृक्षके समान है जो फलरहित और पुष्परहित है (पांचवां मंत्र)।

वेदका यह सब कथन कितना स्पष्ट और यथार्थ है। इससे संदेहको कुछ गुंजायशके बिना, यह परिणाम निकलता है कि उस समय भी जब कि ऋग्वेद लिखा जा रहा था ऋचाओंके विषयमें यह माना जाता था कि उनका कुछ गुप्त अर्थ है जो कि सबके लिये खुला नहीं है। सचमुच पवित्र वेद-मंत्रोंके अंदर एक गुह्य और आध्यात्मिक ज्ञान था और उस ज्ञानके द्वारा ही, ऐसा माना जाता था, कोई मनुष्य सत्यको जान सकता था, और एक उच्चतर अवस्थामें चढ सकता था। यह विश्वास कोई पीछेकी बनी परंपरा नहीं था किंतु इस विश्वासको, संभवतः, सभी ऋषि और प्रत्यक्षतः दीर्घतमा तथा वामदेव जैसे श्रेष्ठतम ऋषियोंमेंसे कुछ तो अवश्य रखते थे।

तो यह परंपरा पहलेसे विद्यमान थी और फिर यह वैदिक कालके पश्चात् भी चलती गयी। एवं हम देखते हैं कि यास्क मुनि अपने निरुक्तमें वेदकी व्याख्यामें अनेक संप्रदायोंका उल्लेख करते हैं। एक याज्ञिक अर्थात् कर्म-काण्डीय व्याख्याका संप्रदाय था, एक ऐतिहासिक था जिसे गाथात्मक व्याख्याका संप्रदाय कहना चाहिये, एक वैयाकरणों तथा व्युत्पत्ति-शास्त्रियों, नैरुक्तों द्वारा एवं नैयायिकोंद्वारा व्याख्या संप्रदाय और एक आध्यात्मिक व्याख्याका। यास्क स्वयं घोषित करता है कि त्रिविध ज्ञान है, अतएव सब वेदमंत्रोंके अर्थ भी त्रिविध होते हैं, एक आधियज्ञ या कर्मकांडिक ज्ञान, आधिदैवत अर्थात् देवता संबंधी ज्ञान और अंतमें आध्यात्मिक ज्ञान, परंतु इनमें तीसरा आध्यात्मिक अर्थ ही वेदका सच्चा अर्थ है और जब यह प्राप्त हो जाता है तो शेष अर्थ झड जाते हैं या कट जाते हैं। यह आध्यात्मिक अर्थ ही है जो कि त्राण करनेवाला है, शेष सब बाह्य हैं और गौण हैं।

वह आगे कहता है कि ' ऋषियोंने सत्यको, वस्तुओंके सत्य धर्मको आंतर दृष्टिद्वारा प्रत्यक्ष देखा था, ' कि पीछेसे वह ज्ञान तथा वेदका आंतरिक अर्थ लुप्त प्रायः होते गये और जो थोडेसे ऋषि उन्हें तब भी जानते थे उन्हें इसकी रक्षा शिष्योंको दीक्षित करते जानेके द्वारा करनी पडी और अंतमें वेदार्थको जानेके लिए बाह्य और बौद्धिक उपायोंको जैसे निरुक्त तथा अन्य वेदांग, उपयोगमें लाना पडा।

परंतु तो भी वह कहता है, 'वेदका सच्चा अर्थ प्रत्यक्षतः जाना जा सकता है ध्यान-योग और तपस्याके द्वारा,' और जो लोग इन साधनोंको उपयोगमें ला सकते हैं उन्हें वेद-ज्ञानके लिये किन्हीं बाह्य सहायताओंकी आवश्यकता नहीं है। सो यास्कका यह कथन भी पर्याप्त स्पष्ट और निश्चयात्मक है।

यह परंपरा कि वेदमें एक रहस्यवादी तत्त्व है और वह भारतीय सभ्यता, भारतीय धर्म, दर्शन तथा संस्कृतिका मूल स्रोत है ऐतिहासिक तथ्यसे अधिक संगत है न कि यूरोपियनोंका इस परंपरागत विचारका उपहास करनेवाला मत। उन्नीसवीं शताब्दीके यूरोपियन पंडित जो कि एक भौतिकता प्रधान तर्कवादके युगके लेखक थे भारतजातिके इतिहासके विषयमें यह मानते थे कि यह एक प्रारंभिक जंगली या अर्द्ध-जंगली अवस्थामेंसे हुआ विकास है, एक अपरिपक्व सामाजिक जीवन और धर्म और एक अंधविश्वासोंका समुदाय है, जो कि बुद्धि और तर्कके, कला, दर्शन तथा भौतिक विज्ञानके प्रारंभिक उदय द्वारा और एक अधिक स्पष्ट और सयुक्तिक तथा अधिक तथ्यपरायण समझके द्वारा बनी बाह्य सभ्य संस्थाओंके रीति-रिवाजों और आदतोंका परिणाम-रूप था। सो वेदविषयक यह परंपरागत प्राचीन विचार उनके इस चित्रमें ठीक नहीं बैठ सकता था, उसे तो वे प्राचीन अंधविश्वासपूर्ण विचारोंका एक भाग और आदि जंगली लोगोंकी एक सहज भूल ही मानते थे। परंतु हम अब भारतजातिके विकासके विषयमें अधिक ठीक-ठीक विचार बना सकते हैं।

यह कहना चाहिये कि प्राचीन आद्यतर सभ्यताएं अपने अंदर भावी विकासके तत्त्वोंको रखे हुए थीं किंतु उनके आदिम ज्ञानी लोग वैज्ञानिक और दार्शनिक या ऊंची बौद्धिक तर्कणा-शक्तिवाले लोग नहीं थे परंतु रहस्यवादी थे, बल्कि रहस्य-पुरुष, गुह्यवादी, धार्मिक जिज्ञासु थे। वे जिज्ञासु थे वस्तुओंके पीछे छिपे हुए सत्यके, न कि बाह्य ज्ञानके। वैज्ञानिक और दार्शनिक पीछेसे आए; उनके पूर्ववर्ती तो रहस्यवादी थे और प्रायः पाइथागोरस तथा प्लेटो जैसे दार्शनिक भी कुछ सीमातक या तो रहस्यवादी थे या उनके बहुतसे विचार रहस्यवादियोंसे लिये गये थे।

भारतमें दार्शनिकता रहस्यवादियोंकी जिज्ञासामेंसे ही उदित हुई और भारतीय दर्शनोंने उनके (रहस्यवादियोंके) आध्यात्मिक ध्येयोंको कायम रखा तथा विकसित किया और उनकी पद्धतियोंमेंसे कुछको आगामी भारतीय आध्यात्मिक शिक्षणमें तथा योगमें भी पहुंचाया। वैदिक परंपरा, यह तथ्य कि वेदमें एक रहस्यवादी तत्त्व है, इस ऐतिहासिक सत्यके साथ पूरी तरह ठीक बैठती है और भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें अपना स्थान प्राप्त करती है। तो वेदविषयक यह परंपरा कि वेद भारतीय सभ्यताके मूल आधार हैं न कि केवल एक जंगली याज्ञिक पूजाविधि, केवल परंपरासे कुछ अधिक वस्तु है, यह इतिहासका एक वास्तविक तथ्य है।

वेदोंके दोहरे और प्रतीकात्मक अर्थ

परंतु यदि कहीं वेदमंत्रोंमें उच्च आध्यात्मिक ज्ञानके कुछ अंश या उच्च विचारोंसे पूर्ण कुछ वाक्य पाये भी जाय तो यह कल्पना की जा सकती है कि वे तो शायद वेदका केवल एक स्वल्पसा भाग है, जब कि शेष सब याज्ञिक पूजाविधि ही है, देवताओंके प्रति की गयी प्रार्थना या प्रशंसाके मंत्र हैं जो कि देवताओंका यज्ञ करनेवालों पर ऐसे भौतिक वरदानोंकी वर्षा करनेको प्रेरित करनेके लिए बोले जाते थे जैसे कि बहुतसी गौएं, घोडे, लडाकूवीर, पुत्र, अन्न, सब प्रकारकी संपत्ति, रक्षा, युद्धमें विजय, या फिर आकाशसे वर्षाको ले आनेके लिये, सूर्यको बादलोंमेंसे रात्रिके पंजेसे छुडा लानेके लिये, सात नदियोंके उन्मुक्त प्रवाहित होनेके लिए, दस्युओंसे (या द्रविडियोंसे) अपने पशुओंके छुडा लानेके लिये तथा अन्य ऐसे ही वरदानोंके लिये जो कि उपरितल पर इस याज्ञिक पूजाके उद्दिष्ट विषय प्रतीत होते हैं।

तो इसके अनुसार तो वेदके ऋषि ऐसे लोग होने चाहिये जो कुछ आध्यात्मिक या रहस्यमय ज्ञानवाले हों किंतु वैसे उस युगके अनुकूल सभी साधारण प्रचलित विचारोंके वशीभूत होंगे। तो इन दोनों ही तत्त्वोंको ऋषियोंने अपने वैदिक सत्योंमें घुला-मिलाकर रखा होगा और ऐसा मान लेनेसे कम-से कम अंशतक इसका भी कुछ कारण समझमें आ जायगा कि वेदमें इतनी अस्पष्टता, बल्कि इतनी विचित्र और कभी-कभी तो हास्यजनक असम्बद्धता

क्यों है, जैसी कि परंपरागत भाष्योंके अनुसार वेदमें हमें दिखाई देता है।

परंतु यदि, इसके प्रतिकूल, वेदोंमें उच्च विचारोंका एक बहुत बडा समुदाय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता हो, यदि मंत्रोंका बहुत बडा भाग या समूचे सूक्त केवल उनके रहस्यमय तथा अर्थोंको ही प्रकट करनेवाले हों, और अंततः यदि वेदमें आये कर्मकाण्डों तथा बाह्य ब्यौरे निरंतर ऐसे प्रतीकोंका रूप धारण करते पाये जाते हों जैसे कि रहस्यवादियोंद्वारा सदा प्रयुक्त किये जाते हैं और यदि स्वयं सूक्तोंके अंदर ही वैदिक शैलीके ऐसी ही होनेके कारण अनेक स्पष्ट संकेत बल्कि कुछ सुस्पष्ट वचनतक मिलते हों, तब सब कुछ बदल जाता है। तब हम अपने सामने एक ऐसी महान् धर्मपुस्तकको पाते हैं जिसके कि दोहरे अर्थ हैं. एक गुह्य अर्थ और दूसरा लौकिक अर्थ, स्वयं प्रतीकोंका भी वहां अपना अर्थ है जो कि उन्हें गुह्य अर्थोंका एक भाग, गुह्य शिक्षा तथा ज्ञानका एक तत्व बना देता है।

संपूर्ण ही ऋग्वेद, शायद थोडेसे सूक्तोंको अपवाद-रूपमें छोडकर, अपने आंतरिक अर्थमें वह महान् धर्मपुस्तक हो जाता है। साथ ही यह आवश्यक नहीं कि उसका बाह्य लौकिक अर्थ केवल परदेका ही काम करे, क्योंकि ऋचाएं उनके निर्माताओं द्वारा शक्तिसे ऐसे वचन मानी गयी थीं जो न केवल आंतरिक वस्तुओंके लिये किंतु बाह्य वस्तुओंके लिये भी शक्तिशालिनी थीं। शुद्ध आध्यात्मिक धर्मग्रंथ तो केवल आध्यात्मिक अर्थोंसे अपना वास्ता रखता, किंतु ये प्राचीन रहस्यवादी साथ ही वे भी थे जिन्हें 'आकल्टिस्ट' (गुप्त विद्याविद) कहना चाहिये, वे ऐसे थे जिनका विश्वास था कि आंतर साधनोंद्वारा आंतरिक ही नहीं किंतु बाह्य परिणाम भी उत्पन्न किये जा सकते हैं विचार और वाणीका ऐसा प्रयोग किया जा सकता है कि जिससे इसके द्वारा प्रत्येक प्रकारकी स्वयं वेदमें प्रचलित मुहावरेमें कहें तो 'मानुषी और दैवी' दोनों प्रकारकी सिद्धि या सफलता प्राप्त की जा सकती है।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२२४ सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं
प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानः
अग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥

अथर्व. ७।५३।२

हे प्राण और अपानो ! (सं क्रामतं) शरीरमें उत्तम प्रकार संचार करो, (शरीरं मा जहीतं) शरीरको मत छोडो, वे दोनों (इह ते सयुजौ स्ताम्) यहां तेरे सहचारी होकर रहें, (वर्धमानः शरदः शतं जीव) बढता हुआ तू सौ वर्ष जीवित रह, (ते अधिपा वसिष्ठः गोपा अग्निः) तेरा अधिपति निवासक और रक्षक तेजस्वी देव है ॥ २२४ ॥

प्राणायाम करनेसे दीर्घ जीवन होता है। 'श्वास' अन्दर जानेवाले प्राणको कहते हैं और 'उच्छ्वास' बाहर आनेवाले प्राणको कहते हैं। ये श्वास और उच्छ्वास (पूरक और रेचक) जहांतक हो वहांतक दीर्घ करने चाहिये। बीचमें थोडा कुंभक करना चाहिये। प्रातः काल, मध्याह्नमें, और सायंकाल, यह प्राणायाम करनेसे दीर्घ जीवन प्राप्त होनेमें सहायता होती है।

ब्रह्मा । आयुः । भुरिक् ।

२२५ आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैः
अपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात्
तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥

अथर्व. ७।५३।३

(ते यत् आयुः पराचैः अतिहितं) तेरी जो आयु विरुद्ध गतियोंसे घट गयी है, उस स्थान पर (तौ प्राणः अपानः पुनः आ इतां) वे प्राण और अपान पुनः आवें, (अग्निः निर्ऋतेः उपस्थात् तत् पुनः आहाः) वह तेजस्वी देव दुर्गतिके समीपसे पुनः लाता है, (ते आत्मनि तत् पुनः आवेशयामि) तेरे अन्दर उसको पुनः हम स्थापित करते हैं ॥ २२५ ॥

दुराचार करनेसे आयु कम होती है। अतः दुराचार नहीं करने चाहिये। पर दुराचार हो गये, तो भी पुनः दीर्घ श्वसन-प्राणायाम आदि योग्य रीतिसे करनेसे आयु दीर्घ होती है। अतः जिनके जीवनमें दुराचार हुए हैं वे पुनः प्राणायामादि करने लग जांय तो अवश्य लाभ होगा।

ब्रह्मा । आयुः । उष्णिग्गर्भार्षी पंक्तिः ।

२२६ मेमं प्राणो हासीन्मो अपानः
अवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि
त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ॥ अथर्व. ७।५३।४

(इमं प्राणः मा हासीत्) इसको प्राण न छोडे, और (अपानः अवहाय परा मा गात्) अपान भी इसे छोडकर दूर न जावे, (सप्तर्षिभ्यः एनं परिददामि) सात ऋषियोंके समीप इसको देता हूं, (ते एनं जरसे स्वस्ति वहन्तु) वे इसे वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक ले जावें ॥ २२६ ॥

प्राण और अपान शरीरमें ठीक रहने चाहिये। प्राणायामसे प्राण और अपान ठीक होते हैं। प्राणकी गति योग्य करनेसे अपानकी गति ठीक होती है। सात ऋषि दो आंख, दो कान, दो नाकके छेद और एक मुख ये हैं। प्राण ठीक होनेसे ये सात ऋषि उत्तम कार्य करते हैं। प्राण और ये इन्द्रिय मिलकर दीर्घ जीवन करनेमें सहायता करते हैं। ये इंद्रिय सदाचारमें रखने चाहिये और प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। जिससे दीर्घ जीवन सिद्ध होता है।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२२७ प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥

अथर्व. ७।५३।५

हे प्राण और अपान ! (व्रजं अनड्वाहौ इव प्रविशतं) जैसे गौशालामें बैल घुसते हैं, उस प्रकार तुम दोनों शरीरमें प्रविष्ट होवो, (अयं जरिम्णः शेवधिः) यह प्राण वार्धक्य तककी पूर्ण आयुका खजाना है, यह (इह अरिष्टः वर्धतां) यहां न घटता हुआ बढे ॥ २२७ ॥

प्राण और अपान शरीरमें वेगसे घुसें। प्राण छातीमें प्रविष्ट होता है और अपान मलाशयमें कार्य करता है। शौच जानेके समय उच्छ्वास करके प्राणको जहांतक होसके वहां तक बाहर ही रोका जाय, तो जल्दी शौच आता है

और शौचाशय एकदम स्वच्छ होता है। प्राणके बाह्य कुंभक करनेसे शौच शुद्धि होनेमें बडी सहायता होती है। प्राणायामसे छातीमें रक्त शुद्ध होता है। इस तरह प्राण और अपान शरीरमें बडे महत्वका कार्य करते हैं। इनका योग्य रीतिसे आयाम किया जाय, तो शरीर दीर्घायु प्राप्त करके सुखी हो सकता है।

ब्रह्मा। आयुः। अनुष्टुप्।

२२८ आ ते॑ प्रा॒णं सु॑वामसि॒
परा॒ यक्ष्मं॑ सुवामि ते।
आयु॑र्नो वि॒श्वतो॑ दधद॒यम॒ग्निर्वरे॑ण्यः॥

अथ. ७।५३।६

(ते प्राणं आ सुवामसि) तेरे प्राणको मैं प्रेरित करता हूं, (ते यक्ष्मं परा सुवामि) तेरे क्षय रोगको मैं दूर करता हूं, (अयं वरेण्यः अग्निः) यह श्रेष्ठ अग्नि (नः आयुः विश्वतः दधत्) हमारे अन्दर आयुको सब प्रकारसे स्थापित करे॥ २२८॥

शरीरमें प्राणायाम द्वारा प्राणको शरीर रक्षणके कार्यमें लगाना चाहिये। प्राणायामसे रक्त शुद्ध होता है, जिससे अनेक रोग दूर होते हैं। तथा शरीरकी उष्णता रूपी 'वरेण्य अग्नि' शरीरमें कार्य करनेके योग्य अवस्थामें रहता है। यही अग्नि मानवोंकी आयु दीर्घ करता है।

प्राणायामसे प्राणको बलवान् बनाना, रोगोंको दूर करना, मन उत्साहित रखना और आयुको बढाना ये मानवके कर्तव्य यहां बताये हैं।

ब्रह्मा। आत्मा। त्रिष्टुप्।

२२९ को अ॒स्या नो॑ द्रु॒हो॑ऽवद्यव॑त्या
उन्ने॑ष्यति क्ष॒त्रियो॒ वस्य॑ इ॒च्छन्।
को य॒ज्ञका॑मः क उ॒ पूर्ति॑कामः
को दे॒वेषु॑ वनुते दी॒र्घमायुः॑॥

अथर्व. ७।१०३।१

(कः [प्रजापतिः] क्षत्रियः वस्यः इच्छन्) प्रजापालक क्षत्रिय प्रजाका धन बढानेकी इच्छा करता हुआ (अस्याः अवद्यवत्याः द्रुहः नः उत् नेष्यति) परस्परके द्रोह रूप इस निंदनीय दुर्गतिसे हमें ऊपर उठावेगा, (कः= प्रजापतिः यज्ञकामः) प्रजापालकरूप यज्ञकर्ता (उ कः पूर्तिकामः) और वही प्रजापालक हमारी पूर्णता करनेवाला (देवेषु कः दीर्घं आयुः वनुते) देवोंके बीचमें प्रजापालक ही दीर्घायु देता है॥ २२९॥

ब्रह्मा। आयुः। त्रिष्टुप्।

२३० अन्त॑काय मृ॒त्यवे॒ नमः॑
प्रा॒णा अ॑पा॒ना इ॒ह ते॑ रमन्ताम्।
इ॒हायम॑स्तु॒ पुरु॑षः स॒हासु॑ना
सूर्य॑स्य भा॒गे अ॒मृत॑स्य लो॒के॥ अथ. ८।१।१

(मृत्यवे अन्तकाय नमः) मृत्यु रूपसे सबका अन्त करनेवाले परमेश्वरको नमस्कार है, हे मनुष्य ! (ते प्राणाः अपानाः इह रमन्तां) तेरे प्राण और अपान यहां शरीरमें आनन्दसे रहें, (अयं पुरुषः असुना सह) यह मनुष्य प्राणके साथ (इह अमृतस्य लोके सूर्यस्य भागे अस्तु) इस अमृतके स्थान रूपी सूर्यके प्रकाशके भागमें रहे॥ २३०॥

प्राण और अपान इस शरीरमें कार्यक्षम स्थितिमें रहें। अपना अपना कार्य उत्तम रीतिसे करते रहें। यह मनुष्य उत्तम बलवान् प्राण शक्तिके साथ जहां सूर्यप्रकाश होता है वहां रहे। सूर्यप्रकाश अमृतका स्थान है अतः सूर्यप्रकाशमें रहनेवाला मनुष्य दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। अर्थात् सूर्यप्रकाश जहां न हो ऐसे स्थानमें रहनेवाला मनुष्य अल्प आयु होता है।

ब्रह्मा। आयुः। अनुष्टुप्।

२३१ इ॒ह तेऽसु॑रि॒ह प्रा॒ण इ॒हायु॑रि॒ह ते॒ मनः॑।
उत् त्वा॒ निर्ऋ॑त्याः॒ पाशे॑भ्यो॒
दैव्या॑ वा॒चा भ॑रामसि॥ अथर्व. ८।१।३

(इह ते असुः) यहां तेरा जीवन (इह प्राणः इह आयुः) यहां प्राण यहां आयु और (इह ते मनः) यहां तेरा मन स्थिर रहे, (दैव्या वाचा निर्ऋत्याः पाशेभ्यः) दिव्य वाणीके द्वारा अधोगतिके फांसोंसे (त्वा उत् भरामसि) तुझे ऊपर स्थापित करते हैं॥ २३१॥

वाणी, मन, जीवन, प्राण और आयु विनाशके पाशोंसे हमें बचावें और हमारे अन्दर दीर्घ आयु स्थापित करें।

ब्रह्मा । आयुः । प्रस्तारपंक्तिः ।

२३२ उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था
मृत्योः पड्वीशमवमुंचमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकाद्
अग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥ अथर्व. ८।१।४

हे पुरुष ! (अतः उत् क्राम) यहांसे ऊपर चढ (मा अवपत्थाः) नीचे मत गिर, (मृत्योः पड्वीशं अवमुंचमानः) मृत्युकी बेडीसे अपने आपको छुडाता हुआ (अस्मात् लोकात्) इस लोकसे तथा (अग्नेः सूर्यस्य संदृशः) अग्नि और सूर्यके दर्शनसे अपने आपको (मा छित्थाः) दूर मत रख ॥ २३२ ॥

उन्नति करनी चाहिये, नीचे गिरना नहीं चाहिये । इस लोकमें अग्नि और सूर्यके दर्शनसे कभी दूर रहना नहीं चाहिये । ये ही दीर्घ जीवन देनेवाले देव हैं ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२३३ तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा
तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति
त्वा मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥ अथर्व. ८।१।५

(मातरिश्वा वातः तुभ्यं पवतां) अन्तरिक्षमें रहनेवाला वायु तेरे लिए शुद्धता करे, (आपः तुभ्यं अमृतानि वर्षन्ताम्) जल तेरे लिए अमृतकी वृष्टि करें, (सूर्यः ते तन्वे शं तपाति) सूर्य तेरे शरीरके लिए सुखकर तपता है, (मृत्युः त्वां दयतां) मृत्यु तुझ पर दया करे, और तू (मा प्रमेष्ठाः) मत मर ॥ २३३ ॥

वायु, जल, सूर्य मनुष्यका संरक्षण करें । मृत्यु इस मनुष्यसे दूर रहे अर्थात् इसको न मारे ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२३४ उद्यानं ते पुरुष नावयानं
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथं
अथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥

अथर्व. ८।१।६

हे पुरुष ! (ते उत्-यानं) तेरी उन्नतिकी ओर गति हो, (न अव-यानं) अवनतिकी ओर गति न होवे, इसलिए मैं (ते जीवातुं दक्षतातिं कृणोमि) तुझे जीवन और बल देता हूं, (इमं अमृतं सुखं रथं आरोह) इस अमरत्व देनेवाले सुखकारक शरीर रूपी रथपर चढ, (अथ जिर्विः) और जब तू वृद्ध होगा, तब (विदथं आवदासि) विज्ञानका उपदेश करेगा ॥ २३४ ॥

हे मनुष्य ! तू उन्नत हो, कभी अवनतिके मार्गसे न जा । तुझे दीर्घ जीवन और बल प्राप्त हो । इस शरीररूपी रथ पर चढ और दीर्घ जीवनके मार्गसे आगे बढ । इस तरह जब तू वृद्ध होगा तब तू अपने जीवनमें प्राप्त किये अनुभवोंका उपदेश दूसरोंको मार्ग बतानेके लिये करेगा ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिपदा विराड् गायत्री ।

२३५ मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भूत्
मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ अथ. ८।१।७

(ते मनः तत्र मा गात्) तेरा मन उस निषिद्ध मार्गमें न जावे, और वहां (मा तिरः भूत्) लीन न होवे, (जीवेभ्यः मा प्रमदः) जीवोंके सम्बन्धमें प्रमाद न कर (पितॄन् मा अनुगाः) पितरोंके पीछे न जा अर्थात् मर मत, (इह विश्वे देवाः त्वा अभि रक्षन्तु) यहां सब देव तेरी रक्षा करें ॥ २३५ ॥

हीन मार्गसे चलना नहीं । हीन मार्गमें रमना नहीं । अन्य मानवोंका अहित करना नहीं । उनका जितना हो उतना हित ही करना चाहिये । मृत्युके मार्गसे जाना नहीं । दीर्घ जीवन जिससे प्राप्त हो सकता है उस मार्गसे ही जाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । विराट्पथ्याबृहती ।

२३६ मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिः
एह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ अथर्व. ८।१।८

(गतानां मा आदीधीथाः) मरे हुओंके लिए विलाप मत कर, क्योंकि (ये परावतं नयन्ति) वे तो

दूर ले जाते हैं, अतः (इहि आ) यहां आ और (तमसः ज्योतिः आरोह) अन्धकारको छोड प्रकाशमें आ, (ते हस्तौ रभामहे) तेरे हाथोंको हम पकडते हैं ॥ २३६ ॥

प्रकाशके मार्गसे चलना चाहिये । अन्धकारके मार्गसे कदापि नहीं जाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२३७ मैतं पन्थामनु गा भीम एष
येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था
भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ अथर्व. ८।१।१०

(एतत् पन्थां अनु मा गाः) इस बुरे मार्गका अनुसरण मत कर, (भीमः एषः) यह भयंकर मार्ग है, (येन पूर्वं न ईयथ) जिससे पहिले नहीं जाते हैं, (तं ब्रवीमि) उस विषयमें मैं कहता हूं कि, हे पुरुष ! (एतत् तमः) यह अन्धकारका मार्ग है, इस मार्गमें (मा प्र पत्थाः) मत जा, (ते परस्तात् भयं) तेरे लिए आगे भय है, (अर्वाक् ते अभयं) और इधर अभय है ॥ २३७ ॥

भयानक मार्गसे जाना नहीं । भय जहां न हो उसी मार्गसे जाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । प्रस्तारपंक्तिः ।

२३८ जीवेभ्यस्त्वा समुद्रे वायुरिन्द्रो
धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीद्
असुं तेऽनु ह्वयामसि ॥ अथर्व. ८।१।१५

(त्रायमाणः धाता सविता वायुः इन्द्रः) रक्षक, पोषक, प्रेरक, जीवन साधक प्रभु (जीवेभ्यः त्वा सं-उद्रे दधातु) सब प्राणियोंके लिए तथा तेरे लिए पूर्ण उत्कृष्टता धारण करे । (त्वा प्राणः बलं मा हासीत्) तेरे लिए प्राण न छोडे (ते असुं अनु ह्वयामसि) तेरे प्राणको हम अनुकूलताके साथ बुलाते हैं ॥ २३८ ॥

प्राणका बल कम हो ऐसा नहीं करना चाहिये । प्राणका बल बढे ऐसा व्यवहार करना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२३९ उत् त्वा द्यौरुत्पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥
अथर्व. ८।१।१७

(द्यौः उत्) द्युलोक (पृथिवी उत्) पृथिवी और (प्रजापतिः त्वा उत् अग्रभीत्) प्रजापालक देव तुझे ऊपर उठावे । (सोमराज्ञीः ओषधयः) सोम राजावाली औषधियां (त्वा मृत्योः उत् अपीपरन्) तुझे मृत्युसे ऊपर उठावे अर्थात् तेरी रक्षा करें ॥ २३९ ॥

औषधियोंके सेवनसे मृत्युका भय दूर होता है और दीर्घ आयु प्राप्त होती है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४० अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥
अथ. ८।१।१८

हे (देवाः) देवो ! (अयं इह एव अस्तु) यह यहां इस लोकमें ही रहे, (अयं इतः अमुत्र मा गात्) यह यहांसे वहां परलोकमें न जावे, (सहस्रवीर्येण इमं मृत्योः उत् पारयामसि) हजारों बलोंसे युक्त उपायसे इस मनुष्यको मृत्युसे हम पार कराते हैं ॥ २४० ॥

यह मनुष्य इस लोकमें दीर्घ काल तक रहे, जल्दी परलोकमें न जावे । सहस्रों उपायोंको करके मनुष्यका मृत्युसे बचाव करना योग्य है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४१ उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ॥
अथ. ८।१।१९

(मृत्योः त्वा उत् अपीपरं) मृत्युसे तुझको हम पार कराते हैं, (वयोधसः सं धमन्तु) अन्न अथवा आयुको धारण करनेवाले देव तुझे पुष्ट करें । (व्यस्तकेश्यः अघरुदः) बालोंको खोलकर बुरी तरहसे रोनेवाली स्त्रियां (मा त्वा रुदन्, मा त्वा) तेरे लिए न रोवें अर्थात् तेरी मृत्युके कारण इन पर रोनेका प्रसंग न आवे ॥ २४१ ॥

मृत्युसे दूर होकर योग्य अन्नका सेवन करके अपनी आयुको बढाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४२ आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥

अथर्व. ८।१।२०

(त्वा आहार्षं) मैं तुझे लाया हूं, (त्वा अविदं) मैंने तुझे पुनः प्राप्त किया है, (पुनः नवः पुनः आगाः) फिर नया होकर फिर आ गया है, हे (सर्वाङ्ग) सम्पूर्ण अंगोंवाले मनुष्य ! (ते सर्वं चक्षुः) तेरी पूर्ण दृष्टि और (ते सर्वं आयुः च) तेरी पूर्ण आयु तेरे लिए (अविदं) प्राप्त कराई है ॥ २४२ ॥

मैंने तुझे मृत्युसे बचाया है । अब तू नया सा हो गया है । तेरे सब अंग निर्दोष हुए हैं । चक्षु आदि तेरे इंद्रिय नवीन जैसे हुए हैं और तुझे पूर्ण आयु प्राप्त हुई है । औषधि सेवन तथा योगके अभ्याससे सब शरीर पुनः तरुण हो सकता है और दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४३ व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिं अप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥

अथर्व. ८।१।२१

अब (त्वत् तमः व्यवात्) तेरे पाससे अन्धकार चला गया है, (अप अक्रमीत्) तेरेसे दूर चला गया है, (ते ज्योतिः अभूत्) तेरा प्रकाश फैल गया है, (त्वत् निर्ऋतिं मृत्युं अप नि दध्मसि) तेरेसे दुर्गति और मृत्युको हम दूर हटाते हैं, तथा तेरेसे (यक्ष्मं अप नि दध्मसि) रोगको हम दूर करते हैं ॥ २४३ ॥

रोग आदिको हटाना चाहिये । अन्य विकृतियां भी हटानी चाहिये । अंधकार और दुर्गतिको दूर करना चाहिये और दीर्घ आयुको प्राप्त करनेके जो साधन हों उनको आचरणमें लाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । भुरिक् ।

२४४ आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिं
अच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि
रजस्तमो मोप गा मा प्रमेष्ठाः ॥

अथर्व. ८।२।१

(इमां अमृतस्य श्नुष्टिं आरभस्व) इस अमृत रसके पानको प्रारम्भ कर, (ते जरत्-अष्टिः अच्छिद्यमाना अस्तु) तेरी वृद्धावस्था तक जीवन भोग अविच्छिन्न रीतिसे रहे (ते असुं आयुः पुनः आ भरामि) तेरे प्राण और जीवनको मैं तेरे अन्दर पुनः भरता हूं, (रजः तमः मा उपगाः) भोग और अज्ञानके पास न जा, (मा प्र मेष्ठाः) मर मत ॥ २४४ ॥

औषधिके अमृत रसका पान करो । उत्तम वृद्धावस्थाको स्वास्थ्य पूर्ण रीतिसे प्राप्त करो और दीर्घ आयुको पूर्ण आरोग्यके साथ प्राप्त करो ।

ब्रह्मा । आयुः । भुरिक् ।

२४५ जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ्
आ त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुंचन्मृत्युपाशानशस्तिं
द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥

अथर्व. ८।२।२

(जीवतां ज्योतिः अर्वाङ् अभि एहि) जीवित मनुष्योंकी ज्योति इस ओरसे प्राप्त कर, (त्वा शत-शारदाय आ हरामि) तुझे सौ वर्षकी आयुके लिए लाता हूं (मृत्युपाशान् अशस्तिं अवमुंचन्) मृत्युके पाशों और अकीर्तीको हटाता हुआ (ते प्रतरं द्राघीयः आयुः दधामि) मैं तेरे लिए उत्कृष्ट दीर्घ आयु देता हूं ॥ २४५ ॥

जीवनकी ज्योति प्राप्त करो । पूर्ण सौ वर्षोंका जीवन तुझे प्राप्त हो । मृत्युके पाशोंको तोडकर नया जीवन प्राप्त करके दीर्घायु बनकर रहो ।

ब्रह्मा । आयुः । आस्तारपंक्तिः ।

२४६ वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि
सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥

अथर्व. ८।२।३

(वातात् ते प्राणं अविदं) वायुसे तेरे प्राणको प्राप्त किया है (अहं सूर्यात् तव चक्षुः) मैंने सूर्यसे तेरे नेत्रको प्राप्त किया, (यत् ते मनः त्वयि तद् धारयामि) जो तेरा मन है उसको मैं तेरे अन्दर धारण कराता हूं (अंगैः संवित्स्व) अपने सब अवयवोंको प्राप्त हो,

(जिह्वया आलपन् वद) जिह्वासे शब्दोच्चार करता हुआ तू बोल ॥ २४६ ॥

वायुसे प्राण, सूर्यसे नेत्र इस तरह अन्य देवोंसे अन्य अवयव बने हैं। इन देवताओंके अंशोंसे बने अपने सब अवयवोंको धारण कर और इस शरीरस्थ देवोंका संचालक मैं हूं, यह तू मनमें समझ और जिह्वासे इस तत्वज्ञानका उपदेश कर। इससे तेरा बल बढेगा और दीर्घायु प्राप्त होगी।

ब्रह्मा। आयुः। प्रस्तारपंक्तिः।

२४७ प्राणेन॑ त्वा द्विपदां चतु॑ष्पदाम्
अ॒ग्निमि॑व जा॒तम॒भि सं ध॑मामि ।
नम॑स्ते मृत्यो चक्षु॑षे नमः॑ प्रा॒णाय॑ तेऽकरम् ॥
अथर्व. ८।२।८

(जातं अग्निं इव) अभी उत्पन्न हुए अग्निके समान (त्वा द्विपदां चतुष्पदां प्राणेन संधमामि) द्विपाद और चतुष्पादोंके प्राणसे जीवन देता हूं, हे मृत्यो ! (ते चक्षुषे नमः) तेरी नेत्र इन्द्रियके लिए नमस्कार और (ते प्राणाय नमः अकरं) तेरे प्राणके लिए नमन करता हूं ॥ २४७ ॥

शरीरमें दस प्राणोंमें ' प्राण ' मुख्य है। तथा इन्द्रियोंमें ' नेत्र ' मुख्य है। इनकी श्रेष्ठता जानकर इनको प्रणाम किया जाय अर्थात् इनकी शक्ति श्रेष्ठ कार्योंमें लगायी जाय। कभी बुरी प्रवृत्तिमें इनको न प्रयुक्त किया जाय। सब प्राणियोंमें यही प्राणकी शक्ति कार्य कर रही है, जिससे सब पशु पक्षी तथा मानव जीवित रहते हैं। इस प्राणका कार्य देखकर अपने अन्दरके प्राणको बलवान् बनाना चाहिये।

ब्रह्मा। आयुः। अनुष्टुप्।

२४८ अ॒यं जी॑वतु॒ मा मृ॑ते॒मं समी॑रयामसि ।
कृ॒णोम्य॑स्मै भेष॒जं मृत्यो॒ मा पुरु॑षं वधीः ॥
अथर्व. ८।२।५

(अयं जीवतु) यह पुरुष जीवित रहे, (मा मृत) न मरे, (इमं सं ईरयामसि) इसको हम सचेत करते हैं, (अस्मै भेषजं कृणोमि) इसके लिए मैं औषध बनाता हूं, हे मृत्यो ! (पुरुषं मा वधीः) इस पुरुषका वध न कर ॥ २४८ ॥

मैं जल्दी मरूंगा नहीं, शरीरमें दोष हुआ, तो मैं औषधिका सेवन करके उन दोषोंको अपने शरीरसे हटा दूंगा और मृत्युको दूर करके दीर्घ जीवन प्राप्त करूंगा।

ब्रह्मा। आयुः। भुरिक्।

२४९ अधि॑ ब्रूहि॒ मा र॑भथाः सृ॒जेमं
तवै॒व सन्त्सर्व॑हाया इ॒हास्तु ।
भवा॑शर्वौ मृ॒डतं॒ शर्म॑ यच्छतं
अपसि॒ध्य॑ दुरि॒तं ध॑त्त॒मायुः॑ ॥ अथ. ८।२।७

(अधि ब्रूहि) तू उपदेश कर, (मा रभथाः) बुरा बर्ताव न कर, (इमं सृज) इस पुरुषको जगत्में चला, (तव एव सन्) तेरा ही होकर यह (सर्वहायाः इह अस्तु) पूर्ण आयु तक यहां रहे, (भवा-शर्वौ) हे भव और शर्व ! तुम दोनों (मृडतं) सुखी करो, (शर्म यच्छतं) सुख दो, (दुरितं अपसिध्य) पापको दूर करके (आयुः धत्तं) दीर्घायु धारण कराओ ॥२४९॥

पापको दूर कीजिये। अपने शरीरसे पाप न हो ऐसा निश्चय कीजिये। संपूर्ण जीवनमें सुखसे रहो और दूसरोंको सुख दो। अपनी आयुको दीर्घ करके धारण करो।

ब्रह्मा। आयुः। पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती।

२५० अ॒स्मै मृ॑त्यो॒ अधि॑ ब्रूही॒मं द॑य॒स्वोदि॒तो॒ऽयमे॑तु ।
अरि॑ष्टः॒ सर्वा॑ङ्गः सु॒श्रुज्ज॒रसा॑
श॒तहा॑यन आ॒त्मना॒ भुज॑मश्नुताम् ॥
अथ. ८।२।८

हे मृत्यो ! (अस्मै अधि ब्रूहि) इसको उपदेश कर, (इमं दयस्व) इस पर दया कर, (अयं इतः उत् एतु) यह इस विपत्तिसे ऊपर उठे, और (अ-रिष्टः सर्वाङ्गः) पीडा रहित सब अंगोंसे पूर्ण (सु-श्रुत्) उत्तम ज्ञान या श्रवण शक्तिसे युक्त होकर (जरसा शतहायनः) वृद्धावस्थामें सौ वर्षसे युक्त होकर (आत्मना भुजं अश्नुतां) अपनी शक्तिसे भोगोंको प्राप्त करे ॥ २५० ॥

अपने आपको विपत्तिसे दूर रखो। विपत्ति आ गयी तो अपने प्रयत्नसे उसको दूर करो। अपने सब अवयव नीरोग और पुष्ट करके उनको धारण करो। इस प्रकार सौ वर्षकी पूर्ण आयुको धारण करके भोगोंको योग्य रीतिसे भोगो और आनंदसे दीर्घ आयुका उपभोग करो।

ब्रह्मा । आयुः । पंचपदा जगती ।

२५१ देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु
पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं
जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥ अथर्व. ८।२।९

(देवानां हेतिः त्वा परिवृणक्तु) देवोंके शस्त्र तुझे दूर रखें, (त्वा रजसः पारयामि) तुझे रजोगुणसे पार करता हूं (त्वा मृत्योः उत् अपीपरं) तुझे मृत्युसे उठाया है, तू मृत्युसे दूर हो चुका है, (क्रव्यादं अग्निं आरात् निरूहं) मांसभक्षक अग्निको दूर रखता हूं, (ते जीवातवे परिधिं दधामि) तेरे जीवनके लिए मर्यादा निश्चित करता हूं ॥ २५१ ॥

मारक शस्त्र तेरे पास न आ जांय । भोगोंमें तू लिप्त न हो । मृत्युसे तुझे ऊपर उठाया है । मांसभक्षक अग्नि अर्थात् प्रेतको जलानेवाला अग्नि तुझसे दूर किया है । अर्थात् तू जल्दी नहीं मरेगा । तेरी जीवनकी मर्यादा सुदीर्घ की है ।

ब्रह्मा । आयुः । विष्टारपंक्तिः ।

२५२ कृणोमि ते प्राणापानौ जरां
मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्
चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥ अथर्व. ८।२।११

(ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घं आयुः स्वस्ति कृणोमि) तेरे लिए प्राण, अपान, बुढापा, दीर्घ आयु और अन्तमें मृत्यु कल्याणमय करता हूं । (वैवस्वतेन प्रहितान् चरतः सर्वान् यमदूतान्) विवस्वान् सूर्यसे उत्पन्न कालके भेजे हुए सर्वत्र संचार करनेवाले सब यमदूतोंको (अपसेधामि) मैं दूर करता हूं ॥ २५२ ॥

प्राण और अपान बलशाली हों । वृद्धावस्थाके पीछे मृत्यु हो । दीर्घ आयु प्राप्त हो और सुखमय जीवन हो । यमके दूत दूर हो जांय । वे इस मनुष्यको न ले जांय ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२५३ अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसः
तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥
अथर्व ८।२।१३

(अमृतात् आयुष्मतः जातवेदसः अग्नेः) अमर आयुवाले जातवेद अग्निसे (ते प्राणं वन्वे) तेरे प्राणको प्राप्त करता हूं, (यथा अमृतः न रिष्याः) जिससे अमर होकर तू विनष्ट नहीं होगा, (सजूः असः) इसके दीर्घ जीवनके साथ रह, (तत् ते समृध्यतां) वह तेरा कार्य समृद्धि युक्त होवे ॥ २५३ ॥

दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये प्राणायामसे प्राणका बल बढाओ । इससे मनुष्य दीर्घ जीवनसे युक्त होवे । दीर्घ आयु प्राप्त करनेका मनुष्यका वह प्रयत्न सफल हो । मनुष्य दीर्घायु होकर यहां आनन्दके साथ रहे ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२५४ शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुंचतो अंहसः ॥
अथर्व ८।२।१८

(व्रीहियवौ ते शिवौ) चावल और जौ तेरे लिए कल्याणकारी और (अ-बलासौ अदो-मधौ स्तां) कफ न करनेवाले और खानेके लिए सुखदायक हों, (एतौ यक्ष्मं वि बाधेते) ये दोनों रोगका नाश करते हैं, और (एतौ अंहसः मुंचतः) ये दोनों पापसे युक्त करते हैं ॥ २५४ ॥

चावल और जौ कल्याण करनेवाले हैं । ये कफको दूर करते हैं और जीवनका आनन्द देते हैं । शरीरके रोगको ये दूर करते हैं और पाप करनेकी इच्छाको नष्ट कर देते हैं ।

ब्रह्मा । आयुः । सतः पंक्तिः ।

२५५ शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे
त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते
अनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ अथ. ८।२।२१

(ते शतं हायनान्) तेरी सौ वर्षकी आयु जिसमें (द्वे युगे) दिन रात्रीकी दो सन्धियां हैं, तथा (त्रीणि) सर्दी, गर्मी और वृष्टि ये तीन काल और (चत्वारि)

बाह्य तारुण्य, मध्यम और वृद्ध ये चार अवस्थायें हैं, इस प्रकार आयुको (अ-युतं कृण्मः) अटूट अथवा अखण्डित करते हैं, (इन्द्राग्नी विश्वे देवाः अहृणीयमानाः) इन्द्र अग्नि और सब देव संकोच न करते हुए (ते अनुमन्यन्तां) तेरी आयुका अनुमोदन करें ॥ २५५ ॥

तेरी सौ वर्षकी आयुमें सब दिन और रात्री, सर्दी, गर्मी और वृष्टि तथा बाह्य तारुण्य मध्यम और वृद्ध अवस्था ये सब सुख कर हों। इनमें किसी प्रकार कष्ट न हो।

ब्रह्मा। आयुः। पुरस्तादबृहती।

२५६ शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय
ग्रीष्माय परि दद्मसि।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः॥
अथर्व. ८।२।२२

(शरदे हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय) शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओंके लिए (त्वा परि दद्मसि) तुझे हम सौंप देते हैं, (येषु ओषधीः वर्धन्ते) जिस ऋतुमें औषधियां बढती हैं, वह (वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि) वृष्टिका ऋतु भी तुम्हारे लिए सुखकारी हो ॥ २५६ ॥

सब ऋतु तुम्हारे लिये सुखकर हों। इनमें वृक्ष वनस्पतियां और औषधियां जिस प्रकार बढती हैं उस प्रकार तुम भी बढते रहो। सब वर्ष तुम्हारे लिये आनंद देनेवाले हों।

ब्रह्मा। आयुः। अनुष्टुप्।

२५७ मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेः
उद्भरामि स मा बिभेः॥ अथर्व ८।२।२३

(मृत्युः द्विपदां ईशे) मृत्यु द्विपादों पर प्रभुत्व करता है, (मृत्युः चतुष्पदां ईशे) मृत्यु चौपायों पर भी अधिकार चलाता है, (तस्मात् गोपतेः मृत्योः) उस जगत्के स्वामी मृत्युसे (त्वां उद्भरामि) तुझे ऊपर उठाता हू, (सः मा बिभेः) वह तू अब मृत्युसे मत डर ॥ २५७ ॥

सब द्विपाद और चतुष्पदों पर मृत्युका स्वामित्व है। यह सत्य है। पर योग साधनसे उस मृत्युको दूर करके दीर्घ आयु प्राप्त कर सकते हैं। मत डरो और वह साधना करो।

ब्रह्मा। आयुः। अनुष्टुप्।

२५८ सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः॥
अथर्व ८।२।२४

हे (अ-रिष्ट) अहिंसित मनुष्य ! (सः न मरिष्यति) वह तू नहीं मरेगा, (न मरिष्यसि, मा बिभेः) नहीं मरेगा, अतः मत डर। (तत्र न वै म्रियन्ते) वहां निश्चयसे नहीं मरते, तथा (अधमं तमः नयन्ति) हीन अन्धकारके प्रति भी नहीं जाते ॥ २५८ ॥

जो डरता नहीं, वह दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। धैर्य धारण करनेसे हीन अन्धकार दूर हो सकता है, और प्रकाशका मार्ग दीख सकता है, जिस परसे जानेसे मृत्युका भय दूर होकर दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है। जो डरता रहेगा उसकी मृत्यु शीघ्र होगी, अतः भयभीत होना हानिकारक है।

ब्रह्मा। आयुः। अनुष्टुप्।

२५९ सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥
अथ. ८।२।२५

(यत्र इदं ब्रह्म) जहां यह ज्ञान और (जीवनाय कं परिधिः क्रियते) जीवनके लिए सुखमयी मर्यादाकी जाती है, (तत्र) वहां (गौः अश्वः पशुः पुरुषः) गाय घोडा पशु और मनुष्य (सर्वः वै जीवति) सब कोई जीवित रहता है ॥ २५९ ॥

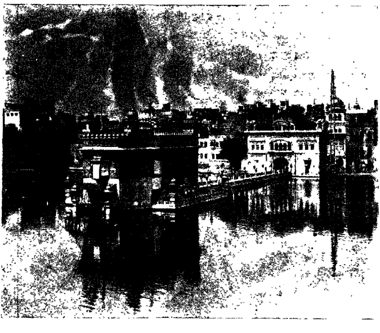
ज्ञान प्राप्त करना और जीवनकी मर्यादा सुदीर्घ करनेके उपाय योग्य रीतिसे करना। इससे सबकी आयु बढ सकती है।

ब्रह्मा। आयुः। आस्तारपंक्तिः।

२६० परि त्वा पातु समानेभ्यो
अभिचारात् सबन्धुभ्यः।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो
मा ते हासिषुरसवः शरीरम्॥ अथ. ८।२।२६

(समानेभ्यः सबन्धुभ्यः) समान बान्धवोंसे होनेवाले (अभिचारात् त्वा परिपातु) हमलेसे तेरी रक्षा

सितम्बर १९५८



५० नये पैसे

वर्ष ४३

वैदिक धर्म

अंक ९

क्रमांक ९६४ : सितम्बर १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

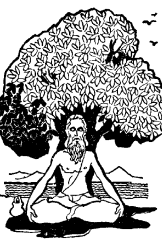
विषयानुक्रमणिका

वैदिकधर्म

सुख देनेवाला हो !

भवा वरूथं गृणते विभावो
भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥

ऋ. १।५८।९



हे (विभावः) विशेष प्रकाशमान अग्ने । (गृणते वरूथं भव) स्तुति करनेवालेके लिये कवचके समान संरक्षण करनेवाला तू हो । हे (मघवन्) धन युक्त अग्ने ! (मघवद्भ्यः शर्म भव) धनवानोंका तू घरके समान संरक्षण कर । हे अग्ने ! (गृणन्तं अंहसः उरुष्य) स्तुति करनेवालोंका तू पापसे संरक्षण कर. (प्रातः मक्षू) प्रातःकाल शीघ्र ही (धिया वसुः जगम्यात्) बुद्धिमान अग्नि हमारे समीप आ आवे ।

हम प्रातःकाल अग्निको प्रदीप्त करके उसकी उपासना करें । वह अग्नि स्तुति करनेवालोंका संरक्षण करे, धनवानोंका उत्तम रक्षण करे, स्तुति करनेवालोंको पापी मार्गसे बचाकर पुण्यके मार्गसे ले जावे । इस तरह वह सबकी उन्नति करे ।



स्वाध्याय-मण्डल वृत्त

वेदमुद्रणनिधि— इस मासमें वेदमुद्रणनिधिमें आगे दियेके प्रमाण रकम जमा हुई है—

श्री. हरकीशनभाई छीवाभाई, पारडी	२१·२५
,, विष्णु लक्ष्मण रानडे, घाटकोपर-मुंबई ७७	५
,, लल्लु नारायण ॲंड कुं., के. के	६६·२५
,, बाळकृष्ण फडके, नाशिक	५
,, वासुदेव शिवराम नाले, एरंडोल	५
,, ल. वा. भावे, वरोरा	२
,, पालयेशास्त्री, मुंबई १४	१०
,, नारणलाला कंसारा,	४८०

आशीर्वाद टिकीट

श्री. भीकुसा यमासा प्रा. लिमीटेड, सिन्नर	२१
,, त्र्यंबक नारायणराव राजेबहादुर, नासिक	१०
,, प्रल्हादसा लहानुसा क्षत्रिय, संगमनेर	१०
,, मे. विश्वनाथ बळवंत वैद्य ,,	१०
,, डॉ. व्ही. बी. सराफ, ,,	१०
,, मोहिनीराज कृष्ण कोन्हाळकर, कोपरगांव	१०
,, नारायण धोंडो नानल, अहमदनगर	१०
,, एन्. बी. देजपांडे, धुळे	१०
,, वासुदेव गजानन ओक ,,	१०
,, डॉ. शकुन्तला पोक्षे, नवसारी	५
,, गोवर्धनदास भीकारीदास, गुजराथी चोपडे	५
,, व्ही. एम्. आपटे, धुळे	५
,, रवीवमरा बुकस्टॉल ,,	५
,, अरविंद आइल कंपनी ,,	५
,, रामेश्वर पोतदार	५
,, केशव रघुनाथ गरुड, अहमदनगर	५
श्री. नरहरपंत जाखडी, सिन्नर	३
,, भाल. पाटणकर	२
,, भगवंत शिवराम भीडे, नासिक	२
,, कृष्णाजी गोपाळ कुलकर्णी	२
,, डॉ. मेथा, कोपरगांव	२
,, स. गो. चिंधडे, मालेगांव	२
,, वासुदेव बळवंत कोटणिस, मालेगांव	२
,, रा. वि. कर्वे, नवसारी	५
कुल रु.	७५०·५०
पूर्व प्रकाशित रु.	१,१९,९९९·०३
कुल जमा रु.	१,२०,७४९·५३

हिंदी, गुजराती और मराठी वेदानुवादमुद्रणका कार्य चल रहा है।

मंत्री– स्वाध्यायमंडल, पारडी

कः प्रजापति

[डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, काशी हिंदु विश्वविद्यालय]

सृष्टिका अग्रिम तत्त्व प्रजापति है

तद्यदब्रवीत् प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति तस्मात्प्रजापतिरभवत् तत्प्रजापतेः प्रजापतित्वम् (गोपथ ब्रा० १।१४)

विश्वका नित्य आधार, उपादान और तत्व ब्रह्म है। वही तो सृष्टिके लिए प्रजापति बनता है। विश्वको वैदिक भाषामें 'इदं सर्वं' या 'प्रजा' कहा गया है। उसका ईश प्रजापति है। सृष्टिकी प्रक्रिया देश और कालमें अभिव्यक्त हो रही है। उसका जो आलंबन है वह वैदिक भाषामें अधिष्ठान कहा गया है। उसका जो उपादान है उसकी वैदिक संज्ञा आरंभण है। विश्वके निमित्त कारणके लिए वेदमें प्रभण शब्द है। निम्नलिखित मंत्रमें आरंभण, आस्थान और प्रभण ये तीनों शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

अनारम्भणे यदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे। (ऋ० १, ११६, ५)

यहां समुद्रसे तात्पर्य उस अव्यक्त दशासे है जिसमें किसी भी कारणका पृथक् आविर्भाव नहीं होता। उसे ही पुराणोंमें 'एकार्णव' और वेदमें 'आपः' 'सलिलम्,' 'अम्भः' या 'समुद्र' कहा गया है। अधिष्ठान और आस्थान पर्यायवाची हैं, जो विश्वके आलंबनके लिए प्रयुक्त होते हैं। जैसा निम्नलिखित मंत्रमें आया है—

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्। यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः। (ऋ० १०,८१,२)

अर्थात् इस विश्वका अधिष्ठान कोई विलक्षण तत्व था। इसका आरंभण या उपादान कौन था? इसका निमित्त कैसा था— जहांसे विश्वदर्शी विश्वकर्माने पृथिवी और द्युलोकको अपनी महिमासे प्रकट किया?

इन मंत्रोंमें जो तीन पारिभाषिक शब्द हैं उनको स्पष्टतासे यों समझा जा सकता है—

(१) अधिष्ठान— आस्थान— आलम्बन— अव्यय ब्रह्म— प्रज्ञान या मनोमय पुरुष

(२) ग्रभण (ग्रहण करने या पकडनेवाला)— निमित्तकारण—अक्षर ब्रह्म—प्राणमय पुरुष

(३) आरम्भण— उपादानकारण— क्षर ब्रह्म—भूत या वाङ्मय पुरुष (वैदिक भाषामें पंचभूतोंकी संज्ञा वाक् है क्योंकि भूतोंमें सर्वाधिक सूक्ष्म आकाशका गुण शब्द या वाक् है।)

प्रजापति ही चतुष्पाद् ब्रह्म है। उसके तीन पाद विश्वका त्रैभाभाव या त्रिक हैं। उसका चौथा पाद वह है जो सृष्टिमें नहीं आता और अव्यक्त बना रहता है। वैदिक शब्दावलीमें उस अव्यक्त या अनिरुक्त प्रजापतिकी अनेक संज्ञाएं हैं। जैसे,

(१) गर्भ प्रजापति
(२) गुहा प्रजापति
(३) हृदय प्रजापति
(४) नाभि या नभ्य प्रजापति
(५) उक्थ प्रजापति
(६) अव्यक्त प्रजापति
(७) केन्द्र प्रजापति
(८) अग्र प्रजापति
(९) एकमेवाद्वितीय प्रजापति
(१०) का प्रजापति
(११) संप्रश्न प्रजापति
(१२) अनिरुक्त प्रजापति
(१३) अमूर्त प्रजापति
(१४) अमृत प्रजापति
(१५) परोक्ष प्रजापति
(१६) अज या अजायमान प्रजापति
(१७) योनि प्रजापति
(१८) ऊर्ध्व प्रजापति

(१९) तत्प्रजापति
(२०) असौ प्रजापति
(२१) तूष्णीं प्रजापति
(२२) एकपात् प्रजापति

इन शब्दोंके पीछे एक ही समान तत्व निहित है। संहिता, ब्राह्मण और पुराण अपनी-अपनी शैलीसे एक मूल भूत अव्यक्त तत्वकी भिन्न संज्ञाएं देते हैं। जैसे,

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥
(यजु० ३१।१९)

उभयम्वेतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च (शतपथ ६।५।३।७)
क उ वै प्रजापतिः (कौषीतकी २९।७)
प्रजापतिर्वै कः (ऐतरेय २, ३८, शतपथ ६,४,३,४)

प्रजापतिके दो रूप हैं। एक अजायमान अर्थात् जो अज या अजन्मा है वही गर्भ प्रजापति कहलाता है। अव्यक्त या गर्भसे ही प्रजापतिका वह रूप प्रकट होता है जिसे 'बहुधा' या 'विजायमान' कहते हैं। इसीकी संज्ञा पुरुरूप या विश्वभुवन होती है। यह विश्वभुवन जिस अव्यक्त मूल स्रोतमें अंतर्निहित रहता है वही योनि प्रजापति है।

शतपथके अनुसार प्रजापतिके दो रूप हैं- अनिरुक्त और निरुक्त। अर्थात्, एक शब्दातीत है दूसरा शब्दब्रह्म। उसका एक रूप परिमित है, दूसरा अपरिमित। विश्व परिमित रूप है और विश्वातीत रूप अपरिमित या असीम है। जो मात्रा या मापके अधीन हो वह परिमित होता है। जिसकी मात्रा नहीं वह अमात्रक या अपरिमित कहलाता है। मात्राको वैदिक भाषामें प्रमा भी कहते हैं। जिसकी प्रमा है वह बुद्धि या मनसे गम्य होता है। जो प्रमासे अतीत है वह मनसे भी अतीत रहता है। ऐसे प्रमाहीन प्रजापतिको लक्ष्य करके वैदिक भाषामें 'संप्रश्न' कहा गया है। संप्रश्न वह है जिसका कोई उत्तर नहीं, जो आदिसे अन्त तक पहेली ही है। वह सदा-सदा प्रश्नचिन्ह बना रहता है। इस प्रश्नका समाधान आजतक नहीं हुआ, आगे भी शब्दों द्वारा संभव नहीं होगा। वह एक रहस्य है जिसे वेदोंमें 'अपीच्य' और 'गुह्य' भी कहा गया है। रहस्यकी ही संज्ञा गुहा है। अग्नि या प्राणका जन्म रहस्यमय है। वैदिक भाषामें अग्नि गुहासे जन्म लेता है। जो मूल स्रोत है उसे ही नाभि या केन्द्र भी कहा जाता है। उसकी संज्ञा 'उक्थ' है जहांसे इदं सर्व यह विश्व उत्थित होता है। ऊपरके मंत्रमें उसे ही गर्भ और योनि कहा है। गर्भमें वह अजन्मा है, उसके बाहर प्रकट होकर जन्म लेता है। वही एक बहुधा बन जाता है (बहुधा विजायते)। देश और कालसे परे होनेके कारण उसे 'अमृत' भी कहते हैं। जो देश और कालकी सीमामें आ जाता है वह मर्त्य बन जाता है। इदं सर्व, विश्वभुवन, निरुक्त, प्रत्यक्ष, प्रजा ये सब मर्त्य हैं। देशसे सीमित हैं अतः इन पर कालका अंकुश है।

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कथा है कि प्रजापतिने देवोंके पीछे इन्द्रको बनाया और कहा जाओ तुम इन देवोंके अधिपति बनो। देवोंने कहा- तुम हो कौन? हम तुमसे बडे हैं। इन्द्र प्रजापतिके पास आया और बोला- देव कहते हैं-तुम हो कौन? हम तुमसे बडे हैं। प्रजापतिके पास वह तेज था जो आदित्यमें है। इन्द्रने कहा- अपना यह तेज मुझे दे दो तो मैं देवोंका अधिपति बन सकूंगा। प्रजापतिने कहा- इसे दे दूं तो फिर मैं क्या रहूंगा। इन्द्रने कहा- तुम 'क्या' (कः) रहोगे। अतएव प्रजापतिकी संज्ञा 'क' है। इस ज्ञानसे इन्द्र देवोंका अधिपति बन गया।

(तैत्तिरीय ब्रा० २,२,१०,१-२)।

'क' प्रजापति ही परमेष्ठी है। क्योंकि वह सबसे परम है इसलिए उसे परमेष्ठी कहते हैं—

अयं वा इदं परमोऽभूदिति। तत्परमेष्ठिनः परमेष्ठित्वम्। य एवं वेद। पराममेव काष्ठां गच्छति, इति। (तैत्तिरीय ब्रा० २,२,१०,५)

यज्ञमें जो आहुति क प्रजापतिके लिए दी जाती है उसमें मंत्रका उच्चारण तूष्णीं या भीतर ही भीतर रहता है, बोलकर नहीं किया जाता। जिसका नाम या परिभाषा है वह वस्तु तत्तत्प्राणोंकी होती है, जिसका नाम नहीं, जिसका रूप या परिभाषा नहीं वह प्रजापतिकी। वृत्तमें जो केन्द्र है वह क प्रजापतिका रूप है। उसका व्यास और परिधि विश्वभुवनका रूप है। केन्द्रके लिए वैदिक संज्ञा 'हृदय' थी। उसे ही गीतामें 'हृद्देश' कहा है। कठ उपनिषद्में हृदेशको ही अंतरात्मा, मध्यआत्मा या वामन कहा गया है। प्रतीक

भावामें अनिरुक्त अमूर्त या वामन प्रजापतिको ही अंगुष्ठ पुरुष कहते हैं। हृदेश या केन्द्रमें रहनेवाला प्रजापति अंगुष्ठ पुरुष कहा जाता है। वही जब महिमा भावसे युक्त होकर मूर्त बनता है तब उसे चाक्षुष पुरुष कहते हैं।

हृदय या केन्द्रके लिए और भी एक उत्तम परिभाषा है। उसे 'ऊर्ध्व' कहते हैं। अव्यक्तकी संज्ञा ऊर्ध्व और व्यक्त या मंडल अधः है। ऊर्ध्व-अधः का लौकिक अर्थ ऊपर-नीचे है। किन्तु सृष्टिकी प्रक्रियामें ये सूक्ष्म और स्थूल, अमूर्त और मूर्त, अनिरुक्त और निरुक्त पूर्व और अपर इन सापेक्ष भावोंके द्योतक हैं। कठोपनिषद्में विश्वको सनातन अश्वत्थ वृक्ष कहा गया है जिसका मूल या स्रोत ऊर्ध्व (ऊपर) है और जिसकी शाखाओंका विस्तार अवाक् (नीचे) है—

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः
(कठ, ६,१)

इसे ही गीतामें अव्यय अश्वत्थ कहा है। वस्तुतः यह संसाररूपी वृक्ष दो भावोंकी समष्टि है। एक, अव्यय, सनातन और अमृत है, उसे ही हम अव्यक्त या क प्रजापति कहते हैं। वही इस विश्वका मूल आधार है। विश्वका दूसरा सापेक्ष भाव विकार, परिवर्तन और मृत्यु है। जिस प्रकार रथके पहिएमें उसका एक अविचल मध्य बिन्दु होता है और उससे नियंत्रित घूमनेवाली परिधि होती है, वैसे ही इस विश्वचक्र या ब्रह्मचक्रकी स्थिति है।

इन दोनों रूपोंको ही 'तत्' और 'एतद्' भी कहते हैं। प्रजापतिका प्रत्यक्ष रूप एतद् है। उनका परोक्ष रूप तद् है। एतद्वै तद् (यह वह है) के सूत्रके अनुसार जो विश्व है वही प्रजापति है। प्रजापति रूप पुरुष ही इस विश्व-यज्ञमें आया है। विश्वमें नित्यकाल रूपी यूप प्रजापति रूप पुरुष बंधा हुआ है। प्रजापतिके दो रूप हैं। एक सहस्रशीर्षा पुरुष और दूसरा दशांगुल पुरुष। सहस्रशीर्षा पुरुष अनन्त और अमृत है। प्रजापतिका जो रूप विश्वमें समाया हुआ है वही दशांगुल पुरुष है। जो सहस्रशीर्ष पुरुष है वह दशांगुल रूपमें प्रकट होता है, उसे छोड़ता नहीं। अर्थात्, प्रत्येक व्यष्टि समष्टिका ही आविर्भाव है। अध्यात्म यज्ञ और अधिदैवत यज्ञ दोनों प्रजापति पुरुषके समान हैं। इसको लक्ष्यमें रखकर पुरुष विधोवै यज्ञः कहा जाता है। जैसा यह है वैसा ही वह है। जो प्रत्यक्ष है उसे यथा और जो परोक्ष है उसे तथा कहते हैं। यथा तथाके समान है—

यथा=तथा

एतद्=तद्

एतद्वै तत् कहें या यथा-तथा कहें भाव एक ही है। इसी यथा-तथा के नियमको याथातथ्य कहते हैं। प्रजापतिकी इस सनातन सृष्टिका विधान इसी याथातथ्य नियम के अनुसार हुआ है—

याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

प्रजापतिका अव्यक्त रूप अनिरुक्त या तूष्णीं है। वह शब्दसे अतीत है। उसका व्यक्त रूप निरुक्त या वाक्की परिधिमें आता है। तूष्णींको ही 'उपांशु' कहते हैं—

स यदुपांशु तत् प्रजापत्यं रूपम्॥
(शतपथ० १।६।३।२७)

अग्निष्टोम यागमें सोमके चालीस ग्रह सोम-पानके लिए प्रयुक्त होते हैं। उन सबका आध्यात्मिक अर्थ है। उनमें सबसे पहला ग्रह उपांशु कहलाता है। वह 'अंशु' रूप मूल प्रजापतिके अति संनिकट होनेके कारण ही उपांशु कहा जाता है। प्रजापतिकी जितनी अव्यक्त दिव्य शक्तियां हैं सब उपांशु ग्रहमें अनुस्यूत रहती हैं। जब भी व्यष्टिके केन्द्रमें प्राणका जन्म होता है तो सर्व प्रथम उस केन्द्रकी प्राणाग्नि प्रजापतिकी अनिरुक्त या उपांशु शक्तियोंका ग्रहण करती है। यह शक्ति ही अमृत है जिसका उपभोग जन्म-पर्यन्त किया जाता है।

प्रजापतिकी एक संज्ञा 'हृदय' है। हृदयसे तात्पर्य उसी अव्यक्त केन्द्रसे है। हृदयके आधार पर ही मनकी प्रतिष्ठा होती है। मनको हृत्प्रतिष्ठ कहा गया है। मनके रूपमें ही सर्वप्रथम विश्व और व्यक्ति दोनोंका आविर्भाव होता है। मन ही संज्ञा या चेतनाका कारण है। मनके अनंतर प्राण और फिर पंचभूतोंकी रचना होती है—

एष प्रजापतिर्यद्धृदयम्। (शतपथ० ४।५।४।१)

यः प्रजापतिस्तन्मनः (जैमिनीय उ० ब्रा० १।३३।२)

विश्वकी रचनामें प्रजापतिकी कामना, तप और श्रम ये तीन कारण कहे गए हैं (सो अकामयत, स तपो अत-

ष्यत् सो अश्राम्यत्) मनके व्यापारको कामना, प्राणके व्यापारको तप और वाक् या पंचभूतोंके व्यापारको श्रम कहते हैं। पंचभूतकी ही वैदिक संज्ञा वाक् है। इस महत्वपूर्ण परिभाषाको जान लेना चाहिए। सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर आना ही सृष्टि है। सूक्ष्म भावोंका उत्तरोत्तर विकास स्थूल रूपमें होता है। इस प्रकार प्रथम महत्तत्व या बुद्धिका उदय होता है। उसके धरातल पर अहं या व्यष्टि केन्द्र जन्म लेते हैं। उससे पुनः पंचभूतोंका अपने सूक्ष्म और स्थूल रूपोंमें जन्म होता है। सूक्ष्मको तन्मात्रा और स्थूलको भूत कहते हैं। पंचभूतोंमें सबसे सूक्ष्म और प्रथम आकाश है। उसकी तन्मात्रा शब्द है। शब्द ही वाक् है। अतएव आकाशका जो गुण शब्द या वाक् है उसीको पांचों भूतोंका प्रतीक मान लिया जाता है। इसीको दृष्टिमें रखकर कहा गया है—

एतन्मयो वा अयमात्मा मनोमयो वाङ्मयः प्राणमयः (शत० १४।४।३।१०)

अर्थात् मन-प्राण और वाक् या पंचभूतोंकी समष्टि यही आत्मा है। मन-प्राण-वाक् ही प्रजापतिका विश्वमें आया हुआ रूप है। मनको अव्यय, प्राणको अक्षर और वाक् या पंचभूतोंको क्षर कहते हैं। जो स्थूल सृष्टि है उसे सामान्यतः वाक् कह दिया जाता है—

वाग्वैप्रजापतिः (शतपथ ५।१।५।६)
प्रजापतिर्हि वाक् (तैत्तिरीय १।३।४।५)

यहां एक और परिभाषाकी ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक है। जो परोक्ष और अमृत भाव है उसे 'देव' कहते हैं और जो प्रत्यक्ष दृश्य और स्थूल भाव है उसकी संज्ञा 'भूत' है। देव और भूत दोनोंके संमिलनसे चिन्मय विश्वका जन्म होता है। भूतको ही असुर भी कहते हैं। देव ज्योति और असुर तमका रूप है।

वेदोंमें प्रजापतिकी संज्ञा 'अग्नि' है। अग्निके दो रूप हैं- एक गुह्य, दूसरा यज्ञीय। जो गुह्य है उसे नभ्य भी कहते हैं अर्थात् वह प्रजापतिकी नाभि, हृदय या अमूर्त केन्द्रमें प्रविष्ट रहता है। उस अग्निके सिर नहीं है और पैर भी नहीं हैं। उसके आदि और अन्त दोनों सिरे छिपे हुए हैं (अपाद् अशीर्षा गुहमानो अन्ता, ऋक्०)। जिसके सिर और पैर या विकासके दोनों सिरे नहीं होते उसीका नाम वामन है। वही तो क प्रजापति है। वही केन्द्र जब दोनों ओर बढता है तब उससे रेखा और परिधि बनती है। मानों वामन रूपी केन्द्र विराट् रूपसे आता है।

इस प्रकार जो गुहानिहित अग्नि या प्राण है वह अनिरुक्त प्रजापतिका रूप है। वही जब यज्ञमें आता है तब उससे तीन अग्नियोंका जन्म होता है। एकका तीन रूपोंमें प्रकट होना ही विष्णुका त्रेधा विक्रमण है। जहां-जहां यज्ञभाव है वहां त्रिक या त्रेधा भाव अवश्य विद्यमान रहता है। मन-प्राण वाक्, आहवनीय-दक्षिणाग्नि गार्हपत्य, अव्यय-अक्षर-क्षर इत्यादि त्रिकके अनेक रूप हैं। वे सब ही विश्वात्मक प्रजापतिके मूर्त भावको प्रकट करते हैं। इन्हींकी संज्ञा इदं सर्वं, विश्वभुवन या महिमा प्रजापति है। 'एतावानस्य महिमा' के अनुसार मन-प्राण-वाक् यही तो प्रजापतिकी महिमा है। अमूर्त प्रजापति एक है और महिमा प्रजापति बहुधा है। एक ही बहुधा भावमें आता है। बहुधा भावको ही नामरूप भी कहते हैं। ऋग्वेदमें कहा है—

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या (ऋ० १०।८२।३)

अर्थात् विश्वकर्मा प्रजापति देवोंको उनके अलग अलग नाम और रूप देता है। वे देव ही विश्वकी अनेक शक्तियां हैं। किन्तु वह प्रजापति स्वयं एक पहेली (संप्रश्न) बना रहता है। उस संप्रश्नमें सब नाम रूप छिपे हुए हैं। जो संप्रश्न या पहेली वह विश्वका महान् रहस्य है। वही इस प्रकारका तूष्णीं या मौन भाव है जिसमें सब शब्द अन्तर्लीन हो जाते हैं। मौन समुद्रके समान अगाध है। वाणी सरोवरके समान परिमित है। जो गुह्य संप्रश्न कोई एक मूल तत्व है वह अविज्ञात और अविज्ञेय है।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥ (ऋ० १०।८२।७)

जिसने इन सबको जन्म दिया है उसे तुम और न हीं जानते हो। यद्यपि वह हम सबके भीतर है पर उसका कुछ और ही रूप दिखाई दे रहा है। उसके विषयमें जितनी चर्चा है वह सब कुहासे से छाई हुई है। जो मंत्रोंका गान करनेवाले हैं वे भी तो गा-गा कर तृप्तिका अनुभव नहीं करते।

विश्वके मूल स्रोतकी कल्पना एक समुद्रके समान की गई है। जितने देव या प्रकट शक्तियां हैं वे सब सर्व प्रथम इसी समुद्रमें लीन थीं। जब इस अगाध जलमें क्षोभ उत्पन्न हुआ तब मानों वे देवता नृत्य करने लगे और उनके पदाघातसे चंचल धूल उठ खडी हुई। इस धूलके परमाणु ही तो यह विश्व हैं—

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरजायत॥
(ऋ० १०।७२।६)

वह क प्रजापति सब देवोंका अधिष्ठाता एक महान देव है—

यो देवेष्वधि देव एक आसीत्।
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (ऋ० १०।१२१।५)

वही 'दक्ष' और 'यज्ञ' नामक तत्वको जन्म देनेवाला है। दक्ष ही यज्ञपति है। जिस शक्तिसे यज्ञकी प्रवृत्ति होती है। उस तत्वकी संज्ञा दक्ष है। वह दक्ष अदिति संज्ञक देवमाताका पुत्र है। वह भी प्रजापति है। अर्थात् क प्रजापतिका जो रूप यज्ञमें आता है इसकी संज्ञा दक्ष है। किन्तु दक्षके लिए आवश्यक है कि वह महान देव प्रजापतिकी उपासना करे। यदि दक्ष और महादेवमें विरोध होता है तो दक्षका यज्ञ सकुशल नहीं रह सकता। प्रत्येक यज्ञमें देवोंके अधिदेव क प्रजापतिकी सत्ता और आराधना अनिवार्य और आवश्यक है। उसी परमेष्ठी प्रजापतिके लिए 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' का गान है।

परमेश्वरमें अनन्य आस्था

मूल लेखक- श्री भानुशंकर जोषी

अनु.- श्री हंसम् रोय

★

संसारके महान् सर्जक–चिंतक टोलसटोय और महान् रशियन साहित्यकार मैक्सीम गोर्कीके बीच एक सुंदर–मंगल वार्तालाप है। और वह भी गोर्कीकी नोंधबहीमेंसे, उनके प्रेरक–उद्‌बोधक शब्दोंमें यहां प्रेषित किया है।

“ ...... और एक दिन, जिस प्रश्नसे मैं सदैव डरता रहता था, वही यकायक मुझे टोलसटोयने पूछा, 'गोर्की, आप परमेश्वरका अस्तित्वमें यकीन क्यों नहीं रखते?'

'यकीन कैसे रखुं? मेरा दिल ही नहीं मानता, लियो निकोलाईविच!'

और उन्होंने मेरे सामने टिकटिकी लगाकर कहा, 'बिलकुल गलत! आप आस्तिकके सिवा अन्य कुछ भी हो सकते ही नहीं। आपकी प्रकृति ही ऐसी है। परमेश्वरके बगैर प्राण नहीं आते, आपकी प्रवृत्तिमें। नास्तिक बननेका तो सिर्फ दुराग्रह है आपका। आप इच्छते हैं कि यह संसारका नकसा आपके ख्यालके मुताबिक हो। लेकिन ऐसा कैसे बन सके? यह दुनियामें सिर्फ आपकी ही इच्छा नहीं है, दूसरों भी बहुतसे हैं। मैं आपको इतने तक पहचान सका हूं कि आप एक ऐसा व्यक्ति है, जो यह संसारकी कई चीजोंसे प्रेम करते हैं। और प्रेमका दूसरा नाम ही श्रद्धा है, आस्तिकता है। प्रेम संकुचित है, मगर आस्तिकता विशाल है। आप अपने प्रेममें थोडीसी स्थिरता प्राप्त कीजीये और प्रेम स्वयम् आस्तिकतामें पलट जायेगा। प्रेमका सर्व श्रेष्ठ स्व[illegible] ही आस्था है। जो लोक भगवान्‌में श्रद्धा व यकीन नहीं रखते वे कभी किसीको प्रेम नहीं कर सकते। उनको प्रेममें स्थिरताका आनन्द ही नहीं पैदा हो सकता। स्थिरता या एकाग्रता ही प्रेमका आनन्द है। मैं जानता हूं कि आप सौंदर्यके उपासक हैं, लेकिन सौंदर्य क्या है? परमेश्वर ही संपूर्ण सौंदर्य है। अच्छा गोर्की! आप इसका क्या उत्तर देते हैं?'

किसी परम मोहित करनेवाली वाचामें वह 'जादूगर' मुझे पूछने लगा।

'मैं क्या जवाब दूं? मौन–मुग्ध बनकर इन्होंके प्रदीप्त नयनोंमें, टिकटिका रहा था, तब अंतरमन कह रहा था, 'यह व्यक्ति मानव नहीं। मानो परमेश्वर है,' ऐसा लग रहा था।”

● ● ●

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी [जि. सूरत] द्वारा संचालित

अखिल भारतीय संस्कृत भाषा परीक्षा समिति

अवश्य जीतिये] [अवश्य जीतिये

परीक्षार्थियोंके लिए स्वर्णावसर

★

हमारी परीक्षाओंके सब केन्द्रव्यवस्थापकों व परीक्षार्थियोंको सूचित करते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि परीक्षार्थियोंके उत्साहवर्धनार्थ प्रत्येक परीक्षामें सर्व प्रथम आनेवाले छात्रोंको कुछ विशेष पुरस्कार देनेकी योजना हमने बनाई है, वह निम्न प्रकार है—

प्रथमा	रजत मण्डित पदक	मूल्य	१०)
प्रारंभिणी	,, ,, ,,	,,	१०)
प्रवेशिका	,, ,, ,,	,,	१५)
परिचय	,, ,, ,,	,,	१५)
विशारद	स्वर्ण मण्डित रजत पदक	,,	२०)

साहित्य परीक्षायें

साहित्यप्रवीण	स्वर्ण मण्डित पदक	,,	१५)
साहित्यरत्न	(गोल्ड प्लेटेड)	,,	२०)
साहित्याचार्य	,,	,,	२५)

इंग्लिश परीक्षायें

अंग्रेजी I	रजत मण्डित पदक	,,	१०)
अंग्रेजी II	,, ,, ,,	,,	१०)
अंग्रेजी III	,, ,, ,,	,,	१५)

स्वाध्यायान्मा प्रमदः

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी, बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय, पीपलखेड़ा, जि. धार म. प्र.)

"मैं नरकमें भी उत्तम पुस्तकोंका स्वागत करूंगा, क्योंकि ये जहां भी होंगी, वहां आप ही स्वर्ग बन जायगा।"
—तिलक

महर्षि तिलकका यह चिरंतन सत्य संदेश हमारा ध्यान उक्त वेदादेशकी ओर बरबस मोड देता है। ज्ञानार्जनके प्रशस्त पथ पर बढनेके लिये उनका यह अमृत संदेश हमें मार्ग दीप (Lamp-post) की तरह ही पथ बताता है। हमारा समस्त ज्ञान पुस्तकोंमें संचित है। जबसे लेखन कलाका आविष्कार हुआ, मनुष्यने ज्ञानको लिपिबद्ध करके संचित कर दिया है। इस प्रकार जब हम किसी ग्रंथका अध्ययन करते हों, तो दूसरे अर्थमें एक विकसित मस्तिष्कके जीवन संबंधी महान् ज्ञानके अनुभवोंको ग्रहण करते हैं।

हम अपने जीवनमें ज्ञानार्जन दो प्रकारसे कर सकते हैं–

(१) स्वानुभव द्वारा (२) स्वाध्याय द्वारा।

स्वानुभव द्वारा ज्ञान प्राप्तिका मार्ग बडा लम्बा और कांटों भरा है। हम सांसारिक कार्य करते हैं, पग पग पर गलती करते हैं, परिणाम स्वरूप दण्ड पाते हैं। सांसारिक क्रममें हमें मिथ्याचार झूंठ, कपट, स्वार्थ, धोखादेही आदिका अनुभव होता है। यहां उसके पथ भ्रष्ट होनेका, फिसलकर गिर पडनेका डर रहता है। यहां वह कुछ खोकर पाता है। ठगाकर ठाकुर बनता है। इस प्रकार जीवनके खट्टे मीठे चरपरे अनुभवोंकी शालामें उसका शिक्षण आजीवन चलता रहता है।

स्वाध्यायका मार्ग सीखनेका दूसरा और सरल मार्ग है। है तो केवल इस मार्ग पर दृढतापूर्वक चलते रहनेकी आवश्यकता। स्वाध्यायसे तात्पर्य है, श्रेष्ठ ग्रंथोंका अध्ययन, मनन, चिन्तन, सद्पुरुषोंका सहवास, अपनी आन्तरिक गलतियोंका शोधन, प्रकृति, मनुष्य, रीतिरिवाजोंका स्वाध्याय इन सबके माध्यमसे मनुष्य अपना ज्ञानार्जन पर्याप्त मात्रामें कर सकता है। यह मार्ग सरल है।

सत्साहित्यका अध्ययन मनुष्यके लिये उतना ही आवश्यक है जितना की एक मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिये संतुलित आहार, तभी तो भगवान् कृष्णने गीतामें उसे वाणीका तप घोषित कर उसकी महती महत्तासे लाभान्वित होते रहनेका एक गुप्त निर्देश दिया है—

'स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।'
(स्वाध्याय करना वाणीका तप है)
(गीता १७।१५)

हर मानवको अपने धर्मका पालन करना होता है। एक विशिष्ट बन्धनमें या विशेष परिस्थितिमें अपने आपको ढालना पडता है। इसलिये हमें स्वाध्याय इस क्षेत्रमें काफी सहायता दे सकता है। तभी तो धर्मके त्रिस्कन्धोंमें 'स्वाध्याय' का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।
(छान्दोग्य, २।२३।१)
(धर्मके तीन स्कन्ध हैं, यज्ञ, स्वाध्याय और दान।)

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य मनीषियोंने एक स्वरसे स्वाध्यायकी महत्ताको स्वीकारा है, क्योंकि वह मानसिक उन्नतिका सरलतम और सर्वोत्कृष्ट साधन है। जब हम किसी सद्ग्रंथका अध्ययन, मनन, चिन्तन या किसी विद्वान्के विचारोंको मनमें ग्रहण करते हैं तब हमारे मानसिक ज्ञानकी वृद्धि होती है। यह ज्ञानपिपासा शनैः शनैः बढती जानी चाहिये। इस प्रकार ज्ञान प्राप्तिकी आन्तरिक आकांक्षाको बढाते जाकर, उसे पुष्पित फलित करके मनुष्य अपने ही श्रमसे विद्वान् बनता है। श्रद्धेय पं. सातवलेकर पं. श्रीरामशर्मा आचार्य, श्रमूसिंह 'कौशिक' आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

स्वाध्याय क्या है?

स्वाध्याय शब्दका दूसरा अभिप्राय स्वयंका अध्ययन करते रहनेसे है। इसीका दूसरा अर्थ यह है कि अपने आप

बिना किसी दूसरेकी सहायताके अध्ययन करते रहना। स्वाध्यायके कई तत्व हैं जिनका अपना अपना महत्व है। (१) विचार:— पुस्तकोंको पढते जाना, भाषणोंको सुनना उनसे प्राप्त विचारोंको अपने अन्तर्मनमें धारण करना, खुद उन विचारोंको समझनेका प्रयत्न करना दूसरेके विचारोंको मनमें धारण करके तदनुकूल अपना जीवन क्रम बनाना ही स्वाध्यायका 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' स्वरूप है। (२) चिन्तन:— पढनेसे कुछ भी समस्या हल नहीं हो सकती है, जब तकको हम पढी हुई सामग्री पर चिन्तन न करें। चिन्तनके समय हमें प्राप्त विचारोंको किसी एक पहलू विशेष द्वारा उनका मूल्य आंकना उचित नहीं है। यह भी विचार करना अत्यन्त ही आवश्यक है कि हम उन विचारोंसे कहां तक सहमत हैं, असहमत हैं तो क्यों ? आदि बातोंका पूर्णरूपेण विश्लेषण अपने मनमें करते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वाध्यायका तीसरा तत्व है, मनन, प्राप्त ज्ञानको पचानेका प्रयत्न करना, उसमें अपनी धारणायें आरोपित कर पचाना। 'मनन' स्वाध्यायीके लिये सबसे आवश्यक तत्व हैं। श्री 'कौशिक' के मतानुसार जीवनका प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखते रहनेके लिये होता है, अतः जीवन ही स्वाध्याय है।

डा. 'महेन्द्र' ने स्वाध्यायका अर्थ स्पष्ट करते हुए एक बडी बढिया बात कही है— 'लेखकके मूल तात्पर्यको समझनेकी कला, अर्थात् प्रत्येक विचारको पचानेकी शक्ति ही सच्चा स्वाध्याय है।'

स्वाध्याय कैसे किया जाय।

हमारे एक मित्र कहा करते हैं- 'त्रिवेदीजी, तुम स्वाध्यायकी महत्ता पर बात बातमें लघु भाषण दे डालनेके आदी हो। पर यह तो बहुत बडी कठिनाई है। क्या बताऊं, नयी नयी पुस्तकें, नये नये विषय, समझमें नहीं आते हैं। शब्दोंकी कठिनता, भाषा, भाव सौंदर्य आदिके अनेक ऐसे स्थल हैं, जो सहज ही समझमें नहीं आ पाते हैं, ऐसे समयमें क्या किया जाय। भाई, मैं तो इसे समयका अपव्यय ही मान बैठा हूं, महज इसी एक कारणसे।

ऐसे शंकाशील मनुष्योंके लिये एक ही मार्ग है, दृढ निश्चय। तीव्र ज्ञानपिपासा हम जब तक अपने मनमें जागृत नहीं कर लेंगे तब तक हम अपने गन्तव्य पथकी ओर नहीं बढ सकेंगे। हम बिना वजह ही परिस्थितियोंका रोना रोया करते हैं। सच तो यह है कि हम केवल प्रमादवश पढना ही नहीं चाहते हैं।

आज तो स्वाध्यायके लिये पर्याप्त मात्रामें मार्ग खुले हैं। प्रत्येक विषय पर आपको कई पत्र पत्रिकायें मिल सकती हैं। श्रेष्ठ ग्रन्थोंके संक्षेप, अल्पमोली संस्करण व श्रेष्ठ ग्रन्थ भी आज सस्ते मूल्यमें सुलभ हैं। हर छोटी बडी जगहमें, स्कूलों, कॉलेजोंमें पुस्तकालय, वाचनालयकी व्यवस्था है। कई विद्याव्यसनी सज्जनोंसे भी आप पढनेकी पुस्तकें ले सकते हैं। आवश्यकता है; आज केवल दिल लगाकर, दृढ निश्चय पूर्वक पढनेकी और स्वाध्याय करते रहनेके दृढ निश्चयकी और उस पर जम कर चलनेकी।

दूसरी बात यह है हम एक सपाटेसे पढ जाते हैं। किसी विचारको दृढता प्रदान करनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम ध्यानपूर्वक धीरे धीरे उसे पढें। पढनेवालोंको सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री संतरामजीकी यह बात हृदयंगम कर लेनी चाहिये।

' मानसिक जीवनमें सफलता प्राप्त करने तथा स्मृतिको पुष्ट करनेके लिये नोटस् लेनेकी आदत डालिये। व्याख्यानों, नाटकों, भाषणों, पुस्तकों, वार्तालापोंकी अच्छी अच्छी बातें, नवीनतम शैलियां उत्तेजक विचार आदिको यदि हम भली भांति नोट नहीं कर लेते हैं, तो ये हमारे मस्तिष्कसे तुरंत निकल जाते हैं। यदि हमारा मनोयोग इतना अनिश्चित है कि केवल क्षणस्थायी संस्कार ही बनता है, तो वह अध्ययन निष्फल हो जाता है। विचार बहुत शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तु है। हमारी स्मृतियां बडे बडे छेदोंवाली चलनी की भांति टपकती है।'

इसी प्रकार नोटस् लेनेके साथ ही साथ मनन करते रहना भी अत्यन्त ही आवश्यक है। पढी हुई, सुनी हुई या देखी हुई बात पर पुनः पुनः विचार करना, स्मरण और चिन्तन करना, जिससे कि वह मनमें बैठ जाय, जम जाय वह हमारे दिमागमें स्थायित्व प्राप्त कर ले। इसलिये यह आवश्यक है कि पढी हुई बातपर जितना चिन्तन किया

जावेगा, उतनी ही वह बात हमारी स्मृतिमें अच्छी तरहसे बस जायगी, स्थायी बन जायगी।

एक सज्जनसे भेंट हुई, वे काफी पुस्तकें खरीदनेके आदी हैं। पर वे उन्हें आलमारीमें ही सजाये रहते हैं। उनमें पुस्तक संग्रहकी प्रवृत्ति है, वे गर्व करते हैं कि उनके यहां श्रेष्ठ पुस्तकालय है। परन्तु गर्व करनेकी बात तो यह है कि हम खूब पढें, खूब स्वाध्याय करें, मनुष्य समाज और प्रकृति का। यदि हम मोटे ग्रंथोंको प्रदर्शनी लगादें तो आभूषणोंकी भांति केवल वे दर्शनीय बन जायेंगी। उनकी सच्ची उपयोगिता तो अध्ययन करते रहनेसे ही संभव है। हम स्वयं पढें, दूसरोंको पढनेको दें, पुस्तकके विषयमें चर्चा परिचर्चा करते रहें। स्वाध्यायकी ओर अन्य मनुष्योंको प्रवृत्त करें, यह आजकी सबसे बडी आवश्यकता है।

स्वाध्यायमें पूर्ण लाभ पानेके लिये यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि हम योजना बनाकर पढें। हम पढते समय ज्यों ज्यों ऊंची कक्षाओंकी तैयारी प्रारम्भ करते हैं, त्यों त्यों हमें अधिक पुस्तकें, उच्च विषय सामग्री पढना पडती हैं। इसी प्रकार हमें भी क्रमेण पढनेकी योजना बनाकर पढना चाहिये। जिससे कि पढनेका पूर्ण लाभ उठाया जा सके। अपनी योजनाओंमें, धर्म, संस्कृति, समाज, चरित्रनिर्माण, लोक व्यवहार आदि सभी विषयोंसे संबंधित सामग्री रखिये। इससे आपकी रुचि बनी रहेगी।

तो आइये बन्धुओं, अब वह समय आ गया है कि हम इस वेदवाणीको हृदयंगम कर संस्कृति, समाज आदिकी उन्नतिके लिये सद्ज्ञान अर्जित करनेके लिये कमर कस लें साथ ही यह भी न भूलें कि बुरी पुस्तकोंका पढना जहर पीनेसे भी अधिक खतरनाक है।

महर्षियोंकी आत्माओ! यह मत भूलना

स्वाध्यायान्मा प्रमद

(स्वाध्याय करनेमें प्रमाद मत करो।)

मूर्तिपूजापर एक दृष्टि

(लेखक— श्री भगवानराव आर्य भोसीकर, B. Sc., आर्यनिवास कन्धार, [नान्देड, महाराष्ट्र])

मूर्तिपूजा कबसे चली इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है। परन्तु इसकी रीतिका सन्दर्भ सहस्रों वर्ष पीछेका दिया जाता है।

पौराणिकोंकी दलील है कि रामेश्वरकी स्थापना स्वयं भगवान् रामचन्द्रजीने की। बासर (ब्यासर) C. Rly नामक ग्राममें सरस्वतिकी मूर्ति है। कहा जाता है कि यह मूर्ति स्वयं भगवान् व्यासने रेतीसे तैयार की थी। यदि ये सत्याधारित हैं तो यह कहा जा सकता है कि मूर्तिपूजा पांच, सात सहस्र वर्ष पीछे हुआ करती थी। आधुनिक विद्वानोंने सशोधनोपरान्त इन दो महापुरुषोंका समय पांच, सात सहस्र वर्ष पीछेका निश्चित किया है। फिर भी इन संस्थापित मूर्तियोंकी आधुनिकता अथवा प्राचीनताका प्रकाश करना विज्ञानका विषय है। हो सकता है कि इन प्राचीनतम समझी जानेवाली मूर्तियोंकी स्थापनाका सम्बन्ध इन महापुरुषोंसे न हो। अतः इस समय इस सम्बन्धमें विवाद कोई उपयुक्तता नहीं रखता।

महर्षि दयानन्द मूर्तिपूजाका प्रारम्भ जैनियोंसे हुआ यह मानते हैं।

इस विश्वमें अनेक धर्म हैं। वैदिक धर्म, बुद्धधर्म, इस्लाम, ख्रिस्तिधर्म, पारसीधर्म आदि। सबसे प्राचीनधर्म वैदिक-धर्म ही है। मानवका आदि ग्रन्थ ऋग्वेद है। वेद प्रति-पादित धारणा ही वैदिकधर्म होनेसे, वैदिकधर्म अति प्राचीन धर्म है।

वेदमें मूर्तिपूजाका विधान नहीं है। मानवके आदिम ग्रंथ, धर्म और ईश्वर भावके आदि स्रोत वेदमें, चराचर स्वामी, सच्चिदानन्दघन परमात्माकी कल्पना मूर्तिमें है, ऐसा न कहीं विधान किया है न आदेश दिया है। अतः मूर्तिपूजा अवैदिक है।

बुद्धधर्म भी मूर्तिपूजाके विरुद्ध है। खेदका विषय है कि कुछ प्रमादी बौद्ध भक्तोंने बुद्धकी मूर्ति बनायी और पूजा प्रारम्भ की। तो भी बुद्धधर्म मूर्तिपूजाकी मान्यता नहीं स्वीकार करता।

इस्लाम तो मूर्तिपूजाका घोर विरोधी है। इसकी स्थापना भी न्यूनाधिक इसीलिये हुई यह माना जा सकता है।

ख्रिस्ति धर्ममें भी प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायके अनुयायी मूर्ति-पूजाके विरोधी हैं।

पारसी धर्म तो वैदिक धर्मके अधिक निकटका होनेसे मूर्तिपूजाका दोष इसपर लगाया नहीं जा सकता।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि विश्वके समस्त धर्म मूर्तिमें भगवानकी कल्पनाको अथवा मूर्तिही भगवानकी प्रतिमा होनेके विधानको नहीं मानते। अतः यह विधान अतीव शुद्ध रहेगा, यदि यह कहा जाये कि मूर्तिपूजा धर्म विरुद्ध है।

पाठकोंको विदित हो कि मूर्तिपूजा करनेवालोंकी संख्या भी न्यून नहीं। यद्यपि अनेक धर्म इसके घोर विरोधी हैं तथापि इनके अनुयायियोंमें किसी न किसी स्तर पर मूर्ति-पूजा अपनी स्थिति रखे हुये है। आश्चर्य है कि जो धर्म मूर्तिपूजाका घोर विरोधी हो उसके अनुयायी पृथक् रूपमें ही क्यों न हो मूर्तिपूजाका अस्तित्व टिकाये रखें। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मूर्तिपूजा करनेवालोंकी संख्या सच्चे धार्मिकोंकी संख्यासे अधिक ही है पर कम नहीं।

वैदिक कालमें मूर्तिपूजाका अस्तित्व ही नहीं था। अतः इसके विरोधाविरोधका प्रश्न ही नहीं उठता। इतना ही आज कहा जा सकता है कि वेदने न मूर्तिपूजाकी आज्ञा ही दी है न ऐसा विधान ही किया है। सनातन अथवा पौराणिक कालमें मूर्तिपूजाका प्रारम्भ हुआ, यह कहा जा सकता है। विश्वके अनेक प्रदेशोंमें हिन्दू देवताओंकी मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां पौराणिक गाथाओंसे सम्बन्ध रखती हैं, और इसका प्रभाव अन्य प्रदेश विशेषों पर भी पड़ा है, जहां इस धर्मसे पृथक् धर्म अस्तित्वमें थे।

इस प्रकार मानो विश्वभरमें धर्मानुयायी मानव मूर्तिपूजामें रत था। बौद्धोंकी ओरसे सर्व प्रथम कुछ अंशमें इस पर प्रहार हुआ। कुछ सफलता मिली पर वह भी नहींके बराबर। इस्लामने इस पर गहरा प्रहार किया। यह आघात अधिक मर्यादा पर्यन्त सफल रहा। मूर्तिमें जगदाधार सर्वव्यापी परमात्माकी कल्पना कपूरवत् नष्ट होने लगी। वैदिक एकेश्वरवादके स्थान पर मूर्तिपूजकोंने जो बहुदेवतावाद चलाया था और पूजा प्रारम्भ की थी उसको नष्ट किया जाने लगा।

इस्लामने मानो वैदिक एकेश्वरवादको पुनर्जीवित किया और जिसका विधान अथवा जिसकी आज्ञा वेदने नहीं दी ऐसी मूर्ति पूजाका घोर विरोध होने लगा। इससे पूर्व और इसके पश्चात् भी इस प्रथाका न्यूनाधिक विरोध हुआ था पर वह स्थायी रूपमें न रह सका। फलस्वरूप यह विरोध सम्प्रदायोंमें परिणत हुआ। सम्प्रदायोंमें क्यों न हो, इस रूपमें आज वह भूतकालका विरोध किसी धार्मिक मानवी क्रांतिका चिन्ह दर्शाता है।

भारतमें भी मूर्तिपूजाके विरोध बहुईश्वरवादकी आलोचना, वादप्रतिवादके उद्योग होने लगे। यद्यपि समाज सुधारकों द्वारा इसको स्थान मिला तथापि विशाल उद्योग महर्षि दयानन्द द्वारा ही हुआ। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि सब सत्य विद्याओंके पुस्तक आदिम ग्रन्थ वेदमें मूर्तिपूजाका न तो कोई विधान ही है और न इसकी आज्ञा ही। मूर्तिपूजा धर्म विरुद्ध है। सर्वव्यापी, अनादि, अनन्त, सर्वाधार परमेश्वरकी कल्पना मूर्तिमें नहीं की जा सकती। न तो मूर्तिको इन तत्वोंके प्रतीक रूपमें रखा जा सकता है। इस प्रकारकी कल्पना अथवा प्रतीक रूपमें मानना उस सर्वव्यापीकी खोजसे पराङ्मुख होना है।

किसी लोहेके टुकडेमें सोनेकी भावना रख प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक उसकी ओर देखने अथवा वैसा उसके साथ बर्ताव करनेसे कोई भी उस लोहको सोना माननेको तयार न होगा। परमात्मा केवल श्रद्धा और भावनाका विषय नहीं, वह इससे पृथक् कुछ है। वह परमात्मा, आत्माका एकमेव साध्य है। वह सच्ची शान्ति और ज्ञानका आगार है। इसके अस्तित्वका भाव मस्तिष्कमें पैदा होना उसकी ज्ञानेन्द्रियोंके विकसित होनेका द्योतक है।

यह सारा विश्व, प्रकाश और उष्णताका निर्माता सूर्य-कोमलता और स्नेहकी वर्षा करनेवाला चन्द्र, ये तारे रूपमें बिखरे हुये मोती ये जलभरे जलाशय (समुद्र), यह जगत् का अपना सुनियन्त्रित व्यवहार विश्वकी अपनी मर्यादाओंमें गति, सजीवके देहकी मानो कुशल, विद्वान् ज्ञानी शिल्पी द्वारा रचित अंग प्रत्यङ्गोंकी सुव्यवस्थित रचना, ऐसी अद्भुत रचनाके शरीरमें चैतन्यकी गति और चञ्चलता......ऐसे अनेकों विषय क्या कम हैं जिसको देख परमात्माके अस्तित्वका विवेक जागृत नहीं होता। महर्षि दयानन्दने, परमात्माके समक्ष रखे प्रतीक रूप मूर्तिमें जो बडी भारी भूल प्रमादी भक्तोंने की थी उसका यथायोग्य, सुसंगत सुधार किया। इस दृष्टिसे महर्षि दयानन्द एक क्रान्तिकारक समझे जासकते हैं जिन्होंने परमात्माको ज्ञानेन्द्रियोंकी वैषयिक मर्यादासे उत्क्रान्त कर एक सच्चे ज्ञान, दिव्यदृष्टि, आत्माका सच्चिदानन्द विषय होनेका प्रतिपादन किया।

महर्षिदयानन्दने मूर्तिपूजाका घोर विरोध किया। यह विरोध इस्लामकी शैलीसे पृथक् था। महर्षिदयानन्दने विचारोंका विचलन किया। विध्वंसक मार्गको अपनानेका कनिष्ठ मार्ग नहीं बताया। सच्चे शिवकी खोजका सच्चा-मार्ग बताया। अपने सत्यशील तर्कपूर्ण विचारोंसे लोगोंको अपनी ओर आकर्षित किया। वेद प्रतिपादित आज्ञाओंके पालनकी सीख दी। एकेश्वरवादका समर्थन और प्रतिपादन किया।

परमात्माकी खोजमें एक दिव्य दृष्टि दी। परमात्मा ज्ञानेन्द्रियोंका ही विषय नहीं अपितु आत्माका विषय है का विधान किया। इसके खोजनेकी पद्धति बतायी। पूछो स्वयम्से प्रश्न, मैं कौन हूं? कहांसे आया हूं? मृत देह क्यों देखता, बोलता सुनता नहीं? जीवित दशामें कौन देखता बोलता, सुनता है? इस चेतनामें ये गुण कहांसे आये; किसने दिये, कब दिये? पदार्थोंमें आकर्षण, प्रतिसारणकी शक्ति किसने रखी किस सूचक उद्देश्यके पूरयर्थ? यह शक्ति कैसे उत्पन्न हुई? अन्नादिके ग्रहणसे यह शरीर कैसे बढता है, इसके खेलमें कौनसी शक्ति है? मृत्युके पश्चात यह और ऐसी अन्य शक्तियां कहां जाती है? ये शक्तियां सांधिक रूपमें समीप कैसे आती हैं? आदि आदि।

इस प्रकार सृष्टिकी ओर देखकर जगत्की ओर देखकर परमात्माकी अद्भुत रचना, कलाकृतिसे प्राप्त आस्तिक्य बुद्धि उत्पन्न होगी, आत्मज्ञानकी जिज्ञासासे स्फुलिंग विस्फुरित होने लगेंगे तब इस ज्ञानसे परमात्माके साक्षात्कारमें देर न लगेगी। महर्षि दयानन्दने जो प्रतिपादन किया वह सर्वथैव वेदानुसार था। उपनिषदोंके सहारेको उन्होंने सीख दी। सच्चरित्रसे कपूरवत् अन्तर्बाह्य निर्मल मन करनेका मार्ग बताया। संक्षेपमें यह कि उन्होंने अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, परमात्माके प्राप्त करनेका, सच्ची शान्ति प्राप्त करनेका सच्चा वैदिक मार्ग बताया। भारतीय ज्ञानियों, विद्वानों, तत्त्वज्ञों, विचारकोंको पृथक् दिशा दिखायी। परमात्माके प्रतीक रूपमें मूर्तिपूजा पर अश्रद्धा उत्पन्न करनेके आप उच्चस्तरीय पोषक हुये हैं।

मूर्तियोंके दो प्रकार

मूर्तियोंके दो प्रकार प्रायः दृग्गोचर होते हैं। एक उस प्रकारकी मूर्तियां जो देवताओंके प्रतीक रूपमें हैं और दूसरे उस प्रकारकी जो महात्मा, सन्त पुरुषों अथवा राष्ट्र नायकोंकी स्मृतिमें स्थापित की जाती हैं। प्रथम प्रकारकी मूर्तियोंका ही अनेक धर्म प्रवर्तकोंने विरोध किया है। क्योंकि देवताओंके प्रतीक रूप इन मूर्तियोंको ही देवता माना जाने लगा और पूजा होने लगी। जहां पूजाका भाव 'पूजनीय मानना' 'आदर करना' था वह नष्ट हुआ और आजका विकृत स्वरूप प्राप्त हुआ। इस अतिरेक अथवा प्रमादको दूर करनेका प्रयत्न धर्म प्रवर्तकोंने किया और किसी सीमा पर्यन्त वे सफल भी रहे।

आजके इस विज्ञान युगमें केवल श्रद्धा और विश्वाससे काम नहीं चलेगा। वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा सत्यासत्यकी कसौटी पर किसी भी विधानको कसना होगा। मनको निःसंशय करना होगा। तभी उस विधानको मान्यता मिलेगी अन्यथा नहीं। मानव यदि अज्ञानवश किसी सत्यविधानसे दूर जाता भी होगा तो क्या हुआ? उसे सत्यके मार्गपर उसे इसका ज्ञान दे निःसंशय कर लाना विद्वानों पण्डितोंका कर्तव्य है। यदि विद्वानोंने इस दिशामें पग नहीं उठाया तो दोष मानवका नहीं कि वह पथभ्रष्ट हुआ, उन विद्वानों, पण्डितोंका दोष है जिन्होंने सत्य विद्याओंके पढने पढाने, सुनने सुनानेके कर्तव्यको पूरा नहीं किया। यदि आज अनेक लोग मूर्तिपूजासे पृथक् होते हों तो यह उनका अज्ञान नहीं अथवा वे नास्तिक नहीं। उन्होंने वैज्ञानिक कसौटी पर उसे कसा है, खूब मनन किया है और सिद्ध किया है कि सर्वव्यापी, सचेतन परमात्माका भाव एकदेशी, अचेतन, प्रतीक रूप एक मूर्तिमें नहीं हो सकता।

और यदि ऐसा अनुभव होता भी हो तो वह भ्रमपूर्ण है। परमात्माकी व्याख्यासे अनभिज्ञताका प्रकटीकरण है। झूठे वैषयिक आनन्दका जो मूर्तियोंको अनेक मूर्तियोंके साथ सजधज कर दीपकों द्वारा सज्जित किया जाने से समुद्भूत होता है, लाभ है। सच्चिदानन्दघनके सच्चे आनन्दका लाभ नहीं। ओर यदि कोई मूर्तिपूजा करता भी हो तो दोष उसका नहीं अपितु उन विद्वानोंका है जिन्होंने उसे सच्चे ज्ञानके आलोक आत्माका दिग्दर्शन नहीं किया।

देवताओंको प्रतीक रूपमें पूजना, उसे परमात्मा मानना कितना भ्रमपूर्ण है यह ऊपर दर्शाया है। अब यह देखना चाहिये कि राष्ट्रीय नायक, सन्त, महापुरुषोंके स्मृतिरूप मूर्तियोंके पूजनमें क्या हानि है। जहां भी पूजनको विकृत स्वरूप प्राप्त हुआ वहां हानि है। पूजनीयको पूज्य समझना समादर करना बुरा नहीं। राष्ट्रीय संस्कृतिकी विधिका अपमान करना घृणास्पद है। मेरी दृष्टिमें राष्ट्रनायक, सन्त, महापुरुषोंको मूर्तियां चित्र, स्मृतिरूप संस्थायें अथवा भवन, काव्यादिका होना अपायकारक नहीं। यदि हमने इनकी मूर्तियों चित्रों काव्योंको अपने गृहमें रखा और इनके किये कामोंकी स्मृति जागृत रखी तो कोई बुरा नहीं। इनके पदचिन्हों पर चलनेकी आत्मप्रेरणा प्राप्त की तो अज्ञानका यह द्योतक न होगा। इनकी मूर्तियों, चित्रों, काव्योंकी ओर देखकर अनन्य भावसे इनके सच्चरित्रका चिन्तन किया इनके सामयिक उपदेशोंका अध्ययन किया तो हमें सच्चरित्रवान हो सफल जीवन यापनमें अवश्य मदद मिलेगी।

भगवान रामचंद्र, भगवान कृष्ण, भगवान बुद्ध, देव दयानन्द, सन्त ज्ञानेश्वर, महात्मा गांधी, महाराणा प्रताप आर्योद्धारक शिवाजी आदि राष्ट्रीय नायकों, सन्तों महापुरुषोंकी प्रतिमाओंको सर्वव्यापी परमात्मा न समझते हुए, अथवा जड मूर्तिमें चेतनकी कल्पना न करते हुए यदि इनसे सच्चरित्रकी, पुरुषार्थकी आत्म प्रेरणा प्राप्त की

जाये और परमात्मामें अटल विश्वास रखते हुए प्रीतिपूर्वक जीवन मार्ग पर चलें तो निश्चय ही ये अतीव, अतुल प्रेरणाके साधन बन जायेंगे। मूर्ति रूपमें, चित्र रूपमें, काव्य रूपमें, संख्या रूपमें, भवन रूपमें निधिरूपमें, उनकी स्मृति अमर रखना हम भारतीयोंका कर्तव्य है। ऐसी निधिको खोना नहीं चाहिये अथवा तिरस्कार भी नहीं करना चाहिये।

हो सकता है कि यही कल्पना मूर्तिके बनानेके पीछे हो। प्रथम बार जो मूर्ति बनी होगी हो सकता है उसके बनानेका उद्देश्य उपरोक्त न्यूनताकी पूर्तिके लिये हो। अनार्य समाधि पूजा करते थे। यह इसलिये कि स्मृति जागृत रखी जाये। राष्ट्रीय स्तरपर राष्ट्र नायकों, विश्व स्तर पर सन्तों मनीषियों, सामाजिक स्तर पर समाज सुधारकोंकी मूर्तियोंका बनवाना और उनकी स्मृति रखना ऐसी कल्पना होना स्वाभाविक है। और सम्भवतः इसी नैसर्गिक गुणके कारण मूर्ति बनानेका प्रारम्भ हुआ। सन्मार्ग दिग्दर्शकोंकी मूर्ति रूपमें स्मृति रखना अथवा अन्य मार्गों द्वारा उनको स्मृति हो ऐसा करना नैसर्गिक है। उनके प्रति पूज्य भाव सदैव जागृत रहे ऐसा मार्ग निकालना मेरी बुद्धिसे बुरा नहीं। इस स्वाभाविक गुणको कितना ही तोडे नहीं तोडा जा सकेगा। इसीलिये आज हम देखते हैं कि अनेक धर्मोंने मूर्तिपूजाका विरोध किया तो भी मानो अबाधित रूपसे वह अपनी स्थिति रखे हुये है। स्वाभाविक गुण तोडा नहीं जा सकता, मोडा जा सकता है।

किसी भी उत्तम तत्वके व्यवहारमें विकृति आती है। यह विकृति अतिरेक और दिग्दर्शनाभावके कारण आती है। महात्मा बुद्धके कालमें यज्ञोंका अतिरेक हुआ था और हिंसारूप विकृति आयी ही थी। इस अतिरेक और विकृतिका नष्ट करना परमावश्यक था इसी प्रकार उपरोक्त तत्व जो मूर्तिके पीछे है मूर्तियोंके अतिरेक और पूजन रूप विकृतिके कारण विस्मृत हो गया था। उसे अनेक धार्मिक प्रवर्तकोंने प्रकाशमें लानेका प्रयत्न किया। जो भी सफलता अथवा विफलता मिली वह दृष्टिके सामने है।

यह त्रिकालाबाधित सत्य है कि परमात्माकी प्रतिमा कभी नहीं बनायी जा सकती। जो जगदाधार है, सर्व नियन्ता है, अदृश्य है, उसकी भला प्रतिमा कैसे बनायी जा सकती है। प्रतिमाकी स्थापना स्मृति दिलानेके लिये है। किसी चीजकी विस्मृति न हो इसी लिये तो स्मारकादिकी प्रथा है। जहां हमें जिस चीज ही सदैव स्मृति रखनी हो उसे सर्वव्यापी सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी रूपमें ही स्मरण रखना चाहिये। किसी मूर्ति, चित्रादि की क्या क्षमता हो सकती है जो सदैव स्मरण दिलानेकी प्रेरणा दे सकते हों। आत्माके विषयको इन्द्रियोंका विषय ही नहीं बनाया जासकता।

सन्तो, महात्माओं, राष्ट्र नायकोंकी स्मृतिरूप मूर्तियोंका पूजन जिस दिनसे प्रारम्भ हुआ होगा सम्भवतः उसीके पश्चात् परमात्माको भी प्रतीक रूपमें लाकर, वैसे न आये तो अवतार रूपमें लाकर पूजना प्रारंभ किया होगा और इसके अतिरेकके कारण जो विकृति पैदा हुई उसको दूर करनेका धर्म प्रवर्तकोंने प्रयत्न किया। पूज्यको पूजनीय समझना, समादर करना अयोग्य नहीं। पूजनीयकी मूर्तियोंको अथवा वस्तुको पूजनीय समझना यह ठीक नहीं जंचता। उनकी मूर्तियोंको देख, उनके सम्बन्धमें आदरभाव जागृत कर उनके सत्कर्मोंकी आत्मप्रेरणा प्राप्त करना एक उत्तम तत्वहै। अपने जीवनको कपूरवत् अन्तर्बाह्य परिष्कृत सुसंस्कृत करनेके लिये ये उत्तम साधन हैं। कामो-

त्तेजक चित्रोंके सहवासमें मानव ' वासना युक्त पशु ' बन जाता है । पर इन जीवनादर्श दिग्दर्शकोंके 'चित्रोंके सहवासमें अपने विचार और कर्म द्वारा ' सत्कर्मोत्तेजक ' मनुष्य बन जाता है । इतनी ही इनकी महत्ता है ।

क्या ही अच्छा हो कि जब कोई व्यक्ति किसी सन्त महात्मा, राष्ट्रनायक, समाज सुधारकके चित्र अथवा मूर्ति देख उनके कार्य और व्यवहारकी स्मृतिसे उनके प्रति आदरभाव जागृत करे और सत्कार्य प्रवण होनेकी आत्मप्रेरणा प्राप्त करे । मेरा तो यह निश्चय है कि यदि पावित्र्य का तिरस्कार न किया जाये, विकृति न आने दी जाये तो ये मूर्तियां, चित्र, काव्य, संस्थायें, स्मारकादि परम कर्तव्य के स्त्रोत सिद्ध हो सकते हैं जिससे समाजोन्नति होवे और सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य और सृष्टिकर्ताको आत्माका विषय बना आत्मोन्नति होवे । इसपर भी यह आवश्यक नहीं कि ये उपरोक्त चित्रादि ही साध्यके एक मात्र साधन हैं । इसके सिवा अन्य मार्ग भी हैं, जिसे सन्ध्या जपादि द्वारा साध्य किया जाता है । ये दोनों मनको अन्तर्बाह्य निर्मल करनेवाले अप्रतिम साधन हैं । ध्यान अथवा जाप द्वारा मनुष्य उस देवताके गुण अपनेमें स्थापित करनेका मानसिक प्रयत्न करता है । परमात्माका ध्यान करनेसे उसके आंशिक गुण निश्चय ही अपनेमें उतर सकते हैं । मन शुद्ध हो सकता है, पाशविकता, अनैतिकता, विकृति आदि हट सकते हैं यदि भक्तिसे प्रेमसे इस प्रकाश स्वरूप (ज्ञान स्वरूप) परमात्माका ध्यान किया जाये । इसका फल यह है कि हम अपने परम कर्तव्य, सत्कर्म सद्व्यवहार, सदाचारकी ओर प्रवृत्त होते हैं । समाजोन्नति होती है और आत्मज्ञानसे आत्मोन्नति । यह मार्ग सुसंस्कार सम्पन्न व्यक्तिका है । जनसाधारणके लिये ऊपर दर्शाया ही है । नास्तिकता और अधर्म परायणताके निरोधके लिये प्रारम्भिक अवस्थामें वह मार्ग भी तो ठीक है जिसे जनसाधारण शीघ्र अपना सकता है ।

यद्भद्रं तन्न आसुव ।

भय है कि कहीं इन सन्त, महात्माओंकी मूर्तियों, चित्रों, काव्यों, संस्थाओं, स्मारकोंके स्मरणका विकृत स्वरूप न बन जाये जैसे पीछे बना है । और सम्भवतः इसी भयके कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती, वेदोंके प्रकाण्ड पण्डित, वैदिक धर्म प्रवर्तकने अपनी निष्काम, निर्भीक वाणीसे कह दिया ' मेरी मूर्ति न बनायी जाये, मेरी अस्थियों पर समाधि न बान्धी जायें । मृतदेहकी राख किसी खेतमें अथवा जलमें विसर्जित करें । ' कितना सूक्ष्म विचार किया था उस पथप्रदर्शक ने ! ! !

चारों वेदोंका सुबोध अनुवाद

वेद एक है

हमारे धर्मका मुख्य ग्रंथ वेद है। यह वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ऐसे चार भागोंमें विभक्त है। इन चारों भागोंका मिलकर वेद एक ही होता है, अतः कहा है—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
देवो नारायणोऽनान्यः। महाभारत

' वेद एक ही है, देव नारायण भी एक ही है, प्रणव भी सर्व वाङ्मयरूप एक ही है। '

एक ही ईश्वर है और धर्मग्रंथ भी एकही वेद है। एक ही ईश्वरके अनेक नाम हैं और इसीतरह एक ही वेदके चार भाग हैं। देखिये—

वेदकास्वरूप

१ पादबद्ध मंत्रोंका संग्रह ऋग्वेद है। इसमें देवताओंका गुणवर्णन है।

२ गद्य मन्त्रोंका संग्रह यजुर्वेद है। इसमें यज्ञयागोंका वर्णन है।

३ पादबद्ध मंत्रोंके गायनोंका संग्रह सामवेद है। इसमें उपासना है।

४ मनः शान्ति देनेवाला अथर्ववेद है। अ-थर्वका अर्थ शान्ति है, गतिरहितता है। मनको आध्यात्मिक शान्ति देनेवाला यह वेद है।

इस तरह चारोंवेदोंके मन्त्रसंग्रहका स्वरूप है। ये चार विभाग एक ही वेदराशीके हैं। देवताओंका गुणवर्णन देखकर देवताके विषयमें आदरयुक्त भक्ति उत्पन्न होती है, और उनके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके तथा उन गुणोंको अपने अन्दर बढानेका निश्चय उपासकके मनमें होता है। इस प्रकारके अनुष्ठानसे मनुष्य अपने अन्दर देवत्व स्थापन करने लगता है और यह अनुष्ठान योग्य रीतिसे होने पर वह देव बनता है। मनुष्यका राक्षस न बने, परंतु मनुष्यका देव बने यह वेदका आदेश है।

यद् देवा अकुर्वस्तत् करवाणि श. प. ब्रा.

' जैसा देवोंने किया वैसा मैं करूंगा ' और मैं देवत्व प्राप्त करूंगा। यह वैदिक धर्मीय उपासकोंकी इच्छा सदा रहती है। मनुष्योंको देवत्व प्राप्त करनेके मार्गसे वेद ले जाता है, कदापि राक्षस बननेके मार्गसे नहीं ले जाता, यह वेदका महत्व पूर्ण उत्तम मार्गदर्शन है।

राक्षस--मनुष्य--देव

' राक्षस-मनुष्य-देव ' ये मानवोंकी तीन अवस्थाएं हैं। मनुष्य कुमार्गसे ' राक्षस ' बनता है और सन्मार्गसे ' देव ' बनता है। निश्चयसे मनुष्य शीघ्र देव बने, यह शिक्षा वेद देता है।

देवताओंके गुणोंका वर्णन ऋग्वेदमें है, शुभ कर्म करनेका अर्थात् यज्ञ करनेका आदेश यजुर्वेदमें है, शुभगुणोंके मंत्रोंका गायन उपासनाके साधन रूपमें करनेका विषय सामवेदमें है, और मनकी शान्ति अथर्ववेदके मंत्रोंसे मिलती है। इस प्रकार यह वेद मानव मात्रको सच्ची शान्ति का मार्ग योग्य रीतिसे बताता है। मानव मात्र इस वेदके बताये मार्गसे चले, तो उसको सब प्रकारसे उत्तम आनंद प्राप्त हो सकता है।

व्याधिशमनार्थ यज्ञ

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते। श. प. ब्रा.

' ऋतुओंकी संधिमें व्याधियां होती हैं इसलिये ऋतु-संधियोंमें यज्ञ किये जाते हैं। ' यज्ञ व्याधियोंको दूर करते

हैं और मानवमात्रको आरोग्यका आनंद देते हैं। ऋतु-परिवर्तनमें व्याधियां उत्पन्न होती हैं इस कारण व्याधियों का शमन करनेवाली औषधियोंके चूर्णका गौके घी के साथ हवन करनेसे व्याधियां दूर होतीं हैं और आरोग्य सबको प्राप्त होकर आनन्द सबको मिलता है। इस प्रकार यज्ञ सबको आरोग्य देता है। यह आरोग्य एकको मिलता है, और दूसरेको नहीं ऐसा नहीं। वायुके अन्दरके दोष दूर हुए तो शुद्ध वायुका जो सेवन करेगा वह आरोग्य युक्त हो सकता है। इस तरह वेदकी यज्ञविधि सबका हित करनेवाली है।

यज्ञ किसी एक स्थानपर होता है, पर उसका लाभ वायु शुद्ध होनेसे सब लोगोंको होता है। इसी प्रकार वेदका ज्ञान सबको लाभदायक होता है, इस विषयमें मनुस्मृतिने भी कहा है, देखिये—

वेदका ज्ञान

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

मनुस्मृति

' १ सेनापतिका सेनासंचालनका कार्य, २ राज्य चलानेका कार्य, ३ न्यायदानका न्यायाधीशका कार्य, तथा ४ सब लोगोंके आधिपत्यके विविध कार्य जो राष्ट्रशासनमें आवश्यक होते हैं, ये सब कार्य, वेदरूपी शास्त्रको जाननेवाला विद्वान् अच्छीतरह कर सकता है। '

अर्थात् वेदको जाननेवाला शत्रुपर सेना लेकर किस तरह हमला करना चाहिए यह जान सकता है, वेदके इन्द्र-सूक्त और मरुत्सूक्तोंके अध्ययनसे यह ज्ञान उसको मिल सकता है, राज्य चलानेके विविध कार्य वेदके विश्वेदेवा देवताके सूक्तोंके अध्ययनसे ज्ञात हो सकते हैं। इसी तरहसे अन्यान्य राष्ट्रके चलानेके कार्य करनेका ज्ञान वेदके अनेक सूक्त दे सकते हैं। नारद स्मृतिमें भी कहा है—

पञ्च रूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः।
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य धनदस्य च ॥

नारद स्मृति

' महा बलवान् राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और कुबेर इन देवोंके रूप धारण करते हैं। राजा क्रुद्ध होने पर अग्निका रूप धारण करता है, शत्रुपर आक्रमण करके उसका पराभव करनेके समय वह इन्द्रका रूप धारण करता है, आनन्द प्राप्त होनेपर वह चन्द्रमा जैसा आनंद कारक बनता है, शत्रुको या दुष्टोंको पकडकर उसको दण्ड देनेके समय वह यम जैसा बनता है और धनका दान करने के समय वह कुबेरके समान होता है। '

देवताओंके वर्णनमें राजाके गुण

इस तरह वैदिक देवताओं द्वारा राजाके ये गुण बताये हैं। सपूर्ण विश्व एक अखंड विराट् राज्य है और इस विराट् राज्यके अग्नि, इन्द्र, चन्द्र, यम, कुबेर इत्यादि देवता मंत्री गण ही हैं। वेदका योग्य रीतिसे अध्ययन करने से, वेदके अन्दरकी अनेक देवता विश्वराज्यके मंत्रीगण ही हैं ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

विश्वराज्य चलानेवालोंके गुण

ये देवता विश्वमें अपना अपना कार्य यथायोग्य रीतिसे करती रहती है, विश्वराज्यको ये ही चलाती हैं। इस कार्यके करनेमें ये सुस्ती नहीं करती, आलस्य नहीं बताती, रिश्वतखोरी नहीं करतीं, अपना कार्य छोडती नहीं हैं, दूसरोंके कार्यमें बाधाएं उत्पन्न नहीं करती। ऐसे अनेक शुभगुण इनमें हैं। ये शुभगुण मनुष्योंको अपनाने योग्य हैं।

राज्य चलानेवालोंमें ये शुभगुण रहने चाहिये। वेदकी देवताओंमें ये शुभगुण हैं। इनका अध्ययन मानवोंको करना चाहिये और अपने अन्दर ये शुभगुण बढ जांय इसलिये यत्न करना चाहिये।

इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है, अग्नि अन्धेरेमें मार्ग बताता है, वायु जीवन देता है, सूर्य जीवन दीर्घ करता है, चन्द्रमा औषधियोंका पोषण करता है, पृथिवी सबको आधार देती है। इसी तरह अन्यान्य देवताएं अन्यान्य कार्य कर रही हैं और विश्वराज्य चला रही हैं और प्राणियोंका जीवन आनंदित कर रहीं हैं और सब विश्वभरमें इनका यह कार्य अखंड रीतिसे चल रहा है।

तीन स्थानोंमें वेदका भाव

विश्वका राज्य चलानेवाले ये अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवताएं हैं। उसके अनुसार राष्ट्रका राज्य चलानेवाले अनेक

मंत्री राष्ट्रमें होते हैं। इसीके अनुसार व्यक्तिके शरीरमें एक छोटा राज्य है यह राज्य यहांकी इन्द्रियां चलाती हैं। इस रीतिसे इन तीनों स्थानोंमें वेद मन्त्रका अर्थ देखा जाता है।

इसको समझानेके लिये यहां एक तालिका हम देते हैं। वह तालिका ऐसी है—

विश्वमें	राष्ट्रमें	व्यक्तिमें
अग्नि	वक्ता	वाणी
इन्द्र	वीर, शूर	शौर्यवीर्य
चन्द्र	शान्त आनंदी	मन
वायु	प्राणी	प्राण

इस तरह शरीरमें, राष्ट्रमें और विश्वमें वेदमंत्रका आशय देखनेकी रीति है। इसीको क्रमसे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक भाव दर्शन कहते हैं। तैंतीस देवताएं, जो वेदमें हैं, वे सब आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें इस रीतिसे अपना भाव बताती हैं।

वेदके अर्थका स्पष्टीकरण इस प्रकार करनेसे तीनों क्षेत्रोंमें वेदमंत्रका अर्थ देखा जा सकता है। अग्निके मंत्र इस प्रकार ज्ञानपरक अर्थ बतायेंगे, इन्द्र देवताके मंत्र शूरवीरताका भाव बतायेंगे और अन्यान्य देवताएं अन्यान्य भाव बतायेंगी और वेदके अर्थको अपने अपने पद्धतिसे प्रकाशित करेंगी।

इस प्रकार वेदमंत्रका अर्थ देखनेकी पद्धतियां ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें तथा भाष्यकारोंके भाष्योंमें बतायी हैं। विचार करके इस पद्धतिसे वेद मंत्रोंके अर्थ देखने चाहिये और अर्थ समझानेका यत्न करना चाहिये।

ये वेदमंत्रोंके अर्थ इस तरह अनेक प्रकारके होते हैं। इससे घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि ये अर्थ निश्चित नियमोंके अनुसार ही होते हैं और किसी प्रकारकी कोई अनियमितता इनमें नहीं होती है। जो नियमोंके अनुसार होता है उसमें कोई कठिनता नहीं होती। नियम जाननेसे उनके समझनेमें सुगमता होती है।

वेदमंत्रोंके अनुवादका प्रकाशन

इस रीतिसे वेदमंत्रोंके अनुवादका स्पष्टीकरणके साथ प्रकाशन हम, जनताको सुखसे वेदके अर्थका ज्ञान प्राप्त हो, इसलिये कर रहे हैं। नीचे लिखे ग्रंथ तैयार हैं—

१ ब्रह्मविद्या

ब्रह्मज्ञान, परमात्माका सामर्थ्य, ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग, पापकी सामर्थ्यका आत्मिक बलसे प्रतिकार, ज्येष्ठ ब्रह्म, गुह्य अध्यात्म विद्या, सूत्रात्मा, एकके अनेक नाम, एक पूजनीय ईश्वर, ईश्वरका नामस्मरण, अपने अन्दरकी शक्ति, प्राणका प्राण, ब्रह्माण्ड देह, जीवन महासागर, अमृतदाता, एक देवकी भक्ति, महान् शासक, जगत्का एक सम्राट्, व्यापक श्रेष्ठ देव, विश्वशकटका संचालक, सर्व साक्षी, भुवनोंमें श्रेष्ठ, ईश्वरका मित्र, प्रातःकालमें ईश्वरकी प्रार्थना, एक ही उपास्य, सर्वव्यापक ईश्वर, सर्वाधार प्रभुका ध्यान, रक्षक देव, अन्तर्यामी ईश्वर, विश्वम्भर, आत्मज्योति, जीवात्माका परमात्मामें प्रवेश, मुक्तिका मार्ग, मुक्तिका अधिकारी, विजय प्राप्ति।

२ मातृभूमि और राज्यशासन

मातृभूमिका वैदिक राष्ट्रगीत, आध्यात्मज्ञान और राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रसभा और उसकी अनुमति, राजाके रक्षक, राजाका कर्तव्य, राजाकी स्थिरता, राष्ट्रके अभ्युदयकी वृद्धि, राजा और राजाके निर्माण करनेवाले, राजाका चुनाव, विजयी राजा, सोलहवां भाग रूप कर, दुष्टोंका नाश, शत्रुसेना संमोहन, शत्रुकी घबराहट, विजयकी प्राप्ति, युद्धनीति, विजयकी प्राप्ति, अभ्युदयकी दिशा, बलको प्राप्ति, स्वशक्तिका विस्तार, बलसंवर्धन, बंधनसे मुक्ति, युद्ध साधन, रथ, दुंदुभी, शूर वीर।

३ गृहस्थाश्रम

पवित्र गृहस्थाश्रम, कुलवधू, पतिके गुण, वधूपरीक्षा, विवाहका मंगल कार्य, वरकी योग्यता, वैदिक विवाहका स्वरूप, सद्व्यवहारसे धन कमाओ, गोरक्षण करो, स्त्री सूत कातें, पाणिग्रहण, चोरीका अन्न न खा, विवाहका समय, बडोंका संमान, आदर्श पति और पत्नी, स्त्रीपुरुषका परस्पर प्रेम, दोनों एक विचारसे रहें, पत्नी पतिके लिये वस्त्र बनावे, सौभाग्य संवर्धन, स्त्रीके पातिव्रत्यका रक्षण, काम, कामाग्निका शमन, वीर पुत्रकी उत्पत्ति, गर्भधारणा, रोगजन्तु नाश, पुंसवन, देवोंका गर्भमें प्रवेश, रक्तस्राव बंद करना,

संतानका सुख, घरमें बालक, प्रजाका पोषण, रमणीय घर, गौ, धन, अन्न और बल। सौ को अन्न देनेवाली गाय, संगठन, यज्ञ, ऋणरहित होकर रहना, भाग्य प्राप्त करना, दुष्ट स्वप्न हटाना।

४ आरोग्य और दीर्घायुष्य

प्राणका संरक्षण, प्राणविद्या, दीर्घायु प्राप्तिका उपाय, स्वावलंबिनी प्रजा, वाणी, सुख, शापका दुष्परिणाम, ईर्ष्या निवारण, अमर शक्तिकी प्राप्ति, ज्ञान और कर्म, बलदायी अन्न, कल्याणकी प्राप्ति, निर्भय जीवन, आत्मरक्षण, कष्टोंको दूर करना, द्रोह न करना, सत्यको विजय, समृद्धि, वर्चः प्राप्ति, दुष्टोंका दमन, चोर और डाकुओंको दूर करना, रोगनिवारण, यक्ष्मनाश, विषनाश, ज्वरनाश, कुष्ठनाश, गण्डमाला दूर करना, रोगकृमि नाश, संधिवात दूर करना, क्षेत्रीय रोग दूर करना; क्लेशोंको दूर करना, हस्तस्पर्शसे रोगनिवारण।

५ मेधाजनन, संगठन और विजय

मेधाजनन, तपसे मेधाबुद्धिकी प्राप्ति, मनका बल बढाना, बंधनसे मुक्ति, परस्परकी मित्रता बढानी, ब्राह्मण धर्मका आदेश, हृदयरोग और कामिला रोगको हटाना, वनस्पति पृश्निपर्णी, अपामार्ग, पिप्पली, रोहिणी, कुष्ठ औषधी, लाक्षा, शमी, सूर्यकिरण चिकित्सा मणिबंधन, जंगिड, शंख, प्रतिसर मणि, शरीरकी रचना, अञ्जन, पाशोंसे मुक्तता, ब्रह्मचर्य, स्वर्ग और ओदन, हृदयके दो गीध, तृष्णाका विष, सुरक्षा, समृद्धि, गाढ निद्रा, प्रथम वस्त्र परिधान, ईर्ष्या निवारण, क्षत्रिय, युद्धकी रीति, विजय, दुष्टनाश, मधुविद्या, संगठन, मातृभूमि, मातृभूमिके भक्तोंका सहायक ईश्वर, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रपोषण, बाह्य शक्तियोंसे अन्तःशक्तियोंका मेल, कृषिसे सुख, गौ, अश्व, वृष्टि, जल, जलचिकित्सा, वाणिज्यसे धनप्राप्ति।

ये पुस्तकें हिंदी-गुजराती-मराठी ऐसी ३ भाषाओंमें पृथक् पृथक् हैं इस प्रत्येक पुस्तकमें ८ सौ से हजार मंत्रोंका अर्थ भावार्थ और स्पष्टीकरण मुद्रित हुआ है। केवल हिंदी, मराठी और गुजराती जाननेवाला भी इनको अच्छी तरह समझ सकता है।

ग्राहक बन जाइये

आप इसके ग्राहक बन जाइये। इससे वेदके अगले पुस्तक छापनेमें आर्थिक सहायता हमें मिल जायगी और वे पुस्तक जल्दी छप सकेंगे। आगे इसी तरहके बीस पुस्तक छपने हैं। जैसे ये बिकते जायगे वैसे इस धनसे अगले पुस्तक मुद्रित होते जायंगे। इसलिये आप इन ग्रंथोंको शीघ्र खरीदिये और हमें सहायता पहुंचाइये। बडी कृपा होगी

मंत्री— स्वाध्याय मंडल
पारडी जि. सूरत

(एक विचार पूर्ण लेख)

वेद और वेदान्त

(लेखक– श्री अरुणकुमार शर्मा, हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी १ [उ. प्र.])

★

हम सर्व प्रथम ' वेद ' शब्द पर विचार करना चाहते हैं। कोषमें ' वेद ' शब्दके पर्याय मिलते हैं— ' श्रुति ' और ' आम्नाय '। श्रुति ' शब्द अन्वर्थक है। श्रुतिका अर्थ है श्रवण करना, मनन करना। प्राचीन कालमें वेदोंका अध्यापन और अध्ययन केवल ' श्रुति ' के आधारपर होता था। इसी ' श्रुति ' के आधारपर ऋचाओंका निर्माण हुआ। चार-पाँच ऋचाओंका एक वर्ग और कई वर्गोंका एक ' अनुवाक ' होता है। और इसी प्रकार कई अनुवाक मिलकर अध्याय बनाते हैं।

आठ अध्यायोंका एक अष्टक बनकर सम्पूर्ण ऋग्वेद आठ अष्टकोंमें विभक्त है।

ऋक् ' संहिता ' में दो प्रकारके विभाग किये गये हैं एक मण्डलात्मक है– जिसमें मण्डल, सूक्त और ऋचाएं विद्यमान हैं। ऋग्वेदमें १० मण्डल हैं १०१७ सूक्त, खिल सूक्तोंके साथ १०२८ और प्रत्येक सूक्तमें एकसे १ लेकर कहीं-कहीं ७०-८०-१०० तक ऋचाएं हैं। ऋचाओंकी औसत संख्या १५-१६ आ सकती है।

इस प्रकार ये मंत्र सूक्तोंके रूपोंमें एकत्रित होनेके बाद पठन-पाठन प्रणालीमें सरलता रखनेके लिए ४-या ५ ऋचाओंको लेकर वर्ग बनाए। और एक अध्यायमें जितने वर्ग होते हैं— उनको समान संख्यामें विभक्त कर उनके अनुवाक बनाए गये। अनुवाकोंके अध्याय और अध्यायोंके अष्टक। यह विभाग सरणि जबसे प्रस्तुत हुई तभीसे वेदको ' आम्नाय ' कहने लगे। श्रुतिका भी जन्म पर ऋषियोंका ज्ञान अपर ऋषियोंको उपदेश द्वारा दिया जाने लगा। क्योंकि यास्क महर्षि कहते हैं—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः वेदं वेदांगानिच। (नि० १।२०)

आद्य ऋषियोंने धर्मका साक्षात्कार किया और उन्हें मंत्रोंके रूपमें प्रकट किया-वही ' वेद ' कहलाया। उसके बादके ऋषियोंको जब यह साक्षात्कार होना बन्द हो गया तबसे साक्षात्कृत धर्मका उपदेश करना प्रारम्भ हुआ। और जबसे उपदेशको सुनकर ग्रहण करना प्रारंभ हुआ तभीसे इसका नाम ' श्रुति ' पड़ा होगा। पुनः इसके बादके ऋषिगण उपदेशसे ग्रहण करनेमें असमर्थ थे— इसीसे इनके अभ्यासके लिये चारों वेद, संहिता, पद, क्रम, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् और ज्योतिष आदि ग्रन्थोंका निर्माण हुआ। इनका अभ्यास ही ' आम्नाय ' पदसे बोधित होने लगा और यास्काचार्य अपने निरुक्तके आरम्भमें वैदिक निघण्टुके लिये कहते है— ' सामाम्नायः समाम्नातः ' अर्थात् आम्नाय जो उत्तम प्रकारका माना गया है वह तो वैदिकोंके लिये पठन-पाठनार्थ है। यहां पर निघण्टुको, जिस पर यास्क टीका लिख रहे हैं, ' आम्नाय ' कहा है। इसी प्रकार ' निगम ' और ' आगम ' ये पद भी अत्यन्त प्राचीन हैं। ' निगम ' पदसे ' वेद ' का बोध होता है। और ' आगम ' पदसे शास्त्रका। ' निगम पदका प्रयोग यास्काचार्यने स्वयं किया है– ' नितरां गमयति ' यानि जो स्पष्ट, सुन्दर ज्ञान कराता है वह– ' निगम '। और इस ' निगम ' के विषयमें चारों तरफसे (आ–समन्तात्) जो ज्ञान कराता है– वह है– ' आगम '। मंत्रोंका ' वेद ' कहनेका कारण केवल इतना ही था कि वे ज्ञानरूप अथवा ज्ञानमय थे, जैसे मनु कहते है– ' सर्वज्ञानमयो हि सः ' किन्तु वेद शब्दकी व्युत्पत्ति ध्यानमें रखो जाय तो और भी बातें प्रकट होंगी।

' य एवं वेद ' (जो इस) प्रकार जानता है- ' जानता ' है । इस अर्थमें यह शब्द मन्त्रोंमें वारम्वार आनेसे ' ज्ञान ' शब्दके अर्थमें रूढ हुये । (ज्ञान शब्दसे केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही नहीं लेना चाहिए-किन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको भी लेना चाहिए) ' विद् ' धातुका अर्थ जो ज्ञान है उसे प्रयोजकके रूपमें भी प्रयुक्त कर सकते है—

इष्टप्राप्त्यानिष्टपरिहार यो लौकिकपायं यो
ग्रन्थो वेदयति स वेदः ।

ज्ञान शून्य क्रिया, और क्रिया शून्य कर्म निरर्थक माना जाता है । गीताके द्वारा कृष्णने ज्ञान देकर अर्जुनको कर्मानुष्ठान बनाया । उपनिषद्का कथन है कि—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्या मुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥

प्रत्यक्ष अथवा अनुमान-प्रमाण द्वारा जिस उपायका बोध नहीं हो सकता उसका ज्ञान वेद अर्थात् शब्द प्रमाणसे होता है- यही वेदका ' वेदत्व ' है । ' विद् ' धातुके अनेक अर्थ हैं- वे सब इस ' वेद ' शब्दमें चारितार्थ हैं । जैसे व्याकरणकी कारिका है—

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे ।
विन्दते विदन्ति प्राप्तौ श्यन् लुक्श्नं शेष्विदं
क्रमात् ॥

विन्ते विचारणे— वेदमें जो मीमांसा-वह वेदका विचार ही है । वेदाभ्यास ५ प्रकारका माना गया है—

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ।
तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥

वेद शब्द जिस ज्ञानका वाचक है वह केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही नहीं- बल्कि आधिदैविक, आधिभौतिक आदि सब प्रकारके ज्ञान तथा सत्ता, विचार, प्राप्ति, व्याख्यान, ज्ञापन, आदि सभी प्रकारके अर्थ उसके अन्दर अभिप्रेत हैं । वेदके मन्त्रके व्याख्यान रूप जिन्हें हम आज ' ब्राह्मण ' के नामसे जानते हैं- वे ब्राह्मण ग्रन्थ अवस्था भेदसे तीन प्रकारके हैं- ' यज्ञयागादि, आरण्यक, और उपनिषद्— क्रमसे—कर्म—उपासना—और ज्ञान । कर्म, उपासना ज्ञानको परिनिष्ठित करनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है । इसलिये आगेके आचार्योंने बतलाया है— मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ' ।

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥

वेद मन्त्रात्मक होनेके अलावा इतिहासयुक्त भी थे ' इतिहासपुराणं वेदानां पञ्चमं वेदम् ' । ' वेद ' शब्दका प्रयोग आयुर्वेद, नाट्यवेद आदि सभी ज्ञानोंके लिये प्रयुक्त हुआ है । ऋषियोंका ज्ञान कितना व्यापक था, यह समझनेके लिये हमारे पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है । किन्तु हमारी परम्परा यही बतला रही है कि वेदसे ही सब शास्त्र, आगम, पुराण, इतिहास निकले हैं । वेदके प्रधान दो भाग किये गये हैं— कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड । अथवा एक अपरब्रह्म दूसरा परब्रह्म ।

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परञ्च यत् ।
शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

शब्द ब्रह्म ही कर्मकाण्ड है । कर्म शब्दका यहां संकुचित अर्थ नहीं लेना चाहिये । यज्ञ, तप, दान आदि जितने वेदोक्त सत्कर्म हैं— वे सभी यहां उद्दिष्ट हैं । इन्हींके द्वारा पुरुषके चित्तका मल दूर होकर चित्तमें आत्मस्वरूप प्रतिबिम्बित होता है ।

यही वेदान्त याने वेदोंका अन्त अथवा निर्णय या निश्चय है—

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परि समाप्यते ।
(गीता)

ज्ञान कर्मसे कोई भिन्न पदार्थ नहीं है । कर्म ठीक प्रकारसे किये जायँ—तो उनसे कर्म करनेवाले पुरुषकी जो स्थिति प्रज्ञकी स्थिति बनती है वही तो ज्ञान है । जो केवल ग्रन्थोंके पढने और समझनेसे प्राप्त नहीं हो सकता । जबतक वेद और वेदान्तका यह संबंध दृढ नहीं किया जायगा—तबतक— आत्मोद्धारका मार्ग निष्कण्टक होना असम्भव है ।

१९ सितम्बरको जन्मदिनके शुभावसर पर—



श्री पंडित
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

लेखक— श्री श्रुतिशील शर्मा, एम. ए.

' संयम ही दीर्घजीवन कुंजी है। और संयमका आधार है प्राणायाम। प्राणायामसे मनुष्य अपनी आयु जितनी चाहे लम्बी कर सकता है। आजका तरुण समाज न तो संयमके महत्वको जानता है न प्राणायामके महत्वको। इसको विपरीत वह इनका उपहास करता है, और परिणाम वही होता है कि आजके तरुण इन दोनोंके अभावमें समयसे पूर्व ही काल कवलित होते जा रहे हैं। '

९६ वर्षीय श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके ये शब्द प्रायः सभी अतिथि सुनते हैं, और न केवल सुनते ही हैं अपितु उनके जीवनमें भी ये शब्द अक्षरशः उतरे हुए दीखते हैं। ९६ वर्षकी अवस्थामें भी नित्य प्रति सात-आठ घण्टे काम करना कोई साधारण बात नहीं। वे प्रायः कहा करते हैं कि ' मनुष्यकी वास्तविक आयु ११६ वर्षकी है। छान्दोग्योपनिषद्में ११६ वर्ष तकका कार्यक्रम निश्चित किया हुआ है। उतने वर्ष तक मनुष्यकी वास्तविक आयु है। इसको और भी बढाया जा सकता है। प्राचीनकालमें जब ग्रीक्स भारतमें आये तो उन्होंने देखा कि १४० वर्ष के व्यक्ति सडक पर घूम रहे हैं। पर आज यह अवस्था होगई है कि लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होता है कि मैं ९६ वर्षका होते हुए भी कार्य करता हूँ। '

श्री पंडितजीका कार्य इस अवस्थामें भी अबाध गतिसे चल रहा है। उनका सारा समय वेदोंके कार्योंमें ही बीतता है। वे पिछले ५०-६० वर्षोंसे वेदोंके कार्यमें ही संलग्न हैं और अबतक शताधिक ग्रंथ वेदों पर लिख चुके हैं।

श्री पण्डितजी का जन्म १८६७ में ' सावन्तवाडी ' के एक समीपस्थ ग्राममें हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अधिकतर संस्कृतमें ही हुई। इस संस्कृतके अध्ययनने आगेके जीवनमें बडी सहायता दी। संस्कृतका थोडा अध्ययन करके उनकी इच्छा संस्कृत भाषाकी गहराईमें उतरनेकी हुई और वे अपने इस कार्यमें जुट भी गए। शनैः शनैः उनका प्रवेश संस्कृतमें होने लगा, फिर संस्कृतका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके वेदोंकी तरफ दृष्टि डाली और पाया कि वेदोंमें अनन्त रत्न हैं। यद्यपि उन्हें ज्ञात था इन रत्नोंको इकट्ठा करना सरल नहीं है, पर फिर भी धैर्यतापूर्वक वे कार्यमें जुटे रहे और आज उन्होंने लोगोंको जो कुछ भी दिया है वह अद्वितीय है। उनके द्वारा सम्पादित वेदोंका मुद्रण आज प्रामाणिक माना जाता है। प्रसिद्ध विद्वान् श्री युधिष्ठिरजी मीमांसकने एक बार एक लेखमें लिखा था कि— ' आज तक यह माना जाता रहा है कि पाश्चात्य विद्वान् मेक्समूलर द्वारा सम्पादित वेद ही सब दृष्टिसे प्रामाणिक हैं, पर श्री पं. सातवलेकर द्वारा सम्पादित वेदों को देखकर यह मानना पडेगा कि ये वेदके संस्करण मेक्स मूलरके संस्करणोंसे कहीं अधिक शुद्ध और प्रामाणिक हैं। '

वेदोंके इन शुद्ध संस्करणोंको निकालनेमें श्री पण्डितजी को अत्यधिक श्रम करना पडा।

गीता--पुरुषार्थ बोधिनी

यों तो श्री पण्डितजीके अनेकों ग्रंथ हैं, और सभी पुस्तकोंमें उनकी प्रतिभा झलकती है। पर उनकी वास्तविक प्रतिभागाम्भीर्यका परिचायक ग्रन्थ ' गीता ' पर लिखी

गई 'पुरुषार्थ बोधिनी' टीका है। वह टीका अबतक हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड, संस्कृत और अंग्रेजी इन छै भाषाओंमें अनुवादित हो चुकी है। हिन्द में इसके चार संस्करण छप चुके हैं, और अभी चौथा संस्करण भी समाप्त होकर पांचवा संस्करण निकला है। इस पुस्तकको अनेक विशेषतायें हैं। इसकी विशेषताओंके कारण ही महात्मा गांधी, श्री चिं द्वा. देशमुख, डॉ. एस. राधाकृष्णन् आदि विद्वानों ने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। महात्माजी अपनी प्रार्थना सभाओंमें इसी पुस्तकका पाठ करते थे। इस ग्रंथकी अनेक विशेषताओंमें कुछ विशेषतायें निम्न हैं—

(१) अबतक गीताको एक आध्यात्मिक ग्रंथ माना जाता रहा है। और लोगोंका विचार है कि गीता लोगोंको संसारसे विमुख करके मोक्ष मार्गकी ओर प्रेरित करती है। पर इस ग्रंथमें बताया है कि गीता एक आध्यात्मिक ग्रंथके साथ एक उत्कृष्ट राजनीतिशास्त्र है। यह संसारसे लोगोंको विमुख न करके संसारमें नियुक्त करती है। अर्जुन जो संसारसे विमुख हो रहा था, गीताको सुनकर पुनः संसारके कार्योंमें लग गया।

(२) अब तकके गीताके टीकाकारोंने, यहां तक कि श्री शंकराचार्यजीने भी टीका करते हुए वेदोंका आधार नहीं लिया। वे सब उपनिषदों तक ही आकर रुक गये। यह प्रथम ग्रंथ है, जिसमें वेदोंका आधार लेकर विषयोंका प्रतिपादन किया गया है।

इनके अलावा और भी अनेक विशेषतायें हैं, जिनके कारण यह ग्रंथ बहुत लोकप्रिय हुआ है। श्री पण्डितजी स्वयं भी स्वाभिमानसे कहते हैं कि 'ऐसी टीका गीता पर अभी तक किसीने नहीं लिखी है।' जो यथार्थतः सत्य भी है।

श्री पण्डितजीके इस पुनीत जन्मदिन पर हम पाठकों व वेदप्रेमियोंकी यही शुभ कामना है कि श्री पण्डितजी 'भूयसी शरदः शतात्' होकर वेदोंके कार्यमें व्यस्त रहें।



'१४ सितम्बर हिन्दी-दिवस' के शुभ अवसरपर

'हमारी--प्रतिज्ञा'

हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी।
देवनागरी हमको प्यारी॥
ललित भाव सरसानेवाली, सुन्दर ज्योति जगानेवाली।
हृदय-कमल विकसानेवाली, हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी॥
सूर, जायसी, देव, बिहारी, तुलसी की मोनस फुलवारी।
शुक्ल, द्विवेदी सिंचित क्यारी, गुप्त, निराला, पंत, पुजारी॥
हिन्दीभाषा श्रेष्ठ हमारी।
देवनागरी हमको प्यारी॥
उठो बन्धुओ उठकर गाओ, हिन्दी भाषाको अपनाओ।
तार स्वरमें मिलकर गाओ, जय जय भाषा हिन्दी प्यारी॥
हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी।
देवनागरी हमको प्यारी॥
हिन्दीका हम कार्य करेंगे, इसे विश्वभाषा पद देंगे।
देश में घर घर फैला देंगे, प्रबल प्रतिज्ञा यही हमारी॥
हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी।
देवनागरी हमको प्यारी॥

—कृष्णलाल बजाज 'प्रदीप'

होवे, तू (अ-म्रियः अमृतः वा अतिजीवः) अक्षीण अमर और दीर्घजीवी हो, (असवः ते शरीरं मा हासिषुः) प्राण तेरे शरीरको न छोडें ॥ २६० ॥

अपने बांधवोंसे होनेवाले हमलोंसे अपनी रक्षा करो। क्षीण न होओ, मरनेका विचार न करो। दीर्घ जीवन प्राप्त करनेका संकल्प करो और उसके लिये प्रयत्न करो। ऐसा करनेसे प्राण जल्दी नहीं छोडेंगे और तुम्हें दीर्घ आयु प्राप्त होगी।

ब्रह्मा। आयुः। अनुष्टुप्।

२६१ ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः।
मुंचन्तु तस्मात् त्वां देवा
अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥ अथ. ८।२।२७

(ये एकशतं मृत्यवः) जो एक सौ एक मृत्यु हैं, (या अतितार्याः नाष्ट्राः) जो पार करने योग्य तथा नाश करनेवाली हैं, (तस्मात्) उससे (देवा वैश्वानरात् अग्नेः) सब देव वैश्वानर अग्निकी शक्तिसे (त्वां) तुझे (अधिमुंचन्तु) मुक्त करें ॥ २६१ ॥

सैंकडों मृत्यु हैं जिनको दूर करना चाहिये। सब मनुष्योंमें रहनेवाला और उनके जीवनोंको दीर्घ करनेवाला अग्नि है, उसको अनुकूल करनेसे मृत्यु दूर होकर दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है।

ब्रह्मा। ऋषभः। त्रिष्टुप्।

२६२ पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा
ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन्।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च
रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥
अथर्व. ९।४।२२

(पिशंगरूपः) चमकीले रूपवाला (वयो-धाः) अन्नको धारण करनेवाला (विश्वरूपः) अनेक रूपोंवाला (ऐन्द्रः शुष्मः) इन्द्रका बल (नभसः नः आगन्) द्युलोकसे हमारे पास आया है, वह (आयुः प्रजां च रायः च) आयु, प्रजा और धन (अस्मभ्यं दधत्) हमारे लिए धारण करता हुआ (पोषैः न अभि सचताम्) पुष्टियोंसे युक्त होकर हमें प्राप्त हो ॥ २६२ ॥

इन्द्रका तेजस्वी बल मनुष्योंको आयु, प्रजा और धन देता है। वह पुष्टिके साथ मनुष्योंको प्राप्त हो।

ब्रह्मा। ओदनः। त्रिष्टुप्।

२६३ यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं
पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू
रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ अथ. ११।१।३४

(यज्ञं दुहानं प्रपीनं सदं इत्) यज्ञ करनेवाला सदा समृद्ध (रयीणां सदनं धेनुं) सम्पत्तिका घर ऐसी गौ है, हम (त्वा पुमांसं) तुझ पुरुषके पास (पोषैः प्रजा अमृतत्वं उत दीर्घं आयुः) पुष्टियोंसे प्रजाकी पुष्टि और उनकी दीर्घ आयु (रायः च उप सदेम) और धन लेकर आते हैं ॥ २६३ ॥

यज्ञ करनेवाला सदा समृद्ध, संपत्तिका घर जैसा होता है। तुझ यज्ञ कर्ताके पास पुष्टि, प्रजा, अमरत्व, दीर्घायु और धनके साथ हम आते हैं। यज्ञ करनेसे पुष्टि होती है, सुसंतान प्राप्त होती है, दीर्घायु होती है और धन भी मिलता है।

ब्रह्मा। ब्रह्मचारी। अनुष्टुप्।

२६४ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥
अथर्व. ११।५।१९

(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य रूपी तपसे (देवाः) देवोंने (मृत्युं उप अघ्नत) मृत्युको दूर किया। (इन्द्रः ह) इन्द्र भी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्यके द्वारा (देवेभ्यः स्वः आभरत्) देवोंके लिए सुख ले आया ॥ २६४ ॥

ब्रह्मचर्य पालन रूप तपसे देवोंने मृत्युको दूर किया था। उस तरह जो ब्रह्मचर्य पालन करेंगे वे दीर्घायु प्राप्त कर सकते हैं।

ब्रह्मा। अध्यात्मं। पंचपदा विराड्गर्भा जगती।

२६५ दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णं
अदित्याः पुत्रं नाथकाम उपयामि भीतः।
स नः सूर्य प्रतिर दीर्घमायुः
मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ अथ. १३।२।३७

(दिवः पृष्ठे धावमानं सुपर्णं अदित्याः पुत्रं) द्युलोककी पीठपर दौडनेवाले पक्षीके समान अदितिके पुत्रके

प्राय (नाथकामः भीतः उपयामि) रक्षणकी इच्छा करनेवाला भयभीत हुआ मैं शरणमें जाता हूं। हे सूर्य! (सः नः दीर्घं आयुः प्रतिर) वह तू हमें दीर्घ आयु प्रदान कर, (ते सुमतौ स्याम, मा रिषाम) तेरी उत्तम बुद्धिमें हम रहें और हमारा नाश न हो ॥ २६५ ॥

आकाशमें दौडनेवाले सूर्यकी मैं शरण जाता हूं, वह हमें दीर्घ आयु देवे। सूर्यकी सुमति हमारे विषयमें रही, तो हमारा नाश कभी नहीं होगा। हम दीर्घायु बनेंगे।

ब्रह्मा। आदित्यः। त्र्यवसाना।

२६६ विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥
अथ. १७।१।१

(विषासहिं) अत्यन्त समर्थ (सहमानं) अत्यन्त बलवान् (सासहानं) नित्य विजयी (सहीयांसं) शत्रुको दबानेवाला (सहमानं) महा बलिष्ठ (सहोजितं) बलसे दिग्विजय करनेवाले (स्वः-जितं) अपने सामर्थ्यसे जीतनेवाले, (गो-जितं) भूमि, इन्द्रियों और गौओंको जीतनेवाले, (संधनाजितं) धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले (ईड्यं नाम इन्द्रं) प्रशंसनीय यशवाले प्रभुकी मैं (ह्व) प्रशंसा करता हूं, जिससे मैं (आयुष्मान् भूयासं) दीर्घायुवाला होऊं ॥ २६६ ॥

इन्द्रके गुण मैं गाता हूं। वह इन्द्र सामर्थ्यवान्, बलवान्, विजयी, शत्रुको दबानेवाला, सामर्थ्यसे दिग्विजयी, जीतनेवाला, गौओंको जीतकर लानेवाला, धन जीतनेवाला है। इन गुणोंका चिंतन मैं करता हूं जिससे मैं विजयी और दीर्घायु होता हूं।

ब्रह्मा। आदित्यः। जगती।

२६७ प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं
कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः
सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ अथ. १७।१।२७

(अहं प्रजापतेः ब्रह्मणा वर्मणा आवृतः) मैं प्रजापतिके ज्ञान रूप कवचसे आवृत होकर (कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च) और सर्वदर्शक देवके तेज और बलसे युक्त होकर (जरदष्टिः कृतवीर्यः) वृद्धावस्था तक वीर्यवान् रहता हुआ (विहायाः सहस्रायुः) विविध कर्मोंसे युक्त सहस्रायु-पूर्णायु-होकर (सुकृतः चरेयम्) उत्तम पुण्यकर्म करता हुआ व्यवहार करूं ॥ २६७ ॥

मैं ज्ञान प्राप्त करके, उस ज्ञानसे अपने कर्तव्य करके, वृद्धावस्था तक आनेवाला पूर्णायु होकर विचरता हूं।

ब्रह्मा। विश्वेदेवा। बृहतीगर्भा।

२६८ मा नो मेधां मा नो दीक्षां
मा नो हिंसिष्टं यत्तपः।
शिवाः नः सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥
अथर्व. १९।४०।३

(नः मेधां मा) मेरी बुद्धिको मत नष्ट करो, (नः दीक्षां मा) मेरी दीक्षाको नष्ट मत करो, (नः यत् तपः) और हमारा जो तप है, उसे (मा हिंसिष्टं) मत समाप्त करो, (मातरः) मातायें-जल धारायें (आयुषे शिवाः सन्तु) हमारी आयुके लिए कल्याणकारिणी होवें, तथा (नः शिवाः भवन्तु) हमारे लिए कल्याण करनेवाली हों ॥ २६८ ॥

मेरी बुद्धि दीक्षा और मेरा तप नष्ट न हो। वह सतत चलता रहे। जीवनकी धाराएं मेरी दीर्घायु करनेवालीं तथा मेरा कल्याण करनेवालीं हों। बुद्धि, दक्षता तथा द्वन्द्व सहन करनेकी शक्ति इनसे कल्याण होता है और दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

ब्रह्मा। यज्ञः। त्रिष्टुप्।

२६९ घृतस्य जूतिः समना सदेवा
संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो अस्तु
अच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥
अथर्व. १९।५८।१

(समना सदेवा) मन लगाकर दैवीशक्तियोंके साथ (घृतस्य जूतिः) घी की अविच्छिन्न गति (हविषा संवत्सरं वर्धयन्ती) हविसे संवत्सरको बढाती है, (नः श्रोत्रं, चक्षुः, प्राणः, अच्छिन्नः अस्तु) हमारी कान,

आंख और प्राणकी शक्तियां अविच्छिन्न रहें, (आयुषः वर्चसः वयं आच्छिन्नाः) आयु और तेजसे हम अविच्छिन्न हों ॥ २६९ ॥

गौके घीसे हम हवन करते रहें, इससे हमारे कान, नेत्र और प्राण बलवान् हों और हम दीर्घ आयुसे संपन्न हों।

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराट् पथ्याबृहती ।

२७० तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥
अथर्व. १९।६१।१

(मे तनूः तन्वा) मेरा शरीर मोटा हो (दतः सहे) शत्रुओंका मैं पराभव करूं, मुझे दबानेवालेको मैं अपने सामर्थ्यसे दूर करता हूं, (सर्वं आयुः अशीय) मैं पूर्ण आयुको प्राप्त करूं (मे स्योनं सीद) मेरे सुखदायी स्थान पर बैठ, (पुरुः पृणस्व) अपने आपको परिपूर्ण कर, मैं (पवमानः स्वर्गे) पवित्र होता हुआ सुखपूर्ण स्थानमें रहूं ॥ २७० ॥

मेरा शरीर अच्छा हो, शत्रुओंका पराभव मैं करूं, पूर्ण आयु मैं प्राप्त करूं। मैं परिपूर्ण बनूं। पवित्र बन कर मैं सुखपूर्ण स्थानमें रहूं। ये विचार मनमें धारण करनेसे मनुष्य दीर्घायु होता है।

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराडुपरिष्टाद्बृहती ।

२७१ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं
यजमानं च वर्धय ॥ अथ. १९।६३।१

हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन् ! (उत्तिष्ठ) उठो, (देवान् यज्ञेन बोधय) यज्ञसे देवोंको जगाओ, तथा (आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं यजमानं च वर्धय) आयु, प्राण, प्रजा पशु और कीर्तिके द्वारा यजमानको बढाओ ॥ २७१ ॥

यज्ञ करनेसे आयु, प्राणशक्ति, सुप्रजा निर्माण करनेकी शक्ति, पशु और कीर्ति प्राप्त होती है।

ब्रह्मा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

२७२ एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥
अथ. १९।६४।४

हे अग्ने (एता ते समिधः) ये तेरे लिए समिधायें हैं, (त्वं इद्धः) तू प्रदीप्त होकर (समित् भव) तेजस्वी हो, (अस्मासु आयुः धेहि) हमें आयुष्य दे, और (आचार्याय अमृतत्वं) आचार्यके लिए अमरपन दे ॥ २७२ ॥

समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ यज्ञाग्नि हमें दीर्घायु करता है और हमारे आचार्यको अमरत्व देता है।

ब्रह्मा । सूर्यः । प्राजापत्या गायत्री ।

२७३ पश्येम शरदः शतम् । जीवेम शरदः शतम् ।
बुध्येम शरदः शतम् । रोहेम शरदः शतम् ।
पूषेम शरदः शतम् । भवेम शरदः शतम् ।
भूयेम शरदः शतम् । भूयसीः शरदः शतात् ।
अथ. १९।६७।१-८

हम (शरदः शतं पश्येम, जीवेम, बुध्येम, रोहेम, पूषेम, भवेम, भूयेम) सौ वर्ष तक देखें, जीवें, ज्ञान लें, बढें, पुष्ट हों, अच्छी तरह रहें, सजते रहे। (शरदः शतात् भूयसीः) सौ वर्षसे अधिक भी हम जीवें ॥२७३॥

सौ वर्ष तथा इससे भी अधिक जीवें और पुष्ट होकर हम बलवान् तथा दीर्घायु हों।

ब्रह्मा । आपः । आनुष्टुप् ।

२७४ जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।
अथर्व. १९।६९।१

हे जलो ! (जीवाः स्थ) तुम जीवन देनेवाले हो, तुम्हारी कृपासे मैं (जीव्यासं, सर्वं आयुः जीव्यासं) जीवूं और सम्पूर्ण आयु जीवूं ॥ २७४ ॥

मैं जीवित रहूंगा। सब आयुष्य प्राप्त करूंगा और दीर्घ आयु होऊंगा।

ब्रह्मा । इन्द्रसूर्यदेवाः । गायत्री ।

२७५ इन्द्र जीव सूर्य जीव
देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ अथर्व. १९।७०।१

हे इन्द्र ! हे सूर्य ! हे देवो ! (जीव, जीव, जीव) जियो, और (अहं) मैं भी (जीव्यासम्) जीऊं (सर्वं आयुः जीव्यासम्) मैं सम्पूर्ण आयु जीऊं ॥ २७५ ॥

मैं दीर्घ जीवन प्राप्त करूं और दीर्घायु उपभोगूं।

ब्रह्मा । गायत्री । त्र्यवसाना पंचपदातिजगती ।

२७६ स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं
द्रविणं ब्रह्मवर्चसं ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥
अथर्व. १९।७१।१

(मया वरदा वेदमाता स्तुता) मैंने वर देनेवाली वेदमाताकी स्तुति की, वह वेदमाता (प्रचोदयन्तां द्विजानां) प्रेरणा देनेवाले द्विजोंको (पावमानी) पवित्र करनेवाली है, वह (मह्यं) मुझे (आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं) आयु, प्राण, प्रजा, पशु, यश, धन और ब्रह्मवर्चसको (दत्त्वा) देकर (ब्रह्मलोकं व्रजत) ब्रह्मलोकको जाओ ॥ २७६ ॥

वेद माताका अध्ययन मैंने किया है वह मुझे दीर्घायु, प्राणका बल, सुप्रजा, गौ आदि पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मज्ञान देवे ।

वसिष्ठः । उषा । त्रिष्टुप् ।

२७७ उषा अप स्वसुस्तमः
सं वर्तयति वर्तनिं सुजाततां ।
अया वाजं देवहितं सनेम
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ अथर्व १९।१२।१

(उषा) उषा (सुजातता) उत्तम रीतिसे उत्पन्न होनेके कारण (वर्तनिं सं वर्तयति) मार्गको सम्यक् रीतिसे दर्शाती है और (स्वसुः तमः अप) अपनी बहिन रात्रीके अन्धकारको दूर करती है, (अया देवहितं वाजं सनेम) इस उषासे हम देवोंके लिए हितकारक बल प्राप्त करें (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त होकर हम सौ वर्ष तक आनन्द प्रसन्न युक्त रहें ॥ २७७ ॥

उषः कालमें उठनेसे सौ वर्षकी आयु प्राप्त हो सकती है । उषा दीर्घायु प्राप्त करनेके मार्गको ठीक रीतिसे बताती है । (अया देवहितं वाजं सनेम) उषः कालमें उठनेसे इंद्रियोंके लिये हित करनेवाला बल प्राप्त होता है जिससे सब इंद्रियां अच्छी रहती हैं और दीर्घायु भी प्राप्त हो सकती है ।

शन्तातिः । पवमानः । गायत्री ।

२७८ पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये । अथर्व ६।१९।२

(क्रत्वे, दक्षाय, जीवसे) कर्म, बल और दीर्घ आयुके लिए (अथो अरिष्टतातये) और कल्याणके विस्तारके लिए (पवमानः मा पुनातु) पवित्र करनेवाला देव मुझे पवित्र करे ॥ २७८ ॥

कर्तृत्व शक्ति, बल, दीर्घायु तथा आपत्तिको दूर करनेके लिये सोमरस सहायक होता है ।

अंगिराः । पृथिव्यग्नी । पंक्तिः ।

२७९ पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः ।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुष्प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥
अथर्व. ४।३९।२

(पृथिवी धेनुः) भूमि गाय है, (तस्याः अग्निः वत्सः) उसका अग्नि बछडा है, (सा अग्निना वत्सेन) वह भूमि अग्निरूपी बछडेसे (इषं ऊर्जं कामं दुहां) अन्न और बल इच्छाके अनुसार देवे, और (प्रथमं आयुः) उत्तम आयु (प्रजां पोषं रयिं) सन्तान पुष्टि और धन प्रदान करे, (स्वाहा) मैं आत्मसमर्पण करता हूं । २७९

भूमि धेनु है, उसका पुत्र अग्नि है । इसमें यज्ञ करनेसे अन्न, बल, दीर्घ आयु, प्रजा, पुष्टि और धन प्राप्त होता है । इससे मैं स्वाहा करके यज्ञ करता हूं ।

अंगिराः प्रचेताः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२८० अग्निः प्रातः सवने पात्वस्मान्
वैश्वानरो विश्वकृद्विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधातु
आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥ अथर्व. ६।४७।१

(वैश्वानरः) सब मनुष्योंको आगे ले चलनेवाला (विश्वकृत्) सम्पूर्ण जगत्को रचनेवाला, (विश्वशंभूः) सबका कल्याण करनेवाला (अग्निः) अग्नि (प्रातः सवने अस्मान् पातु) प्रातः कालके यज्ञमें हमारी रक्षा करे, (सः पावकः) वह पवित्र करनेवाला अग्नि (नः द्रविणे दधातु) हमें धनोंमें स्थापित करे, तथा हम (सह-भक्षाः) एक साथ खानेवाले होकर (आयुष्मंतः स्याम) दीर्घायुवाले हों ॥ २८० ॥

सहभक्षाः आयुष्मन्तः स्याम— एक साथ खानेवाले होकर हम दीर्घायुवाले हों। एकतासे बल बढता है, और बलसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

अंगिराः प्रचेताः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्।

२८१ विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मान्
अस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो
वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ अथर्व. ६।४७।२

(विश्वेदेवाः मरुतः इन्द्रः अस्मान्) सम्पूर्ण देव, मरुत् और इन्द्र हमें (अस्मिन् द्वितीये सवने) इस दूसरे सवनमें (न जह्युः) न छोडें। (प्रियं वदन्तः आयुष्मन्तः) प्रिय बोलनेवाले तथा दीर्घायुवाले होकर (वयं) हम (एषां देवानां सुमतौ स्याम) इन देवोंकी सुमतिमें रहें अर्थात् उनका उत्तम आशीर्वाद हमें मिले॥ २८१॥

हम आपसमें प्रिय भाषण करें। देवोंकी अच्छी बुद्धि प्राप्त करें और दीर्घायु प्राप्त करें।

अंगिराः। जंगिडमणिः। अनुष्टुप्।

२८२ कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः।
अथो सहस्वान् जंगिडः
प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ अथर्व. १९।३४।४

(अयं कृत्यादूषणः एव) यह मणि विनाशक शक्तिको दूर करनेवाला (अथ) और (अरातिदूषणः) शत्रुओंको दूर करनेवाला है। (अथ सहस्वान् जंगिडः) और यह सामर्थ्यवान् जंगिडमणि (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयु बढावे॥ २८२॥

जंगिडमणि विनाशक शक्तिको दूर करता है, शत्रुको दूर करता है, सामर्थ्य बढाता है और आयुष्य दीर्घ करता है।

शौनकः (संपत्कामः)। अग्निः। ककुम्मती बृहती।

२८३ मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि
सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम्॥
अथर्व. ७।८२।२

(अग्रे मयि क्षत्रेण वर्चसा बलेन सह अग्निं गृह्णामि) पहिले मैं अपने अन्दर क्षात्रशौर्य, ज्ञानके तेज और बलके साथ रहनेवाले अग्निका ग्रहण करता हूं, (मयि प्रजां) अपने अन्दर प्रजाको (मयि आयुः) अपने अन्दर आयुको (मयि अग्निं) अपने अन्दर अग्निको (दधामि) धारण करता हूं॥ २८३॥

अग्नि मुझे सुसंतान, और दीर्घायु देता है। इसलिये मैं क्षात्रबल, तेज और सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये यज्ञसे अग्निकी उपासना करता हूं।

शुक्रः। कृत्यादूषणम्। जगतीगर्भा त्रिष्टुप्।

२८४ ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं
विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो
बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि॥
अथर्व. ८।५।१९

(सर्वे विश्वे देवाः) सब देव (यत् न अतिविध्यन्ति) जिसका अतिक्रमण नहीं कर सकते, (तत् उग्रं बहुलं ऐन्द्राग्नं बृहत् वर्म) वह वीर बडा इन्द्र और अग्निका बडा कवच (मे तन्वं सर्वतः त्रायतां) मेरे शरीरकी सब ओरसे रक्षा करें (यथा) जिससे मैं (जरदष्टिः) वृद्धावस्था तक कार्य करनेवाला होकर (आयुष्मान् असानि) दीर्घायु होऊं॥ २८४॥

कवच शरीरका संरक्षण करता है। मैं वृद्धावस्थातक अच्छी तरह जीवित रह कर दीर्घायुषी बनूंगा, ऐसा मनका निश्चय करना चाहिये।

शुक्रः। इन्द्रः। विराट् त्रिष्टुप्।

२८५ अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णं
इमं देवासो अभि संविशध्वम्।
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय
आयुष्मान् जरदष्टिर्यथासत्॥ अथर्व. ८।५।२१

(अस्मिन् इन्द्रः नृम्णं नि दधातु) इसमें इन्द्र बल स्थापित करे, (देवासः इमं अभि संविशध्वं) देव इसमें प्रविष्ट हों, (यथा) जिससे (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिए (आयुष्मान् जरदष्टिः असत्) दीर्घ जीवो और वृद्धावस्था तक सुदृढ रहे॥ २८५॥

मानव शरीरमें अंगों और अवयवोंमें देवोंके अंश आकर रहते हैं। वे शरीरको सौ वर्षतक जीवन चलानेकी सहायता करें। वृद्धावस्थामें भी शरीर अच्छा कार्यक्षम रहे।

भरद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

२८६ प्रत्यंचमर्कमनयं शचीभिः
आदित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम
मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ अथर्व. २०।६३।३

(शचीभिः प्रत्यंचं अर्कं अनयन्) अपनी शक्तियोंके साथ वे सूर्यको इधर लाये (आत् इत् इषिरां स्वधां पर्यपश्यन्) इसके पश्चात् प्रिय स्वधाको उन्होंने देखा (अया देवहितं वाज सनेम) इससे देवोंके रखे हुए बलको उन्होंने प्राप्त किया, हम (सु-वीराः शतहिमाः मदेम) अच्छे पुत्रपौत्रोंके साथ सौ वर्ष आनन्दसे रहें ॥ २८६ ॥

उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंके साथ सौ वर्षतक अच्छी तरह आनंदके साथ रहें।

शम्भुः। जरिमा, आयुः। जगती।

२८७ तुभ्यमेव जरिमन्वर्धतामयं मेममन्ये
मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे
मित्र एनं मित्रियात्पात्वंहसः॥
अथर्व. २।२८।१

हे (जरिमन्) वृद्धावस्था! (तुभ्यं एव अयं वर्धतां) तेरे लिए ही यह मनुष्य बढे, (इमं ये अन्ये शतं मृत्यवः) इसको जो ये सौ अपमृत्यु हैं, (मा हिंसिषु) मत हिंसित करें। (प्र-मनाः माता पुत्रं उपस्थे इव) प्रसन्न मनवाली माता पुत्रको जैसे गोदीमें लेती है, उसी प्रकार (मित्रः मित्रियात् एनसः एनं पातु) मित्र मित्र सम्बन्धी पापसे इसको बचावे ॥ २८७ ॥

माता जैसे पुत्रका बचाव करती है, उस तरह वृद्धावस्था मनुष्यके शरीरका संरक्षण करे, इसको दीर्घ आयु तक ले जावे और कार्यक्षम रखे।

शम्भुः। जरिमा, आयुः। त्रिष्टुप्।

२८८ मित्र एनं वरुणो वा रिशादा
जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान्
विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति॥
अथर्व. २.२८।२

(मित्रः रिशादसः वरुणः वा) मित्र और शत्रुनाशक वरुण (संविदानौ एनं जरामृत्युं कृणुतां) दोनों मिलकर इसको वृद्धावस्थाके पश्चात् मरनेवाला करें। (होता वयुनानि विद्वान्) दाता और सब कर्मोंको यथावत् जाननेवाला अग्नि (तत् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति) इसे सब देवोंके जन्मोंको कहता है ॥ २८८ ॥

मित्र तथा वरुण इस मनुष्यको वृद्ध अवस्थातक सुखसे ले जांय। मित्र तथा वरुण ये दो प्राण अपान हैं। इनकी सुस्थितिसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

शम्भुः। जरिमा। त्रिष्टुप्।

२८९ त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां
ये जाता उत वा ये जनित्राः।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो
मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः।
अथर्व. २।२८।३

(ये जाताः उत वा ये जनित्राः) जो जन्मे हैं और जो जन्मनेवाले हैं, उन (पार्थिवानां पशूनां त्वं ईशिषे) पृथ्वीके ऊपरके प्राणियोंका तू स्वामी है। (इमं प्राणः मा अपानः च मा हासीत्) इसको प्राण और अपान न छोडें, (मित्राः इमं मा वधिषु) मित्र इसे न मारें, (मा अमित्राः) शत्रु भी न मारें ॥ २८९ ॥

शत्रु और मित्र इस मनुष्यको न मारें। प्राण और अपान इस मनुष्यको न छोडें अर्थात् दीर्घ कालतक इसके शरीरमें योग्य रीतिसे कार्य करके इसको दीर्घायु बनावें।

शम्भुः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

२९० द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता
जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे
प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ।

अथर्व. २।२८।४

(द्यौः पिता पृथिवी माता संविदाने) द्यौ पिता और पृथ्वी माता मिलकर (त्वा जरामृत्युं कृणुतां) तुझे वृद्धावस्थाके बाद मरनेवाला करें, (यथा अदितेः उपस्थे) जिससे मातृभूमिकी गोदमें (प्राणापानाभ्यां गुपितः) प्राण और अपानसे सुरक्षित होकर तू (शतं हिमाः जीवाः) सौ वर्षतक जीवित रह ॥ २९० ॥

द्युलोक और पृथिवी अर्थात् यह संपूर्ण विश्व सहायता करके इस मनुष्यको दीर्घजीवी बनावे । प्राण और अपानसे यह मनुष्य संरक्षित होकर सौ वर्षतक जीवित रहे ।

शम्भुः । मित्रावरुणौ । भुरिक् ।

२९१ इममग्न आयुषे वर्चसे नय
प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ
विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥

अथर्व. २।२८।५

हे (अग्ने मित्र वरुण राजन्) अग्ने, मित्र और वरुण राजा ! (प्रियं रेतः) प्रिय भोग और वीर्यका बल देकर (इमं आयुषे वर्चसे नय) इसको दीर्घ आयुष्य और तेज प्राप्तिके लिए ले चल, हे (अदिते) आदि शक्ति ! तू (माता इव अस्मै शर्म यच्छ) माताके समान इसे सुख दे, हे विश्वे देवो ! (यथा जरदष्टिः असत्) यह मनुष्य जिससे वृद्धावस्था तक जीवित रहे वैसी सहायता करो ॥ २९१ ॥

वीर्यका संवर्धन करके दीर्घ आयुष्य और तेज प्राप्त करना चाहिये । माता जैसे पुत्रका पालन करती है । इस तरह सृष्टि रूपी माता इस मानवको वृद्धावस्था तक के जानेमें सहायता करे ।

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९२ यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य
प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३५।१

(ऋतस्य प्रथमजाः प्रजापतिः) ऋत नियमका पहला प्रवर्तक प्रजापति (ब्रह्मणे यं ओदनं अपचत्) ब्रह्मके लिए जिस अन्नको पकाता रहा, (यः लोकानां विधृतिः) जो लोकोंको विशेषरूपसे धारण करता है, और (न अभिरेषात्) जो कभी किसीको हानि नहीं पहुंचाता (तेन ओदनेन मृत्युं अतितराणि) उस अन्नसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९२ ॥

अन्नसे मानवोंके शरीरोंकी धारणा और पुष्टि होती है । अतः यह अन्न योग्य रीतिसे पकाना चाहिये । इस योग्य रीतिसे पकाये अन्नसे कोई हानि नहीं होती और इसके सेवनसे मृत्यू दूर किया जा सकता है ।

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९३ येनातरन्भूतकृतोऽति मृत्युं
यमन्वविन्दन्तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३५।२

(येन भूत-कृतः मृत्युं अतितरन्) जिससे भूतोंके बनानेवाले मृत्युके पार हो गए (यं तपसा श्रमेण अन्वविन्दन्) जिसे तप और परिश्रमसे प्राप्त किया (यं पूर्वं ब्रह्म ब्रह्मणे पपाच) जिसको पहले ब्रह्मने ब्रह्मके निमित्त पकाया (तेन ओदनेन मृत्युं अति तराणि) इस अन्नसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९३ ॥

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । भुरिज्जगती ।

२९४ यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं
यो अन्तरिक्षमा पृणाद्रसेन ।
यो अस्तभ्नाद्दिवमूर्ध्वो महिम्ना
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३५।३

(यः विश्वभोजसं पृथिवीं दाधार) जो सबको भोजन देनेवाली पृथ्वीको धारण करता है, (यः रसेन अन्तरिक्षं आ पृणात्) जो रससे अन्तरिक्षको भर देता है, (यः महिम्ना ऊर्ध्वः दिवं अस्तभ्नात्) जो अपनी महिमासे ऊपर ही द्युलोकको धारण किए हुए है । (तेन ओदनेन मृत्युं अति तराणि) उस अन्नसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९४ ॥

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९५ यः प्राणदः प्राणदवान्बभूव
यस्मै लोकाः घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मती प्रदिशो यस्य सर्वाः
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व ४।३५।५

(यः प्राणदः प्राण-द-वान् बभूव) जो जीवन देनेवाला, प्राण देनेवालोंका स्वामी है, (यस्मै घृतवन्तः लोकाः क्षरन्ति) जिसके लिए घृतयुक्त लोक रस देते हैं, (यस्य सर्वाः प्रदिशः ज्योतिष्मतीः) जिसकी सब दिशा और उपदिशायें तेजवाली हैं, (तेन ओदनेन मृत्युं अतितराणि) उस अन्नसे मैं मृत्युको पार करू ॥ २९५ ॥

घी भोजनमें अवश्य होना चाहिये । घी खानेसे तेजस्विता बढती है और मृत्यु दूर किया जा सकता है ।

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९६ यस्मात्पक्वादमृतं सम्बभूव
यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन्वेदा निहिता विश्वरूपाः
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३५।६

(यस्मात् पक्वात् अमृतं सं बभूव) जिस परिपक्वसे अमृत उत्पन्न हुआ, (यः गायत्र्याः अधिपतिः बभूव) जो गायत्रीका अधिपति हुआ (यस्मिन् विश्वरूपाः वेदाः निहिताः) जिसमें सब प्रकारके वेद निहित हैं, (तेन ओदनेन अति तराणि मृत्युं) उस अन्नसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९६ ॥

उत्तम परिपक्व अन्नसे अमरपन लानेवाला रस उत्पन्न होता है । जिस अन्नमें सब प्रकारके ज्ञान देनेवाले वेद रहते हैं, उस अन्नसे मृत्युको दूर करू । अन्न स्मरण शक्ति बढानेवाला होता है । इस अन्नसे अपनी स्मरण शक्ति बढानी चाहिये । और आयु बढानेका उपाय करना चाहिये ।

प्रजापतिः । अस्तृतमणिः । पंचपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् ।

२९७ प्रजापतिष्ट्वा बध्नात्प्रथमं
अस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च
बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥

अथर्व. १९।४६।१

(प्रजापतिः) प्रजापतिने इस (प्रथमं कं अस्तृतं) मुख्य और सुख देनेवाले अस्तृत मणिको (वीर्याय) बलके लिए (त्वा बध्नात्) तुझे बांधा, (तत् ते आयुषे) उसी मणिको तेरी आयुके लिए (वर्चसे ओजसे) तेजके लिए, सामर्थ्यके लिए (बलाय च) और बलके (बध्नामि) बांधता हू, (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अस्तृत मणि तेरी रक्षा करे ॥ २९७ ॥

अस्तृत मणिको शरीर पर बांधनेसे वीर्य, आयु, ओज और बल मनुष्यका बढता है ।

अस्तृत मणि तैयार करनेकी विद्याकी खोज करनी चाहिये । ' अस्तृत ' का अर्थ ' न थकनेवाला ' है ।

भृगुः । अग्निः । भुरिगार्षी पंक्तिः ।

२९८ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः
पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद्
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ अथ. १२।२।६

हे अग्ने ! (आदित्याः रुद्राः वसवः) आदित्य, रुद्र और वसु (वसु-नीतिः, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पतिः) धन देनेवाला ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय त्वा पुनः अधात्) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिए तुझे पुनः स्थापित करते हैं ॥ २९८ ॥

भृगुः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

२९९ असिन्वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्रण
आयूंषि तारिषत् ॥ अथर्व. १२।२।११

(अस्मिन् संकसुके अग्नौ) इस विदाहक अग्निमें (वयं रिप्राणि मृज्महे) हम अपने सब दोषोंको शुद्ध करते हैं, इससे (यज्ञियाः शुद्धाः अभूम) हम पवित्र और शुद्ध होते हैं, वह (नः आयूंषि प्र तारिषत्) हमारी आयु बढावे ॥ २९९ ॥

यज्ञ करनेसे सब दोष दूर होते हैं। इस तरहसे प्राप्त हुई पवित्रता आयुको बढाती है।

भृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०० इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि
मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो
मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ अथ. १२।२।२३

(जीवेभ्यः इमं परिधिं दधामि) जीवोंके लिए मैं यह मर्यादा देता हूं, (एषां अपरः एतं अर्थं मा नु गात्) इनमेंसे कोई एक भी इस अर्थके पार कभी न जावे, (शतं शरदः पुरूचीः जीवन्तः) अति दीर्घ सौ वर्षोंका जीवन अनुभव करते हुए (पर्वतेन मृत्युं तिरो दधतां) पर्वतके द्वारा मृत्युको अन्तर्हित रखें ॥ ३०० ॥

मानवोंकी आयुष्य मर्यादा परमेश्वरने निश्चित की है। कोई मनुष्य नीच बनकर इस आयुरूपी धनको न खो बैठे। सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करें और पृष्ठवंशरूपी पर्वतके नीचे मृत्युको दबाकर रखें। पृष्ठवंशको सीधा-सरल-रखनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

भृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०१ आ रोहतायुर्जरसं वृणाना
अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सु जनिमा स जोषाः
सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥ अथ. १२।२।२४

(जरसं वृणानाः आयुः आरोहत) वृद्धावस्थाको स्वीकार करते हुए दीर्घ आयुको प्राप्त करो, (अनुपूर्वं यतमानाः यति स्थ) एकके पीछे दूसरा सिद्धि तक प्रयत्न करता रहे, यत्नमें रहे (सुजनिमा सजोषाः त्वष्टा) उत्तम जन्मवाला उत्साहवाला त्वष्टा (तान् व. जीवनाय सर्वं आयुः नयतु) आप सबको दीर्घ जीवनके लिए पूर्ण आयुतक ले जावे ॥ ३०१ ॥

आयु वृद्ध होनेतक शरीरको अच्छी तरह सुरक्षित रखो। अनुकूलताके अनुसार प्रयत्न करके दीर्घ आयु प्राप्त करें।

भृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०२ यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति
यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहाति
एवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥
अथ. १२।२।२५

(यथा अहानि अनुपूर्वं भवन्ति) दिन जिस प्रकार एक के पीछे दूसरे आते हैं (यथा ऋतवः ऋतुभिः साकं यन्ति) जैसी ऋतु ऋतुओंके पीछे चलती हैं, (यथा पूर्वं अपरः न जहाति) जैसे पहिलेको दूसरा नहीं छोडता, हे धाता ! (एवा एषां आयूंषि कल्पय) इसी प्रकार इनकी आयु निश्चित कर ॥ ३०२ ॥

जैसे दिन एकके पीछे दूसरा क्रमसे आता हैं, जिस प्रकार एक ऋतु दूसरेके पश्चात् आता ही है, जिस तरह आदमीके पीछे आदमी जाता रहता है, इस प्रकार पूर्ण आयुष्यके दिन एकके पीछे एक आते जांय और पूर्ण आयु प्राप्त हो। बीचमें किसी कारण विघ्न उत्पन्न न हो।

भृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०३ वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं
शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि
शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥ अथ. १२।२।२८

(शुद्धाः शुचयः पावकाः भवन्तः) शुद्ध पवित्र और मलरहित होकर (वर्चसे वैश्वदेवीं आरभध्वं) कल्याणके लिए विश्वदेवकी उपासना आरम्भ करो, (दुरिता पदानि अतिक्रामन्तः) पापके स्थानोंको दूर करते हुए (सर्ववीराः शतं हिमाः मदेम) सब वीरोंके समेत हम सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें ॥ ३०३ ॥

आचरणसे शुद्ध बनो, तेजस्वी बननेके लिये दिव्य विद्याको सीखो, पाप के आचरणको दूर करो और उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्षकी आयुको प्राप्त करो ।

भृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०४ आसीना मृत्युं नुदता सधस्थे
अथ जीवासो विदथमा वदेम ।
अथ. १२।२।३०

(आसीना मृत्युं नुदत) आसनादि करते हुए मृत्युको दूर करो, (अथ जीवासः सधस्थे विदथं आवदेम) और यदि जीवोगे तो अपने घरमें यज्ञकी बात करोगे ॥ ३०४

मृत्युको दूर करनेका यत्न करो । जीवित रह कर यज्ञ करनेकी इच्छा करो । यज्ञसे दीर्घायु प्राप्त होती है ।

भृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०५ व्याकरोमि हविषाहमेतौ
तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि
दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥
अथर्व. १२।२।३२

(अहं एतौ हविषा व्याकरोमि) मैं इन दोनोंको हविसे विशेष उन्नत करता हूँ (ब्रह्मणा अहं विकल्पयामि) ज्ञानसे मैं इसकी विशेष कल्पना करता हूँ, (पितृभ्यः अजरां स्वधां कृणोमि) पितरोंके लिए मैं अविनाशी स्वकीय धारक शक्ति बढाता हूँ, (इमान् दीर्घेण आयुषा सं सृजामि) इनको दीर्घायुसे युक्त करता हूँ ॥ ३०५ ॥

मैं यज्ञ करता हूं, उस यज्ञमें उत्तम हविर्द्रव्योंका हवन करता हूं और इस यज्ञसे दीर्घ आयु प्राप्त करता हूं ।

भृगुः । अग्निः । जगती ।

३०६ जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने
पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिम्
उषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥ अथर्व. १२।२।४५

हे अग्ने ! (त्वं जीवानां आयुः प्र तिर) तू जीवोंकी आयु निर्विघ्नता के साथ पार कर दे, तथा (ये मृताः पितॄणां लोकं अपि गच्छन्तु) जो मर गये हैं, वे पितृलोकमें जावें । (सुगार्हपत्यः अरातिं वितपन्) उत्तम गार्हपत्य अग्नि शत्रुको ताप देवे (उषां उषां अस्मै श्रेयसीं धेहि) प्रत्येक उषःकाल इसके लिए कल्याणमय कर देवे ॥ ३०६ ॥

जीवित मनुष्योंको यज्ञका अग्नि दीर्घ आयु देवे । गार्हपत्य अग्नि प्रत्येक घरमें प्रदीप्त होकर शत्रुको दूर करे । प्रत्येक उषःकाल इस यज्ञकर्ताको कल्याण देनेवाला हो ।

भृगुः । अग्निः । पंचपदा ककुम्मती ।

३०७ वाचस्पते पृथिवी नः स्योना
स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥
अथर्व. १३।१।१७

हे (वाचस्पते) वाणीके स्वामिन् अग्ने ! (नः पृथिवी स्योना) हमारे लिए पृथिवी सुखकर हो, (योनिः स्योना) घर कल्याणकारी हो, (नः तल्पा सुशेवा)

हमारे लिए बिछौने सुख कर हों, (इह एव नः सख्ये प्राणः अस्तु) यहीं पर हमारी मित्रतामें प्राण रहें, हे परमेष्ठिन् ! (तं त्वा अग्निः आयुषा वर्चसा परि दधातु) उस तुझे यह अग्नि आयु और तेजसे युक्त करे ॥ ३०७ ॥

पृथिवी, घर, बिछोना सुखकर हों। आपसकी मित्रतामें सुखकारक जीवन हो। हम दीर्घ आयु और तेजस्वितासे युक्त होकर यहां रहें।

भृगुः (आयुष्कामः)। दर्भः। अनुष्टुप्।

३०८ शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥
अथर्व. १९।३२।१

(शतकाण्डः दुश्च्यवनः) सौ काण्डोंवाला, जिसका हटाना कठिन है, (सहस्रपर्णः) हजारों पत्तोंवाला (उत्तिरः) ऊपर आनेवाला (दर्भः यः उग्रः ओषधिः) दर्भ यह एक उग्र औषधि है (तं ते आयुषे बध्नामि) उसको तुझे आयु बढानेके लिए बांधता हूं ॥ ३०८ ॥

दर्भ आयु बढानेवाली औषधि है। उसको शरीर पर बांधनेसे आयु बढती है।

भृगुः। दर्भः। आस्तारपंक्तिः।

३०९ तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत्
तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ अथर्व १९।३३।४

(तीक्ष्णः राजा) वीर राजा (विषासहिः) शत्रुको हरानेवाला (रक्षो हा) राक्षसोंको मारनेवाला (विश्व-चर्षणिः) सब मानवोंका हित करनेवाला (देवानां ओजः) देवोंका यह सामर्थ्य है (तं ते) उसे तेरे शरीर पर (जरसे स्वस्तये बध्नामि) वृद्धावस्थाकी प्राप्तिके लिए और कल्याणके लिए बांधता हूं ॥ ३०९ ॥

दर्भ शत्रुओंका पराभव करनेवाला, राक्षसोंको मारनेवाला, मानवोंका हित करनेवाला दैवी शक्तिसे युक्त है। उसको शरीरपर बांधनेसे वृद्धावस्था तककी दीर्घ आयु मिलती है और कल्याण होता है।

भृगुः। दर्भः। अनुष्टुप्।

३१० दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥
अथ. १९।३२।३

हे औषधे ! (ते तूलं दिवि) तेरी चोटी आकाशमें हैं, (पृथिव्यां निष्ठितः असि) पृथ्वीमें तू स्थिर है, (त्वया सहस्रकाण्डेन) तुझ सहस्रकाण्डसे युक्तके द्वारा (आयुः प्रवर्धयामहे) हम अपनी आयु बढाते हैं॥३१०॥

सहस्र काण्डोंसे युक्त दर्भको शरीर पर बांधनेसे आयु बढती है।

भृगुः। दर्भः। जगती।

३११ सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वान्
अपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो
देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥
अथर्व. १९।३३।१

(सहस्र अर्घः) हजारों प्रकारसे मूल्यवान् (शत-काण्डः) सौ काण्डोंवाला (पयस्वान्) दूधसे परिपूर्ण (अपां अग्निः) जलोंमें रहनेवाला अग्नि (वीरुधां राज-सूयं) औषधियोंका राजसूय यज्ञ जैसा (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (नः विश्वतः परिपातु) हमें चारों ओरसे सुरक्षित रखे, (देवः मणिः नः आयुषा सं सृजाति) यह दिव्य मणि हमें आयुके साथ संयुक्त करे ॥ ३११ ॥

दर्भका मणि शरीर पर बांधनेसे सब प्रकारसे संरक्षण मिलता है और आयुको बढाता है।

भृगुः। आंजनम्। अनुष्टुप्।

३१२ आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदांजन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥
अथर्व. १९।४४।१

(आयुषः प्रतरणं असि) तू आयुका बढानेवाला है, (विप्रं भेषजं उच्यसे) तू विशेष स्फूर्तिवाला औषध कहलाता है, (तत् आंजन ! त्वं शंताते) वह हे

आंजन ! तू शान्ति बढानेवाला है, हे (आपः) जलो ! (अभयं शं कृतम्) मेरे लिए निर्भयता और सुख करो ॥ ३१२ ॥

अंजन एक उत्तम औषध है। वह शान्ति देता है और निर्भयता उत्पन्न करता है।

भृगुः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३१३ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः
सायं सायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि
इन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥

अथर्व. १९।५५।४

(प्रातः प्रातः) प्रति प्रातःकाल (अग्निः नः गृहपतिः) अग्नि हमारा गृहपति है, वह (सायं सायं सौमनसस्य दाता) प्रत्येक सायंकालमें उत्तम मनका दाता होता है, वह (वसोः वसोः वसुदानः) हमें प्रत्येक उत्तम वस्तुका देनेवाला हो, तथा (एधि) बढे, (त्वा इन्धानाः शतं हिमाः ऋधेम) तुझे प्रदीप्त करनेवाले हम सौ वर्ष समृद्ध होते रहें ॥ ३१३ ॥

अग्निमें यज्ञ किया जाता है। प्रत्येक घरमें यह यज्ञाग्नि होता है। इसको प्रदीप्त करके उसमें हवन करनेवाले सौ वर्ष जीवित रहते हैं।

ऋषिः- उन्मोचनः आयुष्कामः । देवता- आयुः । अनुष्टुप् ।

३१४ आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः
पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥ अथ. ५।३०।१

(ते आवतः आवतः) तेरे समीपसे समीप और (ते परावतः आवतः) तेरेसे बहुत दूर रहनेवाले (ते असुं बध्नामि) तेरे प्राणको मैं दृढ बांधता हूं, (इह एव भव) यहीं रह (पूर्वान् मा नु गाः) पूर्वजोंके पीछे न जा, (मा पितॄन् अनु गाः) पितरोंके पीछे न जा अर्थात् शीघ्र मत मर ॥ ३१४ ॥

उन्मोचनः । आयुः । अनुष्टुप् ।

३१५ यत्ते माता यत्ते पिता
जामिर्भ्राता च सर्जतः ।
प्रत्यक् सेवस्व भेषजं
जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥ अथर्व. ५।३०।५

(यत् ते माता) जिस औषधिको तेरी माता (यत् ते पिता) जिसे तेरे पिता (जामिः भ्राता च सर्जतः) तेरी बहिनें व भाई बनाते हैं, उस (भेषजं प्रत्यक् सेवस्व) औषधिका ठीक प्रकारसे सेवन कर, (त्वा जरदष्टिं कृणोमि) मैं तुझे वृद्धावस्था तक रहनेवाला बनाता हूं ॥ ३१५ ॥

योग्य औषधिका योग्य रीतिसे सेवन करनेसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

उन्मोचनः । आयुः । अनुष्टुप् ।

३१६ इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥

अथ. ५।३०।६

हे पुरुष ! (सर्वेण मनसा सह इह एधि) सम्पूर्ण मनके साथ यहां रह, (यमस्य दूतौ मा अनु गाः) यमके दूतोंके पीछे मत जा, (जीवपुराः अधि इहि) जीवकी पुरीमें निवास कर ॥ ३१६ ॥

अपने मनकी सम्पूर्ण शक्ति रोगनिवृत्तिमेंही विश्वाससे लगाई जावे, कोई मनुष्य यम दूतोंके वशमें न जावे, और इस शरीरमें- अर्थात् जीवात्माकी नगरीमें दीर्घकाल तक रहे।

उन्मोचनः । आयुः । त्रिष्टुप् ।

३१७ मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अंगज्वरं तव ॥

अथ. ५।३०।८

(मा बिभेः न मरिष्यसि) मत डर, तू नहीं मरेगा, (जरदष्टिं त्वा कृणोमि) वृद्ध अवस्था तक रहनेवाला तुझे मैं करता हूं, (तव अंगेभ्यः अंगज्वरं यक्ष्मं अहं निरवोचं) तेरे अंगोंसे शरीरके ज्वरको और क्षयरोगको मैं बाहर निकाल देता हूं ॥ ३१७ ॥

हे मनुष्य ! तेरे शरीरसे रोगको मैं दूर करता हूं। तू मत डर, तू मरेगा नहीं। मैं तुझे पूर्ण आयुतक जीवित रहनेवाला बनाता हूं। मनमें ऐसा विश्वास रखनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

उन्मोचनः । आयुः । त्रिष्टुप् ।

३१८ अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात्
कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥ अथ. ५।३०।११

(अयं अग्निः उपसद्यः) यह अग्नि उपासनाके योग्य है, (इह ते सूर्यः उदेतु) यहां तेरे लिए सूर्य उदय होवे, (गंभीरात् कृष्णात् तमसः मृत्योः चित्) गहरे काले अन्धकार रूपी मृत्युसे भी (परि उदेहि) परे उदयको प्राप्त हो ॥ ३१८ ॥

मृत्युसे दूर रहो । घरमें अग्नि प्रदीप्त करके उसमें हवन करो । सूर्यका उदय होनेपर उसके प्रकाशमें रहो । इससे मृत्युका भय दूर होगा और दीर्घ आयु मिलेगा ।

उन्मोचनः । आयुः । विराट् प्रस्तारपंक्तिः ।

३१९ प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं
समीरय तन्वा सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्
मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥ अथ. ५।३०।१४

हे अग्ने ! (प्राणेन चक्षुषा सं सृज) प्राण और चक्षुसे संयुक्त कर (तन्वा बलेन इमं सं ईरय) शरीर और बलसे इसको प्रेरित कर (अमृतस्य वेत्थ) तू अमृतको जानता है, (मा नु गात्) तेरा प्राण न चला जावे, (भूमिगृहः मा नु भुवत्) भूमिको घर करनेवाला न हो अर्थात् मरकर मिट्टीमें न मिल ॥ ३१९ ॥

' भूमिगृह ' भूमिमें गाडा हुआ न हो । अर्थात् तू न मर । प्राण, आंख शरीर इनके बल बढाओ और दीर्घायु रूपी अमरत्वको प्राप्त करो ।

उन्मोचनः । आयुः । अनुष्टुप् ।

३२० मा ते प्राण उपदसन्
मो अपानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥
अथ. ५।३०।१५

(ते प्राणः मा उपदसत्) तेरा प्राण नष्ट न होवे, (ते अपानः मो अपि धायि) तेरा अपान न आच्छादित होवे, (अधिपतिः सूर्यः रश्मिभिः त्वा उत् आयच्छतु) अधिपति सूर्य किरणोंसे तुझे ऊपर उठावे ॥ ३२० ॥

भावार्थ— तेरा प्राण और अपान तेरे शरीरमें दृढतासे रहे, सूर्य अपनी किरणोंसे तुझे ऊपर उठावे अर्थात् जीवन देवे ।

उन्मोचनः । आयुः । त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

३२१ अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा
पुरा जरसो मृथाः ॥ अथ. ५।३०।१७

(अयं अपराजितः लोकः देवानां प्रियतमः) यह पराजित न होनेवाला लोक देवोंको प्यारा है, (यस्मै मृत्यवे दिष्टः पुरुषः त्वं इह जज्ञिषे) जिस लोककी मृत्युको निश्चित प्राप्त होनेवाला तू पुरुष यहां उत्पन्न होता है, (सः च त्वा अनु ह्वयामसि) वह तुझे बुलाता हूं, और कहता हूं, कि (जरसः पुरा मा मृथाः) बुढापेसे पहले मत मर ॥ ३२१ ॥

तू देवोंका प्रिय है, यद्यपि तू इस मृत्युलोकमें जन्म लेनेके कारण मरनेवाला है, तथापि हम यह ही कहते हैं कि तू वृद्धावस्थाके पहिले न मर ।

द्रुह्वणः । निर्ऋतिः । जगती ।

३२२ यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध
दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् ।
तत्ते विष्याम्यायुषे वर्चसे बलाय
अदोमदमन्नमद्धि प्रसूत ॥ अथ. ६।६३।१

(देवी निर्ऋतिः) दुर्गतिने (यत् यत् अविमोक्य दाम) जो जो सहज ही में न छूटनेवाला बन्धन (ते ग्रीवासु आ बबन्ध) तेरी गर्दन में बांधा है, वह (ते आयुषे बलाय वर्चसे विष्यामि) तेरी आयु, बल और तेजस्विताके लिए मैं खोलता हूं । अब तू (प्रसूतः अदोमदं अन्नं अद्धि) आगे बढकर हर्षदायक अन्नका तू भोग कर ॥ ३२२ ॥

तेरे गलेमें मृत्युका पाश बांधा है। उसको मैं खोलता हूं। अब तू मृत्युपाशसे छूटा है। तू आयु बल और तेजस्विता प्राप्त कर। और दीर्घायु होकर यहां रह।

अगस्त्यः। मेखला। अनुष्टुप्।

३२३ यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां
दीर्घायुत्वाय मेखले ॥ अथ. ६।१३३।५

(यां त्वा पूर्वे भूतकृतः ऋषयः परिबेधिरे) जिस तुझे पूर्वकालके भूतोंको बनानेवाले ऋषि बांधते रहे, (सा त्वं दीर्घायुत्वाय मां परिषजस्व) वह तू दीर्घायुके लिए मुझे आलिंगन दे ॥ ३२३ ॥

भावार्थ-- ऋषिलोग इस मेखलाको बांधते हैं, अतः यह मेखला हमें दीर्घायु प्रदान करे।

वामदेवः। दधिक्राः। अनुष्टुप्।

३२४ दधिक्राव्णो अकारिषं,
जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण
आयूंषि तारिषत् ॥ अथ. २०।१३७।३

(जिष्णोः वाजिनः दधिक्राव्णः अश्वस्य) विजयी, बलवान् दही जैसे सफेद घोडेकी स्तुति (अकारिषं) की वह (नः मुखा सुरभि करत्) हमारे मुखोंको सुगंधित करे (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओंको बढावे ॥ ३२४ ॥

मुखमें सुगंधि रहनेसे दीर्घ आयु होती है। तथा मुखमें दुर्गंधि होनेसे आयु क्षीण होती है।

नारायणः। पुरुषः। अनुष्टुप्।

३२५ यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः
प्राणं प्रजां ददुः ॥ अथ. १०।२।२९

(यः वै अमृतेन आवृतां तां ब्रह्मणः पुरं वेद) जो निश्चयसे अमृतसे परिपूर्ण उस ब्रह्मकी नगरीको जानता है, (तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माः च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः) उसको ब्रह्म और इतर देव चक्षु प्राण दीर्घायु और सन्तान देते हैं ॥ ३२५ ॥

अपना शरीर अमृतसे भरपूर भरी ब्रह्मकी नगरी है। ऐसा जो जानता है उसको उत्तम दृष्टी, प्राण अर्थात् दीर्घ आयु और उत्तम सतान प्राप्त होते हैं।

नारायणः। पुरुषः। अनुष्टुप्।

३२६ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥
अथ. १०।२।३०

(यस्याः पुरुषः उच्यते ब्रह्मणः पुरं य वेद) जिसके कारण आत्माको पुरुष कहते हैं, उस ब्रह्मकी नगरीको जो जानता है, (तं जरसः पुरा चक्षुः न जहाति, न वै प्राणः) उसे वृद्धावस्थाके पूर्व चक्षु छोडता नहीं और न प्राण छोडता है ॥ ३२६ ॥

इस शरीरको यह ब्रह्मकी देवनगरी है ऐसा जो जानता है उसके प्राण वृद्ध आयुके पूर्व उसे नहीं छोडते हैं।

कुत्सः। आत्मा। त्रिष्टुप्।

३२७ अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योः
आत्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ अथ. १०।८।४४

(अकामः धीरः अमृतः स्वयं भूः) निष्काम, धीर, अमर, स्वयंभू (रसेन तृप्तः) रससे सन्तुष्ट वह देव (न कुतश्चन ऊनः) कहींसे भी न्यून नहीं है, (तं एव विद्वान् मृत्योः न बिभाय) उससे जाननेवाला ज्ञानी मृत्युसे डरता नहीं क्योंकि (आत्मानं धीरं अजरं युवानं) वही धीर अजर युवा आत्मा है ॥ ३२७ ॥

अपना आत्मा निष्काम, बुद्धिमान, अमर, स्वयंभू, सदा तृप्त और व्यापक है ऐसा जो जानता है, उसको मृत्युका भय प्राप्त नहीं होता। क्योंकि वह अपने आत्माको बुद्धिमान, जरारहित और तरुण जानता है।

सूर्यासावित्री। आत्मा। त्रिष्टुप्।

३२८ स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि
तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं
त आयुः सविता कृणोतु ॥ अथर्व. १४।१।४७

(देव्याः पृथिव्याः उपस्थे) पृथ्वी देवीके पास (ते प्रजायै स्योनं ध्रुवं अश्मानं) तेरी सन्तानके लिए सुखदायी स्थिर पत्थर जैसा (धारयामि) आधार करता हूं,

(तं आतिष्ठ) इस पर खड़ा रह (आनुमाद्याः) आनन्दित हो, (सुवर्चाः) उत्तम तेजसे युक्त हो, और (सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु) सविता तेरी आयु लम्बी बनावे ॥ ३२८ ॥

सूर्य प्रकाश मनुष्यकी आयुको दीर्घ बनाता है ।

सूर्या सावित्री । आत्मा । अनुष्टुप् ।

३२९ पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥
अथ. १४।२।२

(आयुषा वर्चसा सह) दीर्घायुष्य और तेजके साथ (अग्निः पत्नीं पुनः अदात्) अग्निने पत्नीको पुनः प्रदान किया । (अस्याः यः पतिः) इसका जो पति है, वह (दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति) दीर्घायु बनकर सौ वर्ष जीवित रहता है ॥ ३२९ ॥

सूर्यासावित्री । दम्पती । अनुष्टुप् ।

३३० इयं नार्युपब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥
अथ. १४।२।६३

(इयं नारी पूल्यानि आवपन्तिका) यह स्त्री फूले हुए धान्यकी आहुति देती हुई (उप ब्रूते) कहती है, कि (मे पतिः दीर्घायुः अस्तु) मेरा पति दीर्घायु होवे, वह (शरदः शतं जीवाति) सौ वर्ष जीवित रहे ॥३३०॥

सूर्या सावित्री । दम्पती । अनुष्टुप् ।

३३१ इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥
अथ. १४।२।६४

हे इन्द्र ! (चक्रवाका इव) चकवा चकवीके समान (इमौ दम्पती) इस पति पत्नीको इस संसारमें प्रेरित कर, (एनौ सु-अस्तकौ प्रजया) ये दोनों उत्तम घरवाले होकर सन्तानके साथ (विश्वं आयुः व्यश्नुताम्) सब आयुका उपभोग करें ॥ ३३१ ॥

सूर्या सावित्री । दम्पती । अनुष्टुप् ।

३३२ संभले मलं सादयित्वा
कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ अथर्व. १४।२।६७

(संभले मलं सादयित्वा) संभलमें मल डालकर और (दुरितं कम्बले) पापको कम्बलमें रखकर (वयं यज्ञियाः शुद्धाः अभूम) हम यज्ञ करने योग्य शुद्ध हों, वह (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओंको दीर्घ बनावे ॥ ३३२ ॥

शुद्ध और पवित्र होनेसे आयु दीर्घ होती है ।

सूर्यासावित्री । दम्पती । त्रिष्टुप् ।

३३३ प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥
अथ. १४।२।७५

(सुबुधा बुध्यमाना) उत्तम ज्ञानयुक्त जागती रहकर (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय प्रबुध्यस्व) सौ वर्षके दीर्घ जीवनके लिए जागती रह, (गृहान् गच्छ) अपने पतिके घरको जा, (यथा गृहपत्नी असः) गृहस्वामिनी जैसी बनकर रह, (सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु) सविता तेरी आयु दीर्घ करें ॥ ३३३ ॥

सूर्य तेरी आयु दीर्घ करे ।

सव्यः । इन्द्रः । जगती ।

३३४ य उदृचीन्द्र देवगोपाः
सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥
अथ. २०।२१।११

हे इन्द्र ! (उदृचि) वेदमंत्रके पाठमें (ये देवगोपाः) तुम देवके द्वारा सुरक्षित हुए जो (ते सखायः) जो तेरे मित्र हम हैं, वे (शिवतमाः असाम) उत्तम कल्याणसे युक्त हों, (त्वां स्तोषामः) हम तेरी स्तुति करते हैं, (त्वया सुवीराः) तेरे साथ रहनेसे उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम (द्राघीयः आयुः प्रतरं दधानाः) दीर्घ आयुको अधिक लम्बी बनाकर धारण करनेवाले हों ॥ ३३४ ॥

मनुष्य अपनी दीर्घ आयुको अति दीर्घ बनाकर धारण करे और आनंदसे रहे ।

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय	१ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१.५०	.१२
अध्याय	३० मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२)	.१९
अध्याय	३२ एक ईश्वरकी उपासना	१.५०	.१२
अध्याय	३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१.५०	.१२
अध्याय	४० आत्मज्ञान-ईशोपनिषद्	२)	.३७

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

(१ से २० काण्ड पांच जिल्दोंमें)

इनमें मंत्र, अर्थ, स्पष्टीकरण और विषयवार वैदिक सूक्तियोंका संग्रह है। हरएक पाठक इनसे लाभ उठा सकता है।

प्रथम विभाग	१ से ३ काण्ड	१०)	१)
द्वितीय विभाग	४ से ६ काण्ड	१०)	१)
तृतीय विभाग	७ से १० काण्ड	१०)	२)
चतुर्थ विभाग	११ से १८ काण्ड	१०)	१)
पञ्चम विभाग	१९ और २० काण्ड (छप रहा है)	१०)	२)

एकदम सब भाग लेनेवालोंको पाचों भागोंका मूल्य ४०) रु. होगा। डा. व्य. पृथक्.

सामवेद (कौथुम शाखीयः)

सामवेदके गायनके ये ग्रंथ हैं। इनके गायन करनेसे अद्भुत मानस शान्ति प्राप्त होती है।

१ ग्रामेगेय (वेय, प्रकृति)

गानात्मकः-आरण्यक गानात्मकः

प्रथमः तथा द्वितीयो भागः ५) १)

२ ऊहगान— (दशरात्र पर्व) १) .२५

(ऋग्वेदके तथा सामवेदके मंत्रपाठोंके साथ ६७२ से ११५२ गानपर्यंत)

३ ऊहगान— (दशरात्र पर्व) .५० .१२

(केवल गानमात्र ६७२ से १०१६)

उपनिषद् भाष्य ग्रंथमाला

इन उपनिषदोंके भाष्योंमें यह बताया है कि यहां ब्रह्मज्ञानके साथ साथ उत्तम अध्यात्मविहित मानवी व्यवहार अर्थात् वैयक्तिक, सामाजिक, राजकीय तथा जागतिक व्यवहार निर्दोष रीतिसे किस तरह सिद्ध हो सकता है। यह सब तत्त्वज्ञान इन भाष्योंमें है। यह किसी अन्य ग्रंथोंमें नहीं मिलेगा। इसलिये सबको ये ग्रंथ पढने आवश्यक हैं।

१ ईश उपनिषद्	२)	.३७
२ केन उपनिषद्	१.७५	.३१
३ कठ उपनिषद्	१.५०	.२५
४ प्रश्न उपनिषद्	१.५०	.२५
५ मुण्डक उपनिषद्	१.५०	.२५
६ माण्डूक्य उपनिषद्	.५०	.१२
७ ऐतरेय उपनिषद्	.७५	.१९
८ तैत्तिरीय उपनिषद्	१.५०	.२५
९ श्वेताश्वतर उपनिषद् (छप रहा है)		

श्रीमद्भगवद्गीता

इस गीता भाष्यमें अनेक गूढ विषयोंका स्पष्टीकरण है। राज्यव्यवहारके आध्यात्मिक संकेत यहां स्पष्ट रीतिसे बताये हैं।

(हिंदी-गुजराती-मराठी-अंग्रेजी भाषाओंमें मिलेगी।)

१ पुरुषार्थबोधिनी टीका (एक जिल्दमें)—	११.५०	२.५०
,, (तीन जिल्दोंमें) अध्याय १ से ५	५)	१.२५
,, अध्याय ६ से १०	५)	१.२५
,, अध्याय ११ से १८	५)	१.२५
२ श्रीमद्भगवद्गीता लेखमाला भाग १-२ और ७	३.७५	१.२५
३ भगवद्गीता श्लोकार्धसूची	.७५	.१९
४ गीताका राजकीय तत्त्वलोचन	२)	.३७
५ श्रीमद्भगवद्गीता (केवल श्लोक और अर्थ)	.५०)	.१२
६ श्रीमद्भगवद्गीता (प्रथम भाग) लेखक श्री गणेशानंदजी	१)	.२५

गो-ज्ञान-कोश

गो-ज्ञान-कोश (प्रथम भाग)	६)	१.५०
गो-ज्ञान-कोश (द्वितीय भाग)	६)	१.५०

गौके विषयमें वेदमंत्रोंमें जो उत्तम उपदेश है वहसब इन दो विभागोंमें संग्रहित किया है। जो गौके विषयमें वेदका अमूल्य उपदेश जानना चाहते हैं वे इन भागोंको अवश्य पढें।

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट- ' स्वाध्याय मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२	.५०
३ सामवेद संहिता	३)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता– (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२	.५)

२ दैवत सहिता– (द्वितीय भाग)

अश्विनौ आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता– (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें) १६) २)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिकधर्म



नवभारतके युगपुरुष

अक्टूबर १९६२

५० नये पैसे

वर्ष ४३ # वैदिक धर्म अंक १०

क्रमांक १६५ : अक्टूबर १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

" वैदिक धर्म "

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.-' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२।	.५०
३ सामवेद संहिता	३)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	१)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये **देवता-मंत्र-संग्रह** मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेवा। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

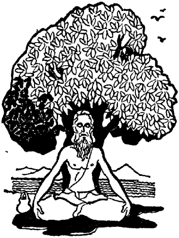
१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

वैदिकधर्म

हम श्रेष्ठ मार्गसे दूर न होवें

मा प्रगाम पथो वयं
मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥

ऋ. १०।५७।१



हे इन्द्र ! (वयं पथः मा प्रगाम) हम उत्तम मार्गसे कभी भी विचलित न हों, तथा (सोमिनः यज्ञात् मा) सुख-दायक यज्ञसे भी हम दूर न हों, (नः अन्तः अरातयः मा तस्थुः) हमारे अन्दर राग द्वेष आदि शत्रु न रहें ।

हे प्रभो ! सन्मार्ग से विपरीत हम न कभी चलें,
इस सम्पदामय यज्ञसे प्रभुवर कहीं न कभी टलें ।
विश्वमें कोई हमारा शत्रु प्रतिपक्षी न हो,
मदलोभमत्सर मोह से हारा हमारा मन न हो ॥



इस महीने वेद मुद्रणनिधिमें निम्न रकम जमा हुई—

श्री. प्रिन्सिपाल आर्ट्स सायन्स एन्ड कोमर्स कॉलेज, चालीसगांव	२४०
,, प्रिन्सिपाल आर्ट्स सायन्स कोमर्स कॉलेज, फैजपुर	१००
,, उकडभाई कल्याणजी पटेल, मरला	२१·२५
,, घेलाभाई एम्. पटेल, राजकोट-१	२५०
,, कृष्ण नारायण कुलकर्णी, दहिसर-मुंबई-६८	५
,, महादेव बाळकृष्ण आपटे, बडोदे	१००
,, कन्हैयालाल देवी सहाय तमाकुवाले, दिल्ली	७५०
श्री. नरेन्द्र मुलजी एन्ड दुलेराय मुलजी, माझगांव-मुंबई-१०	१५
कुल रु.	१४८१·२५
पूर्व प्रकाशित रु.	१,२०,७४९·५३
कुल जमा रु.	१,२२,२३०·७८

मराठी सामवेदकी छपाई चालू है। हिन्दीमें 'गीता-पुरुषार्थबोधिनी' की छपाईके समाप्त हो जानेपर अथर्ववेद (ब्रह्मविद्या प्रकरण) की छपाई चालू है। 'दैवतसंहिता' का भी प्रकाशन हो रहा है। गुजरातीमें भी अथर्ववेद-भाग-५ (मेधाजनन, संगठन और विजय) छप रहा है।

मंत्री- स्वाध्यायमंडल, पारडी

विवाहके समय
राम और सीताकी आयु पर एक दृष्टि

[लेखक- आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा, ' पथिक ' बी. ए., कानपुर]

पौराणिकोंका कथन है कि विवाहके समय श्रीरामकी आयु १६ वर्ष और सीताजीकी ६ वर्षकी थी ।

पौराणिक पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र विद्यावारिधि लिखते हैं।

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥
(बाल. स. २०, श्लो. २)

हे विश्वामित्रजी अभी रामचन्द्र सोलह वर्षसे भी कम हैं ये राक्षसोंसे युद्ध नहीं कर सकते, इसी समय रामचन्द्र इनके संग गए और यज्ञकी रक्षा कर धनुष तोड जानकी विवाही कहिये, यह विवाह कैसा हुआ । ●

समीक्षाः— मिश्रजीके दिए हुए प्रमाणसे यह कहां सिद्ध होता है कि श्रीरामजीका विवाह १५ वर्षमें हुआ ।

महर्षि वाल्मीकी लिखते हैं कि ।

पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः ।
(बाल. सर्ग ७२, श्लो. ७)×

अर्थात्— ये दशरथके पुत्र रूप और यौवनसे युक्त हैं ।'

यदि श्रीरामचन्द्रजीकी आयु १५ वर्षकी थी तो लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इनसे भी छोटे होंगे और चारों भ्राताओंका विवाह जनकपुरीमें ही हुआ था ।

दशरथजीके चारों पुत्रोंको ' यौवनशाली ' कहा गया है फिर भी वे लोग अल्पवयस्क कैसे थे । ' यौवन ' किस अवस्थाका नाम है:— सुश्रुतके मतानुसार ।

आपंचविंशतेर्यौवनम् । आषोडशाद् वृद्धिः ।
(सूत्र स्थान अ. ३५)

अर्थात्— ' १६ वें वर्ष तक वृद्धि अवस्था तथा २५ वें वर्षमें ' यौवन ' होता है ।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह अल्पावस्थामें नहीं हुआ था । उपर्युक्त श्लोक वशिष्ठ और विश्वामित्रके वार्तालापमें है तो क्या वे दोनों अज्ञानी थे जो १५ वर्षमें ' यौवनशाली ' कहते ।

राम और लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रजी जनकपुरमें पहुंचे ' इस समय दोनों भ्राताओंके अनुपम रूप-लावण्य और सुसंगठित शरीरको देखकर राजा जनकने आश्चर्यके साथ मुनिसे पूछा—

पुनस्तं परिपप्रच्छ प्रांजलिः प्रयतो नृपः ।
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥ १७ ॥
गजतुल्यगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥ १८ ॥
यदृच्छयेव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ ।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने १९
(बाल. सर्ग ५०)

अर्थात्— ' हे मुने ! देवतुल्य पराक्रमी, सिंह तथा हाथीके सदृश चाल वाले, महान् पराक्रमी, सिंह और बडे भारी मत्त बैलके समान, रूपसे अश्विनीकुमारोंके तुल्य, यौवनावस्थाको प्राप्त और अपनी इच्छासे देवलोकसे पृथ्वीपर

● दयानन्द तिमिर भास्कर पृष्ठ ८० संवत् १९६२ इ. में श्री वेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय, बम्बईमें तीसरी बार मुद्रित व प्रकाशित ।

× सन् १९५१ ई. में भारत मुद्रणालय औंधमें मुद्रित तथा स्वाध्याय मण्डल, आनन्दाश्रम पारडी, जि. सूरत (गुजरातराज्य) द्वारा प्राप्य, तुलना करो, कल्पतरु यन्त्रालय, बम्बईमें सन् १८८९ ई. में मुद्रित

आप देवताओंके तुल्य, ये दोनों कुमार किसके हैं। और हे मुने! किसलिए यहां पर आए हुए हैं और कैसे पैदल आए हैं।'

यहां राजा जनक श्रीराम-लक्ष्मणको 'समुपस्थित यौवनौ' कहते हैं। इनकी यह उक्ति धनुष भंगके पूर्व की है।

इससे वे यौवन (तरुण) सिद्ध होते हैं।

संन्यासीके रूपमें जब रावण, सीताका हरण करने आता है तब सीता संसार-त्यागी अतिथि, बात न करनेसे शायद क्रुद्ध होकर शाप दे देगा, इस आशंकासे अपना परिचय देती हुई कहती है कि—

ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम्।
इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत्॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः।
सीता नामास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया॥
उषित्वा द्वादशसमा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुंजाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी॥
मम भर्ता महातेजा वयसा पंचविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥

(अरण्यकांड स. ४७, श्लोक २३, ४।१०)

अर्थात्— 'मैं मिथिलापति जनककी कन्या, श्री रामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीता हूं। मैंने १२ वर्षतक इक्ष्वाकुवंशी श्रीरामके घरमें निवास कर मनुष्यमें उपर्युक्त सभी सुख भोग लिए हैं। अब मेरी कोई भी वासना शेष नहीं है। मेरे महातेजस्वी भर्तार श्रीरामकी अवस्था २५ वर्ष और मेरी १८ वर्षकी थी।'

इस वर्णनसे पता लगता है कि जब सीता वनमें आयी थीं उस समय उनकी अवस्था १८ वर्षकी थी, विवाहोपरान्त १२ वर्ष वह ससुरालमें रहीं, तब ६ वर्ष बच रहते हैं। क्या सीताजीकी अवस्था विवाहके समय ६ वर्षकी थी।

अरण्यकांडके उपर्युक्त श्लोक प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि विवाहके समय सीताजी पूर्ण वयस्क पति- संयोगके अनुकूल, बुद्धिमति थीं। डा. शान्ति कुमार नानूराम व्यास एम्. ए., पी. एच. डी., × श्री अनन्त सदाशिव अलतेकर÷ और पादरी फादर कामिल बुल्के * एम्. ए., डी. फिल. तीनों ही इसे प्रक्षिप्त मानते हैं।

विश्वामित्र और जनकजीसे वार्तालाप होता है, उस समय जनकजी कहते हैं—

भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम्।

(बाल. सर्ग ६६, श्लोक १५)

अर्थात्— 'इस प्रकार जब मेरी 'ममात्मजा● (मेरी आत्मासे व मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई) कन्या सीता 'वर्धमाना' प्राप्त यौवना + हुई।'

यहां मूल श्लोकमें 'वर्धमाना' शब्द है। वाल्मीकीय रामायणके टीकाकारोंमेंसे किसीने इसका अर्थ 'यौवनसस्पृहा' तो किसीने प्राप्तयौवना' किया है।

इससे ज्ञात होता है कि विवाहके पूर्व सीताके शरीरमें यौवनका सूत्रपात हो गया था। अतः 'समुपस्थित यौवन' रामचन्द्रजीके साथ जब सीताजीका विवाह हुआ तब वह भी 'वर्धमाना' अर्थात् 'प्राप्तयौवना' थी।

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नके साथ क्रमसे सीता, उर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्तिका विवाह हो गया। सम्राट् दशरथ पुत्र और पुत्रवधुओंके साथ अयोध्या वापस आ गए। राजमहलमें महोत्सव हो रहा है। मांगलिक कार्योंके पश्चात्—

× 'रामायणकालीन समाज' प्रथम संस्करण पृष्ठ ११५

÷ 'पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन' पृष्ठ ६३

* 'रामकथा' प्रथम संस्करण, पृष्ठ २८८

● 'ममात्मजा' शब्दपर टिप्पणी, आचार्य रामदेवजी बी. ए. कृत 'भारतवर्षका इतिहास'

+ डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास भी 'प्राप्तयौवना' (रामायणकालीन समाज, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११५) अर्थ करते हैं — लेखक।

रेमिरे मुदिताः सर्वाः भर्तृभिः सहिता रहः ।
कुमाराश्च महात्मानो वीर्येण प्रतिमा भुवि ॥
(बालकांड, सर्ग ७७, श्लोक १४)

अर्थात्— 'सब मुदित हुई (राजपुत्रियाँ) ने एकान्तमें अपने पतियोंके साथ रमण किया । (इसी प्रकार) संसारमें पराक्रममें अप्रतिम महात्मा राजकुमारोंने भी रमण किया।'

मूल श्लोकमें 'रेमिरे' शब्द है, इसका अर्थ 'रमण करना' होता है। इससे सीता आदि चारों बहिनोंकी आयुका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। राम, लक्ष्मण तो थे ही 'प्राप्त यौवन'

पौराणिकोंके कथनानुसार ६ वर्षकी कन्याके साथ रमण कैसे किया जा सकता है। यह तो असंभव है।

सीताने अत्रि ऋषिकी स्त्री अनुसूयासे कहा—

पतिसंयोगसुलभं वयो वीक्ष्य पिता मम ।
चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ॥
(अयोध्या कां. सर्ग ११८, श्लो. ३४)

अर्थात्— 'पिताने जब मेरी 'पति संयोग सुलभ' अवस्था देखी तो उनको बड़ी चिन्ता हुई।' जैसे दरिद्रको धननाश होनेपर विषाद होता है मेरे पिताको भी वैसा ही हुआ।'

इस श्लोकमें 'पति संयोग सुलभ' शब्द आता है, किसी किसी टीकाकारने इस पदकी व्याख्यामें 'विवाह योग्य वयस्य' लिखा है। इसका अर्थ होगा 'पतिसे संयोगके लिए सुलभ'। विवाहके पूर्व सीताजीके लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ है और विवाहके बाद ही 'रेमिरे' शब्द आया है। अतएव इसका अर्थ सहज ही यह होता है कि 'वर्तमान पत्नीके साथ 'प्राप्त यौवन' पतिका मिलाप हुआ।

'अध्यात्म रामायणके आदि कांडके ६ ठे अध्यायमें कहा है कि 'मिथिलाकी राजसभामें श्री रामचन्द्रजीने हंसते हुए शिव धनुषको तोड डाला। राजा जनक अपने सारे रनवासके सहित आनन्दसे विह्वल हो गए। सीता, सोनेकी माला हाथमें लिए मुस्कुराती हुई धीरे धीरे रामके समीप आयी और उनके गलेमें माला पहनाकर वह नितान्त प्रेम सागरमें डूब गई। मूल वर्णनका चमत्कार देखिए—

सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे।
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चलित नूपुराः ।
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तः व्यंजितस्तनी ॥
रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ ।

यह 'स्मितवक्त्रा' और 'स्मयमाना मुदं ययौ' इन दोनों विशेषणोंसे सीताकी विवाह कालीन अवस्थाका पर्याप्त आभास मिलता है। छः वर्षकी बालिकाके लिए ऐसी उक्तियां कभी नहीं कही जा सकतीं। 'वस्त्रान्तः व्यंजितस्तनी' विशेषणसे स्पष्ट प्रकट होता है कि विवाहके समय सीता 'प्राप्त यौवना' थी और उसकी अवस्था महर्षि वाल्मीकिके कथनानुसार 'पति संयोग सुलभ' हो चुकी थी। इस प्रसंगको पढ़कर कोई संस्कृतज्ञ यह कह सकता कि सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी ?

जनकपुरीसे वापस आनेपर राजमहलमें विशेष धूमधाम है। सबके साथ मिलने जुलनेके बाद चारों भाई—

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसम्मिताः ।
स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्व मन्दिरे ॥
मातृपितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः।
रेमे वैकुंठ सदने श्रिया सह यथा हरिः ॥
(अध्यात्मरामायण १।७।५२-५४)

अर्थात्— 'देव प्रतिम राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अपने अपने महलोंमें अपनी अपनी भार्याओंके साथ आमोद प्रमोद करने लगे। जैसे वैकुंठमें लक्ष्मीके साथ विष्णुका समय सुखपूर्वक व्यतीत होता है वैसे ही माता पिताके आदरसे श्री राम सीताका समय भी बड़े आनन्दसे व्यतीत होने लगा।'

जिस प्रकार वाल्मीकि ऋषिने 'पति संयोग सुलभ वय' व 'रेमिरे मुदिता रहः' का प्रयोग किया है उसी प्रकार अध्यात्म रामायणमें भी 'वस्त्रान्तर व्यंजितस्तनी' और 'रेमिरे' का व्यवहार किया है।

अतः सीताकी आयु विवाहके समय छः वर्षकी कदापि नहीं हो सकती।

वेदमन्त्रोंमें आनेवाले युद्धके नाम

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

युद्ध अनेक प्रकारके होते हैं, इस कारण उसके नाम भी अनेक होते हैं। निघण्टुमें ४६ युद्धके नाम दिये हैं। इनका विचार करनेसे कितने प्रकारके युद्ध हो सकते हैं, इसका ज्ञान हो सकता है। ४६ युद्धके नाम हैं, इसीसे ज्ञात हो सकता है कि, युद्धके विषयमें कितना सूक्ष्म विचार हुआ होगा। यदि विचार न होता, तो इतने नाम नहीं आते। पर यहां ये नाम प्रयुक्त हुए हैं, निघण्टुकारने ये युद्धके नाम हैं, ऐसा माना है। अर्थात् इतने युद्धके नाम माने गये और प्रयुक्त हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है। इन नामोंमें प्रथम विचार करने योग्य 'मम-सत्यं' यह युद्ध नाम है—

१ मम--सत्यम्

'मेरा कथन ही सत्य है' यह इसका अर्थ है। 'मेरा कथन ही सत्य है, दूसरेका कथन सत्य नहीं है, ऐसा आग्रह जहां होगा, वहां युद्ध संभव हो सकता है। 'मेरा ही कथन सत्य है, दूसरेका कथन सत्य नहीं है' ऐसा आग्रह हुआ तो उन दोनों व्यक्तियोंका, अथवा दोनों पक्षोंका, किंवा दोनों राष्ट्रका संघर्ष होना स्वाभाविक है। संघर्ष ही युद्ध है। इसलिये 'मम-सत्यं' यह युद्धका नाम वेदमें प्रयुक्त है। इसके प्रयोगका मंत्र यह है—

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र
संतस्थाना विह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्
नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः॥

ऋ. १०।४२।४; अथर्व. २०।८९।४

'हे इन्द्र! (ममसत्येषु) मेरा पक्ष सत्य है ऐसा मानकर (समीके संतस्थानाः) युद्धमें उपस्थित होनेवाले (जनाः) लोग (त्वां विह्वयन्ते) तुझे सहायार्थ बुलाते हैं। (यः अत्र हविष्मान्) जो यहां हवनसामग्री लेकर यज्ञ करता है उसके साथ इन्द्र (युजं कृणुते) मित्रता करता है, (शूरः) शूर इन्द्र (असुन्वता सख्यं न वष्टि) सोमयाग न करनेवालेके साथ मित्रता नहीं चाहता।

चार वेदोंमें यह एक ही मंत्र है कि जिसमें 'मम--सत्यं' इस युद्धवाचक पदका प्रयोग हुआ है। मेरे पक्षका यह कहना ही सत्य है, दूसरेका कहना असत्य है, ऐसा आग्रह बढ गया, तो युद्ध उन दो पक्षोंमें होता है। यह त्रिकालाबाधित सत्य है। इस 'मम-सत्यं' इस पदने यह वास्तविक सत्य दर्शाया है। अपने पक्षके मतके विषयमें दुराग्रह नहीं हुआ, और दूसरे पक्षके मतमें भी जो सत्यता होगी उसको विचारमें लेनेकी सहिष्णुता जहां होगी, वहां युद्ध नहीं होंगे, यह भाव यहां है। अतः अपने मतका दुराग्रह नहीं धारण करना चाहिये, इस 'मम-सत्यं' पदकी सूचना है।

२ समीके

'समीक' पद वेदमें युद्धवाचक करके आता है। इसका यौगिक अर्थ '(सं) मिलकर (ईं) अधिकार प्राप्तिके लिये (क) प्रयत्न करना अथवा' (सं) मिलकर (ईं) शत्रुत्व (क) करना। ये दोनों अर्थ युद्धका संभव निर्माण करते हैं। 'ईरीश्वरो भवेच्छत्रुः (एकाक्षरी) 'ई' का अर्थ 'ईश्वर' अथवा 'शत्रु' है। यहां दोनों अर्थ लेकर अर्थ किया है। अधिकार अर्थात् ईश्वरत्व प्राप्त करनेके लिये दो पक्षोंमें झगडा हो सकता है, अथवा आपसमें मिलकर किसीके साथ शत्रुत्व करनेसे भी झगडा होनेकी संभावना हो सकती है। इस कारण यह 'समीक' पद युद्धवाचक होता है इसका प्रयोग वेद मंत्रोंमें होता है देखिये--

समिन्धरो विह्वयन्ते समीके
रिरिक्वांसः तन्वः कृण्वत त्राम्।
मिथो यत् त्यागं उभयासो अग्मन्
नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ॥ ऋ. ४।२४।३

(समीके) युद्धमें (नरः) नेता लोग (तं इत् विह्वयन्ते) उस इन्द्रको ही अपने सहाय्यार्थ बुलाते हैं, जिससे तन्वः रिरिक्वांसः) शरीरोंका नाश करनेवाले युद्धमें (त्रां कृण्वते) अपना संरक्षण कर सकते हैं, (यत्) जब (उभयासः मिथ त्यागं) दोनों पक्षके लोग अपने सर्वस्वका त्याग करनेको तैयार होते हैं, तब (नरः) लोग (तोकस्य तनयस्य सातौ) बालबच्चोंके संरक्षणके लिये उसीका आश्रय करते हैं ' ।

यहां ' समीके नरः तं विह्वयन्ते ' युद्धमें नेता लोग इन्द्रको ही अपने सहायार्थ बुलाते हैं ऐसा कहा है तथा और देखिये—

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम
नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके
अभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ऋ. ७।२१।९

' हे इन्द्र ! (ते नमोवृधासः सखायः विश्वह स्याम्) तुझे नमस्कार करनेवाले हम तेरे मित्र होकर सदा रहेंगे ! हे (महिना तरु-त्र) अपनी शक्तिसे सत्वर तारण करनेवाले इन्द्र ! (ते अवसा) तेरे संरक्षणसे (समीके) युद्धमें (अर्यः अभीतिं) शत्रुके आक्रमणका तथा (वनुषां शवांसि) हिंसकोंके बलोंका हम प्रतीकार करेंगे । ' इस मंत्रमें ' समीके ' पद युद्धवाचक है । तथा और देखिये—

इन्द्रं इद् देवतातये इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे
इन्द्रं धनस्य सातये ॥

ऋ. ८।३।५; अथर्व २०।११८।३

' (देवतातये इन्द्रं) यज्ञके लिये हम इन्द्रको बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति इन्द्रं) अहिंसापूर्ण यज्ञ चालू होने पर हम इन्द्रको बुलाते हैं । (समीके वनिनः इन्द्रं हवामहे) युद्धमें विजय प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्रको बुलाते हैं तथा (धनस्य सातये इन्द्रं) धनका दान मिले ऐसी इच्छा हुई तो भी हम इन्द्रको ही बुलाते हैं ।

यहां युद्धमें विजय प्राप्त करना हो तो हम इन्द्रको बुलाते हैं, ऐसा जो कहा है वहां युद्धवाचक ' समीके ' पद आया है । यह पद इतनी बार ही वेदमें आया है और इसका अर्थ सर्वत्र ' युद्ध ' ही है ।

३ विवाक्

' विवाक् ' पद युद्धवाचक वेदमें आता है । ' वि-वाक् ' विरुद्ध भाषण, वितण्डावाद करनेवाला जो होता है वह शत्रु ही होता है, उसके साथ युद्ध होता है । विरोधी भाषण करनेके कारण कितने झगडे इस भूमंडल पर होते हैं, यह देखनेसे इस ' वि-वाक् ' का ठीक युद्ध विषयक भाव ध्यानमें आ जायगा । इसके उदाहरण अब देखिये—

बिभेद वलं नुनुदे विवाचो
अथा भवद् दमिताभिक्रतुनाम् ॥ ऋ. १।३४।१०

' इन्द्रने (वलं बिभेद) बल नामक शत्रुको छिन्न भिन्न किया, (विवाचः नुनुदे) शत्रुओंको हटा दिया, (आभिक्रतुनां दमिता अभवत्) प्रबल शत्रुओंको वह दबानेवाला हुआ । ' तथा और देखिये—

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः
पुरु सहस्राशिवा जघान ।
तत् तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि
पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥

ऋ. १०।२३।५; अथर्व २०।७३।६

(यः) जिस इन्द्रने (विवाचः मृध्रवाचः) विरुद्ध बोलनेवाले और युद्धकी भाषा बोलनेवाले (अ-शिवाः पुरु-सहस्रा वाचा जघान) ऐसे हजारोंसे भी अधिक अशुभ शत्रुओंको अपनी वाणीसे ही मार दिया, (तत् इद् अस्य पौंस्यं गृणीमसि) वह इसका सामर्थ्य स्तुति करने योग्य है । (यः पिता इव) जो पिताके समान (तविषी शवः वावृधे) अपनी शक्ति और सामर्थ्य बढाता है ।

' विवाक् ' पद निघण्टुमें युद्ध नामोंमें आया है । वह पद विरुद्ध भाषण करनेसे जो युद्ध होते हैं उनका वाचक है ।

४ महाधन

' महाधन ' यह पद युद्धवाचक नामोंमें वेदमें आता है । ' महाधन ' का अर्थ ' बडा धन ' है । युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर शत्रुके नगर लूटकर बहुत धन प्राप्त होता है । इस कारण युद्धमें विजय प्राप्त करना, यह बहुत धन प्राप्त करनेका एक बडा साधन समझा जाता है । युद्धमें विजेता वीरको विजय प्राप्त करनेके पश्चात् शत्रुको लूटनेका अधिकार रहता है, ऐसा इस ' महाधन '

पदसे प्रतीत होता है। वेद भी विजयी वीरको शत्रुको लूटनेका अधिकार देता है, ऐसा इस पदसे प्रतीत होता है। देखिये इस महाधनके मंत्रके उपयोग—

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रं अर्भे हवामहे।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥

ऋ. १।७।५; अथर्व २०।७०।११

(वयं इन्द्रं महाधने हवामहे) हम इन्द्रको बडे युद्धमें सहायार्थ बुलाते हैं और (इन्द्रं अर्भे) हम इन्द्रको छोटी लडाईमें भी बुलाते हैं, (वृत्रेषु वज्रिणं युजं) तथा शत्रुओं पर हम मित्र वज्रधारी इन्द्रको भेजते हैं। तथा—

उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिः
भये चित् सुक्षितिं दधे।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने
नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ऋ. १।४०।८

' ब्रह्मणस्पति (क्षत्रं उप पृञ्चीत) अपने क्षात्र बलको इकट्ठा करता है, (राजभिः हन्ति) अपने क्षत्रियोंके साथ मिल कर शत्रुको मारता है। (भये चित् सुक्षितिं दधे) भय उपस्थित होनेपर अपने स्थानपर वह स्थिर रहता है। (महाधने) बडे युद्धमें (अस्य वर्ता न) इसका निवारण कोई नहीं कर सकता, (न तरुता) न इसका पराभव करने वाला भी कोई है, (वज्रिणः न अर्भे अस्ति) इस वज्रधारी इन्द्रका छोटे युद्धमें भी निवारण करनेवाला कोई नहीं है। तथा—

याभिः शर्यातं अवथो महाधने
ताभिः ऊषु ऊतिभिः अश्विना गतम् ॥

ऋ. १।११२।१७

' (याभिः ऊतिभिः) जिन संरक्षणोंसे तुमने (महाधने शर्यातं अवथः) बडे युद्धमें शर्यातका संरक्षण किया (ताभिः) उन संरक्षणोंके साथ, हे अश्विदेवो ! हमारे संरक्षणके लिये (आगतं) आवो। '

अस्माकं बोध्यविता महाधने ॥ ऋ. ६।४६।४

' महायुद्धमें हमारा संरक्षण करनेवाला हो '।

यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ॥

ऋ. ६।४६।१३

' हे इन्द्र ! तू अपने (अर्वतः) घोडोंको (महाधने चोदयसे) बडे युद्धमें चलाता है। '

इन्द्राग्नी आहितन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः।
मा नो अस्मिन् महाधने परा वक्तं गविष्टिषु ॥

ऋ. ६।५९।७

हे इन्द्र और अग्नि ! वीर लोग अपने बाहुओंसे धनुष्य तान रहे हैं। इसलिये (अस्मिन् महाधने) इस महायुद्धमें (गविष्टिषु) गौवें प्राप्त होनेके समयमें (नः मा परावक्तं) हमें दूर न छोडो अर्थात् हमारे सहायक होकर रहो। तथा—

मा नो अस्मिन् महाधने परावर्ग् भारभृद्यथा।
संवर्गं संरयिं जय ॥ ऋ. ८।७५।१२

' (अस्मिन् महाधने) इस महायुद्धमें (नः मा परावर्क्) हमें दूर न करो (यथा भारभृत्) जैसा बोझा उठानेवाला अधिक भार होनेपर भारको फेंकता है, वैसा हमें न दूर फेंक। (संवर्गं रयिं संजय) तू शत्रुकी संपूर्ण संपत्ति जीत कर प्राप्त कर, ।

(संवर्गं रयिं संजय) शत्रुकी सब प्रकारकी संपत्ति विजय करके प्राप्त करो। विजय प्राप्त करनेसे शत्रुके सब वर्गोंकी संपत्ति विजयी वीरको प्राप्त होती है। युद्धमें जो वीर जाते हैं वे उत्तम कपडे, उत्तम जेवर पहनकर सजकर जाते हैं। युद्धमें यदि वे मरे तो मरे हुए सब वीरोंके शरीर परके उत्तम कपडे और जेवर विजयी वीर लेता है इस कारण ' महाधन ' पद महासंग्रामका वाचक वेदमें माना गया है। क्योंकि सग्राममें विजय प्राप्त करनेसे शत्रुका संपूर्ण धन विजयी वीरको मिलता है। युद्धके नामोंमें ' महाधन ' पद है, इसका भाव यह है।

५ धन

इसी तरह धन पद भी वेदमें युद्ध वाचक है। युद्धमें विजय कमानेका अर्थ धन कमाना ही अर्थ है देखिये—

त्वां विद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उप ब्रूते धने हिते।

ऋ. १।४०।२

हे (सहसः पुत्र) बलका रक्षण करनेवाले वीर ! (धने हिते) युद्ध छिड जानेपर (त्वां इत्) तुझे ही (मर्त्यः उप ब्रूते) मनुष्य अपने सहाय्य करनेके लिये बुलाते हैं। तथा—

सद्यो जंघां आयसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ ऋ. १।११६।१५

'तुमने विश्पलाके (आयसी जंघां) लोहेकी टांग (सद्यः) तत्काल (धने हिते सर्तवे) युद्ध शुरू होनेपर चलने फिरनेके लिये (प्रत्यधत्तं) लगा दी।' युद्ध छिडने पर चलना और फिरना युद्धकी भूमिमें आवश्यक होता है। वह करनेके लिये लोहेकी टांग लगादी और टूटी हुई टांग काट कर फेंक दी। तथा—

घने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः। ऋ. ११३२१५

(धने हिते) युद्ध छिड जानेपर (श्रवस्यवः तरुषन्त) कल्याण प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले वीर (तरुषन्त) शत्रुपर हमला करते हैं।

अभूरु वीर गिर्वणो महां इन्द्र धने हिते।
भरे नितन्तसाय्यः॥ ऋ. ६।४५।१३

हे (गिर्वणः वीर इन्द्र) प्रशंसनीय वीर इन्द्र! (धने हिते भरे) युद्ध शुरू होनेपर (महान् वितन्तसाय्यः अभूः) शत्रुओंका बडा विनाश करनेवाला तूं हुआ है।

इस मंत्रमें 'घने हिते' तथा 'भरे' ये पद युद्ध वाचक आ गये हैं। 'भरे' का अर्थ 'धनसे भरपूर भर देना' है। यह कार्य युद्धमें विजय प्राप्त करनेसे होता है। तथा—

यस्त्वा देवि सरस्वति उपब्रूते धने हिते।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये॥ ऋ. ६।६१।५

हे सरस्वती देवि! (वृत्रतूर्ये इन्द्रं न) वृत्रके साथ होनेवाले युद्धमें जैसा सहाय्यार्थ इन्द्रको बुलाते हैं, उस तरह (धने हिते) युद्ध शुरू होनेपर (यः त्वा उपब्रूते) जो तुझे बुलाता है उसका तू रक्षण कर। तथा—

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते।
येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ऋ. ८।३।९; अथर्व. २०।९।३; २०।४९।६

(धने हिते) युद्ध शुरू होनेपर (येन) जिस सामर्थ्यसे तूने (यतिभ्यः) यतियोंसे धन लाकर (भृगवे) भृगुको दिया था और (येन) जिस सामर्थ्यसे (प्रस्कण्वं आविथ) प्रस्कण्वकी तूने रक्षा की, वह सामर्थ्य तू हमें दे।

इस मंत्रमें यतियोंका धन लाकर भृगुको देनेका उल्लेख है। 'यति' का अर्थ संन्यासी, उदासी, जो गृहस्थ धर्ममें न रहकर संसार छोडकर उदासी संप्रदायमें रहते थे। इन्द्र उनका धन लेकर गृहस्थ धर्मी भृगुको देता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें भी 'यतीन् सातावृकेभ्यः प्राच्छयत्' ऐ. ब्रा. यतियोंके टुकडे करके जंगली हिंसक पशुओंको खानेके लिये दिये, ऐसा इन्द्रका वर्णन है। इसका तात्पर्य यही है कि वैदिक कर्ममें तीन ही आश्रम हैं, संन्यास यह चतुर्थ आश्रम नहीं है।

यं देवासोऽवथ वाजसातौ
यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिं
अरिष्यन्तमारुहेमा स्वस्तये॥ ऋ. १०।६३।१४

हे (देवासः) देवो! (वाजसातौ यं अवथ) अन्नकी प्राप्तिके लिये होनेवाले युद्धमें तुम जिसकी सुरक्षा करते हो (हिते धने) युद्ध छिडनेपर (शूरसाताः मरुतः) शूरता करनेवाले वीर मरुत (यं) जिसका रक्षण करते हैं उस (सानसिं) सुन्दर (अ-रिष्यन्तं) विनष्ट न होनेवाले (प्रातः यावाणं रथं) प्रातः काल जानेवाले रथपर (स्वस्तये आरुहेम) अपने कल्याणके लिये हम चढते हैं।

इस प्रकार 'धन, महाधन' इन पदोंका अर्थ वेदमें युद्ध है। 'घने हिते' का अर्थ युद्ध शुरू होनेपर ऐसा भी है और धनके उद्देश्यसे कर्म शुरू होनेपर ऐसा भी अर्थ होनेकी संभावना है। युद्धमें विजय हुआ तो शत्रुका राज्य भी अपने आधीन हो जाता हैं, शत्रुके धन, धान्य, अलंकार, गौवें, घोडे, घर आदिकी प्राप्ति हो जाती है। यह 'धने, महाधने' पदोंका भाव है।

६ भरे

'भरे' अथवा 'भर' पद निघण्टुमें युद्ध नामोंमें आया है। 'भरे' का अर्थ भरना, भर देना। शत्रुका पराजय करके उसका धन लाकर अपने घरमें भर देना यह भाव इस पदमें है।

भरेषु हव्यः। ऋ. १।१००।१; २।२३।१३

'युद्धोंमें सहायतार्थ बुलाने योग्य इन्द्र है।' तथा और देखिये—

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्॥ ऋ. १०।६३।९

(भरेषु) युद्धोंमें (सुहवं) बुलाने योग्य (अंहो मुचं) पाप दूर करनेवाले (सुकृतं) उत्तम कार्य करनेवाले (दैव्यं

जनं इन्द्रं) दिव्य जन इन्द्रको (हवामहे) हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं ।

भरे भरे अनुमदेम जिष्णुम् । ऋ. १०।६७।९; अथर्व. २०।९१।९

हम प्रत्येक युद्धमें विजयी वीरको आनन्दित करते हैं । तथा—

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकं
मंशं उदवा भरे भरे ॥ ऋ. १।१०२।४; अथर्व. ७। ५०।४

(त्वया युजा वयं जयेम) तेरे साथ रहकर हम विजय प्राप्त करें । (भरे भरे) प्रत्येक युद्धमें (अस्माकं अंशं उदव) हमारे भागको तूं ऊंचा करके सुरक्षित रख ।

भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति । ऋ. १।१००।२

' प्रत्येक युद्धमें वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र बलवान् होता है । '

भरे भरे नो यशसावविष्टाम् । ऋ. ५।४३।२

' प्रत्येक युद्धमें हमें सुयश प्राप्त हो । '

भरे भरे पुरो योधा भवतम् । ऋ. ७।८२।९

प्रत्येक युद्धमें अग्रभागमें रहकर युद्ध करनेवाले हो जाओ। इस प्रकार ' भरे भरे ' का अर्थ वेदमंत्रोंमें युद्ध है । इससे सिद्ध होता है कि युद्धमें विजय पानेवाले वीरोंके घर धनसे भरपूर भर जाते हैं ।

७ आक्रन्दे

' आक्रन्द ' का मूल आशयं ' रोना, पुकारना, शोक करना ' है युद्धमें जिनके वीर मारे जाते हैं, उनके रिश्तेदार रोते हैं, वे शोक करते हैं । पराजितोंको रोना पडता है । युध्यमान राष्ट्रोंको कष्ट पहुंचते हैं, इस कारण युद्धका नाम ही ' आक्रन्द ' हो गया है । इसलिये युद्ध न हो ऐसा यत्न करना चाहिये । क्योंकि युद्धसे शोक ही करना पडता है । विजय मिलने पर भी युद्धमें उनके कई वीर मरे होते हैं । इसलिये आक्रन्दन दोनों ओर होता है । युद्धका नाम ' आक्रन्द ' रख कर वेदने यह सत्य सिद्धान्त जगत्‌के सामने रखा है कि युद्धके विजेता और पराभूत दोनों पक्षोंमें ' आक्रन्दन ' अर्थात ' रोना ' होता ही है ।

युद्धमें वीर पुकार पुकार कर शत्रु पक्षके वीरोंको आह्वान देते हैं, इसलिये भी ' आक्रन्द ' नाम युद्धको मिला होगा। अब इसके प्रयोग मंत्रमें देखिये—

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा
पृथिवि कृणोतु । अथर्व १२।१।४१

(यस्यां भूम्यां) जिस मातृभूमि पर (मर्त्याः) मनुष्य उच्च स्वरसे गाते और नाचते हैं, (यस्यां दुन्दुभिः वदति) जिस मातृभूमिमें ढोल बजते हैं और (यस्यां आक्रन्दः युध्यन्ते) जिसमें बडी घोषणा करके वीर लोग युद्ध करते हैं (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (सपत्नान् प्रणुदतां) शत्रुओंको दूर करे (मा असपत्नं कृणोतु) और मुझे शत्रुरहित करे ।

इस तरह यह ' आक्रंद ' पद युद्धके लिये वेदमंत्रमें प्रयुक्त होता है ।

८ आहवे

' आहव ' पदका अर्थ ' आह्वान करना, बुलाना, युद्ध के लिये बुलाना, युद्ध करना ' ऐसा है । युद्धके अर्थमें यह पद वेदमें आता है । युद्ध करनेके लिये किसीने बुलाया तो अपनी तैयारी चाहिये । इसका प्रयोग देखिये—

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः
चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्कभिः
युवाऽकुमारः प्रत्येत्याहवम् । ऋ. १।१५५।६

' चार और नब्बे नामोंके साथ चक्र जैसा अपने घेरेमें घूमता है वह सूर्य (बृहच्छरीरः) बडे शरीरवाला (ऋक्कभिः विमिमानः) स्तुतियोंसे संमानित होकर (युवा अकुमारः) तरुण और कुमारसे बडा (आहवं प्रति एति) जहां आह्वान होता है वहां जाता है, युद्ध होता है वहां पहुंचता है ।

' आहवं प्रति एति ' जहांसे आह्वान होता है वहां पहुंचता है, तथा और देखिये—

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं
निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत
उग्रस्य चिद् दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ऋ. २।२३।११

'(अनानुदः वृषभः) अनुपम बलवान् वीर (आहवं जगिमः) युद्धमें जानेवाला (शत्रुं निष्टता) शत्रुका विनाशक (पृतनासु सासहिः) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला, हे ब्रह्मणस्पते ! तू (सत्यः ऋणया असि) सच्चा ऋण चुकानेवाला है। (वीळुहर्षिणः उग्रस्य दमिता) बलके कारण हर्षित होनेवाले विशेष शूर शत्रुका दमन करनेवाला तू है।'

इसमें ' आहवं जगिमः ' युद्धका आह्वान होनेपर युद्धमें जानेवाला यह ब्रह्मणस्पति है। तथा—

इन्द्रं न कश्चन सहते आहवेषु ॥ ऋ. ६।४७।१;
अथर्व. १८।१।४८

' इन्द्रकी शक्तिको कोई शत्रु युद्धमें सहन नहीं कर सकता।' इतना सामर्थ्य युद्धोंमें इन्द्र दिखाता है।

इस प्रकार ' आहव ' पद वेदमें युद्धके अर्थमें आता है।

९ नदनुः

' नदनु ' का अर्थ वेदमें युद्ध है। निघण्टुमें युद्ध नामोंमें इस पदका पाठ किया है। कोशोंमें इसके ये अर्थ दिये हैं। ' सिंह गर्जना, स्तुतिके शब्द, मेघ, युद्ध, संग्राम ' वेदमें यह पद युद्ध अर्थमें ही आता है—

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे। ऋ. ८।२१।१४; अथर्व. २०।११४।२

'(यदा) जब तू (नदनुं कृणोषि) युद्ध करता है तब तू (सं ऊहसि) उत्तम विचार करके जो करना होगा वह करता है इस लिये (पिता इव हूयसे) रक्षक पिताके समान तू प्रशंसित होता है।' तथा और एक मंत्र देखिये-

स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा
तुविम्रक्षो नदनुमान् ऋजीषी।
बृहद्रेणुः च्यवनो मानुषीणां
एकः कृष्टीनां अभवत् सहावा ॥ ऋ. ६।१८।२

' वह इन्द्र (युध्मः) युद्ध करनेवाला, (सत्वा) बलवान् (खजकृत्) संग्राम करनेवाला, (समद्वा) संग्राममें यशस्वी, (तुविम्रक्षः) शुद्धता करनेवाला, (नदनु-मान्) युद्धकी घोषणा करनेवाला (ऋजीषी) सोमरस पीनेवाला, (बृहद् रेणुः) युद्धोंमें बडी धूली उडानेवाला, (मानुषीणां च्यवनः) मानवी सेनाको स्थानभ्रष्ट करनेवाला (कृष्टीनां) मानवोंका (एकः सहावान् अभवत्) एक बलवान सहायक होता है।'

' नदनु ' शब्दका प्रयोग वेदमें अधिक नहीं है।

१० संगम

' संगम ' शब्दका अर्थ ' मिलना ' है। युद्धमें दो शत्रुओंका युद्ध करनेके लिये एक स्थान पर मिलना इस अर्थमें यह पद वेदमें ' युद्धके अर्थमें ' प्रयुक्त होता है। निघण्टुमें यह पद युद्ध अर्थमें रखा है। देखिये—

तस्मा रथं मघवन् प्राव सातये
जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ॥ ऋ. १।१०२।३

'(संगमे) युद्धमें तुम्हारे (यं जैत्रं तं रथं) जिस विजयी रथको देखकर (अनुमदाम) हम आनंदित होते हैं उस रथको लेकर तुम हमारे समीप आ जाओ।' तथा—

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुता
ऽदेव इन्द्र युधये चिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवः
त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे ॥ ऋ. १०।३८।३

(यः दास आर्यः अदेवः) जो दास आर्य अथवा देवके सिवाय दूसरा शत्रु हमसे (युधये चिकेतति) युद्ध करनेकी इच्छा करता है, हे (पुरु-स्तुत इन्द्र) बहु प्रशंसित इन्द्र! (ते शत्रवः) वे शत्रु (अस्माभिः सुसहाः सन्तु) हमारे लिये सहन करने योग्य हों, अर्थात् हम उनका सहज पराभव कर सकें (त्वया वयं तान् संगमे वनुयाम) तेरे साथ रहकर हम उनको युद्धमें विनष्ट कर सकें।' तथा—

अवो विविदे संगमेषु ॥ ऋ. १०।१३१।३,
अथर्व. २०।१२५।३

'(संगमेषु) युद्धोंमें विजय और यश प्राप्त होता है।' युद्धके अर्थमें ' संगम ' पदके प्रयोग वेद मंत्रोंमें ये हैं।

११ संगे

' संग ' पदका अर्थ ' मिलना, मित्रतासे एकत्रित होना ' है। यह पद पुल्लिंगमें ' संगः ' ऐसा होता है, और नपुंसकलिंगमें ' संग ' ऐसा होता है। नपुंसकलिंगके ' संग ' पदका अर्थ ' मारना, शत्रुका वध करना ' है। इस कारण यह पद निघण्टुमें युद्धके नामोंमें आया है। इस पदका प्रयोग नीचे दिये मंत्रोंमें आया है—

आ न इन्द्रो दूरादा न आसाद्
अभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः
संगे समत्सु तुर्वणिः प्रतन्यून् ॥

ऋ. ४।२०।१; वा.य. २०।४८

'(अभिष्टिकृद् उग्रः) सहायता करनेवाला उग्र वीर इन्द्र (अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये (दूरात् नः आसाद् नः आ यासत्) दूरसे और समीपसे भी हमारे पास आ जाय । (नृपतिः वज्रबाहुः) मनुष्योंका पालक वज्रके समान कठोर बाहुवाला और (संगे समत्सु) युद्धमें तथा संघर्षोंमें (पृतन्यून् तुर्वणिः) सैनिकोंका वध करनेवाला इन्द्र (ओजिष्ठेभिः) बलवान सैनिकोंके साथ हमारे पास आजाय ।'

प्रो ष्वस्मै पुरोरथं इन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहा
अस्माकं बोधि चोदिता ॥

ऋ. १०।१३३।१, अथर्व २०।९५।२

(अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (पुरोरथं शूषं प्रसु अर्चत) उसके रथको आगे बढानेवाला स्तोत्र उत्तम रीतिसे गाओ । (अभीके लोककृत्) पासके युद्धमें स्थान बनानेवाला (संगे समत्सु वृत्रहा) युद्धमें तथा संघर्षोंमें वृत्रनाशक इन्द्र (अस्माकं चोदिता बोधि) हमारा प्रेरक होवे ।'

इस प्रकार ' संगे ' पद युद्धवाचक वेदमें है ।

१२ संगथे

' संगथे ' पद युद्धवाचक निघण्टुमें आया है । इसके मंत्र ये हैं—

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे ॥

ऋ. १।९१।१६ वा. य. १२।११२

'(आप्यायस्व) तू बलवान बन । हे सोम ! (ते विश्वतः वृष्ण्यं समेतु) तुझे चारों ओरसे सामर्थ्य प्राप्त हो । (वाजस्य संगथे भव) तू सामर्थ्यके युद्धमें खडा रह ।'

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं
नरा शंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां
प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ ऋ. २।३८।१०

(भगं धियं पुरंधिं वाजयन्तः) भाग्ययुक्त बुद्धिमान पुररक्षकको हम अधिक बलवान करते हैं, (नराशंसः ग्नास्पतिः नो अव्याः) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, दैवी शक्तियोंका स्वामी हमारा रक्षण करे ।

(वामस्य आये संगथे) धनके लिये आवश्यक हुए युद्धमें (सवितुः देवस्य प्रियाः स्याम) सविता देवके प्रिय होकर हम रहें ' ।

' संगथे ' पदके युद्ध अर्थमें वेदमें ये प्रयोग हैं । ' संगथे ' पदका अर्थ ' समागम, संगति, मेलमिलाप ' ऐसा है । मेलमिलाप होनेके पश्चात् इस मेलमिलापमें विरोध पैदा होता है, जिससे मतभेद उत्पन्न होनेसे उसीमेंसे युद्ध शुरू होता है । इस कारण ' संगथे ' पद युद्धवाचक माना गया है ।

१३ समिथे

' समिथ ' पद ' युद्ध, संमेलन, अग्नि, आहुति ' इन अर्थोंमें है । निघण्टुमें यह युद्ध नामोंमें रखा है । इसका प्रयोग वेदमन्त्रोंमें दीखता है, इसके उदाहरण ये हैं—

स इद् महानि समिथानि कृणोति
युध्म ओजसा जनेभ्यः ॥ ऋ. १।५५।५

(स इत युध्मः) वह इन्द्र युद्ध करनेवाला है, वह (जनेभ्यः) लोगोंके हितके लिये (ओजसा मज्मना) अपने बडे सामर्थ्यसे (महानि समिथानि) बडे युद्ध (कृणोति) करता है ' ।

स हि वाजी समिथे ब्रह्मणस्पति ॥ ऋ. २।२४।११

वह ब्रह्मणस्पति (समिथे वाजी) युद्ध करनेमें बलवान है ।

नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ
ववन्दिरे पृथिवी वेविदानाः ॥ ऋ. ३।५४।४

' हे (पृथिवि) हे मातृभूमे । (शूरसातौ समिथे) शूर लोगोंके द्वारा चलाये युद्धमें (वेविदानाः नरः वां ववन्दिरे) ज्ञानी नेता लोग तुम्हें वंदन करते हैं ।'

जेषाम समिथे त्वोतयः ॥ ऋ. ९।७६।५

(समिथे) युद्धमें (त्वा-ऊतयः) तेरे संरक्षणसे सुरक्षित हुए हम (जेषाम) जीतें ।

सनेम वाजं समिथेषु अर्यः ॥ ऋ. १।७३।५

(समीथेषु) युद्धोंमें (अर्यः वाजं सनेम) शत्रुसे धन प्राप्त करें। यहां स्पष्ट कहा है कि ' अर्यः वाजं सनेम ' शत्रुसे धन प्राप्त करें। अर्थात् युद्धमें विजय मिलने पर जो शत्रुके धनकी लूट की जाती है, वही यह धन है।

शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्
वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ऋ. ४।२०।८

हे इन्द्र ! तू (शिक्षानरः) लोगोंको मार्ग बतानेवाला है, (समिथेषु प्रहावान) युद्धोंमें शत्रुपर प्रहार करनेवाला है। (भूरिवस्वः राशिं) बडी धनकी राशीको (अभिनेता असि) देनेवाला है।

स हन्ति वृत्रा समिथेषु । ऋ. ४।४१।२

वह युद्धोंमें वृत्रोंको मारता है। तथा और देखिये—

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते ॥ ऋ. ७।८३।९

(अन्यः) दोनोंमेंसे एक वीर (समिथेषु) युद्धोंमें वृत्रोंको मारता है।

दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयन् । ऋ. १०।४८।२

(अस्य दिद्युं) इसका तेजस्वी वज्र (समिथेषु मंहयन्) युद्धोंमें बडा महत्त्व प्राप्त करता है।

इस प्रकार ' समिथ ' पद वेदोंमें युद्ध वाचक है।

१४ समर्य

' समर ' पद युद्ध वाचक सुप्रसिद्ध है। निघण्टुमें युद्ध वाचक पदोंमें इसका पाठ है। इसके ये मंत्र है—

वयमग्ने वनुयाम त्वोता
वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां
वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ऋ. ५।३।६

हे अग्ने ! (वसूयवः वयं) धनकी इच्छा करनेवाले हम (हविषा बुध्यमानाः) हविसे तुझे प्रदीप्त करके (त्वा-ऊताः वनुयाम) तेरेसे संरक्षित होकर हम धन प्राप्त करें। (समर्ये) युद्धमें विजयसे तथा (विदथेषु राया) यज्ञोंमें धनसे युक्त हों। और हे (सहसः पुत्र) बलके पुत्र अग्ने ! (मर्तान्) नौकर चाकर भी प्राप्त करें।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः
शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ॥ ऋ. ७।१९।२;
अथर्व. २०।३७।२

(त्वं तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की '।

इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ॥ ऋ. ७।२३।१,
अथर्व २०।१२।१

हे वसिष्ठ ! युद्धमें इन्द्रके महत्वका वर्णन कर।

इस प्रकार ' समर्य ' पद वेदमंत्रोंमें युद्धवाचक आया है।

१५ सङ्का:

' सङ्काः ' पद निघण्टुमें युद्धवाचक करके दिया है। इसका प्रयोग एक ही वार ऋग्वेदमें दीखता है। वह मंत्र यह है—

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रः
चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्का पृतनाश्च सर्वाः
पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ऋ. ६।७५।५

(बह्वीनां पिता) वह तर्कस बहुत बाणोंका पिता है, अर्थात् इस तर्कसमें बहुत बाण रहते हैं, इसलिये (अस्य बहुपुत्रः) इसके बहुत पुत्र हैं। बाण ये तर्कसके पुत्र हैं। यह बाण (समनावगत्य) युद्धमें जाकर (चिश्चा करोति) चिश्चा ऐसा शब्द करता है, (पृष्ठे निबद्धः) पीठ पर बंधा हुआ यह (इषुधिः) तर्कस (प्रसूतः) बाणको बाहर फेंक कर, बाणोंको प्रसूत करके (सङ्काः सर्वाः पृतनाः च जयाति) सब प्रकारके युद्ध और सब सेनाओंको जीतता है।

इस मंत्रमें ' सङ्का ' पद युद्धवाचक आया है। सब वेदोंमें इस पदका प्रयोग एक ही बार हुआ है। इषुधि, बाण आदिके साथ ' सङ्का ' पद युद्धवाचक है इसमें संदेह नहीं है।

१६ समनम्

' समनं ' पद निघण्टुमें युद्धवाचक करके दिया है। ' स-मनं ' पदका अर्थ ' मनका विचार एक करके कार्य करना '। सबका एक विचार, अधिकसे अधिक एकताका विचार, युद्धके कार्यके लिये ही करना पडता है, इसलिये इस पदका अर्थ युद्ध हुआ है। इसके उदाहरण ये हैं—

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं
प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन्
ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ऋ. ६।७५।३

‘ (इयं ज्या) यह धनुष्यकी डोरी (समने) युद्धमें (धन्वन् अधि) धनुष्य पर (वितता) फैली हुई (पारयन्ती) पार पंहुचाती है (प्रियं वक्ष्यन्ती इव) प्रिय भाषण करनेके लिये (कर्णं आगनीगन्ति) कानके पास आती है (योषा सखायं इव) स्त्री जैसी अपने पतिके पास (परिषस्वजाना शिङ्क्ते) आलिंगन देकर बोलती है।’

इसमें ‘ समने ’ पदका अर्थ युद्ध है। युद्धमें धनुष्यकी डोरी कानके पास आती है, और प्रिय स्त्री आलिंगन देकर कानमें कुछ गुप्त बात कहती है ऐसा दीखता है।

१७ समत्सु

‘ समत्सु ’ यह पद निघण्टुमें युद्धके नामोंमें आया है। कोशोंमें भी ‘ समत्सु ’ ऐसा पद नहीं है। पर वेदमें तथा निघण्टुमें वह है इसके उदाहरण वेदमें हैं, देखिये—

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः।
तस्मा इन्द्राय गायत॥

ऋ. १।५।४; अथर्व २०।६९।२

‘ (यस्य संस्थे हरी) जिसके रथमें जोते दो घोडे देखकर (समत्सु शत्रवः न वृण्वते) युद्धोंमें शत्रु नहीं ठहर सकते, (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके स्तोत्र गावो ’। तथा—

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
अस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रं ऊतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥

ऋ. ३।३०।२२, अथर्व २०।११।११

(शुनं मघवानं इन्द्रं हुवेम) उत्साही धनवान इन्द्रकी हम प्रशंसा गाते हैं, (अस्मिन् वाजसातौ भरे नृतमं इन्द्रं) इस अन्नका लाभ कर देनेवाले संग्राममें जो अत्यंत श्रेष्ठ नेता है उस इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं। (शृण्वन्तं उग्रं) हमारी प्रार्थना सुननेवाला वह उग्रवीर (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाला और (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाला है ’।

इस रीतिसे ‘ समत्सु ’ पद युद्धवाचक वेदमें है।

१८ पृतनाः

‘ पृतनाः ’ पदका अर्थ ‘ सैन्य, सेनापथक, युद्ध, संग्राम ’ आदि है।

सोमापूषणौ अवतं धियं मे
युवाभ्यां विश्वा पृतना जयेम॥ ऋ. २।४०।५

हे सोम और पूषा! (मे धियं अवतं) मेरे बुद्धिपूर्वक किये कर्मकी सुरक्षा करो। (युवाभ्यां) तुम दोनोंसे सुरक्षित हुए हम (विश्वाः पृतनाः जयेम) सब संग्रामोंमें शत्रुओंको जीतें।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य॥

ऋ. ३।२४।१

हे अग्ने!(अभिमातीः पृतनाः) शत्रुकी सेनाको युद्ध क्षेत्रमेंसे (अपास्य सहस्व) दूर हटा कर उसका पराभव कर।

त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम। अथर्व ५।३।१

तेरे अध्यक्ष होनेपर सब शत्रुसेनाके ऊपर हम विजय प्राप्त करें।

इस तरह ‘ पृतनाः ’ पद सैनिकों तथा युद्धोंके लिये वेदमें आता है।

१९ पृत्सु

‘ पृत ’ का अर्थ ‘ सेना, सैनिक गण, सैन्य ’ है। ‘ पृत्सु ’ का अर्थ ‘ सेनामें, सैनिकोंमें, सेना विभागोंमें ’ ऐसा है। सैनिकोंमें रहना युद्धकी तैयारीसे रहना है, इस कारण ‘ पृत्सु ’ का अर्थ वेदमें तथा निघण्टुमें ‘ युद्ध ’ हुआ है।

यमग्ने पृत्सु मर्त्यं अवा वाजेषु यं जुनाः।
स यन्ता शश्वतीः इषः॥ ऋ. १।२७।७; वा. य. ६।२९

‘ हे अग्ने! (यं मर्त्यं) जिस मानवको तू (पृत्सु अवाः) युद्धोंमें सुरक्षित रखता है, तथा (वाजेषु यं जुनाः) युद्धोंमें जिसको प्रेरित करता है, (सः शश्वती इषः यन्ता) वह शाश्वत अन्नोंका नियमन करता है। ’ तथा—

आनो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्।
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्॥ ऋ. १।७९।८

हे अग्ने! (सत्रासाहं) दारिद्र्यका नाश करनेवाला (वरेण्यं) श्रेष्ठ (रयिं नः आभर) धन हमें दे दो। जो धन (विश्वासु पृत्सु दुष्टरं) सब प्रकारकी लडाइयोंमें शत्रु के द्वारा छीननेके लिये अशक्य है।

इस प्रकार ‘ पृत्सु ’ पदका अर्थ वेदमंत्रोंमें ‘ युद्ध ’ है।

२० स्पृधः

‘ स्पृध् ’ धातुका अर्थ स्पर्धा करना है। स्पर्धा करनेवाला

शत्रु होता है और शत्रुसे युद्ध होता है, इस कारण 'स्पृधः' का अर्थ 'युद्ध' है इसके वेदमें ये प्रयोग हैं—

जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ऋ. १।८।३;
अथर्व २०।७०।१९

'स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें हम विजय प्राप्त करें'।

अभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः। ऋ. १।१७४।५

'(वज्रबाहुः) वज्रके समान जिसके बाहु है वह इन्द्र (स्पृधः) युद्धमें (अभि यासिषद्) आगे बढे।

विश्वा यद्जय स्पृधः। अथर्व २०।२९।३

'तूने सारे युद्धोंको जीत लिया।' इस तरह 'स्पृधः' पद वेदोंमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धका वाचक है।

२१ मृधः

'मृधः' पद शत्रुके अर्थमें वेदमें आता है। निघण्टुमें इसका पाठ युद्ध नामोंमें किया है। कोशोंमें यह पद 'शत्रु' अर्थमें है। शत्रुसे ही युद्ध होता है इसलिये यह पद युद्ध वाचक बना है, इसके उदाहरण ये हैं—

जहि शत्रूँ अप मृधो नुदस्व
अथ अभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ ऋ. ३।४७।२

(शत्रून् जहि) शत्रुओंका पराभव कर (मृधः अप नुदस्व) शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धोंमें उनको दूर कर। (अथ) पश्चात् (नः विश्वतः अभयं कृणुहि) हमारे लिये सब ओरसे निर्भयता कर।

'मृध्' धातुका अर्थ 'हिंसा करना, मारना' है इस कारण इसका अर्थ 'युद्ध, शत्रुनाश' आदि है।

२२ रणः

'रण' का अर्थ 'युद्ध' प्रसिद्ध है। 'रण्' धातु इस पदमें युद्ध करनेके अर्थमें है, उसके प्रयोग ये हैं—

धनंजयो रणे रणे। ऋ. १।७४।३

अयं रणाय ते सुतः। ऋ. ८।१७।१२

'प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला यह है। यह तेरा पुत्र युद्धके लिये ही उत्पन्न हुआ है।

२३ विखादः

'विखाद' पद युद्ध नामोंमें पठित है। इसका उदाहरण यह है—

तं विखादे सस्निं अद्य श्रुतं
नरं अर्वाञ्चं इन्द्रमवसे करामहे ॥ ऋ. १०।३८।४

(तं सस्निं श्रुतं नरं इन्द्रं) उस शूर अति प्रसिद्ध नेता इन्द्रको (अद्य विखादे) आज होनेवाले युद्धमें (अवसे अर्वाञ्चं करामहे) अपने संरक्षणके लिये अपने पास बुलाते हैं।

चारों वेदोंमें इसी एक मंत्रमें यह पद एक ही बार आया है।

२४ आजौ-आजिः

'आजि' पद युद्ध वाचक प्रसिद्ध है। 'अज-गतौ' धातुसे यह पद 'आजि' बनता है। सैनिक शत्रुपर हमला करते हैं उस आक्रमणको 'आजि' कहते हैं।

इष्यामि वा वृषणो युध्यत आजौ ॥ ऋ. ८।९६।१४

'हे (वृषणः) शक्तिमान वीरो! (इष्यामि) मैं इच्छा करता हूं कि आप (आजौ युध्यत) युद्धमें संग्राम करते रहो।'

२५ पृतनाज्यम्

'पृतना-आज्य' पद निघण्टुमें युद्धके नामोंमें पठित है। 'पृतनानां अजनात् वा पृतनाज्यं जयनात्'। (निरुक्त) सैन्योंका परस्पर संघर्ष जहां होता है, एक दूसरेसे जहां अत्यंत संघर्ष होता है उस संघर्षका नाम 'पृतनाज्य' है। 'पृतना' का अर्थ सेना और 'आज्य' का अर्थ घुसकर मारते जाना।

जघ्नथुः नरा पृतनाज्येषु ॥ ऋ. ७।९९।४

'युद्धोंमें वीर परस्परोंका नाश करते हैं।'

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः।
ऋ. ८।१२।२५

हे इन्द्र! युद्धमें सब देव तुझे आगे रखते हैं।

इस रीतिसे घोर युद्धके अर्थमें 'पृतनाज्य' पद वेदमें प्रयुक्त होता है।

२६ अभीके

'अभीके' पद 'युद्ध' अर्थमें सुप्रसिद्ध है।

आरे स्याम दुरितादभीके ॥ ऋ. ३।३९।७

(दुरितात् अभीके) पापसे होनेवाले युद्धमें हम (आरे स्याम) दूर रहें।

२७ नेमधिता

'नेमधिता, नेमधिति' इन पदोंका अर्थ 'विभाग करना, तोडना, युद्ध करना, युद्ध' आदि होता है।

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते ॥ ऋ. ७।२७।१

(नरः) नेता लोग (नेमधिता) युद्धके समय इन्द्रको बुलाते हैं।

नेमधिता न पौंस्या ॥ ऋ. १०।९३।१३

'युद्ध करनेवाले वीर जैसे बलवान् होते हैं।' इस प्रकार नेमधिता पदके वेदमंत्रोंमें प्रयोग हैं।

२८ मीळ्हे

'मीळ्हे' पद युद्धके नामोंमें निघण्टुमें आया है। 'मीढ' का अर्थ युद्ध है, इसीका यह वैदिक रूप दीखता है।

मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ॥ ऋ. ९।१०६।१२

(मीळ्हे) युद्धमें (सप्तिः न) घोडा जैसा (वाजयुः) बल बढाता है।

२९ समरणे

'समर' पद युद्ध वाचक है, वही 'समरणे' हो गया है इसका उदाहरण यह है—

मा नः समरणे वधीः । ऋ. १।१७०।२

मा वृताः समरणे हवन्ते । ऋ. ४।४२।५

युद्धमें हमारा वध न कर। युद्धमें शत्रुसे घेरे गये वीर सहाय्यार्थ मुझे ही बुलाते हैं।

३० समोहे

'समोहे' पदका पाठ निघण्टुमें युद्धनामोंमें किया है। 'समूह' का अर्थ 'संगठन, एकत्रीकरण, समूह बनाना' है। ऐसे समूह बने, तो दो समूहोंमें मतभेद हुआ, तो युद्ध होता है। इस कारण 'समोहे' पद युद्धवाचक हुआ है।

समोहे वा य आशत नरः तोकस्य सनितौ ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ऋ. १।८।६;
अथर्व. २०।७१।२

(धियायवः विप्रासः) बुद्धिमान ज्ञानी (नरः) नेता वीर (तोकस्य सनितौ) पुत्रके उत्सवमें अथवा (समोहे वा ये आशत) युद्धमें जो इकठ्ठे होते हैं।

इयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ॥ ऋ. ४।१७।१३

'इन्द्र युद्धमें, अपने सैन्यकी चढाईके कारण, धूली उडाता है।' इस तरह 'समोहे' पद युद्ध अर्थमें वेदके मंत्रोंमें प्रयुक्त हुआ दीखता है।

३१ वृत्रतूर्ये

'वृत्रतूर्ये' पद वेदमंत्रोंमें युद्धके अर्थमें आता है। 'तूर' धातुका अर्थ 'मारना, काटना' आदि है। 'वृत्र-तूर्य' का अर्थ 'वृत्र' को मारना है, वृत्रके साथ युद्ध करना है देखिये—

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । ऋ. २।२६।२

'वृत्रके साथ जो लडाई हो उसमें अपने मनमें शुभ विचार युक्त रखो।'

३२ पृक्षे

'पृक्ष' पद अन्नवाचक है। अन्नके लिये जो युद्ध होता है वह 'पृक्ष' कहलाता है।

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे । ऋ. २।३४।४

'युद्धके समय उन-उन भुवनोंको तुम आश्रय देते हो।'

३३ आणौ

'आणि' का अर्थ तलवार है। युद्धमें तलवारका उपयोग होता है इसलिये 'आणौ' का अर्थ युद्ध हुआ है।

आणौ कुत्साय द्युमते सचाहन् । ऋ. ११६३।३

'युद्धमें तेजस्वी कुत्सका हित करनेके लिये शत्रुको मारा।'

३४ शूरसातौ

'शूर-सातौ' शूर पुरुषोंका जहां समर्पण होता है, शूरोंके जीवन जहां समर्पित होते हैं, वह युद्ध ही होता है।

त्वां हि इन्द्र अवसे विवाचो ।
हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ॥ ऋ. ६।३३।२

हे इन्द्र! (त्वां हि) तुझे ही (विवाचः चर्षणयः) विरुद्ध वचन बोलनेवाले लोग (शूरसातौ अवसे हवन्ते) युद्धमें संरक्षणके लिये बुलाते हैं।

३५ वाजसातौ

'वाज-सातौ' का अर्थ 'युद्ध' है। 'वाज' का अर्थ 'अन्न, जल, धन, बल, वाणी, शक्ति, यज्ञ, युद्ध, संघर्ष आदि है।

वृधे च नो भवतं वाजसातौ । ऋ. १।३४।१२

(वाजसातौ) युद्धमें आप हमारी शक्ति बढानेमें सहायता कीजिये।

वाजेभिः नो वाजसातौ अविड्ढि । ऋ. १।११०।९

(वाजसातौ) युद्धमें (वाजेभिः) अपने बलोंके साथ (नः अविड्ढि) हमारी सहायता कर।

भुवः सखाऽवृको वाजसातौ । ऋ. ४।१६।१८

'युद्धमें हमारा अकुटिल मित्र बनो।' इस प्रकार 'वाजसातौ' पद युद्ध अर्थमें वेदमें आता है। 'अन्नके लिये युद्ध, धनके लिये युद्ध' ये 'वाजसातौ' के अर्थ हैं।

३६ समनीके

'अनीक पद सैन्यवाचक है, (सं-अनीकं) जहां सैन्य एक दूसरेके साथ लडते भिडते हैं, उस समय युद्ध होता है, इस कारण (सं-अनीके) 'समनीके' पद युद्ध-वाचक हुआ है।

भोजं देवासो अवता भरेषु
भोजः शत्रून् त्समनीकेषु जेता ॥ ऋ. १०।१०७।११

'(भरेषु देवासः भोजं अवत) युद्धोंमें देव उदार-वीरका संरक्षण करें। (भोजः समनीकेषु शत्रून् जेता) उदारवीर युद्धोंमें शत्रुपर विजय प्राप्त करते हैं'।

इस एक ही मंत्रमें इस पदका प्रयोग है।

३७ खले

'खल' पद दुष्ट मनुष्यका वाचक है। दुष्टसे ही युद्ध होता है। इस लिये 'खल' पद युद्धवाचक हुआ है।

खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि ॥ ऋ. १०।४८।७

(खले पर्षान् न) पत्थरपर धान्य पटकते हैं उस तरह (खले भूरि प्रति हन्मि) युद्धमें बहुत शत्रुओंको हम मारते हैं।

'खल' का अर्थ 'पत्थर, युद्ध, दुष्ट' ऐसा होता है।

३८ खजे

'खज्' धातुका अर्थ 'हलचल करना' है। विशेष हलचल युद्धमें होती है इसलिये युद्धका अर्थ इस पदसे लिया जाता है।

स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा। ऋ. ६।१८।२
शतं ऊति खजं करः। ऋ. १।१०२।६

वह युद्ध करनेमें कुशल, बलवान्, संग्राम करनेवाला, वह सैकडों प्रकारसे हमारा संरक्षक बने।

३९ पौंस्ये

'पौंस्य' का अर्थ 'पुरुषत्व, बल, सामर्थ्य, युद्ध' है। पुरुषत्वसे युद्ध होता है इसलिये यह पद युद्धवाचक हुआ है।

स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या
अभिक्रत्वा नर्यः पौंस्यैः च ॥ अथर्व. २०।७६।७

(स नर्यः) वह मनुष्योंमें श्रेष्ठवीर (पौंस्यैः) युद्धके कर्मोंसे पृथिवी पर बडा हुआ है।

४० वाजे

'वाज' पद बलवाचक है। बलसे ही युद्ध होते हैं इस कारण इसका अर्थ 'युद्ध' हुआ है। निघण्टुमें यह पद युद्धके अर्थमें दिया है देखिये—

ऊर्ध्वः तिष्ठ न ऊतये
ऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ॥ ऋ. १।३०।६;
अथर्व. २०।४५।३

हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! (अस्मिन् वाजे) इस युद्धमें (नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ) हमारी रक्षाके लिये खडा रह।

अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान्। ऋ. ५।४।६

हे (नृतम अग्ने) वीरोंमें श्रेष्ठ अग्ने। (वाजे अस्मान् पाहि) युद्धमें हमारा संरक्षण कर।

वाजे वाजे हवामहे सखाय इन्द्रं ऊतये।
अथर्व. १९।२४।७

प्रत्येक युद्धमें इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं।

स वाजेषु नो अविष्यत्॥ अथ. २०।५६।१

वह युद्धोंमें हमारा संरक्षण करता है।

इस प्रकार 'वाज' पद वेदमंत्रोंमें युद्धवाचक है।

४१ अज्म

'अज्म' पद निघण्टुमें युद्धवाचक है। इस में 'अज्' धातु 'जाना, हमला करना' अर्थमें है। 'अज्मन्' पदका अर्थ 'गौ, हमला, युद्ध' है। उदाहरण ये हैं—

येषां अज्मेषु पृथिवी··· भिया यामेषु रेजते।
ऋ. १।३७।८

जिनके युद्धोंमें भूमि हमला होनेके समय कांपती है।

जयन्तं अज्म। ऋ. १०।१०३।१; अथर्व. ६।९७।३

युद्धमें जीतनेवाला इन्द्र है। इन उदाहरणोंमें 'अज्म' पद युद्ध वाचक है।

४२ सद्म

'सद्म' पदमें 'सद्' धातु 'बैठना, निवास करना' अर्थमें है। अपने निवास स्थानपर शत्रु हमला करते हैं उस समय युद्ध करना पडता है, इस कारण घरवाचक 'सद्म' पद युद्धवाचक हुआ है, देखिये—

अध स्वनान्मरुतां विश्वं आ सद्म पार्थिवम्।
अरेजन्त प्र मानुषाः॥ ऋ. १।३८।१०

(विश्वं पार्थिवं सद्म) सब पृथिवी परके युद्धमें (मरुतां स्वनात्) मरुतोंके शब्दसे (मानुषाः प्र आ अरेजन्त) मनुष्य कांपने लगते हैं। 'सद्म' पदका अर्थ वेदमें बहुत स्थानों पर 'घर, निवास स्थान' ऐसा भी है और कहीं 'युद्ध' ऐसा भी है।

४३ संयत्

'सं-यत्' का अर्थ 'मिलना, संगठन करना, पंक्तिमें खडा रहना, युद्धकी तैयारीसे रहना' आदि है। 'युद्धमें एक पंक्तिमें जैसे वीर खडे रहते हैं उसका भाव 'सं-यत्' पद बताता है। इसके उदाहरण ये हैं—

अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं
वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ऋ. २।४।८

हे अग्ने! (अस्मे) हमको (संयद्-वीरं) युद्धमें वीरताका कार्य करनेवाला (बृहन्तं वाजं) बडा बलवान् (सु-अपत्यं) जिसके साथ उत्तम संतान हो ऐसा (रयिं दाः) धन हमें दे दो।

उभे वृतौ संयती संजयाति। ऋ. ५।३७।५

'दोनों समय वह युद्धमें जीतता है।'

इस तरह वेदमंत्रोंमें ४३ प्रकार युद्धके वर्णन किये हैं। युद्धके इतने नाम हैं। ये नाम बताते हैं कि इतने युद्धके प्रकार हैं यह वेदके मंत्रोंमें निश्चित हुआ था।

निघण्टुमें 'संयुगे, समिति, संख्य, संयत' ये पद युद्धके अर्थमें लिखे हैं, पर इनके मंत्र वेदमें नहीं मिलते इसलिये ये पद यहां नहीं लिये हैं। अर्थात् निघण्टुमें ४७ युद्धनाम दिये हैं। वेद मंत्रोंमें हमें ४३ पद मिले। अतः ये चार पद हैं जिनके मंत्र अन्वेषणीय हैं।

युद्धके इतने नाम वेदमें आये हैं। युद्धके इतने नाम वेदमें रहने यह भी कोई कम विचारणाका परिणाम नहीं है। इतने प्रकारके युद्ध होते हैं यह वेदमें निश्चित हुआ है। युद्धोंके इतने प्रकार निश्चित करना यह कोई कम विचारणा की बात नहीं है। मानवोंमें जितने कारणोंसे जितने प्रकारके युद्ध हो सकते हैं। वे सब प्रकार इन पदोंसे दर्शाये हैं। यह एक युद्धका संपूर्ण शास्त्र ही निश्चित सा हुआ है।

वेदमन्त्रोंमें आनेवाले युद्धके नाम

वेद-विद्याओंके अनुसन्धानकी आवश्यकता

(लेखक— श्री वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी रोड, इन्दौर नगर)

वेदोंके प्रति हमारी उपेक्षासे आज हम अपने लक्ष्यसे बहुत दूर हो गये हैं और हमारी प्रतिज्ञाको हम भूल बैठे। 'वेद सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक है' यह हमारे वचनमें कथन मात्रमें ही रह गया है— परन्तु हमारे विश्वास और व्यवहार इससे विपरीत दिशामें बडी तेजीसे बढते जा रहे हैं। हमारे चारों ओर अवैदिक विद्याओंका, अवैदिक शिक्षा दीक्षाका और सभ्यता तथा संस्कृतिका दृढतम बन्धन बढता जा रहा है और हमें कसता जा रहा है। हमारी वैदिक सभ्यता, शिक्षा-दीक्षा एवं विद्याओंके पुनरुत्थान तथा पुनरुज्जीवनका प्रश्न हमारे लिये जीवन-मरणका प्रश्न है। परन्तु हम इसकी ओरसे पूर्ण उदासीन हैं और हमारे प्रयत्न तो हमारी सन्ततिको 'वेद सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक है' – इस वाक्यको उपहास्यापद कोटिमें मान्य किये जानेके लिये अग्रसर कर रहे हैं।

हमारा सम्पूर्ण व्यवहार एवं दैनिक जीवन जिन विद्याओं एवं जिस विज्ञानके आधारपर पग-पग चल रहा है उन विद्या एवं विज्ञानोंका आदि मूल अनीश्वरवादकी छत्रछायामें लालित एवं पालित है। उन विद्याओं एवं विज्ञानोंके आविष्कर्त्ता अनात्मवादी एवं अनीश्वरवादी थे। उनको वेद एवं ईश्वरपर विश्वास नहीं होनेसे उसका प्रभाव उन विद्याके अध्येताओं एवं उस विज्ञानके द्वारा उत्पन्न सुख सुविधाओंके उपभोक्ताओंपर भी अत्यन्त प्रभावशाली रूपमें पडता है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा दीक्षासे और वर्तमान विज्ञानसे तथा इससे उत्पन्न सभ्यता एवं संस्कृतिसे ईश्वर, वेद अध्यात्म, एवं धर्म विरोधी अभेद्य दुर्ग दृढतर होता जाता है।

हमने संसारके सामने अपनी प्रतिज्ञा तो घोषित करदी कि 'वेद सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक है' – परन्तु प्रतिज्ञा सिद्धिके लिये अभीतक यह भी नहीं बता सके कि वे सत्य विद्याएं कौनसी हैं, एवं कितनी हैं? जब हम यह भी नहीं बता सके तो उन विद्याओंको पढाना और उसके अनुसार व्यवहारका प्रचलन कैसे संसारमें हो सकेगा? जब हमारी प्रतिज्ञाको ही हम सिद्ध नहीं कर पाते और न उसकी सिद्धिके लिये ही प्रयत्न करते हैं तो प्रतिपक्षी-संसारका जनसमुदाय हमारी बात क्यों माने? वह तो हमारी बातोंका खण्डन ही करेगा और कहेगा कि- 'वेद विद्याओंकी पुस्तक नहीं है। उसमें तो आर्योंका इतिहास है। वह तो आर्यों द्वारा रचित सुन्दर काव्य मात्र है। उसमें तो आर्योंके सामाजिक एवं दार्शनिक जीवनका एवं विचारोंका चित्रण है। उसमें तो घोडा, गाय आदि पशु मारना लिखा है। उसमें जूआ खेलना लिखा है। मद्य पीना लिखा है। भाई बहिनके विवाह प्रस्तावादि सदृश बातें भी हैं।···' वैज्ञानिक एवं शिक्षित जगत् इन विचारोंसे वेदको देख रहा है।

यदि हम इन बातोंको सुनकर अधीर हो जाते हैं तो किसी न किसी प्रकारका उत्तर अपने ही क्षेत्रमें, अपने ही पक्षके व्यक्तियोंमें उसके खण्डनके लिये दे देते हैं। हमारा उत्तर प्रतिपक्षीके पास तो पहुँच ही नहीं पाता और न भूमण्डलके शिक्षित समाज और वैज्ञानिक जगत्के सम्मुख ही हमारी विचारधारा ही पहुंच पाती है। चाहिये तो यह कि स्व-पक्षस्थापनाका प्रयत्न तो सम्पूर्ण शक्तिके साथ सदा हम करते रहें। स्व-पक्षस्थापना तभी पूर्ण होगी जब कि हमारी शक्ति वेदोंसे सब विद्याओंके अन्वेषण और उसको व्यवहारोपयोगी बनानेमें लग जावे और जन-साधारणमें उसका इसी प्रकार प्रचलन हो जावे जैसा आज पाश्चात्य विद्या, विज्ञान एवं विचारधाराका भूमण्डलपर साम्राज्य है। अन्यथा प्रतिज्ञा असिद्धिका यही परिणाम हो रहा है कि आज हम वेदका नाम अवश्य लेते हैं, परन्तु व्यवहार रूपमें उसके प्रति हम, हमारी संस्थायें, सभायें और हमारी सन्तानें पूर्ण उदासीन हैं। यदाकदा वेदानुसन्धान कार्यके प्रति हममें उत्साह और उमंगके भाव आ जाते हैं। परन्तु योजना शून्य उत्साह, होनेसे सफलता कोसों ही सदा दूर बनी रहती है।

यदि अनुसन्धानकी योजना कोई वैयाकरण बनाता है तो उसे अपने द्वारा भाष्य रचनाका कार्य ही उत्तम प्रतीत होता है या महर्षिके वेदभाष्य पर व्याकरण प्रक्रियामें अपना

पाण्डित्य प्रदर्शन करनेको ही अनुसन्धानकी सफलताकी कसौटी मानता है। यदि कोई एम् ए., डी. लिट् व्यक्ति अनुसन्धानकी योजना बनाता है तो उसके अनुसार अनुक्रमणिका कार्य (Indexing work) और क्लिरिक (Clerical) कार्य ही अनुसन्धानकी श्रेणीमें बड़ा महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता है। यह बातें प्रकट करती हैं कि हमारे मस्तिष्कमें यथार्थ रूपमें अनुसन्धानकी कोई रूपरेखा है ही नहीं। पाश्चात्य विद्वानोंने वेदको जिस दृष्टिसे देखा, उसी दृष्टिसे उन्होंने अनुसन्धान भी प्रारंभ किया। वे अपने लक्ष्यके अनुसार कार्य कर रहे हैं। परन्तु हम भी उनका अनुकरण करनेमें अपना गौरव अनुभव करें तो हम अपने अनुसन्धान कार्योंसे विदेशियोंके वेद सम्बन्धी मतोंकी ही पुष्टि करनेमें सहायक सिद्ध हो सकेंगे। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि हम वेद सम्बन्धी अनुसन्धान अपने लक्ष्यके अनुसार ही करें।

हमारा लक्ष्य है वेदोंमें जो सब सत्य विद्यायें हैं, उनका मानव जातिमें प्रचलन हो और उससे प्राणिमात्रको सुखकी प्राप्ति हो। अतः इसकी पूर्तिके लिये सबसे प्रथम कार्य यह करना होगा कि हम एक सूची तैयार करें जिससे यह ज्ञात हो सके कि वेदमें कौन कौनसी विद्यायें हैं ? यह कार्य चारों वेदोंके सम्यक् परायणसे हो सकता है। इस कार्यमें कमसे कम इसे ५ वर्षका समय लगेगा और १-२ विद्वान् इस सूचीको तैयार कर सकेंगे। इसके साथ ही आज भूमंडल पर कितनी विद्यायें प्रचलित हैं इसकी भी सूची १-२ विद्वान् तैयार कर सकते हैं। इस प्रकार वैदिक विद्याओंकी तथा अर्वाचीन विद्याओंकी सूची तैयार करनेका कार्य ४ विद्वानों द्वारा ५ वर्षोंमें पूर्ण हो सकता है।

इस कार्यके पश्चात् १ वर्षमें दोनों प्रकारकी विद्याओंका अर्थात् पाश्चात्य देशोंमें प्रचलित विद्याओं और वेदकी विद्याओंका समन्वय एवं भेदका कार्य संक्षिप्त रूपमें यह हो सकता है कि वर्तमानमें प्रचलित विद्यायें वेदकी किस-किस विद्याके अन्तर्गत समझी जा सकती हैं और ऐसी कौनसी विद्यायें हैं जिनपर पाश्चात्य जगत्ने अभी तक कुछ भी कार्य नहीं किया है। जिन विद्याओंके बारेमें अभी तक कुछ भी कार्य एवं अनुसन्धान नहीं हुआ है उन पर यदि हम और हमारे विद्वान् अनुसन्धान कर सकते हैं तो उसके लिये हमें अपना अनुसन्धान मार्ग निकाल कर कार्य प्रारंभ करना चाहिये अथवा यदि उसके अनुसन्धानके लिये पाश्चात्यके विद्वानों एवं वैज्ञानिकोंको अनुसन्धानकी प्रेरणा दे सकते हैं तो देनी चाहिये। इस प्रकार सहयोगात्मक प्रणालीसे भी कार्य हो सकता है और जिन विद्याओंके विषयमें हम स्वतन्त्र रूपसे कार्य कर सकते हैं उनके बारेमें स्वतन्त्र रूपसे अनुसन्धान कार्य प्रारंभ कर देना चाहिये।

उदाहरणार्थ— ' यज्ञाद्भवति पर्जन्यः ' यह हमारे वेदशास्त्रोंकी एक सर्व सम्मत सुनिश्चित घोषणा है। इसको सर्व साधारणके लिये इतना सुपरीक्षित एवं अनुभव सिद्ध प्रमाणित कर दिया जावे कि जब चाहे तभी इसका प्रयोग करके जनता लाभ उठा सके।

वेदने— ' निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ' हमारे मुखसे प्रार्थनाके रूपमें वाक्य कहलवाया है। अतः ' निकामे निकामे ' जब-जब कामना करें, जब-जब चाहें, तब-तब वर्षा होजाये ऐसी स्थिति प्राप्त करनी होगी। प्रार्थनाकी सफलता इसीमें है। संकल्प या इच्छाके अनुसार वर्षा हो जाये ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिये मानसूनको बनाना, उसको इच्छानुसार स्थान पर केंद्रित करना, उसको घनीभूत करके मेघरूपमें लाना पुनः उसको न्यूनाधिक इच्छानुसार बरसाना और इस कार्यमें यदि वायुकी प्रतिकूलता हो जाये तो उसे भी नियन्त्रित करना, वायुके घनत्व और दबावमें इच्छानुकूल परीवर्तन करना इत्यादि क्रियाओंके जाने बिना यह कार्य संभव नहीं। किसी भी मन्त्रको पढ़कर किसी भी द्रव्यकी आहुति देने या दिलाने मात्रसे यह कार्य सिद्ध नहीं होगा। इसके लिये मन्त्र और आहुति दोनोंको ही विद्या एवं विज्ञानकी युक्तिसे प्रयुक्त करके व्यवहारोपयोगी बनाना होगा। जब इस वैदिक विज्ञानके व्यावहारिक रूप द्वारा जनताका कल्याण हो सकेगा तभी वेदके प्रति भ्रान्त धारणाओंका निराकरण जन मानसके हृदयोंसे स्वतः ही हो जावेगा।

' निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु '— जब-जब चाहें तब बादल वर्षा करें, इससे विपरीत स्थिति भी प्राप्त करनी होगी। अर्थात् जब-जब वर्षा न चाहें तब वर्षा न हो या वर्षा रुक जावे। अर्थात् वृष्टि कराने पर और न कराने कर या वर्षा रोकने पर भी पूर्ण नियन्त्रण अपनी इच्छानुसार

होना चाहिये। अतिवृष्टि और अनावृष्टि पर अपने नियन्त्रणसे कितना उपयोगी कार्य हो सकता है ? हम पृथ्वीको अन्न और फलोंसे समृद्ध कर सकते हैं। प्राणिमात्रके प्राणोंकी रक्षा एवं जीवनमें इस प्रक्रिया द्वारा हम महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर सकेंगे।

वेदोंमें वृष्टि विज्ञानके लिये बहुत कुछ महत्वपूर्ण बातें प्राप्त होती हैं। अतः इस विद्याका अनुसन्धान करें तो हम वैदिक विज्ञानसे प्राणिमात्रका लाभ कर सकते हैं और इससे वेदोंका महत्व विश्वमें स्थापित करके वेदोंके पठन पाठनके लिये समस्त देशोंको प्रेरणा दे सकते हैं। जब हम वेदोंको इस प्रकार विद्याकी पुस्तक प्रमाणित कर देंगे तो वेदके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानों द्वारा फैलाये गये भ्रान्त एवं मिथ्या वादोंका स्वतः ही निराकरण हो जायगा। और वेदके अध्ययनकी ओर सबकी प्रवृत्ति भी बढेगी। यह कार्य ५ वर्षमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। व्यर्थके खण्ड-खण्ड आन्दोलनोंमें अपनी शक्ति और धनको न लगा कर यदि आर्य जन आर्य समाजें, आर्य संस्थायें और प्रतिनिधि सभायें इस प्रकारके अनुसन्धान कार्योंमें अपने धन, शक्ति और जीवनको लगावेंगे तो वास्तवमें अपने लक्ष्य प्राप्तिमें सफल हो सकेंगे।

इसी प्रकार वेदमें लोकलोकान्तरोंमें जानेके बारेमें– 'ताभ्यां पतेम सुकृतामुलोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः–' (यजु. १८।५२) के द्वारा किन्हीं प्रकारके विमानों और उनके द्वारा लोकलोकान्तर जानेका संकेत मिलता है। यह कार्य संभव है तभी मन्त्रकी रचना भी ऐसी है। लोक लोकान्तर जानेकी विद्या प्राचीन कालमें प्रचलित थी। नारद ऋषिका लोकलोकान्तर जाना अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त मन्त्र, तप, औषधि एवं समाधि द्वारा लोकान्तर गमनकी सिद्धि शास्त्रोंने बताई है। यदि इस बारेमें अनुसन्धान प्रारंभ किया जावे तो वह निरर्थक सिद्ध नहीं होगा। संभव है अभी हम ५ वर्षमें या १० वर्षमें वह स्थिति प्राप्त न कर सकें, तथापि उस अन्वेषणसे मध्यवर्ती बहुतसे रहस्य प्रकट हो सकेंगे जो अन्य विद्याओंके अन्वेषणमें सहयोग प्रदान कर सकेंगे।

आजसे १० वर्ष पूर्व मैंने वेदकी छन्द शक्तिके आधार पर ऐसे यन्त्रोंके बारेमें विचार किया था जिनके आधार पर बिना पेट्रोल आदि इन्धनके ही यन्त्रका चालन हो सके। वेदमें छन्द शब्द केवल पिंगलके छन्दसे ही सम्बन्धित नहीं है अपितु बहुत व्यापक अर्थमें है। मैंने वेदके 'माच्छन्दः' के आधारपर यन्त्रमें गति एवं शक्तिका प्रादुर्भाव बताया था। यदि इस कार्यमें परीक्षण किये जायें तो ३ वर्षमें लोकोपयोगी परिणाम दृष्टिगोचर हो सकते है।

इसी प्रकार पशु पक्षियोंकी बोलियोंके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके अर्थ ग्रहण करनेके संकेत वेदमें उपलब्ध हैं। योगदर्शनमें इस विद्याके विकासका प्रकार भी बताया गया है। ५ वर्ष यदि इस कार्यमें लगाये जावें तो बहुत बडी सफलता प्राप्त हो सकेगी। अभी वर्त्तमान अन्वेषकोंने इस कार्यमें प्रगति नहीं की है। यदि हम कार्यको हाथमें लेकर कार्यमें अग्रसर हो जावें तो वैदिक विज्ञानकी प्रतिष्ठाको स्थापित करनेमें यह भी बहुत सहायक सिद्ध होगा।

इसी प्रकार– 'वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्' के आधार पर वेदने हमें विश्वका सूक्ष्म अवगाहन करनेकी प्रेरणा दी है कि यज्ञ सैकडों और सहस्रों प्रकारसे विश्वको धारण करनेवाला है। यज्ञके द्वारा विश्वका धारण, पोषण और उसके तत्वोंको शक्ति एवं सामर्थ्य किस किस प्रकारसे प्राप्त होती है और उनके सैकडों और सहस्रों प्रकार या विधियाँ क्या है तथा उनसे किस–किस प्रकार विश्वके कौने-कौनेसे पदार्थोंका धारण और पोषण हो रहा है, यही तो विश्वका महान् विज्ञान है जो वेदके दैवत एवं छन्दस विज्ञानोंसे विश्वमें व्याप्त है और जिसके माध्यमसे विश्वका कार्य सुव्यस्थित रूपसे चल रहा है। इसी विज्ञानके आधारपर प्रभुके यज्ञ द्वारा भी जो यज्ञ सदा सृष्टिमें चलता रहता है– विश्वका धारण, पोषण एवं संचालन हो रहा है और विश्वका जीवन बना रहता है। इसी विज्ञानको प्राप्त कर हम भी अपने यज्ञों द्वारा विश्वके अन्दर अपने अनुकूल वृद्धि एवं क्षय करके संसारको लाभान्वित कर सकते हैं।

उदाहरणार्थ– यदि शीतकी लहर वायुमण्डलमें व्याप्त हो जानेसे पृथिवीस्थ प्राणियोंको कष्ट हो रहा हो तो यज्ञके माध्यमसे उन तत्वोंका प्रसारण किया जावे जिससे अपने नियत क्षेत्रमें ही शीतकी हानिसे रक्षा हो सके या उस क्षेत्रके आग्नेय तत्वोंको सक्रिय करके वातावरणको समशीतोष्ण बनाया जा सके। इसी प्रकार ग्रीष्मकी प्रचण्डतासे यदि प्राणियों, वृक्षवनस्पतियोंको प्रतिकूलता हो जावे तो उसके

निवारणार्थ वातावरणके शीत तत्वोंको सक्रिय एवं बनाया जा सके। इसी प्रकार वायुकी गति बदलनेका कार्य भी संभव है। यदि वातावरण पर इच्छित नियन्त्रणके प्रयत्न एवं परीक्षण किये जावें तो बहुत कुछ सफलता यज्ञके विशाल विज्ञानके द्वारा प्राप्त हो सकती है। इस कार्यमें सहयोग प्राप्त करनेके लिये वेद एक अक्षय कोषके तुल्य प्रमाणित होगा।

इतना ही नहीं वेद तो विद्या और विज्ञानके क्षेत्रमें हमें बहुत अग्रसर करता है। यज्ञके विज्ञानसे अन्तरिक्ष और द्युलोकमें, नक्षत्र एवं ग्रहोंपर भी अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव डाला जा सकता है। प्रत्येक वस्तुके निर्माणमें विश्वकी समस्त शक्तियोंका भाग रहता है। परन्तु इनके गुण, कर्म, विपाक, वीर्य एवं प्रभाव तत्वोंके पृथक्-पृथक् होते हैं। जब वस्तु निर्मित होती है तो वह अपने अन्दर इन सब तत्वों एवं शक्तियोंसे युक्त होती है और जब यज्ञमें विकेन्द्रीकरण किया जाता है तो उसके तत्व और शक्तियाँ अपने मूल तत्वोंमें स्थापित हो जाती हैं। यदि उनका विकेन्द्रीकरण करते समय उनमें अन्य द्रव्योंके संस्कार उत्पन्न करनेके लिये इच्छित द्रव्य भी डाले जावें तो उन द्रव्योंके संस्कारोंके साथ भी उस द्रव्यके तत्व और शक्तियाँ अपने मूल द्रव्यमें पहुँचकर उसमें अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने लगती हैं। इसी सिद्धान्तके आधार पर भारतके ऋषियोंने चन्द्रमा मण्डलके क्षयका निवारण भी पूर्व कालमें किया था। यदि चन्द्रमामें सोमकी न्यूनता हो जावे तो पृथिवीस्थ वृक्ष, वनस्पतिकी बहुत ही हानि हो जावे। यदि यज्ञ द्वारा हम चन्द्रमामें सोमकी उत्पत्तिके प्रकारको समझकर उसका प्रयत्न करें तो उसका परिणाम पृथिवीके लिये हितकर होगा।

इसी प्रकार पृथिवीमें यदि उत्पत्ति शक्तिकी क्षीणता या न्यूनता हो जावे तो यह पृथिवीकी उत्पादन शक्तिका क्षय है। इस क्षयका निवारण भी इसी आधारपर हो सकता है। इसी आधारपर पृथिवीके अन्दर सुवर्णादिकी वृद्धिका कार्य भी यज्ञके विज्ञानसे संभव है। इसी प्रकारसे अनेक कार्य हैं जो वेदमें यज्ञके विज्ञानसे सम्बन्धित हैं और अनुसन्धान तथा परीक्षाओंकी बहुत आवश्यकता रखते हैं। उपरोक्त कार्य श्रद्धाके ही विषय नहीं हैं अपितु बड़े तर्क संगत हैं। जब हम इनपर विचार करते हैं तो इनकी सत्यता २+२ = ४ के समान प्रतीत होती है।

वेदमें– 'सुषुम्नः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः' कह कर बताया गया है कि सूर्यकी एक रश्मि सुषुम्ना है जिसको कि चन्द्रमा धारण करता है और वह प्राणियोंके लिये सुखप्रद है। महर्षि दयानंद सरस्वतीने इस मन्त्रका भाष्य करते हुए लिखा कि मनुष्योंको चाहिये कि वे सूर्य एवं चन्द्रकी रश्मियोंके विविध उपयोगको जानें। इस आधारपर यदि हम सुषुम्ना रश्मिको जानकर एक कृत्रिम उपग्रह चन्द्र तत्वोंका बनाकर भूमण्डलके चारों ओर घूमनेवाला इस प्रकारसे चलावें कि उसपर सुषुम्ना रश्मि पड़े और उसका लाभ चन्द्रमाके प्रकाशके अभावमें नियमित रूपसे हो सके तो रात्रिमें सदा प्रकाश ही बना रह सकता है। अनेक प्रयत्नों एवं परीक्षणोंसे यह भी संभव है। इस प्रकार वेदसे हमें उच्चतर विज्ञानकी भी महान् प्रेरणा मिलती है। आज जबतक हम इस प्रकारके विज्ञानोंसे विश्वको लाभान्वित नहीं कर सकते और वेदके विज्ञानको व्यवहारोपयोगी नहीं बना सकते तबतक हमारे सब प्रयत्न वेदके प्रचारके निष्फल ही होते रहेंगे। अतः वेदके अनुसन्धानके लिये हमें अपने विचारोंमेंसे अनुसन्धानके लिये मौलिक परिवर्तन करना होगा तभी सफलता प्राप्त हो सकेगी। ● ● ●

परम धर्मका पालन

महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीने भारतवर्षकी उन्नति हो तथा भारतवर्षके द्वारा पृथिवीपरके सब देशोंमें वैदिक धर्मका प्रचार हो, आर्य होकर सब देशवासी एक वेदीपर आयें, और अपनी आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक उत्क्रांति करनेका मिलकर विचार करें, इस महान् उद्देश्यके लिये आर्यसमाजकी स्थापना की।

परम धर्मका पालन

'**वेद सर्व सत्यविद्याओंकी पुस्तक है, अतः वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।**' यह आर्योंका परम धर्म निश्चित करके, आर्योंके सामने उन्होंने रखा। इस परमधर्मको सामने रखकर, इस ध्येयकी सिद्धिके लिये आर्योंको सदा प्रयत्नशील होना चाहिये यह महर्षिजीकी आज्ञा है।

पर इस महर्षिजीकी '**परमधर्मके पालन करनेकी आज्ञा**' का परिपालन कितने आर्य कर रहे हैं? कितने आर्य रोज वेदका पाठ कर रहे हैं, कितने आर्य रोज वेदके मंत्रोंका विचार कर रहे हैं और कितने आर्योंके घरमें वेदके ग्रंथ हैं और वेदानुवादके पुस्तक कितने आर्योंके घरोंमें दीख सकते हैं। इसका विचार किया जाय, तो इसका उत्तर जो॰ आजायगा, उतना ही महर्षिजीके परम धर्मका परिपालन हो रहा है, यह स्पष्ट होगा।

अन्य धर्मियोंके कार्य

ईसाई धर्मवालोंने अपने बायबलका अनुवाद १२७० भाषाओंमें करके, उसको मुद्रित करके प्रकाशित भी किया है और इन अनुवादोंको लेकर वे ईसाई धर्मका प्रचार कर रहे हैं। प्रतिदिन १०० हिंदु ईसाई धर्ममें जा रहे हैं।

मुसलमानोंने अपने कुरान शरीफका अनुवाद सात भाषाओंमें छापकर प्रकाशित किया है और ये अपने धर्मका प्रचार अपने ढंगसे कर रहे हैं।

वेद श्रेष्ठधर्मग्रंथ

आर्योंका प्राचीनतम अपूर्व धर्मग्रंथ '**वेद**' है। जगत् के अन्दर जितने धर्म ग्रंथ हैं, उनमें वेद प्राचीनतम पवित्र धर्म ग्रंथ है। आर्योंके पास यह जैसा प्रारंभमें था वैसा ही आज है। एक अक्षरका भी इसमें अपपाठ नहीं हुआ है।

विश्वके सब विद्वान् वेदका प्राचीनत्व तथा उसके अर्थ गौरवको स्वीकार करते हैं। ऐसा यह अपूर्व ग्रंथ 'वेद' है। इस वेदका अनुवाद संपूर्ण रीतिसे किसी एक भाषामें भी आजतक नहीं हुआ है। क्या यह आर्योंके लिये लज्जाकी बात नहीं है? महर्षिजीने आर्योंको परमधर्मकी पुस्तक दी, आर्योंने वेद परमधर्मकी पुस्तक है, ऐसा स्वीकार भी किया, पर हरएक आर्यने अबतक अपने घरमें वेदको न ही रखा और 'प्रतिदिन वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना आर्योंका परम धर्म है' इस परम धर्मका पालन भी नहीं किया।

आर्य प्रतिनिधिसभाने वेदके ग्रंथ आर्योंके घरघरमें रहें इस संबंधका कोई यत्न आजतक नहीं किया। यहांतक कि आज जितने आर्यसमाज भारतमें तथा भारतके बाहर हैं उनमें भी वेदग्रंथ होंगे ऐसा निश्चयसे नहीं कहा जा सकता। यह अत्यंत शोककी बात है। पर यह बात ऐसी ही है इसमें संदेह नहीं है।

वेदकी धूम

आर्यसमाजोंके महोत्सव होते हैं उनमें प्रायः वेदोंके गौरवपर ही व्याख्यान होते हैं। '**वेदोंकी धूम**' वगैरे शीर्षक देकर उनके वृत्तांत छापे जाते हैं, पर कोई आर्य अपने घरमें वेदोंके पुस्तक नहीं रखता और कोई रोज वेदमंत्रोंको पढनेका यत्न भी नहीं करता!!!

आर्य प्रतिनिधि सभाने उन वेदोंके अनुवाद प्रकाशित करके सस्ते देनेका उपक्रम भी नहीं किया। हर प्रान्तोंमें आर्य प्रतिनिधि सभा है और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा भी सर्वोपरि है। देहलीमें उसका बडा भवन भी है। पर वेदोंका अनुवाद छापनेका विचार भी आजतक उन्होंने नहीं किया। क्या वेदानुवाद प्रकाशित करना उनका कर्तव्य नहीं है? यदि यह उनका कर्तव्य नहीं है तो यह किसका कर्तव्य है?

भारतकी भाषाओंमें वेदानुवाद

भारतवर्षमें १६ प्रधान भाषाएं हैं, इनमें प्रथमतः वेदोंके अनुवाद प्रकाशित करने चाहिये। वे अबतक नहीं हुए। क्या आर्य प्रतिनिधि सभाएं इसका विचार कर सकती हैं? केवल 'कृण्वन्तो विश्वं आर्यं' का उच्चार करनेसे विश्वको आर्य बनाना नहीं हो सकता। विश्वको आर्य बनाना हो तो विश्वकी सब भाषाओंमें वेदके अनुवाद प्रकाशित करने चाहिये। यह प्रथम करना चाहिये और पश्चात् प्रचार हो सकेगा।

हमने वेद छापे हैं। हरएक वेदमें अपनी अपनी पद्धति है। ऋग्वेदमें अग्नि आदि देवताओंके बिखरे सूक्त हैं। कई मंडल ऋषिवार हैं, पर नवम मंडल देवतावार है। इसको देखकर मनमें विचार आता है कि वेदकी मंत्र व्यवस्था देवतावार होनी चाहिये या ऋषिवार होनी चाहिये। देवता उपास्य हैं और ऋषि उपासक। उपास्यके पास उपासक अपेक्षित वस्तु मांगता है। अर्थात् उपास्य देव देनेवाला है और उपासक ऋषि लेनेवाला है। इस कारण देवतावार मंत्रविभाग किये जांय तो पठनके लिये तथा विषय समझनेके लिये अच्छा होगा।

दैवत संहिता

हमने दैवत संहिता बनाई और अग्नि, इन्द्र, अश्विनौ आदि देवताओंके मंत्र देवतावार इकट्ठे किये। इससे प्रत्येक देवताके गुणधर्म इकट्ठे हुए और देवताओंके गुणधर्म ठीक तरह समझनेमें आनेकी सुगमता हुई। दैवत संहिता करनेसे सब देवताओंकी एक संहिता हो गई और चार संहिताएं पृथक् पृथक् घरमें अपने पास रखनेकी आवश्यकता नहीं रही।

विश्वराज्यके संचालन

दैवत संहिता बननेसे सब देवताएं संपूर्ण विश्व चलानेमें सहायक हो रही हैं यह बात स्पष्ट हो गयी। विश्वराज्य यह '**आधिदैविक व्यवस्था**' है, इसी तरह '**अध्यात्मराज्य**' शरीरमें चल रहा है। इन दो आधिदैविक और आध्यात्मिक राज्य व्यवस्थाओंको देखकर '**आधिभौतिक अर्थात् मानव राज्यव्यवस्थाका बोध**' हमें प्राप्त करना है और तदनुसार हमें अपना राज्य चलाना है।

अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत

अध्यात्म व्यवस्था प्रत्येकके शरीरमें चल रही है, अधिभूत व्यवस्था राष्ट्रशासनमें चलानी है और आधिदैविक व्यवस्था विश्वमें चल रही है। शरीरमें तथा विश्वमें स्वयं व्यवस्था चल रही है, इसमें जो व्यवस्था चल रही है वह अध्यात्म और आधिदैवत व्यवस्था है। इन व्यवस्थाओंको देखकर, वहांके नियम जानकर उन नियमोंके अनुसार अधिभूत अर्थात् राष्ट्रशासनकी व्यवस्था चलानी है। वेदमें इन तीनों व्यवस्थाओंका एक विशिष्ट नियमसे वर्णन किया है। इस लिये यह विशिष्ट नियम जानना वेदका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अत्यंत आवश्यक है। और यह कार्य दैवत संहितासे उत्तम प्रकार हो सकता है। इसलिये संपूर्ण वेदके सब मंत्र देवतावार संग्रहित करके सबका मिलकर एक ग्रंथ बनाना चाहिये।

ऋग्वेद	मंत्र	१०५५२
यजुर्वेद	मंत्र	२०००
सामवेद	मंत्र	१८००
अथर्ववेद	मंत्र	५९७७
		२०३२९

करीब २० हजार मंत्र चारों वेदोंके हैं। इनमें करीब ४००० मंत्र पुनरुक्त हैं। करीब १६ हजार मंत्र शेष रहते हैं। वे देवतानुसार बांट कर छापे जांय तो उनका एक उत्तम पुस्तक बन सकता है। इसमें एक भी मंत्र छोडा नहीं जायगा या छूट नहीं जायगा। जितने मंत्र चारों वेदोंमें हैं वे सब इस दैवत संहितामें आ जायेंगे और इनका एक पुस्तक बनेगा।

ग्राहकोंको भी सुविधा

आजके वेदोंका मूल्य ऐसा है—

ऋग्वेद	१०) रु.
यजुर्वेद	२) रु.
सामवेद	२) रु.
अथर्ववेद	६) रु.
	२०)

बीस रु. में चार वेद मिलते हैं। प्रत्येक आर्य २०) रु. देकर चारों वेदोंको खरीद सकेगा ऐसा दीखता नहीं। यदि दैवत संहिता चारों वेदोंकी इकट्ठी बनाई जाय और बिना

लाभके बेचो जाय तो १०) में दी जा सकती है। प्रचारार्थ ऐसा करना आर्य प्रतिनिधि सभाके लिये उत्तम है।

दैवत संहिता

हमने दैवत संहिता बनायी है और विक्रयार्थ रखी है। इस सुव्यवस्थासे वेद प्रचारमें सहायता होगी ऐसा हमारा विश्वास है। वेद प्रचार करना यह आर्य प्र. सभाका मुख्य ध्येय है।

वेदोंका अर्थ

वेदोंका अर्थ भी आजकी संहिताओंकी याज्ञिक व्यवस्थाकी अपेक्षा हम दैवत व्यवस्थाको पकड कर करें तो अधिक सुगम हो सकता है। एक एक देवता एक एक कार्य महत्वपूर्ण रीतिसे कर रही है जैसा—

अग्नि देवता ज्ञान प्रचारका कार्य करती है।
इन्द्र देवता शौर्यवीर्य प्रचारका कार्य करती है।
मरुत् देवता सैनिक व्यवस्थाका कार्य करती है।
अश्विनी देवता आरोग्य व्यवस्थाका कार्य करती है।

इस प्रकार अन्यान्य देवता अन्यान्य कार्य करते हैं। दैवतसंहिताकी व्यवस्थासे यह सब देवताओंके कार्यका ज्ञान यथायोग्य रीतिसे हो सकता है और वेदके ज्ञानका प्रसार भी शीघ्र हो सकता है।

आर्थिक सहायता

इसलिये आर्य प्रतिनिधि सभाओंसे प्रार्थना है कि वे इस कार्यमें जितनी शक्य हो उतनी सहायता दें। प्रतिवर्ष १० दस हजार रु. आ. प्र. सभा इस कार्यके लिये देवे तो हम पांच वर्षोंमें सब वेदोंका दैवतसंहिताके अनुसार अर्थ और स्पष्टीकरण प्रसिद्ध कर सकेंगे।

प्रति वर्ष दानके रूपमें देना संभव न हो तो इतने रु. के पुस्तक हमसे लें और अपने अन्दर कार्य करनेवाले आर्य समाजोंमें उन पुस्तकोंका प्रचार करें और अपना धन वसूल करें।

वेद प्रचारमें सहायता

वेदका प्रचारका कार्य इस तरह सहयोगसे बहुत हो सकता है इसका विचार आ. प्र. सभाके अधिकारी करें और वेद प्रचारके लिये कटिबद्ध हों यही इनके पास विनंती है।

हरएक आर्यसमाज हमारे पुस्तक खरीद कर हमें सहायता कर सकते हैं। पुस्तकें खरीदनेसे उनके पुस्तकालयकी वृद्धि होसकती है और सदस्योंका लाभ होसकता है।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल
पारडी जि. सूरत

आर्यसमाज और विचारोंमें भेद

(खण्ड २ रा)

(लेखक— श्री गंगाप्रसाद, रिटा. चीफ जज, जयपुर)

★

यह संस्था (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्था) सन् १९२४ ई. से चल रही है। वेदों और वैदिक साहित्यके विषयमें खोज व अनुसंधान Research करना इसका मुख्य उद्देश्य है। उक्त अनुसंधानके परिणाम रूप १५ जिल्दोंमें Vedic word Concordance ग्रन्थ माला तय्यार करना इसका मुख्य उद्देश्य है। ६ जिल्दें तय्यार हो गई हैं। शेषका काम जारी है। हर जिल्दका मूल्य ५०) है। वेदोंमें और ब्राह्मण आदि वेदोंके मुख्य साहित्यमें जितने शब्द हैं, हर शब्दकी वैज्ञानिक खोजके अनुसार पूरी व्याख्या दी जायगी। बडी खोजका कार्य है। ऐसा कार्य देशभरमें क्या, संसारभरमें अन्यत्र नहीं हो सकता। लगभग तीन लाख रुपयेका वार्षिक बजट समितिका होता है। गत वर्षकी रिपोर्ट मेरे सामने है ३ लाख १९ हजार रु. की आय हुई। ३ लाख ६१ हजारका खर्च हुआ, अर्थात् ४१ हजार रुपयेका घाटा रहा। घाटा बहुत बार रहता है। यह श्री पं. विश्वबन्धुजी जो संस्थाके प्राण हैं उसको जैसे तैसे पूरा करनेका यत्न करते हैं संस्थाके प्रधान श्रीयुत् बख्शीटेकचन्द M. A. L L. D., रिटायर्ड जस्टिस पंजाब हैं। उपप्रधान श्री डा० महाजन M.A. L L. D., रिटायर्ड चीफ जस्टिस सुप्रीम कोर्ट है।

श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वतीजीसे जिनके नामसे यह संस्था स्थापित है, मेरा परिचय पहली बार सन् १९०५ के दिसम्बर मासमें हुआ, जब कि बंबई आर्य समाजका वार्षिकोत्सव था। मैंने उसमें पहली बार इस विषय पर भाषण दिया था जो पीछे Fountain Head of Religion के नामसे पुस्तक रूपमें प्रकाशित हुआ। यह संस्था कुछ वर्ष पीछे स्थापित हुई। संयोग वश बंबई आर्य समाजके जिस वार्षिक उत्सवमें श्री स्वामीजीने अपनी योजनाको उपस्थित किया था उसका मैं सभापति था। इस प्रकार प्रारंभहीसे मेरी इस संस्थासे सहानुभूति है। मैं इसका स्थायी सदस्य Life member भी हूं।

इस समय श्री विश्वबन्धुजी आर्य समाजके सभासद नहीं हैं। वे एक समय आर्य समाज लाहौरके प्रधान थे। महात्मा हंसराजजीकी प्रेरणासे वे डी. ए. वी, कालिज अनुसंधान विधान के अध्यक्ष भी नियत होगये थे। सन् १९२८ में आर्य समाजके कुछ लोगोंने उनके विरुद्ध यह प्रचार करना आरंभ किया कि वे वेदोंमें इतिहास मानते हैं। मेरी संमतिमें वेदोंमें इतिहास मानना कोई सिद्धान्त विरुद्ध बात नहीं है। मेरी यही मान्यता है। इस प्रचारने धीरे धीरे आन्दोलनका रूप धारण कर किया सन् १९३४ में म. हंसराजजी भी इस आन्दोलनके समर्थक होगये। सन् १९३६ में महात्माजीकी प्रेरणासे लाहौरकी अन्तरंग सभाने श्री विश्वबन्धुको आर्यसमाजकी साधारण सदस्यता से भी वंचित कर दिया। विश्वबन्धुजीने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया आर्य समाजसे कोई त्याग पत्र भी नहीं दिया।'

पूर्वोक्त घटनाओंके विषयमें मैंने भी विश्वबन्धुजीको पत्र लिखे थे उनका अन्तिम उत्तर ४।८।६० का लिखा हुआ मेरे पास आया है मैं उस पूरे पत्रको ज्योंका त्यों इस लेखमें प्रकाशित करता हूं। वह निम्न प्रकार है—

' प्रिय मान्यवर, नमस्ते। आपके २०।६।६० के पत्रमें संकेतित विषयके संबन्धमें निम्न लिखित स्थिति समझनी और तदनुसार अपने लेखको ठीक कर लेनेका कष्ट कीजियेगा—

(१) मेरी शिक्षा दीक्षा आर्य समाजमें हुई ११-१२ वर्षकी अवस्थामें व्याख्यान आदि देने तथा प्रबन्ध कार्य करने लग गया था—

(२) सन् १९२०-२१ में मुझको भारत सरकार की ओरसे चालू एकमात्र ४००) मासिक की विदेशमें जाकर अध्ययनार्थ छात्रवृति मिल रही थी। म. हंसराजजी के विदेश पर मैंने इस वृत्तिको अस्वीकार करके डी. ए. वी. कालिज सोसायटीका आजीवन सेवक बनना स्वीकार किया। उसी समय मेरी बनाई योजनाके अनुसार उक्त सोसायटीके अधीन खोले गये श्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय का मैं प्रथम आचार्य नियुक्त हुआ। वहां पर इसी समय १९२३-२४ में श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजीकी सहायतासे मेरे संचालकत्वमें विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान का प्रारंभ हुआ।

(३) सन् १९२८-२९ में आर्य समाजके कुछ लोगोंने मेरे विरुद्ध यह प्रचार करना आरंभ किया कि मैं वेदोंमें इतिहास मानता हूं।

(४) उक्त प्रचार धीरे धीरे प्रबल आन्दोलन का रूप धारण करता गया। सन् १९३३- में जब कि लाहौर आर्य समाज प्रधान भी था। म. हंसराज भी इस आन्दोलनमें शरीक हो गये और उन्होंने मेरे लिये आर्यसमाजकी वेदी बन्द करा दी, तथा आर्य समाज लाहौरके अगले चुनाव में मुझे प्रधान पदसे च्युत करा दिया—

(५) महात्माजीके आदेशानुसार मैंने ब्राह्म महा विद्यालयके आचार्यका पद छोड़कर पं. भगवद्दत्तजीके स्थानपर डी. ए. वी. कालिज अनुसंधान विधानके अध्यक्षका पद स्वीकार किया।

(६) सन् १९३६ में आर्यसमाज लाहौरकी अन्तरंग सभामें पं. भगवद्दत्तजीकी प्रधानतामें एक विशेष प्रस्ताव द्वारा मुझे आर्य समाजकी साधारण सदस्यतासे भी बहिष्कृत सा कर दिया।

(७) मैंने आर्य समाजसे कभी कोई त्याग पत्र नहीं दिया। मेरे जीवनका अब भी यही लक्ष्य है कि मैं एक सच्चे आर्य समाजीके नाते एक मात्र सत्यका पुजारी बना रहूं। किसी कालमें मेरी दृष्टि भले ही मन्द रह जावे, परन्तु कभी भी दम्भयुक्त न हो।

(८) उपर्युक्त प्रकारसे मैं १९२४ से लेकर आज दिन-तक विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थानका और इसके साथ ही, सन् १९३४ से लेकर डी. ए. वी. कालिज अनुसंधान (विभागका) भी संचालक चला आता हूँ। ये दोनों संस्थायें दो स्वतन्त्र सोसायटियोंके आधीन हैं अर्थात् विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान सभा और डी. ए. वी. कालिज प्रबन्धकर्तृ सभा।

(९) सन् १९३६ में अपने उपर्युक्त बहिष्कारके बादसे मैं किसी सांप्रदायिक संस्थाका सदस्य नहीं बना, और न कभी बनूंगा ही।

(१०) आर्यसमाजकी दृष्टिसे उपर्युक्त घटनाका क्या परिणाम हुआ, इस विषयमें विवेचनार्थ मुझे अभीतक समय भी नहीं मिल पाया। विगत २५ वर्षोंसे मेरा मैं ही स्वयं रहा हूँ, और मैं इसीमें पूर्णतया सन्तुष्ट हूं। स्मरणार्थ धन्यवाद।

भवदीय (हस्ताक्षर) विश्वबन्धु

किन कारणोंसे श्री विश्वबन्धुजीको आर्य समाजकी सदस्यतासे अलग किया गया उनपर कोई प्रकाश नहीं डाला गया। इसलिये मेरी मान्यतामें उसका उनके व्यक्तित्व या Personality पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड सकता। वे अबतक डी. ए. वी. कालिज सोसायटीके सदस्य हैं। उस सोसायटीका ऐसा नियम है कि यदि कोई आर्य समाज उनकी संमतिके बिना उनके किसी सदस्यको बहिष्कृत करे तो उसके लिये आर्य समाजका उक्त निश्चय मान्य नहीं होगा।

श्री विश्वबन्धुजी वैदिक शोध संस्थानके आदरी (Honourary) संचालक (Director) हैं, और इतने वर्षोंसे बड़ी योग्यतासे उस विशाल कार्यको कर रहे हैं जो आर्यसमाजके लिये और संसारके लिये महान् उपयोगी है।

स्वप्न लोककी समस्याका उत्तर

(लेखक— श्री नाथूलाल वानप्रस्थी, वैदिक धर्म तथा संस्कृत विशारद, लश्कर)

श्री विश्वामित्रजी वर्मा विषहर जंगल, कमौरा (रीवा) ने 'वैदिक धर्म' दिसम्बर १९६१ के अंकमें 'स्वप्न लोक की समस्या' शीर्षकसे कुछ प्रश्न करते हुए उनके उत्तरोंकी मांग की है। यद्यपि प्रश्नकर्ता महोदय स्वयं मनोविज्ञानके प्रकाण्ड पंडित हैं तथापि उन्होंने परीक्षार्थ ही ये प्रश्न क्यों न किये हों, इनका उत्तर देना आवश्यकीय प्रतीत होता है।

प्रश्नकर्ता महोदयने यह प्रतिबन्ध भी लगाया है कि उत्तर प्रयोगानुभूत एवं स्वानुभूत दिये जावें, इन दोनों प्रतिबन्धोंके अतिरिक्त यह उत्तर प्रमाणभूत भी हों ऐसा प्रयत्न किया जावेगा। उत्तर निम्न प्रकार हैं।

(१) अन्तःकरणकी अपरोक्ष वृत्तिके द्वारा, इन्द्रियसे अजन्य जो विषय गोचर ज्ञानकी अवस्था है, उसे स्वप्नावस्था कहते हैं। (वृत्ति रत्नावली २५१)

(२) अन्तःकरणकी अपरोक्ष वृत्तिके द्वारा, इन्द्रियसे अजन्य विषय अगोचर सुखाकार वृत्तिकी अवस्थाको सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। (वृत्ति रत्नावली २५२)

(३) जाग्रतमें स्थूल शरीर द्वारा व स्वप्नमें सूक्ष्म शरीर द्वारा और सुषुप्तिमें कारण शरीर द्वारा विषय तथा निर्विषय सुखका उपभोग किया जाता है।

(४) जाग्रत शरीरमें इन्द्रियोंद्वारा जो क्रिया होती रहती है उसकी थकानको दूर करनेके लिये स्वप्नावस्था व स्वप्नावस्थाकी क्रियासे होनेवाली थकानको दूर करनेवाली सुषुप्ति अवस्था है।

१– उपरोक्त कथनानुसार जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें शरीर और मन थके हुए होते हैं और स्वप्न अवस्थामें स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें मन, चंचलताके रूपमें होता है किन्तु सुषुप्ती अवस्थामें भगवद्गीता ६।१९ वें श्लोकके अनुसार बिना वायु संचारके जिस प्रकार दीपककी ज्योति अविचल रहती है इसी प्रकार मन अविचल (चंचलता रहित) होता है।

२– उपरोक्त तीनों अवस्थाओंमें मनुष्यका आत्मतत्व प्राण वायुकी तरह एकसा रहता है और साक्षी एवं द्रष्टा रूपमें रहता है साक्षी एवं द्रष्टारूपमें रहनेका कारण यह है कि आत्मतत्व शरीर संघातसे भिन्न एवं ज्ञान स्वरूप है।

३– स्वप्न इसीलिये होते हैं कि स्थूल शरीरमें क्रिया करते-करते जो मानव शरीरमें थकान आ जाती है वह दूर हो जावे, अतः अन्य खेलोंकी तरह स्वप्न भी मानव-आत्माकी तफरीहका साधन है इसलिये मनुष्य जिस प्रकार खेलते-खेलते अंतमें खेलको अधूरे रूपमें ही बन्द कर देते हैं इसी प्रकार थकान दूर होनेपर स्वप्न भी अधूरे ही समाप्त हो जाते हैं।

४– जिस प्रकार बचपनसे बुढापेतक, स्वस्थ अथवा अस्वस्थ दशामें अनेक प्रकारके पदार्थ विज्ञान एवं विचार-धारामें अन्तर होता है इसी प्रकार समयानुसार अनेक प्रकारके स्वप्नोंमें भी अन्तर होता है और इस अन्तरके कारण ज्ञान एवं विचार धारामें उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

५– स्वप्न शारीरिक और मानसिक दोनों ही कारणोंसे ही होता है।

६– स्वप्न अलौकिक कारणोंसे नहीं होता। इह लौकिक कारणोंसे ही होता है।

७– अपनी इच्छासे कोई स्वप्न नहीं देखे जा सकते हैं और न अनिष्ट स्वप्न रोके जा सकते हैं। क्योंकि स्वप्न अवस्थामें स्थूल शरीर व इंद्रियोंका कोई अधिकार नहीं होता।

८– स्वप्नसे भूतकालके समाचार, भविष्यकी सूचना अथवा वर्तमानके दूरस्थ वृत्त नहीं जाने जा सकते। क्योंकि स्वप्न एक कल्पकी सृष्टिके समान होता है अतः जिस प्रकार हम पूर्व कल्पकी सृष्टिका हाल नहीं जान सकते इसी प्रकार स्थूल सृष्टिके भूत तथा भविष्यकालके समाचारोंसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

९– स्वप्नमें इहि लौकिक दृश्य दीखनेके अतिरिक्त अलौकिक दृश्य कोई नहीं दीखते जिन दृश्योंके संस्कार इस लोकमें पडे हुए हैं कि स्वर्गमें रहनेवाले स्त्रीपुरुषोंके पर लगे होते हैं तो इसी प्रकारके देव और परियां आदि दीखने लगते हैं जो केवल इसी लोकके संस्कार जन्य होते हैं।

१०– स्वप्नमें हमारे देखे जानेवाले दृश्यों और हमारे

स्वप्न शरीरके चित्र नहीं लिये जा सकते हैं। क्योंकि स्वप्न देखे जानेवाले दृश्य भौतिक नहीं होते और चित्र केवल भौतिक पदार्थोंके ही लिये जा सकते हैं।

११– स्वप्न देख चुकनेपर, जागनेपर उनकी स्मृति इस लिये रहती है कि स्वप्न सृष्टि मनसे उत्पन्न होती है और वही मन जाग्रतमें भी होता है परन्तु जाग्रतके अन्नमयकोष तथा भौतिक पदार्थ स्वप्नमें नहीं होते इसलिये जाग्रत अवस्थाका ज्ञान स्वप्नमें नहीं रहता।

१२– निःस्वप्न निद्रामें (सुषुप्तीमें) स्वप्न द्रष्टाकी दशा इंद्रियसे अजन्य सुखाकार वृत्तिकी होती है। और वह इंद्रिय तथा विषयोंके अभावके कारण स्वप्न नहीं देखता।

१३– शरीरकी अधिक थकान दूर करनेकी दवा, सुषुप्ति है और कम थकान दूर करनेकी दवा स्वप्न है, इसलिये स्वप्न शरीरकी कम थकानमें ही होते हैं अधिक थकानमें नहीं होते।

१४– स्वप्न कभी न हों या लगातार हों इसका कोई साधन नहीं है, क्योंकि आयु पर्यन्त जीवनकी क्रिया चलती रहती है, उसकी आवश्यकतानुसार स्वप्न व सुषुप्तीकी क्रियाएं भी होती रहती हैं।

१५– स्वप्नकी दशामें मन शरीरसे भिन्न नहीं होता वह शरीरके कण्ठ देशमें ही सम्पूर्ण स्वप्न सृष्टिकी रचना करता है, अतः शरीर छोड दूरस्थ लोकोंकी यात्रा न करते हुए कण्ठ देशमें ही सब लोकोंकी रचना करता है क्योंकि– ' बाहर लिंग जोनिकसे देह अमंगल होय ' (विचार सागर) यदि स्वप्न द्रष्टा शरीरसे बाहर निकल जावे तो शरीरकी मृत्यु हो जायगी, इसलिये वह जीवन पर्यन्त शरीरसे बाहर नहीं जा सकता। मनका स्वरूप निरवयव है।

१६– निःस्वप्नावस्थामें मनकी क्या दशा होती है प्रश्न १ के उत्तरमें बताया जा चुका है कि वायु संचार रहित स्थानमें दीपककी लौके समान मन चंचलता रहित होकर सुखानन्दका अनुभव लेता है।

१७– स्वप्न काल कितने समयतकका होता है इसका कोई प्रमाण नहीं है– शरीरकी थकानके अनुसार स्वप्न न्यूनाधिक कालमें होता रहता है।

१८– जिस प्रकार बीमारीमें कभी एक कभी दो कभी तीन या अनेक बार भिन्न भिन्न प्रकारकी मीठी व कडवी एवं कष्टप्रद औषधियां दी जाती हैं, इसी प्रकार शरीरकी थकान रूपी बीमारी दूर करनेके लिये स्वप्न भी कभी एक कभी दो कभी तीन या अनेक और भिन्न दृश्यवाले, कोई आनन्ददायी कोई भयानक एवं कष्ट प्रद होते हैं।

१९– मनुष्येतर प्राणियोंको स्वप्न नहीं आते क्योंकि मनुष्यों को ही आत्मज्ञानकी प्राप्तीके लिये स्वप्न व सुषुप्ती अवस्थाका निर्माण किया गया है, इसलिये पशुपक्षियों आदिमें बुद्धि एवं विज्ञानमय कोषकी विशेषता नहीं रखी गई है।

२०– सत्यवादी– हरिश्चन्द्रने विश्वामित्र मुनिके मांगनेपर राज्य दे दिया और स्वयं देशसे निकल गये। प्रथम तो यह कथा काल्पनिक मालूम होती है। यदि इसे सत्य ही मान लिया जावे तब भी स्वप्नका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि दूसरेके प्रयोग द्वारा स्वप्न होना असंभव है। इस लिये यह क्रिया संमोहिनी विद्याके द्वारा हो सकती है संमोहिनी विद्या मेस्मेरिज्मकी तरह होती है– जिस प्रकार मेस्मेरिज्ममें प्रयोगकर्ताको ' आमिल ' और जिसपर प्रयोग किया जाता है उसे ' मामूल ' कहते हैं और आमिल, अपने नेत्रोंकी विद्युत शक्तिके द्वारा मामूलको अर्धनिद्रित कर देता है व उससे जो कुछ चाहे कहलवा लेता है। आमिल दूसरेसे नोट लेकर उसके नंबरको देखता हुआ मामूलसे उसका नंबर बतानेके लिये कहता है तो वह मामूल उस नोटका नंबर शीघ्र बता देता है। इसी प्रकार विश्वामित्रजीने अपनी विद्युतके द्वारा राजा हरिश्चन्द्रको अर्धनिद्रित करके उससे राज्यको दानमें देनेके लिये कहलवा लिया हो तो ऐसा हो सकता है। किन्तु इस क्रियासे स्वप्नका कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि ये क्रिया भौतिक है और स्वप्न अभौतिक है।

२१– जाग्रत संसार और स्वप्न संसार दोनोंके स्थाईपनेमें आपेक्षता है यानी स्वप्नके समय स्वप्न संसार स्थाई प्रतीत होता है परन्तु जाग्रत संसारमें आनेपर वह अस्थाई सिद्ध हो जाता है इसलिये जाग्रत संसारकी अपेक्षासे स्वप्न संसारकी सत्ता अस्थाई और जाग्रत संसारकी सत्ता स्थाई है परन्तु ये दोनों सत्ताएं परिवर्तनशील होनेके कारण स्वरूपसे सत्य न होते हुए प्रवाहसे सत्य हैं।

२२– जाग्रत शरीर चेतना, और स्वप्न चेतनाके शरीरके तत्वोंमें यही अन्तर है कि जाग्रत शरीरकी चेतना भौतिक तत्वोंकी व स्वप्न शरीरकी चेतना अभौतिक एवं मानसिक होती है।

२३– पाश्चात्य विज्ञानके अनुसार आजकल स्वप्नको वासना मूलक तो कह सकते हैं परन्तु प्रतिबिम्बके रूपमें

नहीं कह सकते और स्वप्नमें जो कुछ दृश्य देखते हैं वह केवल भौतिक जगत्‌के देखे हुए ही दृश्य होना चाहिये यह भी नियम नहीं है क्योंकि देखे हुए, सुने हुए, स्पर्श किये हुए, स्वाद लिये हुए, गंध लिये हुए तथा सोच-विचार किये हुए इत्यादि अनेक प्रकारके संस्कारोंसे स्वप्न सृष्टि उत्पन्न होती है इसलिये स्वप्न सृष्टिका प्रत्येक दृश्य किसी न किसी ज्ञानइंद्रिय द्वारा सोचा हुआ ही होता है।

२४- स्वप्नमें अलौकिक विचित्र दृश्य दिखते हैं उनका मूल स्रोत अन्य लोकोंकी कथा सुनना तथा वहांकी काल्पनिक तस्वीरोंको देखना तथा उन पर विचार करना आदि है।

२५- अलौकिक दृश्य केवल काल्पनिक सुने तथा देखे हुए चित्रोंके आधार पर दीखते हैं इससे भिन्न उन लोकों, घटनाओं, वस्तुओं और व्यक्तियोंकी कोई सत्ता नहीं होती है।

२६- अलौकिक दृश्योंके स्वप्नोंकी रचनाको अन्तःकरण स्वतंत्र रूपसे करता है इसमें किसी अज्ञान लोककी प्रेरणा- किसी प्रकारकी नहीं होती।

२७- मानसिक कमजोरी, उद्वेग, मूढ, अवस्था, मृगी, अपस्मार, मूर्छा, अथवा अन्य मानसिक अव्यवस्थित, विकृतिकी दशामें जो लोग बातें या बक-बक करते हैं, उस चेतनामें और स्वप्नकी चेतनामें यही अन्तर है कि उपरोक्त सब प्रकारकी चेतना भौतिक होते हुए अन्नमय कोषके अन्तर्गत होती है। और स्वप्नकी चेतना अभौतिक होते हुए मनोमय कोषके अन्तर्गत होती है।

२८- जीवनकी विभिन्न आयु, शारीरिक और मानसिक दशाओंके अनुसार स्वप्नमें भिन्नता होनेका कारण यह है कि उत्तर क्रमांक २१ के अनुसार शारीरिक और मानसिक आयु की अपेक्षासे स्वप्न सृष्टि अत्यंत अस्थाई एवं स्वल्पकालिक होती है, और स्वप्नकी अपेक्षासे शारीरिक आयु दीर्घ कालिक होती है।

२९- उत्तर क्रमांक १५ के अनुसार स्वप्नलोक शरीरके कण्ठ देशमें होता है।

३०- सुषुप्ति लोक शरीरके नाभि देशमें होता है।

भागवत प्रेम

लेखक— श्री वसिष्ठ

⊙

'पवित्र और निष्काम, तेरा वह प्रेम जिसे हम अनुभव तथा व्यक्त कर सकते हैं, तेरी खोजमें हृदयोंको खोलनेके लिये एक मात्र कुंजी है। जो बौद्धिक मार्गका अनुसरण करते हैं वे ऐसा विचार बना सकते हैं जो अत्यन्त उच्च तथा सत्य हो; वे समझ सकते हैं कि सत्यजीवन अथवा वह जीवन जो तेरे संग एक हो चुका है, क्या है। परन्तु उन्हें उसका 'ज्ञान' नहीं; उन्हें इस जीवनका आन्तरिक अनुभव नामको भी नहीं होता और वे तेरे साथ हर प्रकारके सम्पर्कसे अनभिज्ञ हैं। जो लोग तुझे बौद्धिक रूपमें जानते हैं और क्रियात्मक दृष्टिसे अपनी मानसिक रचनामें, जिसे वे सबसे अच्छी मानते हैं, बन्द हैं, उनका परिवर्तन सबसे अधिक कठिन है। उनमें भागवत चेतना जागरित करनेमें बहुत कठिनाई होती है। केवल प्रेम ही यह चमत्कार साधित कर सकता है, क्योंकि प्रेम सब किवाड़ खोल देता है। सब दीवारें भेद डालता है, सब बाधाएं पार कर जाता है। तनिक सा सच्चा प्रेम अच्छेसे अच्छे उपदेशसे अधिक काम करता है।'

'हे प्रभु! मेरे अन्दर इसी प्रेमका फूल प्रस्फुटित कर दे, जिससे जो भी हमारे समीप आवें उन सबको यह सुगंधित कर दे और वह सुगंध उन्हें पवित्र बना दे'।

'इसी प्रेममें है शान्ति और आनन्द, सारी शक्ति और उपलब्धिका स्रोत। यह अचूक वैद्य है, परम संतोष प्रदाता है; यह विजेता है सर्वोच्च शिक्षक है।'

'हे प्रभु! मेरे प्रिय स्वामी! तू, जिसकी मैं मौन भाव से पूजा करती हूं तथा जिसके प्रति मैं पूर्णतया समर्पित हूं, और जो मेरे जीवनका शासक है, मेरे हृदयमें अपने पवित्र प्रेमकी ज्योति जगा ताकि यह तीव्र ज्वाला बन कर जल उठे और सब अपूर्णताओंको भस्म कर दे; अहंकारकी मृत लकड़ीको तथा अज्ञानके काले कोयलेको सुखदायी ताप और चमकते प्रकाशमें परिवर्तित कर दे'।

'हे नाथ! मैं ऐसी भक्तिके साथ, जो एक साथ प्रसन्नतापूर्ण तथा गंभीर है, तेरे अभिमुख होती हूं और याचना करती हूं कि—

तेरा प्रेम प्रकट हो,
तेरा राज्य स्थापित हो,
तेरी शक्ति संसार पर शासन करे।

(श्रीमाताजी)

बुद्धिवादी तार्किक प्रायः कहा करते हैं, 'मनुष्यको सत्यभाषी, सत्यकर्मी, परोपकारी, सभ्य, शिष्ट व नैतिक नागरिक होना चाहिये फिर ईश्वर उपासना, भगवत् भक्ति या ईश्वर प्रेमकी क्या जरूरत है? क्या ईश्वर हमारी तरह खुशामद पसन्द है जो अपनी खुशामदकी अपेक्षा रखता है'?

सत्य भाषण, सदाचार, सभ्य, शिष्ट नागरिकताका जहां तक सम्बन्ध है बुद्धिवादी ऐसा विचार बना सकते हैं किन्तु जैसे बिना धूपमें जाये, उसका सेवन किये बिना धूपके गुण व लाभ नहीं मिल सकते, स्वादु मिठाईको चखे बिना जैसे उसके गुण व लाभको नहीं प्राप्त कर सकते वैसे ही बुद्धिवादियोंके केवल सत्य भाषण सदाचार, सभ्य, शिष्ट नागरिकता आदिके सब शिष्ट व्यापार ईश्वरकी उपासना (पास पहुंचना) श्रद्धा, भक्ति, प्रेमको प्राप्त किये बिना भागवत प्रेमकी अनुभूति व सुख कल्याणको नहीं प्राप्त करा सकते।

पार्थिव पदार्थोंमें जिस प्रकार मौल, सार, सद्वस्तु स्नेह (तैल, वसा, घृत) है उसी प्रकार चेतनामें 'प्रेम' ही मौल सार, सद्वस्तु है। किन्तु जिसे इस सद्वस्तुकी चाह नहीं है, जिसका पशु-स्तरीय जीवन इसे सार तत्वकी अनुभूति व उपलब्धिके बिना सांस ले रहा है उसे भले ही मूलकी, सारकी, सत्वकी अन्तरतमकी अभी चाह न हो जो इस श्वास-धारणाके मूलमें भी लुका, छुपा क्षीण सा यह 'प्रेम' ही है जो टिम-टिमा रहा है और जिसने मलीनतामें मिल मलिन सा होकर ममताका विकृत रूप ले लिया है जिस-तिसके व्यक्तित्वमें—

समस्त हमारी धरा चलती कांदसे[1] व होती समाप्त गगनमें,
तथा 'प्रेम' जो था एकदा ईहा[2] तिर्यंक[3] की,
पश्चात् एक मधुर मूढता[4] हर्षोन्मत्त हियमें,
किसी मन प्रसन्नमें, एक प्रचण्ड व्यग्र साहचर्य,
बन जाता उरु[5] आध्यात्मिक स्पृहाका[6] आस्पद[7]।

\+ + +

एक एकाकी अंतरात्मा करता चाह 'एकमेव' हेतु,
हृदय, जिसने चाहा मनुज, पुलकता 'ईश'-प्रेम प्रति,
एक शरीर है उसकी चन्द्रशाला व उसका देवायतन।

\+ + +

तब की जाती सत्ता हमारी विमुक्त पृथकतासे;
सकल है स्वयं आप, अखिल अमूर्त-अनुभूत 'ईश' में।
एक 'प्रेमी' झुककर द्वारसे निज विहारके
बटोरता यह अखिल जगत् निज एकल अंत.करणमें।

\+ + +

प्रेमशाश्वत, अभिषिक्त विराजता 'ईश-प्रसाद' पर;
क्योंकि बढना अवश्य 'प्रेम' को ठीक स्वर्गोंके पार
और पाना अवश्य निज निभृत अभि प्राय अकथ्य;
तिसे बदलते हैं दिव्य उपायोंमें उपाय मानुषी अपने,
तथापि रखना निज प्रभुत्व ऐहिक आनन्द का।

\+ + +

'प्रेम' को थमना नहीं है जीनेसे जगती पर;
क्योंकि 'प्रेम' है उज्वल सन्धि द्यावाभूमि मध्ये,
'प्रेम' है अन्तरवर्ती 'परात्पर' का देवदूत यहां;
'प्रेम' है स्वत्व, स्वाम्य मनुजका परब्रह्म परमेश पर।

(सावित्रीसे)

\+ + +

किन्तु जो जन कार्यमें कारणसे, वृक्षमें बीजसे संयुक्त व प्रेरित होनेको उत्सुक हैं; वे मूलको खोजते व पाते हैं और तब वे देखते हैं कि सचर प्राणी-जगत ही नहीं अपितु अचर जड जगत भी इस मौल प्रेमसे कृतार्थ हो रहा है जैसा कि सूक्ष्म जगतको देखनेवाली बाला ऋषि सावित्री देखती है द्युमत्सेनके आश्रमके चतुर्दिश विद्यमान कान्तारकी प्रत्येक चर-अचर सत्ताको ओत-प्रोत भागवत प्रेमसे और देखती है कि यह 'प्रेम' की ही मुस्कान है जो हर चर-अचर सत्तामें सौन्दर्यसे श्रृंगार किये हर्षका गीत गा रही हैं, आह्लादका नृत्य कर रही है—

एक प्रदेशमें आयी यह मृदु, मंजु मुद्राके
जो प्रतीत भया एक देवस्थान हर्ष यौवनका,
निर्विघ्न, अभिनव आह्लाद का एक पर्वतीय जगत
जहां वसंत और निदाघलिटे साथ करते चेष्टा
निरुद्योग, अलस और स्नेहशील वाद-विवादमें
आलिंगित झगडते सहास्य कौन प्रशासन करे।

× × ×

तत्र प्रत्याशा ने फडफडाये पृथु चंचल गर्हत,
मानो एक अंतरात्मा ने झांका अपनी-आननसे
और सर्वने, जो था इसमें, किया अनुभव सामान्य स्वप्न
व विसरते हर्ष स्पष्ट तथा एक आता परिवर्त,
आत्मा के भाग्य व 'काल' की पुकारप्रति आज्ञाकारी,
जो किये व्यतीत गये एक शान्त विशुद्ध शोभा ओर
रहती थी लोचनों नीचे जो 'नित्यता' के।

× × ×

सपर्वत शिखरोंके समूहने धावा किया गगन पर
धकेल कर सपत्न स्कन्धों ओर स्वर्गके समीप तर,
जो थे कंचुकित मुखर एक लोह-परम्पराके;
प्रणत पृथिवी पडी उनके प्रस्तर[10]-पदों तले।

× × ×

नीचे वहां प्रणत पडा एक स्वप्न मरकत अरण्यों
तथा दमकते उपान्तोंका निद्रा तुल्य एकान्तः
विवर्ण उदक धाये मुक्ताओंके झिलमिल तन्तुओं तुल्य।

× × ×

टहलता था एक उच्छ्वास प्रसन्न पर्णों मध्ये;
मंद मुदा-भाराक्रान्तपदों द्वारा शीत-सुवासित
मंद ठेस खाती मंदानिल कढ लखाई पुष्पों मध्ये।

× × ×

शुक्ल सारस खडा था, एक सुस्पष्ट गतिशून्य राजि,
रत्नभूषित किये थल औ तरु कलापी[11], किंकिरात[12] ने,
पारावतके मृदु आर्तरवने किया समृद्ध समीर सानुराग
तथा प्रभा-पंखी वन्य कलहंस तिरे रजत-पल्वलों में।

× × ×

---

१ पंक, २ इच्छा, ३ पशु, ४ पागलपन, ५ विशाल, ६ उत्कंठ, ७ स्थान, ८ नवीन, ९ पंख, १० पत्थर, ११ मोर, १२ तोता।

*

वसुधा अकेली सोई निज श्रेष्ठ वल्लभ 'वैकुण्ठ' साथे,
अनाच्छादित[1] निज सहवासीके नीलारुण नेत्र प्रति ।

× × ×

अपने विलासमय उत्सवके अत्यानन्दमें
लुटा दिया इसने अपने स्वरोंका प्रेम-संगीत
नष्ट किया निज पुहुपोंका प्रतिरूप अनुरागमय
तथा तुमुलोत्सव निज परिमलों व रागरंगों[2]का ।

× × ×

एक गोहार व फलांग व हड़बड़ी चहुं ओर थी,
प्रच्छन्न पदपात इसके अहेरते प्राणियोंके,
लोमश मरकत इसके हयनर, किन्नर केशर का,
स्वर्ण और नीलोपल इसके उत्साह व दीप्तिके ।

× × ×

मायाकार इसके हर्षोन्मत्त सुख, कल्याणों का,
प्रमुदित, इन्द्रियासक्त-हृदयी, निरपेक्ष और दिव्य,
जीवन दौड़ा या छिपा इसके सुखद आस्पदोंमें;
झुका, झूमा अखिल पीछे 'प्रकृति' का प्रतापी प्रसाद ।

× × ×

आद्य शान्ति थी वहां और वक्षमें तिसके
अक्षुब्ध समाविष्ट था द्वन्द्व खग और मृगका ।

× × ×

नहीं पधारा था वह गभीर-ललाट शिल्पकार मनुज
स्थापने निज हस्त अन्य, सुखी अचेत वस्तुओं पर,
विचार था नहीं तहां, न मापक, ओजस्वी लोचन आयास,
नहीं था सीखा निज विरोध जीवनने निज लक्ष्य साथे ।

× × ×

तब था क्रममें इसके आद्य तुष्ट सूत्रपात साथे;
हर्षके एक सर्वगत संकल्प द्वारा प्रेरित
भये विकसित वृक्ष निज पलाश[3] परमानन्दमें
तथा वन्य वत्स झुके झूमें नहीं परिताप पर ।

× × ×

अन्त पर था ताकिया किये एक निठुर, भीम भूभाग
संकुल गावताओं तथा पवित्र सांशक शैलपादों[4],
शिखरों का, अन्तरात्माके एक नग्न तप तुल्य,
कंचुकित, दूरस्थ तथा निर्जनतः महान
विचार-आच्छादित अनन्ताओं समान स्थित जो
'सर्व-प्रतापी' के नृत्यकी हर्षोन्मत्त स्मित[5] पीछे ।

× × ×

एक संकुल विपिन-शीशने किया आक्रान्त गगन
मानो जैसे भया प्रकट एक नील-कंठ सन्यासी
दृषद्[6]-दहता ओर से निज पर्वत-कुटीरकी
निरखता हुआ संक्षिप्त आह्लाद वासरोंका;
रहा शय्या शायी पीछे विशाल वितत[7] आत्मा उसका ।

× × ×

एक प्रबल कलरव ने अमित अपर्यान की
लिया घेर कान, एक विषण्ण[8] व सीमारहित आह्वान
मानो संसार त्यागके एक अन्तरात्मा का ।

× × ×

यहां थे किये गये प्रकट रहस्य प्रांगण इस प्रति,
निभृत द्वार सौन्दर्य और विस्मय के,
गरुत[10] जो गूंजते गाङ्गेय[11] गेह, स्वर्ण-सदनमें,
जो मन्दिर माधुर्य का तथा आग्नेय पथ-मार्ग ।

× × ×

एक अभ्यागत, शोकाकुल सरणियों पै 'काल' की,
अनश्वर, मृत्यु और दैव के जुवे अधस्तात् ,
एक याजक मण्डलोंके आनन्द और पीड़ा का,
कान्तार विजनमें 'प्रेम' मिला सावित्रीसे । ❀

× × × (सावित्री)

---

१ नंगी, २ छवियों, ३ अभिनव हरे भरे, ४ पहाड़ियों, ५ मुस्कान, ६ पत्थर, ७ फैला हुआ, ८ एकान्तता, ९ म्लान गभीर, १० पंख, ११ स्वर्ण ।

❀ श्री अरविन्दकृत अंगरेजी काव्य 'सावित्री' से अनूदित ।

अगम्य पंथके यात्रिकको आत्म-दर्शन

[२]

मैं कौन हूँ ? मेरा स्वरूप कैसा है ?

लेखिका— चंचलबहिन माणिकलाल पाठक, प्रधाना आर्यसमाज, टंकारा, (सौराष्ट्र)

हम स्वयं कौन हैं ? हमारा स्वरूप कैसा है ? हम कहाँसे, किस रीतिसे, किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं ? अब वापस किस कारणसे, कौनसे स्थलपर, किस रीतिसे जायेंगे ? इस बातका विचार और निर्णय ही जीवनका प्रथम ध्येय होना चाहिये।

मैं कौन हूँ ? मुझमें कितना सामर्थ्य है ? वह कहाँसे आया ? किसने दिया और किसका आभारी मुझे होना चाहिए ? मेरी स्थिति, स्वरूप, स्थान, शक्ति, सामर्थ्य, गति, मुक्तिसे जानकार होनेका प्रयास करना वही मेरे जीवनका महान् अंतिम लक्ष्य है। स्वयम्को जान लेना तत्पश्चात् निकटवर्ती परमात्माका परिचय प्राप्त करना तुलनात्मक विवेक बुद्धिसे यथाशक्ति साध्य होना चाहिए।

जाति, धर्म, या शरीराकृतिके सम्बन्धमें हमारी पहिचानका यहाँ प्रश्न नहीं है, परन्तु शरीर रथको अद्भुत आन्दोलन देकर विविध गतिसे चलानेवाला और अमुक समयपर शरीरके सर्व व्यापारों, प्रवृत्तियोंको हमेशाके लिये संकलन करके उसको जड स्थितिमें रखनेवाला कौन है ? आत्मा अथवा जीवात्मा, वही जवाब है तो इस जीवात्माका अन्दर बाह्य स्वरूप कैसा है ? अमुक शरीर और स्थलके साथ संयोग कौनसे समय उपस्थित हुआ और क्षय कैसे हुआ वगैरह जीवनकी स्पर्शता खास उपयोगी विषय पर यथाशक्ति । प्रकाश डालना आत्माका धर्म है ।

प्रथम अपनेको जानना चाहिए, और फिर परमात्माको किन्तु आत्मा और परमात्मदर्शन इन्द्रियोंका विषय नहीं है, वह बुद्धिगम्य है । अतएव मनोमंथनसे अपनी आत्मामें उठती लहरीयोंद्वारा जीवात्माके स्वरूप, सुख, दुःख और जीवन यात्राकी यथाशक्ति समीक्षा करनी चाहिए ।

मनुष्यसे मनुष्य, पशुसे पशु, पक्षीसे पक्षी उत्पन्न होते हैं । इसी रीतिसे अनेक विध वनस्पति बीजानुसार पैदा होते हैं । यह हमेशाके क्रम कम बुद्धिवालेको सामान्य दीखते हैं, परन्तु थोडी गहराईमें उतर कर विचार करेंगे तो जगत् नियंताकी अद्भुत रचना, कला, कौशल्य और अगाध बुद्धि शक्तिका थोडा दर्शन अवश्य होता है । तब ही सामान्य विषयोंकी विशेषता किंचित् ख्यालमें आती है । तोभी मनुष्यकी परिमित बुद्धिके लिये तो वह अधूरा और अस्पष्ट ही रहता है । कारण विषयको उसके पूरे और सत्य स्वरूपमें उसके कर्ताके बिना और कोई समझ सके ऐसा संभव नहीं । मनुष्य प्रश्नकी परंपरामें धोखा खाते हुए जिज्ञासा वृत्तिकी तृप्तिके लिये अन्धेरेमें इच्छित वस्तुके दर्शनकी खोजमें विचरते दिखाई देते हैं ।

मैं और मेरा शरीर ऐसा सब कहते हैं । पर मेरा शरीर किस रीतिसे बना और मैं कौन हूं और मेरा स्वरूप कैसा है ? वह इस चर्म चक्षुसे हम देख नहीं सकते । बुद्धि और बुद्धिमान ऐसा कहते हैं कि मैं एक अति सूक्ष्म परमाणु हूँ और किसी द्रव्यमेंसे नहीं बना, या मुझे किसीने नहीं बनाया । मुझको बनानेवाला यदि कोई है तो वह मैं ही हूँ और जगत्में अनेक विध परिश्रम और भाग दौड करता हूँ । कितना आश्चर्य ! तब प्रश्न यह होता है कि 'मैं' इस शरीरके अन्दर बसा हुआ शरीर पुरीका स्वामी देहरूप महान् मंदिरका महंत एक परमाणु कि जिसको हम जीवात्मा अथवा आत्माके नामसे समझते हैं वह है या कि यह मेरा दृश्य शरीर ? आत्मा रूप सूक्ष्म परमाणु सचमुच क्या है कि जिसके द्वारा देहधारीकी विविध प्रवृत्तियां देखनेमें आती हैं ।

शरीरस्थ आत्माकी अनेक विध प्रवृत्तियां किस रीतिसे होती हैं ? कहांसे और किसी रीतिसे उद्भव होती हैं ? और फिरसे कहां घुस जाती है ? बल्कि इसमें भी न्यूनाधिकता नज़र आती है वह ऐसी रीतिसे कि मनुष्य, पशु, पक्षी, पतंग और जलचर प्राणी जो विविध प्रकारकी वस्तु बनाते है तथा व्याघ्र, सिंह, सर्प आदि हिंसक प्राणी रूप अनेक विधयोनियोंमें बसी हुई आत्माओंकी शक्ति, सामर्थ्य समान देखनेमें नहीं आते, मनुष्य योनिमें भी कोई एक धार्मिक तो कोई दिगन्तको गर्जानेवाले महर्षि दयानन्द और महात्मा गान्धीजी जैसे जन समाजको अन्धकारमेंसे प्रकाशमें लानेवाले मार्गदर्शक नेता। वैसे ही समर्थ सम्राटोंकी नाक पकडकर खींचनेवाले बलवान नेपोलियन, हिटलर जैसे साहसी शूरवीर, तो कोई रास्तेपर भटकता, अन्न वस्त्रके लिये चिल्लाता, समाजकी दृष्टिसे तुच्छ घृणित दीन, हीन, दुःखी, दरिद्र, अपमानित आत्मा है। तब कोई विद्वान् तो कोई मूर्ख, कोई राजा तो कोई रंक किसने सर्वत्र दीखनेवाली असमानता कहांसे आती है ? कहां और किस रीतिसे, कौनसे स्वरूपमें, कौनसे स्थानमें समाविष्ट होती है ? कोई श्रेष्ठ शक्ति अथवा हमारी मान्यता अनुसारकी महान् शक्ति परमात्माने ऐसी विरुद्ध विरुद्ध स्थितियोंको उत्पन्न किया है या उन्नत अथवा अधम स्थितिका उत्पादक मैं स्वयं ही हूं ? है कोई समर्थ जो संपूर्ण समाधान दे सके।

अपने आप ही खोज करनी चाहिए, शान्तिसे आत्माकी गहराईमें उतर कर मनोमंथन करनेसे सब प्रश्नोंका उत्तर सब विचारोंका निर्णय अपने स्वयंके प्रयत्नसे मिल जायगा। मनकी स्वस्थता, चित्तकी एकाग्रता, खोज करनेकी पूरी भावना और लगन दिलमें लगी होनी चाहिए। ऐसा होनेसे आत्मदर्शन थोडा बहुत अवश्य प्राप्त सकेगा।

अगम्य पंथके यात्रिकको 'आत्म दर्शन' अपने पहिचानके साथ परमात्माका परिचय पानेके लिये ही है। परमात्माका साक्षात्कार करनेके लिये है।

[३]
आत्माका निवासस्थान और आत्मविहार

नहानेका, धोनेका, खानेका, पीनेका, गानेका, गिनतीका, निद्राका, रक्षणका, स्नेह सौजन्यका, दया, परोपकार और परमात्माकी भक्तिका कार्य कौन करता है ? मानसिक अवयव या मानसिक अवयवके अन्दर प्रसारित हुए ज्ञानतंतु और क्रियातंतु करते हैं या आत्मा करती है ? मानसिक अवयव अथवा तंतु करते हैं ऐसा कहें तो मृत्युके पश्चात् वह कोई क्रिया नहीं कर सकते ऐसे अनुमानानुसार मस्तिष्कके अभावसे आत्मा अकेला भी कुछ क्रिया या अनुभव नहीं कर सकता। अन्धे मनुष्य मस्तिष्क और आत्माके होनेपर भी देख नहीं सकते, आंखपर पटलका आच्छादन आ जानेसे दर्शन तंतु, आत्मा और प्रकाश तीनों वस्तु दर्शनके लिये व्यर्थ साबित होते है।

शरीर और आत्माके संयोगके बिना परस्परकी सहाय और सहकारके अभावमें अकेला शरीर या अकेली आत्मा कुछ भी कार्य करनेमें अशक्त है।

मानसिक स्थूल स्थान और शरीर तो जड और नाशवंत है। हम हाथसे ही इसके अणु परमाणु अलग अलग कर देते है। अग्निमें जलाकर भस्म बना देते हैं। बाकी रहा आत्म धन, वह तो अदृश्य है, उसकी गति मुक्तिकी हमको कोई जानकारी नहीं। बुद्धिके अंदाज पर आधारित है। तब सुख दुःखका भोक्ता और कर्मका कर्ता किसको मानें ? क्रियाका उद्भव स्थान कौन है ? किसी भी क्रियाके लिये इच्छा आत्मामें उद्भव होती है। जाननेकी इच्छा अथवा ज्ञानके साथ गति भी आत्मामें ही होनी चाहिए।

आत्माका स्थान मानस शास्त्र मस्तिष्कमें है ऐसा कहता है। मस्तिष्ककी मध्यमें मध्यबिंदु जिसको हम ब्रह्मरन्ध्रके नामसे समझते हैं, वह आत्माका निवासस्थान है। आत्माके इसी निवासस्थानमें मानसिक तथा शारीरिक सब व्यापारोंको करनेवाले ज्ञानतंतु और क्रियातंतु आये हुए हैं। इस तंतु जालके मध्यमें आत्मदेव बिराजते हैं। उसमें इनके टहलने (घूमने, फिरने) के लिये रिक्तता है, यह रिक्तस्थान (खाली-आकाश) पांच हिस्सेमें बंटा हुआ है, इसको अवनिका कहते हैं। इस अवनिकामें एक तरहका तरल पदार्थ भरा

है। ये जवनिकाकी दिवारें ज्ञानतंतु तथा क्रियातंतुकी बनी हुई हैं और ज्ञानतंतु तथा क्रियातंतुके मुख जवनिकाके रिक्तमें रखे हुए है ऐसा मानते हैं- समझते हैं।

यह तंतु सब स्वरूपमें एक शरीरपर देखनेमें आते हैं तथापि अलग अलग कार्यके लिये योजाये हैं और उनकी रचना इनके कार्यके योग्य बनाई हुई है। शरीरमें जाते आते सन्देशके अनुसार तंतु जालके मध्यमें बैठा हुआ आत्माराम अपने इच्छित विषयके संसर्गमें आता है अर्थात् वह विषयके साथ सम्बन्ध रखता है, और तंतु प्रदेशके पास जाकर इस विषयका आस्वाद लेता है। अतएव अपनी इच्छानुसार नहानेके, खानेके, गानेके, गिनतीके, स्नेह, या सौंदर्यके, प्रभु भक्तिके, धन प्राप्तिके तंतु प्रदेशको इलेक्ट्रीक करंटके अनुसार स्पर्श करनेके साथ उस क्रियाकी आंतर बाह्य प्रकटता आत्मा अनुभव करती है। उस उस तंतु प्रदेशमें आन्दोलन और गति उद्भव होकर वे क्रियायें बाह्यान्तर प्राकट्य और परिणामको पाती हैं।

आत्माका निवास स्थान कितनेक लोग हृदयमें मानते हैं। किन्तु छातीकी पोलमें जो रक्त पम्प हृदय है वह तो रक्तका भ्रमण करानेवाला अवयव है। ऐसी मान्यताके स्थान पर मस्तिष्कके मध्य भाग रूप ब्रह्म हृदयमें आत्म देवकी प्रतिष्ठा माननी वह विशेष अनुकूल और उचित है। कारण शारीरिक और मानसिक सब प्रकारकी प्रवृत्तियोंका करना, हिलना चलना, विचारादिका स्थान मस्तिष्क है। इसलिये मस्तिष्क रूप साधन द्वारा होनेवाली क्रियाका करानेवाला भी उसी स्थानमें होना चाहिए ऐसा स्पष्ट होता है।

शरीर पुरीके मस्तिष्क मंदिरमें आत्मदेवकी स्थापना सर्वोपरि सत्ता ईश्वरके आधीन मानें तो जीवात्मा जिस स्थानमें बैठी है उस मस्तिष्ककी रचना और उसके अलग अलग प्रदेश, उसके कार्य और उसके उपयोगकी जानकारी जीवात्माको किसने दी? योजककी योजना और उसका उपयोग उसको किस रीतिसे समझमें आया? अर्थात् अमुक प्रदेश खानेकी क्रियाके लिये है और अमुक प्रदेश देखनेकी क्रियाके लिये तथा अमुक स्नेह और सौन्दर्यके लिये है। अमुक स्नान विधिके लिए है। यह तो बुद्धि, भक्ति भाव और औदार्य तथा अध्यात्मरतिको प्रकट करनेवाला प्रदेश है इत्यादि जीवराजने कैसे जान लिया?

अमुक मानसिक अवयवके पास स्वयं रहकर वह क्रियाको कराता है ऐसा मान लेवें तो एक मनुष्य जो निद्रा नहीं आनेसे दुःखी होता है, प्रभुसे प्रार्थना करता है और अपने आपको सलाह देता है कि मैं अब लेट जाता हूं, मुझे निद्रा आती है, मैं गाढ निद्रामें हूँ। ऐसी रीतिसे अनेक प्रार्थना करता है और यातना सहता है, तो भी निद्रा नहीं आती, निद्रा बिना दुःखी होता है तो जीवात्मा अपनी जवनिका रूप एक शान्त कमरेमें रहकर आराम क्यों नहीं लेता? उसे ऐसा करते हुए कौन रोकता है? अनिद्रा (जाग) के सख्त दुःखसे कौन दुःखी होता है? निद्राके लिये कौन तड़पता है यदि आत्मा स्वयं ही तड़पती है और स्वयं ही मस्तिष्कके सब प्रदेशसे परिचित है, स्वयं ही अपनी इच्छासे सब क्रिया करती है, तो निद्राकी संपूर्ण इच्छावाली आत्मा किसलिये निद्रा नहीं ले सकती? इसकी निद्रामें कौन और कैसी बाधा डालता है? रोक टोक करता है? जीवात्मा स्वयं इच्छासे सब करती है तो उसकी निद्राकी इच्छाकी तृप्ति क्यों नहीं होती?

एक सैनिकके सिरपर निद्राके स्थानमें बन्दूककी गोली लगी थी, गोली तो डाक्टरने निकाल दी परन्तु गोली लगनेसे निद्राके स्थानके ज्ञानतंतु और क्रियातंतुके कट जानेसे इस घटनाके बाद उसको कभी निद्रा नहीं आई वह दिन और रात जागता- अनिद्रित ही रहता था। समूची निद्रा नहीं आती थी तो भी उसका स्वास्थ्य अच्छा था। खाता, पीता और जीवनके सब व्यवहार पहलेके अनुसार ही करता रहता था।

दर्शन तंतुकी विकृतिसे आंख और आत्मा होनेपर भी वस्तु दर्शन नहीं होता। ऐसे निद्राके लिये नियत प्रदेश किसी विकारके कारण निष्क्रिय अथवा विकार युक्त बना हो तो निद्रामें अड़चन आती है, उत्पात होता है, वैसे उन्माद बने हुए अवयव (स्थान) के साथ आत्माका योग न होता होवे यह भी संभव है।

अहा! कितना अद्भुत! हम अपने आपको नहीं जानते! पर हमें जाननेकी कोशिश करनी चाहिए। यही हमारा सर्वतोमुख्य ध्येय होना चाहिए।

बुद्ध मत

लेखक- श्री सर्वजित गौड, (कुल्लू)

★

वैदिक धर्म आर्य जातिकी परम्परासे सम्पत्ति चली आई है। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक विद्याका यह भण्डार है। वेद परम पवित्र कर्म यज्ञ बताता है।

वैदिक धर्म मानव धर्म है। इसके दस लक्षण हैं। यह निम्नलिखित हैं—

१ धैर्य, २ क्षमा, ३ शान्ति, ४ चोरी न करना, ५ अन्दर बाहरसे शुद्ध रहना, ६ अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखना, किसी प्रकारका लालच न करना, ७ निश्चयात्मक तथा दृढ स्वभाव होना, ८ विद्वान् होना, ९ सत्यपालन करना तथा १० क्रोध न करना।

जब जब आर्य राष्ट्रमें राजा तथा प्रजा इनका पालन छोड कर मनमानी करने लगते हैं तो अत्याचार फैल जाता है। जब घोर अत्याचार फैल जाता है, तो कोई न कोई महान् आत्माका अवतरण इस जातिमें होता है।

वेद चाहता है कि आर्य जाति सब प्रकारसे समृद्ध हो और ऊपर लिखित दस बातोंका भली प्रकार पालन करे। इसलिये यज्ञ करना परम कर्म बताया है, क्योंकि इससे जाति संगठित होकर बलवान् होती है। यज्ञके तीन अंग हैं- इकट्ठा होना, देवपूजा तथा दान देना। यज्ञमें छोटे बडे सब इकट्ठे होते हैं। विद्वानोंका सत्कार होता है और गरीबोंको अन्न, धन तथा वस्त्र दान होता है। अग्निमें घी, जौ, सुगंधि वाली जडीबूटियों तथा द्रव्यका हवन होता है। इससे वायुमंडल शुद्ध होता है, बीमारियां दूर हो जाती हैं तथा वर्षा समय पर होती है तथा अन्न और घास खूब पैदा होकर जाति खुशहाल हो जाती है। गायें घास खूब होनेसे दूध बहुत देंगी, फिर घी तथा दूध खाकर जाति बलवान् तथा बुद्धिमान् होगी। फासिज़म (Fascism) कोम्यूनिजम (Communism) तथा सोशलिजम (Socialism) की मांग ही न रहेगी। अतः वैदिक यज्ञ सार्वभौम शान्तिका मूल कारण है!

जबतक आर्य राष्ट्रने ऊपर लिखित मानव धर्मका भली प्रकार पालन किया, तबतक आर्य जगतमें शान्ति रही। जब बहुत समय बीत गया, वेदोंकी मर्यादा भंग हो गई, वेदमंत्रोंसे अर्थका अनर्थ होने लगा, पशुयाग आरम्भ हो गया, घोर पापका जमाना आ गया तो कई प्रकारके रोग फैल गये, महामारी बीमारी आदि फैल गई। इसका मूल कारण ब्राह्मण माने जाते हैं। यह ठीक भी है। क्योंकि वेदका पढना पढाना, यज्ञ करना कराना तथा दान लेना और देना इनका कर्तव्य था। वह इसमें रह गये। क्योंकि राज्य शासन क्षत्रियोंके हाथमें था, वह स्वार्थवश हुये। जैसा चाहा वैसा ब्राह्मणोंसे तथा प्रजासे कराया। यदि क्षत्री अपने धर्मका पालन करते और दण्डका ठीक प्रयोग करते तो वैदिकव्यवस्था न बिगडती और हमें यह दिन न देखना पडता!

ऐसे घोर अवैदिक पशुयागके जमानेमें लगभग ५६६ ईस्वी पूर्व कपिलवस्तु राजधानीमें महाराजा शुद्धोदन शाक्य नरेशके कोशल राज्यमें सिद्धार्थ, जिसको गौतम भी कहते हैं, का जन्म हुआ!

आप बडे हुए और राज्यकाज संभाला। आपका विवाह हुआ, आपकी स्त्रीका नाम यशोधरा था। आपके पुत्र हुआ जिसका नाम राहुल था। आप ब्राह्मणोंके पशुयागरूपी अत्याचारसे दुःखी हुए। एक दिन नगरीमें भ्रमण करने गये। वहां एक बूढा कुबडा, दुःखी को देखा। कहीं मुर्दा लिये जाते देखकर बहुत उदास हो गये। सोचा कि संसार दुःख, मृत्यु तथा संतापका घर है। बीमारी, बुढापा तथा मौत तो जीवनमें है ही।

गौतमने सोचा कि मनुष्य जन्म मरणमें क्यों आता है। मौतके बाद क्या होता है? मोक्ष किसे मिलता है? ईश्वर क्या है?

गौतमने सन्यास किया। रात्रीमें अपनी पत्नी तथा पुत्रको सोया छोडकर जंगलमें चले गये। गयामें एक पीपलके वृक्षके नीचे समाधि लगाई। सातवें दिन समाधि खुली और एक स्त्रीने दूध पिलाया तो उन्हें ज्ञान हुआ कि

आत्माकी रक्षा ही परम धर्म है। इस बोधको पाकर वह बुद्ध कहाए और उन्होंने निम्न उपदेश किया:—

१ सद्विचार, २ सच्ची इच्छायें, ३ सत्य वचन, ४ सदुपाय, ५ सद्वृत्ति, ६ सद्भावावेश, ७ सद्मानसिकता। ८ सदाचार। यह अष्ट मार्ग हैं। ईश्वर तथा मनुष्यके बीच किसी मध्यमिककी आवश्यकता नहीं। मुक्ति अष्ट मार्गको अपनानेवालेको हो सकती है।

इस प्रकार भगवान् बुद्धने अपना उपदेश किया। बुद्ध-मत थोड़े समयमें सारे भारत, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, मलाया, स्याम, हिन्दचीन, लंका तथा इतर देशोंमें फैल गया। पशुयाग आदि बन्द हो गए। बाल, वृद्ध तथा जवान स्त्री पुरुष सब बुद्ध भिक्षु बन गये। जगह जगह मठ बन गये। हजारों भिक्षु उनमें रहने लगे। बुद्ध मत ही राज्य धर्म बन गया। भिक्षुओंका सारा खर्च राजाकी ओर से होने लगा।

भिक्षु देशदेशान्तरमें प्रचारार्थ घूमने लगे 'अहिंसा परमोधर्मः' का प्रचार हुआ। परन्तु जो भिक्षु पर्वतीय ठंडे देशोंमें जाते थे और भिक्षा करते थे उन्हें भिक्षा पात्रमें मांस मिलने लगा। उन्होंने यह समस्या भगवान् बुद्धके आगे रखी। उन्हें आज्ञा मिली कि वह किसी वस्तुकी इच्छा प्रकट न करें, जो प्राप्त हो स्वीकार कर लें। बुद्ध भगवान् ८० सालकी आयुमें महानिर्वाणको प्राप्त हुए।

भगवान् बुद्धके बाद बौद्धोंके दो भाग हुये। एक महायान, दूसरा हीनयान। महायान बुद्ध भगवान्को परमात्मा मानने लगे परन्तु हीनयान नहीं। महायान बोधिसत्व जो बुद्धका काम करते थे उन्हें देवता मानने लगे। हीनयान केवल बुद्धको मानते हैं।

समय बीत गया बुद्धमतके माननेवालोंके आचार, विचार रहन सहन, खानपानादिमें फर्क आ गया। स्त्री-पुरुषोंके साथ रहनेसे भ्रष्टाचार फैल गया। 'अहिंसा परमोधर्मः' नाम मात्र उपदेशार्थ रह गया। व्यभिचार तथा मांसाहार सर्वत्र फैल गया!

जहां बुद्ध भगवान आस्तिक थे, वहां उनके माननेवाले नास्तिक बन गये। जहां उन्होंने जीव हिंसाको दूर किया था वहां आज उनके मतावलम्बी निहायत बेदर्दीसे मांस प्राप्त करके खाते हैं।

लाहौल, तिब्बत, चीन आदि देशोंके लोग पशुके नाक, मुँह, गुदा, कान आदि सब सांसके द्वारोंको बन्द कर देते हैं यानी सूईतागेसे सी देते हैं। जब बिचारेका सांस फूल जाता है और इस बेबसीसे मर जाता है, तो काट कर खाते हैं। इस प्रकार वह उसके रुधिरकी एक बून्द भी बाहर नहीं गिरने देते। जो लोग बौद्ध कहाते हैं वह बुद्ध भगवान् के उपदेशके प्रति कुछ भी नहीं जानते।

एक बार श्री राहुल सांकृत्यायन जब कुल्लू यात्रा पर पधारे थे मैंने उनसे पूछा कि हिन्दू बुद्ध भगवान्को अवतार मानते हैं। आप क्या मानते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि हम उनको अवतार मानते हैं।

जितने मतमतान्तर इस समय प्रचलित हैं, यह सब ऊपर लिखित मानव धर्मके अंग हैं, परन्तु इनके माननेवालोंमें रीति रिवाज तथा सदाचारमें पापाचरणने स्वार्थवश घर किया हुआ है। इस भ्रष्टाचारको दूर करनेके काम सबोंको करना चाहिये।

परमात्माने मनुष्यको बुद्धि देकर संसारमें प्राणीमात्रमें उत्तम बनाया है। यदि वह सारे संसार पर राज्य करना चाहता है, तो उसे दयावान् होना चाहिये। किसीका अधिकार नहीं छीनना चाहिये। जो राज्य अधिकारी अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, वह अपने अधिकारवाला नहीं रह सकता। यदि कोई राष्ट्र अपने कर्मचारियोंको कर्तव्य पालन न करते हुये भी अपने पदपर कायम रखता है, तो वह राष्ट्र शीघ्र ही नष्टभ्रष्ट हो जाता है। इसी प्रकार जो जाति अपने धर्मपर नहीं चलती, वह शीघ्र अपने अस्तित्वको खो देती है। इसीलिये हमारे शास्त्र कहते हैं, कि जो धर्मकी रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

धर्म एव हतो हन्ति,
धर्मो रक्षति रक्षितः,
तस्मात् धर्मो न हन्तव्यो
मा नो धर्मो हतो वधीत्।

धर्मका अर्थ है कर्तव्य, फर्ज (duty) मनुष्यका कर्तव्य है मनु महाराजके कहे धर्मके ऊपर लिखित दस लक्षणोंका पालन करना। इसीके पालन करानेके लिये भगवान् बुद्ध आये और बुद्ध मतका प्रचार किया।

समालोचना

वैशेषिकदर्शनम् (ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्)

लेखक— श्री ब्रह्ममुनि विद्यामार्तण्ड, प्रकाशक— आर्यकुमार महासभा, आत्माराम रोड, बड़ौदा; मूल्य २)

महर्षि कणादके वैशेषिक दर्शनका स्थान भारतीय षड्-दर्शनोंमें अत्यन्त मुख्य है। इस दर्शनपर रावणका भी भाष्य था ऐसा प्रसिद्ध है, पर वह आजकल नहीं मिलता। प्रशस्तपादभाष्य वैशेषिक पर एक स्वतंत्र ग्रंथ है। इस भाष्यमें वैशेषिक दर्शनके सिद्धान्तोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। दूसरा भाष्य 'उपस्कार भाष्य' सूत्रोंपर है, जिसके रचयिता श्री शंकरमिश्र हैं। तीसरा भाष्य अभी विद्वानोंके सामने आया है श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी द्वारा कृत 'ब्रह्ममुनिभाष्य'। यह भाष्य भी संस्कृतमें है। विद्वत्तामें यह भाष्य अन्य भाष्योंकी कोटिमें ही रखने योग्य है। विषयका प्रतिपादन इतनी सुन्दर रीतिसे किया गया है कि पढते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों सूत्रकारने स्वयं ही भाष्य लिखा हो। भाष्यकारका मुख्य काम यही होता है कि वह सूत्रकारकी आत्मामें उतरकर उसके वास्तविक मन्तव्यको लाकर लोगोंके सामने प्रस्तुत कर दे। श्री ब्रह्ममुनिजी इस दिशामें कितने सफल हुए है, इसका सही अंकन पाठक भाष्य पढकर ही समझ सकता है।

भाष्यकी भाषा संस्कृत है, पर अति सरल। भाषा दार्शनिक होते हुए सहज गम्य। वैशेषिकदर्शनके कठिनसे कठिन स्थलोंको भी आसानीसे समझा देनेवाला यह भाष्य प्रशंसनीय है।

आशा है कि यह संस्कृत व दर्शनप्रेमियोंके लिए आकर्षणका केन्द्र बनेगा।

बालजीवन-सोपान

लेखक— स्वामी ब्रह्ममुनिजी विद्यामार्तण्ड, पुस्तक मिलनेका पता— सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान) नई दिल्ली १, पृ. सं. १२१ मूल्य— १ रु. २५ न. पै.।

बालक राष्ट्रके भविष्य हैं, उन्हींपर राष्ट्रकी आशायें अवलम्बित रहती हैं। अतः बालकोंका निर्माण करना राष्ट्रकी सेवा है। शुरूसे ही माता, पिता आचार्य द्वारा बालकके जीवनका निर्माण होना चाहिए, जिससे कि आगे चलकर वह राष्ट्रका एक सच्चा नागरिक बन सके। बालकको बनानेके मार्ग हैं, अनुशासन, ब्रह्मचर्य, विद्या, शिष्टाचार, सदाचार आदि। माता पिताको चाहिए कि वे अपने बालकोंको इनकी शिक्षा शुरूसे ही दें।

यह उपर्युक्त पुस्तकका सारांश है। श्री स्वामीजीने जहां दर्शनोंपर भाष्य किए हैं, वहां इस विषयपर भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। दर्शनोंके भाष्य करनेवाला विद्वान् बालोपयोगी साहित्य भी लिख सकता है, इस कथनका साक्षी स्वामीजीकी यह पुस्तक है।

इस पुस्तकमें मातापिताओंको उनके कर्तव्यके प्रति भी विशेष चेतावनी दी है। बालकका बनना बिगडना उसके माता पिता पर निर्भर है।

यह पुस्तक सभीके द्वारा पढने योग्य है।

परिवर्तनम्

मराठी लेखक— गणेशहरि केसकर; अनुवादक— बालाजी दत्तात्रेय तांबुले; प्रकाशक— रतनलाल अग्रवाल बी. ए., माडर्न बुक स्टोर्स; अकोला— धन्तोली, नागपुर- १; मूल्य ६२ न. पै.

सम्राट् महान् अशोकने कलिंग राज्यपर चढाई की। दोनों राज्योंमें घमासान युद्ध हुआ। विजय अशोकके हाथमें रही। पर लडाईके समाप्त होनेके बाद अशोकने कलिंग जनताकी जो स्थिति देखी, उससे वह बिलकुल हताश हो गया। चारों ओर खून ही खून; घायलोंकी चीत्कार; रणक्षेत्रमें मरे हुओंके लिए उनके सम्बन्धियोंका विलाप, यह सारा ऐसा दृश्य था जिसने अशोकके हृदयको कंपा दिया। इस बीभत्स दृश्यने सम्राट् अशोकको परिव्राट् बना दिया। उसने प्रतिज्ञा करली कि अब वह कभी भी लडाई नहीं करेगा, और महात्मा बुद्धके शान्तिमय उपदेशोंका पालन करेगा।

यह है संक्षिप्त कथा 'परिवर्तनम्' नामक लघु नाटिका की। पुस्तक मूलतः मराठी भाषामें है। यह एकांकी आकाशवाणी पर भी प्रसारित हो चुकी है। श्री केसकर मूल मराठी नाटकके प्रणेता हैं और उनके मित्र श्री ताम्बुलेजीने उसका संस्कृतमें अनुवाद किया है। संस्कृतसाहित्यमें ऐसे ऐतिहासिक नाटक नाटिकाओंकी बडी कमी है। श्री तांबुलेजीने नाटिकाका अनुवाद करके बडा भारी प्रयास किया है। भाषा समास बहुला न होकर सरल और सुगम्य है।

मूल लेखक और अनुवादक दोनों ही प्रशंसाके पात्र हैं।

●●●

तुलसीके उपवन लगाइये

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी, गवर्नमेंण्ट टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, P. O. पीपलखेड़ा, धार)

⊙

तुलसी एक असाधारण पौधा है, जिससे हम युगोंसे लाभान्वित हो रहे हैं। हमारी संस्कृतिमें भी तुलसीका महत्त्व सर्वोपरि है। घर घरमें तुलसीपूजा और तुलसीको दीपदानकी पुण्यप्रथा महिलायें सम्पन्न करती हैं। सभी श्रद्धा भावसे तुलसी पत्रको प्रसाद रूपमें ग्रहण करते हैं। पूजा अर्चनामें तुलसीको प्राधान्य है। तुलसीकी मालासे किया गया जप 'सात्विक' जप माना जाता है। इस प्रकार धार्मिक दृष्टिकोणसे तुलसी हमारे लिये प्रधान बनाई गई थी, जो हमारे मेधावी पूर्वजोंकी देन है, क्योंकि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे इसकी महिमा और गुण-शीलता भी बहुत अधिक है। आयुर्वेद शास्त्रोंने एक स्वरसे इसे स्वास्थ्य-वर्द्धक और रोग-निवारक घोषित किया है—

तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः।
दिशो दिशश्च पूतास्युर्भूतग्रामश्चतुर्विधः॥

तुलसीकी गंध लेकर वायु जहां कहीं पहुंचती है। उस दिशामें रहनेवाले प्राणी तथा स्थान पवित्र हो जाते हैं।

इसी पावन उद्देश्यको तो ध्यानमें रखते हुए हमारे ऋषि रूप शास्त्रकारोंने आदेश दिया है—

रोपनात् पालनात् सेकात् दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्।
तुलसी दह्येत पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम्॥

तुलसी लगानेसे, पालनेसे, सींचनेसे, दर्शन करनेसे, स्पर्श करनेसे मनुष्योंके मन, वचन और कायाके पाप नष्ट हो जाते हैं।

तुलस्यां सकला देवाः वसंति सततं यतः।
अतस्तामर्चयेल्लोकः सर्वान्देवान् समर्चयन्॥

तुलसीमें सब देवता बसते हैं, इसलिये संसारको उसकी अर्चना करनी चाहिये।

इसीलिये तो हम सभी तुलसीको देवी रूपमें पूजन करते हुए, यह भावना प्रार्थनाके रूपमें निवेदन करते हैं।

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।

(तुलसी तू अकाल मृत्यु हरण करनेवाली और सब रोगोंको दूर करनेवाली है।)

इसी प्रकार जहां हमारे धर्मशास्त्रोंमें इसकी महत्ता मुक्त कंठसे गाई है, वहीं आयुर्वेदीय शास्त्रोंमें भी कई स्थानोंपर तुलसीको रोग निवारक मानते हुए महिमा गान किया है।

तुलसी पित्तकृत् वातक्रिमिदौर्गन्ध्यनाशिनी।
पार्श्वशूलारतिश्वासकासहिक्काविकारजित्॥

—भाव प्रकाश

(तुलसी पित्तकारक, वात, क्रिमि, तथा दुर्गन्ध नाशक, पसलीका दर्द, रूखी खांसी, श्वास, और हिचकी आदि विकारोंको जीतनेवाली है।)

गौरवे शिरसः शूले पीनसेऽर्धावभेदके।
क्रिमिव्याधावपस्मारे श्वासनाशे प्रमोहके॥

च. सू. अ. २।५

(सिरका भारीपन, पीनस, सिरदर्द, आधाशीशी, मृगी, नासिका रोग, कृमिरोग तुलसीसे दूर होते हैं।)

तुलसी कटुता तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्।
दीपनी कुष्ठकृच्छ्वासपार्श्वरुक्कफवातजित्॥

(तुलसी कटु, तिक्त, हृदयको बल देनेवाली, उष्ण, दाह, पित्तकारक, दीपन, कुष्ठ दूर करनेवाली, श्वास तथा पसलीकी पीड़ा मिटानेवाली एवं कफवातको जीतनेवाली है।)

तुलसी कटुतिक्तोष्णा कृमिघ्ना श्लेष्मवातजित्।
अग्निमान्द्यहरा रूक्षा रुचिकृद्वांतिशान्तिकृत्॥

—राजनिघण्टु

(तुलसीकटु, तिक्त, उष्ण, कृमिनाशक, कफ और वातको जीतनेवाली, मन्दाग्नि दूर करनेवाली, रूक्ष, रुचिकारक और वमनको शान्त करनेवाली है।)

धर्मशास्त्रों तथा वनस्पतिशास्त्रोंके अनुसार तुलसीके

कई प्रकारके पौधोंका वर्णन मिलता है। जो निम्नानुसार है। १ सुरसा, २ दमनक, ३ मरुवक, ४ वनपर्वरी, ५ कुठेरक, ६ वर्वरी आदि नामोंका उल्लेख है। लेकिन निम्न तीन प्रकारके पौधे तो सभी जगह प्राप्त होते हैं।

१ तुलसी, २ वन तुलसी, ३ मरुआ।

वन तुलसी तथा मरुआमें हवा शुद्ध करनेकी पर्याप्त शक्ति होती है। मरूआ फोड़े फुन्सियोंकी अचूक औषधि है। कई मनुष्योंने इसकी रोग निवारक शक्तिसे लाभ उठाया है। प्रसिद्ध लेखक ओ. ई. रावर्ट्स्ने अपनी पुस्तक Native Remedie's use in snake bites (नेटिव रमैडीज यूज इन स्नेक बाइटस्।) में तुलसी द्वारा सर्पदंश पर किये जानेवाले कई प्रयोगोंका वर्णन किया है। उनमेंसे एक यह भी है—

'तुलसीकी जड और पत्ते पीसकर उसका रस करीब आधा छटांक रोगीको पिलाइये।'

प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री डा. आवेन लिखते हैं कि तुलसीमें रक्तको साफ करने तथा विजातीय कीडोंको मारनेकी अद्भुत शक्ति है। आंतोंमें इकट्ठे हुये विषको शोषन करने तथा ज्वरको हटानेकी इसमें पर्याप्त शक्ति पाई जाती है।

इसी प्रकार सरजार्ज वर्डउडने तुलसीसे मलेरिया रोग निवारणका अनुभव २९।४।१९०५ के 'टाइम्स' में लिखा था। इसी तरह कई विद्वानों, चिकित्साशास्त्रियोंने तुलसीके अमृतोपम गुणोंसे पूरा पूरा लाभ उठाया है।

डा. रामचरणजी महेन्द्र M. A. Ph. D. लिखते हैं कि— 'अनुसंधानसे विदित हुआ है कि तुलसीमें पायमल नामक एक तत्व पाया जाता है। जो कुष्ठ (कोढ) जैसी महाव्याधिके लिये गुणकारी प्रमाणित हुआ है। क्षयरोगियोंके शरीरपर यदि तुलसीका रस मला जाय, तो क्षय नष्ट होता है।

अतः आवश्यकता है कि अब हम सभी तुलसीके अमृत तुल्य गुणोंसे यथोचित लाभ लेनेका प्रयत्न करें। अब घर घरमें तुलसीके पौधे लगाकर उनकी सेवा करके इस अमृतवृक्षका प्रचार प्रसार कर दुर्गन्धमय वायु रंजित संसारको शुद्ध वायु प्रदान करवानेकी दिशामें कदम उठावें।

Regd. No. G. 71

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, इनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, इनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोण।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≠) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

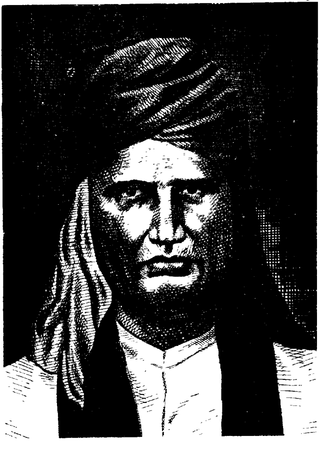
मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

वैदिक धर्म

नवम्बर १९६२

★

महर्षि दयानन्द सरस्वती



५० नये पैसे


सिर्फ संकट के समय ही
खतरे की जंजीर खींचिए।
डिब्बे में चढ़ने के पहले
यात्रियों को उतर जाने दीजिये।
रेलगाड़ी में भिखमगो और
वालों को उत्साहित न कीजिए।
सिर्फ थूकदान में ही थूकिये।
अपने भारी सामानों को
ब्रेक-वान में बुक कराइए।
दीपावली की शुभ-कामनाएं
आगामी वर्ष के लिए आपके सुख और समृद्धि की हम कामना
करते हैं। जब कभी भी आप यात्रा करें,
तो कृपया ऊपर लिखी करने योग्य और
न करने योग्य कुछ बातों की ओर ध्यान दें।
इनसे आपकी यात्रा अधिक सुखद बनेगी और
आप तथा आपके सहयात्री अधिक आराम अनुभव करेंगे।
पश्चिम और मध्य रेलें

वर्ष ४३

वैदिक धर्म

अंक ११

क्रमांक १६६ : नवम्बर १९६२

संपादक

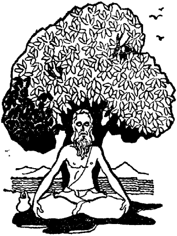
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

वैदिकधर्म

देवोंकी दिवाली

अभिश्यावं न कृशनेभिरश्वं
नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
राञ्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥
ऋ० १०।६८।११



जब (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (अद्रिं भिनत्) मेघको फोडा और (गाः विदद्) किरणोंको बाहर प्रकट किया, तब (पितरः) पालन करनेवाले देवोंने खुश होकर (श्यावं अश्वं कृशनेभिः) जिस प्रकार काले घोडेको गहनोंसे सजाते हैं, इसी प्रकार (नक्षत्रेभिः द्यां अपिंशन्) नक्षत्रोंसे आकाशको प्रकाशित किया, तथा (राञ्यां तमः अहन् ज्योतिः अदधुः) रातमें अन्धकार तथा दिनमें प्रकाश स्थापित किया।

जब बृहस्पतिने असुरोंको हराकर देवोंकी गायें उन्हें लाकर दीं तब देवोंने द्युलोकमें नक्षत्र रूपी दीपक जलाए और द्युलोकको प्रकाशित किया। यह देवोंकी दिवालीका रूपक उत्तम है।



स्वाध्याय-मण्डळ वृत्त

वेदमुद्रणनिधि— इस मास नीचे लिखे हुएके अनुसार वेदमुद्रण निधिमें धन जमा हुआ।

श्री. एम्. जी. जोशी, न्यूदिल्ही	१०.६५
,, बालमुकुन्द संस्कृत महाविद्यालय, पूना-२	४०
,, धी रजिस्ट्रार युनिवर्सिटी पूना, पूना-७	२४०
,, नरेन्द्र मुलजी ॲंड दुलेराय मुलजी, माझगांव	१५
कुल रु.	३०५.६५

पूर्व प्रकाशित रु.	१,२२,२३०.७८
कुल जमा रु.	१,२२,५३६.४३

प्रकाशन— सामवेदका मराठी और हिन्दी प्रकाशन जारी है। हिन्दीमें अथर्ववेदका प्रथम भाग **ब्रह्मविद्या प्रकरण** (ब्रह्मविद्याके हजार मंत्रोंका अनुवाद और व्याख्या सहित संग्रह) प्रकाशित हो गया है।

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पारडी

युग निर्माता

महर्षि दयानन्द सरस्वती

लेखक

श्री भास्करानन्दजी शर्मा, सिद्धान्तवाचस्पति

★



दीपावलीका महान् पर्व प्रति वर्ष आता है। इसी दिन कार्तिक वदी अमावस्या सम्वत् १९४० को वीर विक्रमके बीसवीं शताब्दीके अद्वितीय वेदोद्धारक, आर्य समाजके संस्थापक आदित्य ब्रह्मचारी आचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वतीकी उच्च आत्माने इस नश्वर शरीरका परित्याग कर, ब्रह्माण्ड नायक परमपिता परमात्माके क्रोडमें आश्रयका आनन्द प्राप्त किया। महापुरुषोंका देहावसान साधारण पुरुषोंकी मृत्युके समान केवल शोकजनक और रुलानेवाला नहीं होता है। उनका प्रादुर्भाव और अन्तर्ध्यान दोनों ही लोक कल्याण और आनन्द प्रदानके लिये होता है। ऐसे महापुरुष परोपकारमें अपने प्राणोंको अर्पण करते हैं। संसारके लोगोंके सुखके लिये अपने शरीरकी बलि देते हैं; इसलिये जनता उनके महान् बलिदान पर उनका कीर्तिकीर्तन और गुणगान करके एक प्रकारका आनन्दानुभव करती है। अतः आज महर्षि दयानन्दके गुणानुवादका अवसर उपस्थित है। महर्षि दयानन्दका आर्य जनता एवं मानव समाज तथा प्राणीमात्र पर इतने असंख्य और अनन्त उपकार हैं जिसका वर्णन करना साधारण लोगोंके शक्तिके बाहर है।

ऋषिवर दयानन्दके बचपनका नाम मूलशंकर था। इनका जन्म गुजरात प्रान्तमें मौरवी राज्यके अन्तर्गत टंकारा नामक ग्राममें एक औदीच्य ब्राह्मण कुलमें करशनजीके घर हुआ। इनका बड़े ही लाडप्यारके साथ पालनपोषण हुआ। बालक मूलशंकरको उनके बचपनमें घटित तीन घटनाओंने घरत्यागने पर विवश किया। शिवरात्रीके दिनकी घटित घटनाने इनके हृदयमें सच्चे शिवरूप परमात्माको प्राप्त करनेकी प्रेरणा उत्पन्न की। भगिनी और चाचाकी मृत्युकी घटनाने मृत्युञ्जय बननेके मार्गका निर्देश किया इनके पिताजी अपने पुत्र मूलशंकरको वैराग्यकी ओर बढ़ते हुए देखकर बहुत ही चिन्तित हुए और गृहपाशमें बांधनेके लिये इनके विवाह करानेकी तैयारीमें भी लग गये—

लेकिन ईश्वरकी इच्छा मूलशंकरको कुछ और ही कार्यमें लगानेकी थी। पिताका सारा प्रयत्न विफल गया और करीब अठ्ठारह वर्षकी अवस्थामें इन्होंने हमेशाके लिये घरको त्याग दिया। अनेक कष्टोंको झेलते नदियों, पहाड़ों, जंगलोंको पार करते रिछादि हिंसक भयंकर जानवरोंको भी अपने तेजसे हटाते योगाभ्यासके निमित्त योगियोंके तलाशमें गंगोत्री,

जमुनोत्री, अलमोड़ा, केदारनाथ, बद्रीनाथ और भी अनेक हिमालयमें पवित्र स्थानोंका परिभ्रमण कर तथा दक्षिणमें नर्मदा नदीके किनारे भी अनेक योगियोंसे योगाभ्यासकी विधि सीखकर मथुरामें दण्डी स्वामी विरजानन्दजी महाराजके पवित्र चरणोंमें पहुंचे। वहां २½ वर्ष तक वेद और वेदके अङ्ग और उपाङ्गोंका अध्ययन समाप्तकर जगदुद्धारक, वेदार्कप्रकाशक स्वामी दयानन्द सरस्वतीके रूपमें संसारके सामने प्रकट हुए।

कर्मयोगी दयानन्दका सर्व श्रेष्ठ रूप जो सर्व प्रथम हमारे सम्मुख आता है वह जगदुद्धारक, सद्विद्या प्रचारक, संसारोपकारक, सार्वभौम आर्यमहोपदेशक, शास्त्रार्थ महारथी, तर्क वाचस्पति, वेदमार्तण्ड संन्यासीका रूप है। जिस प्रकार वे भारतके प्रचलित मतमतान्तरोंकी समालोचना करते थे उसी प्रकार अन्य देशोंमें प्रादुर्भूत अन्य मतोंकी भी छानबीन करते थे। सब संसारके लिये परमपिता परमात्मासे उपदिष्ट वैदिक धर्म ही उनको शिरोधार्य था और उसी वैदिक सिद्धान्तका सब मानव समाजको उपदेश देते थे। संसारका उपकार करना इनके जीवनका मुख्य लक्ष्य था।

मन्त्र द्रष्टा ऋषिवर दयानन्दका दूसरा रूप समाज सुधारकके रूपमें हम देखते हैं। इनके प्रादुर्भूत होनेके पूर्व भारत अगणित कुरीतियों और कुप्रथाओंका आखेट स्थल बना हुआ था। समाजमें बाल विवाह तथा वृद्धोंके विवाहकी घातक प्रथा जारी थी। 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' इसको लोग ब्रह्मवाक्यके रूपमें मानने लगे थे। जन्मसे जात्यभिमानके चिरकालसे वृद्धमूल विचारने समाजको खोखला कर दिया था, महर्षि दयानन्दने अपने प्रचण्ड पाण्डित्यके प्रतापसे इन सब सामाजिक कुरीतियों पर वज्र सा प्रहार किया उसके कारण ही समाजसे आज उस प्रकारकी बहुतसी कुरीतियां दूर हुई और यह समाज जाग्रत हुआ। महर्षिको अपने इस पवित्र कर्तव्यको निभाते हुए एक नहीं, दो नहीं बल्कि अठारह बार जहर खाना पड़े।

रावकर्णसिंहके लपलपाती चमचमाती तलवारके वारका सामना करना पड़ा। अमृतसरकी सभामें इनके ऊपर भयंकर जहरीला सर्प डाला गया। अनेक स्थानों पर रूढी वादियों द्वारा इन पर ईंट, पत्थर आदि बरसाये गये, अनेक प्रकारसे अपमान किया गया, इन ईसाइयोंका विदेशियोंका ब्रिटिश गवर्नमेन्टका एजेन्ट तक बताया गया तो भी ऋषिवर अपने पवित्रकार्यके करनेमें अहर्निश लगे रहे, लेशमात्र भी निराश और दुःखी नहीं हुये। ईश्वर विश्वास और आत्मविश्वासके आधार पर आगे ही आगे बढते गये और अन्तमें उनको न्यायमूर्ति गोविन्दरानाडे, बाबू विपिनचन्द्रपाल, राजाराममोहनराय जैसे सहायक शुभचिन्तक तथा पं. लेखराम, गुरुदत्तविद्यार्थी एम. ए., स्वामी श्रद्धानन्दजी ऐसे अनेक भक्त धर्मप्रचारक भी प्राप्त हुये जिनके कारण इनका कार्य आगे बढा आज तो इनके भक्त और अनुयायी लाखोंकी संख्यामें दृष्टिगोचर होते हैं यह था समाज सुधारक दयानन्दका दूसरा रूप।

महर्षि दयानन्दका तीसरा रूप देवगिराके उद्धारक तथा आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रसारकके रूपमें देखते हैं। इस दिशामें जो मार्ग ऋषिवर दयानन्दने दिखाया आज देश उसका अनुसरण कर रहा है। संस्कृत और हिन्दीके प्रति जो लोगोंकी घृणाकी वृत्ति उत्पन्न हो गई थी वह जाती रही अब तो वह समय भी शीघ्र आनेवाला है कि विश्वका प्रत्येक नागरिक संस्कृतका ज्ञान प्राप्त करनेमें गौरव समझेगा। जिसके द्वारा विश्वका मानव समाज सच्ची मानवता और विश्व बन्धुत्वके वास्तविक सिद्धान्तको अपना सकेगा।

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' सारे संसारको श्रेष्ठ आर्य बनाओ यह ऋषिवरका नारा था। अगर सम्पूर्ण संसारके लोग देववाणी संस्कृत और हिन्दीका अध्ययन व पठनपाठन करके वैदिक संस्कृति और सभ्यताको अपना ले तो विश्वमें निश्चितरूपसे शान्ति और सुखका साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। महर्षि दयानन्दने इसी लिये देववाणी (संस्कृत) का उद्धार और आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रसारका कार्य अपनी मातृभाषा गुजराती होनेपर भी सर्वप्रथम प्रारम्भ किया यह इनके ही द्वारा हो सका, यह था ऋषिवर दयानन्दका तीसरा स्वरूप।

इस दीपावलीके पवित्र अवसर पर भारत भाग्य विधाता, नवयुग निर्माता महर्षिके जीवनकी कुछ छोटी छोटी लेकिन महत्त्वपूर्ण घटनाओंका विवरण देना अनुचित न होगा यथा—

(१) संयमी दयानन्दकी बलकी परीक्षा लेनेके लिये एक बार एक बड़ा पहलवान् उनके पास आया। स्वामीजीने उसके

भावको जानकर अपनी निचोडी हुई गीली कोपीन उसको देकर कहा कि इसको निचोडो। वह इसमेंसे एक बूँद भी पानी नहीं निकाल सका। स्वामीजीने उसके हाथसे पुनः उसी कोपीनको लेकर अपने हाथोंसे निचोडकर कई बूंद पानी इसमेंसे निकाल दिया। ऋषिके इस अतुल बलको देखकर वह पहलवान लज्जित होकर चला गया।

(२) किसी सहृदय भक्तने ऋषिवरसे पूछा हे भगवन्! इस समय संसारमें प्राचीन कालीन जैसी मन चाही उत्तम सन्तति क्यों नहीं उत्पन्न होती? ऋषिवरने इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया— 'प्राचीन कालमें आर्यरत्न गृहस्थ समय समय पर वेदानुकूल सन्ततिके संस्कार यज्ञादि किया करते थे, जिसके कारण उनके सन्तानोंके हास्यमधुर मुख-कमल उत्तम ओजरूपी सूर्य किरणोंसे तेजोमय सुहाते थे। विद्या, तप, विनय, शील एवं सद्गुणोंसे शोभित, पवित्र-हृदयवाली, गृहराजकी लक्ष्मीसी महिलायें थीं और उन्हीं गुणोंसे अलंकृत गृहस्थ सज्जन थे तभी उस समय उत्तम सन्तति उत्पन्न होती थी।

इस युगमें तो मनुसन्तति मानवधर्मको भूलकर वेद विहित संस्कारोंका त्याग करके विषय सुख विलासको उत्तम जानती हुई इस पुण्य मानवजीवनको पशु समान बिता रही है। अनेक कुरीतियाँ और बुरी रूढ़ियाँ निशाचरीके समान इन विषय विलासी, हिताहित विवेक रहित मानवोंको अज्ञानान्धकार पूर्ण मार्गमें छल बलसे ले जारही है तो हे भक्तजनो! ऐसे मनुष्य अन्धेके समान दुःखरूपी कूपमें क्यों न गिरें? ऐसा अज्ञानजन्य मत मतान्तरोंके आश्रय लेनेवाले विलासी गृहस्थोंके पुत्र कुत्तोंके समान कामी अतएव निस्तेज होकर दुर्गतिको प्राप्त होते जा रहे हैं। यह था ऋषिवर दयानन्दका उद्गार।

(३) फर्रुखाबादमें एक प्रतिष्ठित सेठका पुत्र वेश्यागामी और मदिरा सेवी हो गया था। उसके पिताकी प्रार्थनासे योगीराजने उस युवकको अपने पास लानेके लिये आदेश दिया। उस युवकके दो सदाचारी मित्र थे। लाला साहबने उनसे कहा कि किसी प्रकार इसको स्वामीजीके पास ले जाओ वे दोनों ऋषिके पास उसको ले आये। ऋषिने भक्तिसे नम्र मस्तक हुए इन तीनों युवकोंको प्रेमामृत पूर्ण दृष्टिसे आदर देकर वेश्यागमनके दोषोंको लक्ष्य करके उपदेश दिया— 'हे भद्र युवको! वैसे तो सारे ही दुर्व्यसन सब आपत्तियोंके मूल, अनिष्टके कारण सर्व सम्पत्तिके विनाशक तथा सम्पूर्ण पुण्य कर्मोंके घातक होते हैं, इसमें अति निन्दनीय व्यसन वाराङ्गनाओंके सङ्गसे मनुष्य मदिराका व्यसनी बन जाता है, अतः इसकी कीर्तिके साथ सारे धार्मिक कार्य और सब गुण नितान्त नष्ट हो जाते हैं। निश्चयसे धनको ही चाहनेवाली ये गणिकायें अपने हाव भावसे तरुण जनोंके मनोंको हर लेती हैं।

सर्वस्व अपहरण कर लेने पर सफल मनोरथ हो जानेसे ये फिर निर्धन पुरुषोंका मुखतक देखना नहीं चाहती। वेश्यागामी उस युवककी गणिकाके गर्भसे उत्पन्न हुई युवती कन्या वेश्यागृहमें रहती फिर वह निन्दित कर्म करके अपने पिताको नरकमें गिराती है। सो ये जन स्वयं गणिकानुरक्त होकर सचमुच कन्याको वेश्या ही बनाते हैं। इस प्रकार हृदयस्पर्शी, मर्म भेदी ऋषिवरके वचन सुनकर उस युवकका शरीर रोमांचित हो गया और अपने पाप कर्मोंसे कांप उठा। तत्काल ही मुनिके पवित्र चरणों पर गिरकर पश्चाताप करने लगा। और ऋषिवरके उपदेशसे वेश्यागमन रूपी घोर पापके कीचड और शराबखोरीके दल दलसे निकल आया।

(४) वृन्दावनके मुनीम मांगीलाल नामक एक विरोधीने एक कसाई और एक शराबवालेको ऋषिवरके पास भेजा। उन्होंने जाकर स्वामीजीसे कहना आरम्भ किया हमारे शराब और मांसके दाम तो दे दीजिये। स्वामीजीने हंस कर कहा बहुत अच्छा, व्याख्यानके पश्चात् तुम्हारा हिसाब भी कर दूंगा। व्याख्यान समाप्त होनेपर यतीन्द्रने एक हाथसे एक की और दूसरे हाथसे दूसरेकी गर्दन पकड कर पूछा कि— बताओ तुम्हारे कितने दाम हैं? तब उन दोनोंने घबडा कर उन्हें भेजनेवालेका नाम मुनिवरको बता दिया। लोग आश्चर्यसे चकित हो गये।

(५) कतार गांवके किसानोंने महर्षिको भुनी हुई ज्वार (पोंक) खिलानेके लिये निमन्त्रण दिया, मधुरभाषी यतीन्द्र वहां गये और आम्रकाननमें किसानोंके साथ बैठकर आनन्दसे भुनी हुई ज्वार खाई मन्त्रदाता दयानन्दने इन किसानोंको उपदेश दिया जैसे कच्चे खेतको काट लेनेसे अन्न नष्ट हो जाता है, कच्चे फल और ईखमें मिठास नहीं

होता ठीक इसी प्रकार छोटी आयुमें जो सन्तानका विवाह कर देते हैं उनका वंश ही बिगड जाता है। सन्तानके सुख और उन्नतिका सदा अभावही बना रहता है। ऋषिवरके इस सुन्दर उपदेशसे उस ग्रामसे बाल विवाहकी कुरीति दूर हो गई।

(६) मुनीन्द्र दयानन्द पहले एक कोपीन वस्त्र शरीर पर धारण करते थे और भाषण और उपदेश संस्कृत भाषामें ही देते थे। एक बार श्री केशवचन्द्र सेनने मुनीन्द्रको लोकभाषा हिन्दीमें उपदेश देने तथा नगरमें वस्त्र धारण करनेकी सुसम्मति दी। ऋषिवरने इस जनहित कारक उनकी सम्मति मानली तबसे शरीर पर पूरे वस्त्र धारण करने लगे और लोकभाषा हिन्दीमें आम जनताको उपदेश देने लगे क्योंकि वह हठी स्वभावके नहीं थे और जिस किसीके भी उत्तम सलाहको बडी ही प्रसन्नता पूर्वक मान लेते थे।

इस प्रकार ऋषिवर दयानन्दका जीवन अनेक सद्‌गुणोंका अनुपम भण्डार था। इनके जीवन घटनाओंका जितना ही मनन और चिन्तन किया जाय उतना ही अधिक लाभ होगा। ऋषिवर दयानन्द निर्वाण दिवस पर हम सब इनके पवित्र, विशुद्ध जीवनचरित्रका अध्ययन करें। विद्वानों द्वारा प्रवचनों और व्याख्यानोंको सुनकर ऋषिवरके दिव्य जीवनका दर्शन करें। तथा कुछ समय एकान्तमें बैठकर उन सब बातों पर गहराईके साथ मनन और चिन्तन करें और यतीन्द्र दयानन्दके किन्हीं महान् दिव्य गुणको अपने अन्दर लानेका दृढ संकल्प करें। ऐसा करने पर एक वर्षके पश्चात् अगली आनेवाली दीपावली पर हम अपने जीवनका सिंहावलोकन करके देख सकेंगे कि हम एक वर्षमें आजसे कहाँ तक आगे बढे हैं, अपने जीवनका विकास कर पाये हैं। यही इस दीपावलीके पवित्र पर्वको मनाने और ऋषिवर दयानन्दके निर्वाण उत्सव करनेका लाभ है॥

अग्नि

[डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, हिंदुविश्वविद्यालय काशी]

ऋग्वेदमें अग्नि प्रधान देव है। अग्निको मर्त्योंमें प्रविष्ट अमृततत्त्व कहा है (मर्तेष्वग्निरमृतो निधायि) अग्नि मर्त्योंमें अमृत ज्योति है। जो नश्वर हैं, उनमें अग्नि ऋतका 'अमृत गोप्ता' है। अनेक सूक्तोंमें अग्निके इस विशिष्ट दिव्यगुणकी ओर संकेत है। वस्तुतः यह भौतिकशरीर मरणशील है और इस शरीरमें बसनेवाला अमृत तत्त्व ही 'अग्नि' या 'प्राण' है। वैदिक ऋषियोंकी दृष्टिमें अग्निका देवतात्मक रूप सबसे मुख्य तथ्य है। जिस स्थूल अग्निको हम देखते हैं, वह समिधा या ईंधनके जलानेसे उत्पन्न होती है। भूतोंके धरातल पर यह अग्निका प्रकट होना है। शक्ति केवल भूतोंके माध्यमसे ही व्यक्त या मूर्त्त होती है। अतएव प्रत्येक अग्निका मूर्त्तरूप या शरीर है, वही उसकी समिधा है; समिधाके जलनेसे अग्नि प्रत्यक्ष होती है। इसी नियमके अनुसार शरीरमें प्राणाग्नि प्रतिदिन प्रगट हो रही है।

यह अग्नि तीन प्रकारकी है। इसकी तीन माताएं, तीन जन्म, तीन सधस्थ या स्थान हैं। इसका त्रिविध रूप अग्निके तीन भ्राताओंके रूपमें इंगित किया गया है। अग्निके इस रूपका विस्तृत वर्णन आता है, किन्तु उसका समझना सरल है। इस विश्वके मूलमें जो विलक्षण शक्ति तत्त्व है, उसकी संज्ञा अग्नि है। इस विश्वमें प्राणियोंके तीन वर्ग हैं, अर्थात् वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य। तीनोंमें ही प्राण या जीवनकी सत्ता है। यही विश्वका त्रिक है। इसीको मन, प्राण और वाक् कहते हैं। इसी त्रेधाविभागके लोकात्मक प्रतीक पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ हैं। इन लोकोंका अभिप्राय देशात्मक नहीं, किन्तु ये संज्ञान या चितितत्त्वके तारतम्यके बोधक तीन धरातल हैं। इन तीनोंके संचालक तत्त्वोंको क्रमशः अग्नि, वायु और आदित्य कहा जाता है। यही तीन प्राणाग्नियां हैं, जो विश्वके विराट् शरीरमें और मानव देहमें समिद्ध या प्रज्वलित हैं। मूलतः यही अग्नि है जो त्रेधा विभक्त या तीन प्रकारसे सिद्ध हो रही है (एक एवाग्निः बहुधा समिद्धः)। अभिव्यक्तिके लिए तीनों ही आवश्यक हैं। अग्नि पार्थिव पंचभूतोंका प्रतीक है, वायु अंतरिक्षस्थानीय प्राणका और आदित्य द्युलोकस्थानीय मनका। एक ही अग्नि देवता पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें तीन देवोंके रूपमें कहा जाता है।

प्राण संयुक्त शरीर अर्थात् प्राणीके जन्मके लिए इन तीन अग्नियों, या तीन देवताओं या तीन लोकोंका एकत्र सम्मिलन आवश्यक है। प्रत्येक प्राणी मन, प्राण, और भूतकी समष्टि है। ये तीनों प्रत्येक केन्द्रमें एक साथ रहते हैं। अग्निके इन तीन भ्राताओंका सहयोगी समूह है। क्रमशः एकत, द्वित, और त्रित अथवा शुचि-पावक-पवमान नामक इन तीन भाइयोंका एक तिगड्डा है। इनकी संयुक्त संज्ञा वैश्वानर है। वैश्वानरका अर्थ है सब या तीन नरोंका समूह जो कि तीन संचालक प्राण सृष्टिमात्रके लिए आवश्यक हैं। जैसे मानव देहमें जीवनी शक्तिकी संज्ञा वैश्वानर अग्नि है जो खाए हुए अन्नको पचाती है और शरीरके भीतर अनेक रासायनिक और प्राणमयी क्रियाओंकी शृंखलाको जन्म देती है जिसके फलस्वरूप रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, इन छह धातुओंका निर्माण होता है और अंतमें सातवीं धातु शुक्र बनती है जो रेत रूपमें आगेके उत्पादन चक्रको जारी रखती है। अग्निका उत्पादक स्वरूप यज्ञ है जिसमें देव या शक्ति स्थूल भूतको जिसे सोम कहते हैं, स्वीकार करके उसका भक्षण करती है अर्थात् उसे अपने स्वरूपमें परिवर्तित कर लेती है। अग्नि 'अन्नाद' है और सोम 'अन्न' है। अग्नि और सोम, अन्नाद और अन्न, योषा और वृषा, स्त्री और पुरुष, अर्थात् शक्ति और भूत अथवा द्यावापृथिवी, इनका सम्मिलन जीवन या प्राणके

चक्रका पूरा स्वरूप है। इसी स्वरूपसे यज्ञ-मंडलका निर्माण होता है जिसमें वसु-रुद्र-आदित्य और इनके बीचके दो संधिप्राण, जिन्हें ' अश्विनी ' कहते हैं अखण्ड यज्ञ मंडलका निर्माण करते हैं।

अग्नि या प्राण शक्तिका किसी बिन्दु पर प्रादुर्भाव एक यज्ञ है। सृष्टिका विराट् धरातल पर जन्म विराट् यज्ञ कहलाता है जिसमें स्वयं प्रजापति अपनी आहुति डालते हैं। ऋग्वेदमें इसे ' सर्वहुत यज्ञ ' कहा है (१०।९।८)। इस विराट् यज्ञमें आत्माहुति देनेवाले पुरुषका क्या स्वरूप है ? वह स्वयं अग्नि स्वरूप है। उस अग्निको विश्वकी मूलभूत निर्मात्री शक्ति या विराट् प्रकृति ही कहा जा सकता है जिसके अदिति और दक्ष ये दो रूप हैं। प्रत्येक यज्ञका अधिष्ठाता ' प्रजापति दक्ष ' कहलाता है और दक्षकी माता अनंत प्रकृतिकी संज्ञा अदिति है।

इन दोनोंमें स्पष्ट ही कार्य-कारण भाव देखा जा सकता है। विश्वकी रचनासे जो पूर्वकी अवस्था थी उसमें देवमाता अदितिकी सत्ता सर्वोपरि है। उस समग्र अदितिसे ही जो व्यष्टि रूप यज्ञ होते हैं उनमेंसे प्रत्येकका अधिपति अदितिका पुत्र ' दक्ष ' है। किन्तु इस यज्ञीय विधानकी एक दूसरी दृष्टि भी है। इसके अनुसार मूलभूत अदिति शक्तिका ही एक अंश दक्षके यज्ञमें आता है। इस प्रकार इस शक्तिको दक्षकी पुत्री भी कहा जा सकता है जैसा ऋग्वेद १०।७२।४,५ में कहा है

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि।
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ॥

जैसा ऊपर कहा गया है एक ही मूलभूत शक्ति तत्त्व विश्वमें त्रेधा विभक्त हुआ है। उसीकी संज्ञा मन, प्राण, वाक् है। ये ही अग्निके तीन जन्म या इसको उत्पन्न करने वाली तीन माताएं हैं। इसीलिए अग्निको ' त्र्यम्बक ' (ऋग्वेद ७।५९।१२) या तीन माताओंका पुत्र कहा गया है। रुद्रकी भी यह एक संज्ञा है क्योंकि ऋग्वेद और ब्राह्मणग्रन्थोंके अनुसार अग्नि और रुद्र पर्याय हैं (अग्निर्वै रुद्रः, शतपथ ५।३।१।१०, ताण्ड्य १२।४।२४, तैत्तिरीय १।१।५८, ऋग्वेद २।१।६, त्वमग्ने रुद्रः)। प्राचीन नैरुक्तोंकी दृष्टिमें अग्निको रुद्र कहनेका पर्याप्त कारण था। प्राणियोंमें जो बुभुक्षा या अशनाया तत्त्व है वही ' रुद्र ' है। सीधे शब्दोंमें हरेक प्राणिकेन्द्र बाहरसे कुछ अन्न लेना चाहता है। वही इस केन्द्रके भीतर व्याप्त उसकी बुभुक्षा है। प्रत्येक केन्द्रकी व्याप्तिको उसका ' द्यावापृथिवी ' कहा जाता है। द्यावापृथिवीकी ही संज्ञा ' रोदसी लोक ' है। रुद्र और रोदसीका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहां रुद्र या अशनाया तत्त्वका निवास हो वही ' रोदसी ' है। प्रत्येक प्राणिशरीर एक एक ' रोदसी ' है। यह सारा विश्व भी रोदसी ब्रह्माण्ड है, जिसके केन्द्रमें सूर्य रूपी रुद्र सोमपान के लिए धू-धू कर रहा है। प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थोंमें रुद्रकी एक विचित्र आर्षी निरुक्ति बताई गई है।

वहां कहा है कि प्रत्येक प्राणिके भीतर जो मध्य प्राण दहक रहा है वही ' इन्धी दीप्तौ ' धातुसे इन्ध कहलाता है, इस इन्धको ही परोक्ष संज्ञा ' इन्द्र ' है। वह मध्यप्राण जब केन्द्रमें जाग्रत होकर स्पंदन करने लगता है तब उसके लिए बाहरसे अन्न ग्रहण करनेकी आवश्यकता पड़ती है। वही अन्नके लिए तीव्र आकांक्षा उसका रुदन है। बच्चा जब भूखा होता है तब वह रोता है। उस रुदनके कारण ही प्रत्येक प्राणिकेन्द्रमें विद्यमान प्राणतत्त्वको ' रुद्र ' कहा जाता है। हरेक बीजके भीतर जो उसका केन्द्र है वह पहले सुषुप्त रहता है और बादमें जब वह सक्रिय हो जाता है तब उसे उसका जागरण कह सकते हैं। वह प्राणतत्त्व अन्नाद अग्निका रूप है। उसे तत्काल अन्न या सोम चाहिए। जैसे ही अन्नाद अग्निको सोमकी प्राप्ति होती है वैसे ही आदान और विसर्गकी क्रिया आरंभ हो जाती है। आदान और विसर्ग ही जीवनका लक्षण है। ऋग्वेदमें कहा है कि ' जब अग्नि जागता है तब सोम उसके पास आकर इसके साथ अपने सख्य भावका निवेदन करता है— '

अग्निर्जागार तमयं सोम आह।
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः। ऋग्वेद ५।४४।१५।

अग्नि और सोम दोनों एक ही नीडमें रहनेवाले पक्षी हैं। सोम या अन्नकी प्राप्तिसे अग्नि कुछ कालके लिए शान्त हो जाता है। यह अग्नि या रुद्रका ' शिव ' रूप है। कुछ काल बाद अग्नि फिर बुभुक्षित हो जाता है। इसे ' रुद्र ' या ' घोर अग्नि ' कहते हैं। जिस अग्निको सोम प्राप्त नहीं होता वह सर्वभक्षी घोर रूपमें शरीरको ही जला डालता है या खाने लगता है। इस दृष्टिसे सोम अमृत और जीवन-

का रस है। इस सोमका पान रुद्रको तुष्ट करता है। रुद्र ही तो इन्द्र है जिसे सोम सबसे अधिक प्रिय है। सोम अग्निका प्रतिपक्षी तत्त्व है। सोम शीत और अग्नि उष्ण होती है। सोमका स्वभाव आर्द्र और अग्निका शुष्क कहा गया है—

यद्वै शुष्कं यज्ञस्य तद् आग्नेयम्, यद्वा आर्द्रं
यज्ञस्य तत् सौम्यम्। शतपथ ३।२।३।६-१०

द्युलोकमें जो सूर्य है वह अग्निका ही रूप है—

अग्नेरनीकं बृहता सपर्यं
दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य। ऋग्वेद १०।७।३

यह जो द्युलोकमें महान् यजनीय देव सूर्य है वह अग्निका मुख है। मैं उसकी उपासना करता हूं। इस पृथिवी लोकमें अग्नि, अंतरिक्षमें इन्द्र और वायु, द्युलोकमें सूर्य यही तो तीन देवता हैं। यह इन देवोंकी महिमा है जो इनके अलग-अलग नाम कहे गए हैं। ये कई नाम इनके स्थान विभागके कारण हैं। एक होते हुए भी उनके तीन नाम यही तो इनकी विभूति है। कवियोंने मंत्रोंमें स्पष्ट कहा है कि इन तीन देवताओंका जन्म एक दूसरे पर निर्भर है—

अग्निरस्मिन्नथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव च।
सूर्यो दिविस्तु विज्ञेयास्तिस्र एवेह देवताः
॥ ६९ ॥
एतासामेव माहात्म्यान्नामान्यत्वं विधीयते।
तत्तत्स्थानविभागेन तत्र तत्रेह दृश्यते ॥ ७० ॥
तासामियं विभूतिर्हि नामानि यदनेकशः।
आहुस्तासान्तु मंत्रेषु कवयोऽन्योन्ययोनिताम्
॥ ७१ ॥ बृहद्देवता १

भूत-भविष्य वर्तमान इन तीन कालोंमें जो भी चर और अचर विश्व है उस सबके जन्म और नाशका कारण एक मात्र सूर्य है। जो सत् है और जो असत् है, दोनोंकी योनि यही सूर्यरूपी प्रजापति है। वही अक्षर तत्त्व शाश्वत ब्रह्म और वाणीका एकमात्र लक्ष्य है। वह अपने आपको तीन रूपोंमें विभक्त करके इन तीन लोकोंमें विराजमान है, जितने देव हैं सबको यथास्थान उस सूर्यने अपनी रश्मियोंमें निविष्ट कर रखा है। यह जो समस्त भूतोंमें और सब लोकोंमें तीन प्रकारसे स्थित अग्नि है उसे ही ऋषियोंने अपने शब्दोंमें तीन नामोंसे कहा है—

भवद्भूतस्य भव्यस्य जंगमस्थावरस्य च।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥ ६१ ॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेष प्रजापतिः।
यदक्षरं वाच्यं च यथैतद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ६२ ॥
कृत्वैष हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति।
देवान्यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु ॥६३॥
एतद्भूतेषु लोकेषु अग्निभूतं स्थितं त्रिधा।
ऋषयो गीर्भिरर्चन्ति व्यंजितं नामभिस्त्रिभिः॥६३॥
बृहद्देवता १।

जो अग्नि सूर्य रूपसे द्युलोकमें है उसीकी एक-एक चिनगारी प्रत्येक व्यक्तिके उदरमें धधक रही है—

तिष्ठत्येष हि भूतानां जठरे जठरे ज्वलन्
(बृहद्देवता, १।६५)

निरुक्तके अनुसार अग्नि-वायु-सूर्य एक ही मूलभूत प्रजापतिकी आत्मा हैं (आत्मा सर्वदेवस्य, निरुक्त, ७।४, बृहद्देवता १।७३)।

यज्ञके कर्मकाण्डमें एक ही अग्नि गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन तीन नामोंसे अभिहित होती है जिसे अग्नित्रेता कहते हैं। इन तीन अग्नियोंके समकक्ष अन्य त्रिक इस प्रकार हैं- पंचभूत (वाक्)-प्राण और मन, पृथिवी-अंतरिक्ष और द्यौः, माता-पुत्र और पिता इत्यादि। ये ही तो अग्निके तीन सत्य और तीन जन्म हैं—

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या
स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः। (ऋ. ४।१।७)

इन्हीं तीन रूपोंको दृष्टिमें रखकर यह प्रश्न पूछा गया है। कितनी अग्नियां हैं ? कितने सूर्य हैं ?

कत्यग्नयः कति सूर्यासः, (ऋ. १०।८८।१८)

सूर्यको बृहत् अग्निका मुख क्यों कहा गया ? क्या सूर्य और अग्निमें कोई अन्तर है ? इन प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिए वैदिक तपस्के मूल अर्थको समझना होगा। वेदकी दृष्टिसे सृष्टिका मूल तपस् है। यह तपस् कितना बृहत् या महान् था, इसकी कोई कल्पना नहीं हो सकती। उसीको अभीद्ध तप कहा जाता है, जिससे सृष्टिके उत्पादक मूल तत्त्व अग्नि और सोम अविर्भावमें आए (ऋ. १०।१९०।१)। वह तप स्वयं देव प्रजापतिका तप था। वही उनके मनका ध्यान

और प्राणकी किया थी। इसे ही ब्राह्मण ग्रंथोंमें 'ऐक्षत' 'अतप्यत्' 'अश्राम्यत्' कहा गया है। दूसरे शब्दोंमें इस तपको 'देवौष्ण्य' कहा गया है, अर्थात् मूलभूत देव तत्वसे उत्पन्न उष्णता या ताप ही तप है। वही उष्णता पुरुषके रूपमें जन्म लेती है। पुरुषके भीतर जो उष्णता है, वही अग्नि वैश्वानर है। प्राणको उपांशु और अपानको अंतर्याम कहते हैं। इन दोनोंके टकरानेसे जो उष्णता, गर्मी या हरारत उत्पन्न होती है, वही दिव्य उष्णता वैश्वानर अग्निके रूपमें प्रत्येक पुरुषमें व्याप्त है। इसके अतिरिक्त पुरुष और कुछ नहीं है—

प्राणापानौ उपांश्वन्तर्यामौ (ऐतरेय ब्रा. २.२१) अथोपांशुरन्तर्याममभिभवत्यन्तर्याम उपांशुं च। एतयोरन्तराले चौष्ण्यं प्रासुवत्। यदौष्ण्यं स पुरुषः। अथ यः पुरुषः सोऽग्निर्वैश्वानरः (मैत्रायणी उपनिषद् २।६)

इस प्रकार विराट् विश्वमें देवकी वह उष्णता सूर्यके रूपमें और मनुष्यमें वैश्वानरके रूपमें प्रत्यक्ष है। वैश्वानर कौनसी अग्नि है, इसका उत्तर है—

अयं अग्निर्वैश्वानरो योऽयं अन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते। (मैत्रायणी २।६)

अर्थात् पुरुषके भीतर जो अग्नि अन्नको पचाकर सब धातुओंके निर्माण द्वारा शरीरकी विधृति है, वही जठराग्नि या प्राणाग्नि वैश्वानरका रूप है। जो विराट् विश्वमें सूर्य है, उसीकी एक रश्मि मनुष्यमें है। सृष्टिका यही मूल नियम है 'यो असौ पुरुषः सोऽहं अस्मि' जो वह पुरुष है, वही मैं हूं (ईश. उप.) इसीको ऋग्वेदमें कहा है 'वैश्वानरो यतते सूर्येण' (१।९८।१), अर्थात् पृथ्वीके वैश्वानर और द्युलोकके सूर्य अथवा पुरुषमें प्रविष्ट वैश्वानर और विराट् विश्वके केन्द्रमें स्थित सूर्य इन दोनोंमें परस्पर स्पर्धाका सम्बन्ध है। यह स्पर्धा प्राणन् क्रियाके रूपमें है।

जैसे लोहारकी धोंकनी अग्निको प्रदीप्त करती या चितातो है, वैसे ही विश्वमें सूर्यके संधमनसे पुरुषकी वैश्वानर अग्निका संधमन हो रहा है। सूर्य स्थूल अग्निके गोलेके रूपमें हमें दिखलाई देता है, पर वह विराट् विश्वके निर्माता प्रजापतिके विज्ञान चेतना द्वारा अस्तित्वमें आया है, अतएव वैदिक दृष्टिसे यह दृश्य सूर्य उस अदृश्य प्रजापतिके विज्ञानका प्रतीक है। प्रजापतिका मानस चिन्तन या उसका महत् बुद्धि तत्व, जिसे विज्ञान कहते हैं, वही सूर्य है। विज्ञानका ही पर्याय 'संज्ञा' या 'चितितत्व' है, जिसे आख्यानोंमें 'सूर्यकी पत्नी' कहा गया है। उसी सूर्यका प्रतिबिम्ब मानो प्रत्येक प्राणि केन्द्रमें आ रहा है।

वैदिक भाषामें सूर्यको आतप या धूप और भूतोंमें पडने वाले उसके प्रतिबिम्बको छाया कहते हैं। दिव्य मानसी सृष्टिमें जो विज्ञान आतपके रूपमें है, वही भूतोंमें छाया हुआ है। ब्रह्मवादी जब मूल प्राणतत्वकी व्याख्या करने लगे, तब छाया और आतप, धूप और छांह इन शब्दोंमें उन्होंने सब कुछ कह डाला। वे ज्ञानी यह जानते थे कि सृष्टिके लिए एक मूल प्राणतत्व पंच प्राणोंमें विभक्त हो रहा है, क्योंकि एकसे सृष्टि नहीं हो सकी, इसे पांच होना पडा—

स एको नाशकत्। स पंचधा आत्मानम् विभज्य उच्यते। यः प्राणः, अपानः, समानः, उदानः व्यान इति। मैत्रा० उप० २।६

इन पंच प्राण रूपी पांच अग्नियोंका स्वरूप जाननेके कारण इन ऋषियोंकी पंचाग्नि संज्ञा हुई। इसी प्रकार जो स्वर्य, दिव्य अग्नि या प्राण था, वही गुह्य अज्ञेय रहस्य होनेके कारण नाचिकेत अग्नि कहलाया। सृष्टिके धरातल पर उसीके तीन रूप हो जाते हैं, मन, प्राण और वाक् (या पंचभूत) इन तीनको ही यज्ञकी त्रेताग्नि कहा जाता है। इस प्रकार एक नचिकेत अग्नि, जिसके रहस्यको कोई नहीं जानता और न कोई कह पाया है।

को अद्धा वेद कः इह प्रवोचत्। ऋ. १०।१२९।६

तीन रूपोंमें बंटकर त्रिणाचिकेत बन जाती है। इन तीन अग्नियोंके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् त्रिणाचिकेत नामसे प्रसिद्ध थे। ऐसे ब्रह्म विज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें सृष्टिका विराट् मूल तत्व विज्ञान रूपी सूर्यके आतपके समान है और भूतके धरातल पर उस विज्ञानकी जो अभिव्यक्ति है वही छाया है। दिनका प्रतीक आतप और रात्रिका प्रतीक छाया है। दिनमें जो सूर्य है उसीका तेज रात्रिके समय अग्निमें प्रविष्ट हो जाता है। विराट् परमेष्ठीका संकेत दिन और भूतगत व्यष्टिका संकेत छाया है। यही सूर्य और अग्निका सम्बन्ध है।

सूर्य सहस्ररश्मि है। अग्नि इसका शतधा वर्तमान रूप है। अनंत और अपरिमितको 'सहस्र' एवं परिमित और सान्तको 'शत' कहा जाता है। जो सहस्रात्मा अनंत प्राण है वही पृथक् पृथक् भूतोंमें सैकड़ों प्रकारसे दिखाई पड़ रहा है। सूर्य और अग्नि तत्वतः एक होते हुए भी भिन्न हैं। सूर्य अमृत और अग्नि मर्त्य है। सूर्य सृष्टिके आदिसे अंत तक एक समान रहता है। किन्तु अग्निका जीवन प्रकट होता और लुप्त होता रहता है। अग्निके संमिंधनकी मर्यादा समिधाओंके परिणाम पर निर्भर है। जब तक ईंधन तब तक अग्निका प्रज्वलन। यही अग्निका परिमित और सान्त रूप है। किन्तु सूर्य अमृत है क्योंकि उसे परमेष्ठीका 'ऋत' या 'सोम' निरंतर प्राप्त होता रहता है। इस परमेष्ठीके गर्भमें कोटानुकोटि सूर्योंका ताप निहित है। वह सोमका महान् समुद्र है। पारमेष्ठ्य सोमको ही 'ऋत' कहते हैं। इस सोम समुद्रके मंथनसे जो उष्णता उत्पन्न होती है वही अग्नि है। उसे ही 'अभीद्ध तप' या 'अग्रज तप' (बृहद्देवता, २।५३) या 'ऊष्मा' (आरण्यकपर्व २११।४) कहा गया है। उसी-की एक चिनगारी यह सूर्य है और ऐसे कोटि-कोटि सूर्य इस मूल प्रदीप्त अग्निके विस्फुलिंगोंके समान अनंत आका-शमें भरे हुए हैं।

इस मूल मंथनात्मक तपका स्वरूप गति है। गति और आगतिके द्वन्द्वसे ही मंथन होता है। गतिकी संज्ञा रजस् और अक्षर भी हैं। यह समस्त विश्व 'रजस्' या 'गति' का विमान कहा गया है। विमानका अर्थ है मापना। जैसे स्थपित गृहविन्यासके लिए सूत्रमापन करता है वैसे ही त्वष्टा या विश्वकर्मा प्रजापतिने विश्वके विन्यासके लिए स्वयं सूत्रात्मा बनकर लोकोंका सूत्रमापन या विन्यास किया है। यही लोक विन्यास सृष्टि है। मंथन, घर्षण, क्षोभण, वेपन, स्पंदन, कंपन, जागरण, प्राणन, संधमन, क्रंदन, रुदन, वमन, श्वसन, क्रमण, क्षरण, तक्षण, हवन, सवन, यजन, विमान आदि अनेक शब्दोंसे विश्वकी एक मूलभूत गत्या-त्मक प्रक्रियाकी ओर संकेत पाया जाता है। क्षोभ ही विश्व-का मूल है। क्षोभको ही रुद्रका 'मन्यु' कहा गया है।

एक अविचाली मूल स्थाणुतत्व 'एकरुद्र' है। किन्तु सृष्टिके लिए उसीके असंख्यात सहस्र रूप हो जाते हैं। वे ही रुद्रके 'प्रमथ' या 'गण' हैं। एक-एक शरीरमें एक एक प्रमथका निवास है। 'अग्निर्वै रुद्रः' यह मूल-भूत परिभाषा है अग्नि ही रुद्र है। जैसा ऋग्वेदमें कहा है 'त्वम् अग्ने रुद्रः' (२।१।६) अग्निको 'सहसः सूनुः' अर्थात् बलका पुत्र कहा गया है (ऋग्वेद १।२५।५)। यह जो दो अरणियोंका मन्थन है वही बल है। बलका रूप गति है। रसका रूप स्थिति या शान्ति है। स्थितिके धरातल पर गतिका जन्म होता है। इसी प्रकार रसमें बलका उदय है। आपः या जल रसका रूप है। उस जलके मन्थनसे जिस बलका जन्म होता है वही अग्नि है। अतएव इसे 'सहसः पुत्र' कहा जाता है। दो अरणियोंके मन्थन या घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है। पिता और माता यही दो अरणियां हैं। अग्नि इनका पुत्र है।

सोमके समुद्रसे जिस 'अभीद्ध तप' या अग्निका जन्म होता है उसके लिए वेदोंमें 'आपः' शब्द है। उन्हीं आपः के लिए मनुने कहा है—

स्वयंभू प्रजापतिने सर्व प्रथम आपः तत्वकी सृष्टि की और उसने अपना बीज डाला। उसके फलस्वरूप 'हिर-ण्यगर्भ नारायण' का जन्म हुआ। उसीकी संज्ञा सूर्य या अग्नि है। जैसे नारसंज्ञक जलोंसे जन्म लेनेके कारण 'नारा-यण' संज्ञा होती है वैसे ही अग्निकी सुप्रसिद्ध संज्ञा 'अपांनपात्' है। अग्निको 'अपांगर्भः' भी कहा गया है (ऋग्वेद ३।५।३, १।१२।११)। वह जलोंके भीतर समीध्य होता है (अप्सु अजस्रामिंधानः। ऋग्वेद १०।४५।१)।

अग्नि मातारूपी जलोंकी गोदमें उत्पन्न होनेवाला 'वृषा' या 'वृषभ' है (ऋग्वेद १०।८।१)। जल रूप सोम और अग्निका सम्बन्ध वेदोंमें सर्वत्र आया है। इस सम्बन्धका प्रत्यक्ष रूप है जलसे भरे हुए मेघोंमें विद्युत् का जन्म। किन्तु इसमें सृष्टिका गम्भीर संकेत है। यह एक संकेत है जैसा ऊपर कहा है जलकी संज्ञा आपः आती है किन्तु यहां आपः का अर्थ स्थूल जलोंसे नहीं है। स्थूल जलोंका प्रादुर्भाव तो सृष्टि क्रममें बहुत बादको हुआ। यहां आपः का तात्पर्य विश्वके मूल कारणसे है। शतपथ ब्राह्म-णमें कहा है— 'यद् आप्नोत् तस्माद् आपः।'

इस मूल कारणको आपः इसलिए कहते हैं कि यह प्रजापतिके मनमें व्याप्त हो गया। प्रजापतिने जैसे ही सृष्टि-

की इच्छा की अर्थात् मनसे विश्वमें रचनाका चिंतन किया, वैसे ही जितना विराट् इनका मनस् तत्व या बुद्धि या महत् तत्व था उसकी ही व्यापकता विश्वके मूल कारणमें भी आ गई। इस व्याप्ति धर्मके कारण ही उसे आपः कहा जाता है। यह व्याख्या महत्वपूर्ण है और विश्वके मूलभूत साम्यावस्थाकी ओर संकेत करती है जो सब प्रकारसे क्षोभहीन प्रशान्त अवस्था थी। इसे ही 'समुद्र' की संज्ञा दी जाती है।

स्वयंभू प्रजापतिकी संज्ञा 'नर' या 'पिता' है (बीजप्रद पिता)। उनकी अपेक्षा, उन्हींसे उत्पन्न होनेवाला जो महत् तत्व है उसे विराज, प्रधान, प्रकृति, अक्षर योनि आदि कई नामोंसे पुकारा गया है। वही माता है और उसी अनन्त प्रकृतिकी एक संज्ञा 'अदिति' भी है। इसी माताको 'नार' भी कहा जाता है क्योंकि नर रूप स्वयंभूका ही विकास है (आपो नारा इति प्रोक्ताः) नर और नार, माता और पिता, स्वयंभू और परमेष्ठी, पुरुष और प्रकृति, अव्यय और अक्षर इन तत्वोंके सम्मिलनसे जो एक नया तत्व उत्पन्न होता है, वह 'नारायण' अग्नि' और 'हिरण्यगर्भ' हो जाता है। इसीका मूर्त रूप 'सूर्य' है जिसे 'विराज गौ' का 'वत्स' या पुत्र भी कहते हैं।

वस्तुतः अग्नि पिता और सोम माता है। पिताके बीजाधानसे मातामें जिस गर्भकी उत्पत्ति होती है वह कुमार या पुत्र ही 'आत्मा वै जायते' नियमके अनुसार पिताका ही हू-बहू रूप होता है। अतएव उसकी संज्ञा भी अग्नि होती है। जैसे स्वयंभू अव्यक्त अग्नि है, वैसे ही सूर्य भी व्यक्त अग्नि है सूर्य द्युलोकको अग्नि है और उसीका अंश पृथ्वी लोककी भौतिक और मर्त्य लोक अग्नि है। जब हम अग्नि शब्दका उच्चारण करते हैं तो हमारा ध्यान काष्ठ या समिधासे जलनेवाली अग्निकी ओर जाता है। वह प्रतीक भी ठीक है किन्तु हमारा वास्तविक लक्ष्य उस प्राणाग्निकी ओर होता है जो प्रत्येक व्यक्तिमें वास्तविक जीवनका केन्द्र है। उसे ही 'वैश्वानर' और 'वृषद्' भी कहते हैं। वेदोंमें 'वृषभश्च धेनुः' इस प्रतीकका उल्लेख आता है। सृष्टि विद्यामें महत् प्रकृतिको 'अदिति' 'विराज्' और 'कामदुघा धेनु' कहते हैं।

यह विश्व प्रजापतिका कामप्रपञ्च है अर्थात् प्रजापतिकी कामना इस विश्वके रूपमें मूर्त हो रही है। सिसृक्षा या सृष्टिकी इच्छा प्रजापतिके मनका बीज है उसी बीजके अंकुरित होनेसे प्राणात्मक शक्ति इस विश्वमें प्रकट और व्याप्त हो रही है। प्रजापति इस विश्वरूपी छन्दका देवता है। उनका मन बीज है और सृष्टिकी कामना उस बीजसे उत्पन्न शक्ति है। इस विराज् गौको गर्भित करनेवाला जो वृषभ तत्व है वही स्वयंभू है। वह महान् देव है। उसे ही नामान्तरसे इन्द्र और अग्नि एवं प्राण भी कहते हैं। वही शाश्वत् ब्रह्म है।

जैसा मनुने कहा है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

विश्वमें जो चेतन शक्ति या प्राण है उसका आधान स्वयंभू रूप वृषभके द्वारा विराज् धेनुमें होता है उसे ही महद् ब्रह्म या योनि कहा है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
(गीता, १४,३)

महत् या बुद्धि तत्व माता है। स्वयंभू उसका बीजप्रद पिता है। वह नर या पुरुष सहस्रशीर्षा है। सहस्रका अर्थ अनन्त है। शीर्ष विज्ञानका प्रतीक है। विज्ञान ही चेतना और मन है। अनन्त स्वयंभू पुरुषमें अनन्त विज्ञानोंका स्रोत है। एक-एक विश्वका जन्म हो रहा है। प्रत्येक विश्वका केन्द्र अनिरुक्त सहस्रशीर्षा प्रजापतिका मनु है। उस मनुको ही मन कहते हैं।

विश्वमें सर्व प्रथम मनका जन्म होता है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। (ऋग्वेद १०।१२९।४)

प्रत्येक विश्वका एक एक अधिष्ठात्रि शासक या अंतर्यामी देवता मनु कहलाता है। उस मनुके अनुशासनसे जो कालके चौदह विवर्त होते हैं वे ही चौदह मन्वन्तर हैं। उनमें काल एक चक्र है अतएव उसका आधा भाग उद्ग्राम या उत्सर्पिणीकाल कहलाता है और शेष आधा भाग निग्राम या अवसर्पिणीकाल। उद्ग्रामके प्रत्येक विन्दुका प्रतियोगी निग्राममें विद्यमान है। यदि चक्रके ऊपर उठने-

वाले आधे भागको धूप कहें तो उसके समकक्ष नीचे जानेवाला भाग उसकी छांह कहलायेगा। सृष्टि और प्रलयकी धूप और छांह कालचक्रके ही दो अर्धांश हैं जिनसे चक्रका स्वरूप पूरा होता है। इसे ही उपनिषद्‌में आतप और छाया कहा है। आतप या धूपकी संज्ञा शुक्ल रजस् है और छाया की कृष्ण रजस्। शुक्ल और कृष्ण ये ही दो रजस् अक्षर या गतिके रूप हैं जिनसे काल चक्रका परिभ्रमण सम्भव होता है। कहा है—

अहश्च कृष्णमहरर्जुनञ्च
विवर्तेते रजसी चक्रियेव।
वैश्वानरो जायमानो न राजा
वातिरज्ज्योतिराग्निस्तमांसि। (ऋग्वेद ६।९।१)

यह एक चमत्कार है कि शुक्ल और कृष्ण रजस्के दो रूपों द्वारा चक्रमें परिभ्रमणकी क्षमता उत्पन्न होती है। उससे जिस वैश्वानर अग्निका जन्म होता है वह अपनी ज्योतिके साथ तमको भी लिए हुए है अर्थात् ज्योति और तम इन दोनोंका विभाग गतिमें है। अग्नि स्वयं ज्योति रूप है किन्तु जैसे ही भूतोंके साथ उसका सम्पर्क होता है तुरन्त तम या छाया आ जाती है। ज्योति जीवन है और छाया मृत्यु है। जीवनके साथ मृत्यु अवश्यम्भावी है। तभी चक्रका पूरा रूप बनता है। ऋग्वेदमें कहा है कि देवमाता अदितिने आठ पुत्रोंको जन्म दिया। उनमेंसे सात आदित्य या देव थे और आठवां मरा हुआ अण्डा मार्ताण्ड था। अदितिने समझा कि अमर देवता सृष्टि कर सकेंगे अतएव उसने मरे हुए अण्डेको फेंक दिया और देवताओंके पास गई। हर देवोंने कहा कि हम अमर हैं, केवल अमृतसे सृष्टि नहीं होती।

अदितिने समझ लिया कि सृष्टिके लिए जैसे जन्म आवश्यक है वैसे ही मृत्यु भी। ज्योतिके साथ तमकी सत्ता अनिवार्य है। तब वह मार्ताण्डके पास गई और उसका आभरण किया अर्थात् जैसे पक्षिणी माता अण्डे सेती है उसी प्रकार देवमाता अदितिने अपने आठवें पुत्र मार्तण्डको इस आशासे सेया कि इसका सम्बन्ध मृत्युसे भी है। अतएव जन्म और मरण दोनोंका चक्र इससे चल सकेगा। यही हुआ। यह जो सूर्य है उसका जो अंश ऊपर है वह अमृत और जो नीचे वह मृत्यु रूप है। एक ओर अपरिमित काल और दूसरी ओर परिमित काल है (परिमित कालावधिः मृत्युः) कालकी परिमित अवधि ही मृत्यु है। इन दो रूपोंको ही शुक्ल और कृष्ण रजस् या ज्योति और तम कहते हैं। जैसे सूर्यमें वैसे अग्निमें भी ये दोनों हैं।

स्वयंभू रूप सहस्रशीर्षा पुरुषसे विराट्का जन्म होता है। वह विराट् मार्ताण्ड या मरा हुआ अण्डा है किन्तु उस अण्डेमें स्वयंभू प्रजापति स्वयं प्रवेश करते हैं क्योंकि सृष्टिका यह नियम है कि जो जिसे रचता है वह उसमें प्रविष्ट हो जाता है— तत्सृष्ट्वा तदेव प्राविशत्। ऋग्वेदमें कहा है जो प्रथम छन्द या पहला सृजन तत्व था वह बादके अपनेमेंसे विकसित होनेवाले सब रूपोंमें समा जाता है। यही आत्मा वै जायते पुत्रः का नियम है।

क्या हम नहीं देखते कि एक आमकी गुठलीसे जो वृक्ष उत्पन्न होकर फल उत्पन्न होता है उस फलके बीजमें पहला बीज अपने सब शक्तियों और सम्भावनाओंको लिये हुए समाविष्ट रहता है। इसी प्रकार स्वयंभू प्रजापतिमें जो सृष्टिका बीज था जिसे ऋग्वेदमें 'भुवनस्य रेतः' कहा है (१।१६४।३६) उसमें मन, प्राण और वाक् (पंचभूत) ये तीन प्रकारकी अग्नियां समाविष्ट थीं और वे ही इस विश्व रूपी यज्ञमें अग्नि त्रेताके रूपमें प्रकट हो रही हैं। उन्हें ही अग्नि, वायु और आदित्य कहते हैं। वे ही तीन लोकोंके तीन संचालक नर या प्राण हैं, जिनकी समष्टिकी संज्ञा वैश्वानर है।

उस विराट् संज्ञक अण्डेके भीतर स्वयंभू प्रजापतिका बीज था। बीजको 'रेत' या 'हिरण्य' भी कहा है। वह हिरण्य उस अण्डेके गर्भमें था। वही तो जीवनका लक्षण था। अतएव यद्यपि अण्ड रूपमें वह मृत था किन्तु उसी अण्डेसे मार्ताण्ड या सूर्यका जन्म हुआ। उस अण्डेके भीतर भरे हुए जलमें मानो हिरण्यगर्भ नारायण शयन कर रहे थे। नारायण ही प्राण तत्व या अग्निका रूप है। जब सृष्टिका समय आया तब नारायणका जागरण हुआ हुआ और अण्डेके भीतर सृष्ट्युन्मुखी जितने तत्व थे वे सब सक्रिय हो गये। विराज् महत् या अण्डेके भीतरसे जन्म लेनेवाले नारायण या हिरण्यगर्भ पुरुषको ही वेदोंमें वैराज पुरुष कहा है। (ततो विराडजायत, विराजो अधि पुरुषः)। ये ही पुराणोंके वैराज मनु हैं। यहां पुरुषके दो रूप है- एक सहस्रशीर्षा पुरुष और दूसरा माहिमा पुरुष या वैराज पुरुष या दशाङ्गुल पुरुष।

यह विश्व एक यज्ञ है जिसमें स्वयं प्रजापति पशु बने हैं। पशुके आलम्भनके विना सोम यज्ञ सिद्ध नहीं होता। प्रत्येक पशु काल रूपी यूपसे बंधा हुआ है। ब्रह्मपुराणमें आया है कि जो नित्यकाल है वही विश्वयज्ञका यूप है और जो स्वयं इसका रचयिता पुरुष है वही अपने ही आलम्भनके लिए पशु बना है। पुरुष सहस्रशीर्षा है। प्रत्येक यज्ञमें उसीके एक एक मस्तककी आहुति हो रही है। आहुति लेने वाला शमिता स्वयं 'मृत्यु' है (मृत्युः शमिता, ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१८।४) सृष्टिकी रचना भी विचित्र है। एकका अनेक भावमें आना और अनेकका एक सूत्रमें ग्रथित होना यह सृष्टिका मूल नियम है। यहां एक बहुधा भावमें आया है और जो नाना भाव हैं वे एकमें पिरोये हुए हैं अतएव विराट् पुरुषके यज्ञमें उसीके अनेक अंगोंसे अनेक अनेक लोक बनते हैं। प्रत्येक लोकका एक एक अधिष्ठात्री देवता है जिसे लोकी कहते हैं। जितने लोक और उनके लोकी या लोकपाल हैं वे सब अलग रहकर प्राण या जीवनकी सृष्टि नहीं कर सकते। इसके लिये उनका फिर एक होना आवश्यक है।

नाना भावकी संज्ञा 'विराट्' है और उस विराट्से पुनः एक प्रजापतिका जन्म यही बहुधा भावका फिर एक होना है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि शरीरकी रचनामें प्रत्येक इन्द्रियके लिए एक एक प्रकारके रसकी उत्पत्ति हुई। जिस रससे आंखका नियंत्रण होता है वह प्राण या कानके रससे भिन्न है तभी तो प्रत्येकके कार्य और धर्म अलग हैं किन्तु इस पृथक् भाव या खण्ड भावसे काम नहीं चला। अतः सब रसोंके एक एक अंश शिर या मस्तिष्कमें मिलकर एकत्र हो गये, एकमें मिल गये।

रसोंका यह एकत्र आश्रयण या संग्रह जहां होता है उसे परोक्ष भाषामें 'शिर' या 'शीर्ष' कहते हैं उस शीर्षमें ही उस पुरुषकी वास्तविक 'श्री' निवास करती है। मनुष्यके और सब अंगोंमें बाह्य 'लक्ष्मी' का रूप है किन्तु मन या शिरमें आभ्यन्तर 'श्री' निवास करती है। श्री और लक्ष्मी ये ही दोनों पुरुष यज्ञके नारायण पुरुषकी दो पत्नियां हैं। श्री प्राणका सौन्दर्य है एवं भूतोंका लक्ष्मी। हम ऊपर अग्निके जिन दो स्वरूपोंकी चर्चा करते आये हैं जिन्हें शुक्ल और कृष्ण, ज्योति और तम कहा है वे ही श्री और लक्ष्मी या देव और भूतके रूप हैं।

पुरुषके नाना भावको एकमें अनुस्यूत करनेवाला जो तन्तु है वही 'सूत्रात्मा' है। उसे ही ऋग्वेदमें 'शौचीक अग्नि' कहा है अर्थात् वह प्राणाग्नि जो शरीरके सब अवान्तर प्राणों या अंगोंका सूचन करके उन्हें एक वस्तुके रूपमें सीती है। यह शरीर ही वस्त्र है जिसे शौचीक अग्नि प्रतिक्षण तैयार कर रही है। इसे ही वस्त्रका वयन या बुनना भी कहा गया है। जो जल रूपी सोमात्मक मातायें हैं वे ही शौचीक अग्निकी सहायतासे इस शरीरको सी रही हैं या अग्निके तंत्रायी धर्मकी सहायतासे इस विलक्षण वस्त्रका वयन कर रही हैं (वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ऋग्वेद ५।४७।६)।

इसी शौचीक अग्निको पुराणोंमें बडवाग्नि कहा है जो जलोंके भीतर रहती है और समुद्रके जलका पान करती है जिसे हमने ऊपर समुद्र और आपः कहा है उसी सोमात्मक समुद्रके तक्षणसे बडवाग्नि या शौचीक अग्नि शरीर रचनाका अपना कार्य करती है। सलिलोंका तक्षण, वस्त्रोंका वयन, रूपोंका पिशन ये सब ऋग्वेदकी परिभाषायें हैं जिनका संकेत समझने योग्य है।

प्राणतत्व पहले अपने केन्द्रमें प्रशान्त रहता है वही सृष्टिके लिए जब सक्रिय होता है तब उसे 'जागरण' कहते हैं। यही नारायण पुरुषका समुद्रके भीतर सोना और जागना है। 'सम्भृतलोकान् पुरुषोभिशेते।' इसके अनुसार जब वह पुरुष बाह्य लोकोंको अपनी कुक्षिमें खींच लेता है तब उसे संहार या निद्रा काल कहते हैं। उस समय मारकण्डेय ऋषि जो कालके प्रतीक हैं उनकी कुक्षिमें प्रवेश कर जाते हैं अतएव कालका सक्रिय व्यापार ठप्प पड जाता है किन्तु जब नारायण पुरुषके मनमें पुनः सृष्टिकी इच्छा होती है तब कालात्मक मारकण्डेय पुनः उनके मुखसे बाहर आते हैं और वही उस अगाध और गहन अम्भो समुद्रमें उस नारायणके ही बाल रूपमें दर्शन करते हैं। नारायणका वह बालभाव अग्निका पुत्र कुमार है। 'अग्नेः अग्निरजायत' अग्निसे अग्निका जन्म होता है, प्राणसे प्राणकी श्रृंखला चलती है। सृष्टिके पूर्वकी जो अग्नि थी वही सृष्टिमें पुनः आती है। वही अग्निका पुत्र कुमार है।

जिसे पुराणोंके उपाख्यानोंमें 'स्कन्द' कहा गया है। एक 'गणपति' और दूसरे 'स्कन्द' ये ही दो रुद्र पुत्र

हैं। अग्नि और सोम इन दोनोंका सम्मिलित रूप रुद्रका नरनारी वपु या शिवका अर्धनारीश्वर रूप है। विराज् अण्डके भीतर दोनोंकी सत्ता रहती है। उसका जो आग्नेय अंश है उससे अग्नि पुत्र स्कन्दका जन्म होता है। उसका जो सौम्य या जलीय अंश है उससे गणपतिका जन्म होता है जिन्हें ब्रह्मणस्पति सोमका अवतार माना गया है। ब्रह्मणस्पति सोम ही महत् या समुद्र है उसीसे सूर्यका जन्म होता है। देवोंने जब सृष्टिका नृत्य आरम्भ किया तो समुद्रमें छिपे हुए सूर्यको ढूढ निकाला—

अत्रा समुद्र आगूळ्ह सूर्यमजभर्तन।

ऋग्वेद १०।७२।६-७

वह जो समुद्रसे प्रकट हुआ सूर्य है वही तो बृहत् अग्नि का ज्योतिमान् मुख है। वही यज्ञ है, वही सत्य है, वही हिरण्यगर्भ है, वही प्राण है, वही इन्द्र है, वही रुद्र है और वही अग्नि या रुद्रका पुत्र कुमार है। मारकण्डेय या कालतत्वको सर्वप्रथम इसी कुमार या बालभावका दर्शन होता है। यही अण्डके भीतर छिपा हुआ बीज, भुवनका 'रेत' या 'हिरण्य' है जिससे विश्वरूपी महान् अश्वत्थका जन्म होता है। बालक क्या है? इस प्रश्नका यही उत्तर है कि प्रकृतिने प्राणियोंके जन्म विकास और वृद्धिकी जो विचित्र युक्ति बनायी है वही बालक रूप मूर्त होकर प्रकट होती है। बीजसे फिर बीजका जन्म यही सृष्टिका चक्र है। बालकसे युवा और युवासे पुनः बालकका जन्म पितासे पुत्र और पुत्रसे पिताका आविर्भाव यही चक्रकी गति है। स्त्री और पुरुष, कुमार और कुमारी ये दोनों एक ही तथ्यके दो मुख हैं। जो इस भेदको जानता है उसे पिताका पिता कहा गया है—

यः ईं विजानात् स पितुः पितासत्।

(ऋग्वेद १।१६४।१६)

अण्ड या जलोंके भीतर जो हिरण्य या अग्निका निवास है, उसे सब नहीं देख पाते। वस्तुतः विराट् रूपमें जो महत् योनि या माता तत्व है उसके कुक्षिमें पुरुष गर्भित है। वह भीतर अजन्मा होते हुए भी नाना रूपोंमें जन्म लेता है (अन्तरजायमानो बहुधाभिजायते)। प्रकृतिके इस रहस्यको केवल प्रज्ञाके नेत्रसे देखा जा सकता है। प्रकृतिके भौतिक रूपको देखनेवाली भौतिक आंखसे उस मूक प्राणात्मक बीजको नहीं देखा जा सकता।

स्त्रियः सतीस्तां मे पुंस आहुः
पश्यदक्षण्वान् नो विचेतदन्धः।

(ऋग्वेद १।१६४।१६)

भूतोंकी छानबीन करनेवाली और उनके भीतर छिपे हुए विज्ञानात्मक प्राणको देखनेवाली दृष्टि या बुद्धिका यही महान् अन्तर है। भूतोंमें प्राणकी सत्ता होते हुए भी बिना ऋषि प्रज्ञाके उसका दर्शन नहीं होता। आधुनिक ज्ञान-विज्ञानकी यह विचित्र स्थिति है।

आपः नामक जिस सोम समुद्रका उल्लेख ऊपर आया है उसके दो रूप हैं। एक सृष्टिसे पूर्व और दूसरा सृष्टिके लिए उन्मुख। जो सृष्टिसे पूर्वकी अवस्था है वह केवल आपः समुद्र है किन्तु जैसे ही सृष्टिके लिए स्वयंभू बीजप्रद पिताके रूपमें उसे गर्भित करता है वैसे ही वह क्षीर समुद्र बन जाता है। 'नीरका क्षीरमें परिवर्तन' यही सृष्टि है। बालक जन्मसे और गर्भ धारणसे पूर्व जो माताका रूप है, वह जलके समुद्रकी भांति है, किन्तु वही माता जब गर्भित होती है, तभीसे जलका समुद्र क्षीर समुद्रमें परिवर्तित होने लगता है। दूध मातृत्वका प्रतीक है कोई भी माता हो बिना गर्भित हुए वह बालकको जन्म नहीं देती और बिना प्रसवके दुग्धका जन्म नहीं होता। प्रश्न हो सकता है कि जल और दुग्धमें क्या अन्तर है। जलमें स्नेह या घृत नहीं है पर दूधमें वह है जिसके रोम--रोममें घृतके असंख्य कण व्याप्त हो गये हैं। घृतके इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणोंको ऋग्वेदमें 'घी की फुहार' (पृषदाज्यं ऋग्वेद १०।६०।८) कहा गया है।

जब प्रजापतिका विश्वरूपी सर्वहुत यज्ञ आरम्भ होता है तो सर्व प्रथम सोमके समुद्रमें घी की फुहार आ जाती है। घृत ही तो रेत है (रेतो वै आज्यं) और घृत ही अग्निका साक्षात्रूप है (एतद् वै प्रत्यक्षात् यज्ञरूपं यद् घृतम्' शतपथ १२।८।२।१५ आग्नेयं वै घृतं, शतपथ ८।४।१।४१ तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।९।६ एतद् वा अग्नेः प्रियं धाम यद् घृतम्, तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।९।६, १।४।४।४, तैत्तिरीय संहिता ६।१।७।१) जो अग्नि पानीसे शान्त होती है वही घीसे भभक उठती है। घृतका प्रत्येक कण अग्निका ही जमा हुआ रूप है। वह सर्वथा अग्निमें परिवर्तित हो जाता है और अपनी चिकनाईसे शक्तिको जन्म देता

है। इस घृत रूपी रेतका एक एक कण एक एक बालक या या प्राणि केन्द्रके उत्पादनकी क्षमता रखता है।

विश्वरूपी विराट् गौमें जो अनन्त जनयित्री शक्ति विद्यमान है उसका कारण यही है कि शम्भुने अपने प्राण, हिरण्य या रेतका आधान माताके गर्भमें किया है। वही हिरण्यगर्भ या अपां गर्भ है जो अग्निका ही रूप है। घृतको संस्कृतमें स्नेह भी कहा जाता है। वत्सके लिए माताके हृदयका स्नेह दूधमें मिले हुए घृतके रूपमें प्रकट होता है। जो माता बालकके लिए अपने स्तनोंमें दुग्धको उत्पन्न करती है उसीके हृदयका स्नेह या रस अन्नको दुग्धमें परिवर्तित कर देता है। यह मातृत्वकी विलक्षण रसायनी प्रक्रिया है, जिसका रहस्य अविदित है। इस दृष्टिसे वेदोंमें विराट् प्रकृतिको गौ कहा गया है जिसके दुग्धसे ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य और असुर ये पंचविध प्राण तृप्त होते हैं।

इस प्रकार सोम समुद्रको क्षीर सागरके रूपमें परिवर्तित करनेका श्रेय अग्नि या प्राणको है। यही सोम और अग्निका सम्मिलन है। इसीसे अग्नि सोमात्मक जगत् और अग्नि सोमीय पशुका जन्म होता है। ऋग्वेदमें इसे ही (वृषभश्च धेनुः) इस सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है। जैसे गौके शरीरमें सब देवोंका निवास कहा जाता है वैसे ही उसके घृतमें भी सब देवता बसते हैं (सर्वदेवत्वं वै घृतं, कौषीत्की ब्राह्मण, २१।४) इस परिभाषाका सूक्ष्म अर्थ समझ लेना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पुरुषमें जो रेत है उसीमें मनुष्य शरीरकी समस्त दिव्य और पार्थिव, मानसिक और भौतिक शक्तियोंका सूक्ष्म निवास है उसी रेतके द्वारा ही तो समस्त शक्तियां जो देवोंके अनेक रूप हैं, बालक या मनुष्यमें आती हैं। जैसा अथर्वमें कहा है– रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन्, अथर्व. ११। ८।२९।

यज्ञवेदिमें घृतकी आहुति और मातृ कुक्षिमें रेतः सिक्ति एक ही अर्थके बोधक हैं (रेतः सिक्तिर्वै घृतं, कौषीत्की ब्राह्मण १६।५)।

ऋषियोंने विराज्, गौ, पयः एवं घृत इन प्रतीकोंमें सृष्टि विद्याके गूढ अर्थोंको भर दिया है। विश्वका जो रत्न वेद है जिसके द्वारा स्वयंभू प्रजापति अपने सर्वहुत यज्ञकी पूर्ति करते हैं वही घृत है जिसका मूल दुग्ध रूपमें द्युलोकसे पृथिवी तक ओषधियोंमें, वनस्पतियोंमें, मनुष्योंमें, पशुओंमें सर्वत्र व्याप्त है। अवश्य ही वैदिक परिभाषाके अनुसार यह घृत ही अग्निका प्रत्यक्ष रूप है। इसकी महिमा और व्याख्या ऋग्वेदके घृत सूक्तमें पाई जाती है (४।५८।१-११) इस सूक्तके पांच देवता हैं- अग्निः, सूर्यः, आपः, गावः, घृतस्तुतिर्वाहः। ऊपर जिन विशिष्ट अर्थोंकी व्याख्या की गई है उसकी पृष्ठभूमिमें घृत तत्त्वके साथ इन पांचों देवताओंका घनिष्ट सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है इसी सूक्तके तीसरे मंत्रमें घृत या रेतके स्रोत अग्निका वर्णन चार सींगोंवाले बैलके रूपमें किया गया है—

चत्वारि शृंगास्त्रयो अस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥

इस मंत्रका चतुः शृंग वृषभ अग्नि या प्राण है। आदित्य भी उसीका रूप है। ऋग्वेदके अनुसार वृषभ और महिषमें अन्तर है। महिषका वर्णन ठीक इससे पहले मंत्रमें किया गया है। महिष शक्तिका वह रूप है जो आरण्यक अर्थात् जंगली या बंधन या नियमसे रहित है। यह प्राणकी वह दशा है जिसे आपः कहते हैं। महिषको भी जल प्रिय है। किन्तु वृषभ वह अवस्था है जिसमें शक्ति नियमित रूपमें अभिव्यक्त होती है। इसी लिए इसे त्रिधाबद्ध कहा गया है।

यह तीन बन्धन तीन लोक, तीन शक्ति, तीन अवस्था, तीन देव आदि जितने त्रिक हैं उन सबमें प्राण रूप अग्निका नियमन करते हैं। त्रिक भाव स्वयं एक छन्द है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, उसी त्रिकसे समानान्तर रूप है। त्रिक भाव ही अग्नि त्रेता या मन, प्राण, वाक्का रूप है। इससे अतीत जो पूर्वकी अवस्था है जिसे सहस्र विराट् या अजन्मा कहते हैं वह त्रिकके साथ मिलकर चतुष्पाद ब्रह्मकी परिभाषाको जन्म देती है। वे ही अग्नि रूपी वृषभके चतुः शृंग हैं। चतुर्वेद, चतुर्लोक, चतुर्देव आदि रूपोंमें विश्वकी व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थोंमें पाई जाती है। गोपथ ब्राह्मणमें इसे ही ब्रह्मका चातुष्प्राश्य ओदन कहा है अर्थात् यह ऐसा भात है जिसे चार आदमी मिलकर खाते हैं, अर्थात् अव्यय पुरुष, अक्षर पुरुष और क्षर पुरुष रूपी तीन पुरुष तो सृष्टिके त्रिकसे सम्बन्धित हैं और एक जो इनसे अतीत है वह

परात्पर पुरुष कहलाता है । यह चारों अपने-अपने ब्रह्मके रूप हैं और इन्हींके लिए ये चातुष्प्राश्य ब्रह्मौदन है ।

ऋग्वेदमें कहा है कि सृष्टिकी मूक गायोंको पणियोंने गुहामें छिपा रक्खा था देवोंने उन्हें मुक्त किया और तब घृतकी धारायें सोमके समुद्रसे हटकर प्रवाहित होने लगीं। जो घृत गौओंके शरीरमें व्याप्त था वही दुग्ध रूपमें स्फुट होकर प्रवाहित हो चला । उसके एक अंशको इन्द्रने, दूसरेको सूर्यने और तीसरेको वेनने प्रकट किया । इन्द्र मनका प्रतीक है । वह मनस्वान् देव है (ऋग्वेद २।१२।१)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् ।
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ॥

सूर्य प्राण या अक्षर तत्वका प्रतीक है । मन और प्राण दोनों अव्यक्त रहकर अपनी स्वधा या निजी शक्तिसे वेनको जन्म देते हैं । वेन अग्निकी संज्ञा है। वेनको ऋग्वेदमें पृश्नि गर्भ अर्थात् पृश्नि गौका पुत्र कहा गया है । वह ज्योतिसे आवृत रहता है और कृष्ण एवं शुक्ल रजस्के द्वारा उसका विमान या मापन किया जाता है । आपः या मातृतत्व और सूर्य या पितृतत्वका जहां संगम होता है उस बिन्दु पर जिस प्राण, हिरण्य, अग्निका जन्म होता है उस वेन संज्ञक एस वर्णात्मक तेजको ऋषि लोग शिशु या कुमारके रूपमें अपनी बुद्धि रूपी जिह्वासे चाटते हैं—

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा
ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥
(ऋग्वेद १०।१२३।१)

ज्योतिसे जन्म लेनेवाला वेन स्वयं अग्नि ही है । अग्नि या वेन एक ' रोचना ' या ' ज्योति ' है (सुरुचो वेन आवः यजुर्वेद १३।३) । यही ब्राह्म रुचि या ब्राह्म ज्योति है जिसे सब देवोंने मिलकर उत्पन्न किया है—

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥
(यजुर्वेद ३१।२१)

देवोंने सर्व प्रथम जिस ब्राह्मी ज्योतिको प्रकट किया वही अग्नि है वही प्राण है । इसीलिए अग्निमें सब देवताओंका निवास माना गया है, जैसे घृत या रेतमें (अग्निः सर्वा देवता, एतरेय ब्राह्मण १।१।२।३) शतपथ० १।६।२।८, सर्व देवत्यो अग्निः शतपथ० ६।१।२।२८, अग्निर्वै सर्वेषां देवानाम् आत्मा) इसी अग्नि या प्राण रूप बाह्य ज्योतिको समस्त देव, भूत, असुर, ऋषि, पिता अर्थात् सारा विश्व प्रणाम करता है (नमो रुचाय ब्राह्मणे) यजु० ३१।२०) । वही अग्नि या प्राण सब देवोंका पुरोहित है । इसीके तपसे अन्य सब देव जीवित रहते हैं । वही अग्नि प्रजापतिका साक्षात् रूप है । उसीके लिए अग्नि चयन द्वारा महावेदीका चयन किया जाता है । शरीर या पार्थिव भूतोंसे निर्मित देहका निर्माण ही पंचचितिक अग्नि चयन है । इस महावेदीमें प्राणाग्निकी प्रतिष्ठा यही प्रजापतिका विश्वमें श्रेष्ठतम कर्म है ।

आर्यसमाजमें सस्वर वेदपाठकी व्यवस्था हो

(लेखक— श्री वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी रोड, इन्दौर नगर)

स्वर सहित वेदमंत्रोंके पाठमें सदा तात्पर्य प्रमुख रूपसे यही रहता है कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंके सहित मन्त्रका उच्चारण मन्त्रमें लगे हुए चिह्नोंके अनुसार कण्ठ स्वरसे करना। इस प्रकार उच्चारण करनेसे बहुत ही उत्तम लाभ होता है। अपने शरीर पर और विश्व पर भी किस प्रकार प्रभाव पड़ता है वह स्वर शास्त्रका एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। इसके अतिरिक्त यदि नियत चिह्नोंके अनुसार मन्त्रोंका उच्चारण न किया जावे तो स्वरके द्वारा जो महान् लाभ स्वयंको होना चाहिये और विश्व पर होना चाहिये, वह नहीं होगा।

अपने स्वाभाविक उच्चारणमें, अपने बिना कुछ जाने हुए भी उदात्तादि स्वरोंका उच्चारण होता रहता है। अतः उदात्तादि नियमोंके जाने बिना भी जो मन्त्रोंका पाठ करते हैं उसमें भी स्वर तो होते ही हैं। परन्तु उसको स्वर पाठ नहीं कहा जा सकता। अपितु परमात्माने सृष्टि यज्ञके प्रारम्भमें वेद मन्त्रोंका जो स्वर ऋषियोंके ज्ञान मध्य प्रकट किया, उसी स्वरमें तथा उन ऋषियों द्वारा सृष्टि प्रारम्भकालसे अद्यावधि गुरुशिष्य परम्परा द्वारा वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी जो विद्या एवं प्रकार सुरक्षित है उसीके अनुसार वेद मन्त्रोंका उच्चारण करना ही सस्वर वेदपाठ कहा जाता है या माना जाता है। उसी पाठकी शिक्षा रक्षा एवं प्रचलनके लिये जो ग्रन्थ ऋषियोंने निर्माण किये, वे शिक्षा ग्रन्थ कहलाते हैं। येही शिक्षा ग्रन्थ वेदके षडंगोंमें प्रथम हैं।

चारों वेदोंका सस्वर पाठ अपने-अपने वेदकी रीतिसे होता है और वह जिस प्रणाली हो रहा है अर्थात् काशी, पूना आदि स्थानोंमें प्रचलित है उसे महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वतीने भी मान्य किया है और उसीको ग्रहण करनेके लिये भी कहा है। अतः परम्परागत वेदमन्त्र पाठकी प्रणाली ग्राह्य है। उप प्रचलित पाठमें यदि कोई दोष हो तो उसका ज्ञान शिक्षा ग्रन्थोंके अध्ययन और स्वर पाठके अभ्याससे ही जाना जा सकता है। अन्य प्रकारसे नहीं। इस प्रकार चारों वेदोंके मन्त्रोंका ४ प्रकारका सस्वर पाठ हुआ। परन्तु यदि कोई इस बातको न जानकर या न मानकर अन्य प्रकारसे ही अपने मनमाने ढंगसे मन्त्रोंका उच्चारण करे तो वह उचित नहीं होगा। शिक्षा ग्रन्थोंने वेदोंके उच्चारणके बारेमें जो नियम बनाये हैं, उन्हें मान्य करना होगा। अन्यथा सभी व्यक्ति अपने अपने पाठको ही उचित समझेंगे और उसीके प्रचलनका भी आग्रह करेंगे।

आर्य समाजने वेदोंका बहुत प्रचार किया और घर-घर वेद मन्त्रोंका प्रचलन किया। यह तो बहुत ही उत्तम कार्य हुआ। जिन लोगोंको संस्कृत देवनागरीकी वर्णमालाका भी बोध नहीं था, उनको भी वेद कठस्थ करा दिये और वे सन्ध्या हवन भी करने लगे। यह एक अद्भुत एवं आश्चर्यमय कार्य वेदमन्त्रोंके प्रचलन एवं प्रचारके लिये कर दिया। जहां भारतके किसी-किसी नगरमें ही कोई वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाला था, आर्य समाजके प्रचार एवं प्रयत्नसे घर-घर वहां वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गुंजायमान होने लगी।

अब आवश्यकता इस बातकी है कि आर्य समाज वेदोंके शुद्ध एवं सस्वर मन्त्र पाठके शिक्षण और प्रचारकी भी समुचित व्यवस्था करे। हम सब वेदोंको परमात्माका परम पवित्र ज्ञान मानते हैं और यह भी मानते हैं कि वह ज्ञान शब्द सहित ही दिया गया था। तथा शब्द और अर्थका भी सम्बन्ध नित्य है। अतः शब्दोंके यथार्थ उच्चारणसे उसका यथार्थ अर्थ भी समझा जा सकता है और यदि उसको थोड़ा भी अशुद्ध उच्चारित किया जावे तो अर्थका अनर्थ भी हो सकता है। इसी प्रकार शब्दोंको उदात्तादि स्वरोंके साथ बोलनेसे भी अर्थोंका प्रकाश या ज्ञान होता है। एक ही शब्द स्वर भेदसे अन्य अर्थको प्रकट करने लगता है। अतः वेद मन्त्रोंको वर्ण और स्वर दोनों ही रीतिसे शुद्ध एवं सस्वर पाठ करना चाहिये।

शब्दोंके अशुद्ध उच्चारणसे वेदमन्त्रोंके अर्थोंमें कितना परिवर्तन हो जाता है इसको निम्न उदाहरणोंसे समझ सकता है—

(१) यद्भद्रम्= (यत्+भद्रम्) जो कल्याणकारक है [उसे हमें प्राप्त कराइये] यह अर्थ है। परन्तु अब हम=यद्-भद्रम्= (यत्+अभद्रम्) यह उच्चारण करते हैं तो अर्थ हो जाता है कि जो अभद्र, अकल्याणकारक, अशुभ, बुरा है वह हमें प्राप्त कराइये।

(२) विधेम= विशेष भक्ति करें—यह अर्थ महर्षि दयानन्दजीने किया है। परन्तु जब हम इसके स्थानपर= वधेम = यह उच्चारण करते है तो उसका अर्थ वध करें, मारें, काटें, यह हो जाता है।

(३) भुवः = दुःखनाशक अर्थ है। परन्तु प्राय. लोग = भवः = (भूर्भवः स्वः) कहते हैं। भवः का अर्थ उत्पन्न होनेवाला होता है। परमात्मा तो भुवः है, दुःख नाशक है और वह तो अजन्मा है अतः उसे भवः नहीं कह सकते है।

(४) सुहुतं = अच्छीप्रकारसे आहुति दिया गया हुआ वह अर्थ होता है। परन्तु 'यज्ञस्य कर्मणो०' मन्त्र बोलते समय लोग = सुहतं = बोल देते हैं, जिसका अर्थ हुआ अच्छी प्रकारसे मारा या नष्ट भ्रष्ट किया गया। इत्यादि प्रकारसे अनेक शब्दोंका अशुद्ध उच्चारण प्रायः लोग करते ही हैं।

मन्त्रोंमें स्वर दोषसे अर्थभेद कितना हो जाता है इसको कतिपय निम्न उदाहरणोंसे जान सकते हैं—

(१) धीमहि = धारण करें। परन्तु जब = धीमहिं = इस प्रकार स्वर हो जाता है तो दो पद = धी। महिं। हो जाते हैं और अर्थ हो जाता है धी = अर्थात् बुद्धि जो कि महि = अर्थात् प्रशंसनीय है।

(२) मा हिंꣳसीः = मतमारो, मत नष्ट करो, यह अर्थ हुआ क्योंकि निषेधार्थमें = मा = शब्द उदात्त है। यदि = मां हिꣳसीः = ऐसा प्रयोग करें तो अर्थ हो जायगा– मुझे मारो। क्योंकि अपने अर्थमें = मा = अनुदात्त होता है।

(३) यस्य क्षयाय जिन्वथ = महर्षि दयानन्द इस मन्त्रका अर्थ पतिके लिये स्त्री निमित्त करते हुए लिखते हैं कि वह स्त्री जिस अपने पतिके निवासके लिये है उसे तृप्त करे। आद्युदात्त क्षय शब्द निवास अर्थमें होता है। अतः यहां क्षयाय शब्दका निवासके लिये अर्थ हुआ। अब यदि क्षयाय शब्दको मध्योदात्त = क्षयायं = इस प्रकार प्रयुक्त करें तो यहां विनाशके लिये अर्थ हो जाता है अर्थात् वह स्त्री पति विनाशके लिये तृप्त करे। क्योंकि अन्तोदात्त क्षय शब्द नाश अर्थमें होता है।

(४) भ्रातृव्यस्य वधाय - स्वरकी दृष्टिसे यहां भ्रातृव्य शब्दका अर्थ शत्रु है अर्थात् शत्रुके वधके लिये। क्योंकि आद्युदात्त भ्रातृव्य शब्द शत्रुवाची है। परन्तु यदि इसको = भ्रातृव्यंस्य वधाय = इस प्रकार स्वरके साथ प्रयुक्त करें तो अर्थ हो जाता है, भतीजेके वधके लिये।

इत्यादि प्रकारसे अनेक दोष स्वरके विपरीत या अशुद्ध बोलनेसे अर्थभेदके कारण बन जाते हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि मनमें जो भाव हैं उसीके कारण अर्थका लाभ होना चाहिये, वाणी दोषसे अर्थमें दोष नहीं हो सकेगा। ऐसा समझना नितान्त अशुद्ध है तथा अज्ञानता भी है।

उच्चारणमें वर्ण और स्वरोंके दोषोंके अतिरिक्त छन्द दोष भी प्रचलित हो गये हैं। उदाहरणार्थ गायत्री मन्त्र— 'तत्सवितुः' से 'प्रचोदयात्' तक निचृत् गायत्री छन्दमें है। २३ अक्षरका निचृत् गायत्री छन्द होता है। परमात्माने इस मन्त्रकी रचना निचृद् गायत्री छन्दमें की है तो हमें भी उसकी रक्षा उसी छन्दमें करनी चाहिये। परन्तु प्रायः लोग 'वरेण्यं' पदका उच्चारण 'वरेणियं' इस प्रकार अक्षर युक्त, तीन, अक्षरोंके स्थान पर करते हैं। इससे एक अक्षर बढ जाता है और २३के स्थान पर २४ अक्षर हो जाते हैं। परिणामतः छन्द नियमसे वह मन्त्र निचृत् गायत्री न रहकर गायत्री छन्दमें हो जाता है। परमात्माके रचे छन्दोंमें यदि हम अपना परिवर्तन मिश्रित कर देते हैं तब वेदकी रचना परमात्माने की ऐसा कहना कठिन होगा। फिर परमात्माके द्वारा रचे वेदमन्त्र और आपके द्वारा संशोधित वेदमन्त्र ये दो भेद हो जायेंगे। हम सब अपनेको अल्पज्ञ अवश्य मानते हैं और परमात्माको सर्वज्ञ। ऐसी स्थितिमें आपके परिवर्तन अग्राह्य हैं, हेय कोटिमें हैं। परमात्माके द्वारा रचे वेदमन्त्रोंमें किंचित् भी परिवर्तन महादोष पूर्ण तथा अविद्यायुक्त ही माना जायेगा।

इसके अतिरिक्त पुस्तकोंमें प्रेसकी भूलसे तथा प्रकाशकोंकी असमर्थतासे मन्त्रोंमें अनेक स्थानों पर त्रुटियां होती हैं। सामान्य व्यक्ति तो छपे हुएको शुद्ध मानकर उसके अनुसार ही मन्त्रोंका उच्चारण करता है और वैसा ही कण्ठस्थ कर लेता है। इस कारण भी अनेक अशुद्धियां सामान्य जनोंमें प्रचलित हो गईं। अतः आर्य समाजके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह वेद मन्त्रोंकी शुद्धताकी रक्षाके लिये उनके शुद्ध एवं सस्वर पाठकी भी व्यवस्था करे। यदि यह कार्य नहीं किया गया तो कालान्तरमें वेदोंके अशुद्ध उच्चारणका अपयश भी आर्य समाजको प्राप्त होगा जिसका आभास अनेक घटनाओंसे प्रकट हो चुका है।

इन्द्र देवताका परिचय

वैदिक विश्वराज्यके संरक्षक मन्त्रीका परिचय

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

१ इन्द्रकी विद्वत्ता

'इन्द्र' देवोंका राजा है, देवोंमें मुख्य है, देवोंका अध्यक्ष है और 'विष्णु' उपेन्द्र है, उपाध्यक्ष है। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष इस अर्थके 'इन्द्र' और 'उपेन्द्र' ये दो पद हैं। ये पद ही ये राज्यव्यवस्थाके दो अधिकारी हैं यह बात स्पष्ट कर रहे हैं।

इन्द्र युद्धमंत्री या संरक्षणमंत्री है। प्रथम हम यह देखेंगे कि युद्धमंत्रीकी विद्वत्ता कितनी होती थी। युद्ध मंत्रीके विषयमें वैदिक कल्पना क्या थी। इन्द्र विद्यामें निपुण था इस विषयमें नीचे दिये मंत्र देखने योग्य हैं—

१ विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिं अस्य।
आर्यं सहो वर्धय द्युम्नं इन्द्र ॥ ऋ. १।१०३।३

२ स्थिरं रथं सुखं इन्द्र अधि तिष्ठन्।
प्रजानन् विद्वान् उप याहि सोमम् ॥
ऋ. ३।३५।४

३ तस्य आगत्या सुमना ऋष्व पाहि।
प्रजानन् विद्वान् पथ्या अनु स्वाः ॥
ऋ. ३।३५।८

४ विद्वान् चिकित्वान् हर्यश्व वर्धस।
इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ ऋ. ३।४४।२

५ सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ऋ. ३।४७।२

६ इन्द्रो विद्वान् अपारयत् ॥ ऋ. ४।३०।१७

७ उरुं नो लोकं अनुनेषि विद्वान्।
स्वर्वज्ज्योतिः अभयं स्वस्ति ॥ ऋ. ६।४७।८

८ स विद्वां अंगिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप।
ऋ. ८।६३।३

९ इन्द्रो विद्वां अनुहित्वा चचक्ष ॥ ऋ. १०।३२।६

१० इन्द्राग्नी ... विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥
ऋ. ५।८६।१

इन मंत्रोंमें बार बार इन्द्रको 'विद्वान्' कहा है। इनका अर्थ अब देखिये– (१) हे वज्रधारी इन्द्र! (विद्वान्) तू विद्वान् है, तू सब जानता है, (दस्यवे हेतिं अस्य) शत्रुपर शस्त्र फेंक और (द्युम्नं आर्यं सहो वर्धय) तेजस्वी आर्य बल बढा। (२) हे इन्द्र! (स्थिरं सुखं रथं अधि तिष्ठन्) स्थिर और सुखदायक रथपर चढकर (प्रजानन् विद्वान्) तू सब जाननेवाला विद्वान् सोमके समीप जा। (३) (सुमना प्रजानन् विद्वान्) उत्तम मनसे युक्त सब जाननेवाला विद्वान् (स्वाः पथ्या अनु आगत्या) अपने मार्गसे अनुकूलतापूर्वक यहां आ और (पश्य) सब देख। (४) हे (विद्वान् चिकित्वान् हर्यश्व) विद्वान् ज्ञानी तू हरिद्वर्णके घोडे जोतकर (विश्वाः श्रियः अभि वर्धसे) सब संपत्तियोंको बढाता है। (५) हे शूर विद्वान् इन्द्र! (वृत्रहा) तू वृत्रको मारकर (सोमं पिब) सोमको पी। (६) विद्वान् इन्द्र दुःखोंसे पार करता है। (७) तू विद्वान् है, (नः उरुं लोकं अनुनेषि) हमें विशाल लोकको पहुंचा, हमें (स्वः ज्योतिः अभयं स्वस्ति) आत्मज्योतिको निर्भय करके सुखपूर्वक पहुंचा। (८) (स विद्वान्) उस विद्वान् इन्द्रने अंगिरसोंसे गौवें प्राप्त कीं। (९) विद्वान् इन्द्रने (त्वा अनु चचक्ष) तुझे अनुकूल दृष्टिसे देखा। (१०) इन्द्र

और अग्नि ये दोनों विद्वान् हैं और प्रशंसनीय हैं।

इन मंत्रोंमें इन्द्रको 'विद्वान्, प्रजानन्, चिकित्वान्' कहा है इन पदोंसे उसकी विद्वत्ता प्रकट होती है। इन्द्र साधारण विद्वान नहीं है, परंतु वह विशेष विद्वान् है, देखिये—

एवा नूनं उपस्तुहि वैयश्व दशमं नवं।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ ऋ. ८।२४।२०

हे वैयश्व! (एवा नूनं) इस प्रकार (दशमं नवं सुविद्वांसं) दसवां नया उत्तम विद्वान् (चरणीनां चर्कृत्यं) कर्म कुशलोंमें अत्यंत कुशल है उस इन्द्रकी (उपस्तुहि) स्तुति करो।

यहां इन्द्रको 'सु-विद्वान्' अर्थात् उत्तम विद्वान् कहा गया है। तथा और देखिये—

१ भीमो विवेष आयुधेभिः एषां अपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्। ऋ ७।२१।४
२ विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वान् अपो रिरेच सखिभिः निकामैः। ऋ. ४।१६।६
३ विश्वस्य विद्वान् इह पाहि। ऋ. १०।१६०।२
४ विश्वानि विदुषे भर। ऋ. ६।४२।१

(१) (भीमः) भयंकर वीर इन्द्र (एषां विश्वा नर्याणि अपांसि) इनके सब सार्वजनिक हितके कार्योंको (विद्वान्) जाननेवाला (आयुधेभिः विवेष) शस्त्रोंसे शत्रुसेनामें घुसता है। (२) (शक्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्रने (विश्वानि नर्याणि विद्वान्) सब मानवोंके हितके कार्य जाननेवालेने (निकामैः सखिभिः अपः रिरेच) इच्छा करनेवाले मित्रोंके साथ जल उत्पन्न किया। (३) (विश्वस्य विद्वान्) सब कार्यको जाननेवाले इन्द्र! (इह पाहि) यहां हमारा रक्षण कर। (४) (विश्वानि विदुषे) सब कर्तव्योंके विद्वान्के लिये (भर) दे।

इन मंत्रोंमें इन्द्रको सब कर्मोंके करनेकी पद्धतिको यथार्थतया जाननेवाला कहा है। यह उसकी विद्वत्ता और निपुणताका द्योतक है।

इन्द्र विशेष विद्वान् है

इन्द्रको 'वि-प्र' भी कहा है। 'विप्र' का अर्थ 'विशेष प्राज्ञ' है, ब्राह्मणके समान विशेष ज्ञानी इन्द्र है, देखिये—

१ मंहिष्ठं अभि विप्रं अर्चत। ऋ० १।५१।१
२ तत् इत् नु ते करणं दस्म विप्र।
अहिं यद् घ्नन् ओजो अत्रामिमीथाः ऋ. ५।३१।७
३ अंगिरसान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥ ऋ. ६।३५।५
४ सनिता विप्रो अर्वद्भिः हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः॥ ऋ. ८।२।३६
५ धिया विप्रो अजायत। ऋ. ८।६।२८
६ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे। ऋ. ८।९८।१
७ ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां वसुनः च दावने॥ ऋ. १०।५०।७
८ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत॥ साम. १०७०

(१) महान् और विशेष ज्ञानी इन्द्रकी अर्चना करो। (२) हे (दस्म विप्र) दर्शनीय ज्ञानी इन्द्र! (तत् इत् नु ते करणं) वह निःसंदेह तेरा ही कार्य है कि (यत् अहिं घ्नन्) जो अहिको मारा (ओजः अत्र अमिमीथाः) और अपना बल प्रकट किया। (३) हे (विप्र) ज्ञानी इन्द्र! (अंगिरसोंको ब्रह्मणा जिन्व) तू अंगिरसोंको अन्न देकर सन्तुष्ट कर। (४) तू (सनिता) दाता है (विप्रः) ज्ञानी है, (अर्वद्भिः) घोडोंसे जानेवाला (वृत्रं हन्ता) वृत्रको मारनेवाला और (नृभिः शूरः) तू शूरोंके साथ बहुत शूर भी है। (५) तू (धिया) बुद्धिसे (विप्रः अजायत) विशेष ज्ञानी हुआ है। (६) (विप्राय बृहते इन्द्राय) ज्ञानी बडे इन्द्रके लिये (बृहत् साम गायत) बडा साम गायन करो। इन्द्र धर्म करनेवाला, ज्ञानी और कर्मकर्ता है। (७) हे (विप्र) ज्ञानी इन्द्र! (ये ते सुते ब्रह्मकृतः) जो तेरे सोमयागमें ज्ञानके लिये स्तोत्र हैं जो (वसूनां वसुनः दावने) धनोंके धनमें गाये जाते हैं। (८) (वृत्रहन्तमाय विप्राय इन्द्राय) वृत्रको मारनेवाले ज्ञानी इन्द्रके लिये (गाथं गायत) साम गान गाओ।

इन मन्त्रोंमें इन्द्रको 'विप्र, विपश्चित्' अर्थात् बडा विद्वान् कहा है। 'विप्रतम' अत्यंत ज्ञानी ऐसा भी वेदमें इन्द्रको कहा है, देखो—

नि षु सीद गणपते गणेषु
त्वां आहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किंचनारे
महामर्कं मघवन् चित्रं अर्च ॥ ऋ. १०।११२।९

हे (गणपते मघवन् इन्द्र) गणोंके स्वामी धनवान् इन्द्र। तू (गणेषु निषुसीद) गणोंमें बैठ। (त्वां कवीनां विप्रतमं आहुः) तुझको ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी कहा जाता है। (त्वत् ऋते) तेरे बिना (किंचन कर्म न क्रियते) कुछ भी कार्य नहीं किया जाता (आरे) समीपके स्थानमें (महां अर्कं चित्रं अर्च) बडे पूजनीय विशेष देवकी पूजा कर। इस मंत्रमें इन्द्रको 'गणपति, विप्रतम कवीनां श्रेष्ठं, महां अर्कं चित्रं' कहा है। ये विशेषण इसकी विद्वत्ताका वर्णन करते हैं।

अगच्छद् उ विप्रतमः सखीयन्। ऋ. ३।३१।७

(विप्रतमः) ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्र मित्र बनकर गया। यहां भी 'विप्रतम' पद अधिक श्रेष्ठ विद्वान्के अर्थमें प्रयुक्त है।

विपश्चित् इन्द्र

'विपश्चित्' पद बडे विद्वान्का वाचक पद है। वह इन्द्रके लिये प्रयुक्त हुआ है, देखिये—

इन्द्रं पृच्छ विपश्चितम्। ऋ. १।४।४

स्तुहि श्रुतं विपश्चितम्। ऋ. ८।१३।१०

विद्वान् इन्द्रको पूछो। ज्ञानी बहुश्रुत इन्द्रकी स्तुति कर। इसी तरह इन्द्रको 'प्रविद्वान्' भी कहा है। इसका मंत्र यह है—

शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञं उपयाहि। अथर्व. ७।९७।१

हे बलवान् तथा विशेष विद्वान् इन्द्र! यज्ञके पास पहुंचो। 'विजानन्' पद विशेष ज्ञानीके लिये प्रयुक्त होता है यह इन्द्रके लिये अगले मंत्रमें प्रयुक्त हुआ है—

ज्योतिः वृणीते तमसो विजानन्
आरे स्याम दुरितादभीके ॥ ऋ. ३।३९।७

(विजानन्) ज्ञानी इन्द्र (तमसः ज्योतिः वृणीते) अन्धकारको दूर करके ज्योतिको प्राप्त होता है। अब हम (दुरितात्) पापसे दूर होकर रहेंगे। अब 'विचेताः' पदका प्रयोग देखिये—

ततुरिः वीरो नर्यो विचेताः। ऋ. ६।२४।२

(ततुरिः) त्वरासे कार्य करनेवाला (नर्यः) सार्वजनिक हित करनेवाला वीर इन्द्र (वि-चेताः) विशेष ज्ञानी है।

कवियोंमें श्रेष्ठ कवि

अनु त्वा अहिघ्ने अध देव देवा।
मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ॥ ऋ. ६।१८।१४

हे इन्द्र देव! तू (कवीनां कवितमं) ज्ञानियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानी है इसलिये (विश्वे देवाः) सब देव (अहिघ्ने त्वा) अहिको मारनेवाले तेरी (अनु मदन्) स्तुति करते हैं। कवियोंमें श्रेष्ठ कवि इन्द्र है।

इन्द्र सूरि है

बडा विद्वान्, जो बडा टीकाकार होता है, उसको 'सूरि' कहते हैं। इन्द्रको भी 'सूरि' कहा है देखो—

सूरिः इन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता।
ऋ. ६।२३।१०

(इन्द्रः सूरिः) इन्द्र बडा ज्ञानी है और (विश्ववारस्य रायः दाता) सब प्रकारसे स्वीकारके योग्य धनका दाता है।

विश्ववेदा इन्द्र

इन्द्रः सुत्रामा स्ववां अवोभिः
सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ऋ. ६।४७।१२

इन्द्र (सु-त्रामा) उत्तम संरक्षक है, (स्ववान्) स्वसामर्थ्यसे युक्त है, (सु-मृळीकः) उत्तम सुख देनेवाला (अवोभिः) संरक्षणके साधनोंसे युक्त है, (विश्ववेदाः) सब प्रकारोंके ज्ञानोंसे युक्त उत्तम ज्ञानी है (बाधतां द्वेषः) शत्रुओंको दूर करे, (अभयं कृणोतु) अभय करे (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम वीर्यके हम स्वामी बनें।

इस मंत्रमें इन्द्रको 'विश्व-वेदाः' अर्थात् सर्वज्ञ, सब जाननेवाला कहा है।

मनस्वी इन्द्र

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेताम्
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ ऋ. २।१२।१

(मनस्वान् प्रथमो देवः) बुद्धिमान् पहिले इन्द्र देवने (देवान् क्रतुना पर्यभूषत्) सब देवोंको अपने क्रतुसे सुभूषित किया। (यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेतां) जिसके बलसे द्यावा पृथिवी कांपने लगती हैं। हे (जनासः) लोगो! (नृम्णस्य मह्ना) जो शक्तिके महत्वसे युक्त है (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है।

यहां 'मनस्वान् इन्द्र' का वर्णन है। मननशील इन्द्र है यह इसका भाव है।

बुद्धिमान् इन्द्र

इन्द्र बुद्धिमान् है। इस कारण इन्द्रको 'मेधिर' कहा है—

इन्द्राय विश्वं इन्वं मेधिराय। ऋ. १।६१।४

'(मेधिराय इन्द्राय) बुद्धिमान इन्द्रके लिये यह स्तुति है।'

सरत् पुरंधि न आगहि
विश्वता धी न ऊतये॥ ऋ. ८।३४।६

हे (पुरंधि) बडे बुद्धिमान् इन्द्र! (नः आगहि) तू हमारे समीप आ और (विश्वतो धी) सब ओर अपनी बुद्धि चलानेवाला इन्द्र (नः ऊतये) हमारी सुरक्षाके लिये हमारे समीप आवे।

जाग्रत बुद्धिमान् इन्द्र

इन्द्र हमेशा जाग्रत रहता है। इसको वेदमें 'जागृवि' कहते हैं—

भक्षं सोमस्य जागृविः॥ ऋ. ८।२२।२३

हे जाग्रत रहनेवाले इन्द्र! सोमका भक्षण कर। तथा-

शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः॥ ऋ. १०।१३४।६

हे (मन्तुमः) ज्ञानी इन्द्र! तू बडी शक्ति धारण करता है।

त्वं हि शश्वतीनां इन्द्र दर्ता पुरां असि।
हन्ता दस्योः मनोवृधः पतिः दिवः॥ ऋ. ८।९८।६

हे इन्द्र! (त्वं हि) तू (शश्वतीनां पुरां दर्ता असि) शाश्वत पुरियोंको तोडनेवाला है, तू (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी है (दस्योः हन्ता) दुष्टोंका वध तू करता है। (मनोः वृधः) मनन शक्तिको बढानेवाला तू है।

अजातशत्रु इन्द्र

अजातशत्रुः अस्तृतः॥ ऋ. ८।९३।१५

'इन्द्रका कोई शत्रु नहीं तथा उसका पराभव भी नहीं होता।

द्रोहसे भाषण न करनेवाला

नक्षद्दामं ततुरिं पर्वतेष्ठां अद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्। ऋ. ६।२२।२

'(नक्षत्-दामं) शत्रुका नाश करनेवाले, (ततुरिं) त्वरासे कार्य करनेवाले (पर्वते-स्थां) पर्वतपर रहनेवाले (अ-द्रोघ-वाचं) द्रोह रहित भाषण करनेवाले (शविष्ठं) बलवान् इन्द्रकी (मतिभिः) बुद्धिपूर्वक स्तुति की।'

इन्द्र इतना शक्तिमान है तो भी वह द्रोहकी भाषा नहीं बोलता।

प्रवचनकर्ता इन्द्र

इन्द्र उत्तम प्रवचन करनेवाला है इस विषयमें मन्त्र देखिये—

स वृत्रहा इन्द्रः चर्षणीधृत्
तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम।
स प्राविता मघवा नो अधिवक्ता
स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता॥ ऋ. ८।९६।२०

(सः वृत्र-हा) वह वृत्रको मारनेवाला इन्द्र है, (चर्षणी-धृत्) लोगोंको धारण करनेवाला है, जो उसकी स्तुति करके उसके लिये हवन करते हैं। वह इन्द्र (प्राविता) हमारा रक्षक है और वह (अधिवक्ता) उपदेश करनेवाला है तथा यशस्वी अन्न देनेवाला है।

यहां 'अधिवक्ता' पदका प्रयोग है। इस प्रकार इन्द्र विद्वान्, विचारी, मननशील, प्रवचन कर्ता है यह बात वेद मंत्रोंने बता दी है। इन्द्र युद्धमंत्री, तथा सरक्षणमंत्री है। वह विद्वान्, उत्तम वक्ता, सब विषयोंको समझनेवाला होना चाहिये, नहीं तो उस स्थान पर कोई अज्ञानी रहा, तो वह संरक्षणके कार्यको अच्छी तरह कर नहीं सकेगा। इस प्रकार संरक्षण मंत्री विद्वान तथा उत्तम वक्ता होना चाहिये यह वेदने यहां स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है।

इन्द्रके शरीरावयव, शस्त्रास्त्र और पोशाक

उग्रबाहु इन्द्र

इन्द्रके बाहु बडे उग्र हैं अर्थात् बडे शक्तिशाली और हृष्ट पुष्ट हैं, देखिये—

उग्रबाहुः म्रक्षकृत्वः पुरंदरो
यदि मे शृणवद् हवम् ॥ ऋ ८।६१।१०
य उग्राणां उग्रबाहु ययुः
यो दानवानां बलं रुरोज ॥ अथर्व ४।२४।२

जो बलवान् बाहुवाला, शत्रुका वध करनेवाला, शत्रुके नगर तोडनेवाला इन्द्र यदि मेरी प्रार्थना सुनेगा।

जो बलवान् बाहुवाला शत्रुओंपर हमला करता है और दानवोंका बल तोडता है।

इन मंत्रोंमें इन्द्रके लिये 'उग्र-बाहु' कहा है। इसमें इन्द्रकी वीरताकी प्रशंसा है, उसका शरीर बडा हृष्टपुष्ट है यह इससे सिद्ध होता है। क्योंकि किसी वीरके बाहु ही बलिष्ठ हों और बाकी शरीर निर्बल हो ऐसा नहीं होता, जिसके बाहु बलवान हों उसका सब शरीर भी बलवान् होता है इस कारण इन्द्रका सब शरीर हृष्टपुष्ट था यही इससे सिद्ध हुआ है।

इन्द्रकी दो शिखाएं

जो दो शिखाएं रखता है उसको 'द्वि-बर्हा' कहते हैं। इन्द्रको वेदमें द्विबर्हा कहा है देखिये—

महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा
उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ॥ ऋ. ६।१९।१
यस्य द्विबर्हसो बृहत्
सहो दाधार रोदसी ॥ ऋ. ८।१५।२

(महान् इन्द्र) बडा है (नृवदा चर्षणिप्राः) मानवोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाला, मानवोंके साथ रहनेवाला (द्विबर्हा) दो शिखाएं रखनेवाला है। (द्विबर्हसः यस्य महत् सहः) दो शिखाएं रखनेवाले इन्द्रका बडा बल द्यावापृथिवीको धारण करता है।

'द्विबर्हः' का अर्थ भाष्यकारोंने द्यावापृथिवीके दोनों स्थानोंमें रहनेवाला ऐसा भी किया है। और दो शिखावाला ऐसा भी इन पदोंका अर्थ है।

वज्रबाहु इन्द्र

इन्द्रके बाहु वज्रके समान कठोर और बलवाली थे ऐसे वर्णन वेदमें बहुत हैं—

इन्द्रो यातो अवसितस्य राजा
शमस्य च शृंगिणो वज्रबाहुः। ऋ. १।३२।१५
यो रौहिणं अस्फुरद् वज्रबाहुः। ऋ. २।१२।१२
इन्द्रो अस्मां अरदद् वज्रबाहुः। ऋ. ३।३३।६
एव इद् इन्द्रं वज्रबाहुं
वसिष्ठासो अभ्यर्चन्ति अर्कैः। ऋ. ७।२३।६

वज्रके समान बाहुवाला इन्द्र स्थिर और चल, तथा शान्त और सींगवालोंका राजा है। वज्रबाहु इन्द्रने रौहिणेयको मारा। वज्रबाहु इन्द्रने हमको– नदियोंको–खोदकर बनाया है। वज्र समान बाहुवाले इन्द्रकी स्तोत्रोंसे वसिष्ठ अर्चना करते हैं।

इस तरह इन्द्रके वज्रके समान सामर्थ्यवान् बाहुओंका वर्णन वेदमें है।

मूंछें हिलानेवाला इन्द्र

'श्मश्रु' दाढी और मूछियोंका नाम है। ये दाढी और मूंछ इन्द्र हिलाता है ऐसा वेदमंत्रने कहा है—

प्र श्मश्रु दोधुवत् ऊर्ध्वथा भूत्
वि सेनाभिः दयमानो वि राधसा ॥ ऋ. १०।२३।१

वह इन्द्र (ऊर्ध्वथा श्मश्रु प्र दोधुवत्) ऊर्ध्व दिशामें अपनी मूछियां हिलाता है। वह (सेनाभिः विदयमानः) अपनी सेनासे शत्रुका नाश करता है तथा (राधसा वि) धनका दान करता है।

'श्मश्रु ऊर्ध्वथा दोधुवत्' मूछियां ऊपर हिलाता है। 'श्मश्रु' का अर्थ दाढी मूछियां है। बोलनेके समय उसकी दाढी और मूछियां हिलती रहती है। यह इसका तात्पर्य है।

इन्द्रका सुडौल शरीर

इन्द्रका शरीर बडा सुडौल था। इसका वर्णन वेदमें ऐसा है—

ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति
पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घ इषणन्त पृक्ष
ऋतेन गावः ऋत आ विवेशुः ॥ ऋ. ४।२३।९

(ऋतस्य) सत्य स्वरूप इन्द्रके (दृळ्हा धरुणानि सन्ति) सुदृढ धारण शक्तिसे युक्त शरीर है। (वपुषे पुरूणि चन्द्रा वपूंषि) इनके शरीरके स्थानपर बहुत आल्हाददायक कान्तिवाले शरीरावयव हैं। (ऋतेन दीर्घं पृक्ष इषणन्त) इन्द्रसे बहुत अन्न भक्त लोग प्राप्त करना चाहते हैं। (ऋतेन गावः

ऋत आ विविशुः) इन्द्रके साथकी गौवें इन्द्रके साथ ही रहती हैं ।

यहां 'ऋत' पद इन्द्रका वाचक है क्योंकि यह इन्द्र सत्य धर्मा है, अतः वह 'ऋत' ही है। इसका शरीर 'चन्द्रा, दळहा, धरुणानि' है अर्थात् 'सुन्दर, सुदृढ तथा बलवान्' है ऐसा यहां कहा है ।

बडे पेटवाला इन्द्र

इन्द्रका पेट बडा था परंतु वह केवल स्थूल ही नहीं था। वह सामर्थ्यवान् था । इस विषयमें कहा है-

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुः अन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ऋ. ८।१७।८

'(तुवि-ग्रीवः) विशाल गर्दनवाला (वप-उदरः) बडे पेटवाला (सु-बाहुः) उत्तम बाहुवाला इन्द्र (अन्धसः मदे) सोमरसके हर्षमें (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंको मारता है ।

इस मंत्रमें (तुवि-ग्रीवः) हृष्टपुष्ट गर्दनवाला इन्द्र है ऐसा कहा है। सिरसे गर्दन मोटी चाहिये जिससे वृद्धावस्थामें सिर हिलता नहीं। (वप-उदरः) पेट पुष्ट चाहिये और (सुबाहुः) बाहु भी पुष्ट और शक्तिमान् चाहिये। इस वर्णनसे इन्द्रका शरीर कैसा था इसका पता लग सकता है ।

गौरवर्ण इन्द्र

इस इन्द्रका गौरवर्ण है इसका वर्णन यह मंत्र करता है-

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः
शुभ्रं वज्रं बाह्वोः दधानाः ।
शुभ्रः त्वं इन्द्र वावृधानो अस्मे
दासीः विशः सूर्येण सह्याः ॥ ऋ. २।११।४

हे इन्द्र ! (ते शुभ्रं शुष्मं वर्धयन्तः) तेरा शुभ्र अर्थात् निर्दोष बल हम बढाते हैं, (बाह्वोः शुभ्रं वज्रं दधानाः) तेरे बाहुओंमें शुभ्र वज्र धारण कराते हैं। (त्वं शुभ्रः अस्मे वावृधानः) तू गौर वर्ण है हमारा सामर्थ्य बढानेवाला है, (सूर्येण) सूर्यके समान (दासी विशः सह्याः) शत्रुकी सेना या प्रजाका पराभव कर। वे हमपर आक्रमण न कर सकें ऐसा कर ।

दर्शनीय इन्द्र

इन्द्र बलवान् हृष्टपुष्ट था और सुन्दर भी था। देखिये-

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ॥
ऋ. १।८२।३

'हे इन्द्र ! (वयं) हम सब (सुसंदृशं त्वा) उत्तम दर्शनीय ऐसे तुझे (वन्दिषीमहि) प्रणाम करते हैं।' इसमें इन्द्र सुन्दर है ऐसा कहा है। इन्द्र गोरा है, महाशक्तिमान् है और सुन्दर भी दीखता है।

सुवर्ण सा वर्णवाला इन्द्र

इन्द्रका वर्ण गौर था, पर सुवर्ण जैसा पीत भी था। इसका वर्णन ऐसा वेदमें किया है—

यदीं इन्द्र श्रवाय्यं इषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥
ऋ ५।३८।२

'हे (शविष्ठ हिरण्यवर्ण इन्द्र) बलवान्, सुवर्णके समान वर्णवाले इन्द्र ! (श्रवाय्यं इषं दधिषे) सुप्रसिद्ध अन्न तुम्हारे पास है वह (दीर्घ-श्रुत्तमं दुष्टरं पप्रथे) सुप्रसिद्ध और अजिंक्य सा है।'

इसमें सुवर्णसा शरीर इन्द्रका है ऐसा कहा है ।

आयुधोंको धारण करनेवाला इन्द्र

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम् । चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारं अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः । ऋ. १०।४७।२

'(सु-आयुधं) उत्तम प्रकारके आयुध धारण करनेवाले (सु-अवसं) उत्तम रीतिसे रक्षण करनेवाले, (सु-नीथं) उत्तम नीतिसे युक्त (चतुः समुद्रं) चारों समुद्रों तक जिसकी कीर्ति पहुंची है ऐसे (रयीणां धरुणं) धनोंके धारक (चर्कृत्यं) पुरुषार्थके कार्य करनेवाले (भूरिवारं शंस्यं) अनेक वार प्रशंसनीय इन्द्र है। हे इन्द्र ! तू हमें विलक्षण बलवर्धक धन दो ।

इसमें 'सु-आयुधं' पद है, उत्तम शस्त्र अस्त्र अपने पास रखनेवाला इन्द्र है। संरक्षण मंत्रीको ऐसा ही करना चाहिये तथा—

युद्धे यद् इष्णान आयुधानि ऋघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ ऋ. १।६१।१३

(युद्धे आयुधानि इष्णानः) युद्धमें आयुधोंको शत्रु पर फेंकता है (ऋघायमाणः शत्रून् निरिणाति) शत्रुओंका

नाश करनेकी इच्छा धरके शत्रुका नाश करता है । इस तरह आयुधोंका उपयोग करनेवाला वीर इन्द्र है ।

धनुर्धारी इन्द्र

इन्द्र धनुष्य भी उत्तम रीतिसे बर्तता है देखिये—

स इषु हस्तैः स निषङ्गिभिः वशी
संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्धी ।
उग्रधन्वा प्रतिहिताभिः अस्ता ॥ ऋ. १०।१०३।३

(सः इषुहस्तैः) वह बाण बर्तनेवालोंके साथ रहता है, वह (निषङ्गिभिः) तलवार धारण करनेवालोंके साथ रहता है, (वशी) सबको अपने वशमें करता है, (संस्रष्टा) शत्रुके संघमें जाकर युद्ध करनेवाला है, (गणेन युद्धः सः इन्द्र) गणोंके साथ रहनेवाला वह इन्द्र (संसृष्ट जित्) शत्रुके साथ होनेवाला युद्ध जीतनेवाला, सोम पीनेवाला (बाहुशर्धी) बलवान् बाहुवाला (उग्रधन्वा) उग्र धनुष्यका उपयोग करनेवाला, (प्रतिहिताभिः अस्ता) शत्रुपर फेंकनेवाले बाणोंसे शत्रुको मारनेवाला इन्द्र है ।

इसमें ' उग्र धन्वा ' इन्द्र है ऐसा वर्णन है । इससे इन्द्रके उत्तम धनुर्धारी होनेकी सिद्धता होती है ।

वज्रधारी इन्द्र

इन्द्रका मुख्य शस्त्र ' वज्र ' है अतः इन्द्रकी स्तुतिमें उसके वज्रधारी होनेका वर्णन आता है । देखिये—

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः । ऋ. १।७।२
महित्वं अस्तु वज्रिणे ॥ ऋ. १।८।५
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्
यानि चकार प्रथमानि वज्री ॥ ऋ. १।३२।१
शविष्ठ वज्रिन् ओजसा पृथिव्या निःशशा
ऋ. १।८०।१

इन्द्र वज्रधारी है, वह सुवर्णके समान कान्तिसे युक्त है । वज्रधारी इन्द्रका महत्व हो । इन्द्रके कार्योंका मैं वर्णन करता हूं जो उस वज्रधारीने किये थे । बलिष्ठ वज्रधारी पृथिवीका शासन करता है ।

इस तरह इन्द्र वज्रधारी है और वज्रसे वह विशेष पराक्रम करता है ।

कर्तृत्ववान् इन्द्र

इन्द्रको ' चक्री ' कहा है । इसका अर्थ यह महा कर्तृत्ववान् है ।

पमेनं सृजता सुते मन्दिं इन्द्राय मन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ऋ १।९।२

(विश्वानि चक्रये) सब विश्व उत्पन्न करनेवाले आनंद बढानेवाले इन्द्रके लिये सोमका आनंददायक सोमरस दे दो । यह वर्णन उसके विशेष कर्तृत्वका वर्णन है । अब इसके पोषाखका वर्णन देखेंगे ।

इन्द्रका शिरस्त्राण

आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु । ऋ. १।१०१।१०

' हे (सुशिप्र) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! तुझे घोडे ले जांय । ' यहां ' सुशिप्र ' पद आया है । ' शिप्र, सुशिप्र ' ये पद उसके उत्तम शिरस्त्राणके वाचक हैं । अब और देखिये—

ऊती अनूती हरिशिप्रः सत्वा । ऋ. ९।२९।६

' हमारा रक्षण करके अथवा न करके सुवर्णके शिरस्त्राणवाला इन्द्र सत्ववान् है । ' यहां ' हरिशिप्र ' पद सुवर्णसे सुन्दर बनाये शिरस्त्राणका वाचक है । इससे पता चलता है कि जरीवाले शिरस्त्राणको इन्द्र धारण करता है । यह साफा होगा अथवा धातुका बना शिरस्त्राण होगा । यह शिरोभूषण है इसमें संदेह नहीं है ।

इन्द्रका चोगा

वसानो अत्कं सुरभिं दृशेकं स्वर्ण नृतविषिरो
बभूथ ॥ ऋ ६।२९।२

' तू (अत्कं वसानः) चोगा पहनता है (सुरभिं दृशेकं) सुंदर दीखनेके लिये मानवोंमें पूजनीय होता है ।

इन्द्रका कवच

वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि । ऋ १०।१०१।८

' कवच सीकर बहुत तैयार करो । ' इस प्रकार वीरोंके कवच सीये जाते थे, वीर उन्हें पहनते थे ।

बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्ते निर्णिजम् ।
ऋ. १।२५।१३

वरुण देव सुवर्णके कामसे युक्त चोगा पहनता है । इस तरह इन्द्र भी पहनता होगा ।

ये इनके पोषाख हैं, बर्खोंका वर्णन इससे पूर्व किया जा चुका है। इन्द्रके शस्त्र अस्त्र, पोषाख आदिका वर्णन यहां तक हुआ है।

इन्द्रका बल और सामर्थ्य

इन्द्र शूर है, वीर भी है, इस कारण वह बलवान् भी है, क्योंकि बलके बिना शूरवीरताका होना असंभव है। 'वाजी' पद बलवान्के अर्थमें इन्द्रके वर्णनमें आता है देखिये—

१ तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयाम शतक्रतो। ऋ. १।४।९

२ वाजे वाजिन् शतक्रतो। ऋ. ८।५२।४

३ स्तुहि इन्द्रं व्यश्ववद् अनूर्मिं वाजिनं यमम्। ऋ. ८।२४।२२

४ वाजी ददातु वाजिनम्। ऋ. ८।९३।३४

(१) हे (शत-क्रतो) सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! (वाजेषु) युद्धोंमें (त्वा वाजिनं वाजयामः) बल दिखाने-वाले तुझे बलवान् करते हैं अर्थात् तेरे बलकी प्रशंसा करते हैं। (२) हे बलवान् इन्द्र! हे सैंकडों कर्म करनेवाले! बलके लिये तुझे बुलाते हैं। (३) व्यश्वके समान अपरा-जित बलवान् सबको स्वाधीन रखनेवाले इन्द्रकी स्तुति कर। (४) (वाजी) बलवान् इन्द्र बलको देवे।

इन मंत्रोंमें बल तथा सामर्थ्यवाचक 'वाज' पद इन्द्रका सामर्थ्य बतानेके लिये यहां आया है।

'वाज' का अर्थ 'युद्ध, बल, सामर्थ्य, शक्ति, धन, अन्न, घी, वाणी, शब्द' आदि होता है। यहां हमने बल अर्थ लिया है।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥ ऋ. १।११।१

'(समुद्रव्यचसं इन्द्रं) समुद्रके समान विस्तृत कीर्ति-वाले इन्द्रको (विश्वा गिरः अवीवृधन्) सब स्तुतियां बढा रही हैं, वह इन्द्र (रथीनां रथीतमं) रथियोंमें उत्तम रथी (वाजानां सत्पतिं पतिं) बलोंका उत्तम स्वामी है। तथा—

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः
सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा
जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित्॥ ऋ. १०।१०३।५

(बलविज्ञायः) सामर्थ्यके लिये सुप्रसिद्ध, (स्थविरः) अपने स्थान पर स्थिर रहनेवाला, (प्रवीरः) श्रेष्ठ वीर (सहस्वान् वाजी) बलवान् तथा सामर्थ्यवान् (सहमानः उग्रः) प्रभावशाली तथा उग्रवीर (अभिवीरो अभिसत्वा) सब प्रकारका वीर, सब शक्तियोंसे युक्त (सह-ओजाः) ओजस्वी (गो-वित्) गौओंका पालन करनेवाला इन्द्र है वह अपने विजयी रथपर बैठे।

सबलो अनपच्युतः। ऋ. ८।९३।९

'वह इन्द्र बलसे युक्त है और (अनप-च्युतः) अपने स्थानसे उसको कोई हटा नहीं सकता। अपने स्थानका संरक्षण करके वह अपने स्थानमें सुस्थिर रहता है।

वरिष्ठ इन्द्र

इन्द्र वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है इस विषयमें नीचे दिये मंत्र देखिये—

१ इन्द्रः सदसो वरीयान्। ऋ. ३।३६।६

२ क्रत्वा वरिष्ठं। ऋ. ८।९७।१०

३ सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां। ऋ. ३।३४।८

४ यो गवां गोपतिर्वशी। ऋ. १।१०१।४

'(१) इन्द्र सभासे-अन्तरिक्षसे-बडा है। (२) अपने कर्म करनेकी शक्तिसे वह इन्द्र श्रेष्ठ है। (३) (सत्रा-साह) एक साथ शत्रुको जीतनेवाला श्रेष्ठ और बल देने-वाला इन्द्र है। (४) जो (वशी) अपने वशमें करनेवाला गौओंका स्वामी इन्द्र है।

इन मंत्रोंमें वरिष्ठ-श्रेष्ठ इन्द्र है ऐसा कहा है।

महान् इन्द्र

१ महान् इन्द्रो य ओजसा। ऋ. ८।६।१

२ भुवस्त्वं इन्द्र ब्रह्मणा महान्। ऋ. १०।५०।४

३ महान् महीभिः शचीभिः। ऋ. ८।२।३२

इन्द्र अपनी शक्तिसे महान् है। हे इन्द्र! तू ज्ञानसे बडा है। बडी शक्तियोंसे तू महान् हुआ है।

इन्द्रको उसके ज्ञानसे तथा सामर्थ्यसे महत्ता प्राप्त हुई है।

सत्त्ववान् इन्द्र

१ तमु ष्टुहीदं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः । ऋ. १।१७३।५

१ स सत्यसत्वन् महते रणाय । ऋ. ६।३१।५

३ इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय ।

ऋ. १।५१।१५

जो (सत्वा) बलवान्, जो शूर और रथमें बैठनेवाला और (मघवा) धनवान् है, उसकी स्तुति करो । वह बडे युद्धके लिये (सत्य-सत्वा) सच्चा बलवान् है । (वृषभाय स्वराजे) बलवान्, स्वराज्य शासक (सत्य-शुष्माय) और सच्चे बलवान्‌के लिये हम नमस्कार करते हैं यहां इन्द्रको बलवान् कहा है ।

त्वरासे कार्य करनेवाला इन्द्र

नक्षद्दामं ततुरिं पर्वतेष्ठां । ऋ. ६।२२।२

(नक्षत्-दामं) शत्रुका नाश करनेवाला (ततुरिं) त्वरासे कार्य करनेवाले (पर्वते-ष्ठां) पर्वत पर रहनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

उग्रं ओजिष्ठं तवसे तरस्विनम् । ऋ. ८।९७ १०

उग्र (ओजिष्ठं) बलवान् (तवसे तरस्विनं) शत्रुवधके कार्यमें अति वेगसे कार्य करनेवाला है ।

त्वं सत्पतिः मघवा नः तरुत्रः । ऋ. १।१७४।१

तू सत्य राजा, (मघवा) धनवान् (नः तरुत्रः) हमारा सत्वर रक्षण करनेवाला है ।

इस प्रकार इन्द्र जो कार्य करता है वह सत्वर करता है ऐसा इसका वर्णन वेदमन्त्र करते हैं । कार्य करनेमें आलस्य न करना और जो कार्य करना है वह त्वराके साथ करना यह शूरवीरोंके अन्दर महत्त्वका गुण है ऐसा समझा जाता है ।

सार्वजनिक हितके कार्य करनेवाला

इन्द्र सार्वजनिक हितके कार्य करनेमें सदा दक्ष रहता है इस विषयमें देखिये—

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आविवेश

नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ॥ ऋ. ३।३४।५

इन्द्र (बर्हणा तुजः आविवेश) वेगसे शत्रुसेनामें प्रविष्ट हुआ और वहां (नृवत्-दधानः) नेताके समान कार्य तथा (पुरूणि नर्या) बहुत सार्वजनिक हितके कार्य इसने किये ।

इसमें (पुरूणि नर्या) ये पद सार्वजनिक हितके कार्य दर्शानेवाले पद हैं । ' नर्य ' का अर्थ सब जनोंके हितके कार्य हैं ऐसे कार्य इन्द्र सदा करता रहता है ।

इन्द्रका प्रभाव

इन्द्रका प्रभाव अनेक रीतियोंसे वेदमें वर्णन किया है, उनमेंसे कुछ मंत्र देखिये—

तं इन्द्रं जोहवीमि मघवानं उग्रं ।

सत्रा दधानं अप्रतिष्कुतं शवांसि । ऋ. ८।९७।१३

(तं इन्द्रं) उस इन्द्रका (जोहवीमि) मैं वर्णन करता हूं जो (मघवानं उग्रं) धनवान् है, उग्रवीर है (सत्रा-दधानं) साथ साथ अनेक सामर्थ्य धारण करनेवाला (अ-प्रतिः-कुतं) और पराभूत न होनेवाला है । तथा—

त्वं दाता प्रथमो राधसामसि

असि सत्य ईशानकृत् ॥ ऋ. ८।९०।२

(त्वं राधसां प्रथमः दाता असि) तू धनोंका श्रेष्ठ दाता हो और तू (सत्यः ईशानकृत् असि) सच्चे अधिपतियोंका निर्माण करनेवाला हो ।

वाजेषु प्रासहं युजम् । नहि त्वा शत्रुः स्तरते

स्तृणोषि यम् । विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥

ऋ. १।१२९।४

(वाजेषु प्रासहं युजं) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाले ऐसे योग्य तुम वीरको बुलाते हैं । (त्वा शत्रुः नहि स्तरते) शत्रु तेरा पराभव नहीं कर सकता (यं स्तृणोषि) जिसके साथ तू युद्ध करता है । (विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यं) सब शत्रुओंका तू पराभव करता है ।

शिक्षा नरः समिथेषु प्रहावान् । ऋ. ४।२०।८

तू (नरः शिक्षा) लोगोंको सन्मार्गका शिक्षण देता है तथा (समिथेषु प्रहावान्) युद्धोंमें शत्रुपर प्रहार करके उनका नाश करता है ।

चत्वारि ते असुर्याणि नाम अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ॥ ऋ. १०।५४।४

हे इन्द्र ! (ते महिषस्य) तुम महिष जैसे बलवान् वीरके (अदाभ्यानि) कभी न दबनेवाले (चत्वारि असुर्याणि) चार प्रकारके बल हैं ।

इन्द्रके पास सहस्रों साधन हैं

इन्द्रके पास सहस्रों साधन हैं जिनका उपयोग वह जनहितके कार्योंके करनेमें करता है—

स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ऋ. १।१००।१२

(सः वज्रभृत्) वज्र धारण करनेवाला, (दस्यु-हा) दुष्टोंका वध करनेवाला (भीमः उग्रः) भयंकर उग्रवीर (सहस्र-चेताः) सहस्रों उत्तम विचारोंको धारण करनेवाला (शत-नीथः) सैंकडों युद्ध नीतियोंको जाननेवाला (ऋभ्व) बलवान् (शवसा न चम्रीषो) शक्तिसे जैसे भरा हुआ (पांचजन्यः) पंचजनोंका हित करनेवाला इन्द्र मरुतोंके साथ रहकर हमारा हित करे ।

यहां पञ्चजनोंके हित करनेके सहस्रों साधन इन्द्रके पास हैं ऐसा कहा है ।

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः
सहस्रमूतिः तविषीषु वावृधे ॥ ऋ. १।५२।२

(सः पर्वतः न) वह पर्वतके समान (धरुणेषु अच्युतः) युद्धोंमें स्थिर रहता है (सहस्रं ऊतीः) हजारों संरक्षणोंके साधनोंसे युक्त होकर (तविषीषु वावृधे) युद्धोंमें बढता है ।

शतं ऊतिः खजं करः । ऋ. १।१०२।६

इन्द्र सैंकडों संरक्षणके साधनोंके साथ रहता है और वह युद्ध करनेवाला है ।

इन्द्रके गुण

इन्द्रके अनेक गुण हैं उनका संग्रह अब यहां करेंगे—

१ अ-कल्पः (ऋ. १।१०२।६)— कल्पनामें न आये ऐसी विलक्षण शक्तिसे युक्त ।

२ अ-युजः (८।६५।२)— इसके समान दूसरा कोई नहीं है ।

३ अ-समः (८।६५।२)— इन्द्रके समान दूसरा कोई वीर नहीं है ।

४ अ-प्रति-ष्कुतः (८।९७।१२)— जिसका प्रतिकार कोई नहीं कर सकता।

५ अच्युता चीळिता स्रोजा (६।२२।६)— न हिलनेवाले शत्रुको अपनी शक्तिसे हिलाकर उखाड कर फेंकनेवाला ।

६ अ-दयो वीरः (१०।१०३।७)— शत्रुके साथ दया न दिखानेवाला, दुष्ट शत्रुके साथ क्रूरतासे काम लेनेवाला वीर ।

७ अभयं कृणोतु (६।४७।१२)— सब शत्रुओंको दूर करके निर्भयता करे, हमारे अन्दरके तथा बाहरके सब शत्रुओंको दूर करके हमें निर्भय करे ।

८ अभिगुः (८।७०।१)— शत्रुपर हमला करनेवाला, शत्रुपर आगे बढनेवाला ।

९ अजुर्यः (२।१६।१)— जो क्षीण नहीं होता ।

१० अ-द्रोघ-वाक् (६।२२।२)— जो द्रोहका भाषण कभी करता नहीं ।

११ अन्-ऊर्मिः (८।२४।२२)— जिसके कार्यमें कोई रुकावट डाल नहीं सकता ।

१२ अ-पराजितः (१।११।२)— जो कभी पराजित नहीं होता ।

१३ अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा सहांसि अति-प्र-त्वक्षाणः (१०।४४।१)- अपार बडे सामर्थ्यसे शत्रुके सब बलोंको अत्यंत निर्बल बनाता है ।

१४ जहि यो नो अघायति (१।१३१।७)— जो हमें पापके मार्गसे चलाता है उसको परास्त कर ।

१५ अमित्रयन्तं मर्त्यं जहि (१।१३१।७)— शत्रुके समान बर्ताव करनेवाले मनुष्यको नष्ट कर ।

१६ अपूरुषघ्नो अप्रतीतः त्रिःसप्त शूर सत्वभिः (१।१३३।६)

इक्कीस प्रकारके बलोंसे युक्त हे शूर इन्द्र ! तू युद्धसे पीछे नहीं हटता और अपने वीर पुरुषोंका वध न हो ऐसा प्रबंध करता है ।

१७ अभिभुः (२।२१।२), अभिभूतरः नरः (८।९७।१)- शत्रुका पराभव करनेवालोंमें श्रेष्ठ नेता ।

१८ अभिभंगः (२।२१।२)- शत्रुके सैनिकोंको तोडनेवाला, उनमें विभाग करनेवाला ।

१९ अभिवीरः (१०।१०३।५)— सब प्रकारसे श्रेष्ठ वीर ।

२० अभिसत्वा (१०।१०३।५)— अधिक सामर्थ्यवान् ।

२१ अमितौजाः (१।११।४)— अपरिमित सामर्थ्यवान् ।

२२ अमितक्रतुः (१।१०२।६)— असंख्य कर्म करनेवाला ।

२३ आसुरिः (८।९७।१०)– सब शत्रुओंको मारनेवाला।

२४ अ-षाळ्हः (२।२१।२)— जो कभी पराभूत नहीं होता।

२५ आर्यं सहो वर्धय द्युम्नं इन्द्र (१।१०३।३)— हे इन्द्र ! आर्योंका तेजस्वी बल बढा।

२६ इन-तमः (३।४९।२)— अत्यंत सामर्थ्यवान्।

२७ उग्रः (१०।१०३।५)— उग्रवीर।

२८ उग्रधन्वा (,,)— जिसका धनुष्य बडा प्रभाववाली है।

२९ ऊतिः (६।२४।२)— संरक्षण करनेवाला।

३० ऋधावान् (३।३१।३)— यशस्वी

३१ ऋतुना साकं जातः (२।२२।३)— पुरुषार्थके साथ प्रसिद्ध।

३२ ओजिष्ठः (८।९७।२०), ओजः मिमानः (२।१७।२), प्रतिमानं ओजसा (१।१०२।६), ओजसा शवोभिः मज्मना संविव्यानः (१।१३०।४) ओजीयान् (६।२०।३), ओजः श्रद्धानः (११।१०३।३), ओजसा साकं जातः (२।२२।३), वीर्यैः सह वृद्धः (२।२२।३)— शारीरिक बलसे युक्त, प्रभावी बलसे युक्त।

३३ कर्मणि कर्मणि स्थिरः (१।१०१।४)— प्रत्येक कर्ममें स्थिर रहकर कार्य करनेवाला।

३४ कारु-धायाः (६।२४।२)— कारीगरोंका आधार।

३५ कविः (   )— ज्ञानी, दूरदर्शी।

३६ खजंकरः (१।१०२।६)-- युद्धमें बडा कलक करनेवाला।

३७ गव्युः (७।३१।३) गोपतिः (१।१०१।४ (— गौओंका पालनेवाला।

३८ चौत्न्यो भवनून् विश्वस्मिन् भरे (१०।५०।४) — सब प्रकारके युद्धोंमें मानवोंका उत्साह बढानेवाला।

३९ चर्षणीनां पकः (१।१७६।२) चर्षणीनां राजा (८।७०।१)— मानवोंमें श्रेष्ठ, मानवोंका राजा।

४० च्यवनं अच्युतानाम् (८।९६।४)— न हिलनेवाले शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाडकर फेंकनेवाला,

४१ जरयन्तं उक्षितं (२।१६।१)— शत्रुको क्षीण करनेवाला (उक्षितं) सुदृढ हुए शरीरावयव जिसके ऐसा वीर।

४२ जेता (१।११।१)— विजयी।

४३ ज्यायान् (१०।५०।५)— श्रेष्ठ, प्रबल।

४४ ज्येष्ठराजः (८।१६।२); ज्येष्ठं वृषभाणां (१।५३।१); ज्येष्ठनमः (२।१६।१); ज्येष्ठः (८।७०।१) ज्येष्ठस्ते शुष्मः (१०।१८७।१) श्रेष्ठोंका राजा, अधिक बलवाला, बलवानोंमें श्रेष्ठ।

४५ ततुरिः (६।२४।२); तूतुजानः (१०।४४।२) तरस्वी (८।९७।१०), तुराषाट् (६।३२।५); तरुत्रः (१।१७४।१); तूर्वन् (६।२०।३) तुराय (१।६१।१) — त्वरासे कार्य करनेवाला, विजयी।

४६ तवस. तवीयान् (६।२०।३); तवसं (८।९७।१०); तुविष्मान् (१०।४४।१); तुविनृम्णः (३।३१।५); तुविग्रीवः (८।१७।८); तुविम्रघे (२।२१।२); तुविकूर्मिः (३।३१।३); तविषीभिः आवृतः (१।५१।२) बलवानोंमें बलवान, सामर्थ्यवान्, पौरुषयुक्त, हृष्टपुष्ट शरीरवाला, बलशाली कर्म करनेवाला;

४७ दस्युहा (१।१००।१२); दस्यवे हेतिमस्य (१।१०३।३); दस्योः आयुः अमिनात् (३।४९।२); दासाय भियसं दधाति (१०।१३०।२) दुष्टोंको मारनेवाला, दुष्टपर शस्त्र फेंक, दुष्टकी आयु कम कर, दुष्टोंके लिये भय दिखाता है।

४८ दुश्च्यवनः (१०।१०३।७)— अपने स्थानसे हिलानेके लिये कठिन।

४९ देवानां व्रतपाः (१०।३२।६)— देवोंके व्रतोंका पालन करनेवाला।

५० धृष्णुः (६।२९।३)-- शत्रुको मारनेवाला, धैर्यशाली।

५१ धृषन्मनः (१।५२।१२)— शत्रुका नाश करनेके लिये जो तैयार है।

५२ नर्या पुरूणि दधानः (३।३४।५)— मानवोंके हितके बहुत कार्य करनेवाला।

५३ नर्यः (६।२४।२)— मानवोंका हित करनेवाला वीर।

५४ निष्ठुरः (८।३२।२७)— शत्रुपर निष्ठुर होनेवाला।

५५ पुरुशाकाय वृष्णे (३।३५।७)— बहुत शक्तिमान्, सामर्थ्यवान्।

५६ पूर्भिद् (३।३४।१); पूर्भित्तमः (८।५३।१); पुरो भिन्दुः (१।१७४।२); विश्वासां पुरां दर्त्नुः

(६।२०।३); पुरो विभिन्दन् (१।१०३।३)— शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र है ।

५७ पर्वतेष्ठाः (६।२२।२) — पर्वतपरके किलेमें रहने वाला ।

५८ पांचजन्य (१।१००।१२)— पंचजनोंका कल्याण करनेवाला ।

५९ पृतनाषाट् अयुध्य (१०।१०३।७)— शत्रु-सेनाका पराभव करनेवाला, जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है ।

६० प्रत्वक्षाणः (१०।४४।२)— शत्रुका बल क्षीण करनेवाला ।

६१ प्रथमः (२।१७।२)— सबसे प्रथम रहनेवाला ।

६२ प्रथमः उपमानां (८।६१।२)— उपमा देने योग्योंमें पहिला ।

६३ प्रसक्षिन् (८।३२।२७)— एकता करके अपना बल बढानेवाला ।

६४ प्राचामन्युः (८।६१।९)— प्रगति करनेवाला जिसका उत्साह है ।

६५ बल विज्ञायः (१०।१०३।५) — बलके लिये प्रसिद्ध ।

६६ बाहुशर्धी (१०।१०३।२)— बाहुका बल जिसमें अधिक है ।

६७ बाधतां द्वेषः (६।४७।१२)— द्वेष करनेवालोंका नाश करनेवाला ।

६८ विश्वस्मिन् भूरे ज्येष्ठः (१०।५०।४); भरे कृत्नुः (८।१६।३); भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्तु (१।१००।२)- सब युद्धोंमें इन्द्र विशेष प्रबल और श्रेष्ठ होकर रहता है, युद्धमें इन्द्र अपना कर्तृत्व दिखाता है प्रत्येक युद्धमें वृत्रको मारनेवाला इन्द्र बलवान् रहता है ।

६९ भद्र-व्रातः (१०।४७।५)— सार्वजनिक कल्याण करनेवाले जिसके सैनिक हैं ।

७० भीमः (१।८१।४)— भयंकर शूर !

७१ मघवा (१।१७३।५)— धनवान् ।

७२ महेमते (८।३४।७)— महा बुद्धिमान् ।

७३ मन्युना इन्द्रेण वयं अभिष्याम पृतन्यतः (अथर्व. ७।९३।१)— उत्साही इन्द्रकी सहायतासे हम शत्रुसेनाका पराभव करेंगे ।

७४ महाव्रातः (ऋ. ३।३१।३) — बडी सेनासे युक्त ।

७५ महावधः (५।३।४२)— बडा कतल करनेवाला, बडे शस्त्रोंवाला ।

७६ महिष्ठः (१।१३१।१); महिषः (१०।५४।४); मायया वावृधानं (६।२२।४)— शक्तिसे महान्, शक्तिमान्, कुशलतासे कार्य करनेवाला ।

७७ राजः (८।२४।२२)— नियमोंके अनुसार शासन करनेवाला ।

७८ युवा (२।१६।१)— कितनी भी आयु होनेपर तरुण जैसा कार्य करनेवाला ।

७९ योधीयान् (१।१७३।५)— युद्ध करनेमें चतुर।

८० रथी, रथेष्ठाः (१।१७३।५)— उत्तम रथमें बैठनेवाला ।

८१ राय ईशानः (८।५३।१)— धनोंका स्वामी ।

८२ वज्री (६।१९।२); वज्र हस्तः (६।४६।१); वज्रभृत् (१।१००।१२)— वज्र धारण करनेवाला ।

८३ वरिष्ठः (८।९७।१०); वरीयान् (३।३६।६); वरेण्यः (३।३४।८)— वरिष्ठ, श्रेष्ठ, समर्थ ।

८४ वपोदरः (८।१७।८)— जिसका पेट बडा है ।

८५ वर्षनीतिः (३।३४।३)— कुशल, नीतिमान् ।

८६ वशी (१।१०१।४)— सबको वशमें करनेवाला,

८७ वृथा-षाट् (१।६३।४)— सहजहीसे शत्रुको नष्ट करनेवाला,

८८ वाजी (८।२४।१२)— बलवान् ।

८९ वीरवान्, विप्रवीरः (१०।४७।५) — वीरोंके साथ रहनेवाला, ज्ञानी ।

९० विश्वासां पृतनानां तरुता (८।७०।१)— सब शत्रुसेनाका नाशक ।

९१ विचेताः (६।२४।२); वेधाः (२।२१।२); विश्ववेदाः (६।४७।१२)— विशेष बुद्धिमान् ।

९२ वीरः (६।२४।२); प्रवीरः (६।२४।२); अभिवीरः (१०।१०३।५)— शूरवीर,

९३ शतक्रतुः (१।४।९)— सैंकडों कर्म करनेवाला ।

९४ शासः (२।४७।५)— उत्तम शासक ।

९५ वृषभः (१।५१।१५)— बलवान् ।

९६ शतमूतिः (१।१०२।६)— सैंकडों रक्षणोंके साधन जिसके पास है ।

९७ शत्रून् विदयमानः (३।३४।१)— शत्रुओंका विनाश करनेवाला ।

९८ शवसः पतिः (१।११।२)— बलका स्वामी।

९९ शूरः युत्सु (२।१७।२)— युद्धोंमें शूर।

१०० सजूः (८।९७।१०)— अपने साथियोंके साथ मित्रतासे रहनेवाला।

१०१ सत्रा-सहः (३।३४।८)— एकदम शत्रुका पराभव करनेवाला।

१०२ सत्वा (१।१७३।५)— बलवान्।

१०३ सहस्रोतिः (८।३४।७)— हजारों रक्षणके साधनोंसे युक्त।

१०४ सुप्राव्यः प्राशुषाट् एष वीरः (४।२५।६)— उत्तम रक्षण करनेमें समर्थ और त्वरासे शत्रुको परास्त करनेमें समर्थ वीर।

१०५ सम्राजं चर्षणानां (१०।१३४।१); समत्सु शूरः (१।१७३।७)— लोगोंका सम्राट्, युद्धोंमें शूर।

१०६ संधाता संधिं इष्कर्ता वि-हुतं पुनः (८।१।१२) — जखमको शीघ्र ठीक करनेवाला, कटे हुए भागको फिर ठीक करनेमें समर्थ।

१०७ सहस्वान् (१०।१०३।५); सुत्रामा (६।४७।१२)— बलवान्, रक्षक।

१०८ स्वभूत्योजाः (१।५२।१२)— अपने सामर्थ्यसे बलवान्।

१०९ समत्सु नो वृधे भवा (६।४६।३)— युद्धोंमें हमारा संवर्धन करनेवाला हो।

११० सुशिप्रः (३।३१।३)— उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाला।

१११ स्वयुः स्वराट् (३।४५।५)— अपने तेजसे युक्त।

११२ हिरण्ययुः (७।३१।३)— सुवर्णसे युक्त।

ये विशेषण देखनेसे हमारे इन्द्र महाराज संरक्षणमंत्रीके कार्यके लिये किस तरह अत्यंत योग्य थे इसका निश्चय हो सकता है।

इन्द्र देवताका परिचय

विश्वराज्यके संरक्षक मंत्रीका परिचय

ब्रह्म राम तें नाम बड–बर दायक वर दान
राम चरित सत कोटि महँ--लिय महेश जिय जानि

रामधुनका महत्व और प्रयोजन

लेखक:— सुब्रह्मण्यम् " मंद "

एम. बी. बी. एस, एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, भूगोल, गणित) एम. एस. सी. (वनस्पति), एम. काम; एल. एल. बी., तर्क., व्याकरण, ज्योतिष, भिषगाचार्य, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, निगमागम विशारद, सकलकलाकोविद ।

(यह रचना आस्तिक नास्तिक सभी मानव संस्कृतिके प्रेमी विचारकोंका हृदय रामधुनकी ओर आकर्षित करनेके लिये है । कोई भी व्यक्ति अपनी किसी भी इन्द्रियसे रोगी मिथ्याभियुक्त, अकुशल, अस्थिर होकर सुखी व शान्त नहीं हो सकता । किन्तु कोई भी अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलतासे अपने समग्र मनसे ऊपर उठकर ही जहां यथार्थसे सर्वथा अनुप्राणित रह सकता है वहां यथार्थसे सर्वथा अनुप्राणित रह कर ही अपनी किसी भी इन्द्रियके कार्यको सन्तुलित एवं स्वाभाविक रखकर निरोग, मनोरम-मिथ्याभियुक्ताहीन, कुशल, स्थिर हो सकता है ।

ऐसी स्थितिमें मानव समाजके सम्मुख सिवाय इसके और कोई समस्या नहीं कि व्यक्ति अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलताके हेतु भूत अपने व्यष्टिभावसे ऊपर उठकर इस समष्टि भावमें निरन्तर कैसे रमे— ? जो इसकी प्रत्येक इन्द्रियकी सन्तुलित एवं स्वाभाविक स्थितिका मनोवैज्ञानिक रीतिसे विधान करता है— ' मन्द ')

भक्ति ही हमारे यहां प्रत्येक मानवीय सत्व अर्थात् समग्र मनकी स्वस्थता (निरोगता), रमणीयता (मनोरमता), पटुता (कुशलता), निश्चलता (स्थिरता) की यथार्थ स्थितिरूप प्राप्ति अर्थात् अनुभवसिद्ध ज्ञान और अनुभवोत्तर विज्ञानका एक मात्र साधन है । यह भक्ति, वस्तुतः अहंकार अर्थात् व्यष्टि भावकी अनुकूलता प्रतिकूलतासे ऊपर उठकर, सत्य अर्थात् समष्टि भाव या व्यष्टिभाव शून्यता रूप स्वभाव स्थितिके प्रति, निर्भर आस्थाऽनुराग या भरोसा रखकर उसकी सर्वानुकूलताका अनुशीलन और अनुसरण करने ही का दिव्य नाम है ।

इस भक्ति भावके बिना अहंकारकी सर्वप्रतिकूलता रूप मिथ्यासे अवगत होकर अभिप्रेतकी ' प्राप्ति ' के हेतुभूत समग्र मन-मन (मनन) बुद्धि (विवेचना), चित्त (सम्वेदन) इन सूक्ष्मेन्द्रियों और आँख, कान, जीभ, नासिका, त्वचा इन ज्ञानेन्द्रियों, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ इन कर्मेन्द्रियों या स्थूलेन्द्रियोंसे परिपूर्ण सम्पूर्ण सत्ता— अथवा इसी मनके रूपक हृदयकी अहंकार शून्यता प्राप्त नहीं की जा सकती । कहा भी गया है—

सो (भक्ति) सुतन्त्र अवलम्बन आना ।
तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥

रा. च मा. अर. कां. १६

ऐसी स्थितिमें, जबकि भक्ति ही; सर्वप्रतिकूल अहंकार रूप मिथ्यासे ऊपर उठकर सर्वानुकूल सत्यका अनुसरण करने तथा इस प्रकार समग्र मनकी स्वस्थता, रमणीयता पटुता, निश्चलता आदि प्रत्येक मानवीय सत्वकी प्राप्ति करनेका एक मात्र साधन है तब इस भक्तिभावके बिना कोई भी कैसे विवेकी रह सकता है ? निश्चय ही वह व्यक्ति जो इसको छोड़कर अन्यान्य विषयोंमें रत रहा करता है,

ऐसा मूर्ख होता है जो कांच टुकड़ोंके लिये पारसमणिको हाथसे फेंक देता है—

सो (नर) तनु धारि भजहिं न जे नर, होहिं
विषय रत मंद मंदतर। कांच किरिच बदले
ते लेहीं, करते डारि परस मनि देहीं ॥

उ. कां. १२९

किन्तु आज भक्ति केवल भोंदुपन ही की चीज समझी जाती है। हां, आज कुछ ऐसे भी लोग अवश्य हैं जो भक्ति को महान् और भक्तोंको महात्मा समझते है पर वे भी उनको कुछ इस प्रकार किनारे ढकेलते हैं कि वे लोकमें कभी उपयोगी सिद्ध नहीं होते। बात यह है कि मानवमें जब भक्ति भावका जरा भी लोप होता है तब वह कुछ इस प्रकार अहंकारके वशीभूत हो जाता है कि जहां उससे अपने को कभी किसी प्रकार छुडा नहीं पाता, वहां जाने अनजाने में उसीके एक मायिक अर्थात् मिथ्या कल्पित अनुकूल प्रतिकूल भावमें अपनेको सर्वथा भूले रहता है—

उसका मन सर्वदा एक मायिक वस्तु ही के स्पर्शमें सन्तप्त रहता है, उसकी बुद्धि सर्वदा एक मायिक रूप ही की कल्पनामें विमोहित रहती है, उसका चित्त सर्वदा एक मायिक रस ही के आस्वादनमें व्यामोहित रहता है और उसके बाद उसकी ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय विशिष्ट स्थूल सत्ता भी उसी एक मायिक गन्धमें गुंफित होकर, जिसमें उसके अपने मन बुद्धि और चित्त हैं, नाना रीतिसे स्पन्दित क्रन्दित रहती है। ऐसी अवस्थामें क्या आश्चर्य है कि कोई भक्तिको स्वीकार करनेमें कुछ आनाकानी करे और कोई उसे भोंदूपन भी समझे अथवा कहे— ?

हरि माया बस जगत् भ्रमाहीं-तिनहि कहत
कछु अघटित नाहीं। बा. कां. ११५

वरना भक्तिकी जो वस्तुतः प्रेमतत्व, श्रद्धातत्व, हृदय-तत्वके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ऐसा कोई भी व्यक्ति कोई उपेक्षा नहीं करता, जो अपने किसी लक्ष्य सिद्धान्त, उद्देश्य, विचार, आकांक्षा या इष्टके प्रति जरा भी ईमानदार हो अथवा रहना चाहता हो।

फिर भी आज इस भक्तिको कोई कैसे अपनावे ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्ति अन्य कुछ नहीं है, बल्कि अहंशून्य-लौकिक भेदभाव रहित, सत्यशील-यथार्थानुगामि, स्वयंपूर्ण-समग्र मनकी स्वस्थता, रमणीयता, पटुता, निश्चलतापूर्ण सम्पूर्ण स्वावलम्बी मानव-हृदय ही है। यह हृदय ही मानवको उसकी मानवतासे जोडता है; मानवको मानवसे जोडता है; मानवको जगत्से जोडता है; सबके ऊपर जो कालातीत, वर्णनातीत, विषयातीत है, उस स्वभावस्थितिकी ओर उसे उन्मुख करता है; और इसके अतिरिक्त दर्शनमें यही आत्मानुभव है।

क्योंकि उसीसे सत्य सर्वत्र समान रूपमें और इस प्रकार अपनी आत्माके रूपमें देखा और अनुभव किया जा सकता है; कलामें यही दृष्टि है, क्योंकि इसीसे इन्द्रिय कौशल आत्माकी अभिव्यक्तिके रूपमें व्यक्त और दृष्ट हो पाता है; साहित्यमें यही अनुभूति है, क्योंकि इसीसे मनोधर्म अर्थ और वचोधर्म शब्द आत्मानुभूतिके साथ साहित्य-साथ साथ रहनेके रूपमें सध सकते हैं, काव्यमें यही रस है, क्योंकि इसीसे मनोभाव आत्म वस्तुके रूपमें अभिवर्णित होकर आस्वाद्य हो पाते हैं—

भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानि। उ. कां. ४५

किन्तु प्रश्न है कि मानव अपने इस हृदयको कैसे पहिचाने ? क्योंकि वह सदासे ' माया ' बद्ध है—

फिरत सदा माया कर प्रेरा। उ. का. ४४

परन्तु यह बात कदापि नहीं कि वह अपने स्वभावसे ही मायामें बद्ध है स्वभावसे तो वह ' ईश्वर ' ही है, और मायाके कारण ही वह उससे अलग, जीव रूपमें विभाजित होकर बंधा पडा है—

ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अचल
सहज सुखरासी। सो माया बस भयउ
गोसाईं बंध्यो कीर मरकट की नाईं ॥ उ.कां.११७

मायाका अर्थ " मैं मेरा " की व्यष्टिगत सर्व प्रतिकूल मिथ्या मनोभावना; जीवका इस भावनासे प्राप्त अज्ञ अभागी बद्ध जीवन और ईश्वरका इससे मुक्त समष्टिगत सर्वाधिष्ठान सर्वात्मभूत सर्वानुकूल स्वभावस्थिति रूप वह ब्रह्मतत्वमय सर्वोपरि ऐश्वर्य, जो इस माया परिलक्षित समस्तका मूल प्रेरक है—

मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहि बस कीन्हें जीवनिकाया।

+ × +

माया ईसन आपु कहुँ, जान कहिय सो जीव
बन्ध मोच्छ पद सर्वपर, माया प्रेरक सीय।

अर. कां. १५

इसी मायामें, मै-मेरा हो की प्रेरणामें वह हरेक बात सोचता समझता है अथवा यों कहिये कि व्यक्ति कोई बात इसलिये सोचता समझता है कि वह उसके अनुकूल या प्रतिकूल है, इसलिये नहीं कि वह सबके अनुकूल या प्रतिकूल है। हां, वह अवश्य ही कभी कभी कोई कोई बात अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलतासे बिलकुल तटस्थ और उदासीन होकर भी सोचता समझता है; किन्तु जब उस बातमें उसकी अपनी अनुकूल प्रतिकूल बातके स्पष्ट विरोधमें स्थूल सूक्ष्म दोनों रीतियोंसे स्थिर बने रहना होता है, तब उसके साथ उसके हृदयका कोई लगाव नहीं रहता; क्योंकि जब एक बार सत्य और उसकी सर्वानुकूल स्थितिसे दूर अपनी कोई अनुकूल प्रतिकूल बात ग्रहण कर लेता है, तब वह अपनी उस बातको छोडकर अन्य कोई बात कभी स्थिरतासे जहाँ ग्रहण ही नहीं कर पाता यहां जाने अनजानेमें उसीके अभिमानमें अर्थात् उसीको सोचता समझता, उसीको करता सुनता, उसीको देखता धरता, उसीसे स्पन्दित होता हुआ उसीमें उलझे रहता है और उसकी यह अवस्था तब तक बनी रहती है जब तक कि वह उससे अपने समग्र मनसे मुक्त नहीं होता।

ऐसी अवस्थामें मानव भक्तिको अपनाता तो क्या, पहिचान भी नहीं सकता। इस अवस्थामें वह सर्व प्रथम मोह अर्थात् (मुह वैचित्ये) मिथ्या ज्ञान या अभिमानमें आकर अपने समष्टिगत अहंशून्य स्वभावसे अपनी एक अलग व्यक्तिगत अहंपूर्ण स्थितिमें मुग्ध होता है, इसी मोह मुग्ध स्थितिमें, उसका मन विषय अर्थात् (विष बन्धने) अनुकूलता प्रतिकूलता बद्ध भावमें आसक्त होकर उसके मननसे एक विलक्षण वस्तुके स्पर्शमें सन्तप्त होता है; इसी सन्तपनमें उसकी बुद्धि विषयकी विवेचना कर मोहातिरेकसे एक विलक्षण रूपकी कल्पनामें विमोहित होती है; इसी विमोहमें उसका चित्त विषयका सम्वेदनकर मोहावेशसे एक विलक्षण रसके आस्वादनमें व्यामोहित होता है; उसके बाद इसी व्यामोहमें उसकी ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियां या स्थूलेन्द्रियां विषयहीको अपनी सत्ताके रूपमें आकर उसके सुख अर्थात् अनुकूलतामें निस्पृहता रूप मादकता और दुःख अर्थात् प्रतिकूलतामें उद्विग्नता रूप वेदनाकी एक विलक्षण गन्धमें गुंफित होकर नाना भांति स्पन्दित होती हुई उसीसे अनुप्राणित रहती हैं और वह इस प्रकार अपने समग्र मनसे विषयासक्त होकर जहां अपने सर्वाधिष्ठान, सर्वात्मभूत, सर्वानुकूल स्वभावास्थित रूप ब्रह्मतत्वसे दूर हो जाता है, वहां उससे वंचित परिवंचित होकर घोर अनर्थको प्राप्त होता है।

वह मनसे जहां तत्वके अग्रहण रूप निद्राके वशीभूत होता है वहां उसकी तन्द्रामें अपनी स्थूल सूक्ष्म समस्त इन्द्रियोंको शिथिल कर उनकी स्वस्थता खोता है; वह बुद्धिसे जहां अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रमके वशीभूत होता है वहां उसके अभिमानमें अपनी प्रत्येक क्रिया और धड़कनसे अभिप्राप्त (मिथ्याभियुक्त) होकर अपनी रमणीयता खोता है; वह चित्तसे जहां आत्मनुभवके अभाव रूप विकारके वशीभूत होता हैं वहां उसकी कामनामें रति, संयोगमें हास, वियोगमें दुःख, आतुरतामें क्रोध, आशामें उत्साह, निराशामें भय, विकृतिमें जुगुप्सा या घृणा, आकस्मिकता (अनूह्यता) में आश्चर्य और प्राप्तिमें निर्वेद या सुख इन मनोभावोंको प्राप्त होकर उनमें अपने वीर्य अर्थात् इन्द्रिय शक्तिकी पटुता खोता है।

वह ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय विशिष्ट स्थूल सत्तासे जहां आत्म साक्षात्काराभाव रूप अभाग्यके प्रमादके वशीभूत होता है वहां उसकी मोह-विमोह-व्यामोहित गर्भित प्रमत्तता अर्थात् निद्रा-भ्रम-विकार मुद्रित अकृतार्थताकी सुस्ती-मस्तीमें क्षुधा-पिपासा, सर्दी-गर्मी, भाव-अभाव, ऊंच-नीच, मान-अपमान, शत्रु-मित्र, सम्पत्ति-विपत्ति आदिमें आन्दोलित होते हुए अपने तनमनकी निश्चलता खोकर नितान्त अज्ञ अभागी बद्ध जीवन व्यतीत किया करता है। यहां मानवीय संस्थाओंका यह निदान और दर्शनका यह निष्कर्ष संस्मरणीय है

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला, तिन्हते पुनि उपजहिं बहु सूला। उ. कां. १२१

संसृति मूल सूलप्रद नाना, सकल सोक-
दायक अभिमाना। उ. कां. ७४

किन्तु आज अभिमान या अहंकारके प्रति तीव्र रोष होने पर भी अपनेको कोई माया बद्ध अज्ञ अभागी जीव नहीं समझता; सत्यके प्रति प्रगाढ आस्थानुराग होने पर भी कोई ईश्वरकी भक्ति करता। हां, आज अपनेको माया बद्ध समझकर ईश्वरको अपने सिर आंखों पर चढानेवाले कुछ आस्तिक जन भी अवश्य हैं, पर वे भी जिस साधनासे अहंकारकी सर्वप्रतिकूलता पहिचानकर सत्यकी सर्वानुकूलता सिद्ध की जाती है, उसका कभी कोई प्रकाश नहीं देते। बात यह है कि माया जो वस्तुतः सर्वानुकूल सत्यसे भिन्न, सर्व प्रतिकूल अहंकारके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, अज्ञानकी अजागरूकतामें किसीमें भी प्रवेश कर सकती है। और जब प्रवेश करती है तब वह सर्व प्रथम उसके मन, बुद्धि और चित्तको इस तेजी और शक्तिके साथ मोह विमोह और व्यामोहसे भर देती है कि किसी भी ज्ञानी या मूढका कोई वश नहीं चल सकता—

तब ज्ञानी मूढ न कोई, बा. कां. १२४

और इसके बाद उसका हृदय तत्वके अग्रहण रूप निद्रामें निद्रित, अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रममें भ्रामित और आत्मानुभवके अभाव रूप विकारमें विकल्पित होते हुए आत्मसाक्षात्कार भावके अभाव्य रूप प्रमादमें उसके (मायाके) अनेक पर्दोंसे आच्छादित होकर जो कुछ सोचता समझता है, जो कुछ कहता सुनता है, जो कुछ करता धरता है उसमेंसे किसीसे भी जहां सत्यकी कभी कोई बात सोचने समझने लायक भी नहीं रहता—

माया बस मति मन्द अभागी, हृदय जम-
निका बहुविधि लागी उ. कां. ७३

वहां अपने अहंकारके अनुकूल प्रतिकूल भावसे किसी प्रकार मुक्त नहीं होता। काल चक्र, इसमें केवल इसीके अपने मोह मुग्ध मनका निद्राचक्र रहता है; इस काल चक्रमें जो रात दिवसकी गति है वह इसमें केवल, इसीका अपनी विमोह विदग्ध बुद्धिका अभिवर्णित भ्रम रहता है, इस गतिमें जो चराचर जगत् और उत्पत्ति, स्थिति, लय घूर्मित हैं वे इसमें केवल इसीके अपने व्यामोहोन्मत्त चित्तका विकार विकल्प रहता है; और उस जगत्में जो अनुकूल-प्रतिकूल, तटस्थ--तादात्म्य भाव, कर्म और अनुभव हैं, वे उसमें केवल इसीकी अपनी मोह विमोह व्यामोह गर्भित नितान्त विषयासक्त सत्ताका निद्रा भ्रम-विकार प्रमाद मुद्रित प्रतिबिम्ब रहते हैं—

जोग वियोग भोग मल मन्दा-हित अनहित
मध्यमभ्रम। फंदा जनम मरण जहं लगि जग
जालू-सम्पति विपति करमु अरु कालू। धरनि
धामु धनु पुर परिवारु-सरगु नरकु जहं लगि
व्यवहारु। देखिअ सुनिअ गुणिअ मन माहीं
मोह मूल परमाणु नाहीं॥

ऐसी परिस्थितिमें क्या आश्चर्य है कि आस्तिक नास्तिकोंमेंसे कोई भी मायाकी स्थूल सूक्ष्म गति विधियोंके मर्मसे अवगत होकर, उससे अपने हृदयको मुक्त करनेकी ईश्वर भक्ति रूप मनोवैज्ञानिक शुभ साधनामें सर्वथा संलग्न न हो सके और उस प्रकार अपने हो लक्ष्य, सिद्धान्त, उद्देश्य विचार, आकांक्षा और इष्टके प्रति आप ही कोई ईमानदार न रह पाये—

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना, राम रूप
देखहिं किमि दीना। बा. कां. ११५

मानवकी ऐसी ही दीन हीन अवस्थाके लिये रामनाम और उसकी रटन है। ऐसे समय उसका हृदय अपनी कलि अर्थात् (कल किलक्षेपे) मोहमूलक अभ्याससे इतना विवश-विह्वल और अधीर रहता है कि कोई भी शासन, नियम, प्रलोभन या भय उसे इस अवस्था से उठाकर उसके स्वभावकी ओर उन्मुख नहीं कर सकता। वह कर्मयोग उसके लिये निरुपयोगी है और उसके मनको शास्त्रीय अर्थात् उसके स्वभावके (अनुभोक्ता) विज्ञान सम्मत सुखाभिव्याप्ति रूप स्वर्ग और दुःखाभिव्याप्ति रूप नरकसे आशा-भय पूर्ण मननमें प्रवृत्त कर, हृदयको तत्वके अग्रहण रूप निद्रासे मुक्त करनेके हेतु शास्त्रीय विधिसे शासित करता है।

यह ज्ञानयोग उसके लिये निरर्थक है जो उसकी बुद्धिको शास्त्रीय दर्शन अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कार्य कारण संबंध ज्ञान-कर्म विवेचन (तर्क) में प्रवृत्त कर हृदयको अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रमसे मुक्त करनेके हेतु शास्त्रीय विधिसे नियमित करता है; वह भक्ति योग भी उसके लिये कुछ प्रयो-

जानकारी नहीं जो उसके चित्तको शास्त्रीय रूपकों अर्थात् मनोवैज्ञानिक वस्तु रूपोंके संवेदनमें प्रवृत्त कर, हृदयको आत्मानुभवके अभाव रूप विकारसे मुक्त करनेके हेतु शास्त्रीय विधिसे प्रक्षोभित एवं भय कम्पित करता है। वह कभी इनके शास्त्रीय विधि विधानमें विश्वासके साथ सम्पूर्णतः प्रवृत्त ही नहीं हो पाता—

नहीं कलि करम न भगति विवेकू-राम नाम अवलम्बन एकू। बा. कां. २७

ऐसी अवस्थामें उसके लिये एक ऐसा अभ्यास ही उपयुक्त रहता है, जो उसे किसी शासन, नियम प्रलोभन या भयसे विवश विह्वल न कर, उसके अपने अभिप्रेतकी ओर ईमानदारीसे प्रवृत्त कर सके और ऐसा ही अभ्यास रामनामकी रटन है।

बात यह है कि सब व्यक्ति अपने समष्टिगत अहंशून्य स्वभावसे अपनी एक अलग, व्यष्टिगत अहंपूर्णस्थितिके रागमें आता है और जब वह उस रागमें मनन, विवेचन, संवेदन, स्पन्दनकी गतिसे किसी एक वस्तुके स्पर्श- रूप-रस गन्धके भावसे आकर अनुरंजित होता है, तब नाम अर्थात् शब्द उसके हृदयको जहां अपने अर्थतत्वके रूपमें प्रकाशित किया करता है, वहां उसके रति-हास-दुख-क्रोध-उत्साह-भय-जुगुप्सा-आश्चर्य-निर्वेद आदि प्रत्येक विकारका आरम्भ सूत्र ही बना रहता है—

वाचारंभणं विकारो नामधेयम्। छन्दो. उप.

'(आत्मा—गतिशील या भावनाशील हृदय—का) विकार वाणीसे आरम्भ होनेवाला नाम मात्र है। इस नामके बिना मानवका मनन-- विवेचन-संवेदन स्पन्दन विशिष्ट रागतत्व अर्थात् प्रेमतत्व, और श्रद्धातत्वकी व्यंजना नहीं होती, नामके बिना मानवका स्पर्श-रूप-रस-गन्ध विशिष्ट भावतत्व अभिव्यक्त नहीं होता; नामके बिना मानवका रति-हास-दुख-क्रोध-उत्साह-भय-जुगुप्सा-आश्चर्य निर्वेद विशिष्ट हृदय तत्व प्रकाशित नहीं होता।

नामतत्व या शब्दतत्व ही अपने बीजरूप ध्वनि विन्यास और फलरूप अक्षर विन्यास, पद विन्यास वाक्य विन्यासके सूत्रसे मानवके समस्त जीवनतत्व अर्थात् प्राण तत्वको अपने अर्थतत्वके रूपमें उसकी प्रत्येक क्रिया और धड़कनके साथ समेट कर जहां एक अखण्ड मालाके रूपमें ग्रंथित किये हुए है, वहां उसे अपने ही अनुष्ठानके अधीन किये हुए है। जहां नामका स्फुरण नहीं होता, वहां किसी भी वस्तुको प्रत्यक्ष पाकर भी पहिचाना नहीं जा सकता, क्योंकि इस स्फुरणके पहले, शब्दतत्वके अव्यक्त रहनेवाले बीजरूप ध्वनि विन्यासके सूत्रमें ग्रंथित अर्थतत्व अव्यक्त अप्रकाशित रहता है; और जहां नामका स्फुरण होता है, वहां प्रत्येक वस्तु उसके प्रत्यक्ष न होने पर भी सम्पूर्णतः हृद्य बन जाती है, क्योंकि इस स्फुरणमें शब्दतत्वके व्यक्त रहनेवाले फल रूप अक्षर विन्यास; पद विन्यास, वाक्य विन्यासके सूत्रमें ग्रंथित अर्थतत्व व्यक्त प्रकाशित रहता है

देखि अहिं रूप नाम अधीना, रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना। रूप विशेष नाम बिनु जानें, करतल गत न परहि पहिचाने॥ सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें, आवत हृदय सनेह विसेषें
बा. कां. २१

ऐसी स्थितिमें कहना न होगा कि मानव अपनी अभिप्रेत वस्तुके शुभ, निर्मल आदर्श रूपकी केवल नाम रटन ही से उसमें रागमें अनुरंजित एवं भावमें भावित होकर उसे प्राप्त कर सकता है; क्योंकि किसी भी वस्तुकी प्राप्ति अथवा अनुभव सिद्ध ज्ञान और अनुभवोत्तर विज्ञानके लिये उसके मनन-विवेचन-संवेदन-स्पन्दन विशिष्ट राग, स्पर्श-रूप-रस-गन्ध विशिष्ट भाव और रति-हास-दुख-क्रोध-उत्साह-भय-जुगुप्सा-आश्चर्य-निर्वेद विशिष्ट हृदयका होना अनिवार्य है और यह राग भाव और हृदय उस नामहीके द्वारा साध्य है जो अपने ध्वनि, अक्षर, पद, वाक्यके सूत्रसे मानवके रागतत्व, भावतत्व, हृदयतत्व, और इस प्रकार समस्त जीवनतत्वको भी अपने अधीन किये हुए है और इसी नामकी रटन या अभ्याससे वह अपने राग, भाव, हृदय और जीवनको, अनभिप्रेत अहंपूर्ण दिशासे अभिप्रेत अहंशून्य दिशामें मोड़ सकता है—

राम नाम कलि अभिमत दाता। बा. कां. २७

अस्तु राम नामकी रटनमें— रामधुनमें व्यक्ति सर्वप्रथम उसके अव्यक्त ध्वनि विन्यासके प्रभावसे, अनायास, अनभिप्रेत अहंपूर्ण स्थितिसे अलग अपनी एक अभिप्रेत वस्तुके मोहमें खिंचकर क्रमशः उसके रागमें रंजित और भावमें भावित होने लगता है।

इस स्थितिमें, वह अपनी मननशीलतासे, ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुके स्पर्शमें सन्तप्त होने लगता है, त्यों त्यों तत्वके अग्रहण रूप निद्रासे मुक्त होता जाता है और अपनी स्थूल सूक्ष्म समस्त इन्द्रियोंसे स्वस्थ होकर, उनके ओजमें अपने चातुर्दिक समस्त जीवन और जगतका पूर्ण और यथार्थ रूप समझने लगता है; अपनी विवेचन शीलतासे ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुकी रूप-कल्पनामें विमोहित होने लगता है, त्यों त्यों अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रमसे मुक्त होता जाता है और अपनी प्रत्येक क्रिया और धडकनसे रमणीय और मधुर होकर, उसके माधुर्यमें सत्वको सर्वत्र पाने लगता है।

अपनी संवेदनशीलतासे, ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुके रसास्वादनमें व्यामोहित होने लगता है, त्यों त्यों आत्मानुभवके अभाव रूप विकारसे मुक्त होता जाता है और अपने वीर्यसे पटु होकर उसके प्रसादमें सदा प्रसन्न रहने लगता है; अपनी स्पन्दन शीलतासे ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुकी गंधमें गुंफित होने लगता है, त्यों त्यों आत्म साक्षात्कारके अभाव रूप प्रमादसे मुक्त होता जाता है और अपने तन मनसे निश्चल होकर उनके ओज-माधुर्य-प्रसाद गुण गर्भित समाधि अर्थात् मनोयोगमें अपनी अभिप्रेत वस्तुके शुभ, निर्मल, आदर्श रूपको हृदयके भीतर, ईश्वर भावके रूपमें प्रतिष्ठित पाने लगता है।

इसके बाद वह उसके (रामनाम के) रामायण आदि ग्रन्थोंके रूपमें व्यक्त अक्षर विन्यास, पद विन्यास, वाक्य विन्यासके अर्थ तत्वके रूपमें अपनी अभिप्रेत वस्तुका, भाषा अर्थात् अक्षरों, पदों, वाक्योंमें स्फुरण पाकर, जहां रति, हास, दुख, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य, निर्वेद आदि हृदयके भावों (विकारों) के साथ उसकी रसमय व्यन्जना करता है, वहां इस व्यन्जनामें उसका अपने जीवनमें स्पष्ट प्रकाश पाकर, समग्र मनकी स्पष्टता रूप मंगल, रमणीयता रूप, सौन्दर्य, पटुता रूप शक्ति, निश्चलता रूप आनन्दमय अपने स्वभावकी (अनुभव सिद्ध ज्ञान और अनुभवोत्तर विज्ञान रूप) प्राप्ति कर लेता है—

नाम सप्रेम जपत अनयासा, भगत होहिं मुद मंगलवासा। बा. कां. २४

जर्मनवासियोंका संस्कृत-प्रेम

(लेखक— श्री वीरेन्द्रकुमार)

'संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जो कोषकी दृष्टिसे भरपूर है, हर तरहसे अत्युन्नत है, पर नियंत्रित है और २६०० वर्ष पूर्व होनेवाले पाणिनीके व्याकरण द्वारा नियत कर दी गई है। यह फैली और इसके कोषमें वृद्धि हुई, यह परिपूर्ण बनी पर यह अपने मूलसे कभी भटकी नहीं। यह, यद्यपि आज सर्वसाधारणकी भाषा नहीं रही, फिर भी, जीवनशक्तिसे भरपूर है। —जवाहरलाल नहेरू

'संस्कृत भाषा, पुरानी चाहे कितनी ही हो, एक आश्चर्यजनक आधार पर टिकी हुई और ग्रीककी अपेक्षा कहीं अधिक पूर्ण है। लेटिनसे ज्यादा भरपूर है तथा दोनों भाषाओं (ग्रीक और लेटिन) की अपेक्षा ज्यादा परिष्कृत है। भाषा तत्त्वविदोंका मन्तव्य है कि दोनों भाषायें, व्याकरणकी दृष्टिसे, एक ऐसे मूलसे निकली हैं, जो सम्भवतः आज अस्तित्वमें नहीं है'।

— सर विलियम जॉन्स १७८४

कई योरोपीय विद्वानोंने संस्कृत भाषाका अध्ययन किया और एक नये विज्ञान-तुलनात्मक भाषा विज्ञान की नींव डाली। इस कार्यमें जर्मन विद्वान् हमेशा आगे रहे। संस्कृत भाषामें अनुसंधानका अधिक श्रेय उन्हीं को है। आज भी प्रजातंत्रीय जर्मनी (पश्चिमी जर्मनी) के प्रत्येक विश्वविद्यालयमें अन्य भारतीय भाषाओंके साथ संस्कृतके विभाग भी हैं।

हार्दिक अभिनन्दन

जब मैं बर्लिनके इण्डॉलॉजीकी एक संस्थामें निरीक्षणार्थ गया, तो मैंने देखा कि कुछ विद्यार्थी अपने संस्कृतके पाठोंका अभ्यास कर रहे थे। उस दिन उस संस्थामें छुट्टी थी। मेरा हार्दिक स्वागत करते हुए उन्होंने कहा '··· तुम्हारे देशके साथ हमारे संबंध कुछ नये नहीं हैं। हमारे यहांके निवासी तुम्हारे देशकी सभ्यताके तथा उस प्रभावके जो उसने संसारपर डाला, हमेशासे प्रशंसक रहे हैं। अनन्तकालसे हम तुम्हारे देशकी सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, वैज्ञानिक, आर्थिक और राजनैतिक समृद्धिका अनुसरण करते आये हैं।

'बहुत सी संख्यामें जर्मन विद्वान् भारतकी कलात्मक प्राप्तियोंका निरीक्षण करने तथा अद्वितीय भाषा संस्कृतका अध्ययन करने गए भी हैं। क्या तुम जानते हो कि हमारे एक विद्वान् हेनरिक रॉथने १६४६ से १६५० तक आगरामें रहकर संस्कृत पढ़ी थी। बादमें जर्मनी लौटनेपर रॉथने अटनसियाय किशर नामक एक दूसरे विद्वान्‌की सहायतासे ब्राह्मणिज्म पर १६६७ में एक पुस्तक प्रकाशित की थी। रॉथने संस्कृतके व्याकरण पर भी ग्रंथ लिखा था। वह संभवतः योरोपमें संस्कृतका सबसे पुराना विद्वान् था।'

बादमें मुझे यह भी बताया गया कि जर्मनीमें भारतीय भाषाओंका अध्ययन केवल संस्कृत तक ही सीमित नहीं है। अपितु तामिल तेलुगु आदि भाषायें भी पढ़ाई जाती हैं। विश्वविद्यालयोंमें हिंदीका स्थान महत्वपूर्ण है, और उसमें अन्य भाषाओंकी अपेक्षा विद्यार्थी भी ज्यादा है।

इण्डोलॉजी संस्थाके पाठ्यक्रमके अन्तर्गत भारतके ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकासोंका अध्ययन भी है। जर्मन विद्वान् इनमें बहुत हिस्सा लेते हैं और उनका यह विश्वास है कि भूतकालके ज्ञानके बिना वर्तमानकालका ज्ञान नहीं हो सकता।

इण्डोलॉजीका विकास १९४५ से शुरू हुआ, तबसे अब

तक अनेक अनुसंधानात्मक कार्य प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी सूची बडी लम्बी है, पर यहां थोडासा दिग्दर्शनके लिए देता हूँ—

एन अटेम्प्ट ऍट ए क्रिटिकल इवेल्यूएशन ऑफ दि कठोपनिषद्- (कठोपनिद्का आलोचनात्मक मूल्यांकन) -प्रो. एफ. वेलर

टिबटेन- संस्कृत इण्डेक्स टू दि बोधिचार्यावतार— -प्रो. एफ. वेलर

इन्फ्ल्यूएन्स ऑफ दि द्रविडियन लॅंग्वेजेज ऑन संस्कृत (द्रविड भाषाओंका संस्कृत पर प्रभाव) -प्रो. के. आर्मर।

दि रोल ऑफ शिव इन महाभारत (महाभारतमें शिव का स्थान) -डॉ. मेहलिंग।

अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य (कौटिल्य-अर्थशास्त्र)-मिसेज. इ. रिटलोक.

दि पोजिशन ऑफ वीमेन इन कौटिल्य एण्ड मनु- (मनु और कौटिल्यमें स्त्रियोंकी स्थिति)- मिसेज- पी. मुखर्जी. कालिदास

दि टेण्डेंसी ऑफ ड्रामा- 'मुद्राराक्षस' (नाटककी प्रवृत्ति)

दि पंचतंत्र ऍण्ड इट्स मॉरल टीचिंग्स (पंचतंत्र और इसके नैतिक उपदेश)

डॉग्मेटिक कंसेप्शन इन दि ओल्डर बुद्धिज्म (प्राचीन बौद्ध धर्ममें सैद्धान्तिक विचार) कुसुम मित्तल

महापरि निर्वाण सूत्र— प्रो. इ. वाल्डश्मिट

लॉजिक ऑफ दि महाभाष्य— (महाभाष्यका तर्कशास्त्र) डॉ. थर्के।

उत्तम प्रगति

'बुद्धसे गांधी तक धार्मिक सुधारके आन्दोलन' आदि विषयों पर अनुसंधान जारी है, जो भारतको इसके अपने भूतकालसे जोडते हैं।

इण्डॉलोजीकी संस्था भारतके संस्कृत आयोगके रिपोर्ट व संस्कृत साहित्य अकादमीकी पत्रिका "संस्कृत-प्रतिभा" पर भी विचार करती है। संस्थाके अधिकारियोंने भारतीय जनतामें उत्तम अध्यापक वर्ग, उत्तम साहित्यके न प्राप्य होने पर भी अपने विचार प्रकट किए। पर इन न्यूनताओंके बावजूद भी यह संस्था अच्छी उन्नति कर रही है। मैं आसानीसे ही यह अनुभव कर सका कि भारतके द्वारा की गई अध्यापक विषयक, अथवा संस्कृत साहित्य विषयक सहायताका हार्दिक स्वागत किया जाएगा।

‘ मैं ’ या ‘ आत्मा

[लेखक— श्री पं. विद्यानन्दजी वेदालङ्कार, आचार्य– गुरुकुल महाविद्यालय, बैरगनिया (बिहार)]

⊙

मैं अपनेको नहीं जानता पर सबको जानता हूं ऐसा कहते हरेकको कुछ संकोच होता है। पर क्या, ‘ मैं क्या हूं ’ इसका उत्तर दे सकता हूं। ऐसा आत्म निरीक्षण करने पर सत्य सामने आ जाता है।

हमारे देशमें पता नहीं कबसे वेदकी प्रामाणिकता सर्वोपरि हो गई थी। स्वामी शंकराचार्यने वेदमंत्रोंके उद्धरण तो कम दिये हैं पर वेदकी प्रामाणिकता सर्वोपरि मानने पर जोर बहुत दिया हैं। परन्तु आज आर्य समाज ही वेद-वादी है। वह चल तो रहा है बुद्धि जन्य आदर्शवाद पर परन्तु तर्क प्रधान वेदवादका घेरा भी पंडित लोग दृढ करते जाते हैं। आज हिन्दुओं पर आर्य समाज छाता जा रहा है। पर यह प्रभाव अन्तर्मन पर कम, पर बाह्यमन पर अधिक है। क्योंकि आर्य समाजी भी चलता जाति पंचायतके साथ है पर बोलता ‘ दयानन्द ’ की बात है।

इस प्रकार आज गुरुकुल जगत्को छोडकर वेदकी प्रामाणिकता ‘ वाद ’ भर है। वेदाध्ययनमें लगे लोग ही इसकी प्रामाणिकता समझते हैं। सुनने और पढनेमें समय बिना लगाये भी कुछ वेदके आधार पर बोलनेवाले विद्वान् हैं। जो साहबोंके अनुवाद पढे हैं जो मिसमेयोकी प्रवृत्ति पर लिखे गये हैं। उनमें मतवाद, अपने अंधविश्वास और संस्कृत भाषाके ज्ञान पर लिखे अर्थोंको प्रामाणिक माननेकी चेष्टा थी। वैदिक भाषा और संस्कृत भाषामें अन्तर है। हिन्दी आदि संस्कृतसे निकली भाषाज्ञान संस्कृतका अर्थ समझनेके लिये अपर्याप्त है। वही बात संस्कृतज्ञके लिये वेदार्थ समझनेमें है। आज वेदार्थके लिये पदपाठ और स्वर ज्ञानका ध्यान रखना भी आवश्यक हो गया है।

यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र १३ में लिखा है कि, ‘ य आत्मदा ’ जो आत्म ज्ञानका दाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वेदकी दृष्टिमें ‘ आत्म ज्ञान ’ ईश्वर देता है।

यजुर्वेद अ० २३। निम्न है—

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा
जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

जो प्राणवाले और अप्राणीरूप जगत्का अपनी अनन्त महिमासे एक ही राजा विद्यमान् है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि (चौपाये) प्राणियोंके शरीरकी रचना करता है। हम लोग उस सुख स्वरूप सकलैश्वर्यके देनेवाले परमात्माकी उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्रीको उसकी आज्ञा पालनमें समर्पित करके भक्ति विशेष करें। ऋषि दयानन्द।

इस मंत्रमें दो पाये और चौपाये जीवोंके साथ सप्राण और निष्प्राण जीवोंका वर्णन मिलता है।

निष्प्राण जीव

निष्प्राण जीव अद्भुत प्रतीत होता है। क्योंकि वैज्ञानिक भी ताप, प्राण, चेतना, और शरीरकी सक्रियताको ही जीवन चिह्न मानते रहे हैं। आत्माके लिंग महर्षि गौतमने भी इन्हींको माना है। वैज्ञानिकोंके द्वारा निर्मित आधुनिकतम यंत्र भी इन्हीं जीवन चिह्नोंको जाननेके लिये बने हैं। बडासे बडा चिकित्सक भी इन यंत्रोंसे जीवन चिह्न न मिलने पर शरीरको ‘ मृत ’ कह देता था। परन्तु अब शीतल, निष्प्राण एवं निष्क्रिय शरीरमें भी जीव मिलने पर अद्भुत स्थिति पैदा हो गई है। आज नये परीक्षणोंने शरीरमें ताप जन्य प्राण, चेतना एवं शरीरकी सक्रियताके साथ जीवकी भी पृथक् सत्ता प्रमाणित कर दी है।

मृत्युकालीन तापमान

९८.४ डिग्री मनुष्यका सामान्य तापमान माना जाता है। डा. नैथालियन क्लीटमैन कहते हैं कि गाढी नींदमें हमारा तापमान ९७ डिग्री हो जाता है जो निम्न तम ताप-

मान है। जो मृत्यु पूर्वका तापमान है। ऐसा ही बडेसे बडे चिकित्सकका विश्वास है। परन्तु नये परीक्षण बताते हैं कि, ८८ डिग्री तापमान पर भी मृत्यु नहीं होती। ९४ डिग्री तक तापमापक यंत्रमें चिह्न रहते हैं। ९४ डिग्रीसे कम तापमान पर ध्रुव मृत्युका विश्वास चिकित्सकोंको है।

फिलेडेल्फियामें हेनमैन चिकित्सालय है। इसमें हृदय रोगसे पीडित क्लीवलैण्डकी जुडिथ स्कमडिट् ११ वर्षीया बालिका प्रविष्ट हुई। डा. पी. वैलीने उसकी शल्य चिकित्सा की। उसे मूर्छित करके उसका शरीर रेफ्रीजेटरमें रख दिया और उसका तापक्रम ९८.४ से घटाकर ८८ डिग्री कर दिया। उसके हृदयसे निकलनेवाले शुद्ध खूनका प्रवाह ३ मि. की जगह ५ मि. तक रोक लिया। क्योंकि शरीरका तापमान घटने पर शरीरके सभी अंगोंकी क्रिया शिथिल पड गई थी। इसी कारण शल्य क्रियाके लिये अधिक समय मिला। पर १० डिग्री तक तापमान गिरने पर भी मृत्यु नहीं हुई।

तापका प्रभाव

ताप जन्य शरीरकी क्रियाशीलता पर प्रश्नोपनिषद्‌ने भी प्रकाश डाला है। प्राणियों एवं वनस्पति जगत्के समान सभीके प्राणोंका नियमन कर्ता सूर्य है। सूर्य ताप पृथ्वीकी गतिके अनुसार घटता बढता हुआ हमें प्राप्त होता है। इसी कारण ऋतु परिवर्तन होता है। ऋतुओंके अनुसार सबकी दशा बदलती रहती है। वनस्पतियोंकी दशामें परिवर्तन तो हम स्पष्ट देखते हैं। परन्तु कुछ प्राणियों पर भी प्रभाव स्पष्ट दीखता है। सर्प, कछुआ मेंढक आदि जीवोंकी शारीरिक क्रियाएं शरद्‌में बहुत धीमी पड जाती है; लगभग रुक जाती है। तब भी वे जीते रहते हैं। सांप तो पतझडके समान केंचुली भी छोडता है।

दिनमें हमारे मन और शरीर क्रिया शील रहते हैं, पर रात्रिमें निष्क्रिय सो जाते हैं। गाढी नींदमें सपने भी बन्द हो जाते हैं। वर्षमें सूर्य तापका घटना बढना और तदनुकूल ऋतु परिवर्तन हम देख और समझ लेते हैं। पर दिनमें लक्षित नहीं करते। पर दिन भी उसी प्रकार ह्रास होता है। कई फूल भी दिनमें खिलते हैं और रातमें बन्द हो जाते हैं। उन पर भी हमारे दिन और रातका प्रभाव पडता है।

शरीरका तापमान हमारा घटता बढता रहता है। तापक्रम घटने पर शरीर, प्राण और मन सबकी क्रिया घटती है। ताप जन्य प्रभावके विषयमें यही अन्तिम सत्य हो यह बात नहीं है। तापका अभाव होने पर शरीर, प्राण और मनकी क्रिया बन्द भी हो जाती है। जीव तब भी शरीरमें रहता है।

निष्प्राण जीव

सेंट लुई विश्वविद्यालयमें एक जीव अनुसंधान शाला है। उसके संचालक फादर वैलक जेस्युअट हैं। उन्होंने मुर्गीके भ्रूणोंको हिमसे ३२० गुणासे भी अधिक ठण्डा कर दिया। वे हिमातीत शीतल भ्रूण जमकर पत्थरके समान कडे हो गये। उनके शरीरकी एवं मनकी सारी क्रियाशीलता बन्द हो गई। आधुनिक तम यंत्र भी जीवन चिह्न न बता सके। उन्हें मृत बताया गया।

तब उन भ्रूणोंको उष्ण रक्तमें रक्खा गया। धीमे धीमे शरीरमें तापके बढने पर मस्तिष्क, दिल प्राण आदि काम करने लगे। चेतना लौट आई। वे सुषुप्त जीव उठे। उनमें कुछ जी उठे और कुछ मर गये।

प्राण, चेतना और शरीर सभीके बन्द होने पर भी मृत्यु नहीं हुई। जीव ताप शून्य, निष्क्रिय एवं अचेतन शरीरमें भी रहा। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि सक्रियता तापजन्य होती है। तापजन्य सक्रियताका आरंभ जीवके कारण होता है। जीवहीन शरीरोंमें ताप भी क्रिया शीलता नहीं पैदा कर सका।

उत्तरी ध्रुव पर प्राणी शीतकालमें निष्क्रियसे होकर पडे रहते हैं। इनमें विशाल ध्रुवीय रीछ भी होते हैं। वे क्षीण शरीर हो जाते हैं। ग्रीष्म आते ही भूखसे छटपटाते दौड पडते हैं।

निष्प्राण, निष्क्रिय, एवं अचेतन जीवकी सत्ता हमें विवश कर रही है। अब हम जड जगत् मृत है नहीं कह सकते। श्री जगदीश चन्द्र बसुने वनस्पति जगत्में जीव खोजा था। हम जड जगत्में भी जीव नहीं है कह नहीं सकते।

डा. सटाहलमेर केलिफोर्नियाके हैं। उन्होंने गर्भसे बाहर मानव भ्रूणों पर भी यह परीक्षण किया है। अतः सभी प्राणी निष्क्रिय, निष्प्राण होकर भी मर जाते हैं या नहीं, हम नहीं कह सकते।

जीना है तो मिटा दो ये जातपांत

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी, गवर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, P. O. पीपलखेडा, धार)

★

जगद्पिता परमात्माके प्राणप्रियपुत्रोंको आज आपसमें कलह करते देख कौनसा विवेकशील व्यक्ति दुःख नही पाता है। हम ब्राह्मण हैं, हम अछूतोंसे कोसों दूर रहेंगे, हम इन हरिजनोंको मंदिरमें नहीं आने देंगे। आदि ऐसे कितने ही तर्कोंसे मनुष्यके बीच भेदभावकी दीवार इन समाजके ठेकेदारोंने खडी कर दी है। पूज्य बापूके सद्-प्रयत्नोंसे यह भेदभावकी गहरी खाई बहुत कुछ अंशोंमें भर गई है, लेकिन फिर भी ये समाजके ठेकेदार अपने आपकी डेढ चावलकी खिचडी अलगसे पका रहे हैं। लेकिन यह युग तो संघशक्तिका है। 'संघे शक्ति कलियुगे' के अनुसार अब हमें सबको अपनी एकताके स्वरूपका बोध कर लेना ही उचित है क्योंकि हम सब एक हैं 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो।' ऋग्वेद ५-६०-५ (मनुष्योंमें कोई ऊंचनीच नहीं, सब भाई भाई हैं।)

यदि हम अतीतके स्वर्णिम पृष्ठोंको पलटें तो हम यही पावेंगे कि एक ही पिताके पुत्र जिस तरह भाई भाई होते हैं उसी तरह हम भी आपसमें भाई हैं।

वयस्कृत् तव जामयो वयम्। ऋ. १-३१-७-१०

(एक ही परमपिताके पुत्र हम सब आपसमें भाई भाई हैं।)

आज हमारी जो दीनहीन दशा हो रही है उसका कारण यही है कि हमने अपनी वास्तविक स्थितिको भुलाकर रूढिवादिताके कुचक्रमें मानवताको चुनौती दी, मानवको मानवसे मिलने नहीं दिया। तभी तो प्रथम विश्वधर्म सम्मेलनमें वेदना भरे शब्दोंमें हमारे सम्माननीय प्रधानमंत्री पं. नेहरूको कहना पडा, 'अब धर्म, भाषा और जातिके भेदभावको दूर किये बिना हमारा जीवन और संपूर्ण राष्ट्र विघटित हो जावेगा।'

वास्तवमें यदि हमने अपनी स्थितिको नहीं सुधारा अपने समाजके वास्तविक स्वरूपको नहीं समझा तो हमारे समस्त वैभव, संस्कृति और धर्मके अन्तका दिन दूर नहीं है।

भारतीय संस्कृतिमें पग पगपर गुण कर्मकी प्रधानता है इसीलिये तो कहा है 'गहना कर्मणो गति' (कर्मकी गति गहन है) सर्वत्र कार्यकी ही प्रधानता है। जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा जिस प्रकार कि तहसीलदारका पुत्र तहसीलदार नहीं हो सकता है, उसी प्रकार यह भी आवश्यक नहीं है कि केवल उच्च वंशमें जन्म मात्रसे कोई व्यक्ति अपने पूर्वजोंके समान होजावे। मनुष्य अपने ही कर्मोंसे आगे बढ जाता है ऊंचा चढता है. इस बातके हजारों प्रमाण हमारे धर्म ग्रंथोंमें मौजूद हैं। लेकिन हम उन्हें तो भूलते जारहे हैं और अंधविश्वासी बन कर मानवके साथ पशुसे भी गया बीता व्यवहार करनेमें जरा भी नहीं हिचक रहे हैं। लेकिन मनुकी सन्तानों! मनुका यह आदेश मत भूलो।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

मनुस्मृति

(जन्मसे तो सभी शुद्र होते हैं। द्विज संस्कारोंके कारण कहलाता है। यदि वह वेद अध्ययन करनेवाला है तो वह विप्र कहलायेगा और जो ब्रह्म जानता है, वह ब्राह्मण कहलाता है।)

लेकिन आज तो ब्राह्मणोंने अपने कर्तव्यको तिलांजली देकरके अपने पैरों पर मानों स्वयं ही कुल्हाडा मार लिया है। वे कर्तव्य पक्षको छोडकर आज केवल दैविकताके कारण अपने आपको ब्राह्मणत्वका अधिकारी मानता है। लेकिन

ब्राह्मणत्वका अधिकारी कौन है। जरा वैदिक एवं तदनुगामी वाङ्मयमें देखिये।

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगां।

ऋग्वेद १०।१०७।६

(वही ऋषि और ब्राह्मण है जो अपने ज्ञानसे दूसरोंको सन्मार्ग पर लगाता है।)

इसी प्रकार ब्राह्मणत्वकी पहिचान बतलाते हुए महाभारतमें कहा है—

न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽ मानितश्च यः।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणः विदुः॥

(शा. प. २४५।१४)

(सम्मानित होकर भी जो हृष्ट नहीं होता, अपमानित होकर भी रुष्ट नहीं होता, जो सर्व भूतको अभय देनेवाला है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं।

ऐसे ही परम पुनीत तत्वज्ञानसे भरे पूरे देव स्वरूप ब्राह्मणोंके लिये हमारे यहां पहचान करनेकी यह युक्ति बतलाई गई है।

किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पृच्छसि मातरं।
ऋतं चेदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः॥

(काठक संहिता ३०।१)

(ब्राह्मणके मातापिताकी क्यों पूछते हो? यदि उसमें ऋत है तो वही उसका पिता है वही पितामह।)

ब्राह्मणोंके गोत्रोंसे पता चलता है कि वे कौशिक वशिष्ट गौतम, भारद्वाज आदिकी संतानें हैं। मित्रावरुणके औरस उसका जन्म हुआ था। वशिष्टजीके जन्मके सम्बन्धमें कुछ गोलमाल था, इसी कारण तो ऋग्वेदमें उन्हें कहीं तो उर्वशी पुत्र और कहीं तृप्सु वंशोत्पन्न कहा गया है। कई जगह उन्हें ब्रह्माका मानस पुत्र भी कहा गया है। देखिये—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्
मनसोऽधिजातः। (ऋग्वेद ७-३३-११)

इसी प्रकार 'सच्चे ब्राह्मण' का एक उदाहरण 'छान्दोग्य' में मिलता है।

तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति
समिधं सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति।

(छान्दोग्य ४-४-५)

(जाबालके पुत्र सत्यकामने माताकी बातको गुरुसे ज्यों-का त्यों कहा तो गुरु गौतमने कहा सच्चे ब्राह्मणके सिवाय और कोई ऐसी बात नहीं कह सकता। जाओ सौम्य, समिधा लाओ। मैं तुम्हें उपवीत करूँगा, इसलिये कि तुम सत्यसे विमुख नहीं हुए।)

आज हम प्राणीमात्रमें एकत्वकी भावनासे दूर रह कर ही दुःख पा रहे हैं। जाति पांतिके भेदभावने हमें इन्सानियतसे कोसों दूर लाकरके रखदिया है। अब वह समय आगया है कि हम सम्हल जावें और तुरन्त हो प्राणी मात्रको अपना बन्धु सच्चे हृदयसे मानकर मानवताकी रक्षा करें। आज हम हरिजनोंके हाथका पानी पीनेसे घबराते हैं, लेकिन भारतके स्वर्णिम युग वैदिक कालमें यह बात नहीं थी, तभी तो अथर्ववेदमें मंत्रद्रष्टा महर्षिने मानवताका पावन संदेश देते हुए कहा है—

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे
सह वो युनज्मि। सम्यञ्चो अग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाऽभितः॥ (अथर्ववेद ३-३०-६)

(हे मनुष्यो! तुम लोगोंकी पानी पीनेकी तथा भोजन करनेकी जगह एकही हो; समान धुरामें मैंने तुम सबको समानतासे जोत दिया है जिस प्रकार चक्रके बीच आरे जमे रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी एक जगह एकत्रित होकर अग्निमें हवन करो।)

कहां तो एकत्रित होकर हवन करनेका महर्षियोंका आदेश, कहां यह कहना कि 'गायत्री तो केवल ब्राह्मणोंकी है। शूद्र तो मंदिरमें प्रवेश भी नहीं कर सकते हैं। अमृतपायी, तत्ववेत्ता ऋषियोंके पुत्रो! अपने पूर्वजोंके आदेशोंकी अवहेलना करके क्या आप मानवताका उपहास नहीं कर रहे हैं।

मानव शुभकर्म करके देवत्व और ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है।

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचारितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्।

(ब्रह्मपुराण २२३।१२)

(शुभ कर्मोंके आचरणसे शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त करता है और वैश्य भी क्षत्रियत्वको।

उपरोक्त प्रमाणसे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि गुण कर्मके अनुसार ही जातिका निर्माण होता है। तभी तो भविष्य पुराणमें स्पष्ट कहा है—

शूद्रब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः ।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि ॥
(भविष्यपुराण ४१।३९)

(अति यत्नपूर्वक सभी देवता मिलकर भी खोजें तो भी ब्राह्मण और शूद्रमें कोई भेद नहीं पावेंगे ।)

फिर ' हरिको भजे सो हरिका होई, जातिपांति पूछे नहीं कोई । ' के अनुसार जो ईश्वरका सच्चा भक्त है, वहीं ब्राह्मण है ।

न शूद्रा भगवद्‌भक्ता विप्रा भागवताः स्मृता-भा०
(जो ईश्वरके सच्चे भक्त हैं, वे ही ब्राह्मण हैं, उन्हें शूद्र नहीं कहना चाहिये ।)

चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका । फलान्यथोदुम्बरवृक्षजातेर्यथाऽग्रमध्यान्तभवानि यानि ॥ वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या । भ. महापुराण ब्रा. अ. ४२

(यदि एक पिताके चार पुत्र हों तो उन पुत्रोंकी एक जाति होनी चाहिये । इसी प्रकार सबका पिता एक परमेश्वर है अतः मनुष्य समाजमें जाति भेद बिलकुल भी नहीं होना चाहिये । जिस प्रकार एक ही गूलरके वृक्षके अग्रभाग मध्यभाग तथा पींडवर्ण, आकृति स्पर्श तथा रस इन बातोंमें एकसे फल लगते हैं, उसी प्रकार एक विराट् पुरुष परम ब्रह्म परमेश्वरसे उत्पन्न हुए मनुष्योंमें भी किसी प्रकारका जाति भेद नहीं होना चाहिये ।)

सचमुच ही आज हम एक ही पिताकी सन्तान होते हुए भी आपसमें जातपांतके कुचक्रमें पडकर घर घरमें महाभारतकी प्रक्रिया पूरी करने पर तुले हुए हैं आज हमारी इसी कमजोरीकी तरफ लक्ष्य करते हुए भी भविष्य पुराणमें निर्देश करते हुए जाति पांतिके इस विनाशकारी भेदभावको मिटा देनेका आदेश दिया गया है ।

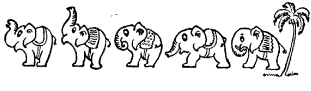
न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुक्ला न क्षत्रिया किंशुक पुष्पवर्णा । न चापि वैश्या हरितालतुल्या शूद्रा न पांगारसमानवर्णा ॥
(भविष्य पुराण ४१।४१)

ब्राह्मण लोग भी चांदीकी किरणके समान शुक्ल वर्ण नहीं है। क्षत्रिय लोग भी किंशुक पुष्पसे लाल नहीं है, वैश्य लोग भी हरतालके समान पीले नहीं है और शूद्र कोयलेके समान काले नहीं हैं ।

पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन । त्वङ्मांसमेदोऽस्थिरसैः समानाश्चतुःप्रभेदा हि कथं भवन्ति । वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवासवाग्बुद्धिकर्मेन्द्रिय जीवितेषु । बलत्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः ॥ चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका । एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रैकभावान्न च जातिभेदः ॥
(भविष्य पुराण ४१।४२।४३-४४)

(चलना, फिरना, शरीर, वर्ण, केश, सुख, दुःख, रक्त, त्वचा, मांस, भेद अस्थिरस इनमें सभी तो समान हैं, फिर चार वर्णोंका भेद कहां है ? वर्ण प्रमाण, आकृति, गर्भवास, वाग्, बुद्धि, कर्म, इन्द्रिय प्राण, शक्ति, धर्म, अर्थ, कामव्याधि, औषधि इनमें कहीं भी तो जातिगत प्रभेद नहीं है । जिस प्रकार एक ही पिताके चार पुत्रोंकी जाति एक ही होती है, उसी प्रकार सभी पुत्रोंका यह भगवान् एक मातापिता है । इसीलिये जाति भेद नहीं है ।)

अतः ईश्वरके समस्त वरद पुत्रो ! अब युगकी पुकार और शास्त्र आदेशोंकी ओर एक नजर फेंकदो । यदि अपनी समाज, धर्म, राष्ट्र और जन जनकी उन्नति करनी हो तो मिटा दो ये जातपांत ।



मनोपदेश

(श्री प्र. ग. यावळकर, पीपलखेड़ा)

★

(श्री. समर्थ रामदास स्वामी द्वारा रचित 'मनाचे श्लोक' इनका हिन्दीमें पद्यमय अनुवाद। निम्न अनुवादमें सुविधाके लिये 'मराठी मनाचे श्लोक' का मराठी मूल श्लोक सर्व प्रथम संक्षेप में दिया है और बादमें उसका अनुवाद है। रचयिता).

वंदना

मराठी गणाधीश जो ईश साऱ्या जगाचा……गमू पंथ आनंद त्या राघवाचा।

हिन्दी गणईश गणेश जो ईश्वर है, सारे जगका परमेश्वर है।
जो मूलके मूलका प्रारंभ है, और निर्गुणका भी आरंभ है।
कर वंदन शारदा माईको, वाचा चतुराई कि जननीको।
राघवका पथ अपनाता हूं, जहां नित्य आनंद ही पाता हूं ॥ १ ॥

\+ + +

मराठी मना सज्जना भक्ति पंथेचि जावे…… जनी वंद्य ते सर्व भावे करावे ॥

हिन्दी हे सज्जन मन भक्ति पदको, तू हरदम अपनाता जा।
और प्रभूको निज हिरदयमें, अपने आप ही पाता जा ॥
जो जो निंद्य वस्तु है जगमें, इन सबका तुम त्याग करो।
जो जो वंद्य वस्तु है उनको, मनोभावसे ग्रहण करो ॥

\+ + +

मराठी प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा……जनीं तोचि तो मानवी धन्य होतो।

हिन्दी हे मन प्रति प्रभातमें जगकर, श्री रामचंद्रको भजता जा।
और सदोदित अपने मुंहसे, प्रथम उसीको स्मरता जा ॥
यही महा आधार है इसको, कभी न त्यजना जीवनमें।
धन्य हुआ करता है मानव, यही सदा इस जीवनमें ॥

\+ + +

मराठी मना चंदनाचे परी त्वां झिजावे…… ही च कीया धरावी ॥

हिन्दी हे मन! चंदनके समान तू, प्रतिक्षण प्रतिदिन घिसता जा।
और हृदयमें सज्जनताको, अपने पास मिलाता जा ॥
देह रहे न रहे पर पीछे, कीर्ति रहनी चाहिये,
रे मन सज्जन इसी तरहका, कार्य ही होना चाहिये ॥